अनुक्रमणिका–(निर्वाण प्रकरण).

॥ श्रीपरमात्मने नमः ॥ अथ श्रीयोगवासिष्ठे निर्वाणप्रकरणं षष्ठं प्रारभ्यते ॥ वाल्मीक उवाच ॥ ॥ हे भारद्वाज ! उपशम प्रकरणके अनंतर तूं निर्वाण प्रकरण सुण, जिसके जाननेकरि तूं निर्वाण पदकों प्राप्त होवैगा, बडे उत्तम वचन मुनिनायकनें रामजीप्रति कहे हैं, सो रामजी कैसे हैं, जो मुनिश्वरनें वाक्य अर्थ कह्या है, तिसविषे सब औरतें मनकों खैंचिकरि जिसनें स्थापित किया है, अरु और भी जो राजा लोक हैं, सो सब निस्पंद हो रहे हैं, मानौ कागद उपर मूर्तियां लिख छोडियां हैं; ऐसे होकरि वसिष्ठजीके वचनों कों विचारते हैं, अरु जेते राजकुमार हैं सो विचारते हैं, अरु कंठोंकों हिलावते हैं, शिर अरु भुजाकों फेरते हैं, अरु विस्मयकों प्राप्त हुवे हैं, तिसकरि प्रसन्नताकों प्राप्त हुवे हैं, इह जगत सत्य जानीकरि विचरते थे सो हैही नहीं, ऐसे आश्चर्यविषे आश्चर्यकों प्राप्त हुवे हैं, तब दिनका चतुर्थ भाग अंत रह्या, अरु सूर्य अस्त हुआ मानौ वसिष्ठजीके वचन सुणिकरि इसकों फल लगा है, सब तेज क्षीण होगया है, अरु शीतलता आनि प्राप्त भई है, अरु स्वर्गतें जो सिद्ध देवता आये थे, तिनके गलेविषे मंदार आदिक वृक्षोंके फूल थे, पवनके चलणेकरि सब स्थान सुगंधित होत भये, अरु भमरे फूलोंपर गुंजारव शब्द करे हैं, अरु झरोखेके मार्गसों सूर्यकी किरणां आवे हैं, तिनकरि कमलफूल सूर्यमुखी राजा अरु देवताके शीस उपर थे, सो सूकके चलणे लगे, जैसे मनसों जगतकी सत्ता निवर्त्त होवै, अरु वृत्ति सकुचती जाती है, तैसे सूकते जाते हैं, अरु बालक जो सभाविषे बैठे थे, अरु पिंजरोंविषे पक्षी बैठे थे, खेलणेकूं, तिसके भोजनका समा हुआ, बालकोंके भोजननिमित्त माता उठिया, अरु चोथे प्रहर राजाकी नोबत; नगारे; भेरी; शरनाई बाजणे लगियां, वसिष्ठजी जो बडे उंचे स्वरसाथ कथा करता था, तिसका शब्द नगारे वाजिंत्रोंकरि आच्छादि गया; जैसे वर्षाकालका मेघ गर्जता है, अरु मोर तूष्णीं हो जाते हैं, तैसे वसिष्ठजी तूष्णीं हो गये; ऐसा शब्द हुआ जिसकरि आकाश पृथ्वी सब दिशा भर रही, पिंजरेविषे पक्षी भडभड शब्द करणे लगे, पंखोंकों पसार

करि जैसे भूकंप हुएतें लोक कंपते शब्द करते हैं, तैसे पक्षी भडकणे लगे, बालक थे सो माताकी त्वचासाथ मिल गये, बडा शब्द हुआ, तिसके अनंतर मुनिशार्दूल वसिष्ठजी बोले सबके मध्यविषे ॥ हे निःपाप रघुनाथ! मैं तेरे चित्तरूपी पक्षीके फसावणे निमित्त अपणे वाक्रूपी जाल पसारी है, तिसतें अपणे चित्तकों वश करिके आत्मपदविषे जोड ॥ हे रामजी! इह जो मैं तुझकों उपदेश किया है, तिसका जो सार है, तिसाविषे दुर्बुद्धिकों त्यागकरि चित्तकों लगाव, जैसे हंस जलकों त्यागिकरि दूधकों पान करता है, तैसे सब उपदेश आदितें लेकरि अंतपर्यंत वारंवार विचारकरि सारकों अंगीकार कर, इस प्रकार संसारसमुद्रतें पार उतरिकरि परम पदकों प्राप्त होवैगा, अन्यथा न होवैगा ॥ हे रामजी! जो इन वचनोंकों अंगीकार करैगा, तब संसारसमुद्रकों तर जावैगा, अरु जो अंगीकार न करैगा, तब नीचगतिकों प्राप्त होवैगा, जैसे विंध्याचल पर्वतकी खातविषे हस्ती गिर्या कष्ट पावता है, तैसे संसारविषे कष्ट पावैगा ॥ हे रामजी! इह जो मेरे वचन हैं, इनकों ग्रहण न करैगा, तब अधकों गिरैगा, जैसे पंथी हातविषे दीपक त्यागिकरि रात्रिकेविषे टोहेपर गिरता है तैसे गिरैगा, अरु जो असंग होकरि व्यवहारविषे विचरैगा, तब आत्मसिद्धताकों प्राप्त होवैगा, इह जो मैं तुझकों तत्त्वज्ञान अरु मनोनाश अरु वासनाक्षय कहे हैं, इह अभ्यासकरि सिद्धताकों प्राप्त होवैगा, इह शास्त्रका सिद्धांत है ॥ हे सभा! हे महाराजो राम लक्ष्मण भूपति! जो कछु मैंनें तुमकों कहा है, तिसकों तुम विचारौ, अरु और जो कछु कहणां है, सो प्रातःकालकों कहौंगा ॥ ॥ वाल्मीक उवाच ॥ हे साधो! इस प्रकार जब मुनीश्वरनें कह्या, तब सब सभा उठ खडी हुई, अरु वसिष्ठके वचनोंकों पाइकरि सब खिल आये, जैसे सूर्यकों पाइकरि कमल खिलि आता है, तैसे सब खिलि आये, अरु वसिष्ठ विश्वामित्र दोनों एकठे उठे, वसिष्ठजी विश्वामित्रकों अपणे आश्रमकों ले गये, अरु आकाशचारी जो देवता थे, अरु सिद्ध थे, सो वसिष्ठजीकों नमस्कार करिके अपणे अपणे स्थानोंकों गये, राजा दशरथ अर्घ

पाद्यकरि वसिष्ठजीकों पूजत भया, पूजाकरि अपणे अंतःपुरविषे गया, और श्रोता भी आज्ञा लेकरि वसिष्ठजीकों पूजत भये, पूजाकरि अपणे अंतःपुरविषे गया, और श्रोता भी आज्ञा लेकरि अपणे अपणे स्थानोंकों गये, राजकुमार अपणे मंडलकों गये, मुनीश्वर वनकों गये, रामलक्ष्मण शत्रुघ्न वसिष्ठजीके आश्रमकों गये, पूजा करिके बहुरि अपणे ग्रहमें आये, तब श्रोता अपणे अपणे स्थानकों जाइकरि स्नानसंध्यादिक कर्म करते भये, बहुरि पितृदेवताकों पूजते भये, बहुरि ब्राह्मणतें लेकरि भृत्यपर्यंत सबकों भोजन कराइकरि अपने मित्र भाइ साथ भोजन किया, बहुरि यथाशक्ति अपणे वर्णाश्रमके धर्मकों साधते भये, तब सूर्य भगवान् अस्त हुए, दिनकी क्रिया निवर्त्त हो गई, रात्र आनि प्राप्त भई, निशाचर आय विचरणे लगे, तब भूचर अरु राजर्षि ब्रह्मर्षि राजपुत्र जेते कछु श्रोते थे, सो रात्रकों एकांत बैठिकरि अपनी शय्या बिछाइकरि विचारते भये, राजकुमार राजा अपणे स्थानोंपर बैठे, ब्राह्मण तपस्वी सो कुशादिक बिछाइकरि विचारते भये, जो संसारके तरणेका उपाय क्या कहे हैं, वसिष्ठजीनें वचन कहे हैं, तिनविषे भले प्रकार चित्तकों एकाग्र करते भये, एक प्रहर भले प्रकार विचारकरि निद्राकों प्राप्त भये, जैसे सूर्य उदय हुए पद्मिनीयां मूंदियां जातियां हैं, तैसे सुषुप्तिकों प्राप्त भये, अरु राम लक्ष्मण शत्रुघ्न तीन प्रहर वसिष्ठजीके उपदेशकों विचारते रहे, अर्ध प्रहर सोए, बहुरी उठे, इस प्रकार सब विचारपूर्वक रात्रकों चिंतायुक्त भये, प्रातःकाल होणेपर आया, सूर्यके प्रकाशकरि चंद्रमाकी कांति जाती रही, चंद्रमुखी कमल मूंदे गये ॥ ॥ इति श्रीयोगवासिष्ठे निर्वाणप्रकरणे दिवसरात्रिव्यापारवर्णनं नाम प्रथमः सर्गः ॥ १ ॥ ॥ ॥ ॥ वाल्मीक उवाच ॥ हे साधो! इस प्रकार रात्र व्यतीत भई, तमका पटल निवर्त्त हुआ, तब राम लक्ष्मण शत्रुघ्न उठिकरि स्नान करते भये, संध्यादिक कर्म किये, बहुरि वसिष्ठजीके आश्रमकों गये, तहां जाइ स्थित भये, बहुरि वसिष्ठजी संध्यादिक करिके अग्निहोत्र करणे लगे, जब करि चूके तब रामादिक वसिष्ठजीकों अर्घपा

द्यकरि पूजत भये, चरणोंपर भले प्रकार मस्तक राखा, जब रामजी गये थे, तब वसिष्ठजीके द्वारेपर मौन था, एक घडीविषे केई अनेक सहस्र जीव आनि प्राप्त भये, राजकुमार ब्राह्मण मुनीश्वर हस्ती घोडा रथ बहुत सैना आय प्राप्त भई, तब वसिष्ठजी रामादिककों साथ लेकरि राजा दशरथके ग्रहविषे आये, तब राजा दशरथ ताकूं सहाय लेणेकूं आगे आया, अरु वसिष्ठजीका आदरसाथ पूजन करत भया, और लोकोंनें भी बहुत पूजन किया, इस प्रकार सभाविषे आय प्राप्त हुए, तब नभचर अरु भूचर जेते कछु श्रोता थे, सो सब आय प्राप्त हुए, सभाविषे आइकरि नमस्कार करिके बैठ गये, जेते कछु सभाके लोक थे सो निस्पंद एकाग्र होइकरि स्थित भये, जैसे निस्पंद वायुकरि कमलोंकी पंक्ति अचल होती है, तैसे स्थित भये, भाट जन जो स्तुति करणेवाले थे, सो एक ओर स्थित भये, तब सूर्यकी किरणां झरोंखेके मार्ग आय प्राप्त भइयां, मानों किरणां भी वसिष्ठजीके वचन श्रवण करणे आइयां हैं, तब वसिष्ठजीकी ओर रामजी देखते भये, जैसे स्वामिकार्तिक शंकरकी ओर देखै, जैसे कच बृहस्पतीकी ओर देखै, जैसे प्रल्हाद शुक्रकी ओर देखै, तैसे वसिष्ठकी ओर रामजी देखते भये, जैसे भ्रमरा भ्रमता भ्रमता आकाशमार्गतें कमलपर आय बैठता है, तैसे रामजीकी दृष्टि औरोंकों देखते देखते वसिष्ठजीपर आय स्थित भई, अरु वसिष्ठजी रामजीकी ओर देखत भये, देखीकरि बोलत भये ॥ वसिष्ठ उवाच ॥ ॥ हे रघुनंदन! मैं जो तुमकों उपदेश किया है, सो तुम कछु स्मरण किया, जो इह वचन कहे हैं, कैसे कहे हैं, जो परमार्थबोधका कारण आनंदरूप महागंभीर कहे हैं, अब और भी बोधका कारण अरु अज्ञानरूप शत्रुके नाश करता इंदुप्रमाण वचन हैं, तिनकों सुन, आत्मसिद्धांत निरंतर शास्त्र तुझकों कहता हौं ॥ हे रामजी! वैराग्य, अरु अभ्यास, अरु तत्त्वका विचार, इन करिके संसारसमुद्रकों तरता है; सम्यक् तत्त्वके बोधकरि दुर्बोध निवर्त्त हो जाता है, तब वासनाका आवेश नष्ट हो जाता है, अरु

निर्दुःख पदकों प्राप्त हो जाता है, कैसा पद है, देश काल वस्तुके परिच्छेदतें रहित है, सोइ ब्रह्म जगत
रूप होइकरि स्थित भया है, अरु भ्रम करिके द्वैतकी नांई भासता है, जो सब भाव करिके अविच्छिन्न है,
सर्वत्र ब्रह्म है, इस प्रकार मत्स्वरूप जाणिकरि शांतिवान् होहु ॥ हे रामजी ! केवल ब्रह्मतत्त्व अपणे आप
विषे स्थित है, न कछु चित्त है, न अविद्या है, न मन है, न जीव है, इह सब कलना ब्रह्मविषे भ्रम करिके प
डि फुरती है, जो स्पंद फुरणा दृश्य है, अरु चित्त है, सो कलनारूप संभ्रम है, ब्रह्मतें इतर पदार्थ कोउ नहीं ॥
हे रामजी ! स्वर्ग पाताल भूमिविषे सदाशिवतें आदि अरु तृणपर्यंत जो कछु दृश्य है, सो सब परब्रह्म है,
चिद्रूपतें अन्य कछु नहीं, उदासीन अरु मित्र बांधव आदितें लेकरि सब ब्रह्म है, जबलग अज्ञान कलना
करि जगतविषे स्थित बुद्धि है, अरु ब्रह्मभाव नानात्व है, तबलग चित्तादि कलना होती है, अरु जबलग
देहविषे अहंभाव है, अरु अनात्म दृश्यविषे ममत्व है, तबलग चित्तादिक भ्रम होता है, जबलग संतजन
अरु सत्शास्त्रोंकरि उंचे पदकों नहीं प्राप्त भया, अरु मूर्खता क्षीण नहीं भई, तबलग चित्तादिक भ्रम होता
है ॥ हे रामजी ! जबलग देहाभिमान शिथिलताकों नहीं प्राप्त भया, अरु संसारकी भावना नहीं मिटी,
अरु सम्यक् ज्ञानकरिके स्थिति नहीं पाई, जबलग चित्तादिक प्रकट हैं, जबलग अज्ञान करिके अंध है, ज
बलग विषयोंकी आशाके आवेशकरि मूर्छित है, जबलग मोहमूर्छातें उठ्या नहीं, तबलग चित्तादिक कल
ना होती है ॥ हे रामजी ! जबलग आशारूपी विषकी गंध हृदयरूपी वनविषे होती है, तबलग विचाररूपी
चकोर तहां नहीं प्राप्त होता, भोग वासना नहीं मिटती है, जब भोगोंकी आशा मिट जावै, अरु सत्य
शीतलता संतुष्टता हृदयविषे आय प्राप्त होवै, तब चित्तरूपी भ्रम निवर्त्त हो जाता है, जब मोह अरु तृ
ष्णा निवर्त्त करीये, अरु नित्य संवित होवै, तब चित्त शांत भूमिकाकों प्राप्त होता है ॥ हे रामजी ! जिस पु
रुषकी स्थिति स्वरूपविषे भई है, सो आपकों देहतें दूर देखता है, तिस सम्यक् दर्शीके चित्तकी भूमिका क

ही है, जब अनंत चैतन्य तत्त्वकी भावना होती है, अरु दृश्यकों त्यागिकरि आत्मरूपविषे प्राप्त होता है, तब उह पुरुष सब जगतकों अपणां अंगही देखता है, अर्थ यह जो सब अपणा स्वरूप देखता है, ऐसे जो आत्मरूप देखता है, तिसकों जीवत्वादिक भ्रम कहा है, जब अज्ञान भ्रम निवर्त्त होता है, तब परम अद्वैत पद उदय होता है, जैसे रात्रिके क्षीण हुए सूर्य उदय होता है, तैसे मोहके निवर्त्त हुए आत्मतत्त्वका साक्षात्कार होता है, जब स्वरूपका साक्षात्कार होता है, तब चित्त नष्ट हो जाता है, जैसे सूका पत्र अग्निविषे दग्ध हो जाता है, तैसे ज्ञानवानका चित्त नष्ट हो जाता है ॥ हे रामजी ! जीवन्मुक्त जो महात्मा पुरुष है, अरु परावरदर्शी है, सर्वत्र ब्रह्म जिसकों दृष्ट आया है, तिसका चित्त सत्य पदकों प्राप्त होता है, सो चित्त सत्य कहाता है, अरु तिसविषे वासना भी दृष्ट नहीं आती है, सो चेतन मन है, उह चित्त सत्य पदकों प्राप्त भया है, इह जगत ज्ञानवानकों लीलामात्र भासता है, अरु अंतरतें शांतरूप है, नित्य तृप्त है, सर्वदा उसकों आत्मज्योति भासती है, विवेक करिके उसके चित्तसों जगत्की सत्ता निवर्त्त हो गई है, अरु स्वरूपविषे स्थिति पाई है, सो चित्तसत्ता कहिती है, बहुरि उह कर्म चेष्टा करता भी दृष्ट आता है, अरु मोहकों नहीं प्राप्त होता, जैसे भून्या बीज उगता नहीं, तैसे ज्ञानीकों चेष्टा जन्मका कारण नहीं, अरु जो अज्ञानी है, तिसकी वासना मोहसंयुक्त है, जैसे कच्चा बीज उगता है, तैसे अज्ञानी वासना करिके बहुरि बहुरि जन्म लेता है, अरु जिस चित्तसों आसक्ति निवर्त्त भई है, सो तिसकी वासना जन्मका कारण नहीं, उह चित्तसत्ता कहिती है ॥ हे रामजी ! जिन पुरुषोंनें पावणेयोग पद पाया है, अरु ज्ञानाग्नि करिके चित्तकों दग्ध किया है, सो बहुरि जन्म नहीं लेता, जेता कछु जगत है, सो तिसकों सब ब्रह्मरूप है, जैसे वृक्ष अरु तरु नाममात्र हैं, वस्तुतें एकही है, तैसे ब्रह्म अरु जगत नाममात्र दोनों हैं, वस्तुतें एकही है, जैसे जलविषे तरंग अरु बुदबुदे जलरूप हैं, तैसे ब्रह्मविषे जगत ब्रह्मरूप है, चेतन आत्मारूपी मिरच है, अरु जगतरूपी तीक्ष्णता

है ॥ हे रामजी ! ऐसा ब्रह्म तूं है, अरु जो तूं कहै मैं चित्त नहीं, तौ कछु मान्या जाता है, क्यौं जो तूं कहै, मैं जड हौं, तौ तूं आकाशवत् हुआ, तेरेविषे कलनाका उल्लेख कैसे होवै, अरु जो चेतन है तौ शोक किसका करता है, अरु जो चिन्मय है तौ निरायास आदि अंततें रहित हुआ, सब तूंही है, अपणे स्वरूपकौं स्मरण करौ, तब शांतिकौं प्राप्त होवैगा, जो सब भावविषे स्थित है, अरु सबकौं उदय करणेहारा है, सो तूंही है, शांतरूप है, तूं चैतन्य ब्रह्मरूप है ॥ हे रामजी ! ऐसी जो चेतनरूपी शिला है, तिसके उदरविषे वासनारूपी फुरणा कहां होवै, उह तौ महाघनरूप है ॥ हे रामजी ! जो तूं है, सो सोइ है, उस अरु तेरेविषे भेद कछु नहीं, सोइ सत अरु असतरूप होइकरि भासता है, सब पदार्थ जिसके अंतर हैं, अरु नानात्व जिसविषे कछु नहीं, अहं त्वं अज्ञ तज्ञ जिसविषे कलना कछु नहीं, ऐसा जो सत्यरूप चिद्घन आत्मा है, तिसकौं नमस्कार है ॥ हे रामजी ! तेरी जय होवै, कैसा है तूं आदि अरु अंततें रहित विशाल है, अरु शिलाके अंतर्वत चिद्घन स्वरूप है, आकाशवत निर्मल है, जैसे समुद्रविषे तरंग हैं, तैसे तेरेविषे जगत है, सो लीलामात्र है, तूं अपणे घनस्वरूपविषे स्थित होहु ॥ ॥ इति श्रीयोगवासिष्ठे निर्वाणप्रकरणे विश्रामदृढीकरणं नाम द्वितीयः सर्गः ॥ २ ॥ ॥ ॥ वसिष्ठ उवाच ॥ हे निःपाप रामजी ! जिस चेतनरूपी समुद्रविषे जगतरूपी तरंग फुरते हैं, अरु लीन हो जाते हैं, ऐसा अनंत आत्मा है, सो तूं भवकी भावनातें मुक्त है, अरु भाव अभावतें रहित है, ऐसा जो चिदात्मा तेरा स्वरूप है, सो सर्व जगत उहीरूप है,तब वासनादिक आवरण कहां है, जीव अरु वासना सब आत्माका किंचन है, दूसरी वस्तु कछु नहीं, तब अवर कथा प्रसंग कैसे होवै ॥ हे रामजी ! महासरल गंभीर प्रकाशरूप जो चैतन्यसमुद्र है, सो तेरा रूप है, अरु रामरूपी एक तरंग फुरि आया है, सो समुद्र तूं है, ऐसा जो आत्मतत्त्व है, सोइ जगतरूप होकरि व्यापारी भासता है, जैसे अग्नितें उष्णता भिन्न नहीं अरु जैसे फूलतें सुगंधि भिन्न नहीं, जैसे कज्जलतें कृष्णता भिन्न नहीं,

अरु बरफतें शुक्लता भिन्न नहीं, जैसे गुडतें मधुरता भिन्न नहीं, जैसे सूर्यतें प्रकाश भिन्न नहीं तैसे ब्रह्मतें अनुभव भिन्न नहीं, नित्यरूप है, अनुभवतें अहं भिन्न नहीं, अहंतें जीव भिन्न नहीं, जीवतें मन भिन्न नहीं, मनतें इंद्रिय भिन्न नहीं, इंद्रियांतें देह भिन्न नहीं, देहतें जगत भिन्न नहीं, इस प्रकार महाचक्र प्रवृत्तकी नांईं हुआ है, सो कछु प्रवृत्त नहीं, न शीघ्र प्रवृत्या है, न चिरकालका प्रवृत्या है, न कोउ ऊन है, न अधिक है, सर्वदा एक अखंड सत्ता परमात्मतत्त्व है, जैसे आकाशविषे आकाश स्थित है, तैसे ब्रह्मसत्ता अपणे आपविषे स्थित है, उही सत्ता वज्रभूत होकरि स्थित है, उही पूर्ण होकरि स्थित है, इतर द्वैतकल्पना कछु नहीं, ऐसे अपणे स्वरूपविषे जो पुरुष स्थित है, सो जीवन्मुक्त है, ऐसा जो ज्ञानवान है, सो मन इंद्रियां शरीरकी चेष्टा भी कर्त्ता है, अरु उसकों कर्तव्यका लेप कछु नहीं लगता ॥ हे रामजी ! ज्ञानवानकों न कछु त्यागणे योग्य रहता है, न ग्रहण करणे योग्य रहता है, सर्व पदार्थतें निर्लेप रहता है, जबलग इसकों ग्रहण त्यागकी बुद्धि होती है, तबलग संसारके सुखदुःखका भागी होता है, इस हेयोपादेयका जिसकों अभाव है, सो सुखदुःखका भागी नहीं होता ॥ हे रामजी! जेता कछु जगत है, सो एक अद्वैत आत्मतत्त्व है, अन्यत कछु नहीं, जैसे घट मठकी उपाधिकरि आकाश नाना प्रकार भासता है, जैसे समुद्र तरंगकरि अनेकरूप भासता है, अरु नानात्वभावकों प्राप्त नहीं होता; तैसे आत्माविषे नानाप्रकारका जगत भासता है, अरु नानात्वकों नहीं प्राप्त होता; ऐसे स्वरूपकों जाणिकरि तिसविषे स्थित होहु ॥ हे रामजी ! अंतर प्रकाशकी नांईं निर्मल स्थित होहु, अरु बाह्यतें अपणे वर्णाश्रमका व्यवहार करौ, काष्ठ पत्थरकी नांईं अंतर हर्षशोकतें रहित स्थित होहु, संवितमात्र आत्माकों जो अपणा रूप देखता है, सोइ सम्यक्दर्शी है, तिसका अज्ञान अरु मोह नष्ट हो जाता है, जैसे नदीका वेग मूलसहित तटके वृक्षकों काटता है, तैसे आत्मज्ञान मोहसहित अज्ञानकों काटता है, मित्रता वैर हर्ष शोक राग दो

. नि.
॥ ४ ॥

सब नष्ट हो जाते हैं, अरु जो पुरुषअध्यात्मशास्त्रके अर्थकों नहीं धारते, अरु प्रीति नहीं करते सो पापी कीटादिक नीचयोनिकों प्राप्त होवेंगे ॥ हे कमलनयन! तेरेविषे जो कछु मूर्खता चंचलता थी सो नष्ट हो गई है, जैसे पवनके ठहरेतें जल अचल होता है, तैसे तूं स्थिरताकों प्राप्त भया है, भावअभावरहित परम आकाशवत् निर्मल पदकों प्राप्त भया है ॥ हे रामजी! ऐसे मैं मानता हों, जो मेरे वचनोंकरि तूं बोधकों प्राप्त हुआ है, अरु विस्तृत अज्ञानरूपी निद्रातें जाग्या है, सामान्य जीव भी हमारी वाणीकरि जागि आते हैं, तूं तौ अति उदार बुद्धि है, तेरे जागणेविषे क्या आश्चर्य है ॥ हे रामजी! जब गुरु भी दृढ होता है, अरु शिष्य भी शुद्ध पात्र होता है, तब गुरुके वचन उसके अंतर प्रवेश करते हैं, सो मैं गुरु भी समर्थ हों, जो मुझकों अपणा स्वरूप सदा प्रत्यक्ष है, अरु सतशास्त्रके अनुसार मैं वचन कहे हैं, अरु तेरा हृदय भी शुद्ध है, तिसविषे प्रवेशकरि गये हैं, जैसे तृप्त पृथ्वीके क्षेत्रविषे जल प्रवेशकरि जाता है, तैसे तेरेविषे वचनोंनें प्रवेश किया है ॥ हे राघव! हम महानुभाव रघुवंश कुलके बडे गुरुके गुरु हैं,हमारे वचन तुमकों धारणे आते हैं, अरु खेदतें रहित होकरि अपणे प्रकृत आचारकों करौ ॥ ॥ वाल्मीक उवाच ॥ इस प्रकार मुनीश्वरनें जब कह्या तब सूर्य अस्त होणे लगा, सर्व सभा परस्पर नमस्कार करिके अपणे स्थानकों गई, रात्रिके व्यतीत हुवे सूर्यकी किरणांसाथ बहुरि आये बैठे ॥ ॥ इति श्रीयोगवासिष्ठे निर्वाणप्रकरणे चित्तभावाभाववर्णनं नाम चतुर्थः सर्गः ॥ ४ ॥ ॥ ॥ ॥ राम उवाच ॥ हे मुनीश्वर! मैं परम स्वस्थताकों प्राप्त भया हौं, अब अपणे आपविषे स्थित हौं, अरु तुमारे वचनोंकी भावनाकरि जगतजाल स्थित हुवे भी मुझकों शांत हो गई है, अरु आत्मानंदकरि तृप्त भया हौं, जैसे बडी वर्षाकरि पृथ्वी तृप्त होती है, तैसे मैं तृप्त सम शीतल भया हौं, अरु प्रसन्नताकों पायकरि स्थित हौं, अरु सर्व उरतें केवल आत्मरूप मुझकों भासता है, नानात्वका अभाव भया है, जैसे कुहिडतें रहित दिशा अरु आकाश निर्मल भासता है, ते

से सम्यक्ज्ञानकरि मुझकों शुद्ध आत्मा भासता है, अरु मोह निवृत्त हो गया है, मोहरूपी जंगलविषे तृ
ष्णारूपी मृग था, अरु रागद्वेष आदिक धूर कुहिड थी, सो सब निवृत्त हो गये हैं, ज्ञानरूपी वर्षाकरि स
ब शांत हो गये हैं, अब मैं आत्मानंदकों प्राप्त भया हौं, जो आदिअंततें रहित है, अरु अमृत है, अमृत
का स्वाद भी तिसके आगे तुच्छ भासता है, ऐसे आनंद अपणे स्वभावकों प्राप्त भया हौं, मैं राम हौं,
अर्थ यह जो सबविषे रमणेहारा हौं, मेरा मुझकों नमस्कार है, अब मैं सर्व संदेहतें रहित हौं, सब संशय
अरु विकार मेरे नष्ट भये हैं, जैसे प्रातःकालकरि निशाचर वैताल आदिक निवृत्त हो जाते हैं, तैसे मेरे रागद्वे
षादिक विकारका अभाव भया है, निर्मल विस्तीर्ण हिमकी नांई हृदयकमलविषे स्थित हौं, जैसे भंवरा फि
रता फिरता कमलविषे आय स्थित होता है, तैसे मैं आत्मरूपी सारविषे स्थित हौं, अविद्यारूपी कलंक
आत्माकों कहां था, मैं तौ निश्चयकरि निर्मलताकों प्राप्त भया हौं, जैसे सूर्यके उदय हुए तमका अभाव हो
जाता है, तैसे मेरे संशय अरु अविद्या नाश भई है, सर्व आत्मा भासता है, अरु कलना कोउ नहीं, भावि
त आकार अपणे स्वरूपकों प्राप्त भया हौं, पूर्व प्रकृतिकों देखिके हसता हौं, जो क्या जानता था, अरु
क्या करता था, मैं तौ नित्य शुद्ध ज्योंका त्यौं आदिअंततें रहित हौं ॥ हे मुनीश्वर ! तेरे वचनरूपी अमृत
के समुद्रविषे मैं स्नान किया है, तिसकरि अजर अमर आनंद पदकों प्राप्त भया हौं, अरु सूर्यतें भी उंचे पद
कों प्राप्त भया हौं, अरु वीतशोक होकरि परमशुद्धता समता शीतलता अनुभव अद्वैतकों प्राप्त भया हौं ॥
॥ इति श्रीयोगवासिष्ठे निर्वाणप्रकरणे राघवविश्रांतिवर्णनं नाम पंचमः सर्गः ॥ ५ ॥ ॥ ॥ ॥

॥ वसिष्ठ उवाच ॥ हे महाबाहो ! बहुरि भी मेरे परम वचन सुण, तेरे हितकी कामना करिके मैं कहता
हौं, अब आत्मपदकों तूं प्राप्त भया है, परंतु बोधकी वृद्धिके निमित्त बहुरि सुण, जिसके श्रवण करि अल्पबु
द्धि भी आनंद पदकों प्राप्त होवै ॥ हे रामजी ! जिसकों अनात्मविषे आत्मअभिमान है, अरु आत्मज्ञान

कछु नहीं, अरु समवाय संबंध भी नहीं, बहुरि इससाथ मिलिकरि वृथा दुःखकों ग्रहण करना, इसतें अवर मूर्खता क्या है, यही मूर्खता है, जब कछु बी इसका समान लक्षण होवै; तब संबंध भी होवै, जिनका समा न लक्षण कछु न होवै, तिनका संबंध कैसे होवै, आत्मा चेतन है, देह जड है, आत्मा सतरूप है, देह असतरूप है, आत्मा प्रकाशरूप है, देह तमरूप है, आत्मा निराकार है, देह साकार है, आत्मा सूक्ष्म है, देह स्थूल है, बहुरि आत्मा अरु देहका संबंध कैसे होवै, जब संयोग नहीं, तब दुःख किसका होवै, जैसे सूक्ष्म अरु स्थूलका संयोग नहीं होता, जैसे दिन अरु रात्रका संयोग नहीं होता, जैसे ज्ञान अरु अज्ञानका संयोग नहीं होता, जैसे धूप अरु छायाका मिलाप नहीं होता, जैसे सत अरु असतका संयोग नहीं होता, तैसे आत्मा अरु देहका संयोग नहीं होता, अज्ञान करिके तत्त्वरूप मिले हुए भासते हैं,परंतु संबंध कछु नहीं, जैसे वायु अरु आकाशका संयोग नहीं होता, तैसे इनका संयोग नहीं होता, देहके सुखदुःखकरि आत्माकों सुखी दुःखी जानना मिथ्या भ्रम है, जरा मरण सुखदुःख भाव अभाव आत्माविषे रंचकमात्र भी नहीं, जब देहविषे अभिमान होता है, तब उंच नीच जन्मकों पावता है, वास्तवतें कछु नहीं, केवल ब्रह्मसत्ता अपणे आपविषे स्थित है, तिसविषे विकार कोउ नहीं, जैसे सूर्यका प्रतिबिंब जलविषे होता है, अरु जलके हलणेकरि प्रतिबिंब चलता भासता है, तैसे देहके सुखदुःखकरि आत्मविषे सुख दुःख विकार मूर्ख देखते हैं, आत्मा सदा निर्लेप है, अरु जब सम्यक् यथाभूत आत्मज्ञान होवै, तब देहविषे स्थित भी भ्रमकों न प्राप्त होवै ॥ हे रामजी ! जब यथाभूत ज्ञान होता है, तब सत्कों सत् जाणता है, अरु असत्कों असत् जाणता है, जैसे दीपक हाथविषे होता है, तब सत् असत् पदार्थ भासते हैं, तैसे ज्ञानकरि सत् असत् यथार्थ जाणता है, अरु अज्ञानकरि मोहविषे भ्रमता है, जैसे वायुकरि पत्र भ्रमता है, तैसे मोहरूपी वायुकरि अज्ञानी जीव भ्रमता है, स्वस्थ कदाचित् नहीं होता, जैसे यंत्रीकी पूतली तागे करिके चेष्टा करती है, तैसे अज्ञानी जीव प्राणोंरूपी तागेकरि चे

ष्टा करते हैं, जैसे नटुआ अनेक स्वांगकों धारता है, तैसे कर्मकरि जीव अनेक शरीरकों धारता है, जैसे पेषणकी पुतली तृण काष्ठ फूलादिककों लेती त्यागती है, अरु नृत्य करती है, तैसे यह प्राणी चेष्टा करते हैं, शब्द स्पर्श रूप रस गंधका ग्रहण करते हैं, जैसे पुतलियां जड हैं, तैसे यह जड है, अरु जब कहिये इनविषे प्राण है, तब जैसे लुहारकी खाल होती है. उह श्वासकों लेती त्यागती है, तैसे यह जीव भी चेष्टा करते हैं ॥ हे रामजी! अपणा वास्तव स्वरूप है, सो ब्रह्म है, तिसके प्रमाद करिके मोह कृपणताकों प्राप्त होते हैं, जैसे लुहारकी खाल वृथा श्वासकों लेती है, तैसे इनकी चेष्टा व्यर्थ है, इनकी चेष्टा अरु बोलणां अनर्थके निमित्त हैं, जैसे धनुष्यतें जो बाण निकसता है, सो हिंसाके निमित्त है, और कछु कार्य सिद्ध नहीं होता, तैसे अज्ञानीकी चेष्टा अरु बोलणां अनर्थ दुःखके निमित्त है, सुखके निमित्त नहीं, तिसकी संगति भी कल्याणके निमित्त नहीं, जैसे जंगलका ठुंठा वृक्ष होता है, तिसके छाया अरु फलकी इच्छा करणी व्यर्थ है, तिसतें कछु फल नहीं प्राप्त होता, अरु विश्रामके निमित्त छाया भी नहीं प्राप्त होती, तैसे अज्ञानी जीवकी संगतीतें सुख नहीं प्राप्त होता, तिनकों देणा भी व्यर्थ है, जैसे चीकडविषे घृत पाया व्यर्थ होता है, तैसे मूर्खकों दान दिया व्यर्थ होता है, अरु तिनकेसाथ बोलणा भी व्यर्थ है, जैसे यज्ञविषे श्वानकों बुलावणां निष्फल है, तैसे उनकेसाथ बोलणां निष्फल है ॥ हे रामजी! जो अज्ञानी जीव हैं, सो संसारविषे आते जाते जन्मते मरते हैं, शरीरविषे आस्था करते हैं, अरु पुत्र दारा बांधव धनादिकविषे ममत्त्वबुद्धि करते हैं, इस मिथ्या दृष्टि करिके दुःख पावते हैं, मुक्ति कदाचित् नहीं होती, काहेतें जो अनात्माविषे आत्मबुद्धिकों त्याग नहीं करते, अरु ममता बुद्धिविषे दृढ रहते हैं, इसीतें मुक्ति नहीं होती ॥ हे रामजी! जो अज्ञानी है, सो असत् पदार्थकों देखते हैं, अरु वस्तुरूपकी औरतें अंध हैं, इसकरि परमार्थ धनतें विमुख रहते हैं, नरकका सार जो स्त्रियादिक हैं, तिसविषे प्रीति करते हैं, अरु तिनकों देखिकरि प्रसन्न होते हैं, जो नरकका साधन हैं, जैसे मेघकों

देखिकरि मोर प्रसन्न होता है, तैसे स्त्रियादिककों देखिकरि मूर्ख प्रसन्न होता है ॥ हे रामजी ! मूर्खके मार णेनिमित्त स्त्रीरूपी विषकी वल्ली है, अरु नेत्ररूप तिसके फूल हैं, होठरूपी पत्र हैं, स्तनरूपी तिनके गुच्छे हैं, अरु अज्ञानीरूपी भंवरे तहां विराजमान होते हैं, अरु नाशकों पावते हैं, अरु मतिरूपी तलाव है, अरु ह र्षरूपी तिसविषे कमल हैं, चित्तरूपी भंवरा तहां सदा रहता है, अरु अज्ञानरूपी नदी है, दुःखरूपी तिस विषे लहरी है, अरु तृष्णारूपी बुद्बुदे हैं, ऐसी जो नदी है, सो मरणरूपी वडवाग्निविषे जाय पडैगी ॥ हे रामजी ! जब जन्म लेता है, तब महागर्भ अग्नितें जलता हुआ निकसता है, सो महामूर्ख अवस्था निरस कर दुःखी होता है, अरु जब यौवन अवस्थाकों प्राप्त होता है, तब विषयकों सेवता है, सो भी दुःखका का रण होते हैं, बहुरि वृद्ध अवस्थाकों प्राप्त होता है, तब शरीर अशक्त होता है, अरु अंतरतें तृष्णा पडी ज लावती है, इस प्रकार जन्ममरण अवस्थाविषे पडे भटकते हैं ॥ हे रामजी ! संसाररूपी कूप है, तिसविषे मोहरूपी घटमाला है, अरु तृष्णा वासनारूपी रसडीसाथ बांधे हुये जीवरूपी टीड भ्रमते हैं, अरु ज्ञान वानकों संसार कोउ दुःख नहीं देता, गोपदकी नांई तुच्छ हो जाता है, अरु अज्ञानीकों समुद्रवत् तरणा कठिन होता है, अपणे अंतरही भ्रमकों देखता है, निकसि नहीं सकता, थोडा भी उसकों बहुत हो जाता है, जैसे पक्षीकों पिंजरेविषे बडा मार्ग होता है, अरु जैसे कोल्हूके बेलकों घरहीविषे बडा मार्ग होता है, तै से अज्ञानीकों तुच्छ संसार बडा हो भासता है ॥ हे रामजी ! जिस जगतकों रमणीय जाणीकरि पदार्थकी इच्छा करता है, सो सब पंचभौतिक पदार्थ हैं, मोह करिके तिनकों सुंदर जानता है, अरु तिनविषे प्रीति करता है, स्थिर जाणता है, सो अनर्थके निमित्त होते हैं ॥ हे रामजी ! अज्ञानरूपी चंद्रमा उदय हुआ है, तिसकरि भोगरूपी वृक्ष पुष्ट होते हैं, जन्मकी परंपरा रसकों पावते, अरु कर्मरूपी जलकरि सिंचते हैं, पु ण्य अरु पापरूपी मंजरी होती है, अरु अज्ञानरूपी चंद्रमा है, अरु वासनारूपी अमृत है, आशारूपी च

कोर तिसकों देखिकरि प्रसन्न होता है, अरु आशारूपी कमलिनी है, अज्ञानीरूपी भंवरा तिसपर बैठिकरि प्रसन्न होता है, तातें सब जगत अज्ञान करिके रमणीय भासता है ॥ हे रामजी ! इह जगत अज्ञान करिके स्थित है, तिस अज्ञानका प्रवाह सुण, अज्ञानरूपी चंद्रमा पूर्ण होकरि स्थित होता है, तब कामनारूपी क्षीरसमुद्र उछलता है, अरु अनेक तरंगकों पसारता है, तिसके रसकरि तृष्णारूपी मंजरी पुष्ट होती है, अरु काम क्रोध लोभ मोहरूपी चकोर तिसकों देखि प्रसन्न होते हैं, अरु देह अभिमानरूपी रात्रके निवृत्त हुए अरु विवेकरूपी सूर्यके उदय हुए अज्ञानरूपी चंद्रमाका प्रकाश निवृत्त हो जाता है ॥ हे रामजी! अज्ञान करिके इह जीव भ्रमते हैं, अरु चेष्टा इनकी विपर्यय हो गई है, जो तुच्छ नीच दुःखरूप पदार्थ हैं, तिनकों देखिकरि सुखदायक रमणीय जाणते हैं, स्त्रीकों देखि प्रसन्न होते हैं, कवीश्वर कहते हैं, इसके कपोल कमलवत् हैं, अरु नेत्र भंवरेवत् हैं, होठ हसणेवाले हैं, अरु वल्लीकी नांई इसकी भुजा हैं, अरु कंचनके कमलवत स्तन हैं, उदर वक्षस्थल बहुत सुंदर हैं, औ जंघ स्थल केलेके स्तंभवत, इत्यादिक जिसकी स्तुति करते हैं, सो स्त्री रक्तमांसकी पूतली है, कपोल भी रक्तमांस हैं, होठ भी रक्तमांस हैं, भुजा विषके वृक्षके टासवत् हैं, स्तन भी रक्तमांस है, और भी संपूर्ण शरीर रक्तमांस अस्थिकरि पूर्ण एक बुत बणि है, इसकों जो रमणीय जाणते हैं, सो मूर्ख मोहकरि मोहित भये हैं, अपणे नाशके निमित्त इसकी इच्छा करते हैं, जैसे सर्पिणीसाथ कोउ हित करैगा सो नाशकों प्राप्त होवैगा, तैसे इससाथ हित किये नाश होवैगा, जैसे कदलीबनका हस्ती महाबली कामकरि नीच गतिकों पावता है, अरु संकटमें पडते हैं, अंकुशकों सहता है, अपमानकों प्राप्त होता है, सो एक हस्तिनीके हितकरि ऐसी गतिकों प्राप्त होता है, तैसे इह जीव स्त्रीकी इच्छा करिके अनेक दुःखकों प्राप्त होते हैं, जैसे दीपककों रमणीय जाणिकरि तिसविषे पतंग प्रवेश करता, अरु नाशकों प्राप्त होता है, तैसे इह जीव स्त्रीकी इच्छा करता है, तिसके संगकरि नाशकों प्राप्त हो

ता है, अरु लक्ष्मीका आश्रय करिके जो सुखकी इच्छा करता है, सो भी सुखी न होवैगा, जैसे पहाड दूरतें देखणेमात्र सुंदर भासता है, तैसे यह भी देखणेमात्र सुंदर लगती है, और लक्ष्मीका आश्रय करिके सुखकी इच्छा करै सो न होवैगा, अंत दुःखकों प्राप्त होवैगा, जब लक्ष्मी प्राप्त होती है, तब अनर्थ पापकों करणे लगता है, अरु दुःखका पात्र होता है, जब जाती है, तब दुःखकों दे जाती है, तिसकरि जलता रहता है ॥ हे रामजी! जगतविषे जो सुखकी इच्छा करै, सो न होवैगा, प्रथम जन्म लेता है, तब भी दुःखसाथ जन्म लेता है, बहुरि जन्मीकरि मूर्ख नीच बालक अवस्थाकों प्राप्त होता है, तिसविषे विचार कछु नहीं होता, तिसकरि दुःख पावता है, अरु शक्ति कछु नहीं होती, तिसकरि दुःख पाता है, जब यौवन अवस्थारूपी रात्र आवती है, तब तिसविषे काम क्रोध लोभ मोहरूपी निशाचर आय विचरते हैं, अरु तृष्णारूपी पिशाचिनी आय विचरती है, विवेकरूप चंद्रमा उदय नहीं होता, तब अंधकारविषे सब क्रीडा करते हैं ॥ हे रामजी! यौवन अवस्थारूपी वर्षाकाल है, तिसविषे बुद्धि आदिक नदियां मलिन भावकों प्राप्त होती है, अरु कामरूपी मेघ गर्जता है, तृष्णारूपी मोरणी तिसकों देखिकरि प्रसन्न होती है, अरु नृत्य करती है, अरु लोभरूपी दुजाग आवते हैं, अरु शब्द करते हैं, इत्यादिक अनर्थका बीज होता है, बहुरि यौवन अवस्थारूपी चूहेकों जरारूपी बिल्ली भोजनकरि लेती है, अंग महाजर्जरीभूत हो जाते हैं, शरीर आसक्त हो जाता है, तृष्णा बढती जाती है, अंतरतें पडा जलता है, बहुरि मृत्युरूपी सिंह जरारूपी हरिणकों भोजन करि लेता है, इस प्रकार उपजता अरु मरता है, आशारूपी रसडीसाथ बांध्या हुआ घटीयंत्रकी नांई पडा भटकता है, शांतिकों कदाचित् नहीं प्राप्त होता ॥ हे रामजी! ब्रह्मांडरूपी एक वृक्ष है, अरु जीवरूपी तिसकों पत्र लगे हैं, सो कर्मरूपी वायुकरि हलते हैं, अरु अज्ञानरूपी तिसविषे जडता है, अरु चित्तरूपी उंचा वृक्ष है, तिसउपर लोभादिक घुघु आय बैठते हैं, अरु जगतरूपी ताल है, तिसविषे शरीररूपी कमल हैं,

तिनविषे जीवरूपी भंवरे आय बैठते हैं, अरु कालरूपी हस्ती आयकरि तिसकों भोजनकरि जाता है॥ हे राम जी! यत्नरूपी जीर्ण पक्षी है, आशारूपी फांसी साथ बांधे हुए वासनारूपी शिक्षाविषे पडे रहे हैं, रागदोषरूपी अग्निविषे पडे हुए कालरूपी पुरुषके मुखमें प्रवेश करते हैं, अरु जनरूपी पक्षी उडते फिरते हैं, सो कोउ दिन तिसकों जब कालरूपी व्याध जाल पसारैगा, तब फसाय लेवैगा॥ हे रामजी! संसाररूपी ताल है, अरु जीवरूपी तिसविषे मच्छीयां हैं, कालरूपी बगला तिनकों भोजन पडा करता है, अरु कालरूपी कुंभार है, जनरूपी मृत्तिकाके बासन करता है, बहुरि शीघ्रही फुटि जाते हैं, अरु जीवरूपी नदी है, कर्मरूपी तरंगकों पसारती है, सो कालरूपी वडवाग्निमें जाइ पडती है, अरु जगतरूपी हस्ती है, जीवरूपी मोती तिसके मस्तकविषे है, तिस हस्तिकों कालरूपी सिंह भोजनकरि जाता है, सो कालरूपी भक्षक है, जिसनें ब्रह्मादिकों भोजन किया है, अरु करता है, तृप्त नहीं होता, जैसे घृतकी आहुतीकरि अग्नि तृप्त नहीं होता, तैसे काल जीवके भोजनकरि तृप्त कदाचित् नहीं होता॥ हे रामजी! एक निमेषविषे जगत उपजता है, अरु उन्मेषविषे लीन हो जाता है, सबके अभाव हुए जो शेष रहता है, सो रुद्र है, बहुरि निवृत्त हो जाता है, सबके पाछे इक परमतत्त्व ब्रह्मसत्ता रहती है॥ हे रामजी! जेता कछु जगत है, सो अज्ञान करिके भासता है, जन्ममरण बालक यौवन वृद्धादिक विकार अज्ञानकरि भासते हैं, अज्ञानके नष्ट हुए सब नष्ट हो जाते हैं, अरु जबलग आत्मविचार नहीं उपजा, तबलग अज्ञान रहता है, जब आत्मविचार उपजता है, तब अज्ञानरूपी रात्र निवृत्त हो जाती है, केवल ब्रह्मपद भासता है॥ ॥ इति श्रीयोगवासिष्ठे निर्वाणप्रकरणे अज्ञानमाहात्म्यवर्णनं नाम षष्ठः सर्गः॥ ६॥ ॥ ॥ ॥ वसिष्ठ उवाच॥ हे रामजी! इह संसाररूपी जो वन है, सो चेतनरूपी पर्वतके सिंगउपर स्थित है, तिसविषे अविद्यारूपी वल्ली बढी है, अरु विकासकों प्राप्त भई है, अरु सुख दुःख भाव अभाव अज्ञान इसके पत्र फूल फल हैं, जहां अविद्या सुखरूप होकरि

स्थित होती है, तहां उंचे सुखकों भोगावती है, तिसके सत्ताभावकों प्राप्त होती है, अरु सुखरूप होकरि स्थित होती है, तहां दुःखरूप भासती है, सोइ सुखदुःख इसके फल गुंछे हैं, दिनरूपी फूल हैं, अरु रात्ररूपी भंवरे हैं, जन्मरूपी अंकुर हैं, अरु भोगरूपी रसकरि पूर्ण है, जब विचाररूपी घुणा अविद्यारूपी वृक्षकों खाणे लागता है, तब नष्ट हो जाती है, जबलग विचाररूपी घुणा नहीं लगा, तबलग दिन दिन बढती जाती है, अरु दृढ हो जाती है ॥ हे रामजी ! अविद्यारूपी वल्ली है, अरु मूल इसका संवित फुरणा है, तिसकरि पसरी है, तारागण इसके किसी और फूल हैं, चंद्रमा सूर्य इसका प्रकाश है, अरु दुष्कृत कर्मरूपी नरकस्थान कंटक हैं,अरु शुभकर्मरूपी स्वर्ग इसके फूल प्रकाशे हैं, अरु सुखदुःखरूपी फल लगते हैं, जीवरूपी इसके पत्र हैं, अरु कालरूपी वायुकरि हलते हैं, केई जीर्ण होकरि गिर पडते हैं, पृथ्वीरूपी त्वचा है, पर्वत घोडे हैं, मरणरूपी इसविषे छिद्र हैं, जन्मरूपी अंकुर हैं, मोहरूपी कलियां हैं, महासुंदर गौर अंग हैं, तिसकरि जीव मोहित होते हैं, जैसे स्त्रीकों देखिकरि मोहित होते हैं, अरु सप्त समुद्रके जलकरि सिंचिती हैं, तिसकरि पुष्ट होती है, तिस वल्लीविषे एक विषकी भरी सर्पिणी रहती है,जो कोउ उसके निकट जाता है, तिसकों काटती है, तब उह मूर्छाकरि गिर पडता है, संसाररूपी मूर्छाकों देणेहारी तृष्णारूपी सर्पिणी है, सो वल्ली अन्यथा नष्ट नहीं होती, जब विचाररूपी घुणा इसकों लगै, तब नष्ट हो जाती है ॥ हे रामजी ! जेता कछु प्रपंच तुझकों भासता है, सो अविद्यारूप है, कहूं अविद्या जलरूप हुई है, कहूं पहाड, कहूं नाग, कहूं देवता, कहूं दैत्य, कहूं पृथ्वी हुई है, कहूं चंद्रमा, कहूं सूर्य, कहूं तारे, कहूं तम, कहूं प्रकाश, कहूं तेज तमतें रहित, कहूं पाप, कहूं पुण्य, कहूं स्थावर मूढरूप, कहूं अज्ञानकरि दीन होती है, कहूं ज्ञानकरि आपही क्षीण हो जाती है, कहूं तप दान आदिककरि क्षीण होती है, पापादिककरि वृद्ध होती है, कहूं सूर्यरूप होकरि प्रकाशती है, कहूं स्थानरूप होती है, कहूं नरकविषे लीन है, कहूं स्वर्गनिवासी है, कहूं देवता

होती है, कहूं कृमि होती है, कहूं विष्णुरूप होकरि स्थित भई है, कहूं ब्रह्मा होकरि स्थित भई है, कहूं रुद्र है, कहूं अग्निरूप, कहूं पृथ्वीरूप भई है ॥ कहूं आकाशकों काल भूत भविष्य वर्तमान भई है ॥ हे रामजी! जो कछु देखणेमें आता है, सो बहु महिमा इसका है, ईश्वरतें आदि तृणपर्यंत सब अविद्यारूप है, जो इस दृश्यजालतें अतीत है, तिसकों आत्मलाभ जाण ॥ ॥ इति श्रीयोगवासिष्ठे निर्वाणप्रकरणे अविद्यालतावर्णनं नाम सप्तमः सर्गः ॥ ७ ॥ ॥ ॥ ॥ राम उवाच ॥ हे ब्राह्मण! हरि विष्णु अरु हर आदिक तौ शुद्ध आकार आकाश जाति हैं, इनकों अविद्या तुम कैसे कहते हौ, इह सुणिकरि मुझकों संशय उत्पन्न हुआ है ॥ ॥ वसिष्ठ उवाच ॥ हे रामजी! प्रथम अविद्या अरु तत्त्व श्रवण कर, जो किसकों कहते हैं, जो अविद्यमान होवै, अरु विद्यमान भासै, सो अविद्या है, अरु जो सदा विद्यमान है, तिसकों तत्त्व कहते हैं ॥ हे रामजी! शुद्ध संवित कलनातें रहित चिन्मात्र आत्मसत्ता है, सो तत्त्व है, तिसविषे जो अहं उल्लेखकरि संवेदन कलना पूर्णरूप फुरी है, सो चिन्मात्र संवितका आभास है, सोइ फुरिकरि सूक्ष्म स्थूल मध्यभावकों प्राप्त भई है, स्थानभेदकरि बहुरि उही दृढ स्पंदकरि मनभावकों प्राप्त भई है, अरु सात्त्विक राजस तामस तीनों उसके आकार हुए हैं, सो अविद्या त्रिगुण प्राकृत धर्मिणी होत भई है, अरु तीन गुण जो तुझकों कहे हैं, सो भी एक एक गुण तीन प्रकार हुआ है, अविद्याके गुण नव प्रकारके भेदकों प्राप्त भये हैं, जेता कछु तुझकों दृश्य भासता है, सो अविद्याके नवगुणविषे ऋषीश्वर मुनीश्वर सिद्ध नाग विद्याधर देवता जो हैं, सो अविद्याका सात्त्विक भाग है, तिस सात्त्विकके विभागविषे नाग सात्त्विक तामस हैं, अरु विद्याधर सिद्ध देवता मुनीश्वर यह अविद्याके सात्त्विक भागविषे सात्त्विक राजस है, अरु हरिहरादिक सात्त्विक हैं ॥ हे रामजी! सात्त्विक जो प्रकृत भाग है, तिसकरि तत्त्वज्ञ जो हुए हैं, सो मोहकों नहीं प्राप्त होवैं, मुक्तिरूप होते हैं, सो हरिहरादिक शुद्ध सात्त्विक हैं, सदा मुक्तरूप होकरि जगतविषे

स्थित हैं, जबलग जगतविषे हैं, तबलग जीवन्मुक्त हैं, जब विदेहमुक्त हुवे तब परमेश्वरकों प्राप्त होते हैं॥ हे रामजी! एक अविद्याके दो रूप हैं, एक अविद्यारूप बहुरि उही विद्यारूप होती है. जैसे बीज फलकों प्राप्त होता है, अरु फल बीजभावकों प्राप्त होता है, जैसे जलविषे बुद्बुदा उठता है, तैसे अविद्यातें विद्या उपजती है, अरु विद्याकरि अविद्या लीन होती है, जैसे काष्ठतें अग्नि उपजीकरि काष्ठकों दग्ध करती है, तैसे विद्या अविद्यातें उपजीकरि अविद्याकों नाश करती है, अरु वास्तवतें सब चिदाकाश है, जैसे जलविषे तरंग कलनामात्र हैं, तैसे विद्या अविद्या भावनामात्र इसकों त्यागिकरि शेष आत्मसत्ता रहती है, अविद्या अरु विद्या आपसमें प्रतियोगी है, जैसे तम अरु प्रकाश होता है, तातें इन दोनोंकों त्यागिकरि आत्मसत्ताविषे स्थित होहु, विद्या अरु अविद्या कल्पनामात्र हैं, विद्याके अभावका नाम अविद्या है, अरु अविद्याके अभावका नाम विद्या है, इह प्रतियोगी कल्पना मिथ्या उठी है, जब विद्या उपजती है, तब अविद्याका भास करती है, पाछे आप भी लीन हो जाती है, जैसे काष्ठतें उपजी अग्निकाष्ठकों जलायकरि आप भी शांत हो जाती है, तैसे अविद्याकों नाश करिके विद्या आप भी लीन हो जाती है, तिसतें शेष रहता है, सो अशब्द पद सर्वव्यापि है, जैसे वटबीजविषे पत्र टास फूल फल पाते हैं, तैसे सर्वविषे एक अनुस्यूत सत्ता व्यापी है, सो ब्रह्मतत्त्व सर्वशक्त है, सर्व शक्तिका संपद है, अरु आकाशतें भी शून्य है, जैसे सूर्यकांतविषे अग्नि होता है, जैसे दूधविषे घृत होता है, तैसे सब जगतविषे ब्रह्म व्यापि रहा है, जैसे दधिके मथेविना घृत नहीं निकसता, तैसे विचारविना आत्मा नहीं भासता, जैसे अग्नितें चिणगारे निकसते हैं, अरु सूर्यतें किरणां निकसतियां हैं, तैसे इह जगत आत्माका किंचनरूप है, जैसे घटके नाश हुए घटाकाश अविनाशी है, तैसे जगतके अभावतें भी आत्मा अविनाशी है॥ हे रामजी! जैसे चुंबक पत्थरकी सत्ता करिके जड लोह चेष्टा करता है, परंतु चुंबक सदा अकर्त्ताही है, तैसे आत्माकी सत्ता करिके जगत देहादिक

चेष्टा करते हैं, चैतन्य होते हैं, परंतु आत्मा सदा कर्ता है, इस जगतका बीज चेतन आत्मसत्ता है, तिसविषे संवित संवेदन आदिक शब्द भी कल्पनामात्र हैं, जैसे जलकों कहिये बहुत सुंदर चंचल है, सो जलही जल है, तैसे संवेदन आदिक सब चेतनरूप है, जहां न किंचन है, न अकिंचन है, सो तेरा स्वरूप है ॥ ॥ इति श्रीयोगवासिष्ठे निर्वाणप्रकरणे अविद्यानिराकरणं नाम अष्टमः सर्गः ॥ ॥ ८ ॥ ॥ ॥ ॥

॥ वसिष्ठ उवाच ॥ हे रामजी ! स्थावर जंगम जेता कछु जगत तुझकों भासता है, सो आधिभौतिकता कों नहीं प्राप्त भया, सब चिदाकाशरूप है, तिसविषे कछु भावअभावकी कल्पना नहीं, अरु जीवादिक भेद भी नहीं, हमकों तौ भेदकल्पना कछु नहीं भासती, जैसे जेवरीविषे सर्पका अभाव है, तैसे ब्रह्मविषे भेदकल्पनाका अभाव है ॥ हे रामजी ! आत्माके अज्ञान करिके भेदकल्पना भासती है, आत्माके जाणेतें भेदकल्पना मिटि जाती है, सो सर्व संपदाका अंत है, अरु जब शुद्ध चेतनविषे चित्तका संबंध होता है, तब इसीका नाम अविद्या है, जो पुरुष चित्तकी उपाधितें रहित चिन्मात्र है, सो शरीरके नाश हुए नाश नहीं होता, अरु शरीरके उपजेतें नहीं उपजता, शरीरके उपजणे अरु बिनसणेविषे सदा एकरस ज्योंका त्यों स्थित है, जैसे घटके उपजणे अरु बिनसणेविषे घटाकाश ज्योंका त्यों होता है, तैसे शरीरके भावअभावविषे आत्मा ज्योंका त्यों है, जैसे बालक दउडता है, तिसकों सूर्य भी दउडता भासता है, अरु स्थित होणेविषे स्थित भासता है, परंतु सूर्य ज्योंका त्यों है, तैसे चित्तकी चंचलता करिके मूर्ख आत्माकों व्याकुल देखते हैं, अरु चित्तके अचलताविषे अचल देखते हैं, अरु चित्तके उपजणेविषे उपजता देखते हैं, परंतु आत्मा सदा ज्योंका त्यों है, जैसे बबोहा अपणी तंतुकरि आपही वेष्टित होता है, निकसी नहीं सकता, तैसे इह जीव अपणी वासनाकरि आपही बंधमान होते हैं ॥ ॥ राम उवाच ॥ हे भगवन् ! अत्यंत मूर्खता कों प्राप्त होकरि जो स्थावर आदिक तनकों पाइकरि घन स्थित हुए हैं, तिनकी वासना कैसे होती है, सो

कृपा करिके कहो ॥ ॥ वसिष्ठ उवाच ॥ हे रामजी ! जो स्थावर जीव हैं, सो अमन सत्ताकों नहीं प्राप्त हुए, अरु केवल मन अवस्थाविषे भी तिष्ठित नहीं, मध्य अवस्थाविषे हैं, उनकी पुर्यष्टका सुषुप्तिरूप है, सो केवल दुःखका कारण है, उनका मन नहीं नष्ट हुआ, सुषुप्ति अवस्थाविषे जडरूप स्थित है, सो कालकरि जागहिंगे, अब उनकी सत्ता मूक जड होकरि स्थित है, सत्तामात्र स्थित है ॥ ॥ राम उवाच ॥ हे देव देवताविषे श्रेष्ठ ! जब उनकी सत्ता अद्वैतरूप होकरि स्थावरविषे स्थित है, तब मुक्ति अवस्था तिनके निकट भई, इह सिद्ध हुआ ॥ वसिष्ठ उवाच ॥ हे रामजी ! मुक्ति कैसे निकट होती है, मुक्ति तब होती है, जब बुद्धिपूर्वक वस्तुकों विचारै है, तब यथाभूत अर्थ दृष्टि आवै, जब सत्तासमानका बोध होवै, तब केवल आत्मपदकों प्राप्त होवै ॥ हे रामजी ! जब ज्योंका त्यों पदार्थ जाणिकरि वासनाका त्याग करै, सो उत्तम है, तब सत्ता समान पद प्राप्त होवै, प्रथम अध्यात्मशास्त्रकों विचारै तिसविषे जो सार है, तिसकी वारंवार भावना करै, तिसकरि जो प्राप्त होवै, सो सत्तासमान परम ब्रह्म कहाता है, स्थावरके अंतर वासना है, परंतु बाह्य दृष्टि नहीं आती, काहेतें जो उनकी सुषुप्त वासना है, जैसे बीजविषे अंकुर होता है, बहुरि उगता है, तैसे उनकों जन्म होवैंगे, अरु वासना जागैगी, जो उनके अंतर जगतकी सत्यता है, अरु बाह्य नहीं दृष्टि आती, सो सुषुप्तवत् जड धर्म है, बहुरि अनंत जन्मके दुःख पावैंगे ॥ हे रामजी ! स्थावर जो अब जड धर्म सुषुप्त पदविषे स्थित है, सो वारंवार जन्मकों पावहिंगे, जैसे बीजविषे पत्र टास फूल फल स्थित होते हैं, जैसे मृत्तिकाविषे घटशक्ति स्थित होती है, तैसे स्थावरविषे वासना स्थित है, जहां वासनारूपी बीज है, सो सुषुप्तरूप कहाता है, सो सिद्धता जो मुक्ति है, तिसकों नहीं प्राप्त करती, अरु जहा निर्बीज वासना है, सो तुरीया पद है, सिद्धताकों प्राप्त करती है ॥ हे रामजी ! जब चित्तशक्ति वासनासाथ मिली होती है, तब स्थावर होती है, सो बहुरि जागती है, जैसे कोउ कर्म करता सोय जाता है, सुषुप्तितें उठिकरि ब

हुरि उही कर्म करणे लगता है, कर्मरूपी वासना तिसके अंतर रहती है, तैसे स्थावर वासना करिके वहुरि जन्मकों पावैंगे, जब उह वासना अंतरतें दग्ध हो जावै, तव जन्मका कारण नहीं होती, अरु आत्मसत्ता समान करिके घट पट आदिक सर्व पदार्थविषे स्थित है, जैसे वर्षाकालका मेघ एकही नानारूप होकरि स्थित होता है, तैसे आत्मसत्ता एकही सर्व पदार्थविषे स्थित होती है, तातें सर्व आत्माही व्यापि रहा है, ऐसी दृष्टितें जो रहित है, तिसकों विपर्ययदृष्टि भ्रमदायक होती है, जव आत्मदृष्टि प्राप्त होती है, तव सर्व दुःख नाश हो जाते हैं ॥ हे रामजी! असम्यक् दृष्टिका नाम अविद्या बुद्धीश्वर कहते हैं, सो अविद्या जगत्का कारण है, तिसकरि सब पसारा होता है, तिसतें रहित जव अपणा स्वरूप भासै तव अविद्या नष्ट होती है, जैसे बरफकी कणिका धूपकरि नाश हो जाती है, तैसे शुद्ध स्वरूपके अभ्यासकरि अविद्या नष्ट हो जाती है, जैसे स्वप्नतें रहित जव अपणां स्वरूप देखता है, तव वहुरि स्वप्नकी उर नहीं जाता है, तैसे शुद्ध स्वरूपके अभ्यासकरि संपूर्ण भ्रम निवृत्त हो जाता है ॥ हे रामजी! जव वस्तुकों वस्तु जाणता है, तव अविद्या नष्ट हो जाती है, जैसे प्रकाशकरि अंधकार नष्ट हो जाता है, दीपककों हाथ लेकरि देखिये तब अंधकारकी मूर्ति कछु दृष्ट नहीं आती, जैसे उष्णता करिके घृतका पीन उडा गलि जाता है, तैसे आत्माके दर्शन हुए अविद्या नहीं रहती, अरु वास्तवतें अविद्या कछु वस्तु नहीं, अविचारतें सिद्ध है, विचार कियेतें लीन हो जाती है, जैसे प्रकाशकरि तम लीन हो जाता है, तैसे विचारकरि अविद्या लीन हो जाती है, अज्ञानकरि अविद्याकी प्रतीति होती है, जबलग आत्मतत्त्वकों नहीं देखा, तवलग अविद्याकी प्रतीति होती है, जब आत्माकों देखा, तब अभाव हो जाता है, प्रथम इह विचार करै जो रक्त मांस अस्थिका यंत्र शरीर है, तिसविषे मैं क्या वस्तु हौं, सत्य क्या है, अरु असत्य क्या है, तिसविषे जिसका अभाव होता है, सो असत्य है, अरु जिसका अभाव नहीं होता सो सत्य है, बहुरि अन्वयव्यतिरेककरि विचारै, जो कार्य क

अरु जिसकों भोजन करता है, सो भी ब्रह्म है, मित्र भी ब्रह्म है, शत्रु भी ब्रह्म है, ब्रह्मही अपणे आपविषे स्थित है, इह निश्चय ज्ञानवानकों सदा रहता है, बहुरि कैसा है, ब्रह्मकों ब्रह्म स्पर्श करता है, तब किसकों स्पर्श किया॥ हे रामजी ! जिनकों सदा यही निश्चय रहता है, तिसकों रागद्वेष कछु दुःख नहीं दे सकते, ब्रह्मही ब्रह्मविषे फुरता है, भावरूप भी ब्रह्म है, अभावरूप भी ब्रह्म है, इतर कछु नहीं, बहुरि रागद्वेषकलना कैसे होवै, ब्रह्मही ब्रह्मकों चेतता है, ब्रह्मही ब्रह्मविषे स्थित है, ब्रह्मही अहं अस्मि है, ब्रह्मही सम है, ब्रह्मही अंतर आत्मा है, घट भी ब्रह्म है, पट भी ब्रह्म है, ब्रह्मही विस्तारकों प्राप्त भया है॥ हे रामजी ! जब सर्वत्र ब्रह्मही है, तब राग विराग कलना कैसे होवै, मृत्यु भी ब्रह्म है, शरीर भी ब्रह्म है, मरता भी ब्रह्म है, मारता भी ब्रह्म है, जैसे जेवरीविषे सर्प भ्रम करिके भासता है, तैसे आत्माविषे सुखदुःख मिथ्या है, भोग भी ब्रह्म है, भोगणेवाला भी ब्रह्म है, भोक्ता देह भी ब्रह्म है, सर्वत्र ब्रह्मही है, जैसे समुद्रविषे तरंग उपजते अरु मिटि जाते हैं, सो जलतें इतर कछु नहीं, तैसे शरीर उपजते अरु मिट जाते हैं,सो ब्रह्मही ब्रह्मविषे स्थित है॥ हे रामजी ! जलके तरंग जो मृत्युकों प्राप्त होते हैं, सो क्या हुआ, उह तौ जलही है, तैसे मृतक ब्रह्मनें जो देह मृतक ब्रह्मकों मार्या ! तब कवन मुआ, अरु किसनें मार्या, जैसे एक तरंग जलतें उपजा, अरु दूसरे तरंगसाथ मिलि गया, दोनों एकठे होकरि मिटि गये, सो जलही जल है, तहां मैं तूं दूसरा कछु नहीं, तैसे आत्माविषे जगत है, सो आत्माही अपणे आपविषे स्थित है, तेरा मेरा भिन्न कछु नहीं, जैसे स्वर्णविषे भूषण होते हैं, जलविषे तरंग होते हैं, सो अभेदरूप हैं, तैसे ब्रह्म अरु जगतविषे भेद कछु नहीं॥ हे रामजी ! जो पुरुष यथार्थदर्शी है, तिनकों सदा यही निश्चय रहता है, अरु जिनकों सम्यक्ज्ञान नहीं प्राप्त भया, तिनकों विपर्ययरूप अवरका अवर भासता है, वास्तवतें सदा एकरूप है, परंतु ज्ञान अरु अज्ञानका भेद है, जैसे जेवरी एक होती है, परंतु जिसकों सम्यक्ज्ञान होता है, तिसकों जेवरी भी भासती

है, अरु जिसकों सम्यक्ज्ञान नहीं होता तिसकों सर्प हो भासता है, तैसे जो ज्ञानवान पुरुष है, तिसकों सब ब्रह्मसत्ता भासती है, अरु जो अज्ञानी है, तिसकों जगतरूप भासता है, तिसकों नानाप्रकारका जगत दुःखदायक होता है, अरु ज्ञानवानकों सुखरूप है, जैसे अंधकों सर्व उर अंधकार भासता है, अरु चक्षुवानकों प्रकाशरूप होता है, तैसे सर्व जगत आत्मस्वरूप है, परंतु ज्ञानीकों आत्मसत्ता सुखरूप भासती है, अज्ञानीकों दुःखदायक है, जैसे बालककों अपणे परछावेविषे बैतालबुद्धि होती है, तिसकरि भयमान होता है, अरु बुद्धिवान निर्भय होता है, तैसे अज्ञानीकों जगत दुःखदायक है, ज्ञानीकों सुखरूप है, अरु जब मेरा निश्चय पूछै, तब ऐसे है, मैं सर्व ब्रह्म हौं, नित्य शुद्ध सर्वविषे स्थित हौं, न कोउ विनसता है, न उपजता है, जैसे जलविषे तरंग है सो न कछु उपजा है, न विनसता है, जलही जल है, तैसे भूत भी आत्माविषे है, जगत भी आत्मारूप है, आत्म ब्रह्मही अपणे आपविषे स्थित है, शरीरके नाश हुए आत्माका नाश नहीं होता, मृतरूप भी ब्रह्म है, शरीर भी ब्रह्म है, ब्रह्मही अनेकरूप होकरि भासता है, ब्रह्मतें भिन्न कछु शरीरादिक सिद्ध नहीं होते, जैसे तरंग फेन बुदबुदे जलरूप है, तैसे देहकलना इंद्रियां इच्छा दैवतादिक सब ब्रह्मरूप है ॥ जैसे स्वर्णतें भिन्न भूषण नहीं होता, स्वर्णही भूषणरूप होता है, तैसे ब्रह्मतें व्यतिरेक जगत नहीं होता, ब्रह्मही जगतरूप है ॥ जो मूढ है, तिनकों द्वैतकलना भासती है ॥ हे रामजी! मन बुद्धि अहंकार तन्मात्र इंद्रियां सब ब्रह्महीके नाम हैं, अवर सुख दुःख कछु नहीं, अहं ऐसे जो शब्द है, तिसविषे भिन्न भिन्न भावना करणी सो व्यर्थ है, अपणां अनुभवही अन्यकी नांई हो भासता है, जैसे पहाडविषे शब्द करता है, तिसकरि प्रतिशब्दका भास होता है, सो अपणाही शब्द है, तिसविषे अवरकी कल्पना मिथ्या है, जैसे स्वप्नविषे अपणां शिर काट्या देखता है सो व्यर्थ है, सोइ भासी आता है, जिसकों असम्यक् ज्ञान होता है, तिसकों ऐसे है ॥ हे रामजी! ब्रह्म सर्वशक्त है, तिसविषे जैसी भावना होती है, सोई भासि

ल्पितके होते भी होवै, अरु तिसके अभावविषे भी होवै, सो अन्वय सत्य है, जो देहादिक भावविषे भी आत्मा अधिष्ठान है, अरु इनके अभावविषे भी निरुपाधि सिद्ध है, सो सत्य है, अरु देहादिक व्यतिरेक असत्य हैं, ऐसे विचारकरि आत्मतत्त्वका अभ्यास करै, अरु असत देहादिकतें वैराग्य करै, तब निश्चय करिके अविद्या लीन हो जाती है, काहेतें जो वास्तव नहीं, असत्यरूप है, तिसके नष्ट हुए जो शेष रहै सो निष्किंचन किंचनरूप है, सो सत्य है, ब्रह्म निरंतर है, सो तत्त्ववस्तु उपादेय करणे योग्य है ॥ हे रामजी ! ऐसे विचार करिके अविद्या नष्ट हो जाती है, जैसे गनेका रस जिव्हासाथ लगता है, तब अवश्य स्वाद भी आता है, तैसे आत्मविचारकरि अविद्या अवश्य नष्ट हो जाती है, अरु जब वास्तवतें कहैं, तब अविद्या भी कछु भिन्न वस्तु नहीं, सर्व एक अखंडित ब्रह्मतत्त्व है, घटपटरथ आदिक जेते कछु पदार्थ हैं, जिसकों भिन्न भिन्न भासते हैं, तिसकों अविद्या जान, अरु जिसकों सर्वविषे एक ब्रह्मभावना है, तिसकों विद्या जान, इस विद्याकरि अविद्या नष्ट हो जावैगी ॥ ॥ इति श्रीयोगवासिष्ठे निर्वाणप्रकरणे अविद्याचिकित्सावर्णनं नाम नवमः सर्गः ॥ ९ ॥ ॥ ॥

॥ वसिष्ठ उवाच ॥ हे रामजी ! बोधके निमित्त मैं तुझकों वारंवार सार कहता हौं, जो आत्मसाक्षात्कार भावना अभ्यासविना न होवैगा, इह जो अज्ञान अविद्या है, सो अनंत जन्मका दृढ भया है, सो अंतर बाहिर करिके देखाई देता है, आत्मा सर्व इंद्रियतें अगोचर है, जब मनसहित षट् इंद्रियका अभाव हो जावै, तब केवल शांतिकों प्राप्त होता है ॥ हे रामजी ! जेती कछु वृत्ति बहिर्मुख फुरती है, सो अविद्या है, काहेतें जो आत्मतत्त्वतें इतर जाणिकरि फुरती है, अरु जो अंतर्मुख आत्माकी उर फुरती है, सो विद्या है, सो विद्या अविद्याकों नाश करैगी, अविद्याके दो रूप हैं, एक प्रधान रूप है, एक निकृष्टरूप है, तिस अविद्यातें विद्या उपजीकरि अविद्याकों नाश करती है, बहुरि आप भी नाश हो जाती है, जैसे बांसतें अग्नि उपजती है, अरु बांसकों जलायकरि आप भी शांत हो जा

ती है, तैसे जो अंतर्मुख है, सो प्रधानरूप विद्या है, अरु जो बहिर्मुख है, सो अविद्या निकृष्टरूप है, तातें अविद्या भागकों नाश करहु ॥ हे रामजी ! अभ्यासविना कछु सिद्ध नहीं होता, जो कछु किसीकों प्राप्त होता है, सो अभ्यासरूपी वृक्षका फूल है, चिरकाल जो अविद्याका दृढ अभ्यास हुआ है, तब अविद्या दृढ भई है, जब आत्मज्ञानके निमित्त यत्न करिके दृढ अभ्यास करैगा, तब अविद्या नाश हो जावैगी ॥ हे रामजी ! हृदयरूपी वृक्ष है, तिससाथ अविद्यारूपी बुरी लता दृढ हो रही है, तिसकों ज्ञानरूपी खड्ग करिके काटहु, अरु जो कछु अपणा प्रकृत आचार है, तिसकों करहु, तब तुझकों दुःख कोउ न होवैगा, जैसे जनक राजा ज्ञातज्ञेय होकरि व्यवहारकों करत भया है; तैसे आत्मज्ञानका दृढ अभ्यासकरि तूं भी विचर ॥ हे रामजी ! जैसे पवन निश्चयकों धारिकरि कार्याकार्यविषे विचरता है, अरु जैसे निश्चय विष्णुजीकों स्वरूपविषे है, सब कार्य करता है, अरु जैसे निश्चय सदाशिवकों है, जो गौरी अर्धांगमें रहती है, अरु कदाचित् क्षोभकों नहीं प्राप्त होता, सदा शांतरूप है, अरु जैसे निश्चय ब्रह्माकों है, जो बाह्य रागदोष दृष्टि आता है, अरु अंतर रागदोष कछु नहीं, जैसे निश्चय बृहस्पती देवताके गुरुका है, अरु जैसे निश्चय चंद्रमा अरु अग्निका है, जैसे निश्चय नारद पुलह पुलस्त्य अंगिरा भृगु शुकदेवका है, और भी ऋषीश्वर मुनीश्वर ब्राह्मणका है, क्षत्रियादिकका ज्ञान ज्ञेयका निश्चय है, सो तुझकों प्राप्त होवै ॥ राम उवाच ॥

॥ हे ब्राह्मण ! जिस निश्चय करिके बुद्धिवान विशोक होकरि स्थित भये हैं, सो मुझकों कहो ॥ ॥ वसिष्ठ उवाच ॥ हे रामजी ! जैसे संपूर्ण ज्ञानवानका निश्चय है, अरु व्यवहारविषे सम रहे हैं, सो सुण, विस्ताररूप जेता कछु जगतजाल तुझकों भासता है, सो निर्मल ब्रह्मसत्ता अपणे महिमाविषे स्थित है, जैसे तरंग समुद्रविषे स्थित होते हैं, अरु नानाप्रकार उत्पन्न होते हैं, सो एक जलरूप है, जलतें इतर कछु नहीं, तैसे जेते कछु पदार्थजाल भासता है, भासते हैं, सो सब ब्रह्मरूप है, जो ग्रहण करणेवाला है, सो भी ब्रह्म है,

आता है, जिसकों सम्यक्ज्ञान होता है. सो निरहंकार स्वप्रकाश सर्वशक्त देखता है, कर्त्ता कर्म करण संप्रदान अपादान अधिकरण इह जो षट्कारक बुद्धि हैं, सो सब सर्वत्र ब्रह्मही देखता है, ब्रह्म अर्पण, ब्रह्म हवि, ब्रह्म अग्नि, ब्रह्म होत्र, ब्रह्म हुतणेवाला ब्रह्मही फल देता है, ऐसे जानणेवालेका नाम ज्ञानी है, ऐसे न जाणेतें अज्ञानी है, ज़ानणेवालेका नाम ब्रह्मवेत्ता है ॥ हे रामजी ! जब चिरकालका बांधव होवै, अरु उसकों देखिये तब जाणिये जो बांधव है, अरु जो देखणेमें न आया, उसका अभ्यास दूर हो गया, तब बांधव भी अबांधवकी नाईं हो जाता है, तैसे अपणा आप ब्रह्मस्वरूप है, जब भावना होती है, तब ऐसे भासि आवता है, जो मैं ब्रह्म हौं, अरु द्वैतकल्पना भी लीन हो जाती है, सर्व ब्रह्मही भासता है, जैसे जिसनें अमृतपान किया है, सो अमृतमय होता है, अरु जिसनें नहीं पान किया सो अमृतमय नहीं होता, तैसे जिसनें जान्या जो मैं ब्रह्म हौं सो ब्रह्मही होता है, जिसनें नहीं जान्या तिसकों नानात्वकल्पना जन्म मरण भासता है, अरु ब्रह्म अप्राप्तकी नांई भासता है ॥ हे रामजी ! जिसकों ब्रह्मभावनाका अभ्यास जाग्या है, सो अभ्यासके बलकरि शीघ्रही ब्रह्म होता है, ब्रह्मरूपी बडे दर्पणविषे जैसी कोउ भावना करता है, तैसा रूप हो भासता है, मन भावनामात्र है, दुर्वासना करिके इसका स्वरूप आवरण भया है, जब वासना नष्ट होती है, तब निष्कलंक आत्मतत्त्व भासता है, जैसे शुद्ध वस्त्रउपर केसरका रंग शीघ्रही चढी जाता है, तैसे वासनातें रहित चित्तविषे ब्रह्मस्वरूप भासि आता है ॥ हे रामजी ! आत्मा सर्व कलनांतें रहित है, अरु तीनों कालविषे नित्य शुद्ध सम शांतरूप है, जिसकों ज्ञान होता है सो ऐसे जाणता है, जो मैं ब्रह्म हौं, सदाकाल सर्वविषे सर्व प्रकार सर्व घटपटादिक जो जगतजाल है, सो मैंही ब्रह्म आकाशवत सर्वविषे व्यापि रहा हौं, न कोउ मुझकों दुःख है, न कर्म है, न किसीका त्याग करता हौं, न वांछा करता हौं, सर्व कलनांतें रहित निरामय हौं, मैंही रक्त हौं, मैंही पीत हौं, मैंही श्वेत हौं, मैंही श्याम हौं, रक्त मांस अस्थिकौ वपु भी मैंही हौं,

घटपटादिक जगत भी मैंही हौं, तृण वल्ली फूल गुछे टास मैंही हौं, वन पर्वत समुद्र नदीआं मैंही हौं, ग्रहण करणां, त्याग करणां, संकुचणां, भूतशक्ति सब मैंही हौं, विस्तारकों प्राप्त मैंही भया हौं, वृक्ष, वल्ली, फूल, गुछे जिसके आश्रय फुरते हैं, सो चिदात्मा मैंही हौं, सबविषे रसरूप मैंही हौं, जिसविषे इह सर्व है, जिसतें यह सर्व है, जो सर्व है, जिसकों सर्व है, ऐसा चिदात्मा ब्रह्म है, सो मैंही हौं, चेतन आत्मा ब्रह्म सत्य अमृत ज्ञानरूप इत्यादिक जिसके नाम हैं, ऐसा सर्वशक्तचिन्मात्र चैत्यतें रहित मैं हौं, प्रकाशमात्र निर्मल सर्वभूतप्रकाशक मैंही हौं, मन बुद्धि इंद्रियांका स्वामी मैं हौं, जेती कछु भेदकलना है, सो इननें करी थी, अब इनकी कलनाकों त्यागिकरि अपणे प्रकाशविषे स्थित हौं, चेतन ब्रह्म निर्दोष हौं, शब्द, स्पर्श, रूप, रस गंध सब जगतका कारण है, तिन सबका चेतन आत्मारूप ब्रह्म निरामय मैंही हौं, अविनाशी हौं, निरंतर स्वच्छ आत्मा प्रकाशरूप मनके उत्थानतें रहित मौनरूप मैं हौं, परम अमृत निरंतर सर्व भूतके सत्तारूप करिके मैंही स्थित हौं, सदा अलेपक साक्षी सुषुप्तकी नांई हौं, द्वैतकलनातें रहित अक्षोभरूपानुभव मैंही हौं, शांतरूप सब जगतविषे मैंही पसरी रहा हौं, सर्व वासनातें रहित अक्षोभरूप अनुभव मैंही हौं, सब स्वादका जिसकरि अनुभव होता है, सो चेतन ब्रह्म आत्मा मैंही हौं, स्त्रीविषे आसक्त है चित्त जिसका, अरु चंद्रमाकी कांतिकरि मुदिता अधिक है जिसकों, स्त्रीका स्पर्श अरु मुदिताका जिसकरि अनुभव होता है, ऐसा चेतन ब्रह्म मैंही हौं, पृथ्वीविषे स्थित जो पुरुष है, तिसकी दृष्टि चंद्रमाके मंडलमें जाय लगती है, तिसका अनुभव जिसविषे होता है सो मैंही हौं, सुखदुःखकी कलनातें रहित अमनसत्ता अनुभवरूप जो आत्मा है, सो चेतनरूप आत्मा ब्रह्म मैंही हौं, खजूर अरु निंब आदिकविषे स्वादरूप मैंही हौं, खेद अरु आनंद लाभ अलाभ मुझकों तुल्य हैं, जाग्रत स्वप्न सुषुप्ति साक्षी तुरीयारूप आदि अंततें रहित चेतन ब्रह्म निरामय मैं हौं, जैसे क्षेत्रके गनेहूंविषे एकही रस होती है, तैसे अनेक मूर्त्तिविषे एक ब्रह्मसत्ता स्थित

है, सो सत्य शुद्ध सम शांतरूप सर्वज्ञ है, प्रकृत जो सूक्ष्म तिसका प्रकाशक है, सूर्यकी नांई सो प्रकाशरूप ब्रह्म मैंही हौं, सब शरीरविषे व्यापी रहा हौं, जैसे मोतिविषे तंतु गुप्त होता है, तिसविषे मोती परोये हैं, तैसे मोतीरूप शरीरविषे तंतुरूप गुप्त मैंही हौं, अरु जगतरूपी दूधविषे ब्रह्मरूपी घृत मैंही व्यापी रहा हौं ॥ हे रामजी ! जैसे स्वर्णविषे नानाप्रकारके भूषण बनते हैं, सो स्वर्णतें इतर कछु नहीं, तैसे सब पदार्थ आत्माविषे स्थित हैं, आत्मातें इतर कछु नहीं, पर्वत समुद्र नदीविषे सत्तारूप आत्माही है, सर्व संकल्पका फलदाता, अरु सर्व पदार्थका प्रकाशक आत्माही है; अरु सर्व पावणे योग्य पदार्थका अंत है, तिस आत्माकी उपासना हम करते हैं. घट पट तट कंधविषे स्थित हैं, अरु जाग्रतविषे सुषुप्तरूप स्थित है,जिसविषे फुरणा कोउ नहीं, ऐसे चेतनरूपी आत्माकी उपासना हम करते हैं,मधुरविषे जो मधुरता है, अरु तीक्ष्णविषे तीक्ष्णता है, अरु जगतविषे चलणां शक्ति है, तिस चेतन आत्माकी हम उपासना करते हैं, जाग्रत स्वप्न सुषुप्ति तुरीया तुरीयातीतविषे जो समतत्त्व है, तिसकी हम उपासना करते हैं, त्रिलोकीके देहरूपी जो मोती है, तिनविषे जो तंतुकी नांई अनुस्यूत है, अरु पसारणे संकोचणेका कारण है, तिस चेतनरूप आत्माकी हम उपासना करते हैं, जो षोडश कला संयुक्त अरु षोडश कलातें रहित है, अरु अकिंचन किंचनरूप है, तिस चेतन आत्माकी हम उपासना करते हैं, चेतनरूप अमृत है,जो क्षीरसमुद्रतें निकस्या है, चंद्रमाके मंडलविषे रहता है, ऐसा जो स्वतःसिद्ध अमृत है, जिसकों पाइकरि कदाचित् मृतक न होवे, तिस चेतन अमृतकी हम उपासना करते हैं,जो अखंड प्रकाश है,अरु सर्व भूतकों सुंदर करता है,तिस चिदात्माकों हम उपासते हैं, शब्द, स्पर्श, रूप, रस, गंध जिसकरि प्रकाशते हैं, अरु आप इनतें रहित है,तिस चेतन आत्माकी हम उपासना करते हैं, सर्व मैं हौं, अरु सर्व मैं नहीं, और भी कोउ नहीं, इस प्रकार विदित जाणीकरि अपणे अद्वैतरूपविषे विगतज्वर होकरि स्थित होते हैं, यही निश्चय ज्ञानवानका है ॥ ॥ इति श्रीयोगवासिष्ठे निर्वाणप्रकरणे जीव

न्मुक्ति निश्चयोपदेशो नाम दशमः सर्गः ॥ १० ॥ ॥ वसिष्ठ उवाच ॥ हे रामजी! जो निष्पाप पुरुष है, तिनकों यही निश्चय रहता है, जो सत्यरूप आत्मतत्त्व है, इह पूर्ण बोधवानका निश्चय है, तिनकों न किसीविषे राग होता है, न दोष होता है, जीणां मरणां उसकों सुख दुःख नहीं देता, इक समान रहता है, सो विष्णु नारायणका अंग है, अर्थ यह जो अभेद है, सदा अचल है; जैसे सुमेरु पर्वत वायुकरि नहीं चलायमान होता, तैसे उह दुःखकरि नहीं चलायमान होता, ऐसे जो ज्ञानवान पुरुष हैं, सो वनविषे विचरते हैं, नगर द्वीप नानाप्रकारके स्थानविषे फिरते हैं, परंतु दुःखकों नहीं प्राप्त होते, स्वर्गविषे फूलके वन बगीचेविषे फिरते हैं, केई पर्वतकी कंदराविषे रहते हैं, केई राज्य करते हैं, शत्रुकों मारिकरि शिर उपर झुलावते हैं, केई श्रुति स्मृति अनुसार कर्म करते हैं, केई भोग भोगते हैं, केई विरक्त होकरि स्थित हैं, दानयज्ञादिक कर्म करते हैं, केई स्त्रीसाथ लीला करते हैं, कहूं गीत सुणते हैं, कहूं नंदनवनविषे गंधर्व गायन करते हैं, केई गृहविषे स्थित हैं, केई तीर्थ यज्ञ करते हैं, केई नोबत नगारे तुरीयां सुणते हैं, इत्यादिक नानाप्रकार केई स्थानविषे रहते हैं, परंतु आसक्त कोउ नहीं होते, जैसे सुमेरु पर्वत तालविषे नहीं डुबता, तैसे ज्ञानवान किसी पदार्थविषे बंधमान नहीं होते, इष्टकों पायकरि हर्षवान नहीं होते, अनिष्टकों पायकरि दुःखी नहीं होते, आपदा संपदाविषे तुल्य रहते हैं, प्रकृत आचार कर्मकों करते हैं, परंतु अंतर सर्व आरंभतें रहित है॥ हे राघव! इस दृष्टिकों आश्रय करिके तुम भी विचरौ, इह दृष्टि सर्व पापका नाश करती है, अहंकारतें रहित होकरि जो इच्छा होवै सो करौ, जब यथाभूतदर्शी हुए तब निर्बंध हुए, जो कछु पतित प्रवाहकरि आय प्राप्त होवै, तिसविषे सुमेरुकी नांई तुम अचल रहौगे ॥ हे रामजी! इह सब जगत चिन्मात्र है, न कछु सत्य है, न असत्य है, उही इस प्रकार होकरि भासता है, इस दृष्टिकों आश्रय करिके अवर तुच्छ दृष्टिकों त्यागहु ॥ हे रामजी! असंसक्तबुद्धि होकरि सर्व भावअभावविषे स्थित होकरि रागद्वेषतें चलायमान नहीं

होवैगा, अब सावधान होहु ॥ ॥ राम उवाच ॥ हे भगवन्! बडा आश्चर्य है, मैं तुमारे प्रसादकरि जानणे योग्य पद जाण्या है, अरु प्रबुद्ध हुआ हौं, जैसे सूर्यकी किरणांकरि कमल प्रफुल्लित होते हैं, तैसे शरत्कालविषे कुहिड नष्ट हो जाती है, तैसे तुमारे वचनकरि मेरा संदेह नष्ट हुआ है, मान मोह मद मत्सर सब नष्ट होगये हैं, मैं अब सर्व क्षोभतें रहित शांतिकों प्राप्त भया हौं ॥ ॥ इति श्रीयोगवासिष्ठे निर्वाणप्रकरणे जीवन्मुक्तिनिश्चयवर्णनं नाम एकादशः सर्गः ॥ ११ ॥ ॥ राम उवाच ॥ हे भगवन्! सम्यक् ज्ञान विलासकरि वासना उदय होती है, सो जीवन्मुक्ति पदविषे किस प्रकार विश्रांति पाइये सो कहौ ॥ ॥ वसिष्ठ उवाच ॥ हे रामजी! संसार तरणेकी युक्ति है सो योगनाम्नी है, सो युक्ति दो प्रकारकी है, एक सम्यक् ज्ञान करिके अरु दूसरी प्राणके रोकणे करिके ॥ ॥ राम उवाच ॥ हे भगवन्! इन दोनोंविषे सुगम कवन है, जिसकरि दुःख भी न प्राप्त होवै, अरु बहुरि क्षोभ भी न होवै ॥ ॥वसिष्ठ उवाच॥ हे रामजी! दोनों प्रकार योग शब्दकरि कहाता है, तौ भी योग नाम प्राणके रोकणेका है, संसारके तरणेके योग अरु ज्ञान दोनों उपाय हैं, इन दोनोंका फल एकही सदाशिवनें कहा है ॥ हे रामजी! किसीकों योग करणां कठण है, अरु ज्ञानका निश्चय सुगम है, किसीकों ज्ञानका निश्चय कठिण है, अरु योग करणां सुगम है, अरु जो मुझतें पूछै तौ दोनोंविषे ज्ञान सुगम है, इसविषे यत्न कष्ट थोडा है, जानणे योग्य पदार्थकों जाणेतें बहुरि स्वप्नविषे भी भ्रम नहीं होता है, साक्षीभूत होकरि दृष्ट देखता है, अरु जो बुद्धिवान योगीश्वर हैं, तिनकों भी यत्न कछु नहीं, स्वाभाविक चले जाते हैं, तिनकी एक युक्ति समझीकरि चित्त शांत हो जाता है ॥ हे रामजी! दोनोंकी सिद्धता अभ्यास यत्नकरि होती है, अभ्यासविना कछु प्राप्त नहीं होती, सो ज्ञान तौ मैं तुझकों कहा है, जो हृदयविषे विराजमान ज्ञेय है; तिसकों जानणां ज्ञान है, अरु जो प्राणअपानके रथ उपर आरूढ है, हृदयरूपी गुहाविषे स्थित है ॥ हे रामजी! तिस योगका भी क्रम सुण, परम सिद्धताके निमित्त है, प्राणवायु जो नासिका अरु मुखके मार्ग

पडी आती जाती है, तिसके रोकणेका क्रम कहता हौं, तिसकरि चित्त उपशम हो जाता है ॥ ॥ इति श्रीयोगवासिष्ठे निर्वाणप्रकरणे ज्ञानज्ञेयविचारो नाम द्वादशःसर्गः ॥ १२ ॥ ॥ ॥ वसिष्ठ उवाच ॥ हे रामजी ! ब्रह्मरूपी आकाश है, तिसके किसी कोणविषे इह जगतरूपी स्पंद आभास फुर्या है, जैसे मरुस्थलविषे सूर्यकी किरणांकरि मृगतृष्णाका जल फुरि आता है, तैसे जगत ब्रह्मतें फुरि आया है, तिस जगत्के कारणभावकों सोइ प्राप्त हुआ है, अरु ब्रह्मके नाभिकमलतें उत्पत्ति है जिसकी, अरु पितामह नामकरि कहाता है, तिसका मानसी पुत्र श्रेष्ठ आचार है जिसका, ऐसा जो मैं वसिष्ठ हौं, अरु नक्षत्र ताराचक्रविषे मेरा निवास है, जुग जुग प्रति मैं तहां रहता हौं, सो मैं जब नक्षत्रचक्रतें उठ्या, तब इंद्रकी सभाविषे आया, तहां ऋषीश्वर मुनीश्वर बैठे थे, जब नारद आदिकविषे चिरंजीविका कथाप्रसंग चल्या तब तहां शातातप नाम एक ऋषीश्वर था, सो कैसा था, मन जो मान करणेकों योग्य बुद्धिवान था, सो कहत भया, जो हे साधो ! सबविषे चिरंजीवि है सो एक है, सुमेरु पर्वतकी जो कंदरा है, तिसकी कोण पद्मराग नाम्नी है कंदरा, तिसके शिखरपर एक कल्पवृक्ष है, सो महासुंदर अपणी शोभाकरि पूर्ण है, तिस वृक्षके दक्षिण दिशा टास हैं, तहां पक्षी रहते हैं, तिन पक्षीविषे महा श्रीमान एक कउआ रहता है, भुषंड तिसका नाम है, सो कैसा है, वीतराग अरु बुद्धिमान उह उहां रहता है, उसका आलय कल्पवृक्षके टास उपर बन्या हुआ है, जैसे ब्रह्मा नाभिकमलविषे रहता है, तैसे उह आलयविषे रहता है, जैसे उह जीया है, तैसे न कोउ जीया है, न जीवैगा, उसकी बडी आयुर्बला है, अरु श्रीमान महाबुद्धिवान विश्रांतिवान शांतरूप अरु कालका वेत्ता ऐसा उह है ॥ हे साधो ! बहुत जीणा भी तिसका सफल है, अरु पुण्यवान भी उही है, जिसकों आत्मपदविषे विश्रांति भई है, अरु संसारकी आस्था जाती रही है, ऐसा जो पुरुष है सो उह है, ऐसे गुणकरि संपन्न तिसका नाम काकभुषंड है, इस प्रकार जब उस देवताके देवनें कहा, संपूर्ण सभाविषे, तब ऋषी

श्वरनें दूसरी वार पूछा, जो उसका वृत्तांत बहुरि कहौ, तब उसनें बहुरि वर्णन किया, तिस कालमें सब आ श्चर्यकों प्राप्त हुए, जब ऐसे कथा वार्ता होए चूकी, तब सबही सभा उठी खडि हुई, अपणे अपणे आश्रम कों गये, अरु मैं आश्चर्यमान हुआ, जो ऐसे पक्षीकों किसी प्रकार देखियें, ऐसे विचार करिके मैं सुमेरु प र्वतकी कंदराके सन्मुख हुआ, अरु चल्या, तब एक क्षणविषे जाय प्राप्त भया, क्या देखा जो महाप्रकाश रूप कंदराका शिखर है, रत्नमणिकरि पूर्ण है अरु गेरीकी नांई रंग है, जैसे अग्निकी ज्वाला होती है, तैसे प्रकाशरूप है, मानौ प्रलयकालमें अग्निकी ज्वाला पडी जागती है, ऐसे मणि अरु रत्नका प्रकाश है, अरु वीज जो नील मणी है, सो धूम्रके समान है, मानौ धुआं पडा निकसता है, अरु सर्व रंगकी खाण है, अरु जेते कछु संध्याके बदल लाल होते सो मानौ एकठे आनि हुए हैं, मानौ जोगीश्वरके ब्रह्मरंध्रतें अग्नि निक सि एकठी आय भई हैं, जठराग्नि एकठी हुई है, मानौ वडवाग्नि समुद्रतें निकासिकरि मेघकों ग्रहण करणे निमित्त आनि स्थित भई है, महासुंदर रचना बणी हुई है, फल अरु रत्नमणिसंयुक्त प्रकाशमान है, उपर गंगाका प्रवाह चल्या जाता है, सो यज्ञोपवीतरूप हुआ है, गंधर्व गीत गाते हैं, देवीके रहणेके स्थान हैं, ह र्ष उपजावणेकों महासुंदर लीलाका स्थान विधातानें रच्या है, तिसकों मैं देखत भया ॥ ॥ इति श्रीयो गवासिष्ठे निर्वाणप्रकरणे भुशुंडोपाख्याने सुमेरुशिखरलीलावर्णनं नाम त्रयोदशः सर्गः ॥ १३ ॥ ॥

॥ वसिष्ठ उवाच ॥ हे रामजी ! ऐसे शिखर उपर कल्पवृक्षकों मैं देखत भया, जो महासुंदर फूलकरि पू र्ण रत्न अरु मणिके गुछे लगे, स्वर्णकी वल्ली लगी हुई है, अरु तारेसों दूणे फूल दृष्टि आते हैं, अरु मेघके बदलतें दूणे पत्र दृष्टि आते हैं, अरु सूर्यकी किरणांतें दूणे त्रिवर्ग भासते हैं, बिजलीकी नांई चमत्कार है, अरु पत्रपर देवता किंनर अरु विद्याधर देवी आय बैठते हैं, अप्सरा आय नृत्य करतियां हैं, अरु गायन करतियां हैं, जैसे भंवरे गुंजारव करते फिरते हैं ॥ हे रामजी ! तहा रत्नके गुछे निरंध्र अरु कलियां फूल भी

निरंध्र पत्र फल भी निरंध्रमणिके गुछे निरंध्र सब निरंध्रहीं दृष्टि आवैं, अरु सब स्थान फूल फल गुछेकरि पूर्ण, अरु षट्ऋतुके फूल फल तहां पावत हैं, महाविचित्र रचना वणि हुई है, तिसके एक टासपर पक्षी बैठे हैं, सिंह बैठे खाते हैं, कहूं फूलफलादिक खाते हैं, कहूं ब्रह्माजीके हंस बैठे हैं, कहूं अग्निके वाहन तोते बैठे हैं, अरु कहूं अश्विनीकुमार अरु भगवतीके मोर शिखावाले हैं, कहूं वगले, कहूं कवूतर, कहूं गरुड बैठे हैं, अरु ऐसे शब्द करते हैं, मानौं ब्रह्मकमलतें उपजा हुआ ओंकारका उच्चार करता है, केई ऐसे पक्षी जो हैं, तिनकी दो दो चूंच हैं, तहां मैं देखिकरि आगे दक्षिणकी कोणकों गया, जहां उस वृक्षका टास था, तहां कउए अनेक बैठे हैं, जैसे महाप्रलयविषे मेघ लोकालोक पर्वतपर आय बैठते हैं, तैसे उहां कउए अचल आकार बैठे हैं, सोम, सूर्य, इंद्र, वरुण, कुबेर, इनकी यज्ञकी रक्षा उहांतें लेणेहारे हैं, अरु पुण्यवान स्त्रीयांकों प्रसन्नता देणेहारे भर्त्ताके संदेसे पहुचावणेवाले हैं, सो उहां बैठे हैं, तिनकों मैं देखत भया, तिनके मध्य महाश्रीमान भुषंड बैठा है, उंची ग्रीवा किये हुए अरु वडी कांती है, जैसे नील मणि चमकती है, तैसे उसकी ग्रीवा चमकती है, अरु पूर्ण मन अरु मानी अर्थ यह जो मान करणे योग्य है, अरु श्याम सब अंग सुंदर अरु प्राण स्पंदकों जीतणेहारा नित्य अंतर्मुख अरु नितही सुखी चिरंजीवी पुरुष तहां बैठा है, जगतविषे दीर्घ आयु, जगतकी आगमापायी, जिसनें देखते देखते वहुत कल्पका स्मरण किया है, अरु इंद्रकी केई परंपरा देखियां हैं, लोकपाल वरुण कुबेर यमादिकके केई जन्म देखे हैं, देवता सिद्धके अनेक जन्म इस पुरुषनें देखे हैं,प्रसन्न अरु गंभीर अंतःकरण जिसका, अरु सुंदर है वाणी जिसकी, अरु वक्रतातें रहित निर्मम अरु निरहंकार सबकों सुहृद मित्र है, वडी कोंटर हलवेकी नांई है, जो पिता समान है, तिनकों पुत्रकी नांई है, अरु जो पुत्रके समान है, तिनकों उपदेश करणेनिमित्त पिता अरु गुरुकी नांई समर्थ होता है, अरु सर्वथा सर्व प्रकार सर्वकाल सर्वविषे समर्थ है, अरु प्रसन्न महामति हृदय पुंडरीक व्यवहारका वेत्ता है, गंभीर

ष्टसिद्धिके ऐश्वर्यसंयुक्त हैं, सो देवीया एक कालमें समागम करत भइयां, अरु विचार करत भइयां, जगत के पूज्य तुंबर अरु भैरवकों पूजत भइयां, अरु विचार किया जो सदाशिव हमारेसाथ भावसंयुक्त नहीं बोलता, अरु हमकों तुच्छ जाणता है, हम इसकों कछु अपणा भाव दिखावैं, प्रभाव दिखायेविना कोउ किसीकों नहीं जाणता, ऐसे विचार करिके उमाकों वशवरि दुराय ले गइयां, अरु उहां उत्साह किया, मद्य मांसादिक भोजन करत भइयां, अरु मायाके छल करिके पार्वतीकों मारीकरि चावलकी नांई रांधी, अरु नृत्य करणे लगियां, कछुक अंग उसके रांधे हुए सदाशिवकों आनि दिये, तब सदाशिवनें जान्या जो मेरी प्यारी पार्वती इननें मारी है, ऐसे निश्चय करिके कोपणे लगा, तब उन देवीनें अपणे अपणे अंगतें उसके अंग निकासे, सौरीनें नेत्र निकासे, कौमारीनें नासा निकासी, इह प्रकार अपणे अपणे अंग निकासीकरि तैसीही पार्वतीकी मूर्त्ति ल्याय दीनी, अरु नूतन विवाहकरि दिया, तब सदाशिव प्रसन्न भया, सर्व ठउर उत्साह आनंद किया, तब सर्व देवीयां अपणे अपणे स्थानकों गइयां, अरु चंदनाम काक जो अलंबसा देवीका वाहन था, सो ब्रह्माणीकी हंसणीसाथ क्रीडा करत भया, क्रम करिके सबसाथ रमण क्रीडा करी, तब उन सबकों गर्भ प्राप्त भये, अरु हंसिणीयां ब्रह्माणीके पास गइयां, तब ब्रह्माणीनें कहा, अब तुमकों मेरे उठावणेकी शक्ति नहीं, तुम गर्भवती भइया हो, जहां तुमारी इच्छा होवै तहां जावहु, बहुरि फिरी आवणां ॥ हे मुनीश्वर ! ऐसे कहीकरि ब्रह्माणी निर्विकल्प समाधिविषे स्थित भई, अरु नाभिसरोवर जो ब्रह्माजीका उत्पत्तिस्थान है, तहां जाय स्थित भई, तिस तालके कमलपत्रउपर आय निवास किया, जब तहां केताक काल व्यतीत भया, तब उन हंसिणीनें तीन तीन अंड दिये, जैसे वल्लीतें अंकुर उत्पन्न होता है,तैसे उनके एकविंशति अंड क्रमकरि उत्पन्न भये, तिनकों फोडत भइयां, जैसे ब्रह्मांड खपरकों फो

अरु शांतरूप महाज्ञातज्ञेय है, ऐसे पुरुषकों मैं देखत भया ॥ इति श्रीयोगवासिष्ठे निर्वाणप्रकरणे भुषंडदर्शनं नाम चतुर्दशः सर्गः ॥ १४ ॥ ॥ ॥ ॥ वसिष्ठ उवाच ॥ हे रामजी ! तिसके अनंतर मैं आकाशमार्गतें उहां आया, महातेजवान दीपकवत् प्रकाशवान मेरा शरीर, जब मैं उतर्या तब जेते कछु पक्षी बैठे थे, सो जैसे वायुकरि कमलकी पंक्ति क्षोभकों प्राप्त होती है, जैसे भूकंपकरि समुद्र क्षोभकों प्राप्त होता है, तैसे क्षोभकों प्राप्त हुए, तिनके मध्य जो भुषंड था, सो मुझकों देखत भया, सो मैं कैसा था, जो अकस्मात् गया था तौ भी उसनें मुझकों जान्या, जो यह वसिष्ठ है, ऐसे देखीकरि उठी खडा हुआ, अरु कहत भया ॥ हे मुनीश्वर ! स्वस्थ हौ क्यों अरु कुशल है क्यों ? ॥ हे रामजी ! ऐसे कहिकरि संकल्पके हाथ रचे, तिनसाथ मेरा अर्घ्यपाद्य किया, भावसंयुक्त पूजन करत भया, अरु टहलुकों दूर करिके आपही वृक्षके बडे पत्र लिये तिनका आसन रचिकरि मुझकों बैठाया, अरु कहत भया ॥ भुषंड उवाच ॥ अहो, आश्चर्य है ॥ हे भगवन् ! तुम बडी कृपाकरि दर्शन दिया है, चिरपर्यंत दर्शनरूपी अमृतकरि हम वृक्षसहित पूर्ण हो रहे हैं ॥ हे भगवन् ! मेरे पुण्य जो एकठे हुए थे, सो एकठे होकरि तुमकों प्रसन्नताके निमित्त प्रेरि ले आये हैं ॥ हे मुनीश्वर ! देवता पूजणे योग्य है, तिनके भी तुम पूज्य हौ, सो तुमारा आवणा किसनिमित्त हुआ है, इस मोहरूप संसारतें तुम ही रहे हौ, अरु अखंड सत्ता समानविषे तुम स्थित हौ, सदा पावन हौ, अभीष्ट प्रश्न यह है जो तुमारा आवणा किसनिमित्त हुआ है, इह मुछकों कहौ, आपका मनोरथ क्या है ? ॥ अर्थ इह जो क्या इच्छा है, अरु तुमारे चरणके दर्शन करिके मैं तो सब कछु जान्या है, जिननिमित्त तुमारा आवणां हुआ है, स्वर्गकी सभाविषे चिरंजीविका प्रसंग चल्या था, तब मैं शरणविषे आया था, तिसकरि तुम मुझकों पवित्र करणे आए हौं, इह तुमारे चरणके प्रताप करिके मैं जाण्या है, परंतु प्रभुके वचनरूपी अमृतके स्वादकी तुझकों इच्छा है, इसनिमित्त मैं प्रभुके मुखतें श्रवण करौं ॥ हे रामजी! इस प्रकार चिरंजीवि भुषंडनाम पक्षीनें मुझकों कहा,

ता, स्वभावमात्रविषे संतुष्ट हौं, कष्ट चेष्टातें मुक्त हौं ॥ हे ब्राह्मण ! अब हम केवल कालकों व्यतीत करते हैं, अवर जगतके इष्ट अनिष्ट हमकों चलाय नहीं सकते, न मरणेकी हमकों इच्छा है, न जीवणेकी इच्छा है, काहेतें जो जीणां मरणां शरीरकी अवस्था है, आत्माकी अवस्था नहीं, हमकों जीवणेविषे राग नहीं, मरणेविषे दोष नहीं, जैसी अवस्था आनि प्राप्त होवै, तिसीविषे संतुष्ट है ॥ हे मुनीश्वर ! ऐसे ऐसे देखे हैं, सो बहुरि भस्म हो गये हैं, तिनकी अवस्थाकों देखिकरि हमारे मनकी चपलता जाती रही है, अरु हम इस कल्पवृक्षपर बैठे हैं, कैसा कल्पवृक्ष है, रत्नकी वल्ली जिसकों लगी है, तिसपर बैठीकरि मैं प्राण अपानकी गतिकों देखता हौं,इनकी कलाकी जो सूक्ष्म गति है,तिसका मैं ज्ञाता हौं अरु दिनरात्रका मुझकों ज्ञान कछु नहीं, सत् बुद्धि करिके मैं कालकों जानता हौं, अरु सारअसारकों भले प्रकार जानता हौं ॥ हे मुनीश्वर! जेता कछु विस्तार भासता है, सो सब झूठे हैं, सत् कछु नहीं, इसी कारणतें हमकों किसी दृश्य पदार्थकी इच्छा नहीं, परम उपशम पदविषे स्थित हौं, सब जगत भी हमकों शांतरूप है, जो कोउ इस जगतजालकों आश्रय करता है, सो सुखी नहीं होता, इह जगत सब चंचल रूप है, स्थिर कदाचित् नहीं होता, इसकी अवस्थाविषे हम पत्थरवत् अचल हौं, न किसीका हमकों राग फुरता है, न दोष फुरता है, किसीकी इच्छा करै, सब जगत हमकों तुच्छ भासता है, इह सब भूतरूपी नदियां कालरूपी समुद्रविषे जाय पडतियां हैं, अरु हम कांठेपर खडे हैं, कदाचित् नहीं डूबते, अवर जेते कछु जीवभूत हैं, सो बडे डूबते हैं, केई एक तुम सारखे निकसे हुए हैं,अरु तुमारी कृपा करिके हम भी निर्विकार पदकों प्राप्त हुए हैं॥हे मुनीश्वर ! मैं निर्विकार हौं, सब जगतके क्षोभतें रहित हौं, आत्मपदकों पायकरि उपशमरूप हौं ॥ हे मुनीश्वर ! तुमारे दर्शन करिके मैं अब पूर्ण आनंदकों प्राप्त हुआ हौं, संतकी संगति चंद्रमाकी चांदनीवत् शीतल है, अमृतकी नांई आनंदकों देणेहारी है, ऐसा कवन है, जो संतके संगकरि आनंदकों प्राप्त न होवै, सब आनंद

कों वर्त्तमानकी नांई सुणाया है, अभ्यासके बलतें ॥ हे मुनीश्वर ! मेरा कोउ पुण्य था, सो फल्या है, जो तु
मारा निर्विघ्न दर्शन हुआ है, यह जो आलय अरु शाखा हैं, अरु वृक्ष हैं, सो आज पावनताकों प्राप्त हुवे
हैं, जो तुमारा दर्शन हुआ है, अब जो कछु संशय रहता है, सो पूछो, मैं कहौं ॥ ॥ वसिष्ठ उवाच ॥ हे रा
मजी ! इस प्रकार कहिकरि उसनें मेरा भली प्रकार अर्घ्यपाद्यकरि पूजन किया आदर सहित, तब मैं उस
कों कहा, हे पक्षीके ईश्वर ! तेरे उह भाई कहां हैं, जो तेरेसमान तत्त्ववेत्ता थे, सो तौ दृष्टि नहीं आते, एक
ला तूंही दृष्टि आता है ॥ ॥ भुषंड उवाच ॥ हे मुनीश्वर ! इहां मुझकों बहुत काल व्यतीत भया है, युगकी
पंक्ति व्यतीत भई है, जैसे सूर्यकों केई दिन रात्र व्यतीत हो जाते हैं, तैसे मुझकों युग व्यतीत भये हैं, केता
क काल उह भी रहे थे, समय पायकरि उननें शरीर त्यागि दिये, तृणकी नांई त्यागकरि शिव आत्मपद
कों प्राप्त हुये ॥ हे मुनीश्वर ! बडी आयुर्बला होवै, अथवा सिद्ध महंत होवै, बली होवै, अथवा ऐश्वर्यवान
होवै, काल सबकों ग्रासि लेता है ॥ ॥ वसिष्ठ उवाच ॥ हे साधो ! जब प्रलयकालका समय आता है, तब
सूर्य, चंद्रमा, वायु, मेघ यह अपणी मर्यादा त्यागि देते हैं, तब बडा क्षोभ होता है, तुझकों खेद किसी कारण
तें नहीं होता, सूर्यकी तप्तकरि अस्ताचल उदयाचल आदिक पर्वत भस्म हो जाते हैं, तिस क्षोभविषे तूं खे
दवान किसकरि नहीं होता ॥ ॥ भुषंड उवाच ॥ हे मुनीश्वर ! एक जीव जगतविषे आधारकरि रहते हैं,
एक निराधार रहते हैं, जिनकों ऐश्वर्य सेनादिक पदार्थ होते हैं, सो आधारसहित है, अरु जो इन पदार्थ
तें रहित है, सो निराधार है,सो दोनोंकों हम तुच्छ देखते हैं, सत कोउ नहीं, बडे बडे ऐश्वर्यवान बली भी हैं,
परंतु सत्य कोउ नहीं, तिनविषे पक्षीकी जात महातुच्छ है, उजाड वनविषे उनका निवास है, उहांही इनका
दाणा पाणी है, यह निरालंब है,इनकी जीविका दैवनें ऐसे बणाइ है ॥ हे भगवन् ! मैं तौ सदा सुखी हौं, अपणे
आपविषे स्थित हौं, आत्मसंतोषकरि मैं तृप्त हौं, कदाचित् इस जगतके क्षोभकरि मैं नहीं खेदकों प्राप्त हो

म एक शिखर है, मानौ सूर्य आय उदय हुआ है, ऐसा प्रकाशरूप है, तिस शिखर उपर एक बडा कल्प वृक्ष है, मानौ जगतरूपी शिखरका प्रतिबिंब आय पडा है, तिस कल्पवृक्षके दक्षिण दिशाकी और जो टा स हैं, तिसके महारत्न गुछे हैं, अरु स्वर्णके पत्र चंद्रमाके बिंबवत् जिसके फूल हैं, अरु सघन रमणीय गुछे लगे हैं, तहां एक आलय बन्या हुआ है, उहां मैं भी आगे रहि आया हौं, जब देवीजी समाधिविषे स्थित भई थी, तब मैं उहां आलणा बणायकरि स्थित भया था, चिंतामणीकी उसकौं शलाका लगी है, महारत्नसाथ बन्या है, स्वर्णवत् कुटीर बणी है, तहां तुम जाय निवास करौ, आगे भी उहां कउवेके पुत्र रहते हैं, उनका अंतर आत्मज्ञानकरि शीतल है, अरु बाह्यतें फूलफलकरि शीतल है, तहां तुम भी जायकरि स्थित होहु, तुमकों उहां भोग भी है, अरु मोक्ष भी है, खेदतें रहित तहां जाय स्थित होहु ॥ हे वसिष्ठजी ! जब इस प्रकार पितामहनें हमकों कहा, तब सबही पिताके चरण लगे, पितानें हमारा मस्तक चुंबन किया, तब हम विंध्याचल पर्वततें उडे, आकाशमार्गकों मेघके स्थान लंघे, नक्षत्रचक्र लंघे, लोकांतरके स्थान लंघिकरि ब्रह्मलोकविषे जाय प्राप्त हुए, देवीजीकों प्रणाम करत भये, भली प्रकार उसनें हमारेउपरि कृपा दृष्टिकरि, दया अरु स्नेहसहित कंठ लगाय मस्तक चुंब्या, हम भी मस्तक टेंकीकरि सुमेरुकों चले ॥ सूर्य चंद्रमाके लोककों लंघ गये, तारागण लोकपाल देवताके लोकस्थानकों लंघ गये, मेघपवनके स्थानकों लंघिकरि सुमेरुपर्वतके कल्पवृक्षपर आनि स्थित भये ॥ हे मुनीश्वर ! जिस प्रकार हम उपजे हैं, अरु जिसकरि ज्ञानकों प्राप्त भए हैं, जिस प्रकार इहां आय स्थित भये हैं, सो तुमारे आगे अखंडित कहा है, आगे तुमकों जो कछु संशय होए सो पूछो ॥ ॥ इति श्रीयोगवासिष्ठे निर्वाणप्रकरणे भुषंडोपाख्याने अस्ताचललाभो नाम षोडशः सर्गः ॥ १६ ॥ ॥ ॥ भुषंड उवाच ॥ हे मुनीश्वर ! इह चिरकालकी वार्त्ता तुमकों कही है, बहुत कल्प व्यतीत भए हैं, उह सृष्टि इस सृष्टितें दूरि है, बहुत युग व्यतीत भये हैं, परंतु मैं तुम

णीपास ले गइयां, तिसके आगे हम मस्तक टेके, तब ब्रह्माणी समाधितें उतरी थी, तब उसनें देखिकरि ह
मकों कृपाकी वृत्ति धारी, हमारे शीसपर हाथ रखा, उसके हाथ रखणेसाथ हमारी अविद्या नष्ट हो गई,
अरु हमारा मन तृप्त शांतरूप हो गया, जीवन्मुक्तपदविषे हम स्थित भये, तब हमकों यह वृत्ति फुरि आ
ई, जो किसी प्रकार एकांत ध्यानविषे स्थित होवें, देवीनें आज्ञाकरि अब तुम जावहु, तब देवीजीकी आ
ज्ञाकरि हम पितापास आये, पितानें हमकों कंठ लगाया, अरु मस्तक चुंब्या, तब हम अलंबसा देवीकी पू
जा करत भये, तब पितानें हमकों कहा ॥ हे पुत्रो! तुम संसाररूपी जालविषे तौ नहीं फसे, अरु जो तुम
निकसे नहीं फसे हौ, तब मैं भगवती देवीजीकी प्रार्थना करता हौं, उह भृत्यपर दयाल है, जैसे तुम प्राप्त
होहुगे, तैसे तुमकों प्राप्त करैगी ॥ हे मुनीश्वर! तब हमनें कहा, हे पिता, हम तौ ज्ञातज्ञेय हुए हैं, जो
कछु जानणेयोग्य है, सो जाण्या है, अरु जो पावणे योग्य है, सो हम पाया है, ब्रह्माणी देवीजीके प्रसाद
करिके अब हमकों एकांत स्थानकी इच्छा है, जहां एकांत होवै तहां जाय स्थित होवै, तब चंदापितानें
कहा ॥ ॥ हे पुत्रो! एकांत स्थान सुण, निर्दोष महापान सुंदर आलय बन्या हुआ है, निर्भय
निर्मोह सर्व क्षोभतें रहित जहां कोउ दुःख नहीं, ऐसा एकांत स्थान है, अरु सर्व रत्नकी खाण है,
अरु सर्व देवताका आश्रयरूप है, सुमेरु जो पर्वत है, सूर्य चंद्रमा उसके दीपक हैं, चउफेर फिरते हैं, ब्रह्मां
डरूपी मंडपका उह स्तंभ है, अरु स्वर्णका है, चंद्र सूर्य तिसके नेत्र हैं, अरु ताराकी कंठविषे माला है, द
शोंदिशा तिसके वस्त्र रत्नमणीका भूषण है, वृक्षवल्ली तिसके रोमावली हैं, त्रिलोकीविषे तिसकी पूजा है,
षोडश सहस्र योजन पातालविषे हैं, तहां नाग दैत्य इसकी पूजा करते हैं, अरु चउरासी सहस्र योजन ऊ
र्ध्वकों है, तहां गंधर्व देवता किन्नर राक्षस मनुष्य इसकी पूजा करते हैं, ऐसा पर्वत जंबुद्वीपके एक स्थान
विषे स्थित है, चतुर्दश प्रकारके भूतजात उसके आश्रय रहते हैं, वडा उंचा पर्वत है, तिसका पद्मराग ना

कों प्राप्त होते हैं, यह अर्थ है ॥ हे मुनीश्वर! संतका संग चंद्रमाके अमृततें भी अधिक है, काहेतें जो उह शीतल गौण है, अंतरकी तप्त नहीं मिटावती, अरु संतका संग अंतरकी तप्त मिटावता है, उह अमृत क्षीरसमुद्रके मथनतें क्षोभसाथ निकस्या है, अरु संतका संग सुखने प्राप्त होता है, आत्मानंदकों प्राप्त करता है, तातें यह परम उत्तम है, मैं तौ इसतें पर अवर उत्तम नहीं मानता, संतका संग सबतें उत्तम है, अरु संत भी उही है, जिनकी सर्व इच्छा आपातरमणीय निवृत्त भई है, अर्थ यह जो विचारविना दृश्य पदार्थ सुंदर भासता है, अरु नाशवंत है, जिनकों ऐसे पदार्थ सब तुच्छ भासते हैं, अरु सदा आत्मानंदकरि तृप्त हैं, अरु अद्वैत निष्ठा है, द्वैतकल्पनाका जिनकों अभाव भया है, सदा आत्मानंदविषे स्थित है, ऐसे पुरुष संत कहीते हैं, तिन संतकी संगति ऐसी है, जैसे चिंतामणि होता है, जिसके पायेतें सर्व दुःख नाश होते हैं ॥ हे मुनीश्वर! त्रिलोकीरूपी कमलके भंवरे एक तुमही दृष्ट आते हौ, सब ज्ञानवानतें उत्तम दृष्ट आये हौ, तुमारे वचन स्निग्ध अरु कोमल अरु आत्मरसकरि पूर्ण अरु हृदयगम्य अरु उचित है, अरु हृदय महागंभीर अरु उदार धैर्यवान सदा आत्मानंदकरि तृप्त है, तातें तुम सबतें उत्तम मुझकों दृष्टि आये हौ, तुमारे दर्शनकरि मेरे दुःख नष्ट भये हैं, आज मेरा जन्म सफल भया है, तुम सारखे संतका संग आत्मपदकों प्राप्त करता है, अरु दुःखभयकों नष्ट करिके निर्भयताकों प्राप्त करता है ॥ ॥ इति श्रीयोगवासिष्ठे निर्वाणप्रकरणे संतमाहात्म्यवर्णनं नाम सप्तदशः सर्गः ॥ १७॥ ॥ ॥ ॥ भुषंड उवाच ॥ हे मुनीश्वर! तुमनें पूछा था, जो सूर्य वायु जलका क्षोभ होता है, तब तूं खेदवान किसकरि नहीं होता, तिसका उत्तम श्रवण करहु, जब जगत्कों क्षोभ होता है, तब मेरा कल्पवृक्ष इह स्थिर रहता है, क्षोभकों यह नहीं प्राप्त होता ॥ हे मुनीश्वर! यह मेरा वृक्ष सब लोककों अगम है, भूत नष्ट होते हैं, तब भी मैं इसकरि सुखी रहता हौं, जब हिरण्यकशिपु दीपसहित पृथ्वीकों समेटिकरि पाताल ले गया था, तब भी मेरा वृक्ष कंपायमान नहीं भ

या, जब देवताका, अरु दैत्यका युद्ध हुआ, तब अवर पर्वत सब चलायमान भये, अरु मेरा वृक्ष स्थिर रहा, अरु जब क्षीरसमुद्रके मथणेनिमित्त विष्णुजी सुमेरुकों भुजासाथ उखाडनें लगे तब भी मेरा वृक्ष कंपायमान न भया, बहुरि मंदराचलकों ले गये, तब क्षीरसमुद्रकों मथणे लगे, प्रलयकालका पवन अरु मेघका क्षोभ हुआ है, तब भी मेरा वृक्ष कंपायमान नहीं भया, बहुरि एक दैत्य सुमेरुकों आय पटकणे लगा, उसनें कछुक उखाड्या परंतु मेरा वृक्ष कंपायमान नहीं भया ॥ हे मुनीश्वर ! इत्यादिक बडे बडे उपद्रव आनि हुए हैं, प्रलयकालके मेघ अरु पवन अरु सूर्य तपै है, तब भी मेरा वृक्ष स्थिर रहा है ॥ ॥ वसिष्ठ उवाच ॥ हे साधो ! जब प्रलयकालके वायु अरु मेघ आय क्षोभते हैं, तब तूं विगतज्वर कैसे रहता है ॥ ॥ भुषंड उवाच ॥ हे साधो ! जब प्रलयकालके वायु मेघादिक क्षोभ करते हैं, तब मैं कृतघ्नकी नांई अपणे आलणेकों त्यागी जाता हौं, सब क्षोभतें रहित आकाशविषे जाय स्थित होता हौं, अरु सब अंगकों संकुचाय लेता हौं, जैसे वासनाकों रोकेतें मन सकुचि जाता है, तैसे मैं अंगकों सकुचाए लेता हौं ॥ हे मुनीश्वर ! जब प्रलयकालका सूर्य तपता था, तब मैं जलकी धारणाकरि जलरूप हो जाता था, अरु जब वायु चलता था, तब पर्वतकी धारणा बांधिकरि स्थित हो जाता था, जब बहुत तत्त्वता क्षोभ होता था, तब सबकों त्यागिकरि ब्रह्मांड खपरके पार जो निर्मल परमपद है, तहां मैं जाय स्थित होता हौं, सुषुप्तिवत अचल गंभीर हो जाता हौं, जब ब्रह्मा उपजीकरि बहुरि सृष्टिकों रचता है, तब मैं सुमेरुके वृक्ष उपर इसी आलणेविषे स्थित होता हौं ॥ ॥ वसिष्ठ उवाच ॥ हे पक्षीश्वर ! जैसे तुम अखंड स्थित होते हौ तैसे अवर योगीश्वर स्थित क्यौं नहीं होते ॥ ॥ भुषंड उवाच ॥ हे मुनीश्वर ! यह परमात्माकी नीति है, सो किसीकों लंघी नहीं जाती, उन योगीश्वरकी नीति इस प्रकार हुई है, अरु मेरा होणां इसी प्रकार हुआ है, ईश्वरकी नीति अतुल है, उनविषे तुल्यता किसीकों करि नहीं जाती, जहां जैसी नीति हुई है, तहां तैसीही है, अन्यथा किसीकों नहीं होती, इसी प्रकार हमकों

भई है, जो कल्पकल्पविषे इसी पर्वतके वृक्ष उपर आलणां होता है, हम आय निवास करते हैं, ॥ वसिष्ठ उवाच ॥ हे पक्षीके नायक! तुमारी अत्यंत दीर्घ आयु, ज्ञानविज्ञानकरि संपन्न हौ, अरु योगीश्वर हौ, तुम अनेक आश्चर्य देखे हैं, तिनविषे जो स्मरणमें आता है, सो कहौ ॥ ॥ भुशुंड उवाच ॥ हे मुनीश्वर! एक वार ऐसे स्मरण आता है, जो पृथ्वीपर तृण अरु वृक्षही थे, अवर कछु न था, बहुरि एक वार एकादश सहस्र वर्षपर्यंत भस्महीं दृष्ट आवै जो वृक्ष तृण जलि गये, एक वार ऐसी सृष्टि हुई जो तिसविषे चंद्र सूर्य न उपजैं, दिन अरु रात्रकी गति कछु जाणिये नहीं, कछु कछु सुमेरुके रत्नोंका प्रकाश होवै, एक कल्प ऐसे हुआ है, जो देवता अरु दैत्यका युद्ध हुआ, दैत्यकी जीत भई, सब देवता तिननें मनुष्यकी नांई हत किये, ब्रह्मा, विष्णु, रुद्र तीनोंही देवता रहे, अवर सब सृष्टि इननें जीती, वीस युगपर्यंत तिनहीकी आज्ञा वर्ती, बहुरि एक वार ऐसे चित्त आता है, जो दो युगपर्यंत पृथ्वीपर वृक्षही रहे, अवर सृष्टि कछु न भासै, बहुरि एक वार दो युगपर्यंत पृथ्वी उपर पर्वतही सघन हो रहे, अवर कछु न भासै, अरु एक वार ऐसे हुआ, जो सब जलही हो गया, अवर कछु न भासै, एक सुमेरु पर्वत स्तंभेकी नांई भासै, अरु एक वार अगस्त्यमुनी दक्षिण दिशातें आया, अरु विंध्याचलपर्वत बढ्या, सब ब्रह्मांड चूर्णकारि दिया, यह स्मरण आता है ॥ हे मुनीश्वर! बहुत कछु स्मरण आता है, परंतु संक्षेपतें सुणो, एक कालकों सृष्टिविषे देवताही मनुष्य दैत्यादिक कछु न भासै, एक वार ऐसी सृष्टि हुई, जो ब्राह्मण मद्यपान करही अरु शूद्र वडे हो बैठें, अरु जीवविषे विपर्ययही धर्म होवैं, अरु एक वार ऐसी सृष्टि स्मरणमें आती है, जो पृथ्वीविषे पर्वत कोउ दृष्टि न आवैं, बडा उजाडही हो रहा, एक वार ऐसी सृष्टि हुई जो सूर्य चंद्रमा नक्षत्र लोकपाल कोउ न उपजा, एक सृष्टि ऐसी हुई जो सबही उपजैं, एक सृष्टि ऐसी हुई जो तिसविषे स्वामी कार्तिक न उपजा, दैत्य वधि गये, दैत्यहीका राज्य हो गया, इत्यादिक मुझकों बहुत स्मरण है, केताक कहौं, सूर्य, चंद्रमा, नक्षत्र, इंद्र

उपेंद्र लोकपाल इनके बहुत जन्म मुझकों स्मरण आते हैं, जब हिरण्यकशिपुकों हरिनें मार्या है, सो भी चित है, जो वेदकों चुराय ले आया हैं, अरु क्षीरसमुद्र मथे है, सो भी बहुत स्मरणमें आते हैं, ऐसी सृष्टि भी देखी है, जो विष्णुजीका वाहन गरुड हुआ नहीं, अरु ब्रह्माजी हंसवाहनाविना हुआ है, अरु रुद्र बैल वाहनविना हुआ है, इसतें आदिलेकरि बहुत कछु देखा है, क्या क्या तुमारे आगे वर्णन करों? ॥ इति श्रीयोगवासिष्ठे निर्वाणप्रकरणे भुषंडोपाख्याने जीवितवृत्तांतवर्णनं नाम अष्टादशः सर्गः ॥ १८ ॥ ॥

॥ भुषंड उवाच ॥ हे मुनीश्वर! जब बहुरि सृष्टि उत्पन्न भई, तब तुम उत्पन्न हुए भारद्वाज पुलस्त्य नारद इंद्र मरीचि उद्दालक क्रित भृगु अंगिरा सनत्कुमार भृगेश आदिक उपजें, बहुरि सुमेरु मंदराचल कैलास हिमालय आदिक पर्वत उपजें, अत्रि व्यासदेव वाल्मीक इत्यादिक यह जो अल्पकालके उपजे हैं ॥ हे मुनीश्वर! तुम ब्रह्माके पुत्र हौ, तुमारे आठ जन्म मुझकों स्मरण आते हैं, कबी तुम आकाशतें उपजे हौ, कबहूं जलतें उपजे हौ, कबहूं पहाडतें, कबहूं पवनतें, कबहूं अग्नितें उपजे हौ ॥ हे मुनीश्वर! मंदराचल पर्वत क्षीरसमुद्र विषे पाएकरि जब मथणे लगे हैं, तब देवता अरु दैत्य क्षोभवान हुए मंदराचल अधकों चला जाता है, तब विष्णुजी कछुवाका रूप धारी पर्वतकों ठहरावत भये, अरु अमृतकों निकास्या, सो मुझकों द्वादशवार स्मरणमें आता है, अरु तीनवार हिरण्यकशिपु पृथ्वीकों समेटी ले गया है, पातालविषे अरु षष्ठवार परशुराम रेणुका माताका पुत्र हुआ है, बहुत सृष्टिके पाछे हुआ है, जब दैत्य क्षत्रियके गृहविषे उपजणे लगे तिसनिमित्त विष्णुजी परशुरामका अवतार लेत भया, बहुत काल युगके व्यतीत हो गए हैं ॥ हे मुनीश्वर! एक सृष्टि ऐसी भई है, जो अगलेतें विपर्ययरूप शास्त्र अरु पुराणके अर्थ अवर अवर प्रकारके, अरु एक कल्पविषे अवरही पाठ अवरही युक्ति, अवरही अर्थ, काहेतें जो युग युग प्रति अवरही पुराण होते हैं, केई देवता करते हैं, केई ऋषीश्वर मुनीश्वर कहते हैं, अवर कथा इतिहास बहुत स्मरणमें आते हैं, वाल्मीकनें द्वादश

वार रामायण कीनी हैं, सो विस्मरण हो गया है, जगतविषे दो वार महाभारत व्यासनें किये हैं, अरु यह जो व्यासनामा जीव है, तिसनें सप्तवार किया है ॥ हे मुनीश्वर ! इस प्रकार आख्यान कथा इतिहास शास्त्र जो जो हुए हैं, सो मुझकों बहुत स्मरणमें आते हैं ॥ हे साधो ! दैत्यके मारणेनिमित्त विष्णुजीनें अवतार धरे हैं, युग युग प्रति एकादश वार मुझकों रामजी स्मरणमें आता है, अरु वसुदेवके गृहविषे पृथ्वीके भार उतारणेनिमित्त कृष्णजीनें सोलह वार अवतार लिए हैं, सो मुझकों स्मरण है, तीन वार नरसिंह अवतार धारिकरि हिरण्यकशिपुकों मारा है, हे मुनीश्वर ! इस प्रकार मुझकों अनेक सृष्टि स्मरण आती है, परंतु सबही भ्रममात्र है, कछु उपजती नहीं, जब आत्मतत्त्वविषे देखता हौं, तब सृष्टि कछु नहीं भासतियां; सब सत्तामात्र है, जैसे जलविषे बुदबुदे उपजीकरि लीन हो जाते हैं, तैसे आत्माविषे मनके फुरणेकरि केई सृष्टि उपजतियां हैं, अरु लीन हो जातियां हैं, तिस फुरणेकरि केई सृष्टि देखियां हैं,केई सदृश्यही उपजतियां हैं, केई अर्धसदृश, केई विपर्ययरूप उपजतियां हैं ॥ हे मुनीश्वर ! केई सृष्टिविषे उनही जैसे आकार अरु उनही जैसे कर्म आचार होते हैं, केई मन्वंतर मन्वंतरप्रति अवरही अवर सृष्टि होतियां हैं, किसीविषे ऐसे होता है, पुत्र पिता हो जाता है, शत्रु मित्र हो जाता है, बांधव अबांधव अरु अबांधव बांधव हो जाता है, इस प्रकार विपर्यय होते दृष्ट आये हैं, हेमलतावान कबहूं इसही कल्पवृक्षपर हमारा आलय होता है, कबहूं मंदराचलविषे, कबहूं हिमालय पर्वतविषे, कबहूं मालव पर्वतविषे हमारा आलय होता है, इसी प्रकार वन वृक्ष वल्लीउपर हो जाता है, कबहूं इसी कल्पवृक्षउपर हो जाता है, अब तौ बहुत काल हुवा है, जो इसी कल्पवृक्षपर होता है, अरु इसी आलयविषे हमारा निवास होता है, जब सृष्टि नाश हो जाती है, तब भी मेरा यही शरीर रहता है, मैं आसन लगाएकरि अपणी पुर्यष्टककों ब्रह्मसत्ताविषे स्थिति करता हौं, इसी कारणतें मुझकों बहुरि यही शरीर प्राप्त होता है ॥ हे मुनीश्वर ! यह जगत सब संकल्पमात्र है, जैसा संकल्प फुर

ता है, तैसा आगे जगत हो भासता है, यह जगत सत्य भी नहीं, असत्य भी नहीं, केवल भ्रमरूप है, तिस जगतभ्रमविषे अनेक आश्चर्य दृष्ट आते है, पिता पुत्र हो जाता है, मित्र शत्रु हो जाता है, स्त्री पुरुष हो जाती है, पुरुष स्त्री हो जाता है, अनेकवार ऐसे होते हैं, कबहुं कलियुगविषे सतयुग वर्तणे लागता है, सत्ययुगविषे कलियुग वर्तणे लागता है, द्वापरविषे त्रेता, त्रेताविषे द्वापर वर्तणे लगता है, अदृश्यही वेदविद्याके अर्थ होते हैं, नानाप्रकारके आश्चर्य भासते हैं ॥ हे मुनीश्वर! सहस्त्र चोकडी युगकी व्यतीत होती है, तव ब्रह्माजीका एक दिन होता है, सो दो दिन ब्रह्मा समाधिविषे जुडी रहा, सृष्टि शून्यही रही, यह भी स्मरण आता है, अवर भी केई देश क्रिया विचित्ररूप चित्त आते हैं, क्या क्या कहों ॥ ॥ इति श्रीयोगवासिष्ठे निर्वाणप्रकरणे चिरअतीतवर्णनं नाम एकोनविंशतितमः सर्गः ॥ १९ ॥ ॥ ॥ ॥ वसिष्ठ उवाच ॥ हे रामजी! इस प्रकार जब भुषंडने कहा, तब मैं बहुरि जिज्ञासाके अर्थ पूछत भया, जो हे पक्षीके ईश्वर! तूं चिरपर्यंत जगतविषे व्यवहार करता रहा है, तेरे शरीरकों मृत्युनें किसनिमित्त ग्रास न किया ॥ ॥ भुषंड उवाच ॥ हे मुनीश्वर! तूं सर्व जाणता है, परंतु ब्रह्मजिज्ञासा करिके पूछता है, तातें जैसे भृत्य टहलुआ वेदार्थ पढीकरि बहुरि गुरुके आगे कहते हैं, तैसे मैं आज्ञा मानीकरि कहता हों ॥ हे मुनीश्वर! मृत्यु जिसकों मारता है, अरु जिसकों नहीं मारता, सो श्रवण करहु, दुःखरूपी जो मोती है, सो वासनारूपी तंतुसाथ पराए हैं, इह माला जिसके हृदयरूपी गलेविषे पडी हुई है, तिसकों मृत्यु मारता है, अरु जिसके कंठविषे इह माल पडी नहीं, तिसकों मृत्यु नहीं मारता, शरीररूपी वृक्ष है, अरु चित्तरूपी सर्प तिसविषे बैठा है, आशारूपी अग्नि जिस वृक्षकों नहीं जलावता, सो मृत्युके वश नहीं होता, अरु रागदोषरूपी विषसों पूर्ण जो चित्तरूपी सर्प हैं, अरु तृष्णाकरि चूर्ण होता है, लोभरूपी व्याधकरि नष्ट होता है, तिसकों मृत्यु मारता है, अरु ग्रासि लेता है, जिसकों इनका दुःख नहीं स्पर्श करता, तिसकों मृत्यु भी नहीं नाश करता ॥ हे मुनीश्वर! शरी

रूपी समुद्र है, क्रोधरूपी वडवाग्निकरि जलता है, जिसकों क्रोधरूपी अग्नि नहीं जलावता, तिसकों मृत्यु भी नहीं मारता, जिसका मन परमपावन निर्मल पदविषे दृढ विश्रांत स्थित हुआ है, तिसकों मृत्यु नाश नहीं करता है॥ हे मुनीश्वर! काम, क्रोध, लोभ, मोह, भय, तृष्णा, चिंता, चंचलता, अभिमान, प्रमाद, इत्यादिक दुःख जिसविषे होते हैं, तिसकों मृत्यु मारता है, अरु जिसकों काम क्रोध लोभादिक रोग संसारबंधनका कारण बांधि नहीं सकते,अरु जो इनकरि लेपायमान नहीं होता, तिसकों आधिव्याधिरूपी मल जिसकों स्पर्श नहीं करती,तिसकों अरु जो लेता है,देता है, सब कार्य करता है, अरु चित्तविषे अनात्मअभिमान स्पर्श नहीं करता, तिसकों अरु जो पुरुष इष्टकी वांछा नहीं करता, अनिष्टविषे दोष नहीं करता, दोनोंकी प्राप्तिविषे सम रहता है,तिसकों समाहतचित्त कहते हैं॥ हे मुनीश्वर! जेते कछु ऐश्वर्यवान सुंदर पदार्थ हैं, सो सब असत्‌रूप हैं,चक्रवर्त्ती राजा अरु स्वर्गविषे गंधर्व विद्याधर किन्नर देवता तिनकी स्त्री गण अरु सुरकी सेना आदिक सब नाशरूप हैं, मनुष्य दैत्य देवता असुर पहाड ताल समुद्र नदियां जेते कछु बडे पदार्थ हैं, सो सबही नाशरूप हैं, स्वर्गलोक पृथ्वीलोक पाताललोक जेता कछु जगत है, भोग हैं, सो सब असत्‌रूप हैं, अरु अशुभ हैं, कोउ पदार्थ श्रेष्ठ नहीं, न पृथ्वीका राज्य श्रेष्ठ है, न देवताका रूप श्रेष्ठ है, न नागका पाताललोक श्रेष्ठ है, न कछु शास्त्रका विचारणा श्रेष्ठ है, न काव्यका जानणा श्रेष्ठ है, न पुरातन कथाके क्रम वर्णन करणे श्रेष्ठ हैं, न बहुत जीणा श्रेष्ठ है, न मूढताकरि मर जाणा श्रेष्ठ है, न नरकविषे पडना श्रेष्ठ है, न इस त्रिलोकीविषे अवर कोउ पदार्थ श्रेष्ठ है, जहां संतका मन स्थित है, सोइ श्रेष्ठ है, यह नानाप्रकारका जगतक्रम चलरूप है, जो ज्ञानवान पुरुष है, सो मूढ होकरि चल पदार्थविषे नहीं रमते, उह बहुत जीणेकी इच्छा भी नहीं करते॥ ॥इति श्रीयोगवासिष्ठे निर्वाणप्रकरणे भुषंडोपाख्याने संकल्पनिराकरणं नाम विंशतितमः सर्गः॥ २०॥ ॥ ॥भुषंड उवाच॥ हे मुनीश्वर! केवल एक आत्मदृष्टि सबतें श्रेष्ठ है, जिसके

पायेतें सर्व दुःख नाश होते हैं, अरु परमपदकों प्राप्त होते हैं, सो आत्मचिंतवन सर्व दुःखका नाश करता है, चिरकालके तीन तापकरि तप्या जो जीव है, अरु जन्मके मार्गकरि थका हुआ है, तिसके श्रमकों दूर करती है, अरु तप्तता मिटावती है, समस्त दुःखकों जो अविद्या सत्ता अनर्थ प्राप्त करणेहारी है, तिसकों नाश करती है, जैसे अंधकारकों प्रकाश नाश करता है, तैसे इसके अंतर शीतल प्रकाश उपजाती है ॥ हे भगवन्! ऐसी जो आत्मचिंतवना है, सो सब संकल्पतें रहित है, सो तुम सारखेकों सुगम प्राप्त है, अरु हम सारखेकों कठिन है, काहेतें जो सम सत्कलनातें अतीत है ॥ हे मुनीश्वर! तिस आत्मचिंतनकी सखी अवर भी कोउ इसकों प्राप्त होवै, तौ इसका ताप मिटि जावै, अरु महाशीतल होवै, तिनविषे मुझकों एक सखी प्राप्त भई है, सब दुःखका नाश करती है, सब सोभाग देणेहारी, अरु जीणेका मूल है, ऐसी प्राण चिंता मुझकों प्राप्त भई है ॥ हे रामजी! जब इस प्रकार मुझकों काक भुषंडनें कहा, तब मैं जाणता हुआ भी क्रीडाके निमित्त बहुरि पूछा, जो हे सर्व संशयके छेदणेहारे, चिरंजीवी पुरुष सत् कहौ, प्राणचिंता किसकों कहते हैं ॥ ॥ भुषंड उवाच ॥ हे सर्व वेदांतके वेत्ता, सर्व संशयके नाशकर्त्ता, मुझकों उपहासके निमित्त पूछाता है, तूं तौ सब कछु जाणता है, परंतु तुमतें शिक्षा मैं कहता हौं, गुरुके आगे कहणाभी कल्याणके निमित्त है, भुषंडकों जीवणेका कारण अरु भुषंडकों आत्मलाभ देणेहारी प्राणचिंता कहाती है ॥ हे भगवन्, इसी दृष्टिकों आश्रय करिके मैं परम पदकों प्राप्त भया हौं, बंधन मुझकों कहूं नहीं होता, बैठते चलते जागते सोते सब ठौर, सब अवस्थाविषे मेरा चित्त सावधान रहता है, इस कारणतें बंधन कोउ नहीं होता ॥ हे मुनीश्वर! प्राण अरु अपानके संसरणेकी गति मैं पाई है, तिस युक्तिकरि मुझकों आत्मबोध हुआ है, तिस बोधकरि मेरे मदमोहादिक विकार नष्ट हो गये हैं, अरु शांतरूप होकरि स्थित भया हौं, हे मुनीश्वर! जिसकों प्राण अपानकी गति प्राप्त भई, सो सब आरंभ कर्मकों करै, अथवा सब आरंभका त्याग करै, परंतु

सदा शांतरूप है, सुखसाथ तिसका काल व्यतीत होता है ॥ हे मुनीश्वर ! प्राण जो उपजता है, सो हृद यकोटतें उपजता है, उपजीकरि द्वादश अंगुलपर्यंत बाहिर जाता है, तहां जायकरि स्थित होता है, तिस ठौरतें अपानरूप होकरि उदय होता है, सो अंतर आता है, हृदयविषे आइकरि स्थित होता है ॥ हे मुनी श्वर ! बाह्य आकाशके सन्मुख जो प्राण जाता है, सो अग्निमुखवत् उष्ण होता है, अरु जो हृदयाकाशके सन्मुख आता है, सो शीतल नदीके प्रवाहवत् आता है, अपान चंद्रमारूप है, अरु बाहिरतें अंतर आता है, अरु जो अंतरतें बाहिर जाता है, सो प्राण है, अग्नि उष्ण सूर्यरूप है, प्राणवायु हृदयाकाशकों तपाता है, अरु अन्नकों पचावता है, अरु अपना हृदयकों शीतल करता है, चंद्रमाकी नांईं है ॥ हे मुनीश्वर ! अपा नरूपी चंद्रमा जब प्राणरूपी सूर्यविषे लीन होता है, तहां साठ तत्त्व हैं, तिनविषे मन स्थित हुआ बहुरि शोककों नहीं प्राप्त होता, अरु प्राणरूपी सूर्य जब अपानरूपी चंद्रमाके घरविषे जाय लीन होता है, तिस अवस्थाविषे मन स्थित हुआ बहुरि जन्मका भागी नहीं होता ॥ हे मुनीश्वर ! सूर्यरूप जो प्राण है, उसने अपणे सूर्यभावकों त्यागया, अरु अपानरूप चंद्रमाकों जबलग नहीं प्राप्त भया, तिस अवस्थाके देशकाल कों विचारे तब बहुरि शोककों नहीं प्राप्त होता, सब भ्रम नाश हो जाता है, अरु द्वादश अंगुलपर्यंत जो आकाश है, तिसतें अपानरूपी चंद्रमा उपजीकरि हृदयविषे प्राणरूपी सूर्यमें लीन होता है, अरु सूर्यभाव कों जबलग नहीं प्राप्त होता, तिसके मध्य भाव अवस्थाविषे जिसका मन लागा है, सो परम पदकों प्राप्त होता है, हृदयविषे चंद्रमा अरु सूर्यके अस्तभाव अरु उदयभावका यह ज्ञाता हुआ, अरु इसका आधार भूत जो आत्मा है तिसकों जान्या, तब मन बहुरि नहीं उपजता ॥ हे मुनीश्वर ! प्राण अपानरूपी जो हृद य आकाशविषे सूर्य चंद्रमा उदय अरु अस्त होते हैं, तिनके प्रकाशकरि हृदयविषे भास्कर देव है, तिस कों जो देखता सोइ देखता है, अरु बाहार जो सूर्य प्रकाशता है, कबहूं अंधकार होता है, तब प्रकाशके उ

दय हुए अरु तमके क्षीण हुए कछु सिद्धता नहीं होती, परंतु जब हृदयका तम दूर होता है, तब परम सिद्धताकों प्राप्त होता है, बाहारके तम नष्ट हुए लोककों प्रकाश होता है, अरु हृदयके तम नष्ट हुए आत्मप्रकाश उदय होता है, अरु अज्ञान अंधकारका अभाव हो जाता है, परम पदकों जाणिकरी मुक्त होता है. प्राण अपानकी युक्ति जाणेतें तम नष्ट हो जाता है ॥ हे मुनीश्वर! प्राण अपानरूपी जो चंद्रमा अरु सूर्य है, सो यत्न विना उदय अरु अस्त होते हैं, जब प्राणरूपी सूर्य हृदयकोटतें उपजीकरि बाहरकों गमन करता है, तब उसी क्षण अपानरूपी चंद्रमाविषे जाय लीन होता है, अपानरूपी चंद्रमा उदय हो आता है, अरु जब अपानरूपी चंद्रमा हृदय कोटविषे प्राणवायुरूपी सूर्यविषे आनि स्थित होता है; तब उसी क्षणविषे प्राणरूपी सूर्य उदय होता है, प्राणके अस्त हुए अपान उदय होता है, अरु अपानके अस्त हुए प्राण उदय होता है, जैसे छायाके अस्त हुए धूप उदय होता है, अरु धूपकके अस्त हुए छाया उदय होती है, तैसे प्राण अपानकी गति है ॥ हे मुनीश्वर! जब हृदय कोटतें प्राण उदय होता है, तब प्राणका रेचक होणे लगता है, अरु अपानका पूरक होणे लगता है, जब जाणकरि अपानविषे स्थित हुआ, तब अपानका कुंभक होता है, तिस कुंभकविषे जब यह स्थित होता है, तब बहुरि तीन तापकरि नहीं तपता, जब अपानका रेचक होता है, तब प्राणका पूरक होणे लगता है, जब अपान जाय स्थित होता है तब प्राणका कुंभक होता है, तिसविषे जब स्थित होता है, तब बहुरि तीन पापकरि तपायमान नहीं होता ॥ हे मुनीश्वर! प्राण अपानके अंतर जो शांतरूप आत्मतत्त्व है, तिसविषे जब स्थित होता है, तब तपायमान नहीं होता, जब अपान आय स्थित होता है, अरु प्राण उदय नहीं भया, तिस अवस्थाविषे जो साक्षीभूत सत्ता है, सो आत्मतत्त्व है, तिसविषे जब स्थित होता है तब बहुरि सो कठिन नहीं होता, जब अपानके स्थानविषे प्राण जाय स्थित होता है, अरु अपान जबलग उदय नहीं भया, तहां जो देश काल अवस्था है, तिसविषे मन स्थित होता है, तब मनका

मनत्वभाव जाता है, बहुरि नहीं उपजता ॥ हे मुनीश्वर ! प्राण जो स्थित होता है अपानविषे, अरु अपान उदय नहीं भया, उह कुंभक है, अरु अपान आनि प्राणविषे स्थित भया है, प्राण जबलग उदय नहीं भया, उह जो कुंभक है, तिसविषे जो शांत तत्त्व है, सो आत्माका स्वरूप है, सो शुद्ध है, परम चैतन्य है, जो तिसकों प्राप्त होता है, सो बहुरि शोकवान नहीं होता, जैसे पुष्पविषे गंधसाथ प्रयोजन होता है, तैसे प्राण अपानके अंतर जो अनुभवतत्त्व स्थित है, तिससाथ प्रयोजन है, सो न प्राण है, न अपान है, तिस अनुभव आत्मतत्त्वकी हम उपासना करते हैं, प्राण क्षयकों प्राप्त होता है अपानकोटविषे, अरु अपान क्षय होता है प्राणकोटविषे, तिस प्राण अपानके मध्यविषे चिदात्मा है, तिसकी हम उपासना करते हैं ॥ हे मुनीश्वर ! प्राणका जो प्राण है, अरु अपानका जो अपान है, जीवका जीव है, अरु देहका आधारभूत है, ऐसा चिदात्मा है, तिसकी हम उपासना करते हैं, जिसविषे सर्व हैं, जिसतें यह सर्व है, अरु जो यह सर्व है, ऐसा जो चिदात्मा है, तिसकी हम उपासना करते हैं, जो सर्व प्रकाशका प्रकाश है, अरु सर्व पावनका पावन है, अरु सर्व भाव अभाव पदार्थका आपका अपणां आप है, तिस चिदात्माकी हम उपासना करते हैं,जो पवन परस्पर हृदयविषे संपुटरूप है, तिसविषे स्थित जो साक्षीरूप है, अरु अंतर बाहिर सब ठौर उही है, तिस चिदात्माकी हम उपासना करते हैं, जब अपान अस्त होता है, अरु प्राण उपजा नहीं, तिस क्षणविषे कलंकतें रहित है, तिस चेतनतत्त्वकी हम उपासना करते हैं, जब प्राण अस्त होता है, अरु अपान उपजा नहीं, ऐसा जो नासिकाके अग्रविषे शुद्ध आकाश है, तिसविषे जो सत्यता है, तिस चिद्सत्यताकी हम उपासना करते हैं, जो प्राण अपानके उत्पत्तिका स्थान है, अंतर बाहिर सर्व उरतें व्याप्या है,सब योगकलाका आधारभूत है, तिस चिद्तत्त्वकी हम उपासना करते हैं, जो प्राण अपानके रथपर आरूढ हैं; अरु शक्तिका शक्तिरूप है, तिस चिद्तत्त्वकी हम उपासना करते हैं ॥ हे मुनीश्वर ! जो संपूर्ण कला कलं

कतें रहित, अरु सर्व कला जिसके आश्रय हैं, ऐसा जो अनुभवतत्त्व है, सर्व देवता जिसकी शरणकों प्राप्त होते हैं, तिस आत्मतत्त्वकी हम उपासना करते हैं ॥ ॥ इति श्रीयोगवासिष्ठे निर्वाणप्रकरणे भुशुंडोपाख्याने प्राणापानसमाधिवर्णनं नाम एकविंशतितमः सर्गः ॥ २१ ॥ ॥ ॥ ॥ भुशुंड उवाच ॥ हे मुनीश्वर! इस प्रकार मैं प्राणसमाधिकों प्राप्त हुआ हौं, इस क्रम करिके मैं आत्मपदकों प्राप्त हुआ हौं, इस निर्मल दृष्टिकों आश्रय करिके स्थित हौं, एक निमेष भी चलायमान नहीं होता, सुमेरु पर्वतकी नांई स्थित हौं, चलता हुआ भी स्थिर हौं, जागृतविषे भी सुषुप्त हौं, स्वप्नविषे भी स्थित हौं, सर्वदा आत्मसमाधिविषे लगा रहता हौं, विक्षेप कदाचित् नहीं होता ॥ हे मुनीश्वर! नित्य अनित्य भावकरि जो जगत स्थित है, तिसकों त्यागिकरि मैं अंतर्मुख अपणे आपविषे स्थित हौं, अरु प्राण अपानकी कला जो तुमारे विद्यमान कही है, सो तिसका सदा ऐसेही प्रवाह चल्या जाता है, तिसविषे अयत्नसमाधि है, इसकरि मैं सदा सुखी रहता हौं, कष्ट कछु नहीं होता, अरु जिसकों यह कला नहीं प्राप्त भई, सो कष्ट पाता है ॥ हे मुनीश्वर! अज्ञानी जो जीव हैं, महाप्रलयपर्यंत संसारसमुद्रविषे डूबते हैं, निकसी बहुरि डूबते, इसी प्रकार पडे गोते खाते हैं, अरु जिन पुरुषनें पुरुषार्थकरि आत्मपद पाया है, सो सुखसाथ विचरते हैं ॥ हे मुनीश्वर! भूत कालकी मुझकों चिंता नहीं, अरु भविष्यकालकी इच्छा नहीं, वर्त्तमानविषे यथाप्राप्त रागदोषतें रहित होकरि विचरता हौं, सुषुप्तकी नांई स्थित हौं, तातें केवल स्वरूपविषे स्थित हौं, भाव अभाव पदार्थतें रहित अपणे आपविषे स्थित हौं, इस कारणतें चिरंजीवता हौं, अरु दुःखतें रहित हौं, प्राण अपानकी कलाकों सम करिके स्वरूपविषे स्थित हौं, इस कारणतें निर्दुःख जीवता हौं, आज यह कछु पाया है, अरु यह काल पाउंगा, यह चिंता दूर गई है, इस कारणतें निर्दुःख जीवता हौं, न किसीकी उत्पत्ति करता हौं, न कदाचित् निंदा करता हौं, अरु सर्व आत्मस्वरूप देखता हौं, इस कारणतें सुखी जीवता

हौं, इष्टकी प्राप्तिविषे मैं हर्षवान नहीं होता, अनिष्टकी प्राप्तिविषे शोकवान नहीं होता, इस कारणतें निर्दुःख चिरंजीवता हौं, मैं परम त्याग किया है, सर्व आत्मभाव देखता हौं, जीवभाव दूरी हो गया है, इस कारणतें अदुःख जीता हौं ॥ हे मुनीश्वर! मनकी चपलता मिटि गई है, अरु रागदोष दूर हो गए हैं, मन शांतिकों प्राप्त भया है, इस कारणतें अरोग जीता हौं, काष्ठ अरु सुंदर स्त्री अरु पहाड तृण अग्नि स्वर्ण सर्वत्र समभाव देखता हौं, तातें निर्दुःख जीता हौं, अब हे मुनीश्वर! जरा मरणके दुःखविषे अरु राज्यलाभके सुखविषे शोकहर्षतें रहित समभावविषे स्थित हौं, तातें निर्दुःख जीता हौं, यह मेरे बांधव हैं, यह अन्य है, यह मैं हौं, यह मेरा है, यह कलना मुझकों कछु नहीं, तातें सुखी जीता हौं, आहार व्यवहार करता हौं, बैठता चलता सुंघता स्पर्श करता स्वास लेता हौं, परंतु यह जो अभिमान है, मैं देह हौं, इस अभिमानतें रहित सुखी जीता हौं, इस संसारकी उरतें सुषुप्तरूप हौं, अरु इस संसारकी गतिकों देखीकरि हसता हौं, जो है नहीं, यह आश्चर्य है, इस कारणतें निर्दुःख जीता हौं ॥ हे मुनीश्वर! सर्वदा काल सर्व प्रकार सर्व पदार्थविषे सम बुद्धि हौं, विषमता मुझकों कछु नहीं भासती, न किसीकरि सुखी होता हौं, न दुःखी होता हौं, जैसे हाथ पसारीयें तौ भी शरीर है, अरु संकोचियें तौ भी शरीर है, इस प्रकार मैं सर्वात्मा आपकों जान्या है, तातें मुझकों दुःख कोउ नहीं, मेरी बोली अरु निश्चय स्निग्ध अरु कोमल सबकों हृदयगम्य है, सर्वत्र जो ऐसे रेखता हौं, इस कारणतें निर्दुःख जीता हौं, चरणतें आदि मस्तकपर्यंत देहविषे मुझकों ममता नहीं, अहंकाररूपी चीकडसों निकस्या हौं, इस कारणतें अरोग जीता हौं, कार्यकर्ता अरु भोजनकर्ता भी दृष्ट आता हौं, परंतु मेरे मनविषे निष्कर्मता दृढ है, इस कारणतें निर्दुःख जीवता हौं ॥ हे मुनीश्वर! समर्थता करिके कार्य करौं, तौ भी मुझकों अभिमान नहीं, अरु दरिद्री होउं, तौ भी संपत्ति सुखकी इच्छा नहीं, किसीविषे आसक्त नहीं होता, इस कारणतें अदुःख जीता हौं, इस असत्यरूप शरीरके नाश हुए अभिमान

नाश नहीं होता, अरु भूतका समूह सब असत्यरूप है, आत्मा सत्यरूप है, ऐसे जाणिकरि मैं स्थित हौं, इस कारणतें सुखसों जीता हौं; आशारूपी फांसीतें मुक्त चित्तकी वृत्ति समाहत हुई है, अनात्मविषे आत्म अभिमानकी वृत्ति नहीं फुरती, इस कारणतें सुखी जीता हौं ॥ हे मुनीश्वर ! मैं जगत्कों असत्य जान्या है, अरु आत्माकों सत्य हाथविषे बीलफलवत् प्रत्यक्ष जान्या है, इस जगतविषे सुषुप्त प्रबुद्ध हौं, तिस कारणतें निर्दुःख जीता हौं, सुखकों पायकरि सुखी नहीं होता, दुःखकों पायकरि दुःखी नहीं होता, सर्वका परममित्र हौं, इस कारणतें मैं निर्दुःख जीता हौं, आपदाविषे अचलचित्त हौं, संपदाविषे सब जगत्का मित्र हौं; भावअभावकरि ज्योंका त्यों हौं, इस कारणतें सदा सुखी जीता हौं, न परिच्छिन्न अहं मैं हौं, न कोउ अन्य है, न कोउ मेरा है, न मैं किसीका हौं, इह भावना मेरे चित्तविषे दृढ है, तिस कारणतें सुखी जीता हौं, बहुरि कैसा हौं, मैंही जगत हौं, मैंही आकाश हौं, देश काल क्रिया सब मैंही हौं, इह निश्चय मुझकों दृढ है, तातें अरोग जीता हौं, घट भी चेतन है, पट भी चेतन है, रथ भी चेतन है, इस सब चेतन तत्त्व है, यह निश्चय मुझकों दृढ है, इस कारणतें अदुःख जीता हौं ॥ हे मुनिशार्दूल ! यह सब मैं तुझकों कहा है, भुषंडनाम काक त्रिलोकीरूपी कमलका भंवरा है, तिसनें कहा ॥ ॥ इति श्रीयोगवासिष्ठे निर्वाणप्रकरणे भुषंडोपाख्याने चिरंजीविहेतुकथनं नाम द्वाविंशतितमः सर्गः ॥ २२ ॥ ॥ भुषंड उवाच ॥ हे मुनीश्वर ! जैसा मैं हौं, तैसा तुमारे आगे कहा है, सो तुमारे आज्ञाके सिद्धि अर्थ कहा है, नहीं तौ गुरुके आगे कहणां भी ढिठाई है, तुम ज्ञानके पारगामी हौ ॥ ॥ वसिष्ठ उवाच ॥ हे भगवन् ! आश्चर्य हैं, आश्चर्यतें आश्चर्य है, तुमनें श्रवणका भूषण कहा है, आत्म उदितरूप वचन जो तुम कहे हैं, सो परम विस्मयका कारण है ॥ हे भगवन् ! तुम धन्य हौ ! तुम महात्मा पुरुष हौ, चिरंजीविके मध्य तुम मुझकों साक्षात् दूसरे ब्रह्मा भासते हौ, आज हम भी धन्य हैं, जो तुमारे सारखे महापुरुषके मुखतें आत्मउदित इस प्रकार सुन्या है, जैसे मैं पूछा तैसे

तुमनें कहा ॥ हे साधो ! मैं सब भूमिलोक देख्या है, अरु दिशागण देखे हैं, आकाशलोक देख्या है, पाताल लोक देखा है, त्रिलोकी देखी है, तुम सारखा कोउ विरला है, जैसे बांस बहुत है, मोतीवाला विरला होता है, तैसे तुम सारखे विरले हैं ॥ हे साधो ! आज हम पुण्यरूप हुए हैं, हमारी देह आज पवित्र हुई है, जो तुम सारखे मुक्त आत्माका दर्शन हुआ है ॥ हे रामजी ! इस प्रकार कहीकरि बहुरि कहा ॥ हे साधो ! अब हम जाते हैं, हमारे मध्यान्हका समा हुआ है, सप्तर्षिके मध्य जाते हैं, जब मैं ऐसे कहा तब कल्पलतातें उठी खडा हुआ, अरु संकल्पके हाथ करिके उसनें स्वर्णका पात्र रचिकरि मोती रत्नसाथ भार्या, मुझकों अर्घ्य पाद्य किया, पूजन करत भया, जैसे त्रिनेत्र सदाशिवकी पूजा करता है, तैसे चरणतें लेकरि मस्तकपर्यंत मेरा पूजन किया, अरु बहुत नम्र होकरि प्रणाम किया, अरु मैं उसकों प्रणाम किया, इस प्रकार परस्पर नमस्कार करिके मैं उहांतें उठि खडा हुआ, अरु आकाशमार्गकों चला, जैसे पक्षी उडता है, तैसे मैं उडा, उह भी मेरे साथ उडा, परस्पर हम दोनों हाथ ग्रहण किये, एक योजनपर्यंत चले गये, तब मैं उसकों कहा ॥ हे साधो ! तुम अब इहांहीतें फिरो, वारंवार कहिकरि उसकों स्थित किया, मैं चल्या गया, जबलग मैं उसकों दृष्ट आता रहा तबलग उह देखता रहा, जब मैं दृष्ट आणेतें रहा तब उह अपणे स्थानमें जाय बैठा, मैं सप्तर्षिके मंडलविषे आय स्थित भया, अरुंधतिकरि पूजित हुआ ॥ हे रामजी ! यह भुशुंडके वचन मैं तुझकों आश्चर्यरूप सुणाये हैं, अब भी सुमेरुके श्रृंग उपर उस कल्पवृक्षकी लताविषे कल्याणरूप सम स्थित है, अरु शांतिरूप है, मान्य करणेकों योग्य है; अरु सदा समाधिवान है, ऐसा पुरुष अबलग उहांही स्थित है ॥ हे रामजी ! इह हमारा अरु उसका समागम जब सत्ययुगके दो सौ वर्ष व्यतीत हुए थे तब हुआ था, अब सत्ययुग क्षीण हुआ है, त्रेतायुग वरत्या है, तिसविषे तुम उपजे हौ, हे रामजी ! अब भी अष्ट वर्ष व्यतीत हुए हैं, जो हमारा उसका मिलाप हुआ था, तिसी वृक्षलता ऊपर है ॥ हे रामजी ! इह मैं तुझकों इ

तिहास कहा है, सो परम उत्तम है, इसकों विचारैगा, तब संसारभ्रम निवृत्त हो जावैगा, अब इह मुनि वसिष्ठ अरु भुषंडकी कथा है, जो निर्मलबुद्धिसाथ विचारैगा, सो भवरूप संसारके भयतें तरैगा ॥ ॥ इति श्रीयोगवासिष्ठे निर्वाणप्रकरणे भुषंडोपाख्यानसमाप्तिर्नाम त्रयोविंशतितमः सर्गः ॥ २३ ॥ ॥ वसिष्ठ उवाच ॥ हे अनघ ! इह मैं तुझकों भुषंडका वृत्तांत सब कहा है, इस बोध करिके भुषंड महासंकटकों तर्या है, इस दशाकों तुम भी आश्रय करिके प्राणकी युक्तिका अभ्यास करौ, तब तुम भी भुषंडकी नांई भवसमुद्रके पारकों प्राप्त होहुगे, जैसे भुषंड ज्ञानयोगकरि पावणे योग्य पद पाया है, तैसे तुम भी पावहु, जैसे प्राण अपानके अभ्यास करिके भुषंड परम तत्त्वकों प्राप्त भया है, तैसे तुम भी अभ्यास करिके प्राप्त होहु, विज्ञानदृष्टि जो तुझनें श्रवण करि है, तिसकी और चित्तकों लगायकरि आत्मपदकों पावहु बहुरि जैसे इच्छा होवै तैसे करौ ॥ ॥ राम उवाच ॥ हे भगवन् ! पृथ्वीविषे तुमारे ज्ञानरूपी सूर्यकी किरणांके प्रकाशकरि मेरे हृदयसों अज्ञानरूपी तम दूर हो गया है, अब प्रबुद्ध हुआ हौं, अपणे आनंदरूपविषे स्थित भया हौं, अरु जानणे योग्य पदकों जानत भया हौं, मानौ दूसरा वसिष्ठ भया हौं ॥ हे भगवन् ! इह जो भुषंडका चरित्र तुमनें कहा है, सो परम विस्मयका कारण परमार्थ बोधके निमित्त कहा है, तिसविषे शरीररूपी गृह रक्त मांस अस्थिका किसनें रचा है, अरु कहांतें उपजा है, अरु कैसे स्थित हुआ है, अरु कवन इसविषे स्थित है ? ॥ वसिष्ठ उवाच ॥ हे रामजी ! परमार्थ तत्त्वके बोधनिमित्त अरु दुःखके निवृत्ति अर्थ यह मेरे वचन हैं, सो सुण, अस्थि इस शरीररूपी गृहका स्तंभ है, अरु नव इसके द्वारे हैं, अरु रक्त मांससाथ इह लेपन किया है, सो किसीनें बणाया नहीं, आभासमात्र है, मिथ्या भ्रम करिके भासता है, जैसे आकाशविषे दूसरा चंद्रमा भ्रम करिके भासता है, तैसे असत्यरूप शरीर भ्रम करिके भासता है ॥ हे रामजी ! जबलग अज्ञान है, तबलग देह सत्य भासता है, जब ज्ञान होता है, तब देह असत्यरूप भासता है, जैसे स्वप्नकालविषे स्वप्नके पदार्थ स

तपायमान क्यों होणां, सो तौ मरणेकाही था, जब अपणा मृत्यु आवै, तब अवश्य शरीर छूटणां है, वृथा क्यों तपायमान होणा, जब संपदा आनि प्राप्त होवै, तब उसकरि हर्षवान नहीं होता, काहेतें जो कछु भोगणां था, हर्ष किसकरि होणां, अरु दुःख आनि प्राप्त होवै, तब क्यौं शोक करणां, शरीरका व्यवहार सुखदुःख आता जाता है, यह अमिट है, जब अपणां किया कर्म उत्पन्न होता है, तब भी शोक क्यौं करणां॥ हे रामजी! जो सत्य है सो असत्य नहीं, जो असत्य है, सो सत्य नहीं, बहुरि रागदोष किसनिमित्त करणां, जिसकों ऐसा निश्चय हुआ है, जो न मैं हौं, न जगत है, न पृथ्वी है, तौ भी शोक किसका करणां अरु जब देहतें अन्य हौं, चेतन हौं, चेतनका तौ नाश नहीं, तब शोक किसनिमित्त करणां॥ हे रामजी! दुःख तौं किसी प्रकार नहीं, जबलग विचार नहीं, तबलग दुःख होता है, विचार कियेतें दुःख कोउ नहीं, सम्यक्दर्शी जो मुनीश्वर है, सो सत्यकों सत्य जाणता है, असत्यकों असत्य जाणता है, इस कारणतें दुःख नहीं पाता, अरु जो असम्यक्दर्शी है, सो अज्ञान करिके दुःख पावता है, जैसे दिनके अंतविषे मंडल शीतल हो जाता है, तैसे सम्यक्दर्शीका अंतर शीतल होता है, जिसकों कर्तव्यविषे कर्तृत्वका अभिमान नहीं, सो सम्यक्दर्शी है॥ हे रामजी! जेते कछु जगतके पदार्थ हैं, तिनकों अंतरतें आभासमात्र जाण, अरु बाहर जैसे आचार होवै तैसे करु, अथवा तिसका भी त्याग करु, निराभास होकरि स्थित होहु, मैं चिदाकाश हौं, नित्य हौं, सर्वज्ञ हौं, अरु सर्वतें रहित हौं, ऐसे अभ्यासकरि एकांत निर्मल आपकों देखैगा, अथवा ऐसे धार जो न मैं हौं, न इह भोग हैं, न अर्थरूप जगत आडंबर है, अथवा ऐसे धार जो सर्व मैं ही हौं, नित्य शुद्ध चिदात्मा हौं, आकाशरूप हौं, मेरेतें इतर कछु नहीं, मैंही अपणे आपविषे स्थित हौं, इन दोनों पक्षविषे जो इच्छा होवै, सो धर, तुझकों सिद्धताका कारण होवैगा, अरु जगतकों आभासमात्र जाण, परंतु यह भी कलंकरूप है, इस चिंतनाकों भी त्यागिकरि निराभास होहु, तूं चिदाकाश नित्य

है, सर्वव्यापी है, अरु सर्वतें रहित है, आभासकों त्यागिकरि निर्मल अद्वैत होय रहहु, अथवा विधिनिषेध दोनों दृष्टिकों आश्रय कर ॥ हे रामजी ! क्रियाकों करहु, परंतु रागदोषतें रहित होहु, जब रागदोषतें रहित होवैगा, तब उत्तम पदार्थ ब्रह्मानंदकों प्राप्त होवैगा, जो सर्वका अधिष्ठान है, तिसकों पावैगा ॥ हे रामजी ! जिसका हृदय रागदोषरूपी अग्निकरि जलता है; तिसकों संतोष वैराग्य आदिक गुण नहीं प्राप्त होते, जैसे दग्ध भूतलके वनविषे हरण नहीं प्रवेश करते, तैसे रागदोषादिकवाले हृदयविषे संतोषादिक नहीं प्रवेश करते ॥ हे रामजी ! हृदयरूपी कल्पतरु है, जो ऐसा वृक्ष रागदोषादिक सर्पहूंतें रहित है, तिसतें कवन पदार्थ है, जो न प्राप्त होवै, शुद्ध हृदयतें सब कछु प्राप्त होता है, यह अर्थ है ॥ हे रामजी ! जो बुद्धिवान भी है, अरु शास्त्रका ज्ञाता भी है, परंतु रागदोषसंयुक्त है, सो गीदडकी नांई नीचे है, तिसकों धिक्कार है, जिन पदार्थके पावणेनिमित्त यह यत्न करते हैं, सो तौ आते जाते हैं, धनकों इकठ्ठा कोउ करता है, कोउ अवर ले जाता है, भोक्ता कोउ अवर है, तब राग दोष किसका करिये, जो कछु प्रारब्ध है, सो अवश्य होता है, धनका व्यर्थ क्या यत्न करिये, बांधव अरु वस्त्र आते हैं, बहुरि जाते भी हैं, जैसे समुद्रविषे झषका आश्रय बुद्धिवान नहीं लेते, तैसे जगतके पदार्थका आश्रय ज्ञानवान नहीं लेते, भावअभावरूप परमेश्वरकी माया है, संसारकी रचना स्वप्नकी नांई है, तिसविषे जो आसक्त होते हैं, तिनकों सर्पिणीवत् दंसती है, धन बांधव जगत वास्तवतें मिथ्याही अज्ञान करिके सत्य भासते हैं ॥ हे रामजी ! जो आदि न होवै, अंत भी न रहै, अरु मध्यविषे भासै, तिसकों भी असत्य जाणियें, जैसे आकाशविषे फूल असत्य हैं, तैसे संसाररचना असत्य है, जैसे संकल्प रचना असत्य है, जैसे गंधर्वनगर सुंदर भासता है, अरु नाश हो जाता है, जैसे स्वप्नपुर दीर्घ कालका भासता है, सो भ्रमरूप है, तैसे इह जगत असत्यरूप भ्रममात्र है, संकल्परूप अभ्यासके वशतें दृढताकों प्राप्त भया है, कंध जो आकारवान भासता है, सो आकारतें रहित आकाशरूप है, अ

त्य भासते हैं, अरु जाग्रत्कालविषे स्वप्न असत्य भासता है, तैसे अज्ञानकालविषे अज्ञानके पदार्थ देहादि
क सत्य भासते हैं, अरु ज्ञानकालविषे असत्य हो जाते हैं, जैसे बुदबुदा जलविषे जलके अज्ञान करिके स
त्य भासता है, जलके जाणेतें बुद्बुदा असत्य भासता है, जैसे सूर्यकी किरणांविषे मरुस्थलकी नदी भास
ती है, तैसे आत्माविषे देह भासता है ॥ हे रामजी! जेता कछु जगत भासता है, सो सब आभासमात्र अ
ज्ञान करिके भासता है, अहं त्वं आदिक कल्पना सब मननमात्र मनविषे फुरती है, तूं कहता है, देह अस्थि
मांसका गृह रचा है, सो अस्थिमांसकरि नहीं रचा, संकल्पमात्र है, संकल्पकरि भासता है, संकल्पके अभा
व हुए देह नहीं पाता ॥ हे रामजी! स्वप्नविषे जो देह धारीकरि दिशा तट पर्वत तूं देखता फिरता है, जाग्र
तविषे उह तेरा देह कहां जाता है, जब कछु देह सत्य होता, तब जाग्रतविषे भी रहता, अरु मनोराज्य क
रिके स्वर्गकों जाता है, अरु सुमेरुविषे भ्रमता है, भूमिलोकविषे फिरता है, तब इह देह तेरा कहां होता है ॥
हे रामजी! इन स्थानविषे जैसे मनका फुरणां देह होकरि भासता है, सो असत्यरूप है, तैसे यह शरीर म
नके फुरणेमात्र है, तातें असत्य जाणहु, यह मेरा धन है, यह मेरा देह है, यह मेरा देश है, इत्यादिक कल्प
ना मनकी रची हुई है, सबका बीज चित्त है ॥ हे रामजी! इस जगतकों दीर्घ कालका स्वप्न जाण, अथवा
दीर्घ चित्तका भ्रम जाण, अथवा दीर्घ मनोराज्य जाण, अवर वास्तवतें जगत कछु नहीं, जब अपणे वा
स्तव परमात्मस्वरूपकों अभ्यासकरि जानता है, तब जगत असत्यरूप भासता है ॥ हे रामजी! मैं पूर्व
भी तुझकों ब्रह्माजीके वचनोंकरि कहा है, जो जगत सब मनका रचा हुआ है, तातें संकल्पमात्र है, चिर
कालका जो अभ्यास हो रहा है, तिसकरि सत भासता है, जब दृढ पुरुषप्रयत्नकरि आत्म अभ्यास होवै,
तब असत्य भासै ॥ हे रामजी! जो भावना इसके हृदयविषे दृढ होती है, तिसका अभाव भी सुगम नहीं
होता, जब उसकी विपर्ययभावनाका अभ्यास करिए, तब उसका अभाव हो जाता है, जो यह मैं हौं, यह

अवर है, इत्यादिक कलना हृदयविषे दृढ हो रही है, जब इसकी विपर्ययभावना होवै, अरु आत्मभावना करिए, तब उह मिटि जावै, सर्व आत्माही भासै ॥ हे रामजी ! जिसकी तीव्र भावना होती है, उहीरूप फल उसका हो जाता है, जैसे कामी पुरुषकों सुंदर स्त्रीकी कामना रहती है, तैसे इसकों आत्मपदकी चिंता रहै, तब उहीरूप होता है, जैसे कीट भृंगी हो जाता है, जैसे दिनविषे व्यापारका अभ्यास होता है, रात्रकों स्वप्नविषे भी उही देखता है, तैसे जिसका इसकों दृढ अभ्यास होता है, सोई अनुभव होता है, जैसे आकाशविषे सूर्य तपता है, अरु मरुस्थलविषे जल होकरि भासता है, सो जलका अभाव है, तैसे पृथ्वी आदिक पदार्थ भ्रम करिके भावतें रहित भावरूप भासते हैं, जैसे नेत्र दूखणे करिके आकाशविषे तरवरे मोरपुच्छवत भासते हैं, तैसे अज्ञानकरिके जगतजाल भासते हैं ॥ हे रामजी ! यह जगत सब आभासरूप है, स्वरूपके प्रमाद करिके भय अरु दुःखकों प्राप्त होता है, जब स्वरूपकों जानता है, तब भ्रमभयदुःखतें रहित होता है, जैसे स्वप्नपुरविषे चित्तके भ्रम करिके सिंहिणीतें भय पाता है, जब जाग्रत स्वरूप चित्त आता है, तब सिंहका भय निवृत्त हो जाता है, तैसे आत्मज्ञान करिके निर्भय होता है, जब वैराग्य अभ्यास करिके निर्मल शुद्ध आत्मपदकों प्राप्त होता है, तब बहुरि क्षोभकों नहीं प्राप्त होता, रागदोषरूपी मल इसकों नहीं स्पर्श करता; जैसे तांवा पारसके स्पर्श करिके स्वर्ण होता है, तब तांवेभावकों नहीं ग्रहण करता, तैसे बहुरि मलीन नहीं होता, अहं त्वं आदिक जेता कछु जगत भासता है, सो सब आभासमात्रही है ॥ हे रामजी ! प्रथम सत्य असतकों जाणे, असत्यका निरादर करै, अरु सतका अभ्यास करे, तब चित्त सर्व कलनातें रहित होता है, अरु शांत पदकों प्राप्त होता है, जो तत्त्वज्ञानकरि सम्यक्‌दर्शी हुआ है, तिसकों जगतके इष्ट पदार्थ पायेतें हर्ष नहीं होता, अरु अनिष्टके पाएतें शोक नहीं होता, न किसीकी स्तुति करता है, न किसीकी निंदा करता है, अंतरतें शीतल शांतरूप हो जाता है, जब कोउ बांधव मृतक हो गया है, तब तिसकरि

मान करिके इसके सुखसाथ सुखी होते हैं, दुःखसाथ दुःखी होते हैं, इसके नष्ट हुए आपकों नष्ट हुआ मानते हैं, परंतु देहके नष्ट हुए पुरुषका नाश तौ नहीं होता, जैसे मनोराज्यके नाश हुए पुरुषका नाश नहीं होता, जैसे दूसरे चंद्रमाके नाश हुए चंद्रमाका नाश नहीं होता,तैसे इस देहके नाश हुए देही पुरुषका नाश नहीं होता, जैसे संकल्प पुरुषके नाश हुए पुरुषका नाश नहीं होता, जैसे स्वप्नभ्रमके नाश हुए पुरुषका नाश नहीं होता, तैसे देहके नाश हुए आत्माका नाश नहीं होता, जैसे घन धूप करिके रणविषे जल भासता है, अरु भली प्रकार जाय देखिये तब जलका अभाव हो जाता है, परंतु देखणेवालेका अभाव नहीं होता, तैसे संकल्पकरि रचा विनाशरूप जो देह है, तिसके नाश हुए तुमारा नाश तौ नहीं होता ॥ हे रामजी ! दीर्घकालका रचा जो स्वप्नमय देह है, तिसके दुःख अरु नाशकरि आत्माकों दुःख अरु नाश नहीं होता, चेतन आत्मसत्ता नाश नहीं होती, अरु स्वरूपतें चलायमान भी नहीं होती, न विकारकों प्राप्त होती है, सर्वदा शुद्ध अच्युतरूप अपणे आपविषे स्थित है, देहके नाश हुए तिसका नाश नहीं होता, अज्ञानका दृढ अभ्यास हुआ है, तब देहके धर्म अपणेविषे भासणे लगे हैं, जब आत्माका दृढ अभ्यास होवै, तब देहाभिमान अरु देहके धर्म अभाव हो जावैं, जैसे चक्रऊपर कोउ चढता है, अरु भ्रमता है, जब उतरता है, तब केताक काल भ्रमता भासता है, जब चिरकाल व्यतीत होता है, तब स्थित हो जाता है, देहरूपी चक्र इसकों प्राप्त भया है, अज्ञान करिके भ्रम्या हुआ आपकौं भ्रमता देखता है, जब अज्ञानका वेग निवृत्त होता है, तब भी कोइ काल देहभ्रम भासता है, तिसकरि जानता है, मेरा नाश होता है, मुझकों दुःख होता है, इत्यादिक कल्पनां अज्ञानकरि भासती है, तिस भ्रम दृष्टिकों धैर्य करिके निवृत्त करता है, तब अभाव हो जाता है ॥ हे रामजी ! जैसे भ्रम करिके जेवरीविषे सर्प भासता है, तैसे आत्माविषे देह भासता असत्य है, जड है, न कर्मकों करती है, न मुक्त होणे इच्छा करती है, अरु देव परमात्मा भी कछु करता नहीं, उह

सदा शुद्ध द्रष्टा प्रकाशक है, जैसे निर्वात दीप अपणे आपविषे स्थित है, तैसे तूं शुद्धस्वरूप अपणे आपविषे स्थित होहु, जैसे सूर्य आकाशविषे स्थित होता है, अरु सर्व जगतकों प्रकाश करता है, तिसके आश्रय लोक चेष्टा करते हैं, परंतु सूर्य कछु नहीं करता, सबका साक्षीभूत है, तैसे आत्माके आश्रय देहादिककी चेष्टा होती है, परंतु आत्मा साक्षीरूप है, पापपुण्यतें रहित है ॥ हे रामजी ! इह देहरूपी शून्य गृह है, तिसविषे अहंकाररूपी पिशाच कल्पित है, जैसे बालक परछायेविषे वैताल कल्पता है, अरु भयकों पावता है, तैसे अहंकाररूपी पिशाच कल्पिकरि भयकों पावता है, सो अहंकाररूपी पिशाच महानीच है, सर्व संतजनकरि निंद्य है, जब अहंकाररूपी वैताल निकसै, तब आनंद होवै, देहरूपी शून्य गृहविषे इसका निवास है, जो पुरुष इसका टहलुआ हो रहा है, तिसकों इह नरकविषे जाता है, तातें तुम उसका टहलुआ नहीं होणां, इसके नाशका उपाय करोगे, तब आनंदकों प्राप्त होहुगे ॥ हे रामजी ! इह चित्तरूपी उन्मत्त वैताल है, जिसकों स्पर्श करता है, तिसकों अशुद्ध करता है, अर्थ इह जो तिसका धैर्य अरु निश्चय विपर्ययकरि देता है, तिसकरि दुःखकों प्राप्त करता है, अपणे स्वरूपतें गिराय देता है, जो बडे बडे साधु महंत हैं, सो भी इसके भय करिके समाधिविषे स्थित होते हैं, जो किसी प्रकार अहंकार अभाव होवै ॥ हे रामजी ! अहंकाररूपी पिशाच जिसकों स्पर्श कर्त्ता है, तिसकों आप जैसाकरि लेता है, जैसा आप तुच्छ करता है, तैसा अवरकों तुच्छ करता है, अरु उजाडविषे रहता है, जहां संतसंग अरु सत्शास्त्रका विचार नहीं, अरु आत्मज्ञानका निवास नहीं, तहां शून्य उजाडरूपी देहमंदिरविषे रहता है, जो कोउ ऐसे स्थानविषे प्रवेश करता है, तिसकों प्रवेशकरि जाता है ॥ हे रामजी ! जिसकों अहंकाररूपी पिशाच लगा है तिसका धनकरि कल्याण नहीं होता, न बाधवामित्रकरि कल्याण होता है, अरु अहंकार पिशाचसाथ मिल्या हुआ जेती कछु क्रिया कर्म करता है, सो अपणे नाशकेनिमित्त करता है, विषकी वल्लीकों

रु आत्मपद सुषुप्तकी नांई अद्वैतरूप है, तिस सुषुप्तरूप पदतें जब गिरता है, तब दीर्घरूप स्वप्नकों देखता है ॥ हे रामजी! अज्ञानरूपी निद्राकरि अपणे स्वभावतें जो गिर्या है, सो संसाररूपी स्वप्नभ्रमकों देखता है, जब अज्ञानरूपी निद्राका अभाव होवै, तब अपणे आत्मराज्यपदकों प्राप्त होता है, अरु निर्विकल्प मुदिता आत्मपदकों प्राप्त होता है, जैसे सूर्यकों देखीकरि कमल प्रफुल्लित होते हैं, तैसे ज्ञानकरि शुभ गुण फूलते हैं, आत्मरूपी सूर्य कैसा है, सर्व दुःखतें रहित है, जो पुरुष निद्राविषे होता है, सो सूक्ष्म वचनकरि नहीं जागता, बडे शब्द अरु जल डारणेकरि जागता है, सो मैं तुमकों मेघकी नांई गर्जिकरि वचनरूपी जलकी वर्षा करी है, ज्ञानरूपी शीतलतासहित वचन है, तिन वचनों करिके अब तूं ज्ञानरूपी जागृत बोधकों प्राप्त भया है, ऐसे ज्ञानरूपी जगतकों भ्रमरूप देखैगा ॥ हे रामजी! तुझकों न जन्म है, न मृत्यु है, न कोउ दुःख है, न कोउ भ्रम है, सर्व संकल्पतें रहित आत्मपुरुष अपणे आपाविषे स्थित है, सम है, शांत है, सुषुप्तकी नांई तेरी वृत्ति है, अतिविस्तृत सम शुद्ध अपणे स्वरूपाविषे स्थित है ॥ ॥ इति श्री योगवासिष्ठे निर्वाणप्रकरणे परमार्थयोगोपदेशो नाम चतुर्विंशतितमः सर्गः ॥ २४ ॥ ॥ ॥ वाल्मीक उवाच ॥ इसी प्रकार जब वसिष्ठजीनें वचन कहे, तब रामजी सम शांत चेतन तत्त्वविषे विश्रामकों पावत भया, अरु परमानंदकों प्राप्त भया, अरु अवर सभा जो बैठी थी, सो भी वसिष्ठजीके वचन श्रवण करिके सम आत्मसमाधिविषे स्थित हो रहे, बोलणेका व्यवहार शांत हो गया, पिंजरेमें पक्षी बोलते थे, सो भी शांत हो गए, बनके जो वानर थे, सो भी वचन सुणीकरि स्थिर हो रहे, सर्व उरतें शांति हो रही, जैसे अर्धरात्रके समय भूमिलोक शांतरूप हो जाता है, तैसे सभाके लोक तूष्णीं हो रहे, अरु वचनोंकों विचारणे लगे, जो क्या उपदेश मुनीश्वरनें किया है, एक घडीपर्यंत शांति हो रही, तिसके अनंतर बहुरि वसिष्ठजी बोले ॥ हे रामजी! अब तूं सम्यक् प्रबुद्ध हुआ है, अरु अपणे आपाविषे स्थित भया है, जो कछु

जाण्या है, तिसके अभ्यासका त्याग नहीं करणां, इसीविषे दृढ रहणां ॥ हे रामजी! संसाररूपी चक्र है, तिसका नाभिस्थान चित्त है, तिस चित्तनाभिके स्थिर हुए संसारचक्र भी स्थिर हो जाता है, इसी संसार रूपी चक्रका तीक्ष्ण वेग है, यद्यपि रोकता है तौ भी फुरणे लगता है, तातें दृढ प्रयत्न बल करिके इसकों रोकिए, संतके संग अरु सत्शास्त्रके वचन युक्ति बुद्धिकरि रोकता है ॥ हे रामजी ! अज्ञानकरि जो दैव कल्प्या है, तिसका त्यागकरि अपणे पुरुषार्थकों आश्रय करहु, इसकरि परम शांत पद प्राप्त होता है, ब्रह्मातें आदि लेकरि चेंटीपर्वत सब अज्ञानरूपी संसारचक्र है, सो असत्यरूप है, भ्रम करिके सत्यकी नांई भासता है, तिसका त्याग करहु ॥ हे रामजी ! असत्यरूप पदार्थविषे जो राग दोष करते हैं, सो मूर्ख हैं, तिनतें चित्र का पुरुष भी श्रेष्ठ है, जब इष्ट विषय प्राप्त होता है, तब हर्षकरि प्रफुल्लित होते हैं, अरु अनिष्ट प्राप्त होता है, तब दोष करते हैं, अरु चित्रके पुरुषकों राग दोष किसीविषे नहीं, इस कारणतें मैं कहता हौं, जो चित्तका पुरुष भी इनतें श्रेष्ठ है, अरु यह आधि व्याधिकरि पडे जलते हैं, उह सदा ज्यौंका त्यौं है, अरु चित्रका पुरुष तब नाश होवै, जब आधारभूतकों नाश करिए, अधिष्ठानके नाशविना नाश नहीं होता, अरु यह पुरुष अविनाशीके आधार है, तिसका नाश होता नहीं, अरु मूर्खता करिके आपकों नाश होता मानते हैं, रागदोषकरि संयुक्त है, तातें चित्रके पुरुषतें भी तुच्छ है, अरु मनोराज्य संकल्प रूप देह इस देहतें श्रेष्ठ है, जेते कछु दुःख इसकों होते हैं, सो बडे कालपर्यंत रहते हैं, अरु मनोराज्यका दुःख हुआ बहुरि अवर संकल्पके आयेतें उसका अभाव हो जाता है, तातें थोडा दुःख है, संकल्प देहतें भी स्थूल देह तुच्छ है ॥ हे रामजी ! जो थोडे कालतें देह हुई है, तिसविषे दुःख भी थोडा है, अरु जो दीर्घ संकल्परूपी देह है, सो दीर्घ दुःखकों ग्रहण करता है, तातें महानीच है ॥ हे रामजी ! यह देह भी संकल्पमात्र है, सो न सत्य है, न असत्य है, तिसके भोगनिमित्त मूर्ख यत्न करते हैं, अरु क्लेश पावते हैं, अरु देह अभि

उपजावता अरु बढावता है ॥ हे रामजी ! जो पुरुष विवेक अरु धैर्यतें रहित है, तिसकों अहंकाररूपी पिशाच शीघ्रही खाइ जाता है, सो कैसा है, सब रूप है, जिसकों स्पर्श करता है, तिसकों शवकरि छांडता है, अरु जिसकों अहंकाररूपी पिशाच लगा है, सो नरकरूपी अग्निविषे काष्ठकी नांई जलैगा, अरु अहंकाररूपी सर्प है, जिस देहरूपी वृक्षके छिद्रविषे विषकों धारे बैठा है, तिसके निकट जो जावैगा, तिसकों मृतक करैगा, जो अहंममभावकों प्राप्त होवैगा, सो मृतक समान होवैगा, जन्ममरणकों पावैगा, अहंकाररूपी पिशाच जिसकों लगा है, तिसकों मलिन करता है, स्वरूपतें गिरायकरि संसाररूपी गरतविषे डारता है, अरु बडी आपदाकों प्राप्त करता है, जेती आपदाकों अहंकार प्राप्त करता है, सो बहुत वर्षपर्यंत करता रहै, तौ भी आपदाका वर्णनकरि न सकौंगा ॥ हे रामजी ! यह जो अभिमान है, जो मैं हौं, मैं मरता हौं, मैं दग्ध होता हौं, मैं दुःखी हौं, मनुष्य हौं इत्यादि कल्पना जो मलीन उठती है, सो अहंकाररूपी पिशाचकी शक्ति है, आत्मस्वरूप नित्य शुद्ध चिदाकाश सर्वगत सच्चिदानंद है, सो सबका अपणां आप है, अहंकारके वशतें आपकों परिच्छिन्न अलेप दुःखी मानता है, जैसे आकाश सर्वगत अलेप है, तैसे आत्मा सर्वविषे अलेप है, अरु सर्वसाथ असंबंध है, अहंकारके संबंधतें रहित है ॥ हे रामजी ! ग्रहण त्याग चलणां बैठणां इत्यादिक जेती कछु क्रिया होती है, सो देहरूपी यंत्र अरु वायुरूपी रसडीकरि अहंकाररूपी यंत्री करावता है, आत्मा सदा निर्लेप है, सबका अधिष्ठानरूप है, कारणकार्यभावतें रहित है, जैसे वृक्षकी उंचाइका कारण आकाश है, अरु निर्लेप है, तैसे आत्मा सर्व चेष्टाका कारण अधिष्ठान है, अरु निर्लेप है, जैसे आकाश अरु पृथ्वीका संबंध नहीं, तैसे आत्मा अरु अहंकारका संबंध नहीं, चित्तकों जो आप जाणते हैं, सो महामूर्ख हैं, आत्मा प्रकाशरूप है, नित्य सर्वगत है, विभु है, चित्त मूर्ख है, जड है, आवरण करता है ॥ हे रामजी ! आत्मा सर्वज्ञ है, चेतनरूप है, चित्त मूढ है, अरु पत्थरवत् जड है, इसकों दूर करहु, इसका अ

रु तेरा संबंध कछु नहीं, तुम मोहकों तरहु, देहरूपी शून्य गृहविषे चित्तरूपी वैतालका निवास है, जिसकों
अपणे वश करता है, तिसकों बांधव भी नहीं छुडाय सकते, अरु शास्त्र भी नहीं छुडाय सकते, अरु जिस
का देहाभिमान क्षीण हो गया है, तिसकों गुरु शास्त्र भी छुडावणेकों समर्थ होते हैं, जैसे अल्प चीकडतें
हरिणकों काढि लेता है, तैसे गुरु शास्त्र निकसि लेते हैं ॥ हे रामजी ! जेते देहरूपी शून्य मंदिर हैं, तिन स
बविषे अहंकाररूपी पिशाच रहता है, कोउ देहरूपी गृह अहंकार पिशाचविना भी है, अवर भयसाथ मि
ल्या हुआ है, जैसे पिशाच अपवित्र स्थानविषे रहता है, पवित्रस्थानविषे नहीं रहता, तैसे जहां संतोष, वि
चार, अभ्यास, सत्संगतें रहित देह है, तिस स्थानविषे अहंकार निवास करता है ॥ अरु जहां संतोष, विचार,
अभ्यास, सत्संग होता है, तहांतें अभाव हो जाता है, जेते कछु शरीररूपी मसाण हैं, सो चित्तरूपी वैता
लकरि पूर्ण हैं, अरु अपरिमित मोहरूपी वैताल हैं, जगतरूपी महावनविषे मोहकों प्राप्त होते हैं, जैसे बाल
क मोह पावता है ॥ हे रामजी ! तूं आपकरि अपणां उद्धार करु, सत्य विचार करिके धैर्यकों प्राप्त होहु, इ
ह जगतरूपी पुरातन वन है, तिसविषे जीवरूपी मृग विचरते हैं, अरु भोगरूपी तृणकों आश्रय करते हैं,
सो भोगरूपी तृण कैसे हैं, देखणेमात्र सुंदर भासते हैं, परंतु तिनके नीचे गरत है, जैसे गरत उपर हरिया
वल तृण आच्छादन होते हैं, तिसकों देखिकरि मृगके बालक भोजन करणे लगते हैं, अरु गरतविषे गिर
पडते हैं, तैसे जीवरूपी मृगकों रमणीय जाणिकरि भोगणे लगते हैं, तिनकी तृष्णाकरि नरक आदिक ज
न्मविषे गिरते हैं, अग्नीकी नांई जलते हैं ॥ हे रामजी ! तुम ऐसे नहीं होणा, जो कोउ भोगकी तृष्णा करैगा,
सो नरकरूपी गरतविषे गिरैगा, तातें तुम मृगमतिकों त्यागिकरि सिंहवृत्तिकों धारहु, मोहरूपी हस्तिकों
सिंह होकरि अपणे नखहूंसाथ विदारहु, भोगकी तृष्णातें रहित होणा यह अर्थ है, भोगकी तृष्णावाले जी
व जंबुद्वीपरूपी जंगलविषे मृगकी नांई भटकते हैं, तिनहूंकी नांई तुम नहीं विचरणां ॥ हे रामजी ! स्त्री

जो रमणीय भासती है, तिनका स्पर्श अल्प कालविषे शीतल सुखदायक भासता है, परंतु चीकडकी नांई है, जैसे चीकडका लेप भी शीतल भासता है, परंतु तुच्छ है, जैसे संढा चीकड दलदलविषे फस्या हुआ निकसी नहीं सकता, तैसे इह भोगरूपी दलदलविषे फस्या हुआ निकसि नहीं सकता, तातें तूं संतकी वृत्तिकों ग्रहण कर; सो ग्रहण करणां किसकों कहते हैं, अरु त्याग करणां किसकों कहते हैं, ऐसे विचारकरि असत वृत्तिका त्याग करौ, अरु आत्मतत्त्वकों आश्रय करौ ॥ हे रामजी ! यह देह अपवित्र है, अस्थि मांस रुधिरकरि पूर्ण है, अरु तुच्छ है, अरु दुष्ट इसका आचार है, देहके निमित्त भोगकी इच्छा करणी, इसकरि परमार्थ कछु सिद्ध नहीं होता, देह अवरनें रची है, अवरकरि चेष्टा करती है, अवरनें इसविषे प्रवेश किया है, दुःखकों अवर ग्रहण करता है, जो दुःखका भागी होता है, संकल्पनें देह रची है, अरु प्राणकरि चेष्टा करता है, अहंकार पिशाचनें इसविषे प्रवेश किया है, अरु गर्जता है, मनकी वृत्ति सुखदुःखकों ग्रहण करती है, अरु दुःखी जीव होता है, तातें आश्चर्य है ॥ हे रामजी ! परमार्थसत्ता एक है, अरु सर्वसमान है, इतर सत्ता तिसविषे कोउ नहीं, जैसे पत्थर घन जड होता है, तिसविषे अवर कछु नहीं फुरता, तैसे सत्तामात्रतें इतर अवर द्वैतसत्ता किसी पदार्थकी नहीं, जैसे पत्थर घनरूप है, तैसे परमात्मा घनरूप है, अवर जड चेतन भिन्न कोउ नहीं, यह मिथ्या संकल्पकी रचना है, जैसे बालककों परछायेविषे वैताल भासता है, तैसे सब कल्पना मनकी है, जैसे एक गनेके रसकरि गुड हो जाता है, कहूं सकर खंड होती है, तैसे एक परमतम सत्ता समान सर्व है, तिसविषे जडचेतनकी कल्पना मिथ्या है, जबलग सम्यक् दृष्टि नहीं प्राप्त भई, तबलग जडचेतनकी दृष्टि होती है, जब यथार्थदृष्टि प्राप्त होती है, तब भेदकल्पना सब मिटि जाती है, जैसे सीपीविषे रूपा भासता है, सो न सत्य होता है, न असत्य होता है, तैसे आत्माविषे जड चेतन सत्य असत्य विलक्षण कल्पना है ॥ हे रामजी ! जो सत्य है, सो असत्य नहीं होता, अरु जो

असत्य है, सो सत्य नहीं होता, आत्मा सदा सत्यरूप है, अरु अपणे आपविषे स्थित है, तिसविषे द्वैत एकका अभाव है, जैसे पत्थरविषे अन्य सत्ताका अभाव है, तैसे आत्माविषे द्वैतसत्ताका अभाव है, नानारूप भासता है, तौ भी द्वैत कछु नहीं, सदा अनुभवरूप है, विभागकल्पना तिसविषे कछु नहीं, सदा अद्वैतरूप है, जेती कछु भेदकल्पना भासती है, सो चित्तकरि भासती है, जब चित्तका अभाव होता है, तब जडचेतनकी कल्पना मिटि जाती है, जैसे वंध्याके पुत्रका अभाव है, जैसे आकाशविषे वृक्षका अभाव है, तैसे आत्माविषे कल्पनाका अभाव है॥ हे रामजी ! यह जो कल्पना है, जो यह चेतन है, यह जड है, यह उपजता है, यह मिटि जाता है, इत्यादिक सब कल्पना मिथ्या हैं, जैसे जेवरीविषे सर्प मिथ्या है, तैसे केवल निर्विकल्प चिन्मात्र आत्माविषे कल्पना मिथ्या है, अरु गुरुशास्त्र भी जो आत्माकों चेतन कहते हैं, अनात्माकों जड कहते हैं, सो भी बोधके निमित्त कहते हैं, दृष्टांत युक्तिकरि दृश्यकों आत्मस्वरूपविषे स्थित करते हैं, जब स्वरूपविषे दृढ स्थिति होवैगी, तब जडचेतनकी भेद कल्पना जाती रहैगी, केवल अचैत्य चिन्मात्र सत्ता भासैगी, जो तत्त्व है, इस प्रकार गुरु भी जडचेतनके विभागका उपदेश करते हैं, तौ भी मूर्ख नहीं ग्रहणकरि सकते, तौ जब प्रथमहीं अचैत्य चिन्मात्र अवाच्यपदका उपदेश करैं, तब कैसे ग्रहण करैं॥ हे रामजी ! और आश्चर्य देख, जो चित्त और है, इंद्रिय और हैं, देह और है, देहका कर्ता कोउ दृष्टि नहीं आता, अरु अहंकार करिके वेष्टितकरि है, इह जीव ऐसे मूर्ख हैं, जो देहकों अपणा आप जाणते हैं, अरु दुःखकों प्राप्त होते हैं, अरु जो विचारवान् पुरुष हैं, आत्मपदविषे स्थित हुए हैं, तिन महानुभावकों कोउ क्रिया दुःख बंधनकरि नहीं सकती, जैसे मंत्र जानणेवालेकों सर्प दुःख दे नहीं सकता, तैसे ज्ञानवानकों कर्म बंधन नहीं करता॥ हे रामजी ! न तूं शीस है, न नेत्र है, न रक्त है, न मांस है, न अस्थि आदिक है, न मन है, न तूं भूतजात है, तूं चित्ततें रहित चेतन केवल चिन्मात्र साक्षीरूप है, शरीरसों ममता त्यागिकरि नि

त्य शुद्ध सर्वगत आत्मस्वरूपविषे स्थित होहु ॥ ॥इति श्रीयोगवासिष्ठे निर्वाणप्रकरणे देहसत्ताविचारो नाम पंचविंशातितमः सर्गः॥ २५॥ ॥ ॥वसिष्ठ उवाच॥ हे रामजी! इसी दृष्टिकों आश्रय करु, अरु भेद कष्टदृष्टिका त्याग कर, नाश कर, जब कष्टदृष्टि नष्ट होवैगी, तब आत्मानंद प्रगट होवैगा, जिस आनंदके पायेतें अष्टसिद्धिका ऐश्वर्य भी अनिष्ट जाणिकरि त्यागैगा, अब अवर दृष्टि सुण, कैसी दृष्टि है, जो महामोहका नाश करती है, अरु जो आत्मपद पावणां कठिण है, सो सुखनें प्राप्त होवैगा, बहुरि कैसी दृष्टि है, जिसका नाश कदाचित् नहीं होता, अरु दुःखतें रहित आनंदरूप मैं शिवजीतें श्रवण करी है, पूर्व कैलासकी कंदराविषे संसारदुःखकी शांति अर्धचंद्रधारि सदाशिवनें मुझकों कही थी॥ हे रामजी! महाचंद्रमाकी नांई शीतल अरु प्रकाश है जिसका, ऐसा जो हिमालय पर्वत, तिसकी कंदरा कैलास पर्वत तहां गौरीके रमणीय स्थान मंदिर हैं, तहां गंगाका प्रवाह झरणेतें चला जाता है, अरु पक्षी शब्द करते हैं, अरु मंद मंद पवन सुखदायक चलता है, अरु कुबेरके मोर विचरते हैं, कल्पवृक्ष लगे हुए हैं, महाउज्ज्वल शीतल सुंदर कंदरा है, मंदारवृक्ष तमाल वृक्ष लगे हुए हैं, तिनकेसाथ फूल ऐसे हैं, मानो श्वेत मेघ है, गंधर्व किन्नर आये गान करते हैं, देवताके रमणीय सुंदर स्थानक हैं, तिस पर्वत उपर सदाशिव विराजते हैं, त्रिनेत्र है, अरु हाथविषे त्रिशूल है, गणकरि वेष्टित है, अरु भगवती अर्धांगविषे विराजती है, ऐसा जो सर्व लोकका कारण ईश्वर है, सो तहां विराजता है, बहुरि कैसा है, कामदेवका गर्व नाश किया है; अरु षड्मुखसहित स्वामी कार्तिकपास प्राप्त है, अरु महाभयानक शून्य मसाणोंविषे तिसका निवास है, तिस देवकों मैं पूजत भया, तिस पर्वत उपर एक कालमें मैं तप करणे लगा था, महापुण्यवान एक कुटी बणाई, तिसविषे यथाशास्त्र पुण्यक्रियाकरि मैं तप करणे लगा, एक कमंडल पास राख्या, वृक्षके फूल माला पूजणेनिमित्त रखे, जल पान करौं, फल भोजन करौं; बहुरि विद्यार्थी शिष्यसाथ रहहीं तिनकों पढावौं, शास्त्रका अर्थ विचारौं, ब्र

ह्मविद्याके पुस्तकका समूह पडा हूआ आगे मृग अरु मृगके बालक विचरहीं, इस प्रकार हम कालकों बीता वहीं, वेदका पढणां, ब्रह्मविद्याकों विचारनां, अरु शास्त्र अनुसार तप करणां इन गणहूं संयुक्त कैलास वनकुं जविषे हम विश्राम करहीं, तिसके अनंतर एक कालमें एक दिन श्रावण विद अष्टमी अर्धरात्र व्यतीत भई है, तिस कालमें समाधितें उतरीकरि देखता भया, दशों दिशा काष्ठ मौनवत् शांतरूप हैं, अरु ऐसा तम है, जो शस्त्रहूंकरि छेदणेवाला है, अरु मंद मंद पवन चलता है, उसके कणका गिरते हैं, मानौ पवन हांसी करता है, तिसी समय चंद्रमा आनि उदय हुआ, महाशीतल अमृतरूप किरणांकों प्रकाशता भया, औषधिकों रससाथ पुष्ट करता भया, चंद्रमुखी कमल खिली आये, चकोर अमृतकी किरणांकों पान करणे लगे, मानौ चंद्रमारूप हो गये हैं, प्रातःकालविषे मणितारेकी नांई उपर आनि पडने लगियां, अरु सप्तर्षि शीसपर आनि स्थित भये, मानौ मेरे तपकों देखणे आये हैं, सप्तर्षिविषे पिछले जो तीन तारे हैं, तिनके मध्यविषे मेरा मंदिर है, तहां मैं सदा विराजता हौं, तब चंद्रमाकरि शीतल स्थान हो गये, पवनकरि फूल गिरे हैं, अरु चंद्रमाका प्रकाश महाशीतल है, तिसकरि स्थान शीतल हो गये ॥ इति श्रीयोगवासिष्ठे निर्वाणप्रकरणे वसिष्ठाश्रमवर्णनं नाम षड्विंशतितमः सर्गः ॥ २६ ॥ ॥ ॥ ॥ वसिष्ठ उवाच ॥ हे रामजी ! अर्धरात्रके समय जो मैं समाधितें उतर्या, तब मुझकों तेज प्रकाश दृष्ट आणे लगा, जैसे मंदराचल पर्वतके पायेतें क्षीरसमुद्र उछली आता है, मानौ हिमालय पर्वत मूर्त्ति धारिकरि स्थित हैं, मानौ माखनका पहाड पिंड आनि स्थित हुआ है, मानौ सब शंखकी स्पष्टता आनि स्थित भई है, मानौ मोतीका समूह एकठा होकरि उडणे लगा है, महातीक्ष्ण प्रकाश दृष्टि आवै, मानौ गंगाका प्रवाह उछलने लगा है, परंतु तिस प्रकाशकी शीततानें सब दिशा तट पूर्णकरि लिये हैं, तब मैं देखिकरि आश्चर्यमान हुआ, अकाल प्रलय होणे लगा है, तब बोध दृष्टिकरि विचारणे लगा, जो यह क्या है, तब मैं देख्या, जो देवताके गुरु ईश्वर सदाशिव चले आते हैं, चंद्रकला

कों धारे हुए अरु गौरी भगवतीके साथ हाथ ग्रहण किया है, अरु गणोंके समूहकरि वेष्टित हैं, कानोंविषे सर्प प
डे हुए हैं, कंठविषे रुंडकी माला है, शीसपर जटा है, तिसपर कदंब वृक्ष है, अरु तमाल वृक्षके फूल पडे हुए हैं, ऐ
से सदाशिव जो सबकों फल देणेहारा है, तिनकों मन करिके मैं देखत भया, अरु मनहीकरि मंदार वृक्षके पुष्प
लेकरि अर्घ्यपाद्य करत भया, अरु मनहीकरि प्रणाम करत भया अरु मनहीकरि प्रदक्षिणा देत भया, ऐसे
करिके मैं अपणे आसनतें उठि खडा हुआ, अपणे शिष्यकों जगावत भया, जगाएकरि अर्घ्यपाद्य ले च
ला, जायकरि त्रिनेत्र शिवकों पुष्पांजलि दिया, देकरि प्रदक्षिणाकरि प्रणाम किया, तब मुझकों चंद्रधारी
कृपादृष्टिकरि देखत भया, अरु सुंदर मधुर वाणीकरि कहत भया, हृदयका तम नष्टकर्ता, शरन पडेकों प
रम शांतिपद प्राप्तकर्ता ऐसा सदाशिवजी मुझकों देखिकरि कहत भया ॥ ॥ ईश्वर उवाच ॥ हे ब्राह्मण !
ले आउ अर्घ्यपाद्य, हम तेरे आश्रमविषे अतिथि आए हैं ॥ हे निष्पाप ! तुझकों कल्याण तौ है क्यौं, तूं
मुझकों महाशांतरूप भासता है, अरु महासुंदर उज्वल तपकी लक्ष्मीकरि तूं शोभता है, चलौ हम तुमा
रे आश्रमकों चले हैं ॥ हे रामजी ! फूलके स्थानविषे सदाशिव बैठे थे, सो ऐसे कहिकरि उठि खडे हुए, त
ब एकठे अपणे आश्रमपरि कुटीविषे आनि स्थित हुए, तहां मैं बहुरि पुष्प अर्घ्यकरि चरणोंकी पूजा क
री, बहुरि हाथकी पूजा करी, इसी प्रकार चरणोंतें लेकरि शीसपर्यंत सर्व अंगकी पूजा करी, बहुरि गौरी
भगवतीका तैसे पूजन किया, सखियांका पूजन किया, बहुरि गणोंका पूजन किया ॥ हे रामजी ! इस प्रका
र भक्तिपूर्वक जब मैं पार्वती परमेश्वरका पूजन करी चूका, तब शशीकलाधारी शीतल वाणीकरि मुझकों
कहत भया ॥ हे ब्राह्मण ! नानाप्रकारकी चिंतवणेहारी जो चित्तकी वृत्ति है, सो तेरे स्वरूपविषे विश्रांतिकों
प्राप्त भई है क्यौं, अरु संवित तेरी आत्मपदविषे स्थित भई है क्यौं, अरु तुमारे शिष्यकों कल्याण तौ है
क्यौं, अरु तुमारेपास जो हरिण विचरते हैं, यह भी सुखसाथ है क्यौं, अरु मंदारवृक्ष तुमकों पूजाकेनिमि

त्त फूल फल भली प्रकार देते हैं क्यौं, अरु मंदाकिनी जो गंगा है, सो तुमकों भली प्रकार स्नान कराती है क्यौं, अरु देहके इष्टअनिष्टकी प्राप्तिविषे तुम खेदवान नहीं होते क्यौं, अरु इस पर्वतविषे कुबेरके अनुचर यक्ष राक्षस रहते हैं, सो तुमकों दुःख तौ नहीं देते क्यौं, अरु मेरे गण जो चक्षु निशाचर है, उह भी तुमकों कष्ट तौ नहीं देते क्यौं ॥ हे रघुनंदन ! इस प्रकार जब देवेशनें मुझकों वांछित प्रश्न कहे, तब मैं उनकों कहत भया ॥ ॥ वसिष्ठ उवाच ॥ हे महेश्वर ! जो कल्याणरूप तुझकों सदा स्मरते हैं, तिनकों इस लोकविषे ऐसा पदार्थ कोउ नहीं, जो पावणा कठिण होवै, अरु भय भी किसीका नहीं, जिनका चित्त तुमारे स्मरणकरि आनंदसों सर्व उरतें पूर्ण भया है, सो जगतविषे दीन नहीं होते, तेई देश, तेई जनोंके चरण, अरु दिशा पर्वत वंदनां करणे योग्य हैं, जहां एकांतबुद्धि बैठिकरि तुमारा स्मरण करते हैं ॥ हे प्रभो ! तुमारा स्मरण पूर्वपुण्यरूपी वृक्षका फल है, अरु वर्तमान कर्मोंकरि सिंचता है, तुम मनके परम मित्र हौं, सर्व आपदाका हरणहारा तुमारा स्मरण है, सर्व संपदारूपी लताके बढावणेहारा तुमारा स्मरण वसंतऋतु है ॥ हे प्रभो ! बडा महिमा अरु बडेतें बडे कर्मोंके कारणका कारण तुमारा स्मरण है ॥ हे प्रभो ! विवेकरूपी समुद्रविषे परमार्थरूपी रत्न है, अरु ज्ञानरूपी तमका नाशकर्त्ता सूर्यका समूह तुमारा स्मरण है, ज्ञान अमृतका कलश अरु धैर्यरूपी चांदनीका चंद्रमा, अरु मोक्षका द्वार तुमारा शरण है ॥ हे प्रभो ! तुमारा स्मरण अपूर्वरूपी दीपक उत्तम है, चित्तका मंडप जो है संसार, तिस सर्वकों प्रकाशता है ॥ हे प्रभो ! तुमारा स्मरण उदार चिंतामणीकी नांई सर्व आपदाकों छेदणेहारा है, अरु बडे उत्तम पदकों देणेहारा है ॥ हे प्रभो ! तुमारा स्मरण एक क्षण भी चित्तविषे स्थित होवै, तब सर्व दुःख अरु भयकों नाश करता है, अरु वरदायक है, तिसकरि तुमारे नांई सुखसों वसता हौं ॥ ॥ वाल्मीक उवाच ॥ इस प्रकार जब मुनीश्वरनें कहा, तब दीनका अंत हुआ, सर्व सभा उठी, परस्पर नमस्कार करिके अपणे स्थानोंकों गये, सूर्यकी किरणांसाथ बहु

रि अपणे अपणे आसनपर आय बैठे ॥ ॥ इति श्रीयोगवासिष्ठे निर्वाणप्रकरणे रुद्रवसिष्ठसमागमो नाम सप्तविंशतितमः सर्गः ॥ २७ ॥

॥ वसिष्ठ उवाच ॥ हे रामजी! इस प्रकार मैं कहा, तब गौरी भगवती जगतमाता मुझकों जैसे माता पुत्रकों कहै, तैसे कहत भई ॥ गौरीभगवत्युवाच ॥ हे वसिष्ठजी! पतिव्रता जो अरुंधती है, सो कहां है, जो पतिव्रताविषे मुख्य है; तिसकों ले आउ, जो उह मेरी प्यारी सखी है, तिससाथ मैं कथा शब्दचर्चा करौंगी ॥ हे रामजी! इस प्रकार जब मुझकों पार्वतीनें कहा, तब मैं शीघ्रही जायकरि अरुंधतीकों ले आया, उह दोनों परस्पर कथा चर्चा वार्ता संवादविषे परचियां, अरु मैं विचारता भया, जो मुझकों ईश्वर प्राप्त भया है, अरु पूछणेका अवसर पाया है, तातें सर्व ज्ञानके समुद्रकों पूछौं, संदेहकों दूरि करौं ॥ हे रामजी! ऐसे विचार करिके गौरीशकों पूछत भया, जो कछु चंद्रकलाधारीनें मुझकों कहा है, सो तुझकों कहता हौं, जो है सो सुण ॥ वसिष्ठ उवाच ॥ हे भगवन्! भूत भविष्य वर्तमान तीनों कालके ईश्वर, अरु सर्व कारणके कारण, तुमारे प्रसाद करिके मैं कछु पूछणेकों समर्थ हुआ हौं ॥ हे महादेव! जो कछु मैं पूछता हौं, सो प्रसन्नबुद्धि होकरि तत्त्वतें शीघ्रही उद्वेगकों त्यागिकरि कहौ ॥ हे सर्व पापके नाश करणेहारे, अरु सर्व कल्याणकी वृद्धि करणेहारे, देव अर्चनका विधान मुझकों कहौ ॥ ॥ ईश्वर उवाच ॥ हे ब्राह्मण! उत्तम जो देव अर्चन है, जिसके कियेतें संसारसमुद्रकों तरि जाइयें, सो सुण ॥ हे ब्राह्मणविषे श्रेष्ठ! पुंडरीकाक्ष जो विष्णु है, सो देव नहीं, अरु त्रिलोचन जो शिव है, सो भी देव नहीं, कमलतें उपजा ब्रह्मा है, सो भी देव नहीं, अरु सहस्रनेत्र इंद्र भी देव नहीं, न देव पवन है, न सूर्य है, न अग्नि है, न चंद्रमा है, न ब्राह्मण है, न क्षत्रिय है, न तूं, न मैं हौं, न देह, न चित्त है, न कलनारूप है, अकृत्रिम अनादि अनंत संवितरूप देव कहाता है, अवर आकारादिक परिच्छिन्नरूप है, सो वास्तवतें कछु नहीं, एक अकृत्रिम अनादि अनंत चेतनरूप देव है सो देव शब्दकरि कहाता है, तिसका जो पूजन है, सोइ पूजन है, तिस देवकों सर्वत्र जानणां, जिसतें यह सर्व हुआ है,

जो सत्ता शांत आत्मरूप है, सर्व ठौरविषे तिसकों देखणा यही उसका पूजन है, अरु जो तिस संवित तत्त्वकों नहीं जाणते, तिनकों आकारकी अर्चना कही है, जैसे जो पुरुष योजनपर्यंत नहीं चलि सकता, तिसकों एक कोशका दो कोशका चलणां भी भला है, तैसे जो पुरुष अकृत्रिम देवकी पूजा नहीं करि सकता, तिसकों आकारका पूजणां भी भला है ॥ हे ब्राह्मण ! जिसकी भावना कोउ करता है, तिसके फलकों तिसी अनुसार भोगता है, जो प्रच्छन्नकी उपासना करता है, तिसकों फल भी प्रच्छन्न प्राप्त होता है, अरु जो अकृत्रिम आनंद अनंत देवकी उपासना करता है, तिसकों उही परमात्मरूपी फल प्राप्त होता है ॥ हे साधो ! अकृत्रिम फलकों त्यागिकरि कृत्रिमकों चाहते हैं, सो क्या करते हैं, जैसे कोउ मंदार वृक्षके वनकों त्यागिकरि करजुएके वनकों प्राप्त होवै, तैसे उह करते हैं, सो देव कैसा है, अरु उसकी पूजा क्या है, अरु क्यों करि होती सो सुण, तीन फूल हैं, तिन फूलहूंसाथ तिसकी पूजा होती है, एक बोध १, एक साम्य २, एक शम ३, ए तीनों पुष्प हैं, बोध नाम सम्यक्ज्ञानका जो आत्मतत्त्वकों ज्यौंका त्यौं जानणा, अरु साम्य नाम है, जो सर्वविषे पूर्ण देखणां, शमका अर्थ यह जो चित्तकों निवृत्त करणां आत्मतत्त्वतें इतर कछु न फुरै, इन तीनों फूलसाथ शिव चिन्मात्र शुद्ध देवकी पूजा होती है ॥ हे मुनीश्वर ! बोध, साम्य, शम, इन पुष्प करि आत्मा देवकी पूजा करत है, एही देवकी पूजा है, आकार अर्चनकरि अर्चा नहीं होती, जो आत्मसंवित चिन्मात्र है, तिसकों त्यागिकरि अवर जुडकी जो अर्चना करते हैं,सो चिरपर्यंत क्लेशके भागी होते हैं॥हे ब्राह्मण ! जो ज्ञान ज्ञेय पुरुष हैं,सो आत्मध्यानतें इतर पूजन अर्चन बालककी क्रीडावत मानते हैं,आत्मा भगवान् एक देव है, सो शिव है, परम कारणरूप है, तिसकों सर्वदाही ज्ञान अर्चनकरि पूजन है, अवर पूजा कोउ नहीं, चेतन आकाश अवयव स्वभाव एक आत्मदेवकों तूं जाण, अवर पूज्य पूजक पूजा त्रिपुटीकरि आत्मदेवकी पूजा नहीं होती ॥ ॥ वसिष्ठ उवाच ॥ हे भगवन् ! चेतन आकाशमात्र आत्माकों जैसे यह जगत है, अरु चे

तनकों जीव कहते हैं, सो कहो ॥ ॥ ईश्वर उवाच ॥ हे मुनीश्वर ! चेतन आकाश प्रसिद्ध है, सर्व प्रकृतितें रहित है, जो महाकल्पविषे शेष रहता है, सो आपहीं किंचनरूप होता है, तिस किंचनकरि यह जगत होता है, जैसे स्वप्नविषे चिदात्माही सर्वगत जगतरूप होकरि भासता है, तैसे जाग्रत जगत भी चिदाकाशरूप है, आदि सर्गतें लेकरि इस कालपर्यंत आत्मातें इतरका अभाव है, जैसे स्वप्नविषे जो जगत भासता है, सो सब चिदाकाशरूप है, अवर इतर कल्पना कोउ नहीं, चिन्मात्रही पहाडरूप है; चिन्मात्रही जगत है, चिन्मात्रही आकाश है, चिन्मात्रही सब जीव हैं, चिन्मात्रही सब भूत हैं, चिन्मात्रतें इतर कछु नहीं, सृष्टिके आदि अरु अंतपर्यंत अवर जो कछु द्वैतकल्पना भासती है, सो भ्रममात्र है,जैसे स्वप्नविषे किसीके अंग काटे सो किसीके काटे तौ नहीं, निद्रादोषकरि ऐसे भासते हैं, तैसे इह जाग्रत जगत भी भ्रममात्र है ॥ हे मुनीश्वर ! आकाश परमाकाश ब्रह्माकाश तीनों एकहीके पर्याय हैं, जैसे स्वप्नविषे संकल्पकरि मायामेतें अनुभव होता है, सो सब चिदाकाश है, तैसे इह जाग्रत जगत चिदाकाशरूप है, जैसे स्वप्नपुरविषे आकाशतें इतर कछु नहीं होता,तैसे जाग्रत स्वप्न भी आत्मतत्त्व होकरि भासता है, आत्मातें इतर दुजी वस्तु कछु नहीं ॥ हे मुनीश्वर ! जैसे स्वप्नविषे चिदाकाशही घट पट आदिक होकरि भासता है, तैसे स्थितिप्रलयादि जगत चिदात्मातें इतर कछु नहीं, आत्माही ऐसे भासता है, जैसे शुद्ध संवितमात्रतें इतर स्वप्नविषे नगर नहीं पाइता, तैसे जागृतविषे अनुभवतें इतर कछु नहीं पाइता॥हे मुनीश्वर ! भावअभावरूप पदार्थ तीनों काल जगत भासता है, सो सब चिदाकाशरूप है, आत्मातें इतर कछु नहीं॥हे मुनीश्वर ! इह देव मैं तुझकों कहा है सो परमार्थतें कहा है, तूं मैं अरु सब भूतजाति जगत सर्वका जो देव है, सो चिदाकाश परमात्मा है, तिसतें इतर कछु नहीं, जैसे संकल्पपुरविषे चिदाकाशही शरीररूप हो भासता है, इतर कछु नहीं बन्या, तैसे इह सब चिदाकाशरूप है ॥ ॥ इति श्रीयोगवासिष्ठे निर्वाणप्रकरणे ईश्वरोपाख्याने जगत्परमात्मरूपवर्णनं नाम अष्टा

विंशतितमः सर्गः ॥ २८ ॥ ॥ ॥ ईश्वर उवाच ॥ हे ब्राह्मण ! इस प्रकार यह सर्व विश्व केवल परमात्मरूप है, परमात्माकाश ब्रह्महीं एक देवकरि कहाता है,तिसहीका पूजन सार है, तिसहीतें सर्व फल प्राप्त होते हैं, सो देव सर्वज्ञ है, अरु सर्व तिसविषे स्थित हैं, अकृत्रिम देव अज परमानंद अखंडरूप है, तिसकों साधना करिके पावणा है,तिसकरि परम सुखकों प्राप्त होता है ॥ हे मुनीश्वर ! तूं जाग्या हुआ है, तिस कारणतें इस प्रकारकी देव अर्चना मैं तुझकों कही है, अरु जो असम्यक्दर्शी बालक हैं, जिनकों निश्चयात्मक बुद्धि प्राप्त नहीं भई, केवल चित्त है, तिनकों धूप दीप पुष्प कर्म आदिक अर्चना कही है, आकार करिके कल्पित देवकी मिथ्या कल्पना करी है ॥ हे मुनीश्वर ! अपणे संकल्पकरि जो देव बणावते हैं, तिसकों पुष्प धूप दीपादिककरि पूजते हैं, सो भावनामात्र है, तिसकरि तिनकों संकल्परचित फलकी प्राप्ति होती है, सो बालक बुद्धिकी अर्चना है, जो तुम सारखे हैं, तिनकों यही पूजा है, जो तुमकों सर्व आत्मभावनाकरि कही है ॥ हे मुनीश्वर ! हमारे मतविषे तौ अवर देव कोउ नहीं, एकही परमात्मा देव है, तीनों भुवनविषे तिसतें अवर देव कोउ नहीं, सो शिव है, अरु सर्व पदतें अतीत है, सर्व संकल्पतें उल्लंघन वर्तता है, अरु सर्व संकल्पका अधिष्ठान उही है, अरु देश काल वस्तुके परिच्छेदतें रहित है, सर्व प्रकार शांतरूप है, एक चिन्मात्र निर्मल स्वरूप है, तिसकों देवकरि कहता है ॥ हे मुनीश्वर ! जो संवितसत्ता पंचभूतकलातें अतीत है, अरु सर्व भावके अंतर उही स्थित है, अरु सर्वकों सत्ता देणेहारा देव है, अरु सर्वकी सत्ता हरणेहारा भी उही है ॥ हे ब्राह्मण ! जो ब्रह्म सत्य असत्यके मध्य अरु असत्य सत्यके पर कहाता है, सो देव परमात्मा है, परम स्वतः सत्ता स्वभाव करिके सबकों प्राप्त भया है, अरु महाचित्त करिके कहाता है, सो परमात्म देव सत्ता है, ऐसे सर्वविषे स्थित है, जैसे सर्व वृक्षकी लताके अंतर रस जल स्थित है, तैसे सत्ता समानरूप करिके परम चेतन आत्मा सर्व उर स्थित है, जो चेतन तत्त्व अरुंधतीका है, अरु जो चेतन तत्त्व तुझ नि

ष्पापका है, अरु जो चेतन तत्त्व पार्वतीका है, सोइ चेतन तत्त्व मेरा है, सोइ चेतन तत्त्व जगत त्रिलोकीका है, सो देव है, अवर देव कोउ नहीं, अरु जो अवर हस्तपादसंयुक्त देव कल्पते हैं, सो भी चिन्मात्र सार कछु नहीं, चिन्मात्रही सर्व जगत्का सारभूत है, सोइ अर्चना करणे योग्य है, तिसीतें सब फलकी प्राप्ति होती है, सो देव कहूं दूर स्थित नहीं, अरु किसी प्रकार किसीकों प्राप्त होना भी कठिन नहीं, सर्वकी देहविषे स्थित है, अरु सर्वका आत्मा है, सो दूर कैसे होवै, अरु कठिनतासों प्राप्त कैसे होवै, सब क्रिया उही करता है, भोजन भी उही करता है, भरण पोषण भी उही करता है, उही श्वास लेता है, सबका ज्ञाता उही है, पुर्यष्टकाविषे प्रतिबिंबित होकरि प्रकाशता उही है, जैसे पर्वत उपर चरअचरकी चेष्टा होती है, चलते बैठते स्थित होते हैं, सो सबका आधारभूत पर्वत है, तैसे मनसहित षट् इंद्रियांकी चेष्टा आत्माके आश्रय होती है, तिस देव की संज्ञा व्यवहारके निमित्त तत्त्ववेत्तानें कल्पी है, सो एक देव चिन्मात्र है, सूक्ष्म है, सर्वव्यापि है, निरंजन है, आत्मा है, ब्रह्म है, इत्यादिक नाम ज्ञानवाननें शास्त्र बुद्धि उपदेश व्यवहारके निमित्त राखे हैं ॥ हे मुनीश्वर! जेता कछु विस्तार सहित जगत भासता है, सो सबका प्रकाश उही है, अरु सर्वतें रहित है, सो नित्य शुद्ध अद्वैतरूप है, सब जगतविषे अनुस्यूत है, जैसे वसंतऋतुविषे नानाप्रकारके फूल वृक्ष भासते हैं, अरु सर्वविषे एकही रसव्यापार है, उही अनेकरूप हो भासता है, तैसे एकही आत्मसत्ता अनेकरूप होकरि भासती है ॥ हे मुनीश्वर! जेता कछु जगत है, सो आत्माका चमत्कार भासता है, आत्मतत्त्वविषे स्थित है, कहूं आकाशरूप होकरि स्थित है, कहूं जीवरूप होकरि स्थित है, कहूं चित्तरूप, कहूं अहंकाररूप होकरि स्थित है, कहूं दिशारूप, कहूं द्रव्यरूप, कहूं भाविकारूप, कहूं तम, कहूं प्रकाशरूप होकरि स्थित है, कहूं सूर्य, कहूं पृथ्वी, कहूं जल, कहूं अग्नि, वायु आदिक स्थावरजंगमरूप होकरि उही स्थित है, जैसे समुद्रविषे तरंग बुदबुदे होते हैं, तैसे एक परमात्मा देवविषे त्रिलोकियां हैं, हे मुनी

श्वर ! देवता दैत्य मनुष्य आदिक सव एक देवविषे पडे वहते हैं; जैसे जलविषे तृण वहते हैं, तैसे परमात्मा विषे जीव वहते हैं, उही चेतनतत्त्व चतुर्भुज होकरि दैत्यकों नाश करता है, जैसे जल मेघरूप होकरि धूपकों रोकता है, उही चेतनतत्त्व त्रिनेत्र, मस्तकपर चंद्रधार, वृषभउपर आरूढ, पार्वतीरूपी कमलिनीके मुखका भंवरा, रुद्र होकरि स्थित होता है, अरु उही चेतन विष्णुरूप सत्ता है, तिसके नाभिकमलतें उत्पन्न हुआ ब्रह्मा, त्रिलोकी वेदत्रयरूप कमलिनीकी तलावडी होकरि स्थित भया है ॥ हे मुनीश्वर ! इस प्रकार एकही चेतनतत्त्व अनेकरूप होकरि स्थित भया है, अरु जैसे एकही रस अनेकरूप होकरि स्थित होता है, अरु जैसे एकही स्वर्ण अनेक भूषणरूप होकरि स्थित होता है, तैसे एकहि चेतन अनेकरूप होकरि स्थित होता है, तातें सर्व देह एक चेतनतत्त्वके हैं, जैसे एक वृक्षके अनेक पत्र होते हैं, तैसे एकही चेतनके सर्व देह हैं, उही चेतन मस्तकपर चूडामणि धारणहारा त्रिलोकपति इंद्र होकरि स्थित भया है, देवतारूप होकरि भी उही स्थित भया है, अरु दैत्यरूप होकरि भी उही स्थित भया है, मरण उपजणेका रूप भी उही धारता है, जैसे एक समुद्रविषे तरंगके समूह उपजते अरु मिट जाते हैं, सो जलही जलरूप है; तैसे उपजणां अरु विनसणां चेतनविषे होता है, सो चेतनरूप परमात्मा एकही वस्तु है ॥ हे मुनीश्वर ! चेतनरूपी आदर्श है, तिसविषे जगतरूपी प्रतिबिंब होता है, अपणी रची हुई वस्तुकों आपही ग्रहण करिके अपणेविषे धारता है, जैसे गर्भिणी स्त्री अपणे गर्भकों धारती है, तैसे चेतनतत्त्व जगत प्रतिबिंबकों धारता है ॥ हे मुनीश्वर ! सर्व क्रिया उसी देवकरि सिद्ध होती हैं, देणां, लेणां, बोलणां, चालणां सव उसी करि सिद्ध होता है, सूर्यादिक प्रकाशरूपी उसीकरि प्रकाशते हैं, अरु उसीकरि प्रफुल्लित होते हैं, जैसे नील कमल अरु रक्त कमल सूर्यकरि प्रफुल्लित होते हैं, तैसे आत्माकरि अंधकार अरु प्रकाश दोनों सिद्ध होते हैं ॥ हे मुनीश्वर ! त्रिलोकीरूपी धूलि चेतनरूपी वायुकरि उडती है, जेते कछु जगतके आरंभ हैं, तिन सर्वकों चेतनरूपी दीपक

प्रकाश करता है, जैसे फुलके सिंचणेकरि वल्ली प्रफुल्लित होती है, अरु फूलफलकों प्रगट करती है, तैसे चेतनसत्ता सर्व पदार्थकों प्रगट करती है, सबकों सत्ता देकरि सिद्ध करती है ॥ हे मुनीश्वर ! चेतनहीकरि जडकी सिद्धता होती है, अरु चेतनहीकरि जडका अभाव होता है, जैसे प्रकाशहीकरि अंधकार सिद्ध होता है, अरु प्रकाशहीकरि अंधकारका अभाव होता है, तैसे सर्व देह चेतनकरि सिद्ध होते हैं, अरु चेतनहीकरि देहोंका अभाव होता है, चेतन भी उसीकरि होता है, शिव भी उसीकरि होता है ॥ हे मुनीश्वर ! ऐसा पदार्थ कोउ नहीं, जो चेतनविना सिद्ध होवै, जो कोउ पदार्थ है, सो आत्माहीकरि सिद्ध होता है ॥ हे मुनीश्वर ! शरीररूपी वृक्ष सुंदर है, बडे उंचे टाससहित है, परंतु चेतनरूपी मंजरीविना नहीं शोभता, जैसे रसविना वृक्ष नहीं शोभता, तैसे चेतनविना शरीर नहीं शोभता, बढणां घटणां आदिक जो विकार है, सो भी एक आत्माकरि सिद्ध होते हैं, यह जगत सब चेतनरूप है, चेतनमात्रही अपणे आपविषे स्थित है ॥

॥ वसिष्ठ उवाच ॥ हे रामजी ! जब इस प्रकार अमृतरूपी वाणीकरि त्रिनेत्रनें मुझकों कहा, तब मैं अमृतरूपी भली प्रकार वाणीकरि पूछत भया ॥ हे देव ! जब सर्वगत चेतन देव व्यापकरूप स्थित है, अरु चेतनही बडे विस्तारकों प्राप्त भया है, तब यह प्रथम चेतन था, अब यह चेतनतातें रहित है, यह कल्पनाका सब लोकविषे प्रत्यक्ष अनुभव कैसे होता है ? ॥ ईश्वर उवाच ॥ हे ब्रह्मवेत्ताविषे श्रेष्ठ ! महाप्रश्न यह तुझनें किया है, तिसका उत्तर सुण ॥ हे ब्राह्मण! इस शरीरविषे दो चेतन स्थित हैं,एक चैतन्योन्मुखत्वरूप है, एक निर्विकल्प आत्मा है, जो चैतन्योन्मुखत्व दृश्यसाथ मिल्या हुआ है, सो जीव है, संकल्पके फुरणेकरि अन्यकी नांई हो गया है, अरु वास्तवतें अवर कछु नहीं हुआ, परंतु दृश्यसंकल्पके अनुभवकों ग्रहण किया है, तिसकरि जीवरूप हुआ है, जैसे स्त्री अपणे शील धर्मकों त्यागिकरि दुराचरणी होती है, तब शीतलता उसकी जाती रहती है,परंतु स्त्रीका स्वरूप नहीं जाता,तैसे चैतन्योन्मुखत्व करिके अनुभवरूपी जीवरूप हो जाता है;

परंतु चेतन स्वरूपका त्याग नहीं करता,जैसे पुरुष संकल्पके वशतें एक क्षणविषे अवररूप हो जाता है, तैसे चित्तसत्ता फुरणे भाव करिके अन्यरूप हुई है, जैसे जल दृढ जडता करिके पथ्थरवत हो जाता है, तैसे चेतनकला जीवरूप भई है ॥ हे मुनीश्वर! आदि जो चित्तस्पंद चित्कलाविषे हुआ है, तब शब्दके चेतणेतें आकाश हुआ, बहुरि स्पर्श तन्मात्राका चेतणा हुआ, तब वायु प्रगट भया, इसी प्रकार पंच तन्मात्राके फुरणेकरि पंच तत्त्व हुए, बहुरि देश आदिकका उपाय हुआ, तिसविषे जीव प्रतिबिंबित भया, बहुरि निश्चयवृत्ति हुई, तिसका नाम बुद्धि हुआ, बहुरि अहंवृत्ति फुरी, तिसका नाम अहंकार हुआ, बहुरि संकल्प विकल्पवृत्ति फुरी, तिसका नाम मन हुआ, चिंतवना करिके चित्त हुआ, बहुरि संसारकी भावना हुई, तब संसारका अनुभव हुआ, अभ्यासके वशतें संसार भासणे लगा, जैसे विपर्ययभावना करिके ब्राह्मण आपकों चंडाल जानै, तैसे भावनाके विपर्ययकरि आपकों जीव मानणे लगा है, संकल्पकी जडता करिके चेतनरूपी जीवकों ग्रहणकरि संकल्पविषे वर्तता है, अनंत संकल्पतें जडता तीव्रताकों प्राप्त होकरि जडभावकों ग्रहणकरि देहभावकों प्राप्त होता है, जैसे जल दृढ जडता करिके बरफरूप हो जाता है, तैसे चेतन अनंत संकल्प करिके जड देहभावकों प्राप्त होता है; तब चित्त मन मोहित हुआ, जडताकों आश्रय करिके संसारविषे जन्म लेता है, मोहकों प्राप्त हुआ तृष्णा करिके पीडित होता है, कामक्रोधसंयुक्त भावअभावविषे प्राप्त होता है, अपणी अनंतताकों त्यागिकरि परिच्छिन्न व्यवहारविषे वर्तता है, दुःखदायक अग्निकरि तप्त हुआ शून्यभावकों प्राप्त होता है, भेदभावकों ग्रहण करिके महादीन हो रहता है ॥ हे मुनीश्वर! मोहरूपी जो गरत है, तिसविषे जीवरूपी हस्ती फस्या है, भावअभावकरि सदा डोलायमान होता है, जैसे जलविषे तृण भ्रमता है, तैसे असाररूप संसारविषे विकारसंयुक्त रागद्वेषकरि तपता रहता है, शांतिकों कदाचित् नहीं प्राप्त होता, जैसे यूथतें बिछुरा एक मृग कष्टवान होता है, तैसे आवरण भाव जन्ममरणकरि

कष्टवान होता है, अपणे संकल्पकरि आपही भय पावता है, जैसे बालक अपणे परछायेविषे वैताल कल्पि करि आपही भय पावता है, तैसे जीव अपणे संकल्पकरि आपही भयभीत होता है, अरु संकटकों पावता है, आशारूपी फांसीकरि बांधा हुआ कष्टतें कष्टकों पावता है, कर्म करिके तपायमान हुआ अनेक जन्म पावता है, अरु भयविषे रहता है, बालक होता है, तब महादीन परवश होता है, बहुरि यौवन अवस्थाविषे कामादिकके वश हुआ स्त्रीविषे चित्त रहता है, अरु वृद्ध अवस्थाविषे चिंताकरि मग्न होता है, दुःख कष्ट पडा पावता है, जब मृतक होता है, तब कर्मोंके वश चल्या जाता है, बहुरि जन्मता है, गर्भविषे दुःख पावता है, बहुरि बालक यौवन वृद्ध अरु मृतक अवस्थाकों पावता है, इसी प्रकार भटकता है, स्वरूपतें गिर्या हुआ स्थिर कदाचित् नहीं होता ॥ हे मुनीश्वर ! एक चित्तसत्ता स्पंदभाव करिके अनेक भावकों प्राप्त होती है, कहूं दुःखकरि रुदन करती है, कहूं दुःख भोगती है, कहूं स्वर्गविषे देवांगना होती है, पातालविषे नागिनी होती है, असुरविषे असुरी, राक्षसविषे राक्षसी होती है, वन कोट वानरी सिंहहूंविषे सिंहिणी, किंनरहूंविषे किंनरी, हरिणोंविषे हरिणी होती है, विद्याधरी, गंधर्वी, देवताविषे देवी इत्यादिक जो रूप धारती है, सो चैत्योन्मुखत्व जीवकलारूप धारती है, क्षीरसमुद्रविषे विष्णुरूप होकरि स्थित होती है, ब्रह्मपुरीविषे ब्रह्मारूप होकरि स्थित होती है, पंचमुख होकरि रुद्ररूप स्थित होती है, स्वर्गविषे इंद्ररूप होकरि स्थित होती है, तीक्ष्ण कलाकरि सूर्यरूप दिनका कर्ता होती है, क्षण दिन मास वर्षकों करती है, चंद्रमा होकरि रात्रिकों करती है, काल होकरि नक्षत्रकों फेरती है, कहूं प्रकाश, कहूं तम होती है, कहूं बीज, कहूं पाषाण, कहूं मनरूप होती है, कहूं नदी होकरि वहती है, कहूं फूल होकरि फूलती है, कहूं भंवर होकरि सुगंधि लेती है, कहूं फल होकरि दिखावती है, कहूं वायु होकरि चलती है, कहूं अग्नि होकरि जलावती है, कहूं बरफ होती है, कहूं आकाश होकरि दिखावती है ॥ हे मुनीश्वर ! इस प्रकार सर्वात्मा सर्वगत सर्व शक्तता करिके एक

हीरूप चित्तशक्ति आकाशतें भी निर्मल है, जैसे चेत्या तैसे होकरि स्थिति भई है, जैसी जैसी भावना करती है, शीघ्रही तैसा रूप हो जाती है, परंतु स्वरूपतें इतर कछु नहीं होती, जैसे समुद्रविषे फैन तरंग होकरि भासता है, परंतु जलतें इतर कछु नहीं होता, जलही जल है, तैसे चित्तशक्ति अनेक रूप धारती है, परंतु चेतनतें कछु इतर नहीं होती, कहूं हंस, कहूं काक, कहूं शूकर, मखी, चिडी इत्यादिक रूप धारिकारि संसारविषे प्रवर्तती है, जैसे जलविषे आय तृण भ्रमता है, तैसे भ्रमती है, अरु अपणे संकल्पतें आपही भय पावती है, जैसे गधेडा अपणे शब्दकरि आपही पडा दउडता है, अरु भय पावता है, तैसे जीव अपणे संकल्पकरिके आपही भय पावता है ॥ हे मुनीश्वर ! जीवशक्तिका आचार मैंनें तुझकों कहा है, इस आचारकों ग्रहण करिके बुद्धि नीच पशुधर्मिणी हुई है, स्वरूपके प्रमाद करिके जैसा जैसा संकल्प करती है, तैसी तैसी कर्मगतिकों प्राप्त होती है, अरु शोकवान होती है, अनंत दुःखकों प्राप्त होती है, अपणी चैत्यता करिके मलिन होती है, जैसे चावलका स्वरूप तुषकरि आवर्या जाता है, अरु बडे संतापकों प्राप्त होता है, बहुरि बहुरि बोता है, बहुरि उगता काटता है, तैसे स्वरूपके आवरण करिके जीवकला दुर्भागता जन्ममरणदुःखकों प्राप्त होती है, जैसे भर्तारतें रहित स्त्री शोकवान होती है, तैसे इह कष्टकों पावती है ॥ हे मुनीश्वर ! जड जो है, दृश्य अनात्मरूप, तिससाथ प्रीति करणेकरि अरु निजस्वरूपके विस्मरणकरि आशारूपी फांसीसाथ वांधा हुआ चित्त जीवकों नीच योनिविषे प्राप्त करता है, जैसे घटीयंत्रके टींद कबहूं अधकों जाते हैं, कबहूं ऊर्ध्वकों जाते हैं, तैसे जीव आशाके वश हुआ कबहूं पाताल, कबहूं आकाशकों जाता है ॥ इति श्रीयोगवासिष्ठे निर्वाणप्रकरणे वसिष्ठेश्वरसंवादे चैतन्योन्मुखत्वविचारो नाम एकोनत्रिंशत्तमः सर्गः ॥ २९ ॥ ॥ ईश्वर उवाच ॥ हे मुनीश्वर ! स्वरूपके विस्मरण करिके इस प्रकार होता है, जो मैं हंता हौं, मैं दुःखी हौं, सो अनात्माविषे अहंप्रतीति करिके दुःखका अनुभव करता

है, जैसे स्वप्नविषे पुरुष आपकों पर्वततें गिरता देखता है, दुःखी होता है, अरु मृतक हुआ आपकों देखता है, तैसे स्वरूपके प्रमाद करिके अनात्माविषे आत्मअभिमान करिके दुःखी आपकों देखता है ॥ हे मुनीश्वर ! शुद्ध चेतनतत्त्वविषे जो चित्तभाव हुआ है, सो चित्तकला फुरणेकरि जगत्का कारण हुआ है, तिसकरि जगत होता गया है, परंतु वास्तव स्वरूपतें इतर कछु नहीं भया, जैसे जैसे चेतती गई है, तैसे तैसे जगत होता गया है, उह चित्तका कारणरूप भी नहीं भया, जब कारणही नहीं भया, तब कार्य किसकों कहिये ॥ हे मुनीश्वर ! न उह चित्त है, न चेतन है, न चेतणेवाली है, न द्रष्टा है, न दृश्य है, न दर्शन है, जैसे पत्थरविषे तेल नहीं होता, सो न कारण है, न कर्म है, न करण इंद्रियां हैं, जैसे चंद्रमाविषे समता नहीं होती, न मन है, न मानणे योग्य दृश्य वस्तु है, जैसे आकाशविषे अंकुर नहीं होता, न अहंता है, न तूं है, न दृश्य है, जैसे शंखकों सामता नहीं होती ॥ हे मुनीश्वर ! न नाना है, न अनाना है, जैसे अणुविषे सुमेरु नहीं होता, न शब्द है, न शब्दका अर्थ है, जैसे मरुस्थलविषे वल्ली नहीं होती, न वस्तु है, न अवस्तु है, जैसे बरफविषे उष्णता नहीं होती, न शून्य है, न अशून्य है, न जड है, न चेतन है, जैसे सूर्यमंडलविषे अंधकार नहीं होता ॥ हे मुनीश्वर ! इत्यादिक शब्द अरु अर्थकी कल्पना उसविषे कछु नहीं, जैसे अग्निविषे शीतलता नहीं होती, केवल केवलीभाव अद्वैत चिन्मात्र तत्त्व है, स्वरूपतें किसीकों कछु भी दुःख नहीं ॥ हे मुनीश्वर ! जगत्कों असत जाणिकरि अभावना करणी, अरु आत्मकों सत् जाणिकरि भावना करणी, इस भावनाकरि सर्व अनर्थ निवृत्त हो जाते हैं, सो अवर किसीकरि प्राप्त नहीं होता, अपणे आपहीकरि प्राप्त होता है, अरु अनादिही सिद्ध है, जब तिसकी उर भावना होती है, तब भ्रम सब मिटि जाता है, जब अनात्मभावना होती है, तब पावणा कठिण होता है, यत्नविना उह कैसे पावै, जो यत्न साध है, सो यत्नविना नहीं पाया जाता, आत्मा कैसा है, निर्विकल्प है, अद्वैत है, सर्वतें अतीत है, सो अभ्यासविना कैसे पाइए, आत्मतत्त्व परम है, एक है, स्वच्छ है, तेजका भी प्रकाशक है,

सर्वगत निर्मल नित्य है, सदा उदित निर्मन शक्तिरूप है, निर्विकार निरंजन है, सो घट पट वट वृक्षविषे, गार्दीविषे, वानरविषे, दैत्य देवता समुद्रविषे, हस्तिविषे, इत्यादिक स्थावरजंगमरूप जेता कछु जगत है, सो सर्वविषे एक आत्मतत्त्वविषे साक्षीरूप होकरि स्थित है, दीपकवत् सर्वकों प्रकाशता है, अरु सर्व क्रियातें अतीत है, अरु तिसीकरि सर्व कार्यसिद्धि होती है, सर्व क्रिया संयुक्त भासता है, अरु सर्व विकल्प तें रहित जडवत् भी भासता है, परंतु परम चेतन है, सर्व चेतनका सार चेतन है, निर्विकल्प परम सूक्ष्म है, अरु अपणे आपविषे किंचन हो भासता है, अरु अपणे प्रमाद करिके रूप अवलोकन नमस्कार त्रिपुटी भासती है, जब बोध होता है, तब ज्योंका त्यों आत्मा भासता है, नित्य शुद्ध निर्मल परमानंदरूप है, तिसके प्रमाद करिके चित्तभावकों प्राप्त होता है, जैसे साधु भी दुर्जनके संगकरि असाधु हो जाते हैं, तैसे अनात्माके संगकरि यह नीचताकों प्राप्त होता है, जैसे सोना धातुकी मिलवनीकरि खोटा हो जाता है, जब शोधना करता है, तब शुद्धताकों प्राप्त होता है, तैसे अनात्माके संगकरि यह जीव दुःखी होता है, जब अभ्यास यत्न करिके अपणे शुद्धरूपकों पावता है, तब उहीरूप होय जाता है, जैसे मुखके श्वासकरि दर्पण मलीन हो जाता है, तब उसविषे मुख नहीं भासता, जब मलिनता निवृत्त होती है, तब शुद्ध होता है, तिसविषे मुख स्पष्ट भासता है, तैसे चित्त संवेदनके प्रमादतें फुरणेकरि जगतभ्रम भासणे लगता है, अरु आत्मास्वरूप नहीं भासता, जब यह जगतसत्ता फुरणेसहित दूर होवैगी, तब आत्मतत्त्व भासैगा, जगतकी असत्यता भासैगी ॥ हे मुनीश्वर ! जब शुद्ध संवितविषे चेतनताका फुरणा निवृत्त होता है, तब अहंताभावकों प्राप्त होता है, जब अहंकारकों प्राप्त भया, तब अविनाशी रूपकों विनाशी जाणता है ॥ हे मुनीश्वर ! स्वरूपतें कछु भी उत्थान होता है, तिसकरि स्वरूपतें गिरिके कष्ट पावता है, जैसे पहाडतें गिर्या अध चला जाता है, अरु चूर्ण होता है, तैसे स्वरूपतें उत्थान हुआ, अरु अनात्माविषे अभिमान अहं प्रतीत हुई,

तब अनेक दुःखहूंकों प्राप्त होता है ॥ हे मुनीश्वर ! सर्व पदार्थका सत्तारूप आत्मा है, तिसके अज्ञानकरि के देवत्वभावकों प्राप्त हुआ है, जब तिसका बोध होवै, तब देवत्वभाव निवृत्त हो जावैगा, सो आत्मा शुद्ध चिन्मात्र स्वरूप है, तिसकी सत्ता करिके देह इंद्रियांदिक भी चेतन होते हैं, अरु अपणे अपणे विषयकों ग्रहण करते हैं, जैसे सूर्यके प्रकाशकरि सब जगतका व्यवहार होता है, प्रकाशविना व्यवहार नहीं होता, तैसे आत्माकी सत्ता करिके देह इंद्रियांदिकका व्यवहार होता है अपणे अपणे विषयकों ग्रहण कर लिया है ॥ हे मुनीश्वर ! प्राणवायुकों लिये जो नेत्रहूंविषे सुख श्यामता है, सो अपणे आपविषे रूपकों ग्रहण करती है, तिसका बाह्य विषयसाथ संयोग होता है, तिस रूपका जिसविषे अनुभव होता है, सो परम चैतन्यसत्ता है, त्वचा इंद्रियां अरु स्पर्शविषे जब संयोग होता है, इन जडहूंका जिसकरि अनुभव होता है, सो साक्षीभूत परम चेतन सत्ता है, अरु नासिका इंद्रियका जब गंध तन्मात्रासाथ संयोग होता है, तिसके संयोगविषे जो अनुभवसत्ता है सो परम चेतन है, इसी प्रकार शब्द स्पर्श रूप रस गंध यह जो पांचों विषय हैं, अरु श्रोत्र नेत्र त्वचा रसना नासिका पांचों इंद्रियसाथ मिलिकरि इनके जानणेवाला साक्षीभूत परम चेतन आत्मतत्त्व है, सो सुख संवित् परम चेतन कहाता है, अरु जो बहिर्मुख फुरिकरि दृश्यसाथ मिल्या है, सो मलिन चित्त कहाता है, अरु जब उही मलीनरूप अपणे शुद्ध स्वरूपविषे स्थित होता है, तब शुद्ध होता है ॥ हे मुनीश्वर ! इह जगत सब आत्मा स्वरूप है, शिला घनकी नांई अद्वैत सर्व विकारतें रहित है, न उदय होता, न अस्त होता है, संकल्पके वशतें जीवभावकों प्राप्त होता है, संकल्पके निवृत्त हुए परमात्मारूप हो जाता है ॥ हे मुनीश्वर ! आदि जो चित्तकला फुरी है सो जीवरूपी रथपर आरूढ हुए हैं, अरु जीव अहंकाररूपी रथपर आरूढ हुआ है, अहंकार बुद्धिरूपी रथपर आरूढ है, अरु बुद्धि मनरूपी रथपर आरूढ है, मन प्राणरूपी रथपर चढ्या है, अरु प्राण इंद्रियांरूपी रथपर चढे हैं, इंद्रियका

रथ देह है, अरु देहका रथ पदार्थ हैं, जो कर्म करती है, कर्महूंकरि जरामरणरूपी संसारपिंजरेविषे भ्रमती है, इस प्रकार चक्र वर्त्तता है, तिसविषे जीव प्रमाद करिके पडा भटकता है ॥ हे मुनीश्वर! यह चक्र आत्माका आभास विरूप है, जैसे स्वप्नपुरविषे नानाप्रकारके पदार्थ भासते हैं, सो वास्तव कछु नहीं, तैसे इह जगत वास्तव कछु नहीं, जैसे मृगतृष्णाकी नदी भ्रम करिके भासती है, तैसे इह जगत भ्रम करिके भासता है ॥ हे मुनीश्वर! मनका रथ प्राण है, जब प्राणकला फुरणेतें रहित होती है, तब मन भी स्थित हो जाता है, प्राणके स्थित हुए मनका मनन शांत हो जाता है, अरु जब प्राणकला फुरती है, तब मनका मनन भी फुरता है, प्राणकला स्थित भई, तब मनन निवृत्त हो जाता है, जैसे प्रकाशविना पदार्थ नहीं भासते, जैसे वायुके शांत हुए धूलि उडणेतें रहि जाती है; तैसे प्राणके फुरणेतें रहित मन शांत होता है, जैसे जहां पुष्प होते हैं, तहां गंध भी होता है, जहां अग्नि है, तहां उष्णता भी होती है, तैसे जहां प्राणस्पंद होता है, तहां मन भी होता है, हृदयविषे जो नाडी हैं, तिसविषे प्राण स्वतः फुरते हैं, तिसकरि मनन होता है, संवित जो है स्वच्छरूप सो जड अजड सर्वत्र भासती है, अरु संवेदन प्राणकलाविषे फुरती है ॥ हे मुनीश्वर! आत्मसत्ता सर्वत्र अनुस्यूत है, परंतु जहां प्राणकला होती है, तहां भासती है, जहां प्राणकला नहीं तहां नहीं भासती, जैसे सूर्यका प्रकाश सर्व ठौरविषे होता है, परंतु जहां उज्ज्वल स्थान, जल अथवा दर्पण होता है, तहां प्रतिबिंब भासता है, अवर ठौर नहीं भासता, तैसे आत्मसत्ता सर्वत्र है, परंतु जहां प्राणकला पुर्यष्टक होती है, तहां भासती है, अवर ठौर नहीं भासती, जैसे दर्पणविषे मुखका प्रतिबिंब भासता है, शिलाविषे नहीं भासता, तैसे पुर्यष्टका जो मनरूप है, सर्वका कारण है, अहंकार बुद्धि इंद्रियां सो तिसीके भेद हैं, जो आपहीकरि कल्पित है, सर्व दृश्य जाल तिसहीकरि उदय होते हैं, अवर वस्तु कोउ नहीं, यह भली प्रकार अनुभव किया है, तातें मनही देहादिकको प्रवर्त्तता है, सो परम तत्त्ववस्तु तिसहीविषे भास

ता है ॥ ॥ इति श्रीयोगवासिष्ठे निर्वाणप्रकरणे ईश्वरोपाख्याने मनप्राणोक्तप्रतिपादनं नाम त्रिंशत्तमः सर्गः ॥ ३० ॥ ॥ ॥ ईश्वर उवाच ॥ हे मुनीश्वर ! आत्मसत्ताविना जीव कंधवत् होता है, अरु आत्मसत्तातें चेतन होकरि चेष्टा करता है, जैसे चुंबक पाषाणकी सत्तातें जड लोहा चेष्टा करते हैं, तैसे सर्वगत आत्माकी सत्ताकरि जीव फुरता है, अरु आत्मसत्ता भी जीवकलाविषे भासता है, अवर ठौर नहीं भासता, जैसे मुखका प्रतिबिंब दर्पणविषे भासता है, अवर ठौर नहीं भासता, तैसे परमात्मा सर्वगत सर्वशक्त भी है, परंतु भासता जीवकलाहीविषे है ॥ हे मुनीश्वर ! शुद्ध वास्तव स्वरूपतें जो इस जीवकलाका उत्थान हुआ है, अरु दृश्यकी उर वही है तिसकरि चित्तभावकों प्राप्त भई है, जैसे शूद्रहूंकी संगति करिके ब्राह्मण भी आपकों शूद्र मानणे लगता है तैसे स्वरूपके प्रमाद करिके जीवकला आपकों चित्त दृश्यभाव जानणे लगी है, अज्ञान करिके आच्छाद्या जीव महादीनभावकों प्राप्त हुआ है ॥ जड देहके अध्यासकरि कष्ट पावता है, कामक्रोधादिक वातापित्तादिककरि जलता है, जैसी जैसी भावना होती है, तैसा तैसा कर्म करता है, तिन कर्मकी भावनासाथ मिल्या हुआ भटकता है, जैसे खंभाणीकरि चलाया पत्थर चला जाता है, तैसे कर्मवासनाका प्रेर्या जीव भ्रमता है, जैसे रथपर आरूढ होकरि रथी चलता है, तैसे आत्मा मन अरु प्राण कर्मकों दृढ करिके चलता है ॥ हे मुनीश्वर ! चेतनही जड दृश्यकों अंगीकार करिके जीवत्वभावकों प्राप्त होता है, मन प्राणरूपी रथपर चढीकरि पदार्थकी भावनातें नानाप्रकारके भेदकों प्राप्त हुएकी नांई स्थित होता है, जैसे जलही तरंगभावकों प्राप्त होता है, तैसे चेतन नानाप्रकार होकरि स्थित होता है, सो यह जीवकला आत्माकी सत्ताकों पायकरि वृत्तिविषे फुरणरूप होती है, जैसे सूर्यकी सत्ताकों पायकरि नेत्र रूपकों ग्रहण करते हैं, तैसे परमात्माकी सत्ता पायकरि जीव वृत्तिविषे फुरता है, परमात्मा चिद्तत्त्वविषे जो स्थित है, तिसकरि फुरणरूप जीवता है, जैसे घरविषे दीपक होता है, तब प्रकाश होता है, दीपकविना प्र

काश नहीं होता, अपणे स्वरूपकों भुलायकरि जो जीव दृश्यकी उर लगा है, इस कारणतें आधिव्याधि करि दुःखी होता है, जैसे कमल डोडीसाथ लगता है, तब भंवरे आनि स्थित होते हैं, तैसे जब जीव दृश्य की उर लगता है, तब दुःख आनि स्थित होते हैं, तिसकरि जीव दीन हो जाता है, जैसे जल तरंगभावकों प्राप्त होता है, जैसे घुराण अपणी क्रियाकरि आप बंधायमान होती है, जैसे बालक अपणे परछायेकों देखीकरि आपही अविचारतें भय पावता है, तैसे अपणे स्वरूपके प्रमाद करिके आपही दुःख पावता है, अरु दीनताकों प्राप्त होता है ॥ हे मुनीश्वर! चिद्शक्ति सर्वगत अपणां आप है, तिसकी अभावना करिके दीनताकों प्राप्त हुआ है, जैसे सूर्य बदलकरि आच्छाद्या जाता है, तैसे मूढता करिके आत्माका आवरण हुआ है, जब प्राणोंका अभ्यास करै, तब जडता निवृत्त होवै, अपणा आप आत्मस्मरण होवै, जिनकी वासना निर्मल भई है, हृदयतें दूर नहीं होती सो स्थिर हुई एकरूप हो जाती है, तब जीव जीवन्मुक्त होकरि चिरपर्यंत जीवता है, हृदयकमलविषे प्राणोंकों रोकीकरि शांतिकों प्राप्त होता है, जैसे काष्ठ लोष्ट होता है, तैसे देह गिर पडती है, तब पुर्यष्टका आकाशविषे लीन हो जाती है, जैसे आकाशविषे पवन लीन होता है, तैसे तिसका मन पुर्यष्टका तहांही लीन हो जाती है ॥ हे मुनीश्वर! जिनकी वासना शुद्ध नहीं भई, सो मृत्युकालविषे तिनकी पुर्यष्टका आकाशविषे स्थित होती है, तिसके अनंतर बहुरि फुरी आती है, वासनाके अनुसार स्वर्गनरककों देखणे लगता है, जब शरीर मनपवनतें रहित हुआ, तब शून्यरूप हो जाता है, जैसे पुरुष घरकों त्यागिकरि दूर जाय रहता है, तैसे शरीरकों त्यागिकरि मन अरु प्राण अवर ठौर जाय रहते हैं, तब शरीर शून्य हो जाता है ॥ हे मुनीश्वर! चिद्सत्ता सर्वत्र है, परंतु जहां जीव पुर्यष्टका होती है, तहां भासती है, चेतनताका अनुभव होता है, अवर ठौर नहीं होता ॥ हे मुनीश्वर! जब यह जीव शरीरकों त्यागता है, तब पंच तन्मात्राकों ग्रहण करिके संग लेजाता है, जहां इसकी वासना होती है, तहां जाय प्राप्त

होता है, तब प्रथम इसका अंतवाहक शरीर होता है, बहुरि दृश्यके दृढ अभ्यासकरि स्थूलभावकों प्राप्त हो जाता है, अंतवाहकता विस्मरण हो जाती है, जैसे स्वप्नविषे भ्रमकरि स्थूल आकार देखता है, तैसे मोह करिके मरता है, तब अपणेसाथ स्थूल आकार देखता है, बहुरि स्थूल देहविषे अहंप्रतीति करता है, तिससाथ मिलिकरि क्रिया करता है, तब असत्यकों सत्य जाणता है, अरु सत्यकों असत्य जाणता है, इस प्रकार भ्रमकों प्राप्त होता है, जब सर्वगत चिदंशकरि जीव मन होता है, तब जगतभावकों प्राप्त होता है, जब देहसों पुर्यष्टका निकसती है, तब आकाशविषे जाय लीन होती है, तब देह फुरनेतें रहित होती है, तिसकों मृतक कहते हैं, अपणे स्वरूपशक्तिकों विस्मरण करिके जर्जरीभावकों प्राप्त होता है, जब जीवशक्ति हृदयकमलविषे मूर्छित होती है, प्राण रोके जाते हैं, तब यह मृतक होता है, बहुरि जन्म ले जाता है, बहुरि मरी जाता है ॥ हे मुनीश्वर! जैसे वृक्षसाथ पत्र लगते हैं, काल पायकरि नष्ट हो जाते हैं, बहुरि नूतन लगते हैं, तैसे यह जीव शरीरकों धारता है, उह नष्ट हो जाता है, बहुरि अवर शरीर धारता है, उह भी नष्ट हो जाता है, जो वृक्षके पत्रहूंकी नांई उपजते अरु नष्ट होते हैं, तिनका शोक करणां व्यर्थ है ॥ हे मुनीश्वर! चेतनरूपी समुद्रविषे शरीररूपी तरंग बुदबुदे अनेक उपजते हैं, अरु नष्ट होते हैं, तिनका शोक करणां व्यर्थ है, जैसे दर्पणविषे अनेक पदार्थका प्रतिबिंब होता है, सो दर्पणतें इतर कछु नहीं, तैसे चेतनविषे अनेक पदार्थ भासते हैं, सो चेतन निर्मल आकाशकी नांई विस्तीर्णरूप है, तिसविषे जो पदार्थ फुरते हैं, सो अनन्यरूप है, विधि शरीर भी उही रूप है ॥ ॥ इति श्रीयोगवासिष्ठे निर्वाणप्रकरणे ईश्वरोपाख्याने देहपातविचारो नाम एकत्रिंशत्तमः सर्गः ॥ ॥ ३१ ॥ ॥ ॥ ॥ ॥

वसिष्ठ उवाच ॥ हे अर्धचंद्रधारी! जो चेतन तत्त्व परमात्मा पुरुष है, सो अनंत एकरूप है, तिसकों यह द्वैत कहांतें प्राप्त भया है, अरु भूतभविष्यत काल कहांतें दृढ हो रहा है? एकविषे अनकेता कहांतें

प्राप्त भई है, अरु बुद्धिवान दुःखकों कैसे निवृत्त करते हैं, अरु कैसे निवृत्त होता है ?॥ ईश्वर उवाच ॥ हे ब्राह्मण ! ब्रह्म चेतन सर्वशक्त है, जब उह एकही अद्वैत होता है, तब निर्मलताकों प्राप्त होता है, एकके भाव करि द्वैत कहाता है, द्वैतकी अपेक्षाकरि एक कहाता है, सो दोनों कल्पना मात्र हैं, जब चित्त फुरता है, तब एक अरु दोनोंकी कल्पना होती है, चित्तस्पंदके अभाव हुए, अरु दोनोंकी कल्पना मिटि जाती है, अरु कारणकरि जो कार्य भासता है, सो भी एकरूप है, जैसे बीजतें लेकरि फलपर्यंत वृक्षका विस्तार है, सो एकरूप है, अरु बढणां घटणां उसविषे कल्पना होती है, तैसे चेतनाविषे चित्तकल्पना होती है, तब जगतरूप हो भासता है, परंतु तिस कालविषे भी उहीरूप है ॥ हे मुनीश्वर ! वृक्षके समय भी वस्तु बीज एकरूप है, कछु अवर नहीं हुआ, परंतु बीज फुरता है तब वृक्ष हो भासता है तैसे जब शुद्ध चेतनविषे चेतनकलना फुरती है, तब जगतरूप हो भासता है ॥ हे मुनीश्वर ! यह जो कारणकार्य विकाररूप जगत भासता है, सो असम्यक् दृष्टिकरि भासता है, जैसे जलविषे तरंग भासते हैं, सो जलरूप हैं, जलतें इतर कछु नहीं, जैसे शशेके सिंग असत हैं, जैसे जलविषे द्वैत तरंगकलना असत हैं, अज्ञान करिके भासते हैं, तैसे आत्माविषे अज्ञान करिके जगत भासता है, जैसे द्रवता करिके जलही तरंगरूप हो भासता है, तैसे फुरणेकरि आत्मतत्त्व जगतरूप हो भासता है, अवर द्वैत कछु नहीं, चेतनरूपी वल्ली पसरी है, तिसविषे पत्र फूल फल एकहीरूप हैं, जैसे एक वल्ली अनेकरूप हो भासती हैं. तैसे एकही चेतन अहं त्वं देश काल आदिक विकार होकरि भासता है, सो उही रूप है ॥ हे मुनीश्वर ! जब सवही चेतन है, तब तेरे प्रश्नका अवसर कहां होवै, देश काल क्रिया नीति आदिक जो शक्ति पदार्थ हैं, सो एकही चिदात्मा है, जैसे जलविषे जब द्रवता होती है, तब तरंगरूप हो भासता है, तिसका नाम तरंग होता है, तैसे ब्रह्मविषे जगत फुरता है, तब अहं त्वं आदिक नानाप्रकारके नाम होते हैं, परम ब्रह्म शिव परमात्मा चेतनसत्ता द्वैत अद्वैत आदिक नाम भी फु

रणे करिके कहते हैं, जो इन नामतें अतीत है सो वाणीका विषय नहीं, ऐसा निर्विकल्प निर्विषय तत्त्व है, सो सदा अपणे आपविषे स्थित है, इह जगत जो कछु भासता है, सो भी उही चेतनतत्त्व है, जैसे वल्ली फूल पत्र होकरि पसरती है, तैसे चेतन सर्वरूप होकरि पसरता है, सो उहीरूप है ॥ हे मुनीश्वर! महा चेतनविषे जब किंचन होता है, तब जीवरूप होकरि स्थित होता है, आगे द्वैतकलनाकों देखता है, जैसे स्वप्नविषे अपणां स्वरूप त्यागिकरि अवर परिच्छिन्न वपुकों धारता है, अरु आगे द्वैतरूप जगत्कों देखता है; जब जागता है, तब अपणे अद्वैतरूपकों देखता है, परंतु जागेविना भी द्वैत कछु हुआ नहीं, तैंसे इह जाग्रत जगत भी कछु हुआ नहीं, भ्रमकरि भासता है, जब इह जीव अपणे वास्तव स्वरूपकी उर सावधान होता है, तब तिसके अभ्यासकरि उहीरूप हो जाता है ॥ हे मुनीश्वर! इस जीवका जो आदि वपु है, सो अंतवाहक है, संकल्पही तिसका रूप होता है, जब तिसविषे अहंभावना तीव्र होती है, तब उही आधिभौतिक होकरि भासता है, तिसविषे सत्यता दृढ हो जाती है, तिसकी सत्यताकरि रागद्वेषसों क्षोभायमान होता है, जब काकतालीयवत अकस्माततें हृदयविषे विचार आनि उपजता है, तब संकल्परूपी आवरण दूर हो जाता है, अरु अपणे वास्तव स्वरूपकों प्राप्त होता है, जैसे बालक अपणे परछायेंविषे वैताल कल्पिकरि भयकों पावता है, तैसे इह जीव अपणे संकल्प करिके आपही भय पावता है ॥ हे मुनीश्वर! इह जेता कछु जगत भासता है, सो सब संकल्पमात्र है, जैसा संकल्प इसके हृदयविषे दृढ होता है, तैसाही भासने लगता है, प्रत्यक्ष देख जो पुरुष कछु कार्य करता है,तब सो कर्तृत्वभाव तिसके हृदयविषे दृढ होता है, बहुरि कहता है, यह कार्य मैं न करों, जब यही संकल्प दृढ होता है, तब उस कार्यतें आपकों अकर्त्ता जाणता है, तैसे दृश्यकी भावनाकरि जगत सत्य दृढ हो गया है, जब दृश्यका संकल्प निवृत्त करता है, अरु आत्मभावनाविषे जुडता है, तब जगतभ्रम निवृत्त हो जाता है, आत्माही भासता है ॥ हे मुनीश्वर! परमार्थतें कछु

द्वैत हैही नहीं, सब संकल्परचना है, संकल्पकरि रच्या जो दृश्य सो संकल्पके अभावतें अभाव हो जाता है, जैसे मनोराज्य गंधर्वनगर मनकरि रचित होता है, बहुरि संकल्पके अभाव हुएतें अभाव होता है, तब क्लेश कछु नहीं रहता ॥ हे मुनीश्वर ! इह जगत संकल्पकी पुष्टता करिके जीव दुःखका भागी होता है, जैसे स्वप्नविषे संकल्प करिके दुःखी होता है, इस संकल्पमात्रकी इच्छा त्यागणेविषे क्या कृपणता है, अरु स्वप्नविषे जो सुख भोगता है, सो सुख भी कछु वस्तु नहीं, भ्रममात्र है, तैसे इह सुख भ्रममात्र है ॥ हे मुनीश्वर ! संकल्पविकल्पने इसकों दीन किया है, जब संकल्पविकल्पका त्याग करता है, तब चित्त अचित्त हो जाता है, अरु परम उंच पदविषे विराजमान होता है, जिस पुरुषनें विवेकरूपी वायुकरि संकल्परूपी मेघकों दूर किया है, सो परम निर्मलताकों प्राप्त होता है, जैसे शरत्कालका आकाश निर्मल होता है, तैसे संकल्पविकल्परूपी मलतें रहित उज्ज्वलभावकों प्राप्त होता है, संकल्पके त्यागेतें जो पाछे शेष रहता है, सो सत्तामात्र परमानंद तेरा स्वरूप है ॥ हे मुनीश्वर ! आत्मा सर्वशक्तिरूप है, जैसी भावना होती है, तैसा ही अपणी भावनाकरि देखता है, तातें सब संकल्पमात्र है, भ्रम करिके उदय हुआ है, संकल्पके लीन हुए सब लीन होजाता है ॥ हे मुनीश्वर ! संकल्परूपी लकडी अरु तृष्णारूपी घृत करिके जन्मरूपी अग्निकों इह जीव बढावता है, तिसकरि अंत कदाचित् नहीं होता, जब असंकल्परूपी वायुकरि अरु जलकरि इसका अभाव करैं, तब शांति हो जाती है, जैसे दीपक निर्वाण होजाता है, तैसे जन्मरूपी अग्निका अभाव हो जाता है, अरु संकल्परूपी वायुकरि तृणकी नांई भ्रमता है ॥ हे मुनीश्वर ! तृष्णारूपी करजुएकी वल्ली है, तिसकों संकल्परूपी जलकरि पडा सिंचता है, जब असंकल्परूपी शोषता अरु विचाररूपी खड्गकरि काटै, तब तिसका अभाव हो जावै, जो आभासमात्र है, सो आभासके क्षय हुए अभाव हो जाता है, जैसे गंधर्वनगर होता है, तैसे इह जगत असम्यक् ज्ञानकरि भासता है, सम्यक् ज्ञानकरि लीन हो जाता है, जैसे कोउ राजा होवै, अरु स्वप्न

विषे रंक हो जावै, पूर्वका स्वरूप विस्मरण हो जावै, अरु दीनताकों प्राप्त होवै, जब पूर्वका स्वरूप स्मरण आवै, तब आपकों राजा जाणै, अरु दुःख मिटी जावै, निर्दुःखपदकों प्राप्त होवै, तैसे इस जीवकों अपणां वास्तव पूर्वका स्वरूप विस्मरण हो गया है, तिसकरि आपकों परिच्छिन्न दीन दुःखी जाणता है, जब स्वरूपका ज्ञान होवै, तब सब दुःखका अभाव हो जावै, जैसे शरत्कालका आकाश निर्मल होता है, तैसे निर्मल हो जावै, जैसे वर्षाकालका मल गयेतें आकाश निर्मल होता है, तैसे अज्ञानरूपी मलतें रहित जीव निर्मल होता है, शुद्ध पदकों प्राप्त होता है, जो ऐसे युक्तिकरि भावना करता है, मैं आत्मा हौं, एक हौं, द्वैततें रहित हौं, जब ऐसी भावना करैगा, तब सोइ होवैगा, द्वैतका अभाव हो जावैगा, उत्तम पद ब्रह्मदेव पूज्य पूजक पूजा किंचित निष्किंचनकी नांई चित्त एकरूप हो जावैगा ॥ ॥ इति श्रीयोगवासिष्ठे निर्वाणप्रकरणे ईश्वरोपाख्याने देव प्रतिपादनं नाम द्वात्रिंशत्तमः सर्गः ॥ ३२ ॥ ॥ ॥ ॥ ईश्वर उवाच ॥ हे मुनीश्वर ! देव निरंतर स्थित है, द्वैत अरु एक पदतें रहित है, अरु द्वैत एक संयुक्त भी उही है, संकल्पसाथ मिलिकरि चेतनरूप संसारकों प्राप्त भया है, अरु जो संकल्पमलतें रहित है, सो संसारतें रहित है, जब ऐसे जाणता है, जो मैं हौं, तब इसी संकल्पकरि बंधमान होता है, जब इसके भावतें मुक्त होता है, तब सुखदुःखका अभाव हो जाता है, शुद्ध निरंजन एक सत्ता सर्वात्मा आकाशवत् होता है, इसीका नाम मुक्ति है, आकाशवत् व्यापक ब्रह्म होता है ॥ ॥ वसिष्ठ उवाच ॥ हे प्रभो ! जब मनविषे मन क्षीण होता है, अरु इंद्रियां मनविषे लीन होतियां हैं, द्वितीय अरु तृतीय पद किसकी नांई शेष रहता है, जो महासत्ता आत्मसत्ता सर्वका लीन करता है, सो किसकी नांई है ? ॥ ॥ ईश्वर उवाच ॥ ॥ हे मुनीश्वर ! मनकरि जब मन छेदता है, इंद्रियां जिसके अंग हैं, विचार करिके अथवा अवर उपासना करिके जब आत्मबोध इसकों प्राप्त होता है, तब द्वैत एककी कल्पना नष्ट हो जाती है, जगतजालकी सत्यता नष्ट हो जाती है, तिसके पाछे जो शेष रहता है, सो

आत्मतत्त्व प्रकाश्या है, जैसे भूने बीजतें अंकुर नहीं उपजता, तैसे जब मन उपशम होता ह, तब तिसविषे जगतसत्ताका अभाव हो जाता है, चेतनसत्ता जो है सो चित्तसत्ताकों भक्षणकरि लेती है, जब मनरूपी मेघकी सत्ता नष्ट होती है, तब शरत्कालके आकाशवत् निर्मल आत्मसत्ता भासती है, चित्तकी चपलता मिटि जाती है, तब परमनिर्मल पावन चिन्मात्र तत्त्व प्राप्त होता है, अवर द्वैत एक भाव अभावरूपी संसारकल्पना मिटि जाती है, समसत्तारूप तत्त्व जो सर्वव्यापक है, अरु संसारसमुद्रतें पार करणेहारा है, सो प्राप्त होता है, सुषुप्तकी नांई बोध निर्भय हो जाता है, शांतिरूप आत्माकों पाइकरि शांतरूप हो जाता है ॥ हे मुनीश्वर ! मनकी क्षीणताका प्रथम पद यह तुझकों कहा है, अब द्वितीय पद सुण ॥ हे मुनीश्वर ! जब यह चित्तशक्ति मनके मननतें मुक्त होती है, कैसी मननवृत्ति है, जो अनेक उरकों धावती है, तिसतें जब मुक्ति होता है, तब चंद्रमाके प्रकाशवत् शीतल हो जाता है, अरु आकाशवत् विस्तृतरूप अपणां आप भासता है, अरु घन सुषुप्तरूप हो जाता है, जैसे पत्थरकी शिला पोलतें रहित होती है, तैसे दृश्यतें रहित घन सुषुप्त इसका रूप होता है, लोणवत् रसमय ब्रह्म हो जाता है, जैसे आकाशविषे शब्द लीन हो जाता है, तैसे इसका चित्त आत्माविषे लीन हो जाता है, जैसे वायु चलणेतें रहित अचल होता है, तैसे चित्त अचल हो जाता है, जैसे गंध पुष्पविषे स्थित होता है, तैसे चित्तवृत्ति आत्मतत्त्वविषे विश्रामकों पाती है, सो आत्मसत्ता कैसी है, न जड है, न चेतन है, सर्व कलनातें रहित अचैत्य चिन्मात्र है, अंकुररूप सर्व सत्ताके धारणेहारी देशकालके परिच्छेदतें रहित है, जिसकों उह प्राप्त होती है, तिसकों तुरीया पद भी कहते हैं, सर्व दुःखकलंकतें रहित पद है, तिस सत्ताकों पाइकरि साक्षीकी नांई स्थित होता है, सर्वत्र सर्वदा काल सम स्थित है, सर्व प्रकाश उही है, अरु शांतिरूप है, तिस आत्मसत्ताका जिसकों आत्मतत्त्वकरि अनुभव होता है, तिसकों द्वितीय पद प्राप्त होता है ॥ हे मुनीश्वर ! यह द्वितीयपद तुझकों

कहा है, अव तृतीयपद श्रवण कर, जब वृत्तिका अत्यंत प्रणाम आत्मतत्त्वविषे होता, तब ब्रह्म आत्मा आदिक नामकी भी तहां निवृत्ति हो जाती है, भाव अभावकी कलना कोउ नहीं फुरती, स्थाणुकी नांई अचल वृत्ति हो जाती है, परम शांत निष्कलंक तुरीयातीत सबतें जो उल्लंघित पद है, तिसकों प्राप्त होता है, सो सर्वका अंत अरु सर्व आधाररूप है, एक अद्वैत नित्य चिन्मात्र तत्त्व है, तुरीयातें भी आगे पद है, जिसविषे वाणीकी गम नहीं, तिस पदकों प्राप्त होता है ॥ हे मुनीश्वर ! सर्व कलनातें रहित अतीत पद मैं तुझकों कहा है, तिसविषे स्थित होहु, सोइ सनातन देव है, अरु विश्व भी उही रूप है, उही तत्त्व संवेदनके वशतें ऐसे रूप होकारि भासता है, अरु वास्तवतें न कछु प्रवृत्त है, न कछु निवृत्त है, समसत्ता प्रकाशरूप अद्वैत तत्त्व अपणे आपविषे स्थित है, आकाशवत् निर्मल है, तिसविषे द्वैत एक भ्रमका अभाव है, एक चिद्घनसत्ता पाषाणवत् अपणे आपविषे स्थित है, तिसविषे अरु जगतविषे भेद रंचक भी नहीं, जैसे जल अरु तरंगविषे भेद कछु नहीं, तैसे ब्रह्म अरु जगतविषे भेद कछु नहीं, सम सत्य सत्ता शिव शांतिरूप है, अरु सर्व वाणीके विलासतें अतीत है, इसकी चतुर्मात्रा हैं, तुरीया शांत परम है ॥ वाल्मीक उवाच ॥ हे भारद्वाज! इस प्रकार जब ईश्वरनें कहा, अरु परम शांतिरूप आत्मतत्त्वका प्रसंग वसिष्ठजीनें श्रवण किया, तब दोनोंकी वृत्ति आत्मतत्त्वविषे स्थित हो गई, अरु तूष्णीं हो रहे, मानौ मूर्त्ति लिखी छोडियां हैं, एक मुहूर्तपर्यंत चित्तकी वृत्ति ऐसे रही, बहुरि ईश्वर जाग्या ॥ ॥ इति श्रीयोगवासिष्ठे निर्वाणप्रकरणे ईश्वरोपाख्याने परमेश्वरोपदेशो नाम त्रयस्त्रिंशत्तमः सर्गः ॥ ३३ ॥ ॥ ॥

॥ वाल्मीक उवाच ॥ एक मुहूर्तउपरांत सदाशिवजी तीनों नेत्रकों खोलत भया, जैसे पृथ्वीरूपी डबेतें सूर्य निकसै, तैसे नेत्र निकसे, जैसे द्वादश सूर्यका प्रकाश एकठा होवै, तैसे नेत्रका प्रकाश हुआ, अरु देखत भया, जो वसिष्ठजीके नेत्र मुंदे हुए तब कहा, हे मुनीश्वर! जागो, अब नेत्र काहेकों मुंदि छोडे हैं, जो क

छु देखणा था, सो तौ देख्या है, अब समाधिविषे जुडनेका श्रम किसनिमित्त करते हौ, तुमसारखे तत्त्ववेत्ता कों हेयोपादेय किसीविषे नहीं होता, तूं जैसा बुद्धिवान है तैसाही है, तूं आत्मदर्शी है, जो कछु पावणेयोग्य था, सो पाया है, जानणेयोग्य था सो जाण्या है, अरु वालकके बोधनिमित्त जो तुम मुझतें पूछा सो मैं कहा है, अब तुमकों तूष्णींसाथ क्या प्रयोजन है ॥ हे रामजी! इस प्रकार कहीकरि मेरे अंतर प्रवेश करिके चित्तकी वृत्तिसाथ जगाया, जब मैं जाग्या, तब बहुरि ईश्वर कहत भया ॥ हे वसिष्ठजी! इस शरीरकी क्रियाका कारण प्राणस्पंद है, प्राणोंकरि शरीरकी चेष्टा होती है, तिसविषे आत्मा उदासीनकी नांई स्थित है, न कछु करता है, न भोगता है, जब इस जीवकों अपणे स्वरूपका प्रमाद होता है, तब देहविषे अभिमान होता है, क्रिया करता आपकों मानता है, बहुरि भोगता मानता है, इसकरि दुःख पावता है, इस लोक परलोकविषे भटकता है, अरु जब आत्मविचार उपजता है, तब आत्माका अभ्यास होता है; देह अभिमान मिटि जाता है, दुःखतें मुक्त होता है, शरीरके नष्ट हुए आत्माका नाश नहीं होता, अरु शरीर जो चेतन होकरि फुरता है, सो प्राणोंकरि फुरता है, जब बीचतें प्राण निकसि जाते हैं, तब शरीर मूक जडरूप हो जाता है, अरु जो चलावणेहारी अरु पवित्र करणेहारी संवितशक्ति है, सो आकाशतें भी सूक्ष्म है, उह शरीरके नाश हुए नाश नहीं होती, जब नाश नहीं होती, तौ नाशका भ्रम कैसे होवै ॥ हे मुनीश्वर! आत्मतत्त्व ब्रह्मसत्ता सर्वत्र है, परंतु भासती तहां है, जहां सात्त्विक गुणका अंश मन होता है, अरु प्राण होते हैं, मन अरु प्राणोंसहित देहविषे भासती है, जैसे निर्मल दर्पणविषे मुखका प्रतिबिंब भासता है, अरु आदर्श मलीन होता है, तब मुख विद्यमान भी होता है, परंतु नहीं भासता है, तैसे मन अरु प्राण जब देहविषे होते हैं, तब आत्मा भासता है, जब मन अरु प्राण निकसि जाते हैं, तब मलीन शरीरविषे आत्मसत्ता नहीं भासती ॥ हे मुनीश्वर! आत्मसत्ता सब ठौर पूर्ण है, परंतु भासती नहीं, जब तिसका अभ्यास होवै, तब

सर्वात्मरूप होकरि भासती है, सर्व कलनातें रहित शुद्ध शिवरूप, सर्वकी सत्तारूप, उही है, विष्णु भी उही है, शिव भी उही है, ब्रह्मा भी उही है, देवताजात भी उही है, अग्नि, वायु, चंद्रमा सूर्यादिक सब जगतका आदि वपु उही है, सो एक देव है, शुद्ध चेतनरूप है, सर्व देवहूंका देव है, अवर सब तिसके टहलुए हैं, अरु सब तिसके चित्त उल्लास है ॥ हे मुनीश्वर! हम जो इस जगतविषे बडे ब्रह्मा, विष्णु, रुद्र हैं, सो उसही तत्त्वतें प्रगट भए हैं, जैसे अग्नितें चिणगारे उपजते हैं, जैसे समुद्रतें तरंग प्रगट होते हैं, तैसे हम तिसतें प्रगट भये हैं, यह अविद्या भी तिसतें प्रगट भई है, अरु अनेक शाखाकों प्राप्त भई है, देव अदेव वेद अरु वेदके अर्थ, अरु जीव सब उस अविद्याकी जटा है, अरु अनंतभावकों प्राप्त भई है, बहुरि बहुरि उपजती अरु मिटती है, देश काल पृथिव्यादिक सब उसीकरि संपन्न हैं, परंतु सर्वकी सत्तारूप उही आत्मा देव है, ब्रह्मा, विष्णु, रुद्र हम जो हैं, सो हमारा परम पिता आत्मा है, सर्वका मूल बीज उही देव है, सब तिसतें उपजे हैं, जैसे वृक्षतें पत्र उपजते हैं, तैसे सब महादेवतें उपजते हैं, सर्वका अनुभवकर्त्ता उही है, सर्वकों सत्ता देणेहारा उही है, सब प्रकाशका प्रकाश उही है, सो तत्त्ववेत्ताकरि पूजणेयोग्य है, सर्वविषे प्रत्यक्ष है, सर्वदा सर्व प्रकार सर्वविषे उदित आकार चेतन अनुभवरूप है, तिसके आवाहनविषे मंत्र आसन आदिक सामग्री नहीं चहीती, काहेतें जो सर्वदा अनुभवरूप करिके प्रत्यक्ष है, अरु सर्व प्रकार सर्व ठौरविषे विद्यमान है, जहां जहां तिसके पावणेका यत्न करिये, तहां आगेही विद्यमान है, उह शिवतत्त्व आदिही सिद्ध है, मन वाणीविषे तीनों रूप उही हो भासता है, सबकी आदि है, अरु पूजणे योग्य है, अरु नमस्कार करणे योग्य भी उही है, अरु जानणेयोग्य भी उही है ॥ हे मुनीश्वर! ऐसा जो आत्मतत्त्व है, सो जरा मृत्यु शोक भयके काटणेहारा है, तिसकों आपकरि आपही देखता है, तिसके साक्षात्कार हुए चित्त भूने बीजकी नांई हो जाता है, बहुरि नहीं उगता, सो शिवतत्त्व जीवका जीव है, सर्व पदका पद उही है, अनुभव

रूप है, आत्मा है, परम पद है, इतर दृष्टिका त्याग करौ ॥ ॥ इति श्रीयोगवासिष्ठे निर्वाणप्रकरणे ईश्वरोपाख्याने देवनिर्णयो नाम चतुस्त्रिंशत्तमः सर्गः ॥ ३४ ॥ ॥ ॥ ईश्वर उवाच ॥ हे मुनीश्वर ! सो चिद्रूप तत्त्व सर्वके अंतर स्थित है, अरु अनुभवमय शुद्ध देव ईश्वर है, सब बीजका बीज उही है, सर्व सारका सार उही है, कर्मका कर्म, धर्मका धर्म उही है, सो चेतन धातु निर्मलरूप सब कारणका कारण उही है, अरु आप अपणा कारण है, सर्व भाव अभावका प्रकाशक उही है, सर्व चेतनका चेतन उही है, परम प्रकाशरूप है, भौतिक प्रकाशतें रहित है, अलौकिक प्रकाशक है, सर्व जीवका जीव उही है, चेतनघन निर्मल आत्मा अस्ति सन्मयरूप है; सतअसततें रहित महासतरूप है, सर्व सत्ताकी सत्ता उही सो चिन्मात्र तत्त्व है, सोइ नानारूप हो रहा है, जैसे एकही आत्मसत्ता स्वप्नविषे आकाश कंध पहाड आदिक होकरि भासती है, तैसे नाना रंग रंजना उही होकरि भासता है, जैसे सूर्यकी किरणांविषे मरुस्थलकी नदी हो भासती है, अनेक कोट किरणांतें अनेक तरंग हो भासते हैं, तैसे यह जगत तिसविषे भासता है ॥ हे मुनीश्वर ! उसी आत्मतत्त्वका यह आभास प्रकाश है, तिसतें इतर कछु नहीं, जैसे अग्नितें उष्णता भिन्न नहीं, उही रूप है, तैसे आत्मातें जगत कछु भिन्न नहीं, उही स्वरूप है, अरु सुमेरु भी तिसके आगे परमाणुरूप है, अरु संपूर्ण काल तिसका निमेषरूप है, कल्पकी निमेष उन्मेषवत उदय अरु लय होते हैं, अरु सप्तसमुद्रसंयुक्त पृथ्वी तिसके रोमके अग्रवत तुच्छ है, ऐसा उह देव है, वहुरि कैसा है, संसाररचनाकों करता नहीं, अरु कर्तृत्वभावकों प्राप्त होता है, वडे कर्मोंका करता भासता है, तौ भी कछु नहीं करता, द्रव्यरूप दृष्टि आता है, तौ भी द्रव्यतें रहित है, निर्द्रव्य है, तौ भी द्रव्यवान है, देहवान नहीं तौ भी देहवान है, अरु वडा देहवान है, तौ भी अदेह है, सर्वका सत्तारूप उही देव है, हंढी, भोलि, घले, मतचुल, पिंढली, मागले, वेली, घिलिमला, लोवलाग, युगुल, सभस इत्यादिक वाक्य निरर्थक हैं, इनका अर्थ कछु नहीं सो भी देव

करि सिद्ध होते हैं, ऐसा कछु नहीं, जो देवविषे असत नहीं, अरु ऐसा भी कछु नहीं जो देवकरि सत नहीं ॥ हे मुनीश्वर ! जिसतें यह सर्व है, अरु जो यह सर्व है, जो सर्वमें नित्य है, तिस सर्वात्माकों मेरा नमस्कार है ॥ ॥ इति श्रीयोगवासिष्ठे निर्वाणप्रकरणे महेश्वरवर्णनं नाम पंचत्रिंशत्तमः सर्गः ॥ ३५ ॥ ॥ ईश्वर उवाच ॥ हे मुनीश्वर ! इत्यादिक शब्दकी सत्तारूप उही है, सर्वसत्तारूप रत्नका डब्बा उही है, उही तत्त्व चमत्कार करिके फुरता है, जैसे जलतरंग फैन बुदबुदा आदिक आकार करिके फुरता है, तैसे देव नानाप्रकारके आकार होकरि फुरता है, उही फूल गुच्छेरूप होकरि स्थित होता है, आपही तिसविषे सुगंध होकरि स्थित होता है, घ्राणइंद्रियविषे स्थित होकरि आपही सूंघता है, आपही त्वचा इंद्रिय होता है, आपही पवन होकरि चलता है, आपही स्पर्शकरि ग्रहण करता है, आपही जलरूप होता है, आपही वायु होकरि सुकावता है, आपही श्रवणेंद्रिय होकरि, आपही शब्द होकरि, आपही ग्रहण करता है, इसी प्रकार जिव्हा त्वचा नासिका कर्ण नेत्र होकरि आपही स्पर्श रूप रस गंध शब्दकों ग्रहण करता है, उसीनें पदार्थ रचे हैं, उसीनें नीति रची है, ब्रह्मा, विष्णु, रुद्र, शिव पंचम ईश्वर सदाशिव तिसपर्यंत उही देव, इस प्रकार हुआ है, आपही साक्षीवत् स्थित होता है, जैसे दीपकके प्रकाशकरि मंदिरकी सर्व क्रिया होती है, तैसे संसाररूपी मंडपकी सब क्रिया साक्षीकरि होती है, तिसविषे उसकी शक्ति नृत्य करती है, अरु आप साक्षीरूप होकरि देखता है ॥ ॥ वसिष्ठ उवाच ॥ हे जगन्नाथ ! शिवकी शक्ति क्या है, अरु कैसे स्थित है, अरु देवकों साक्षात् कैसे है, अरु तिसका नृत्य कैसा होता है ? ॥ ॥ ईश्वर उवाच ॥ हे मुनीश्वर ! आत्मतत्त्व स्वभावतें अचल है, अरु शांतरूप है, शिव परमात्मा निर्मल चिन्मात्ररूप निराकार है, तिसकी आसक्ति इच्छाशक्ति है, कालशक्ति है, नीतिशक्ति है, मोहशक्ति है, ज्ञानशक्ति है, क्रियाशक्ति है, कर्त्ताशक्ति है, परंतु स्वरूपतें सदा अकर्त्ता है, इत्यादिक आत्माकी शक्ति है, तिन शक्तिका अंत नहीं, अनंतरूप चिन्मात्र देव है, यह जो मैं तुझकों शक्ति कही है, सो भी

शिवरूप है, भिन्न नहीं, जो कर्तृत्व भोक्तृत्व साक्षिता आदिक भावनातें शक्ति विविधरूप धार्या है, शिव अरु शक्ति एक रूप है, अरु बहुत भासती है, पदार्थविषे अर्थशक्ति है, आत्माविषे साक्षिशक्ति कल्पित है, तैसे कालशक्ति है, नृत्यकी नांई ब्रह्मांडरूपी नृत्यमंडलविषे नृत्य करती है, क्रियाशक्ति कर्तृत्वकरि नृत्य करती है, इत्यादिक शक्ति कहाती है, जैसे आदि नीति हुई है, ब्रह्मातें लेकरि तृणपर्यंत तैसेही स्थित है, अन्यथा नहीं होती ॥ हे मुनीश्वर! यह संपूर्ण जगत नृत्य करता है, संसाररूपी नटणी है, तिसके प्रेरणेहारी नीति है, अरु परमेश्वर परमात्मा है, सो साक्षीरूप है, सदा उदित प्रकाशरूप है, एकरस देव स्थित है, अरु नीति आदिक शक्ति भी तिसतें भिन्न नहीं, उहीरूप है, तातें देवही जाण, अवर द्वैत कछु नहीं ॥

॥ इति श्रीयोगवासिष्ठे निर्वाणप्रकरणे ईश्वरोपाख्याने नीतिनृत्यवर्णनं नाम षट्त्रिंशत्तमः सर्गः ॥ ३६ ॥

॥ ईश्वर उवाच ॥ हे मुनीश्वर! जो एक देव परमात्मा है, सो संतकरि पूजणे योग्य है, चिन्मात्र अनुभव आत्मा सर्व है, घट पट गादी कंद वांतर आदिक सर्वविषे उह स्थित है, ब्रह्मा इंद्रादिक देवता अवर जीव सबके अंतर बाहिर उही स्थित है, सर्वात्मा शांतरूप देवका पूजन दोप्रकार होता है, सो सुण, इष्ट देवताका पूजन ध्यान है, अरु ध्यान है सो पूजन है, त्रिभुवनका आधारभूत आत्मा है, तिसकी ध्यान करि पूजा करौ, जहां जहां मन जावै, तहां तहां छल चिद्रूप आत्माकों करौ, सबका प्रकाशक आत्माही है, सो चिद्रूप अनुभव करिके अंतर स्थित है, अहंता करिके सिद्ध है, सो सबका साररूप है, अरु सबका आश्रयरूप है, तिसका जो विराटरूप है, सो सुण, तिसकों जाणिकरि पूजन करौ, बाह्य कैसा है, अनंत है, पारावारतें रहित है, परमाकाश है, सो उसकी ग्रीवा है, अरु अनंत पाताल उसके चरण हैं, अनंत दिशा तिसकी भुजा हैं, सर्व प्रकाश उसके शस्त्र हैं, हृदयकोश कोणविषे स्थित है, ब्रह्मांडसमूहोंकों परंपरा प्रकाशता है, परमाकाश पारअपाररूप है, ब्रह्मा, विष्णु, रुद्रादि देवता जीव उसके रोमावली है, त्रिलोकीविषे

जो देहरूपी यंत्र है, तिनविषे इच्छादिक शक्तिरूप सूत्र व्याप्या है, तिसकरि सब चेष्टा करते हैं, सो देव एकही है, अरु अनंत है, अरु सत्तामात्र स्वरूप है, सब जगतजाल तिसका निवृत्त है, अरु काल तिसका द्वारपाल है, पर्वतादिक ब्रह्मांड जगत तिसके देहविषे किसी कोणमें स्थित है, तिस देवकी चिंतवना करौ, बहुरि कैसा देव है, सहस्र जिसके चरण हैं, अरु सहस्र नेत्र, सहस्र जिसके शीस हैं, अरु सहस्र भुजा हैं, अरु सहस्र भुजाविषे भूषण हैं, सर्वत्र जिसकी नासिका इंद्रिय हैं, सर्वत्र जिसकी रसना इंद्रिय है, सर्वत्र श्रवण इंद्रिय हैं, सर्व उर जिसका मन है, अरु सर्व मननकलातें अतीत है, सर्व उर उही शिवरूप है, सर्वदा सर्वका कर्त्ता है, सर्व संकल्पके अर्थका फलदायक है, सर्व भूतके अंतर स्थित हैं, अरु सर्व साधनका सिद्ध कर्त्ता है, ऐसा जो देव है, सो सर्वविषे सर्व प्रकार सर्वदा काल स्थित है, तिस देवकी चिंतवना करौ, ऐसे देवके ध्यानविषे सावधान रहौ, सदा तिनहीका आकार रहणां, इह उस देवका पूजन है, अब अंतरका पूजन श्रवण करौ ॥ हे ब्रह्मवेत्ताविषे श्रेष्ठ ! संवितमात्र जो देव है, सो सदा अनुभवकरि प्रकाशता है, तिसका पूजन दीपककरि नहीं होता, न धूपकरि होता है, न पुष्पकरि होता है, न दानकरि, न लेपकेसरकरि तिसका पूजन होता है, अर्घ्यपाद्यादिक जो पूजाकी सामग्री है, तिसकरि देवका पूजन नहीं होता, तिसका पूजन क्लेशविना नितही होता है ॥ हे मुनीश्वर ! एक अमृतरूपी जो बोध है, तिस देवका सजातीय प्रतीत ध्यान करणां सो तिसका परम पूजन है ॥ हे मुनीश्वर ! शुद्ध चिन्मात्र जो देव है, सो अनुभवरूप है, तिसका सर्वदाकाल सर्व प्रकार पूजन करौ, देखता है, स्पर्श करता है, सूंघता है, श्रवण करता है, बोलता है, देता है, लेता है, चलता है, बैठता है, इसतें लेकरि जो कछु क्रिया करता है, सो सब प्रत्यक्ष चेतन साक्षीविषे अर्पण करौ, तिसी परायण होहु, इस प्रकार आत्मदेवका पूजन करौ ॥ हे मुनीश्वर ! आत्मदेवका जो ध्यान करणां यही धूप दीप हैं, अरु सर्व सामग्री पूजनकी यही है, ध्यानही देवकों प्रसन्न करता है, तिसकरि परमानंद प्राप्त

होता है, अवरकरि देवकी प्राप्ति नहीं होती ॥ हे मुनीश्वर ! मूढ होवै अरु इस प्रकार ध्यानकरि ईश्वरकी पूजा करै, तब त्रयोदश निमेष जगत उड्डानफलकों पावता है, अरु सत निमेषके ध्यानकरि प्रभुकों पूजे, तब मनुष्य अश्वमेध यज्ञके फलकों पावै, अरु ध्यानके बलकरि आत्माका घडीपर्यंत पूजन करै, तब उह पुरुष राजसूय यज्ञ किएके फलकों पावै, जो दो प्रहरपर्यंत ध्यान करै, तब लक्ष राजसूय यज्ञके फलकों पावै, जो दिनपर्यंत ध्यान करै, सो असंख्य फलकों पावै ॥ हे मुनीश्वर ! यह परम योग है,अरु यही परम क्रिया है, यही परम प्रयोजन है ॥ हे मुनीश्वर ! दोनों पूजा मैं तुझकों कही है, जिसकों यह परम पूजा प्राप्त होती है, सो परम पदकों प्राप्त होता है,सर्व देवता तिसकों नमस्कार करते हैं,सर्व करिके उह पुरुष मेरुवत पूजणे योग्य होता है॥इति श्रीयोगवासिष्ठे निर्वाणप्रकरणे ईश्वरोपाख्याने अंतर्बाह्यपूजावर्णनं नाम सप्तत्रिंशत्तमः सर्गः ॥ ३७ ॥ ॥ ईश्वर उवाच ॥ हे मुनीश्वर ! अब अभ्यंतरका पूजन तूं श्रवण कर जो सर्वत्र पवित्र करणेहारेकों भी पवित्र करता है, अरु सर्व तम अज्ञानका नाश करता है, सो आत्मपूजन मैं तुझकों कहता हौं; कैसा पूजन है, जो सर्व प्रकार करिके सर्वदा कालविषे तिस देवका पूजन होता है, व्यवधान कबहूं नहीं पडता, चलते, बैठते, जागते,सोवते, सर्व व्यवहारविषे नित्य ध्यानमें रहता है ॥ हे मुनीश्वर ! इस संसारविषे नित्य स्थित संवितरूप चिन्मात्र है, तिसका पूजन करौ, जो सर्व प्रत्ययका कर्त्ता है, सदा अनुभवकरि प्रकाशता है, तिसका आपकरि आप पूजन कर, सो तूं है, उठता चलता खाता पीता जेते कछु बाह्य अर्थ हैं, त्याग करता, ग्रहण करता, भोगकों भोगता, तिन सबकों करता, भी देवकी पूजा कर ॥ हे मुनीश्वर ! शरीरविषे जो शिव लिंग है, चिन्हतें रहित लिंग जो बोधरूप चिन्ह है, सो देव है, यथाप्राप्तविषे सम रहणां सो तिस देवका पूजन है, यथाप्राप्तके सम भावविषे स्नान करिके शुद्ध होकरि बोधरूप लिंगका पूजन करहु, जो कछु आनि प्राप्त होवै, तिसविषे रागदोषतें रहित होणां सर्वदा साक्षीरूप अनुभवविषे स्थित र

हणां यही तिसका पूजन है ॥ हे मुनीश्वर! सूर्यके भुवन आकाशविषे उही सूर्य होकरि प्रकाशता है, चंद्र
माके भुवनविषे उही चंद्रमा होकरि स्थित होता है, इनतें आदि लेकरि जो पदार्थके समूह हैं, जैसी जैसी
भावनाकरि फुरणा हुआ है, सोइरूप होकरि देव स्थित है ॥ हे मुनीश्वर! नित्य शुद्ध बोधरूप अद्वैत है,
तिसकों देखणां, अवरविषे वृत्तिकों न लगावणी, यही देवका पूजन है, प्राण अपानरूपी रथपर आरूढ
हुआ, अंतर गुहाविषे जो स्थित है, तिसका जो ज्ञान है, अरु जेते कछु कर्म हैं, तिन सवका कर्त्ता उही है,
सर्व भोगका भोक्ता उही है, अरु सर्व शब्दका स्मरण करणेहारा उही है, अरु भागवतरूप है, सबकी भा
वना करणेहारा परम प्रकाशरूप है, ऐसा जो संवित तत्त्व है, तिसकों सर्वज्ञ जाणीकरि चिंतवना करणी
सो तिसका पूजन है, बहुरि कैसा है देव ॥ सकल भी उही है, निष्कल भी उही है, देहविषे स्थित है, तौ भी
आकाशवत् निर्मल है, जाता भी है, अरु नहीं जाता भी उही है, प्राणरूपी आलयविषे प्रकाशता है, हृद
य कंठ तालु जिव्हा नासिका पीठविषे व्यापक है, शब्द आदिक विषयकों कर्त्ता मनकों प्रेरता है, जैसे ति
लविषे तेल आश्रयभूत है, तैसे आत्मा सर्वविषे आश्रयभूत है, कलनारूपी कलंकतें रहित है, अरु कलनाग
णकरि संयुक्त भी उही है, संपूर्ण देहोंविषे एकही देव व्यापी रहा है, परंतु प्रत्यक्ष हृदयविषे होता है, सो
निर्मल चिन्मात्र प्रकाशरूप है, कलनारूपी कलंकतें रहित सदा प्रत्यक्ष है, अपणे आपहीकरि अनुभव हो
ता है, सर्वदा पदार्थका प्रकाश प्रत्यक्ष चेतन आत्मतत्त्व अपणे आपविषे स्थित है, सो अपणे फुरणे करि
के शीघ्रही द्वैतकी नांई हो जाता है ॥ हे मुनीश्वर! जेता कछु साकाररूप जगत दृष्ट आता है, सो सब वि
राट आत्मा है, तातें आपकों विराटकी भावना करु, हस्त पाद नख कैसे यह संपूर्ण ब्रह्मांड मेरा देह हैं, मैं
ही प्रकाशरूप एक देव हौं, अरु नीति इच्छादिक मेरी शक्ति हैं, सब मेरी उपासना करतियां हैं, जैसे स्त्री श्रेष्ठ
भर्तारकी सेवा करती है, तैसे शक्ति मेरी उपासना करतियां है, बहुरि कैसा हौं, मन मेरा द्वारपाल है, त्रि

लोकीका निवेदन करणेहारा है, अरु चिंतवना मेरी आणेजाणेवाली प्रतिहारी है, नानाप्रकारके ज्ञान मेरे अंगके भूषण हैं, कर्म इंद्रियां मेरे द्वार हैं, ज्ञान इंद्रियां मेरे गण हैं, ऐसा मैं एक अनंत आत्मा अखंडरूप हौं, व्यवच्छेदभेदतें रहित अपणे आपविषे स्थित हौं, सर्वविषे परिपूर्ण एक मैंही हौं ॥ हे मुनीश्वर! इसी भावना करिके जो एक देवकी पूजा करता है, सो परमात्मदेवकों प्राप्त होता है, तब दीनता आदिक क्लेश सब नष्ट हो जाते हैं, अनिष्टकी प्राप्तिविषे शोक नहीं उपजता, इष्टकी प्राप्तिविषे हर्ष नहीं उपजता, न तोषवान होता है, न कोपवान होता है, विषयकी प्राप्तिकरि न तृप्ति मानता है, इनके वियोगकरि न खेद मानता है, न अप्राप्तकी वांछा करता है, न प्राप्तके त्यागकी इच्छा करता है, सर्व पदार्थविषे समभाव रहता है, ऐसा जो पुरुष है, सो देवका परमउपासक है, ग्रहणत्यागतें रहित सबविषे तुल्य है, भेदभावकों नहीं प्राप्त होता, सो देवका अर्चन उत्तम है, हे मुनीश्वर! चेतन तत्त्व देव मैं तुझकों कहा है, जो इसी देहविषे स्थित है, जो प्राप्त वस्तु होवै, तिसकों अर्चन करणी, सब तिसीके आगे रखणी, सबका साक्षी आत्माकों देखणां, किसीतें खेदवान न होणां, अहं प्रतीत तिसविषे रखणी, इतर दृश्यकी भावना नहीं करणी, यही देवकी अर्चना है ॥ हे मुनीश्वर ! जो कछु आनि प्राप्त होवै, तिसविषे यत्नविना तुल्य रहणां, जो भक्ष्य भोज्य लेह्य चोष्य, आनि प्राप्त होवै, सो देवके आगे रखणां, ग्रहणत्यागकी बुद्धि तिसविषे न करणी, सो देवका पूजन है, सर्व पदार्थकी प्राप्तिविषे देवकी पूजा करणी, इसकरि अनिष्ट भी इष्ट हो जाता है, मृत्यु आवै तौ देवकी पूजा, जीवणां आवै तब देवकी पूजा, दारिद्र आवै तब देवकी पूजा, राज्य प्राप्त होवै भी देवकी पूजा, विचित्र नानाप्रकारकी चेष्टा करणी, सो सब देवके आगे पुष्प हैं, रागदोषविषे सम रहणां सो समताकरि देवकी पूजा है, संतके हृदयकी रहणेहारी जो है मैत्री, जो संपूर्ण विश्वका मित्र होणां, तिस मित्रता करिके देवका पूजन है, भोगकरि त्यागकरि रागकरि जो कछु आनि प्राप्त होवै, तिसकरि देवका पूजन करु, हंता होउ, अहंता होउ, यु

कों देश कालके परिच्छेदसहित ईश्वर भासता है, सो हमारे उपदेशके पात्र नहीं, उह ज्ञानबंध नीच हैं, तिनकी दृष्टिकों त्यागिकरि मेरी दृष्टिका आश्रय लेहु, जो मैं तुझकों कही है, तिसकरि स्वस्थ वीतराग निरामय होहु, यथाप्रारब्ध जो कछु सुख दुःख आनि प्राप्त होवै, खेदतें रहित होकरि तिस देवका अर्चन करु, तब शांतिकों प्राप्त होवै ॥ हे मुनीश्वर ! तिस देवकी सर्व प्रकार सर्वात्मा करिके भावना करु, यही तिसका पूजन है, जो वृत्ति सदा अनुभवरूपविषे स्थित रहै, अरु यथाप्राप्तविषे खेदतें रहित विचरणां यही देवकी अर्चना है, जैसे स्फाटिकके मंदिरविषे प्रतिबिंब भासते हैं, सो कछु नहीं, निष्कलंक स्फाटिक है, तैसे सर्व उरतें रहित जन्मादिक दुःखतें रहित निष्कलंक आत्मा है, तिसकी प्राप्तितें तेरेविषे कलंक जन्मादिक दुःख कछु न रहैंगे ॥ ॥ इति श्रीयोगवासिष्ठे निर्वाणप्रकरणे ईश्वरोपाख्याने देवपूजाविचारो नाम एकोनचत्वारिंशत्तमः सर्गः॥३९॥ ॥ वसिष्ठ उवाच ॥ हे देव ! शिव किसकों कहते हैं, अरु ब्रह्म किसकों कहते हैं, आत्मा किसकों कहते हैं, अरु परमात्मा किसकों कहते हैं, तत् सत् किसकों कहते हैं, निष्किंचन शून्य विज्ञान किसकों कहते हैं, इत्यादिक भेद संज्ञा किसनिमित्त हुई है, सो कृपा करिके कहो ॥ ईश्वर उवाच ॥ हे मुनीश्वर ! जब सबका अभाव होता है, तब अनादि अनंत अनाभास सत्तामात्र शेष रहता है, जो इंद्रियांका विषय नहीं, तिसकों निष्किंचन कहते हैं ॥ वसिष्ठ उवाच ॥ हे ईश्वर ! जो इंद्रियां बुद्धि आदिकका विषय नहीं, तिसका पावणां किसकरि होता है ? ॥ ईश्वर उवाच ॥ हे मुनीश्वर ! जो मुमुक्षु है, अरु वेद आश्रयकरि संयुक्त सात्विकी वृत्ति जिसकों प्राप्त हुई है, तिसकों सात्विकीरूप जो गुरु शास्त्र नाम्नी विद्या प्राप्त होती है, तिसकरि अविद्याका भाग नष्ट हो जाता है, अरु आत्मतत्त्व प्रकाशी आता है, जैसे साबु करिके धोबी वस्त्रका मैल उतारता है, तैसे गुरु शास्त्र अविद्याका सात्त्विकी भाग अविद्याकों दूर करते हैं, जब केते कालतें अविद्या नाश होती है, तब अपणा आपहीकरि देखता है, जैसे वायु करि बादल दूर होते हैं, अरु नेत्रकरि सूर्य दे

खता है, जैसे किसीके हाथकों शाइ लगै, सो मृत्तिका जलकरि धोये दूर हो जाती है, सो मैलकरि मैल दूर होता है, तैसे अविद्याका सात्त्विकी भाग गुरुशास्त्र सो अविद्याके आवरणकों नष्ट करते हैं ॥ हे मुनीश्वर! जब गुरुशास्त्रकों मिलिकरि विचार प्राप्त होता है, तब विचारकरि स्वरूपकी प्राप्ति होती है, अरु द्वैतभ्रम मिटि जाता है, सर्व आत्माही प्रकाशता है, जब विचारद्वारा आत्मतत्त्वनिश्चय हुआ, जो सर्व आत्मा है, इतर कछु नहीं, ऐसा निश्चय जहां होता है, तहांतें अविद्या जाती रहती है ॥ हे मुनीश्वर! आत्माकी प्राप्तिविषे गुरुशास्त्र प्रत्यक्ष कारण नहीं, काहेतें जो वस्तु जिनके क्षय हुएतें पाइए, सो तिनके विद्यमान हुए कैसे पाइयें! इंद्रियके समूहका नाम गुरु है, अरु ब्रह्म सर्व इंद्रियतें अतीत है, इनकरि कैसे पाइयें! अकारण है, परंतु कारण भी है, काहेतें जो गुरुशास्त्रके क्रम करिके अज्ञानकी सिद्धता होती है, गुरुशास्त्र विना बोधकी सिद्धता नहीं होती, आत्मा निर्देश है, अरु अदृश्य है, तौ भी गुरुशास्त्रकरि पाता है ॥ अरु न गुरुकरि न शास्त्रकरि पाता है ॥ अपणे आपहीकरि आत्मतत्त्वकी प्राप्ति होती है, जैसे अंधकारविषे पदार्थ होवै अरु दीपक प्रकाशकरि देवैं, सो दीपककरि नहीं पाया, अपणे आपकरि पाया है, तैसे गुरुशास्त्र भी है, जब दीपक होवै, अरु नेत्र न होवै, तब कैसे पाइयें! नेत्र होवै, अरु दीपक न होवै, तौ भी नहीं पाता, जब दोनों होवैं, तब पदार्थ पाता है, तैसे गुरुशास्त्र भी होवैं, अरु अपणां पुरुषार्थ तीक्ष्ण बुद्धि भी होवै, तब आत्मतत्त्व पाता है, अन्यथा नहीं पाता है, गुरु शास्त्र अरु शुद्ध बुद्धि शिष्यकी तीनों एकठे मिलते हैं, तब संसारके सुख दुःख दूर होते हैं, अरु आत्मपदकी प्राप्ति होती है, गुरु शास्त्र आवरण दूरकरि देते हैं, तब आपकरि आपही पावता है, जैसे वायु बदलकों दूर करता है, तब नेत्रकरि सूर्य दिखता है, अब नामके भेद सुण ॥ हे मुनीश्वर! जब बोधके वशतें कर्मइंद्रियां, बुद्धिइंद्रियां क्षय होय जातियां हैं, तिसके पाछे जो शेष रहता है, तिसका नाम संविततत्त्व आत्मसत्ता आदिक नामकरि

क्ति करु, अयुक्ति करु, हेयोपादेयतें रहित होकरि तिस देवका पूजन करु, जो नष्ट हुआ सो हुआ; जो प्राप्त हुआ सो हुआ, दोनोंविषे निर्विकार रहणां, इसकरि देवका अर्चन करु, यह भोग आपातरमणीय हैं, होते भी हैं; नष्ट भी हो जाते हैं, इनकी इच्छा न करणी, सदा संतुष्ट रहणां, जैसे आनि प्राप्त होवै, तिसविषे रागद्वेषतें रहित होणां सो देवका अर्चन है ॥ हे मुनीश्वर ! जो कछु प्रारब्ध करिके आनि प्राप्त होवै तिसकरि आत्माका अर्चन करौ, इच्छा अनिच्छाकों त्यागिकरि जो प्राप्त होवै, तिसकरि देवका अर्चन करौ ॥ हे मुनीश्वर ! ज्ञानवान न किसीकी इच्छा करता है, न त्याग करता है, जो अनिच्छित आनि प्राप्त होवै, तिसकों भोगता है, जैसे समुद्रविषे नदी जाय प्राप्त होती है, तिनकरि न कछु हर्ष करता है, न शोक करता है, तैसे ज्ञानवान इष्टअनिष्टकी प्राप्तिविषे रागदोषतें रहित यथाप्राप्तकों भोगता है, सो देवका पूजन है, देश काल क्रिया शुभ अथवा अशुभ प्राप्त होवै, तिसविषे संसरणविकारकों प्राप्त न होणां, सो देवकी अर्चना है, जब द्रव्य अनर्थरूप होवै, तब भी समरससाथ मिल्या हुआ अमृत हो जाता है, जैसे षट्रसस्वाद हैं सो खांडसाथ मिले हुवे मधुर हो जाते हैं, तैसे अनर्थरूपी रस समरससाथ मिले हुए अमृत हो जाते हैं, खेद नहीं करते, अनंतरूप हो जाते हैं, चंद्रमाकी नांई सब भावना अमृतमय हो जाती है, जैसे आकाश निर्लेप है, तैसे समताभाव करिके चित्त रागदोषतें रहित निर्मल हो जाता है, द्रष्टाकों दृश्यसाथ मिल्या न देखणां, साक्षीरूप रहणां, सो देवकी अर्चना है, जैसे पत्थरकी शिला निस्पंद होती है, तैसे विकल्पतें रहित चित्त अचल होता है, सो देवकी अर्चना है ॥ हे मुनीश्वर ! अंतरतें आकाशवत् असंग रहणां, अरु बाह्य प्रकृत आचारविषे रहणां, किसीका संग अंतर स्पर्श न करै, सदा समभाव विज्ञानकरि पूर्ण रहणां, सो देवका उपासक होता है, जिसके हृदयरूपी आकाशतें अज्ञानरूपी मेघ नष्ट हो गया है, तिसकों स्वप्नविषे भी विकार नहीं प्राप्त होता, अरु जिसके हृदयरूपी आकाशतें अहंतारूपी कुहिड शांत हो गई है, सो शरत्कालके

आकाशवत् उज्ज्वल होता है ॥ हे मुनीश्वर ! जिसकों समभाव प्राप्त भया है तिसकरि देवकों पाया है, सो पुरुष ऐसा हो जाता है, जैसा नूतन बालक रागदोषतें रहित होता है, जीवरूपी चेतनाकों उल्लंघीकरि परम चेतन तत्त्वकों प्राप्त होता है, सकल इच्छाभ्रमतें रहित सुख दुःख भ्रमतें मुक्त शरीरका नायक तिष्ठित होता है सो देवअर्चना है ॥ ॥ इति श्रीयोगवासिष्ठे निर्वाणप्रकरणे देवार्चनाविधानं नाम अष्टत्रिंशत्तमः सर्गः ॥ ३८ ॥

॥ ईश्वर उवाच ॥ हे मुनीश्वर ! जैसी कामना होवै, जो कछु आरंभ करै अथवा न करै, सो अपणे आपकरि चिन्मात्र संवित तत्त्वकी अर्चना कर इसकरि देव प्रसन्न होता है, जब देव प्रसन्न हुआ तब प्रगट होता है, जब उसकों पाया, अरु स्थित भया, तब रागदोषादिक शब्दका अर्थ नहीं पाइता, जैसे अग्निविषे बर्फका कणका नहीं पाइता, तैसे इसविषे रागदोषादिक नहीं पाइता, तातें तिस देवकी अर्चना करणी योग्य है, जो राज्य आनि प्राप्त होवै, अथवा दारिद्य आनि प्राप्त होवै, सुख दुःख आनि प्राप्त होवै, तिसविषे सम रहणां, सो देव अर्चना करणी ॥ हे मुनीश्वर ! शुद्ध चिन्मात्रसों प्रमादी न होणां, इसीका नाम अर्चना है, जेता कछु घट पट आदिक जगत भासता है, सो सब आत्मारूप है, तिसतें इतर कछु नहीं, सो आत्मा शिव शांति रूप अनाभास है, एकही प्रकाशरूप है, संपूर्ण जगत प्रतीतमात्र है, आत्मातें इतर कछु द्वैत वस्तु आभास नहीं, सर्वात्मारूप अद्वैत तत्त्व जब भासै तब तिसविषे हुआ जाणता है, जो बडा आश्चर्य है, घट पट आदिक सब उहीरूप है, अवर तौ कछु नहीं ॥ हे मुनीश्वर ! यह सर्वात्मा अनंतरूप शिव तत्त्व है, जिसकों ऐसे निश्चय प्राप्त भया है, तिसनें देवकी पूजा जाणी है, घट पट आदिक जो पदार्थ हैं, पूज्य पूजा पूजक भाव सो सब ब्रह्मरूप है, निर्मल देव आत्माविषे कछु भेदभाव नहीं ॥ हे मुनीश्वर ! आत्मदेव सर्वशक्ति अनंतरूप है, तीनों जगतविषे तिसतें भिन्न कछु नहीं, निर्मल प्रकाश संवितरूप आत्मा स्थित है, हम कों तौ ईश्वर देवतें इतर कछु नहीं भासता, सर्वत्र सर्व प्रकार सर्वात्मा संपूर्ण दृष्ट आता है, अरु जिन

कहाता है, जहां यह संपूर्ण नहीं, इनकी वृत्ति भी नहीं तिसके पाछे जो शेष सत्ता रहती है, सो आकाशतें भी सूक्ष्म अरु निर्मल है, अनंत है, परम शून्यरूप है, जहां शून्यका भी अभाव है ॥ हे मुनीश्वर! अब शांतरूप जो है मुमुक्षु, अरु मननकलनाकरि संयुक्त है, तिनकों जीवन्मुक्ति पदके बोधनिमित्त शास्त्र मोक्षोपाय रचे हैं, ब्रह्मा विष्णु रुद्र इंद्र लोकपाल पंडित पुराण वेद शास्त्र सिद्धांत रचे हैं, तिनविषे यह नाम तीनमें कहे हैं, चेतन ब्रह्म शिव आत्मा परमात्मा ईश्वर सत् चित् आनंद आदिक संज्ञा अनेक कही हैं, शिव आत्मा ब्रह्म परमात्मा आदिक भिन्न भिन्न नाम शास्त्रकारनें कल्पे हैं, अरु ज्ञानीकों कछु भेद नहीं ॥ हे मुनीश्वर! ऐसा जो देव है, तिसका ज्ञानवान इस प्रकार अर्चन करते हैं, जिस पदके हम आदिक टहलुए हैं, तिस परम पदकों प्राप्त होते हैं ॥ वसिष्ठ उवाच ॥ हे भगवन्! यह जगत सब अविद्यमान है, अरु विद्यमानकी नांई स्थित है, सो कैसे हुआ है, समस्त कहणेकों तुमही योग्य हो ॥ ॥ ईश्वर उवाच ॥ हे मुनीश्वर! जो ब्रह्म आदिक नामकरि कहता है, सो शुद्ध केवल संवितमात्र है, आकाशतें भी सूक्ष्म है, जिसके आगे आकाश भी ऐसा स्थूल है, जैसा अणुके आगे सुमेरु स्थूल होता है, तिसविषे जब वेदना शक्ति आभास होकरि फुरी तब तिसका नाम चेतन हुआ, बहुरि अहंताभावकों प्राप्त हुआ, जो अहं अस्मि, जैसे स्वप्नविषे पुरुष आपकों हस्ती देखणे लगे, तैसे आपकों अहं मानणे लगा, बहुरि देशकाल आकाश आदिक देखणे लगा, तब चेतनकला जीव अवस्थाकों प्राप्त भई, अरु वासना करणेहारी भई, जब जीवभाव हुआ, तब बुद्धि निश्चयात्मक होकरि स्थित भई, शब्द अरु क्रिया ज्ञानसंयुक्त भई, एक एकसाथ मिलिकरि शीघ्रही कल्पित भई, तब मन हुआ सो मन संकल्परूपी मायाका बीज है, तब अंतवाहक शरीरविषे आत्मस्वरूप होकरि ब्रह्मसत्ता स्थित भई, इस प्रकार यह उत्पन्न भई है, बहुरि वायुसत्ता स्पंद हुई, तिसतें स्पर्शसत्ता त्वचा प्रगट भई, बहुरि तेजसत्ता हुई, तिसतें प्रकाशसत्ता हुई, प्रकाशतें नेत्रसत्ता

प्रगट भई, बहुरि जलसत्ता जलतें, स्वादसत्ता स्वादतें, रससत्तातें जिव्हा प्रगट भई, बहुरि गंधसत्ता गंधतें, भूमिसत्ता भूमितें, घ्राणसत्ता पिंडसत्ता प्रगट भई, देशसत्ता कालसत्ता सर्वसत्ता हुई, इनकों एकठा करिके फुरी, जैसे बीज पत्र फूल फलादिकका आश्रय होता है, तैसे यह पुर्यष्टका जाण, यही अंतवाहक देह है, तिसका आश्रय भई, वास्तवतें कछु उपजा नहीं, केवल परमात्मसत्ता अपणे आपविषे फुरती है, जैसे जलविषे जल फुरता है, तैसे आत्मसत्ता अपणे आपविषे फुरती है ॥ हे मुनीश्वर ! संवितविषे जो संवेदन पृथकरूप होकरि फुरै, सो निस्पंद करिके जब स्वरूपकों जाण्या, तब नष्ट हो जाती है, जैसे संकल्पका रचा नगर संकल्पके अभाव हुए अभाव हो जाता है, तैसे आत्माके ज्ञानतें संवेदनका अभाव हो जाता है ॥ हे मुनीश्वर ! संवेदन तबलग भासता है, जबलग इसकों जान्या नहीं, जब जाणता है, तब संवेदनका अभाव हो जाता है, संवितविषे लीन हो जाती है, भिन्नसत्ता इसकी कछु नहीं रहती ॥ हे मुनीश्वर ! जो प्रथम अणु तन्मात्रा थी, सो भावनाके वशतें स्थूल देहकों प्राप्त भई, स्थूल देह होकरि भासणे लगी, आगे जैसे जैसे देश काल पदार्थकी भावना होती गई, तैसे तैसे भासणे लगे, जैसे गंधर्वनगर भासता है, जैसे स्वप्नपुर भासता है, तैसे भावनाके वशतें यह पदार्थ भासणे लगे हैं ॥ ॥ वसिष्ठ उवाच ॥ हे भगवन् ! गंधर्वनगर अरु स्वप्नपुरके समान इसकों कैसे कहते हौ, यह जगत तौ प्रत्यक्ष दिखाता है ॥ ॥ ईश्वर उवाच ॥ हे मुनीश्वर ! संसार दुःख इसकों वासनाके वशतें दिखता है, जो अविद्यमानविषे स्वरूपके प्रमाद करिके विद्यमान बुद्धि हुई है, जगतके पदार्थकों सत जाणिकरि जो वासना फुरती है, तिस वासना करि दुःख होता है ॥ हे मुनीश्वर ! यह जगत अविद्यमान है, जैसे मृगतृष्णाका जल असत्य होता है, तैसे यह जगत असत्य है, तिसविषे वासना अरु वासकवासना करणेयोग्य तीनों वृथा हैं, जैसे मृगतृष्णाका जल पानकरि तृप्त कोउ नहीं होता, काहेतें जो जलही असत है, तैसे यह जगतही असत है, इनके पदार्थ

की वासना करणी वृथा है, ब्रह्मातें आदि क्रमपर्यंत सब जगत मिथ्यारूप है, वासना वासक वासना करणेयोग्य पदार्थ तीनोंके अभाव हुए केवल आत्मतत्त्व रहता है, सब भ्रम शांत हो जाता है ॥ हे मुनीश्वर! यह जगत भ्रममात्र है, वास्तवतें कछु नहीं, जैसे बालककों अज्ञानकरि अपणे परछायेंविषे वैताल भासता, जब विचारकरि देखैं तब वैतालका अभाव हो जाता है, तैसे अज्ञानकरि यह जगत भासता है, आत्मविचारकरि इसका अभाव हो जाता है, जैसे मृगतृष्णाकी नदी भासती है, जैसे आकाशविषे नीलता अरु दूसरा चंद्रमा भासता है, तैसे आत्माविषे अज्ञान करिके देह भासता है, जिसकी देहादिकविषे स्थिर बुद्धि है, सो हमारे उपदेशके योग्य नहीं है ॥ हे मुनीश्वर! जो विचारवान है, तिसकों उपदेश करणा योग्य है, अरु जो मूर्ख भ्रमी है, अरु असतवादी सत्कर्मतें रहित अनार्जव है, तिसकों ज्ञानवान उपदेश करै, जिसविषे विचार अरु वैराग्य होवै, कोमलता अरु शुभ आचार होवै, तिसकों उपदेश करणां योग्य है, अरु जो इन गुणतें रहित विपर्यय है, तिसकों उपदेश करणां ऐसे होता है, जैसे महासुंदर स्वर्णवत् कांति ऐसी कन्या किसीकी होवै, अरु स्वप्नकल्पित पुरुषकों विवाहि देणेकी इच्छा करै, तैसेही अपात्रकों उपदेश करणां मूर्खता है ॥ ॥ इति श्रीयोगवासिष्ठे निर्वाणप्रकरणे जगन्मिथ्यात्वप्रतिपादनं नाम चत्वारिंशत्तमः सर्गः ॥ ४० ॥ ॥ ॥ वसिष्ठ उवाच ॥ हे भगवन्! उह जीव जो आदि सर्गतें उत्पन्न भया, अरु देहभ्रम अपणेसाथ देखता भया, तिसके अनंतर कैसे स्थित हुआ ॥ ॥ ईश्वर उवाच ॥ हे मुनीश्वर! परमाकाशतें उपजा, जैसे तुमकों कहा है, सो अपणेसाथ शरीर देखत भया, स्वप्ननगरकी नांई सर्वगत चिद्घन आत्माके आश्रय उपजिकरि जीव अपणे शरीरकों देखत भया ॥ हे मुनीश्वर! आदि जो जीव फुर्या है, अरु प्रमादकों प्राप्त न भया, अपणे स्वरूपहीविषे अहंप्रत्यय रहा, इस कारणतें ईश्वर होकरि स्थित भया, तिसकों यह निश्चय रहा, जो मैं सनातन हौं, नित्य हौं, शुद्ध परमानंदस्वरूप हौं, अव्यक्तरूप परम

पुरुष हौं, इस प्रकार आदि जीवका निश्चय रहा, आत्माकी अपेक्षा करिके तिसकों जीव कहा है, अरु सृष्टि जगतकी अपेक्षा करिके उसकों ईश्वर कहा है॥ हे मुनीश्वर ! उह जो आदि जीव है, सो कोउ विष्णुरूप होकरि ब्रह्माकों नाभिकमलतें उत्पन्न किया है, किसी सृष्टिविषे प्रथम ब्रह्मा हुआ है, विष्णु रुद्र तिसतें हुए हैं, किसी सृष्टिविषे प्रथम रुद्र हुआ है, विष्णु ब्रह्मा तिसतें हुए हैं, चेतन आकाशविषे जैसा जैसा संकल्प फुर्या है, तैसा होकरि स्थित भया है, आदि जीव उपजीकरि जिस जिस प्रकारका संकल्प किया है, तैसा होकरि स्थित भया है, वास्तवतें सब असतरूप है, अज्ञानभ्रम करिके हुआ है, जैसे परछायेविषे वैताल होता है, तैसे अज्ञान करिके सतरूप हो भासता है, आदिपुरुषतें लेकरि जो सृष्टि है, सो परमाकाशके एक निमेषतें हुई है, अरु उन्मेषविषे लय हो जाती है, एक निमेषके प्रमादकरि कल्पके समूह व्यतीत हो जाते हैं, अरु परमाणुपरमाणुविषे सृष्टि फुरतियां हैं, कल्प अरु महाकल्प तिनविषे भासते हैं, केई सृष्टि परस्पर दिखतियां हैं, केई अन्योन्य अदृश्यरूप हैं, इसी प्रकार सृष्टि तिसके स्पंदकलाविषे फुरियां हैं, चमत्कार होता है, अरु जब स्पंदकला स्वरूपकी उर आती है, तब लीन हो जाती है, जैसे स्वप्नका पर्वत जागेतें लीन हो जाता है, तैसे जाग्रत्‌की सृष्टि अफुर हुए लीन हो जाती है॥ हे मुनीश्वर ! जीव जीव प्रति अपणी अपणी सृष्टि है, तिन सृष्टिकों कोउ देश काल रोकी नहीं सकता, काहेतें जो अपणे अपणे संकल्पविषे स्थित है, अरु आत्माका चमत्कार है, जैसा फुरणां फुरता है, तैसा चमत्कार हो भासता है॥ हे मुनीश्वर ! न कछु उपजा है, न कछु नाश होता है, स्वतः चेतनतत्त्व अपणे आपविषे चमकता है, जैसे स्वप्ननगर उपजीकरि नष्ट हो जाते हैं, जैसे संकल्पका पहाड उपजीकरि मिटि जाता है, तैसे जगत उपजीकरि नष्ट हो जाता है, जैसे स्वप्न अरु संकल्प पहाडकों कोउ रोकी नहीं सकता, तैसे अपणी अपणी सृष्टिकों देशकाल रोकी नहीं सकता, काहेतें जो अवर ठौरविषे इनका सद्भाव नहीं, तातें यह जगत अपणे अपणे कालविषे स

त्रूप है, आत्माविषे सद्भाव नहीं, संकल्परूप है ॥ हे मुनीश्वर ! जैसे आदितत्त्वतें जीव ईश्वर फुरे हैं, त से कर्म फुरे हैं, रुद्रतें लेकरि वृक्षपर्यंत सब एक क्षणविषे उसी तत्त्वतें फुरी आये हैं, सुमेरु आदिक भी अप णे स्थितिविषे रोकते हैं, अन्य अणुकों नहीं रोकी सकते, काहेतें जो उहां हैही नहीं, तातें आत्माविषे सृष्टि आभासरूप है ॥ हे मुनीश्वर ! इस प्रकार सब जगत मायामात्र है, भावनाकरि भासता है, जब आत्माका अभ्यास होता है, तब भेद कल्पना मिटि जाती है, केवल उपशमरूप शिव तत्त्व भासता है ॥ हे मुनीश्वर ! नि मेषका जो समभाग है, तिसके अर्धभाग प्रमाद होणेकरि नानाप्रकारका जगत हो भासता है, सत्असत्रूप जगत मनरूपी विश्वकर्मा बनावता है. आत्मतत्त्व न दूर है, न निकट है, न अध है, न ऊर्ध्व है, न पूर्व है, न पश्चिम है, सत्असत्के मध्य अनुभवरूप सर्वका ज्ञाता है, प्रत्यक्ष आदिक प्रमाण तिसकेविषे नहीं करि सकते, जैसे जलविषे अग्नि नहीं निकसता है ॥ हे मुनीश्वर ! जो कछु तुझनें पूछा था, सो मैं कहा है, तिस विषे चित्तकों लगावणां, तेरा कल्याण होवै, अब हम अपणे वांछित स्थानकों जाते हैं. चलौ पार्वती, अपणे स्थानकों जावैं ॥ हे रामजी ! इस प्रकार ईश्वरनें जब कहा, तब मैं अर्घ्यपाद्यकरि पूजन किया, पार्वती अरु ग णकों लेकरि ईश्वर आकाशमार्गकों चलते रहे, जबलग मुझकों दृष्टि आवते रहे, तबलग उनकी उर मैं देखता रहा, बहुरि मैं अपणे कुशके स्थानपर आनि बैठा, जो कछु ईश्वरनें उपदेश किया था, सो मैं अपणी सुध बुध साथ विचारणे लगा ॥ ॥ इति श्रीयो॰निर्वाणप्रकरणे परमार्थविचारो नाम एकचत्वारिंशत्तमः सर्गः ॥ ४१ ॥

॥ वसिष्ठ उवाच ॥ हे रामजी ! जो कछु ईश्वरनें तुझकों कहा सो मैं आप भी जाणता था, अरु तूं भी जा णता है, यह जगत भी असत है, देखणेवाला भी असत है, तिस मायारूप जगतविषे मैं तुझकों सत क्या कहौं, अरु असत क्या कहौं, जैसे जलविषे द्रवता होती है, तैसे आत्माविषे जगत है, जैसे पवनविषे स्पंद होता है, जैसे आकाशविषे शून्यता होती है, तैसे आत्माविषे जगत है ॥ हे रामजी ! जो कछु पतित प्रवाहकरि आ

नि प्राप्त होता है, तिसकरि मैं देव अर्चन करता हौं, इस क्रम करिके मैं निर्वासनिक हौं, जगतकी क्रियाविषे भी मैं निर्दुःख होकरि चेष्टा करता हौं, व्यवहार करता दृष्टि आता हौं, तौ भी सदा शांतिरूप हौं, यथाप्राप्त आचाररूपी फूलकरि मैं आत्मदेवकी अर्चना करता हौं, छेद भेद तुझकों कोउ नहीं होता ॥ हे रामजी! विषय अरु इंद्रियांका संबंध सर्व जीवकों तुल्य है, अरु जो ज्ञानवान पुरुष हैं, सो सावधान रहते हैं, जो कछु देखते, सुणते, बोलते, खाते, सूंघते, स्पर्श करते हैं, सो आत्मतत्त्वविषे अर्चन करते हैं, आत्मातें इतर नहीं जाणते, इस प्रकार सावधान रहते हैं, अरु अज्ञानी हैं, तिनकों कर्तृत्व भोक्तृत्वका अभिमान होता है, तिसकरि दुःखी होते हैं ॥ हे रामजी! तुम भी ऐसी दृष्टिकों आश्रय करिके संसाररूपी वनविषे विचरौ, निःसंग होकरि तुमकों खेद कछु न प्राप्त होवैगा, जिसकी वृत्ति इस प्रकार समान हो गई है, तिसकों बडा कष्ट आनि प्राप्त होवै, धनबांधवका वियोग होवै, तौ भी तिसकों खेद नहीं होता, इह जो दृष्टि मैं तुझे कही है, तिसका आश्रय करैगा, तब तुझकों दुःख कोउ न होवैगा ॥ हे रामजी! सुख दुःख धन बांधवका वियोग यह सब पदार्थ अनित्य हैं, यह आते भी हैं, जाते भी हैं, इनकों आगमापायी जाणिकरि विचरौ, यह संसार विषमरूप है, एक रस कदाचित् नहीं रहता, इसकों स्थित जाणीकरि दुःखी नहीं होणा ॥ हे रामजी! पदार्थ काल जैसे जावै, तैसे जावै, अरु जैसे सुखदुःख आवै, तैसे आवै, यह सब आगमापायी पदार्थ हैं, आते भी हैं, जाते भी हैं, इष्टकी प्राप्ति अनिष्टकी निवृत्तिविषे हर्षवान नहीं होणां, अरु अनिष्टकी प्राप्ति इष्टके वियोगकरि खेदवान नहीं होणां, जैसे आवै, तैसे जावै, जैसे जावै तैसे आवै, जिस आवणा है सो आवैगा, जिस जाणा है सो जावैगा, इह सुखदुःख प्रवाहरूप हैं, इनविषे आस्थाकरि तपायमान नहीं होणां ॥ हे रामजी! यह सब जगत तूंही है, अरु तूंही जगतरूप है, अरु चिन्मात्र विस्तृत आकार तूं है, जब तूंही है, तब बहुरि हर्ष शोक किसनिमित्त करता है, इसी दृष्टिकों आश्रय करिके जगतविषे सुषुप्तकी नांई विचरु, बहुरि तुरीयाती

त अवस्थाकों प्राप्त होवैगा, जो सम प्रकाशरूप है ॥ हे रामजी! जो कछु मैं तुझकों कहणा था, सो कहा है, आगे जो तेरी इच्छा होवै सो करु, अरु पाछे तुझनें पूछा था, जो ब्रह्म अनंत रूपविषे मैं कलंक कैसे प्राप्त भया है, सो अब बहुरि प्रश्न करु, जो मैं उत्तर कहौं ॥ ॥ राम उवाच ॥ हे ब्राह्मण! अब मुझकों संशय कछु नहीं रहा, सब संशय नष्ट हो गया है, जो कछु जाणना था सो मैं जाण्या है, अब मैं परम अकृत्रिम तृप्तताकों प्राप्त भया हौं ॥ हे मुनीश्वर! आत्माविषे न मैल है, न द्वैत है, न एक है, कोउ कल्पना नहीं, पूर्व मुझकों अज्ञान था, तब मैं पूछा था, अब तुमारे वचनोंकरि मेरा अज्ञान नष्ट भया है, कलंक कछु नहीं भासता, आत्माविषे न जन्म है, न मृत्यु है, सर्व ब्रह्महीं है ॥ हे मुनीश्वर! प्रश्न संशयकरि उपजता है, सो संशय मेरा नष्ट हो गया है, जैसे जंत्रीकी पुतली हिलावणेतें रहित अचल होती है, तैसे मैं संशयतें रहित अचल चित्त स्थित हौं, सर्व सारोंका सार मुझकों प्राप्त भया है, जैसे सुमेरु अचल होता है, तैसे अचल हौं, कोउ क्षोभ मुझकों नहीं, ऐसा कोउ पदार्थ नहीं जो मुझकों त्यागणेयोग्य होवै, अरु ऐसा भी कोउ नहीं जो ग्रहण करणेयोग्य होवै, न किसी पदार्थकी मुझकों इच्छा है, न अनिच्छा है, शांतरूपविषे स्थित हौं, न स्वर्गकी मुझकों इच्छा है, न नरकविषे द्वेष है; सर्व ब्रह्मरूप मुझकों भासता है, मंदराचल पर्वतकी नांईं आत्मतत्त्वविषे स्थित हौं ॥ हे मुनीश्वर! जिसकों अवस्तुविषे वस्तुबुद्धि होती है, अरु कलनाकला हृदयविषे स्थित होती है, सो किसीका ग्रहण करता है. किसीका त्याग करता है, अरु दीनताकों प्राप्त होता है ॥ हे मुनीश्वर! यह संसार महासमुद्ररूप है, रागद्वेषरूपी तिसविषे कल्लोल हैं, अरु शुभअशुभरूपी तिसविषे मत्स्य रहते हैं, ऐसे भयानक संसारसमुद्रतें अब मैं तुमारे प्रसाद करिके तरी गया हौं, सब संपदाके अंतकों प्राप्त भया हौं, सब दुःख नष्ट हो भये हैं, सर्वके सारकों प्राप्त भया हौं, पूर्ण आत्मा हौं, अदीन पदकों प्राप्त भया हौं, अरु परम शांत अभेदसत्ताकों प्राप्त भया हौं, आशारूपी हस्तीकों मैंनें सिंह होकरि मा

न्या है, आत्मातें इतर मुझकों कछु नहीं भासता, सब विकल्पके जाल गलत हो गये हैं; इच्छादिक विकार नष्ट हो गये हैं, दीनता जाती रहती है, तीनों जगतविषे मेरी जय है, सदा उदितरूप हों ॥ ॥ इति श्रीयोगवासिष्ठे निर्वाणप्रकरणे विश्रांत्यागमनं नाम द्विचत्वारिंशत्तमः सर्गः ॥ ४२ ॥ ॥ ॥

॥ वसिष्ठ उवाच ॥ ॥ हे रामजी! देहइंद्रियांकरि जो केवल करता है, अरु मनविषे असंगता है, तब जो कछु उह कर्त्ता है, सो भी कछु नहीं करता, जो कछु इंद्रियांकरि इष्ट प्राप्त होता है, सो एक क्षणमात्र सुख प्राप्त होता, तिस क्षण प्रसन्नताविषे जो बंधमान होता है, सो बालकवत मूर्ख है, जो ज्ञानवान है, सो तिसविषे बंधमान नहीं होता ॥ हे रामजी! वांछाही इसकों दुःखी करती है, जो सुंदर विषयकी वांछा करता है, जब यत्नकरि तिनकी प्राप्ति होती है, तब मध्य क्षण सुख होता है, बहुरि वियोग होता है, तब इसकों दुःख दे जाते हैं, तिस कारणतें इनकी वांछा त्यागणी योग्य है, इनकी वांछा तब होती है, जब स्वरूपका अज्ञान होता है, अरु देहादिकविषे भाव होता है, जब देहादिकविषे अहंभाव होता है, तब अनेक अनर्थकी प्राप्ति होती है, तातें हे रामजी! ज्ञानरूपी पहाड परि चडे रहणां, अहंतारूपी गरतविषे नहीं गिरनां ॥ हे रामजी! आत्मज्ञानरूपी सुमेरु पर्वत है, तिसपर चडी बहुरि अहंता अभिमान करिके गरतविषे वास लेणां सो बडी मूर्खता है, तातें गरतविषे नहीं गिरणां, जब दृश्यभावकों त्यागैगा, तब अपणे स्वभावसत्ताकों प्राप्त होवैगा, जो सम शांतरूप है, अरु विकल्पजाल सब मिटि जावैगी, समुद्रवत पूर्ण होवैगा, द्वैतरूप फुरणां कोउ न फुरैगा ॥ हे रामजी! जब अंतरतें विषयकों विष जानै, तब मन भी निरस हो जाता है, चित्त निःसंग होता है, वस्तुतें देखै तौ सबविषे सत्ता समानरूप ब्रह्म चिद्घन स्थित है, तिसतें जो कछु इतर द्वैत भासता है, सो स्वरूपके प्रमादकरि भासता है ॥ हे रामजी! आत्माका अज्ञानही बंधनरूप है, आत्माका बोधही मुक्तरूप है, तातें बल करिके आपकों आपही जगावहु, तब इस बंधनतें मु

क्त होहुगे ॥ हे रामजी! जिसविषे विषयका स्वाद नहीं, अरु जिसविषे इनका अनुभव होता है, सो तत्त्व आकाशवत निर्मल सत्ता वासनातें रहित है, जो वासनातें रहित होकरि पुरुष कछु क्रिया करता है, सो विकारकों नहीं प्राप्त होता, यद्यपि अनेक क्षोभ आनि प्राप्त होवैं, तौ भी उसकों विकार कछु नहीं प्राप्त होता, ज्ञाता, ज्ञान, ज्ञेय ए तीनों आत्मरूप भासते हैं, जब ऐसे जाण्या तब भय किसीका नहीं रहता, चित्तके फुरणेकरि जगत उत्पन्न होता है, चित्तके अफुर हुए लीन हो जाता है, जब वासनासहित प्राण उदय होते हैं, तब जगत उदय होता है, जब वासनासहित प्राण लीन होते हैं, तब जगत लीन होता है, अभ्यास करिके वासना अरु प्राणोंकों स्थित करो, जब मूर्खता उदय होती है, तब कर्म उदय होते हैं, अरु मूर्खताके लीन हुए कर्म भी लीन होते हैं, तातें सत्संग अरु सत्शास्त्रोंके विचारकरि मूर्खताकों क्षय करो, जैसे वायुके संगकरि धूलि उडीके बदल आकार होती है, तैसे चित्तके फुरणेकरि जगत स्थित होता है ॥ हे रामजी! जब चित्त फुरता है, तब नानाप्रकारका जगत फुरि आवता है, अरु चित्तके अफुर हुए जगत लीन हो जाता है ॥ हे रामजी! वासना शांत होवै,अथवा प्राणोंका निरोध होवै, तब चित्त अचित्त हो जाता है, सो वासनाके क्षय हुए अथवा प्राणोंके रोकेतें चित्त अचित्त होता है, जब चित्त अचित्त हुआ, तब परम पदकों प्राप्त होता है ॥ हे रामजी! दृश्य दर्शन संबंधके मध्यविषे जो सुख है,सो परमात्मसुख है, जो एकांतका सुख है, सो संवित ब्रह्मरूप है;तिसके साक्षात्कार हुए मन क्षय होता है,जहां चित्त नहीं उपजता सो चित्ततें रहित अकृत्रिम सुख है, ऐसा सुख स्वर्गविषे भी नहीं जैसे मरुस्थलविषे वृक्ष नहीं होता, तैसे चित्तसहित विषयकेविषे सुख नहीं होता,चित्तके उपशमविषे जो सुख है,सो अवाच्य है,वाणीकरि कह्या नहीं जाता, तिसके समान अवर सुख कोउ नहीं, औ तिसतें अतिशय सुख भी नहीं, अवर सुख नाश हो जाता है, आत्मसुख नाश नहीं होता अविनाशी है, उपजणे बिनसणे दोनोंतें रहित है ॥ हे रामजी! अबोध करिके चित्त उदय होता है,

अरु आत्मबोध करिके शांत हो जाता है, जैसे मोह करिके वालककों वैताल दिखाइ देता है, मोहके नष्ट हुए वैताल नष्ट हो जाता है, तैसे अज्ञानकरि चित्त उदय होता है, अज्ञानके नष्ट हुए चित्त नष्ट हो जाता है, जव विद्यमान भी चित्त भासता है, तव भी वोधकरि निर्वीज होता है, जैसे त्रांवा पारससाथ मिलीकरि स्वर्ण होता है, आकार तौ उही दृष्टि आता है, परंतु तांवेभावका अभाव हो जाता है, तैसे अज्ञानकरि जगत भासता है, अरु ज्ञानकरि चित्त अचित्त हो जाता है, अरु जड जगत नहीं भासता उही ब्रह्मसत्ता होकरि भासता है, सत पदकों प्राप्त होता है, परंतु नाम रूप तैसेही भासता है ॥ हे रामजी! ज्ञानीका चित्त भी क्रिया करता दृष्ट आवता है, परंतु चित्त अचित्त हो जाता है, जो अज्ञान करिके भासता है, सो ज्ञान करिके शून्य हो जाता है, जेता कछु जगत अवोध करिके भासता था, सो वोध करिके शांत हो जाता है, वहुरि नहीं उपजता, उह चित्त शांत पदकों प्राप्त होता है, कोउ काल तौ उह भी तुरीया अवस्था विषे स्थित हुआ विचरता है, वहुरि तुरीयातीत पदकों प्राप्त होता है, अध, ऊर्ध्व, मध्य सर्व ब्रह्महो सम इस प्रकार अनेक होकरि स्थित भया है, अनेक भ्रम करिके भी एकही है, सर्वात्माही है, अवर चित्तादिक कछु नहीं ॥ ॥ इति श्रीयोगवासिष्ठे निर्वाणप्रकरणे चित्तसत्तासूचनं नाम त्रिचत्वारिंशत्तमः सर्गः ॥ ४३ ॥

॥ वसिष्ठ उवाच ॥ हे रामजी! अव तूं संक्षेपतें एक अपूर्व आश्चर्यरूप वोधका कारण अज्ञान सुण, एक बीलफल है, अरु अनंत योजनपर्यंत तिसका विस्तार है, अरु अनंत युग व्यतीत हो गये हैं, उह जर्जरीभावकों कदाचित् नहीं प्राप्त होता, अरु अनादि है, तिसविषे अविनाशी रस है, कवहूं नाश नहीं होता, रसकरि पूर्ण है, अरु चंद्रमाकी नांई सुंदर है, वहुरि कैसा है, जो सुमेरु आदिक वडे पहाड हैं, तिनकों महाप्रलयका पवन तृणोंकी नांई उडावता है, सो पवन भी तिसकों हिलाए नहीं सकता ॥ हे रामजी! योजनके अनंत कोट कोटान करिके तिसकी संख्या नहीं करि जाती, ऐसा उह वीलफल है, वहुरि कै

सा है, बहुत बडा है, जैसे सुमेरुके निकट राइका दाणा सूक्ष्म तुच्छ भासता है, तैसे तिस बीलफलके आगे ब्रह्मांड सूक्ष्म तुच्छ भासता है, सो बील रसकरि पूर्ण है, गिरता कबहूं नहीं, अरु पुरातन है, तिसका आदि, अंत, मध्य ब्रह्मा, विष्णु, रुद्र, इंद्रादिक भी नहीं जाणि शकते, न उसके मूलकों कोइ जाणि शकता है, न मध्यकों कोई जाणि शकता है, अदृष्ट उसका आकार है, अरु अदृष्ट फल है, अपणे प्रकाशकरि प्रकाशता है, बहुरि कैसा है, एक घन है आकार जिसका, अरु सदा अचल है, किसी विकारकों नहीं प्राप्त होता, सत है, निर्मल निर्विकार निरंतररूप है, निरंध्र है, अरु चंद्रमाकी नांई शीतल सुंदर है, अरु अज्ञान संवितरूपी तिसविषे रस है, सो अपणां रस आपही लेता है, अरु सर्वकों रस देणेहारा भी उही है, सबकों प्रकाश करता भी उही है, तिसविषे अनेक चित्र रेषा आनि निवास किया है, परंतु अपणे स्वरूपकों त्यागता नहीं ॥ अनेकरूप होकरि भासता है, तिसविषे स्पंदरूपी रस फुरता है, तत्त्वं इदं, देश, काल, क्रिया, नीति, राग, दोष, हेयोपादेय, भूत, भविष्यत काल, प्रकाश, तम, विद्या, अविद्या, इत्यादिक कलनाजाल रसके फुरणे करिके फुरते हैं, सो बिल आत्मरूप है, अनुभवरूपी तिसविषे रस है, सो सदा अपणे आपविषे स्थित है, नित्य शांतरूप है, तिसकों जाणिकरि पुरुष कृतकृत्य होता है ॥ ॥

इति श्रीयोगवासिष्ठे निर्वाणप्रकरणे बिलोपाख्यानं नाम चतुश्चत्वारिंशत्तमः सर्गः ॥ ४४ ॥ ॥ ॥

॥ राम उवाच ॥ हे भगवन् ! सर्व धर्मके वेत्ता, तुम इह बिलरूपी महा चिद्घनसत्ता कही, सो ऐसे मेरे निश्चय भया जो चेतन मज्जारूप अहंतादिक जगत है, इसविषे भेद रंचक भी नहीं, द्वैत एक कलना सर्व उही है ॥ ॥ वसिष्ठ उवाच ॥ हे रामजी ! जैसे ब्रह्मांडकी मज्जा सुमेरु आदिक पृथ्वी है, तैसे चेतन बिलकी मज्जा यह ब्रह्मांड है, सब जगत चेतन बिलरूप है, इतर कछु नहीं, तिस सर्व जगत चेतनका विनाश संभवता नहीं ॥ हे रामजी ! चेतनरूपी मिरच बीज है, तिसविषे जगतरूपी चमत्कार तीक्ष्णता है, सो सु

षुप्तवत् निर्मल है, शिलाके अंतरवत अमिश्रित है ॥ हे रामजी! अब अवर आश्चर्यरूप आख्यान सुण, चंद्रमावत महासुंदर प्रकाश अरु स्निग्ध शीतल स्पर्श है; अरु विस्तृतरूप शिला है, सो महानिरंध्र है, घनरूप है, तिसविषे कमल उपजते हैं, ऊर्ध्व तिसकी वल्ली है, अरु अध मूल है, अरु अनेक तिसकी शिखा है ॥ ॥ राम उवाच ॥ हे भगवन्! सत्य कहते हो, इह शिला मैं भी देखी है, जो विष्णुकी मूर्त्ति नदीविषे शालग्राम है ॥ ॥ वसिष्ठ उवाच ॥ हे रामजी! ऐसे तूं जाणता है, अरु देखा भी है, परंतु तैसी तिसके सब अंतर हैं, जो शिला मैं कहता हौं सो अपूर्व शिला है, तिसके अंतर ब्रह्मांडके समूह हैं, और कछु भी नहीं ॥ हे रामजी! चेतनरूपी शिला मैं तुझकों कही है, तिसविषे संपूर्ण ब्रह्मांड है, सो घन चेतनता करिके शिला वर्णन करी है, अनंत घन अरु निरंध्र है, सो परब्रह्म आकाशवत् शिला है, आकाश, पृथ्वी, पर्वत, देश, नदीयां, समुद्र इत्यादिक सवही विश्व तिस शिलाके अंतर स्थित हैं, अरु कछु है नहीं, जैसे शिलाके उपर कमल लिखे होते हैं, सो शिलारूप है, शिलातें इतर कछु नहीं, तैसे यह जगत आत्मरूपी शिलाविषे है, आत्मातें भिन्न कछु नहीं ॥ हे रामजी! भूत भविष्य वर्तमान जो तीनों काल हैं, सो उस शिलाकी पुतलियां हैं, जैसे शिल्पी पुतलियां कल्पता है, जो एती पुतलियां इस शिलातें निकसै तैसे यह जगत आत्माविषे है, उपजा नहीं, काहेतें जो मनरूपी शिल्पी कल्पता है, तिसकरि नानाप्रकारका जगत भासता है, आत्माविषे कछु उपजा नहीं, जैसे सुषुप्तरूप शिलाकेपर कमलरेखा लिखी होती है, सो शिलातें इतर कछु नहीं, तैसे यह जगत आत्माविषे है, सो आत्मातें भिन्न नहीं, जैसे शिलाविषे पुतली होती है, सो न उदय न अस्त होती है, ज्यौंकी त्यौं शिला है, तैसे आत्माविषे जगत न उदय न अस्त होता है, काहेतें जो वास्तव कछु नहीं, अरु आत्मातें इतर जो कछु द्वैतकल्पना होती है, सो अज्ञान करिके भासती है, जब बोध हुवा तब शांत हो जाती है, जैसे जलकी वूंद समुद्रविषे डारी समुद्ररूप हो जाती है, तैसे बोधकरि कल्पना

नउपजा जगत नानात्व हो भासता है, अरु जो अज्ञानदृष्टितें रहित है, तिनकों एकही ब्रह्म भासता है, अवर कछु नहीं भासता ॥ हे रामजी! नानात्व भासता है, तौ भी कछु नानात्व है नहीं, जैसे मोरके अंडविषे नानारंग भासते हैं, तौ भी एकरूप है, तैसे यह जगत भिन्न भिन्न पदार्थ भासते हैं, तौ भी एक ब्रह्मसत्ता है, द्वैत कछु नहीं ॥ इति श्रीयोगवासिष्ठे निर्वाणप्रकरणे सत्तोपदेशो नाम षट्चत्वारिंशत्तमः सर्गः ॥ ४६ ॥

॥ वसिष्ठ उवाच ॥ हे रामजी! जैसे अनउपजी कांतिरंग मयूरके अंडविषे होते हैं, सो बीजतें इतर कछु नहीं, तैसे अहं त्वं आदिक जगत आत्माविषे अनउदयही उदयरूप भासता है, जैसे बीजविषे उन रंगहूकी उदय भी अनउदयरूप है, तैसे आत्माविषे जगतकी उदय भी अनउदयरूप है, अरु आत्मसत्ता अशब्द पद है, वाणीकरि कछु कहा नहीं जाता, ऐसा सुख स्वर्गविषे नहीं पाइता है, अरु अवर भी किसी स्थान विषे ऐसा सुख नहीं पाता, जैसा सुख आत्माविषे स्थित हुए पाइता है ॥ हे रामजी! आत्मासुखविषे विश्रांति पावणेनिमित्त मुनीश्वर, देवता, गण, अरु सिद्ध महाऋषि दृश्य दर्शन संबंध फुरणेकों त्यागिकरि स्थित होते हैं, तातें उत्तम सुख है, संवित्‌विषे जो संवेदनका फुरणा है, सो जिनका निवृत्त हुआ है, तिसका जिननें त्याग किया है, तिन पुरुषकों दृश्यभावना कोउ नहीं फुरती, न कोउ तिनकों कर्म स्पर्श करता है, अरु प्राण भी तिनके निस्पंद होते हैं, चित्त चेतनके संबंधतें रहित चित्रकी मूर्तिवत् स्थित होते हैं, अरु शांतरूप स्थित होते हैं ॥ हे रामजी! जब चित्तकला फुरती है, तब इसकों संसारभ्रम प्राप्त होता है, अरु जब चित्तका फुरणा मिटि जाता है, तब इह शांतरूप अद्वैत स्थित होता है, जैसे राजाकी सैना युद्ध करती है, अरु जीत हार राजाकी होती है, तैसे चित्तके फुर्णेद्वारा आत्माविषे बंध मोक्ष होता है, यद्यपि आत्मा सत्‌रूप अच्युत है, परंतु मन बुद्धि अंतःकरणद्वारा आत्माविषे बंधमोक्ष भासता है, आत्मा सबका प्रकाश

आत्माविषे लीन हो जाती है ॥ हे रामजी! चेतन आत्मा अनंत है, तिसविषे विकार कल्पना कोउ नहीं, अ
ज्ञानकरि कल्पना भासती है, ज्ञान करिके लीन हो जाती है, विकार भी आत्माके आश्रय भासते हैं, अरु आ
त्मा विकारतें रहित है, ब्रह्मतें विकार उत्पन्न होते हैं, अरु ब्रह्महीविषे स्थित हैं, अरु वास्तवतें कछु हुए नहीं,
सब आभासमात्र है, जैसे किरणांविषे जलाभास होता है, तैसे ब्रह्मविषे जगतविकार आभास होता है, जैसे
बीजविषे वृक्ष होता है, पत्र टास फूल फलका विस्तार एकही बीजके अंतर होता है, अरु बीजसत्ता सबविषे
अनुस्यूत होती है, बीजतें इतर कछु नहीं होता, तैसे चिद्घन आत्माके अंतर जगतविस्तार है, सो चिद्घन
आत्मातें इतर कछु नहीं, उही अपणे आपविषे स्थित है, अरु जगत भी उहीरूप है, जब एक मानिये तब द्वै
त भी होता है, जब एक कहणां भी नहीं, तब द्वैत कहां होवै, जगत अरु आत्माविषे भेद कछु नहीं, आत्माही
अद्वैत अपणे आपविषे स्थित है, जैसे शिलाविषे मूर्त्ति लिखी होती है, सो शिलारूप है, तैसे जगत आत्मा
रूप है, जैसे शिलाविषे भिन्न भिन्न विषमरूप मूर्त्यां होतियां हैं, आधाररूप शिला अभेद है, तैसे आ
त्माविषे जगत मूर्त्यां भिन्न भिन्न विषमरूप भासतीयां हैं, अरु आधार चेतन अभेद है, ब्रह्मसत्ता समान
सुषुप्तवत् सम स्थित है, बडे विकार भी तिसविषे दृष्ट आवते हैं, परंतु वास्तव सुषुप्तवत् विकारतें रहित
स्थित है,फुरणेतें रहित चेतन शिला स्थित है, तिस नित्य शांत चिद्घनरूप सत्ताविषे यह जगत कल्पित है,
अधिष्ठानसत्ता सदा सर्वदा शांतरूप है, भेदकों प्राप्त कदाचित् नहीं होती, जैसे जलविषे तरंग अभेदरूप
हैं, जैसे स्वर्णविषे भूषण अभिन्नरूप है, तैसे आत्माविषे जगत अभिन्नरूप है ॥ इति श्रीयोगवासिष्ठे निर्वा
णप्रकरणे शिलाकोशोपदेशो नाम पंचचत्वारिंशत्तमः सर्गः ॥ ४५ ॥ ॥ वसिष्ठ उवाच ॥ हे रामजी! जै
से बीजके अंतर फूल फल वृक्ष संपूर्ण होता है, सो आदि भी बीज है, अरु अंत भी बीज है, जब फल पारि
पक्क होता है, तब बीजही होता है, तैसे आत्मा भी जगतविषे है, परंतु सदा अच्युत है, अरु सम है, कदाचि

है, न दृश्य है, न उपदेशका विषय है, न विस्ताररूप है, न दूर है, केवल अनुभव चेतनरूप आत्माकरि सिद्ध है, न देह है, न इंद्रियगण है, न चित्त है, न वासना है, न जीव है, न स्पंद है, न अवरकों स्पर्श करता है, न आकाश है, न सत है, न असत है, न मध्य है, न शून्य है, न अशून्य है, न देश काल वस्तु है, न अहं है, न इतर है, इत्यादिक सर्व शब्दतें रहित हृदयस्थानविषे प्रकाशता है, अनुभवरूप है, तिसका न आदि है, न अंत है, न शस्त्र काटते हैं, न अग्नि जलाय सकता है, न जल गिलाय सकता है, न यह है, न उह है, न वायु शोष सकता है, अवर किसीकी समर्थता नहीं; सो चित्तरूप आत्मतत्त्व है, न जन्मता है, न मरता है; अरु देहरूपी घट केईवार उपजते हैं, केईवार नष्ट होते हैं, अरु आत्मरूपी आकाश सबके अंतर बाहिर अखंड अविनाशी है, जैसे अनेक घटविषे एकही आकाश स्थित होता है, तैसे अनेक पदार्थविषे एकही ब्रह्मसत्ता आत्मरूप करिके स्थित है ॥ हे रामजी! जेता कछु स्थावर जंगम जगत दृष्टि आवता है, सो सब ब्रह्मरूप है, कैसा ब्रह्म है, निर्धर्म निर्गुण है, निरवयव निराकार है, निर्मल निर्विकार है, आदि अंततें रहित सम शांतरूप है, ऐसी दृष्टिकों आश्रय करिके स्थित होहु ॥ हे रामजी! इस दृष्टिकों आश्रय करोगे तब बडे आरंभ कार्य भी तुमकों स्पर्श न करैंगे, जैसे आकाशकों बदल स्पर्श नहीं करते हैं, तैसे तुमकों कर्म स्पर्श न करैंगे, काल क्रिया कारण कार्य जन्म स्थिति संहार आदिक जो संसरणारूप संसार है, सो सब ब्रह्मरूप है, इसी दृष्टिकों आश्रय करिके विचरौ ॥ ॥ इति श्रीयोगवासिष्ठे निर्वाणप्रकरणे ब्रह्मैकता प्रतिपादनं नाम सप्तचत्वारिंशत्तमः सर्गः ॥ ४७ ॥ ॥ राम उवाच ॥ हे भगवन्! जब प्रत्यक् ब्रह्मविषे कोउ विकार नहीं, तब भावअभावरूप जगत किसकरि भासता है ॥ ॥ वसिष्ठ उवाच ॥ हे रामजी! विकार किसकों कहते हैं, प्रथम तौ यह सुण, जो वस्तु अपणे पूर्वरूपकों त्यागिकरि विपर्ययरूपकों प्राप्त होवै, अरु बहुरि पूर्वके स्वरूपकों प्राप्त न होवै, तिसकों विकार कहता है, जैसे दूधतें दहीं होता है, बहुरि दूध नहीं

होता, अरु जैसे बालक अवस्था वीति जाती है, वहुरि नहीं आवती, अरु युवा अवस्था गई हुई वहुरि न
हीं आवती, तिसका नाम विकार है, अरु ब्रह्म निर्मल है, आदि भी निर्विकार है, अंत भी निर्विकार है, म
ध्य जो तिसविषे कछु विकार मल भासता है, सो अज्ञानकरि भासता है, मध्यविषे भी ब्रह्म अविकारि
ज्यौंका त्यौं है ॥ हे रामजी! जो पदार्थ विपर्ययरूप हो जाता है, सो वहुरि अपणे स्वरूपकों नहीं प्राप्त हो
ता, अरु ब्रह्मसत्ता ज्यौंकी त्यौं अद्वैतरूप आत्मअनुभव करिके प्रकाशती है, जो कबहु अन्यथा रूपकों
प्राप्त न होवै, तिसकों विकार कैसे कहियें ॥ हे रामजी! जो वस्तुविचार ज्ञान करिके निवृत्त हो जावै, ति
सकों भ्रममात्र जाणिये, वास्तव कछु नहीं, जेते कछु विकार हैं, सो अज्ञान करिके भासते हैं, जव आत्म
बोध होता है, तब निवृत्त हो जाते हैं, जिसके बोध करिके विकार नष्ट हो जावै हैं, तिसविषे विकार कैसे क
रिये, जो ब्रह्म शब्द करिके कहाता है, सो निर्वेदरूप आत्मा है, जो आदि अंतविषे सत होवै, सो मध्यवि
षे भी जाणियें जो सत् है, इसतें इतर होवै, सो अज्ञानकरि जाणियें, आत्मरूप सदा सर्वदा समरूप है,
आकाश पवन भी अन्यभावकों प्राप्त हो जाते हैं, परंतु आत्मतत्त्व कदाचित् अन्यभावकों प्राप्त नहीं हो
ता, प्रकाशरूप है, अरु एक नित्य है, निर्विकार ईश्वर है, भावअभाव विकारकों कदाचित् नहीं प्राप्त हो
ता है ॥ ॥ राम उवाच ॥ हे भगवन्! विद्यमान एक तत्त्व है, सो ब्रह्म सदा सर्वदा निर्मलरूप है, तिस सं
वित ब्रह्मविषे यह अविद्या कहांतें आई है? ॥ ॥ वसिष्ठ उवाच ॥ हे रामजी! यह सर्व ब्रह्म है, आगे भी ब्रह्म
था, अरु पाछे भी ब्रह्म होवैगा, तिस निर्विकार आदि अंत मध्यतें रहित ब्रह्मविषे अविद्या
कोउ नहीं, यह निश्चय है, जिसकों वाच्य वाचक कर्मकरि उपदेशनिमित्त ब्रह्म कहता है, तिस
विषे अविद्या कहां है ॥ हे रामजी, अहं त्वं आदिक जगतभ्रम अग्नि वायु आदिक सर्व ब्रह्मसत्ता है,
अवर अविद्या रंचकमात्र भी नहीं, जिसका नामही अविद्या है, सो भ्रममात्र असत् जाण, जो विद्यमान

है नहीं, तिसका नाम क्या कहियें ॥ राम उवाच ॥ हे भगवन्! उपशम प्रकरणविषे तुम क्यौं कहा, जो अविद्या है, अब इस प्रकार कैसे कहते हौ, जो विद्यमान है नहीं? ॥ वसिष्ठ उवाच ॥ हे रामजी! एते कालपर्यंत तूं अबोध था, तिसनिमित्त मैं कल्पकरि तुझकों युक्ति कही थी, सो तेरे जगावणेनिमित्त कही थी, अरु अब तूं प्रबुद्ध हुआ है, तब मैं कहा अविद्या अविद्यमान है ॥ हे रामजी! अविद्या अरु जीव जगत आदिकका क्रम अप्रबोधकों जगावणेनिमित्त वेदवादीनें वर्णन किया है, जबलग अप्रबोध मन होता है, तबलग इसकों अविद्याभ्रम है, सो युक्तिविना अनेक उपायकरि भी बोधवान कदाचित् नहीं होता, अरु जब बोधवान होता है, तब सिद्धांत उपदेशकों युक्तिविना भी पाय लेता है, अरु अबोध मन युक्तिविना पाय नहीं शकता ॥ हे रामजी! जो कार्य युक्तिकरि सिद्ध होता है, अवर यत्नकरि साध्य नहीं जाता, जैसे अंधकार युक्तिरूपी दीपककरि दूर होता है, अवर बल यत्नकरि निवृत्त नहीं होता, तैसे युक्तिविना अवर यत्नकरि अज्ञान निद्रा निवृत्त नहीं होती, जो अप्रबोधकों सर्व ब्रह्म सिद्धांतका उपदेश करिये, तब उह उपदेश व्यर्थ होता है, जैसे कोउ दुःखी अपणां दुःख स्थाणुके आगे जाय कहै तब उसका कहा वह सुणता नहीं, उसका कहणा भी वृथा होता है, तैसे अप्रबुद्धकों सर्व ब्रह्मका उपदेश व्यर्थ होता है, तातें मूढकों युक्तिकरि जगावता है, अरु बोधवानकों प्रत्यक्ष तत्त्वका उपदेश करता है ॥ हे रामजी! एता काल तूं अप्रबोध था, इस कारणतें मैं तुझकों नानाप्रकारकी युक्ति उपदेशकरि जगाया है, अब तूं जाग्या है, तब मैं तुझकों प्रत्यक्ष तत्त्वका उपदेश किया है, हे रामजी! अब तूं ऐसे धार जो मैं ब्रह्म हौं, यह तीनौं जगत भी ब्रह्म हैं, अहं त्वं आदिक सब ब्रह्म है, द्वैतकल्पना कछु नहीं, ऐसे धारिकरि जो तेरी इच्छा होय सो कर, दृश्य संवेदन फुरै नहीं, सदा आत्माविषे स्थित रहै, इस प्रकार अनेक कार्यविषे भी लेप न होवैगा ॥ हे रामजी! जो चेतन वपु परमात्मा प्रकाशरूप है, सो सदा अहंभाव करिके फुरता है, ऐसा जो अनुभव

रूप है, चलते, बैठते, खाते, पीते, चेष्टा करते, तिसीविषे स्थित रहु, तब अहं ममभाव तेरा निवृत्त हो जावैगा, अवेदन जो शांतरूप ब्रह्म सर्व भूतविषे स्थित है, तिसकों तूं प्राप्त होवैगा, तब आदि अंततें रहित प्रकाशरूप आपकों देखैगा, शुद्ध संवितमात्र आत्माकों देखैगा, जैसे मृत्तिकाके पात्र टिंद दोली घट आदिक सब मृत्तिकाका अपणा आप है, तैसे तूं सर्वभूत आत्माकों देखैगा, जैसे मृत्तिकातें घट भिन्न नहीं, तैसे आत्मातें जगत भिन्न नहीं, जैसे वायु अरु स्पंद भिन्न नहीं, अरु जलतें तरंग भिन्न नहीं, तैसे आत्मातें प्रकृति भिन्न नहीं, जैसे जल अरु तरंग शब्दमात्र दो हैं, तैसे आत्मा अरु प्रकृति शब्दमात्र दो हैं, भेदभाव कछु नहीं, अज्ञान करिके भेद भासता है, ज्ञान करिके भेद नष्ट हो जाता है, जैसे जेवरीविषे सर्प भासता है, तैसे आत्माविषे प्रकृति है ॥ हे रामजी ! चित्तरूप वृक्ष है, अरु कल्पनारूपी बीज है, जब कल्पनारूपी बीज बोता है, तब चित्तरूपी अंकुर उत्पन्न होता है, तिसतें भावरूप संसार उत्पन्न होता है, जब आत्मज्ञान करिके कल्पनारूपी बीज दग्ध होता है, तब चित्तरूपी अंकुर नष्ट हो जाता है ॥ हे रामजी ! चित्तरूपी अंकुरतें सुखदुःखरूपी वृक्ष उत्पन्न होता है, जब चित्तरूपी अंकुर नष्ट हो जावै, तब सुखदुःखरूपी वृक्ष कहां उपजै ॥ हे रामजी ! जेता कछु द्वैतभ्रम है, सो अबोधकरि उपजता है, बोधकरि नष्ट हो जाता है, आत्मा जो परमार्थ सार है, तिसकी भावना करु, संसारभ्रमतें मुक्त होवैगा ॥ ॥ इति श्रीयोगवासिष्ठे निर्वाणप्रकरणे स्मृतिविचारयोगो नाम अष्टचत्वारिंशत्तमः सर्गः ॥ ॥ ४८ ॥ ॥ ॥ ॥

॥ राम उवाच ॥ हे मुनीश्वर ! जो कछु जानणे योग्य था, सो मैं जाण्या है, अरु जो कछु देखणे योग्य था, सो देख्या है, अब मैं परम पदविषे पूर्ण आत्मा हुआ हौं, तुमारे ज्ञानरूपी अमृतके सिंचणे करिके ॥ हे मुनीश्वर ! पूर्णनें सब विश्व पूर्ण करी है, पूर्णतें पूर्ण प्रतीतकरि है, पूर्णविषे पूर्णही स्थित है, अवर द्वैत कछु नहीं, यह मुझकों अब अनुभव भया है ॥ हे मुनीश्वर ! ऐसे मैं जानिकरि लीलाके निमित्त अरु बोधकी वृद्धिके नि

मित्त तुमसों पूछता हौं, ज्यौं बालक पितासों पूछता है, तब पिता उद्वेग नहीं करता, तैसे तुम उद्वेगवान न हीं होणां ॥ हे मुनीश्वर! श्रवण नेत्र त्वचा रसना घ्राण पांचों इंद्रिय प्रत्यक्ष दृष्ट आतियां हैं, जब यह मरी जाता है, तब तिस कालविषे विषयकों ग्रहण क्यों नहीं करतियां, अरु जीवते कैसे ग्रहण करतियां हैं, अरु मुए क्यों नहीं ग्रहण करतियां हैं, अरु घटादिककी नांई जड बाह्यस्थित हैं, अंतर इनका अनुभव कैसे होता है, लोहेकी शलाकावत यह भिन्न भिन्न है, इनका एकठा होणां कैसे हुआ है, परस्पर जो एक आत्मकरि अनुभव होता है, मैं देखता हौं, मैं सुणता हौं, इत्यादिक एकठी वृत्ति क्यों करि हुई है, मैं समान करिके जाणता भी हौं, परंतु विशेषकरि तुमसों पूछता हौं ॥ वसिष्ठ उवाच ॥ हे रामजी! इंद्रियां अरु चित्त अरु घट पट आदिक पदार्थ हैं, सो निर्मल चेतनरूप आत्मातें भिन्न नहीं, आत्मतत्त्व आकाशतें भी सूक्ष्म स्वच्छ है ॥ हे रामजी! जब चेतन तत्त्वतें चैत्यता पुर्यष्टकाकी भावना फुरी है, तब आगे इंद्रियगणहूंसहित देखती भई, तब चित्तके आगे इंद्रियगण हुए हैं, इनकी घनता करिके चेतनतत्त्व पुर्यष्टकाभावकों प्राप्त हुआ है, तिसविषे सब घटादिक पदार्थ प्रतिबिंबित हुए हैं, पुर्यष्टकाविषे भासै हैं ॥ राम उवाच ॥ हे मुनीश्वर! अनंत जगत जो रचे हैं, अरु महा आदर्शविषे प्रतिबिंबित हैं, तिस पुर्यष्टकाका रूप क्या है, अरु कैसे हुई है? ॥ वसिष्ठ उवाच ॥ हे रामजी! आदि अंततें रहित जो जगतका बीजरूप अनादि ब्रह्म है, सो निरामय है, अरु प्रकाशरूप है, कल्पनातें रहित जो जगतका बीजरूप अनादि ब्रह्म है, कलनातें रहित शुद्ध चिन्मात्र अचेतन है, सो सब कलनाके सन्मुख हुआ, तब तिसका नाम जीव कहा, सो जीव देहकों चेतता भया, जब अहंभाव फुर्‍या, तब अहंकार हुआ, जब मनन करणे लगा, तब मनन हुआ, जब निश्चय करणे लगा, तब बुद्धि हुई, अरु परमात्माके देखणेवाली इंद्रियांकी भावना हुई, तब इंद्रियां भई, जब देहकी भावना करणे लगा, तब देह हुई; घटपटकी भावना हुई तब घट पट हुए, इसी प्रकार जैसी जैसी भावना होती गई, तै

सेही पदार्थ होते गये ॥ हे रामजी ! यही स्वभाव जिसका है, तिसकों पुर्यष्टका कहते हैं, स्वरूपतें विपर्यय रूप जो दृश्यकी और भावना भई है, अरु कर्तृत्व भोकृत्व सुख दुःख आदिककी भावनाकलना अभिमान जो चित्तकलाविषे हुआ, इसकरि तिसकों जीव कहते हैं, जैसी जैसी भावनाका आकार हुआ, तैसी तैसी वासना करत भया, जैसे जलकरि सिंच्या हुआ बीज टास पत्र फूल फल भावकों प्राप्त होता है, तैसे वासनाकरि सिंच्या हुआ स्वरूपके प्रमादकरि महाभ्रमजालविषे गिरता है, ऐसे जाणता है, जो मैं मनुष्य देहसहित हौं, अथवा देवता हौं, स्थावर हौं, इत्यादिक देहकों पाएकरि देहसाथ मिल्या हुआ जाणता है, ऐसे नहीं जाणता जो मैं चिदात्मा हौं, देहसाथ मिल्या हुआ परिच्छिन्न तुच्छरूप आपकों देखता है, इस मिथ्या ज्ञान करिके डूबता है, देहविषे अभिमान करिके वासनाके वश हुआ चिरपर्यंत अध ऊर्ध्व मध्यविषे यह जीव भ्रमता है, जैसे समुद्रविषे आया हुआ काष्ठ तरंगकरि उछलता है, अध ऊर्ध्वकों जाता है, अरु जैसे घटीयंत्रके टिंड अध ऊर्ध्वकों जाते हैं, तैसे जीव वासनाके वशतें अध ऊर्ध्वकों भ्रमता है, अरु जब विचार अभ्यास करिके आत्मबोधकों प्राप्त होता है, तब संसारबंधनतें मुक्त होता है, आदि अंततें रहित जो आत्मपद है, तिसकों प्राप्त होता है, बहुत काल योनिकों भोगिके आत्मज्ञानके वशतें परम पदकों प्राप्त होता है ॥ हे रामजी ! स्वरूपतें गिरे हुए जीव इस प्रकार भ्रमते हैं, अरु शरीरकों पावते हैं अब यह सुण, जो इंद्रियां मृतक हुए विषयकों किसनिमित्त ग्रहण नहीं करतियां ॥ हे रामजी ! जब शुद्ध तत्त्वविषे चित्तकलना फुरती है, तब उह जीवरूप होती है, बहुरि मनसहित षट् इंद्रियांकों लेकरि देहरूपी गृहविषे स्थित होती है, तब वाह्य विषयकों ग्रहण करती हैं, मनसहित षट् इंद्रियके संबंधकरि विषयका ग्रहण होता है, इनतें रहित विषयकों कदाचित् नहीं ग्रहण करती, इस प्रकार इनविषे स्थित होकरि जीवकला विषयकों ग्रहण करती है, यद्यपि इंद्रियां भिन्न भिन्न हैं, तौ भी इनकों एकताकरि लेती है, इनका एकठा होणां अ

हंकाररूपी तागेकरि होता है, देह इंद्रियां माणिक्यकी नांई हैं, इनकों एकठा करिके जीव कहता है, मैं देखता हौं, मैं सूंघता हौं, सुणता हौं, मैं बोलता हौं, इत्यादिक इनके अभिमान करिके विषयकों ग्रहण करता है ॥ हे रामजी ! देह इंद्रियां मन आदिक जड हैं, परंतु आत्माकी सत्ता पायकरि अपणे अपणे विषयकों ग्रहण करती हैं, जबलग पुर्यष्टका देहविषे होती है, तबलग इंद्रियां विषयकों ग्रहण करतियां हैं, जब पुर्यष्टका देह सों निकसी जाती है, तब इंद्रियां नहीं विषयकों ग्रहण करतियां ॥ हे रामजी ! यह जो प्रत्यक्ष नेत्र नासिका कान जिव्हा त्वचा भासतीयां हैं, सो यह इंद्रियां नहीं, इंद्रियां सूक्ष्म तन्मात्रा है, यह तिनके रहणेके स्थान हैं, जैसे ग्रहविषे झरोंखे होते हैं, तैसे यह स्थान है, अरु जीवका रूप सुण ॥ हे रामजी ! आत्मतत्त्व सब ठौर पूर्ण है, परंतु तिसका प्रतिबिंब तहां भासता है, जहां निर्मल ठौर होती है, जैसे जल निर्मलविषे प्रतिबिंब होता है, अरु जैसे दो कुंडे होवैं, एक जलकरि पूर्ण होवै, दूसरा जलतें रहित होवै, तब सूर्यका प्रकाश दोनों विषे तुल्य होता है, परंतु जिसविषे जल है, प्रतिबिंब तहांही होता है, जलके डोलणेकरि प्रतिबिंब भी हलता दृष्ट आवता है, जहां जल नहीं, तहां प्रतिबिंब भी नहीं, तैसे जहां सात्त्विक अंश अंतःकरण होता है, तहां आत्माका प्रतिबिंब जीव भी होता है, सो जबलग शरीरविषे होता है, तबलग शरीर चेतन भासता है, जब उह जीवकला पुर्यष्टकारूप शरीरकों त्यागि जाती है, तब शरीर जड भासता है, जैसे कुंडेतें जल निकसि जावै, तब कुंड सूर्यके प्रतिबिंबतें हीण भासता है, तैसे अंतःकरण अरु तन्मात्रा पुर्यष्टकाविषे आत्माका प्रतिबिंब होता है, जब पुर्यष्टका शरीरकों त्यागि जाती है, तब शरीर जड भासता है ॥ हे रामजी ! जैसे झरोखे आगे कोउ पदार्थ राखिये तब झरोखेकों पदार्थका ज्ञान नहीं होता, जब उसका स्वामी आनि देखता है, तब पदार्थकों ग्रहण करता है, तैसे इंद्रियांके स्थानविषे सूक्ष्म तन्मात्रा ग्रहण करणेवाली होती है, तब विषयकों ग्रहण करती हैं, जब तन्मात्रा नहीं होती, तब इंद्रियां नहीं ग्रहणकरि सकतियां ॥ हे राम

जी! प्रत्यक्ष देख, जो कोउ कथाका श्रोता पुरुष कथाविषे बैठा होता है, अरु चित्त उसका अवर ठौर नि कसी जाता है, तब प्रत्यक्ष बैठा है, परंतु सुणता कछु नहीं, काहेतें जो श्रवण इंद्रिय मनकेसाथ गई है, जै से जब पुर्यष्टका निकसी जाती है, तब मृतक होता है, इंद्रियां विषयकों ग्रहण नहीं करतियां ॥ हे रामजी! अहंममतें आदि लेकरि जो दृश्य सो भी है, स्वर्गके आदिविषे आत्मरूपी समुद्रतें तरंगवत फुरी है, तिस करि आगे दृश्यकलना हुई है, सो न देश है, न काल है, न क्रिया है, यह सब असतरूप है, वास्तवतें कछु नहीं, ऐसे जाणीकरि असंग विचरु, संसारके सुखदुःख हर्ष शोक रागदोषतें रहित होकरि विचरु, तब तूं मायाकों तरि जावैगा ॥ ॥ इति श्रीयोगवासिष्ठे निर्वाणप्रकरणे संवेदनविचारो नाम एकोनपंचाशत्तमः सर्गः ॥ ४९ ॥ ॥ ॥ ॥ वसिष्ठ उवाच ॥ हे रामजी! वास्तवतें इंद्रियांदिक गण कछु उपजे नहीं, जैसे आदि कमलजा ब्रह्माकी उत्पत्ति मैं तुझकों कही है, सो सब तुझनें सुणी है, जैसे आदि जीव पुर्यष्टकारूप ब्रह्मा उपजा है, तैसे अवर भी उपजे हैं ॥ हे रामजी! जीव पुर्यष्टकाविषे स्थित होकरि जैसी जैसी भावना करता गया है, तैसे तैसे भासने लगा है, बहुरि तिसकी सत्ता पायकरि अपणे अपणे विषयकों ग्रहण करणे लगे हैं, अरु वास्तवतें इंद्रियां भी कछु वस्तु नहीं, सब आत्माके आभासकरि फुरतियां हैं, इंद्रियां अरु इं द्रियके अर्थ यह संवेदनतें उपजे हैं, जैसे उपजे है, तैसे तुझकों कहे हैं ॥ हे रामजी! शुद्ध संवित सत्तामात्र विषे जो अहं उल्लेख हुआ है, सो संवेदन हुई है, उही संवेदन जीवरूप पुर्यष्टकाभावकों प्राप्त होकरि बुद्धि मन अरु पंच तन्मात्राकों उपजायकरि जीवकला आपही तिनविषे प्रवेशकरि स्थित भई है, तिसकों पुर्य ष्टका कहते हैं, परंतु यह उपजी भी स्पंदविषे हैं, आत्माविषे उपजणा कछु नहीं, सो आत्मा न एक है, न अनेक है, परमात्म तत्त्व अस्ति अनामय है, अरु वेदना भी तिसविषे अनन्यरूप है ॥ हे रामजी! तिस विषे न कोउ द्वैतकलना है, न कछु मनशक्ति है, केवल शांतसत्ता है, तिसकों परमात्मा कहते हैं, सो ...

सहित षट् इंद्रियांतें अतीत है, अचेतन चिन्मात्र है, तिसतें जीव उत्पत्ति हुआ है, यह भी उपदेशके निमित्त कहता हौं, वास्तवतें कछु उपजा नहीं, केवल भ्रममात्र है, जहां जीव उपजा है, तहां तिसकों अहंभाव विपर्यय हुआ है, यही अविद्या है, सो उपदेशकरि उपदेशकों पाए लीन हो जाती है, जैसे निर्मलकरि जलकी मलिनता लीन हो जाती है, तैसे गुरु अरु शास्त्र उपदेशके पायकरि अविद्या लीन हो जाती है, तब भ्रमरूप आकार शांत हो जाते हैं, ज्ञानरूप आत्मा शेष रहता है, जिसविषे आकाश भी स्थूल है, जैसे परमाणुके आगे सुमेरु स्थूल होता है, तैसे आत्माके आगे आकाश स्थूल है ॥ हे रामजी ! आत्माके आगे जो स्थूलता भासती है, सो भ्रममात्र है, जो बडे उदार आरंभ भासते हैं, सो असत है, तब अवर पदार्थकी क्या बात है॥ हे रामजी ! आत्माविषे जगत कछु नहीं पाइता, काहेतें जो वस्तु असम्यक् ज्ञान करिके भासती है, सो सम्यक् ज्ञानकरि नहीं पाइती, जेते कछु जगतजाल भासते हैं, सो सब मायामात्र हैं, अर्थ कछु सिद्ध नहीं होता, जैसे मृगतृष्णाका जल तनक पान किया नहीं जाता तैसे जगत्के पदार्थ करि कछु परमार्थ सिद्ध नहीं होता, सब अज्ञान करिके भासते हैं ॥ हे रामजी ! जो वस्तु सम्यक् ज्ञानकरि पाइयें सो सत जाणियें, जो सम्यक् ज्ञानकरि न रहै, सो भ्रममात्र जाणियें, यह जीव पुर्यष्टका अविद्धक भ्रम है, असतही सत हो भासता है, जब गुरु अरु शास्त्रोंका विचार होता है, तब जगतभ्रम मिटि जाता है, अरु पुर्यष्टकाविषे स्थित होकरि जैसी भावना करता है, तैसी सिद्धि होती है, जैसे बालक अपणे परछायेविषे वैताल कल्पता है; तैसे जीवकला अपणे आपविषे देश काल तत्त्व आदिक कल्पती है, भावनाके अनुसार तिसकों भासते हैं, जैसे बीजतें पत्र टास फूलफलादिक विस्तार होता है, तैसे तन्मात्रातें अवर भूतजात सब अंतर बाहिर देश काल क्रिया कर्म हुआ है, आदि जीव फुरीकरि जैसा संकल्प धारता भया है, तैसे हो भास्या है, सो यह संवेदन भी आत्मासाथ अनन्यरूप है, जैसे मिर्च अरु तीक्ष्णता अनन्यरूप हैं, जैसे आकाशविषे शून्य

ता अनन्यरूप है, तैसे आत्माविषे संवेदन अनन्यरूप है, तिस संवेदननें उपजीकरि निश्चय धारा जो यह पदार्थ ऐसे हैं, यह ऐसे होवैं, सो तैसेही स्थित है, अन्यथा कदाचित् नहीं होते, आदि जीव फुरिकरि जैसा निश्चय धाऱ्या है, तिसीका नाम नीति है, अरु स्वरूपतें सर्व आत्मसत्ता है, आत्मसत्ताही रूप धारिकरि स्थित भई है, जैसे एकही गनेका रस सकरखंडादिक आकारकों पावता है, जैसे एक मृत्तिका घट मठ टिंडादिक आकारकों धारती है, तैसे आत्मसत्ता सर्व ज्ञानकों पावती है, जैसे एकही जलका रस पत्र टास फूल फलादिक होकरि भासता है, तैसे एकही आत्मसत्ता घट पट कंध आदिक आकार हो भासती है ॥ हे रामजी! जैसे आदि जीव निश्चय किया है, तैसेही स्थित है, अन्यथा कदाचित् नहीं होता, परंतु जगत कालविषे ऐसे है, वास्तवतें न बिंब है, न प्रतिबिंब है, यह द्वैतविषे होते हैं, सो द्वैत कछु नहीं, केवल चिदानंद ब्रह्म आत्मतत्त्व अपणे आपविषे स्थित है, देहादिक भी सब चिन्मात्र हैं ॥ हे रामजी! जेता कछु जगत भासता है, सो आत्माका अकिंचनरूप है, जैसे जेवरी सर्परूप भासती है, तैसे आत्मा जगतरूप हो भासता है, जैसे स्वर्ण भूषण हो भासता है, तैसे आत्मा दृश्यरूप हो भासता है, जैसे स्वर्णविषे भूषण कछु वास्तव नहीं, तैसे आत्माविषे दृश्य वास्तव नहीं, जैसे स्वप्न पतन असतही सत हो भासता है, तैसे जीवकों देह अवर भासती है ॥ हे रामजी! आत्मसत्ता ज्योंकी त्यों है, परंतु फुरणेकरि अनेकरूप धारती है, जैसे एक नटवा अनेक स्वांग धारता है, तैसे आत्मसत्ता देहादिक अनेक आकारकों धारती है, जैसे स्वप्नविषे एकही अनेकरूप धारी चेष्टा करता है, तैसे जगतविषे नानारूपकों धारता है ॥ हे रामजी! आत्मा नित्य शुद्ध सर्वका अपणा आप है, अपणे स्वरूपके प्रमादकरि आपकरि आपका जन्ममरण जाणता है, सो जन्ममरण असतरूप है, जैसे कोउ पुरुष आपकों स्वप्नविषे श्वानरूप देखै, तैसे यह आपकों जन्मता मरता देखता है, जैसे जैसे इसकों पूर्व भावना है, भ्रम करिके असतकों सत जाणता है, जैसे स्वप्न

विषे वस्तुकों अवस्तु, अरु अवस्तुकों वस्तु देखता है, तैसे जाग्रतविषे विपर्यय देखता है, जैसे जाग्रतके ज्ञानतें स्वप्नभ्रम निवृत्त हो जाता है, तैसे आत्मा अधिष्ठानके ज्ञानतें जगतभ्रम निवृत्त हो जाता है, जैसे पूर्व का दुष्कृत कर्म किया होवै, अरु तिसके पाछे सुकृत कर्म करै, तब उह आच्छाद्या जाता है, तैसे पूर्व संस्कार जब नीच वासना होती है, अरु पाछे आत्मतत्त्वका अभ्यास करै, तब पुरुष प्रयत्न करिके मलिन वासना नष्ट हो जाती है, जबलग वासना मलीन होती है, तबलग उपजता बिनसता गोता खाता है, जब संतके संग अरु सच्छास्त्रहूंके विचारकरि आत्मज्ञान उपजता है, तब संसारबंधनतें छूटता है, अन्यथा नहीं छूटता ॥ हे रामजी ! चित्त वासनारूपी कलंककरि जीव आवर्या है, देहरूपी मंदिरविषे बैठीकरि अनेक भ्रमकों देखता है, आदिक जीवकों फुर्या है, सो अपणे स्वरूपकों त्यागिकरि अनात्मभ्रमकों देखता भया है, जैसे बालक परछायेविषे भूत कल्पै, तैसे कल्पिकरि जैसी भावना करी, तैसा भासणे लगा, आदि जीव पुर्यष्टकाविषे स्थित हुआ है, पुर्यष्टका कहियें बुद्धि मन अहंकार अरु तन्मात्रा इनका नाम पुर्यष्टका है, अरु अंतवाहक देह है, चैतन्य आत्मा अमूर्त है, आकाश भी तिसके निकट स्थूल है, प्राण वायु गुछेके समान है, देह सुमेरुके समान है, ऐसा सूक्ष्म जीव है, सुषुप्त जडरूप अरु स्वप्नभ्रम दोनों अवस्थाविषे स्थावर जंगमरूपी जीव भटकते हैं, कबहूं सुषुप्तिविषे स्थित होते हैं, कबहूं स्वप्नविषे स्थित होते हैं, इस प्रकार दोनों अवस्थाविषे जीव भटकते हैं ॥ हे रामजी ! सर्वका देह अंतवाहक है, तिसी देहकरि चेष्टा करते हैं, कबहूं स्थावरविषे जाते हैं, तब वृक्ष पथरादिक योनिकों पावते हैं, जब स्वप्नविषे होते हैं, तब जंगम योनिकों पावते हैं, सो भी कर्म वासनाके अनुसार पावते हैं, जब तामसी वासना घन होती है, तब कल्पवृक्ष चिंतामण्यादिक स्वरूपकों प्राप्त होते हैं, जब केवल तामसी घन मोहरूप होती है, तब अवर वृक्ष पथरादिक योनिकों पावतें हैं, इसका नाम सुषुप्ति है, सो लयघन मोहरूप है, अरु इसतें इतर विक्षेप रूप स्वप्न अवस्था है, कबहू तिसविषे

होता है, कबहू सुषुप्तिरूप स्थावर होता है ॥ हे रामजी ! सुषुप्ति अवस्थाविषे वासना सुषुप्तिरूप होती है, सो बहुरि उगती है, इस करिके मोहरूप है, अरु तिस सुषुप्तितें जब उतरता है, तब विक्षेपरूप स्वप्न होता है, जब बोध होवै, तब जाग्रत अवस्थाकों पावै, सो जाग्रत दो प्रकारकी है, सोई जाग्रत है, जो लय अरु विक्षेपतातें रहित चेतन अवस्था है, तिसतें रहित अवर मनोराज्य सब स्वप्नरूप है, एक जीवन्मुक्ति जाग्रत है, दूसरी विदेहमुक्ति है, जीवन्मुक्ति तुरीयारूप है, विदेहमुक्ति तुरीयातीत है, यह अवस्था जीवकों बोधकरि प्राप्त होती है, अरु बोध पुरुषप्रयत्नकरि होता है, अन्यथा नहीं होता ॥ हे रामजी ! जीवका फुरणा ज्ञानरूप है, जब दृश्यकी उर लागता है, तब उहीरूप हो जाता है, अरु जो सतकी उर लगता है, तब सत रूप हो जाता है, जब दृश्यके सन्मुख होता है, तब दीर्घ भ्रमकों देखता है, जीवके अंतर जो सृष्टिरूप हो फुरता है, सो भी आत्मसत्तातें इतर कछु वस्तु नहीं, जैसे वटलोहीविषे दाणेवत जल उछलता है, सो जलतें इतर कछु वस्तु नहीं, तैसे आत्माविना जीवके अंतर कछु अवर वस्तु नहीं, अवर सृष्टि जो भासती है सो माया मात्र है ॥ हे रामजी ! जीवकों स्वरूपके प्रमाद करिके सृष्टि भासती है, जो सतवत हो गई है, तिसकरि नानाप्रकारका विश्व भासता है, अरु नानाप्रकारकी वासना फुरती है, तिसकरि बंधमान हुआ है, जब वासना क्षय होवै, तब मुक्तिरूप है ॥ हे रामजी ! घन वासना मोहरूपका नाम सुषुप्ति जड अवस्था है, अरु क्षीण स्वप्नरूप है, जब स्वरूपका प्रमाद होता है, तब दृश्यविषे सतबुद्धि होती है, तिसविषे प्रतीति होती है, तब नानाप्रकारकी वासना उदय होती है, अरु जब स्वरूपका साक्षात्कार होता है, तब संसारसत्यता नाश हो जाती है, बहुरि वासना नहीं फुरती ॥ हे रामजी ! घनवासना तवलग फुरती है, जबलग दृश्यकी सतबुद्धि होती है, जब जगतका अत्यंत अभाव हुआ, तब वासना भी नहीं रहती, जैसे भूषण गालीकरि स्वर्ण किया तब भूषणबुद्धि नहीं रहती, जो अज्ञानकरि वस्तु उपजी है, सो ज्ञानकरि लीन हो जाती है, सो वास

नाभ्रम अबोधकरि उपजा है, बोधतें लीन हो जाता है॥ हे रामजी ! घन वासनाकरि सुषुप्त जड अवस्था होती है, अरु तन वासनाकरि स्वप्न देखीता है, घन वासना मोह करि जीव स्थावर अवस्थाकों प्राप्त होता है, अरु मध्य वासनाकरि तिर्यक् योनि पशु पक्षी सर्पादिककों प्राप्त होता है, अरु तन वासनाकरि मनुष्यादिक शरीरकों पावता है, अरु नष्ट वासनाकरि मोक्षकों पावता है॥ हे रामजी ! यह जगत सब संकल्प करि रचा है, जो बाह्य घट पट आदिक देखीता है, अरु ग्रहण करीता है, सो एक अंतर देहविषे स्थित होकरि उही बाह्य घट पट आदिक होकरि स्थित होता है, तिनकों ग्रहण करता है, ग्राह्यग्राहकका संबंध देखता है, यह मैं ग्रहण किया है, यह मैं लिया है, अरु जो ज्ञानवान है, सो न ग्रहण करणेका अभिमान करता है, न कछु त्यागणेका अभिमान करता है, तिसकों अंतर बाहिर सब चिदाकाश भासता है, चेतनसत्ताका यह चमत्कार है, तीनों जगतरूप होकरि उही प्रकाशता है, रंचकमात्र भी कछु अन्य नहीं, केवल आत्मसत्ता अपणे आपविषे स्थित है, जैसे समुद्रविषे तरंग बुद्बुदे होकरि भासते हैं, परंतु जलही जल है, जलतें इतर कछु नहीं, तैसे आत्मा जगतरूप होकरि भासता है, अवर द्वैतवस्तु कछु नहीं॥ ॥ इति श्रीयोगवासिष्ठे निर्वाणप्रकरणे यथार्थोपदेशो नाम पंचशत्तमः सर्गः॥ ५०॥ ॥ ॥ ॥ ॥ वसिष्ठ उवाच॥ हे रामजी ! जिस जीवकों स्वप्नविषे संसार उदय होता है, सो कल्पनामात्र होता है, न सत् असत् है, जीवकों एक फुरणेकरि भ्रम भासता है, तैसे यह जाग्रत अवस्था भ्रममात्र है, स्वप्न अरु जाग्रत एकरूप हैं, जैसे स्वप्नविषे जाग्रतका एक क्षण भी दीर्घकाल होता है, तैसे स्वरूपके प्रमादकरि जाग्रत भी दीर्घकाल भ्रम हुआ है, सतकों असत जाणता है, अरु असतकों सत जाणता है, जडकों चेतन जाणता है, अरु चेतनकों जड जाणता है, विपर्यय ज्ञान करिके इस प्रकार जाणता है, जैसे स्वप्नविषे एकही जीव अनेकताकों प्राप्त होता है, तैसे आदिक जीव एकतें अनेक होकरि भासता है, जैसे स्थाणुविषे चोर भ्रम भासता है, तैसे आत्मा

विषे तीनों जगतभ्रम भासता है, जैसे सुषुप्तितें स्वप्न भ्रम उदय होता है, तैसे अद्वैत तत्त्व आत्मविषे जगतभ्रम होता है, आत्मा अनंत सर्वगत है, जीवका बीजरूप है, जैसा तिसके आश्रय फुरणा होता है, तैसा सिद्ध होकरि भासता है ॥ हे रामजी! जिन पुरुषकों स्वरूपकी स्थिति भई है, सो सदा निःसंग होकरि विचरते हैं, जैसे पुंडरीकाक्ष विष्णुजी निःसंगता उपदेश करैगा, तिसकों पायकरि अर्जुन मुक्त होकरि विचरैगा, तैसे हे महाबाहो! तुम भी विचरौ ॥ हे रामजी! पांडवका पुत्र अर्जुन नाम जैसे सुखसाथ जीवणा व्यतीत करैगा, सर्व व्यवहारविषे भी सुखी स्वस्थ रहैगा, तैसे तूं भी निःसंग होकरि विचरु ॥ राम उवाच ॥ हे ब्राह्मण! पांडवका पुत्र अर्जुन कब होवैगा, अरु कैसे विष्णुजी तिसकों निःसंग उपदेश करैगा? ॥ वसिष्ठ उवाच ॥ हे रामजी! अस्ति तन्मात्र जो तत्त्व है, जिसविषे आत्मादिक संज्ञा कल्पिकरि कही है, सो आत्मसत्ता अपणे आपविषे स्थित है, आदि अंततें रहित है, जैसे आकाशविषे आकाश स्थित है, तैसे निर्मल तत्त्व अपणे आपविषे स्थित है, तिसविषे जगतभ्रम मात्र फुरता है, जैसे स्वर्णविषे भूषण फुरते हैं, जैसे समुद्रविषे तरंग फुरते हैं, तैसे आत्माविषे चउदश प्रकारके भूतजात फुरते हैं, इस संसारजालविषे भूत प्राणी भ्रमते हैं, जैसे पक्षी जालविषे भ्रमते हैं, तैसे जगतविषे जीव भ्रमते हैं, चंद्रमा सूर्य लोकपाल होकरि स्थित हैं, पंचभूतका कर्म तिन रचा है, जो यह पुण्य ग्रहण करणे योग्य है, यह पाप त्यागणे योग्य है, पुण्यकरि स्वर्गादिक सुख प्राप्त होता है, पापकरि नरक प्राप्त होता है, यह मर्यादा लोकपालने स्थापन करि है, इस प्रकार संसाररूपी नदीविषे वहते हैं, कैसी संसाररूपी नदी वहती है, अवच्छिन्नरूप भासती है, अरु नाशरूप क्षणक्षणविषे नष्ट होती है, जैसे नदीका वेग समान प्रवाह करिके उही भासता है, परंतु होता अवर है, क्षणक्षणविषे उह प्रथम जाता रहता है, तैसे संसार अपणे कालविषे अवच्छिन्नरूप सत् भासता है, अरु आत्माकी अपेक्षा करिके नाशरूप है, क्षणक्षणविषे नष्ट होता

है, तिस जगतविषे वैवस्वत सूर्यका पुत्र यमराज लोकपाल बडा प्रतापवान स्थित है, सो बडा तेजवान है, अरु सब जीवकों मारता है, ऐसे नेमकों धारिकरि प्रजाविषे स्थित है, आदि प्रवाह इस प्रकार हुआ है, तिस प्रति प्रवाह कार्यके कर्मविषे स्थित है, जीवकों मारणां अरु दंड करणां यही उसका नेम है, अरु चित्तविषे पहाडकी नांई स्थित है, सो यमराज चहूं चहूं जुगहूं प्रति एक नेमकों धारता है, जो किसी जीवकों मारणां नहीं, कबहूं अष्टवर्ष, कबहूं बारह वर्षका नेम धारता है, कबहूं सप्तवर्ष, कबहूं षोडशवर्ष नेम धारता है, तब उदासीनकी नांई स्थित होता है, किसीकों नहीं मारता ॥ तब पृथ्वीविषे नीरंध्र भूत हो जाता है, चलणेकों मार्ग नहीं रहता, तब केई दुष्ट जीव होते हैं, जो जीवकों दुःख देते हैं, तिसकरि पृथ्वी भारी होती है, अरु दुःखी होती है, तिस पृथ्वीके भार उतारणेनिमित्त विष्णुजी अवतार धारिकरि दुष्ट जीवकों नाश करता है, अरु धर्ममार्गकों दृढ करता है ॥ हे रामजी! इस प्रकार नेमकों धारणेहारे यम अनंत जुग अपणे व्यवहारकों करते व्यतीत होगये हैं, भूत अरु जगत अनेक होगये हैं, इस सृष्टिका जो अब वैवस्वत यम है, सो आगे नेम करैगा, द्वादश वर्षपर्यंत किसीकों न मारैगा, ऐसा नेम करैगा तब जीव क्रूर कर्मोंकों करणे लगैंगे, पृथ्वी भूतोंसाथ नीरंध्र हो जावैगी, जैसे वृक्षसाथ गुछे संघट्ट हो जाते हैं, तैसे पृथ्वी प्राणीसाथ संघट्ट हो जावैगी; तब पृथ्वी भारसाथ दुःखित होकरि विष्णुजीकी शरण जावैगी, जैसे चोरतें डरीकरि स्त्री भर्त्ताकी शरण जावै, तैसे पृथ्वी विष्णुकी शरण जावैगी, तब विष्णु दो देहकों धारिकरि पृथ्वीका भार उतारैगा, अरु सन्मार्ग स्थापन करैगा, अरु सब देवता अवतार धारीकरि साथ आवैंगे, नरोंविषे नायक भावकों प्राप्त होवैगा, एकदेहकरि वसुदेवके गृहविषे पुत्ररूप कृष्ण नाम होवैगा, अरु दूसरी देहकरि पांडवके गृह अर्जुन नाम होवैगा, युधिष्ठिर नाम धर्मका पुत्र होवैगा, समुद्र जिसकी मेखला है, ऐसी जो पृथ्वी है, तिसका राज्य करैगा, पांडवका पुत्र धर्मका वेत्ता तिसके चाचेका पुत्र दुर्योधन नाम हो

वैगा, तिसका अरु भीमका बडा युद्ध होवैगा, दोनों उर संग्रामकी लालसा होवैगी, अठारह क्षोणी सैना एकठी होवैगी, तिसविषे बडे भयानक युद्ध होवैगा, तिनके बलकरि हरी पृथ्वीका भार उतारैगा ॥ हे रामजी! तिस सैनाके युद्धविषे विष्णुका जो अर्जुन नाम देह होवैगा, सो गांडीव धनुष्य धरैगा, सो प्रकृत स्वभावविषे स्थित होवैगा; हर्षशोकादिक विकारसंयुक्त निर्धर्मा होवैगा, सो युद्धविषे अपणे बांधव संबंधीकों देखीकरि मूर्छित होवैगा, मोह कायरताकरि तिसके हाथतें धनुष्य गिर पडैगा, अरु आतुर होवैगा, तब बोध देहकरि तिसकों हरि उपदेश करैगा, दोनों सैनाके मध्यविषे जब अर्जुन मोहित होकरि गिरैगा, तब हरि कहैगा, हे राजसिंह अर्जुन, तूं मनुष्यभावकों क्यौं प्राप्त हुआ है, अरु मोहित क्यौं हुआ है, इस कायरताका त्याग करु, तूं परम प्रकाश आत्मतत्त्व है, सर्वका आत्मा तूं आनंदअविनाशी है, आदि अंत मध्यतें रहित है, वृथा कायरताकों प्राप्त क्यौं हुआ है, सर्वव्यापी परम अंकुररूप है, अरु निर्मल है, दुःखके स्पर्शतें रहित है, नित्य शुद्ध निरामय है ॥ हे अर्जुन ! आत्मा न जन्मता है, न मरता है, होएकरि बहुरि कछु अवर नहीं होता, काहेतें जो अज है, नित्य है, निरंतर पुरातन है, सर्वकी आदि है, तिसका शरीरके नाश हुए नाश नहीं होता ॥ ॥ इति श्रीयोगवासिष्ठे निर्वाणप्रकरणे नारायणावतारो नाम एकपंचाशत्तमः सर्गः ॥ ५१ ॥ ॥ ॥ ॥ श्रीभगवानुवाच ॥ हे अर्जुन ! जो इस आत्माकों हंता मानते हैं, कै हनन क्रिया कर्त्ता है, अरु इस आत्माकों हत होता मानते हैं, सो आत्माकों नहीं जाणते, न यह आत्मा मारता है, न मरता है, काहेतें मारता मरता नहीं, जो अक्षयरूप है, अरु निराकार आकाशतें भी सूक्ष्म है, तिस आत्मा परमेश्वरकों कवन किस प्रकार मारै ॥ हे अर्जुन ! तूं अहंकाररूप नहीं, इस अनात्म अभिमानरूपी मलका त्याग करु, तूं जन्ममरणतें रहित मुक्तिरूप है ॥ जिस पुरुषकों अनात्मविषे अहंभाव नहीं अरु बुद्धि जिसकी कर्तृत्वभोक्तृत्वविषे लेपायमान नहीं होती, सो पुरुष सब विश्वकों मारै तौ भी उनकों नहीं मारता,

न बंधमान होता है ॥ हे अर्जुन ! जिसकों जैसा दृढ निश्चय होता है, तैसाही तिसकों अनुभव होता है, तातें यह मैं, मेरा जो मलिन संवितानिश्चय होता है, तिसका त्यागकरि स्वरूपविषे स्थित होउ, जो ऐसी भावनाविषे स्थित नहीं होते, अरु आपकों नष्ट होता मानते हैं, सो सुखदुःख करिके रागदोषविषे जलते हैं ॥ हे अर्जुन ! अपणे गुणोंके असंख्य कर्मोंविषे वर्तते हैं, शब्द स्पर्श रूप रस गंध इनतें पांचों तत्त्व, आकाश वायु अग्नि जल पृथ्वी उपजे हैं, तिन भूतोंके अंश श्रवण त्वचा नेत्र जिव्हा नासिका विषयविषे स्थित हैं, उह अपणे विषयकों ग्रहण करते हैं, नेत्र रूपकों गहण करते हैं, त्वचा स्पर्शकों, जिव्हा रसकों, नासिका गंधकों, श्रवण शब्दकों ग्रहण करते हैं, तिसविषे अहंकारकरि जो मूढ हुआ है, सो आपकों कर्त्ता मानता है, मैं देखता हौं, मैं सुणंता हौं, स्पर्श करता हौं, स्वाद लेता हौं, गंध लेता हौं ॥ हे अर्जुन ! यह सब कर्म कलना करिके रचे हैं, सो इंद्रियकरि कर्म होते हैं, अहंभावकरि यह वृथा क्लेशका भागी होता है, बहुत मिलिकरि कर्म किया, अरु तिसविषे एकही अभिमानी होकरि दुःख पावता है, सो बडा आश्चर्य है, देह इंद्रियकरि कर्म होते हैं, अरु अभिमानी होकरि सुखदुःखविषे रागदोष होकरि जीव जलता है, तातें इनका संग अभिमान त्यागकरि अपणे स्वरूपविषे स्थित होउ, मनकरि बुद्धिकरि केवल इंद्रियांकरि योगी कर्म करता है, अरु तिनविषे अभिमानवृत्ति नहीं करता, निःसंग होकरि करता है, तिसकी आत्मपदकी सिद्धताका कारण होते हैं ॥ हे अर्जुन ! इस जीवकों अहंकारही दुःखदायक है, अनात्मविषे आत्मअभिमान करता है, तिस अभिमानसहित जो कछु कर्म करता है, सो सब दुःखदायक होते हैं, अरु जो अभिमानरूपी विषके चूर्णने रहित होकरि चेष्टा करता है, लेता है, देता है, सो दुःखका कारण नहीं होता, सदा सुखरूप है ॥ हे अर्जुन ! सुंदर शरीर होवै, अरु विष्ठा मलसाथ मलिन किया होवै, तव तिसकी शोभा जाती रहती है, तैसे बुद्धिवान भी होवै, अरु शास्त्रका वेत्ता होवै, इत्यादिक गुणोंकरि

संपन्न होवै, अरु अनात्मविषे आत्मअभिमान होवै, तिसकी शोभा जाती रहती है, अरु जो निर्मम निरहंकार अरु सुखदुःखविषे सम है, ऐसा क्षमावान है, सो शुभ कर्म करै, अथवा अशुभ करै तिसकों किसी कर्मका स्पर्श नहीं होता ॥ हे अर्जुन! ऐसे निश्चयवान होकरि कर्मकों करो, तातें हे पांडवपुत्र! यह युद्ध कर्म तेरा धर्म है, सो कर, अपणा कर्म अति क्रूर भी होवैं, परंतु कल्याण करता है, अरु पराया धर्म उत्तम भी होवै, तौ भी दुःखदायक है, अपणां धर्म अमृतकी नांई अल्प भी सुखदायक है ॥ हे अर्जुन! भावै तैसा कर्म करु, जब तेरे विषे अहंभाव न होवैगा, तब तुझकों स्पर्श न करैगा, संग अभिमानकों त्यागिकरि योगविषे स्थित होकरि कर्म करु, जो निःसंग पुरुष है, तिसकों कोउ कर्म आनि प्राप्त होवै, तिसकों करता हुआ बंधमान नहीं होता, तातें ब्रह्मरूप होकरि ब्रह्ममय कर्मकों करु, तब शीघ्रही ब्रह्मरूप हो जावैगा, जो कछु आचार कर्म होवै, सो ब्रह्मविषे अर्पण करु ॥ हे अर्जुन! सर्व कर्म ईश्वरविषे समर्पण करु, सो ईश्वर आत्मा है, निर्मल कहिये निर्दुःख कहिये भावनाकरि भावित हुआ ईश्वर आत्मा होकरि पृथ्वीका भूषण होकरि विचरु, संन्यास योग युक्ति होकरि कर्मों करता मुक्तरूप होवैगा, सर्व संकल्पतें संन्यास सम शांत होकरि विचरु॥ ॥ अर्जुन उवाच ॥ हे भगवन्! संगत्याग किसकों कहते हैं, अरु ब्रह्म अर्पण किसकों कहते हैं, ईश्वर अर्पण किसकों कहते हैं, अरु संन्यास किसकों कहते हैं, योग किसकों कहते हैं, इनकों विभाग करिके कहो, मोहके निवृत्ति अर्थ ॥ ॥ श्रीभगवानुवाच ॥ हे अर्जुन! प्रथम तूं ब्रह्म सुण, जो किसकों कहते हैं, जहां सर्व संकल्प शांत हैं, एक घन वेदना है, अवर कछु भावनाका उत्थान नहीं, अचेतन चिन्मात्र सत्ता है, तिसकों परब्रह्म कहते हैं, ऐसे जाणीकरि तिसकों पावणेका उद्यम करणां, जिस विचारसाथ तिसकों पाइये, तिसका नाम ज्ञान है, अरु तिसविषे स्थित होणां तिसका नाम योग है, अरु यह सर्व ब्रह्म है; मैं ब्रह्म हों, सर्व जगत मैंही हों, ब्रह्मतें इतर कछु भावना न करणी, इसका नाम ब्रह्म अर्पण है, अरु जो नानाप्रकारका जगत भासता है, सो क्या है, अंतर भी

शून्य, बाहर भी शून्य, जिसकों शिलाकी उपमा है, ऐसा जो आकाशवत सत्तारूप है, सो न शून्य है, न शिलावत है, किसके आश्रय स्पंदकलना फुरेकी नांई, कछु होकरि अन्यवत भासती है, सो जगतरूप होकरि स्थित भई है, परंतु कैसी है, आकाशकी नांई शून्य है, तिसविषे जो विभागकलना हुई है, सो कोटि कोटि अंश जीवकला होती गई है, एकही अपृथक अनेकभूत पृथक पृथक होकरि स्थित भई है, जैसे समुद्रविषे तरंग बुदबुदे अनेकरूप होकरि स्थित होते हैं, सो जलही है, अवर कछु नहीं, एकही जल अनेकरूप भासता है, तैसे एकही वस्तुसत्ता घट पट आदिक आकार होकरि भासती है, संवितसारमें आत्माविषे भेदकलना कछु नहीं अज्ञान करिके अनेकरूप भेदकलना विकल्पजाल भासते हैं, अरु अनेकभावकों एक देखणां भी अज्ञान है, अरु एककों अनेक देखणां भी अज्ञान है, सो एक अनेक देखणां क्या है, अरु अनेक एक देखणां क्या है, जो एक आत्मा है, तिसकों अनेक नामरूप देखणां सो अज्ञान है, अरु भिन्न भिन्न देह इंद्रियां प्राण मन बुध्यादिक अनेक हैं, तिनविषे अहंप्रतीतिकरि एकत्र भाव देखणां सो भी अज्ञानकरि यह कलना हुई है, अरु ज्ञान करिके नष्ट हो जाती है ॥ हे अर्जुन ! जेते कछु संकल्पजाल हैं, तिनका त्याग करणां इसका नाम असंग संगतेंरहित कहते हैं, अरु सब कलनाजालकों ईश्वर साथ इतर भाव नहीं करणां, इस भावनाकरि द्वैतभाव गलित हो जावैगा, इसका नाम ईश्वरसमर्पण कहते हैं ॥ हे अर्जुन ! जब ऐसी अभेदभावना होती है, तब आत्मबोध प्राप्त होता है, अरु बोधकरि सब शब्द अर्थ एकरूप भासते हैं, सर्व शब्दोंका एकही शब्द भासता है, अरु एकही अर्थ सर्व शब्दोंविषे भासता है ॥ हे अर्जुन ! सर्व जगत मैं हों, मैंही दिशा हों, मैंही आकाश हों, मैंही कर्म हों, मैंही काल हों, द्वैत भी मैंही हों, अद्वैत भी मैं हों, ऐसा जो सर्वात्मा मैं हों, सो तूं मेरेविषे मनकों लगाये, मेरी भक्ति करु, अरु मेराही भजन करु, अरु मुझहीकों नमस्कार करु, तब तूं मुझहीकों प्राप्त होवैगा ॥ हे अर्जुन ! मैं आत्मा हों, तूं मेरेही परायण होहु ॥ ॥ अर्जुन

उवाच ॥ देव! ऐसे तेरे दो रूप हैं, एक पररूप है, एक अपररूप है, तिन दोनों रूपविषे मैं किसका आश्रय करौं, जिसकरि मैं परम सिद्धांतकों प्राप्त होउं ॥ ॥ श्रीभगवानुवाच ॥ हे अनघ ! एक समानरूप है, अरु एक परमरूप है, यह जो शंखचक्रगदादिक संयुक्त है, सो मेरा समानरूप है, अरु परमरूप मेरा आदिअंततें रहित एक अनामय है, सो ब्रह्म आत्म परमात्मा आदिक शब्दोंकरि कहता है, जबलग तूं अप्रबोध है, अनात्म देहादिकविषे तुझकों आत्म अभिमान है, तबलग मेरे चतुर्भुज आकारकी पूजापरायण होउ, अरु कर्मोंकों करु, जब प्रबोध होवैगा, तब मेरे परमरूपकों प्राप्त होवैगा, आदि अंत मध्यतें रहित मेरा रूप है, तिसकों पायकरि बहुरि जन्ममरणविषे न आवैगा, जब तूं शत्रुकों नाश करता हुआ ज्ञानवान भया, तब आत्माकरि आत्मासों मेरा पूजन करु, मैं सर्वका आत्मा हौं, यह मैं हौं, ऐसे जो मैं कहता हौं, सो आत्मतत्त्व बहुरि बहुरि कहता हौं ॥ हे अर्जुन ! मैं मानता हौं जो तूं अब प्रबोध हुआ है, अरु आत्मपदविषे विश्रामवान हुआ है, अरु संकल्पकलनातें रहित मुक्त हुआ है, एक आत्मसत्ताविषे स्थित हुआ है, ऐसे योगकरि सर्व भूतोंविषे स्थित आत्माकों देखैगा, अरु सर्व भूत आत्माविषे स्थित देखैगा, अरु सर्वत्रविषे तुझकों समबुद्धि होवैगी, तब स्वरूपविषे तुझकों दृढ स्थित होवैगी ॥ हे अर्जुन ! जो सर्व भूतोंविषे स्थित आत्माकों देखता है, अरु एकत्वभावकरि भजन करता है, आत्मातें इतर जिसकों अवर भावना नहीं फुरती, ऐसे एकत्वभावविषे जो स्थित हैं, सो सर्व प्रकार वर्तमान भी है, तौ भी बहुरि जन्ममरणविषे नहीं आवता ॥ हे अर्जुन ! जिसविषे सर्व शब्दोंका अर्थ है, अरु सर्व शब्दोंविषे जो एक अर्थरूप है, ऐसी जो आत्मसत्ता है, सो न सत् है, न असत् है, सतअसततें जो रहित सत्ता है, सो आत्मसत्ता है, सो सर्व लोकके चित्तविषे प्रकाशरूप करिके स्थित है, सो आत्मा है ॥ हे भारत ! जैसे सर्व दूधविषे घृत स्थित होता है, अरु जलविषे रस स्थित होता है, तैसे मैं सर्व लोकके अंतर तत्त्वरूप स्थित हौं, सर्व श

रीरविषे जो चेतन है, तिस चेतनमुक्त जो सूक्ष्म अनुभवसत्ता है, सो मैं हौं, सर्वगत आत्मा स्थित हौं, जैसे सर्व दूधविषे घृत स्थित है, तैसे सर्व पदार्थके अंतर मैं आत्मा स्थित हौं, जैसे रत्नके अंतर बाहेर प्रकाश होता है, तैसे मैं सर्व पदार्थके अंतर बाहेर स्थित हौं, जैसे अनेक घटके अंतर बाहेर एकही आकाश स्थित है, तैसे मैं अनेक देहकों अंतर बाहेर अव्यक्तस्वरूप स्थित हौं ॥ हे अर्जुन! ब्रह्मातें आदि तृण पर्यंत सर्व पदार्थविषे सत्ता समान करिके मैं स्थित हौं, अरु नित्य अजन्मा हौं, मेरेविषे जो चित्त संवेदन फुरी है, सो ब्रह्मसत्ताकी नांई होत भई है, अरु फुरणे करिके जगतरूप हो भासता है, अहंता ममता आदिककों प्राप्त भई है, अरु आत्मतत्त्व अपणे आपविषे स्थित है, अवर द्वैत कछु नहीं ॥ हे अर्जुन! आत्मा सबका साक्षीरूप है, तिसकों जगतका सुखदुःख स्पर्श नहीं करता, जैसे दर्पण प्रतिबिंबकों ग्रहण करता है, परंतु सबविषे सम है, किसीकरि खेदवान नहीं होता, तैसे सब पदार्थ अवस्था साक्षीभूत आत्मा है, परंतु किसीकों स्पर्श नहीं करता, अरु शरीरके नाशविषे तिसका नाश नहीं होता, जो ऐसे देखता है, सो यथार्थ देखता है ॥ हे अर्जुन! पृथ्वीविषे गंध मैं हौं, अरु जलविषे रस मैं हौं, पवनविषे स्पर्श अरु स्पंदशक्ति मैं हौं, अग्निविषे प्रकाशशक्ति, आकाशविषे शब्दशक्ति मैं हौं, अवर तुझकों क्या कहौं, जो यह मैं हौं, सर्वात्मा सर्वका आत्मा मैं हौं, मुझतें इतर कछु नहीं ॥ हे पांडव! यह जो सृष्टि प्रवर्त्तती है, उत्पन्न अरु प्रलय होती दृष्ट आती है, सो मेरेविषे ऐसे है, जैसे समुद्रविषे तरंग उपजते अरु लीन होते हैं, जैसे पहाड पत्थररूप है, अरु वृक्ष काष्ठरूप है, तरंग जलरूप है, तैसे सर्व पदार्थविषे मैं आत्मरूप हौं, जो सर्व भूतोंकों आत्माविषे देखता है, सो आत्माकों अकर्ता देखता है, जैसे समुद्रविषे नानाप्रकारके तरंग भासते हैं, स्वर्णविषे भूषण भासते हैं, तैसे नाना आकार यह आत्माविषे भासते हैं ॥ हे अर्जुन! यह नानाप्रकारके पदार्थ ब्रह्मरूप हैं, ब्रह्मतें भिन्न कछु नहीं, तब अवर क्या कहिये, भाव विकार क्या कहियें, जगत द्वैत क्या क

हियें, जो उही है, तब वृथा मोहित क्यों होता है, इस प्रकार बुद्धिवान सुणीकरि समुजसों अंतर भावना निश्चित होकरि जीवन्मुक्त इस लोकविषे समरस चित्त विचरते हैं ॥ हे अर्जुन! तिस पदकों तूं क्यों नहीं प्राप्त होता, जो पुरुष निर्मान अरु निर्मोह हुए हैं, अरु अभिलाषादोष जिनका निवृत्त भया है, सर्व कामनातें रहित हुए हैं, सो अव्यय पदकों प्राप्त हुए हैं ॥ ॥ इति श्रीयोगवासिष्ठे निर्वाणप्रकरणे अर्जुनोपदेशो नाम द्विपंचाशत्तमः सर्गः ॥ ५२ ॥ ॥ ॥ श्रीभगवानुवाच ॥ हे महाबाहो ! बहुरि मेरे परम वचन सुण, मैं तेरी प्रसन्नताके निमित्त कहता हों, जो तेरा हितकारी हों, यह जो उष्ण शीत विषय हैं, सो इंद्रियकों स्पर्श होते हैं, अरु आगमापायी हैं, आते हैं, बहुरि निवृत्त हो जाते हैं, तातें अनित्य हैं, तिनकों तूं सहि रहु, आत्माकों स्पर्श नहीं करते, तूं तो आत्मा है, एक है, आदि अंत मध्यतें रहित है, निराकार अखंड पूर्ण है, तुझकों शीत उष्ण सुखदुःख खंडित नहीं करी शकते, यह कलनाकरि रचे हुए हैं, जैसे स्वर्णविषे भूषणका निवास है, तैसे आत्माविषे इनका असत निवास है ॥ हे भारत ! जिसकों इंद्रियांके भोग स्पर्श भ्रमरूप चलायमान नहीं करी शकते, अरु सुखदुःख जीवकों सम हैं, तिस पुरुषकों मोक्षकी प्राप्ति होती है ॥ हे अर्जुन ! आत्मा नित्य शुद्ध सर्वरूप है, अरु इंद्रियांके स्पर्श असतरूप हैं, सो असतरूपविषे सतरूप आत्माकों मोह नहीं शकते, यह अल्पमात्र तुच्छ है, कछु वस्तु नहीं, अरु बोधरूप आत्मतत्त्व सर्वगत शुद्धरूप है, तिसकों इनका स्पर्श कैसे होवै, सतकों असत स्पर्श नहीं करी शकता, जैसे जेवरीविषे सर्प आभास होता है, सो जेवरीकों स्पर्श नहीं करी शकता, अरु जैसे मूर्तिकी, अग्नि कागदकों जलाय नहीं शकती, अरु जैसे स्वप्नके क्षोभ जाग्रत पुरुषकों स्पर्श नहीं करी शकते, तैसे इंद्रियां अरु तिनके विषय आत्माकों स्पर्श नहीं करी शकते ॥ हे अर्जुन ! जो सत है, सो असत नहीं होता, अरु जो असत है सो सत नहीं होता, सुखदुःखादिक असतरूप हैं, कछु है नहीं, अरु परमात्मा सतरूप है, जगतके सतवस्तु घटादिक

अरु आकाशके असत फूलादिक तिन दोनोंके त्यागतें पाछे जो निष्किंचन महासतपद है, तिसविषे स्थित होउ ॥ हे अर्जुन ! ज्ञानवान पुरुष इष्टअनिष्टविषे चलायमान नहीं होता, इष्टसुखकरि हर्षवान नहीं होता, अनिष्ट दुःखकरि शोकवान नहीं होता, अरु चेतन पाषाणवत् शरीरविषे स्थित होता है ॥ हे साधो ! यह चित्त भी जड है, अरु देह इंद्रियादिक भी जड हैं, अरु आत्मा चेतन है, इनके साथ मिल्या हुआ आपकों देह क्यौं देखता है, चित्त अरु देह भी आपसमें भिन्न भिन्न हैं, देहके नष्ट हुए चित्त नष्ट नहीं होता, अरु चित्तके नष्ट हुए देह नष्ट नहीं होता, इनके नष्ट हुए जो आपकों नष्ट होता मानता है, अरु इनके सुख दुःखसाथ सुखी दुःखी होता है, सो महामूर्ख है ॥ हे अर्जुन ! स्वरूपके प्रमाद करिके देहादिकविषे अहंप्रतीति करता है, अरु कर्त्ता भोक्ता आपकों मानता है, जब आत्माका बोध होता है, तब आपकों अकर्त्ता अभोक्ता अद्वैत देखता है, जैसे जेवरीके अज्ञानकरि सर्प भासता है, अरु जेवरीके बोधकरि सर्पका अभाव होता है, तैसे आत्माके अज्ञानकरि देह इंद्रियांके सुख दुःख भासते हैं, अरु आत्मज्ञानकरि सुखदुःखका अभाव हो जाता है ॥ हे अर्जुन ! यह विश्व एक अज ब्रह्मस्वरूप है, न कोउ जन्मता है, न मरता है, यह सत उपदेश है, प्रबोधकरि ऐसे जाणता है ॥ हे अर्जुन ! ब्रह्मरूपी समुद्रविषे तूं एक तरंग फुर्या है, केताक काल रहिके बहुरि तिसीविषे लीन हो जावैगा, तातें तेरा स्वरूप निरामय ब्रह्म है, सब जगत ब्रह्मका स्पंद है, समय पायकरि दृष्टि आता है, तातें मान मद शोक सुख दुःख सब असतरूप हैं, तूं शांतिवान होहु ॥ हे अर्जुन ! प्रथम तौ तूं ब्रह्ममय युद्ध करु, जेती कछु अक्षोहिणी सैना है, सो सब अनुभवकरि नाश कर, जो यह द्वैत कछु नहीं, एकही सर्वदा परब्रह्मरूप स्थित है, यह ब्रह्ममय युद्ध कर, अरु सुख दुःख लाभ अलाभ अरु जय अजय ब्रह्मयुद्धविषे इनकों एकता करु, जो कछु ब्रह्मातें लेकरि तृणपर्यंत जगत भासता है, सो सब ब्रह्मही है, ब्रह्मतें इतर कछु नहीं, ऐसे जाणिके लाभअलाभ

विषे सम होकरि स्थित होउ, अवर चिंतवना कछु न करु ॥ हे अर्जुन ! जड शरीरसाथ कर्म स्वाभाविक होते हैं, जैसे वायुका फुरणां स्वाभाविक होता है, तैसे शरीरकरि कर्म स्वाभाविक होते हैं ॥ हे अर्जुन ! जो कछु कार्य करै, अरु भोजन करै, जो कछु यजन करै, दान करै, सो आत्माहीविषे अर्पण कर, अरु सदा आत्मसत्ताविषे स्थित रहु, अरु सबकों आत्मरूप देख ॥ हे अर्जुन ! जो किसीके अंतर दृढ निश्चय होता है, सोइ रूप उसकों भासता है, जब तूं इस प्रकार अभ्यास करैगा; तब ब्रह्मरूप हो जावैगा, इसविषे संशय कछु नहीं ॥ हे अर्जुन ! कर्मोंविषे जो आत्माकों अकर्ता देखता है, अरु अकर्ता जो है, अकरणां अभिमानसहित तिसकों करता देखता है; सो मनुष्यविषे बुद्धिवान है, अरु संपूर्ण कर्मोंका कर्ता भी है, कर्तव्य कछु न रहै, यह अर्थ है ॥ हे अर्जुन ! कर्मोंके फलकी इच्छा भी न होवै, अरु कर्मोंविषे विसरता भी न होवै, जो मैं न करौं, योगविषे स्थित होकरि कर्मकों कर ॥ हे धनंजय ! कर्तृत्व अभिमान अरु फलकी वांछाकों त्यागिकरि कर्म करु, जो कर्मोंके फल अरु संगकों त्यागिकरि नित्य तृप्त हुआ है, सो कर्ता हुआ भी कछु नहीं करता, कार्य अकार्यकों कर्ता भी नहीं करता ॥ हे अर्जुन ! जिसनें सर्व आरंभोंविषे कामनासंकल्पका त्याग किया है, ज्ञान अग्निकरि कर्म जलाए हैं, तिसकों बुद्धिवान पंडित कहते हैं, जो सम आत्माविषे स्थित है, सर्व अर्थविषे निस्पृह है, निर्द्वंद्वसत्ता स्थित यथाप्राप्त वर्तता है, सो पृथ्वीका भूषण हैं, समुद्रकी नांई अचल है, अरु अपणे आपविषे तृप्त है, जैसे समुद्रविषे अनिच्छित जल प्रवेश करता है, तैसे ज्ञानवानविषे सुख प्रवेश करते हैं, सो शांतरूप सर्व कामनातें रहित है ॥ ॥ इति श्रीयोगवासिष्ठे निर्वाणप्रकरणे अर्जुनोपदेशे सर्वब्रह्मप्रतिपादनं नाम त्रिपंचाशत्तमः सर्गः ॥ ५३ ॥ ॥ ॥ श्रीभगवानुवाच ॥ हे अर्जुन ! तूं आत्मा है, सो कैसा आत्मा है, जो देश काल वस्तुके प्रच्छेदतें रहित है, अविनाशी है, अरु अजर है, अजर कहियें परिणामतें रहित ॥ हे अर्जुन ! तूं शोक मत कर, यह जो तुझकों जगत भासता है, सो अज्ञा

न करिके भासता है, अज्ञान कहियें अपणा प्रमाद, अरु प्रमाद कहियें अनात्मविषे आत्मअभिमान, इस का नाम अज्ञान है ॥ हे अर्जुन ! यह जो संसाररूप तेरा देह है, इसविषे अभिमान मत कर, यह मिथ्या है, इसकरि दुःख होता है, अरु तूं असंग है, अविनाशी है, तेरा नाश कदाचित नहीं होता ॥ हे अर्जुन ! जो विनाशरूप है, तिसका होणा कदाचित नहीं, अरु जो सत्य है, तिसका अभाव होणां कदाचित नहीं, तत्त्ववेत्तानें इन दोनोंका निर्णय किया है ॥ हे अर्जुन ! तिसकों तूं अविनाशी जाण, जिसकरि यह सर्व प्रकाशता है, तिसके विनाश करणेकों कोउ समर्थ नहीं ॥ हे अर्जुन ! सो तूं ऐसा है, अरु यह आत्मा सर्वका अपणा आप है, तिसका विनाश कैसे होवै, अरु अज्ञानी मनुष्य तिसका विनाश होता मानते हैं ॥ ॥ अर्जुन उवाच ॥ हे भगवन् ! तुम कहते हो, आत्मा अविनाशी है, अरु सबका अपणा आप है, तब उनका क्यों करि नाश होता है ॥ श्रीभगवानुवाच ॥ हे अर्जुन ! तूं सत्य कहता है, परमार्थतें किसीका नाश नहीं होता, परंतु अज्ञान करिके उनका नाश होता है, तिनकों मृत्यु ग्रासि लेता है ॥ हे अर्जुन ! तूं आत्मवेत्ता होउ, सो आत्मा एक है, अरु अद्वैत है, जिसविषे एक कहणां भी नहीं संभवता, तब द्वैत कहां होवै ॥ अर्जुन उवाच ॥ हे भगवन् ! तुम कहते हो, आत्मा एक है, तब मृत्यु भी द्वितीय न भया, अरु लोक मरते हैं, मरिके नरक स्वर्ग भोगता है, जब मृत्यु नहीं, तब लोक मरते क्यों हैं, अरु पाप पुण्य भोगते क्यों हैं ॥ श्रीभगवानुवाच ॥ हे अर्जुन ! न कोउ मरता है, न जन्मता है, यह स्वप्नकी नांई मिथ्या कल्पना है, जैसे निद्रादोषकरि जन्म अरु मरण भासता है, तैसे संसारविषे यह जन्म मरण भासता है, सो अज्ञान करिके भासता है, अज्ञान नाम फुरणेका है, तिस फुरणेहीकरि नरक अरु स्वर्ग कल्प्या है ॥ हे अर्जुन ! जैसे यह जीव भोगता है, सो तूं श्रवण कर, अपणे स्वरूपके प्रमाद होणेकरि आगे संकल्पके शरीर रचे हैं, पुर्यष्टका कहियें सो क्या है, पृथ्वी जल अग्नि वायु आकाश मन बुद्धि अहंकार तिसविषे जीव प्रवेश करता है, तिससाथ मिलीकरि जैसी वासना करता

है, तैसीही आगे भोगता है, सो वासना तीन प्रकारकी है, एक सात्विकी, एक राजसी, एक तामसी है, जैसी वासना होती है, तैसा स्वर्ग नरक बनिजाता है, सात्विकी वासनातें स्वर्ग बनि जाता है, इतरतें नरकादिक बनि जाते हैं, स्वर्ग नरक केवल वासनामात्र है, वास्तवतें न कोउ स्वर्ग है, न कोउ नरक है, न कोउ मरता है, न जन्मता है, केवल एक आत्माही ज्यौंका त्यौं स्थित है, परंतु यह जगतभास भ्रम करिके भासता है, अज्ञान करिके चिरकाल वासनाका अभ्यास किया है, तिसकरि भ्रमकों देखता है ॥ अर्जुन उवाच ॥ हे जगतके पति ! नरकस्वर्गादिक योनिकों जगतविषे यह जीव देखता है, तिस नानाप्रकारके देखणेविषे कारण कवन है ॥ ॥ श्रीभगवानुवाच ॥ हे अर्जुन ! अज्ञान करिके जो अनात्माविषे आत्मअभिमान हुआ है, तिसकरि जगतकों सत ज़ाणने लगा है, सत जाणीकरि वासना करणे लगा है, बहुरि जैसे जैसे जगतकों सत जाणीकरि वासना करता है, तैसे जगतभ्रमकों देखता है, जब इसकों आत्मविचार उपजता है, तब जगतकों स्वप्नकी नांई देखता है, अरु वासना भी क्षय हो जाती है, जब वासना क्षय होती है, तब कल्याणकों प्राप्त होता है ॥ अर्जुन उवाच ॥ हे भगवन् ! चिर अभ्यासकरि जो जो संसारभ्रम दृढ हो रहा है, सो किस प्रकार उपजा है, अरु किस प्रकार लीन होवैगा, ॥ श्रीभगवानुवाच ॥ हे अर्जुन ! मूर्खता अज्ञानता करिके जो अनात्म देहादिकविषे आत्मभावना होती है, तिसकरि जगतकों सत जाणी वासना करता है, तिस वासनाके अनुसार जगतभ्रमकों देखता है, जब स्वरूपका अभ्यास करता है, तब वासना नष्ट हो जाती है, तातें हे अर्जुन ! तूं स्वरूपका अभ्यास कर, अहं मम आदिक वासनाकों त्यागिकरि केवल आत्माकी भावना करु ॥ हे अर्जुन ! यह देह वासनारूप है, जब वासना निवृत्त होवैगी, तब देह भी लीन हो जावैगा, जब देह लीन भया, तब देश काल क्रिया जन्ममरण भी न रहैंगे, यह अपणेही संकल्पकरि उठे हैं, भ्रमरूप हैं, तिनकी वासनाकरि वेष्टित हुआ जीव भटकता है, जब आत्मबोध होता है, तब वासनातेंमु

क्त होता है, निरालंब असंकल्प अविनाशी आत्मतत्त्वकों पावता है, तिसीकों मोक्ष कहते हैं, जिसकी वासना क्षय हुई है ॥ हे अर्जुन ! जब जीवकों तत्त्वबोध होता है, तब वासनारूपी जालतें मुक्त होता है, जो वासनातें मुक्त हुआ सो मुक्त हुवा, जो पुरुष सर्व धर्म परायण भी है, अरु सर्वज्ञ है, शास्त्रोंका वेत्ता भी है, परंतु वासनातें मुक्त नहीं हुआ, सो सर्व उरतें बंध है, जैसे दृष्टिके दोषकरि निर्मल आकाशविषे तरवारे मोरके पुच्छवत भासते हैं, तैसे मूर्खकों शुद्ध आत्माविषे वासनारूपी मल जगत भासता है, जैसे पिंजरेविषे पक्षी बांध्या होता है, तैसे उह बंध होता है, जिसके अंतर वासना है, सो बंध है, अरु जिसके अंतर वासना नहीं, तिसकों मोक्ष जाण ॥ हे अर्जुन! जिसके अंतर जगतकी वासना है, अरु बडी प्रभुतासंयुक्त दृष्ट आवता है, तौ भी दरिद्री है, अरु दुःखका भागी है, अरु जिसकी वासना नष्ट भई है, अरु प्रभुतातें रहित दृष्ट आता है, तौ भी बडा प्रभुतावान है ॥ ॥ इति श्रीयोगवासिष्ठे निर्वाणप्रकरणे जीवनिर्णयो नाम चतुष्पंचाशत्तमः सर्गः ॥ ५४ ॥ ॥ ॥ श्रीभगवानुवाच ॥ हे अर्जुन ! इस प्रकार तूं निर्वासनिक जीवन्मुक्त होकरि विचर, तब तेरा अंतःकरण शीतल हो जावैगा, अरु जरामरणतें मुक्त निःसंग आकाशवत् होवैगा, इष्टअनिष्टकों त्यागि वीतराग होकरि स्थित होवैगा ॥ हे अर्जुन! पतित प्रवाह जो कार्य आनि प्राप्त होवै, तिसकों करु, युद्धविषे कायरता मत कर, आत्मा अविनाशी है, अरु देह नाशवंत है, देहके नाश हुए आत्मा नाश नहीं होता ॥ हे अर्जुन ! जो जीवन्मुक्त पुरुष है, सो रागद्वेषतें रहित होकरि प्रवाहपतित कार्यकों करते हैं, तूं भी जीवन्मुक्त स्वभाव होकरि विचरु, अरु यह मैं करौं, यह न करौं, इस ग्रहण त्यागके संकल्पकों त्याग, इसीकरि ज्ञानवान बंधमान नहीं होते, अरु मूर्ख है, सो इसविषे बंधमान होते हैं, जो जीवन्मुक्त पुरुष है; सुषुप्तवत् स्थित होकरि प्रवाहपतित कार्यकों करते हैं, अरु प्रबुद्धकी नांई वासनातें रहित हुए कार्य करते हैं, जैसे कच्छप अपणे अंग खैंचि लेता है, तैसे ज्ञानवान वासना

कों संकुचाए लेता है, अरु आपकों चिन्मात्ररूप जाणता है, अरु जगत मेरेविषे मणकेकी नांई परोया हुआ है, अरु सब जगत मेरे अंग हैं, जैसे अपणे हाथ पसारै अरु खैंचै, जैसे समुद्रतें तरंग उठते अरु लीन होते हैं, तैसे विश्व आत्मातें उपजता अरु लीन होता है, भिन्न कछु नहीं ॥ हे अर्जुन! जैसे चंदोए उपर नाना प्रकारके चित्र लिखे होते हैं, परंतु उह रंगवस्त्रतें भिन्न नहीं होते, तैसे आत्माविषे मनरूपी चितेरेनें जगत रचा है, अरु अन उपजा होकरि भासता है, जैसे स्तंभविषे चितेरा कल्पता है, जो एती पुतलियां निकसैंगियां, सो आकाशरूपी पुतलियां तिसके मनविषे फुरतियां हैं, तैसे यह तीनों जगत कालसंयुक्त चित्तविषे फुरते हैं, चितेरा भी मूर्त्यां तब लिखता है, जब भीत होती है, यह आश्चर्य है, जो आकाशविषे मन मूर्त्यांकों कल्पता है ॥ हे अर्जुन! यह मूर्त्यां स्पष्ट भासतियां तौ भी आकाशरूप है, जैसे स्वप्नसृष्टि आकाशरूप होती है, तैसे यह भी है, आकाश अरु कंधविषे भेद नहीं, परंतु आश्चर्य है, जो भेद भासता है, जैसे मनोराज्य स्वप्नपुरविषे जगत मनके फुरणेकरि भासता है, अरु अफुर हुए लय हो जाता है, सो मनोमात्र है, तैसे यह जगत मनोमात्र है, आकाशतें भी शून्यरूप है, जैसे स्वप्नपुर अरु मनोराज्यविषे एक क्षणमें बडे कालका अनुभव होता है, पूर्वरूपके विस्मरणकरि सत हो भासता है, तैसे यह जगत सत हो भासता है, जबलग प्रमाद होता है,तबलग भासता है,जब इस क्रम करिके आत्माकों देखता है,तब जगतभ्रम निवृत्त हो जाता है, प्रगट देखिता है,परंतु लीन हो जाता है,शरत्कालके आकाशवत् निर्मल भासता है, जैसे चितेरेके मनविषे चित्र फुरते हैं, सो आकाशरूप है,तैसे यह जगत आकाशरूप है ॥ हे अर्जुन! भाव अभाव वृत्तिकों त्यागिकरि स्वरूपविषे स्थित होहु, तब आकाशवत् निर्मल हो जावैगा, जैसे मेघकी प्रवृत्तिविषे भी आकाश निर्मल होता है, अरु निवृत्तिविषे भी निर्मल होता है, तैसे तूं पदार्थके भावअभावविषे निर्मल है, जेते कछु पदार्थ भासते हैं, सो सब आकाशरूप हैं, जैसे चितेरेके मनविषे पुतलियां भासती हैं, तैसे यह जगत आकाशरू

प है, जैसे एक क्षणविषे मनके फुरणेकरि नानाप्रकारके पदार्थ भासि आते हैं, अफुर हुए लीन हो जाते हैं, तैसे प्रमाद करिके जगत भासता है, आत्माके जाननेतें लीन हो जाता है, अरु आत्माविषे निर्वाणरूप है, आत्माविषे एक निमेषके फुरणेकरि प्रमादतें वज्रसारकी नांई दृढ हो भासता है, अरु चित्तके फुरणेकरि यह सत भासता है, सब जगत आकाशरूप है, द्वैत कछु हुआ नहीं, बडा आश्चर्य है, जो आकाशपर मूर्त्त्यां लिखियां हैं, अरु नानारूप रमणीय होकरि भासतियां हैं, अरु मनकों मोहतियां हैं ॥ हे अर्जुन! यही आश्चर्य है, जो कछु है नहीं, अरु नानाप्रकारके रंग भासते हैं, आकाशरूपी नीला ताल है, चंद्रमा तारे आदिक तिसविषे फूल खिले हैं, अरु मेघरूपी तिनकों पत्र लगे हैं ॥ हे अर्जुन! और आश्चर्य देख, चित्र भी तब होता है, जब प्रथम तिसका आधार भीत अथवा वस्त्र होता है, अरु इहां चित्र प्रथम उत्पन्न होते हैं, आधारभूत कंध पाछे बनती है, प्रथम यह मूर्त्त्यां चित्र बने हैं, अरु पाछे भीत हुई है, यह आश्चर्य है ॥ हे अर्जुन! यह मायाकी प्रधानता है, जो वास्तव आकाशरूप चितेरेनें आकाशविषे आकाशरूप पुतली रची है, आकाशविषे आकाशरूप पुतलियां उपजियां हैं, अरु आकाशविषे लीन होतियां हैं, आकाशही कों भोजन करतियां हैं, अरु आकाशहीकों आकाश देखता है, आकाशही यह सृष्टि है, आकाशहीरूप आकाश आत्माविषे आकाशरूप स्थित है ॥ हे अर्जुन! वास्तवतें आत्मा ऐसे है, तिस ऐसे अद्वैतरूप आत्माविषे जो उत्थान हुआ है, तिस उत्थानकरि उसकों स्वरूपका प्रमाद हुआ है, तिसकरि आगे दृश्यभ्रम कों देखता है, अरु अनेक वासना होती है, वासनारूपी जेवरीसाथ बांधा हुआ भटकता है, वासनाकरि आवर्या हुआ अहं त्वं आदिक शब्दोंकों जानणे लगता है, अरु नानाप्रकारके भ्रमकों देखता है, तौ भी स्वरूप ज्योंका त्यों है, जैसे दर्पणविषे प्रतिबिंब पडता है, अरु दर्पण ज्योंका त्यों रहता है, तैसे आत्माविषे जगत प्रतिबिंबित होता है, अरु आत्मा छेदभेदतें रहित है, ब्रह्मही ब्रह्मविषे स्थित है, जब सर्व उही है, त

ब छेद भेद किसका होवै, जैसे जलविषे तरंग बुदबुदे होते हैं, सो जलरूप है, तैसे यह सब ब्रह्महीकरि पूर्ण है. तिसविषे द्वैत कछु नहीं, जैसे आकाशविषे आकाश स्थित है, तैसे आत्माविषे आत्मा स्थित है, तिसविषे वासवासक कल्पना कोउ नहीं, परंतु स्वरूपके प्रमादकरि वासवासक भेद होता है, जब स्वरूपका ज्ञान होता है, तब वासना नष्ट हो जाती है ॥ हे अर्जुन ! जो वासनातें मुक्त है सोइ मुक्त है, अरु वासनासाथ बांधा हुआ है, सोई बंध है, जो सर्व शास्त्रोंका वेत्ता भी है, अरु सर्व धर्मोंकरि पूर्ण है, जब वासनातें मुक्त नहीं हुआ, तब बंधही है, जैसे पिंजरेविषे पक्षी बांधा होता है, तैसे उह वासनाकरि बांधा हुआ है ॥ हे अर्जुन! जिसके अंतर वासनाका बीज रहा है, अरु बाह्य दृष्टि नहीं आता, सो बीज भी बडे विस्तारकों पावैगा, जैसे वटका बीज बडे विस्तारकों पावता है, तैसे उह वासना विस्तारकों पावैगी, अरु जिस पुरुषनें आत्माका अभ्यास किया है, तिसकरि ज्ञानरूपी अग्नि उपजाई है, उसकरि वासनारूपी बीज जलाया है, तिसकों बहुरि संसार भ्रम उदय नहीं होता अरु वस्तुबुद्धिकरि पदार्थकों ग्रहण नहीं करता, अरु सुखदुःख आदिकविषे नहीं डूबता, सदा निर्लेप रहता है, जैसे तुंबा जलके उपरही रहता है, तैसे उह सुखदुःखके उपर रहता है ॥ हे अर्जुन ! तूं शांत आत्मा है, तेरा भ्रम अब दूर भया है, अरु आत्मपदकों तूं प्राप्त भया है, मन मोह तेरा निर्वाण हो गया है, तूं सम्यक्ज्ञानी हुआ है, व्यवहार अरु तूष्णीं तुझकों तुल्य भई है, शांतरूपनिःशंक पदकों प्राप्त भया है, यह मैं जाणता हौं ॥ ॥ इति श्रीयोग॰निर्वाणप्र॰श्रीकृष्णसंवादे अर्जुनविश्रांतिवर्णनं नाम पंचपंचाशत्तमः सर्गः ॥५५॥

॥ अर्जुन उवाच ॥ हे अच्युत ! मेरा मोह अब नष्ट भया है, अरु आत्मस्मृतिकों मैं प्राप्त भया हौं, तेरे प्रसादतें मैं अब निःसंदेह होकरि स्थित भया हौं, अब जो कछु तुम कहौ सो मैं करता हौं ॥ ॥ श्रीभगवानुवाच ॥ हे अर्जुन ! मनकी जो पांच वृत्ति हैं, प्रमाण, विपर्यय, विकल्प, अभाव, स्मृति जब यह पांचों हृदयसों निवृत्त हो जावैं, तब चित्त शांत होवै, तिसके पाछे जो शेष रहता है, चैत्यतें रहित चेतन तिसकों प्रत्यक्

चेतन कहते हैं, सो वस्तुरूप है, सर्व उपाधितें रहित सर्व है अरु सर्वरूप है, जो तिस पदकों प्राप्त हुआ है, तिसकों आधि व्याधि आदिक दुःख बांधि नहीं शकते, जैसे जालतें तिकसीकरि पक्षी आकाशमार्गकों उडता है, तैसे उह देह अभिमानतें मुक्त होकरि आत्मपदकों प्राप्त होता है, तिसकों दुःख नहीं बांध शकते ॥ हे अर्जुन ! प्रत्यक् जो चेतनसत्ता है, सो परम प्रकाशरूप शुद्ध है, संकल्पविकल्पतें रहित है, इंद्रियके विषयमें नहीं आता, इंद्रियांतें अतीत है, जो पुरुष सर्वतें अतीत पदकों प्राप्त हुआ है, तिसकों वासना नहीं स्पर्श करी शकती, तिसके प्राप्त हुए इह घट पट आदिक पदार्थ सब शून्य हो जाते हैं, तहां तुच्छ वासनाका बल कछु नहीं चलता, जैसे अग्निसमूहके निकट बरफ गलि जाती है, तिसकी शीतलता नहीं रहती, तैसे शुद्ध पदके साक्षात्कार हुए चित्तवृत्ति नष्ट हो जाती है, अरु वासनाका भी अभाव हो जाता है ॥ हे अर्जुन ! वासना तबलग फुरती है, जबलग संसारकों सत्य जाणता है, जब आत्मपदकी प्राप्ति होती है, तब संसार अरु वासनाका अभाव हो जाता है, इस कारणतें विरक्त पुरुषकों सत्य जाननेतें कछु वासना नहीं रहती, तबलग नानाप्रकारके आकार विकार संयुक्त विद्या फुरती है, जबलग शुद्ध आत्माकों अपणे आपकरि नहीं जाण्या, शुद्ध आत्माकों प्राप्त हुए जगतभ्रम सब नष्ट हो जाता है, आत्मतत्त्व स्वच्छ पदविषे स्थित होता है, आकाशवत निर्मलभावकों प्राप्त होता है, अरु अपणे आपकरि सबकों पूर्ण देखता है, सोइ आत्मसत्ता सर्व आकाररूप है, अरु सब आकाररूपतें रहित है ॥ हे अर्जुन ! जो शब्दतें अतीत परम वस्तु है, तिसकों किसकी उपमा दीजैं, जो वासनारूपी विसूचिकाकों त्यागिकरि अपणे आत्मस्वभावविषे स्थित हुआ पृथ्वीमें विचरता है, सो त्रिलोकीका नाथ है ॥ ॥ वसिष्ठ उवाच ॥ हे रामजी ! जब इस प्रकार त्रिलोकीका नाथ कहैगा, तब अर्जुन एक क्षण मौनविषे स्थित हो जावैगा, तिसके उपरांत कहैगा ॥ अर्जुन उवाच ॥ ॥ हे भगवन् ! सब शोक मेरे नष्ट हो गये हैं, तुमारे वचनोंकरि बोध उदय हुआ है, जैसे सू

र्यके उदय हुए कमल खिली आते हैं, तैसे तुमारे वचनोंकरि मेरा बोध खिली आया है, अब जो कछु तुमारी आज्ञा होवै सो मैं करौंगा ॥ ॥ वसिष्ठ उवाच ॥ हे रामजी ! इस प्रकार कहीकरि अर्जुन गांडीव धनुष्यकों ग्रहण करैगा, भगवानकों सारथी करिके निःसंदेह निःशंक होकरि रणलीला करैगा, कैसा युद्ध करैगा, जो हस्ती घोडा मनुष्य मारैगा, लोहीके प्रवाह चलैंगे, तौ भी आत्मतत्त्वविषे स्थित रहैगा, स्वरूपतें चलायमान न होवैगा, सुरकों नष्टकरि देवैगा, परंतु ज्यौंका त्यौं रहैगा, जैसे पवन मेघका अभावकरि देता है, तैसे योद्धेका नाश करैगा, परंतु स्वरूपतें चलायमान न होवैगा ॥ ॥ इति श्रीयोगवासिष्ठे निर्वाणप्रकरणे श्रीकृष्णार्जुनसंवादे भविष्यतगीतानामोपाख्यानसमाप्तिर्नाम षट्पंचाशत्तमः सर्गः ॥ ५६ ॥

॥ वसिष्ठ उवाच ॥ हे रामजी ! ऐसी दृष्टिकों आश्रय करिके निःसंग संन्यासी होहु, कैसी दृष्टि है, दुःखका नाश करती है, जो कछु कर्म चेष्टा होवै सो ब्रह्म अर्पण करु, जिसविषे यह सर्व हैं, अरु जिसतें यह सर्व है, ऐसी जो सत्ता है, तिसकों तूं परमात्मा जाण, अनुभवरूप आत्मा है, तिसकी भावनाकरि तिसीकों प्राप्त होता है, इसविषे संशय नहीं, जो सत्ता संवेदन फुरणेतें रहित है, चेतनतें रहित जो चेतन प्रकाशता है,तिसीकों तूं परमपद जाण, सो सबका परम द्रष्टारूप है, अरु सबका प्रकाशक है, सो महाउत्तम परम गुरुका गुरु है, सो आत्मरूप है, शून्यवादी जिसकों शून्य कहते हैं, विज्ञानवादी जिसकों विज्ञान कहते हैं, ब्रह्मवादी जिसकों ब्रह्म कहते हैं, सो परमसाररूप है, सो शिवरूप है, शांतरूप अपणे आपविषे स्थित है, सो आत्मा इस जगतरूपी मंदिरकों प्रकाश करणेहारा दीपक है, अरु जगतरूपी वृक्षका रस है, अरु जगतरूपी पशुका पालणेहारा गोपाल है, अरु जीवभूतरूपी मोतीकों एकत्र करणेहारा आत्मा तागा है, अरु हृदय आकाशविषे स्थित है, अरु भूतरूपी मिरचविषे आत्मरूपी तीक्ष्णता है, अरु सर्व पदार्थविषे पदार्थरूप सत्ता उही है, सत्यविषे सत्यता उही है, असत्यविषे असत्यता उही है; जगतरूपी गृहविषे पदार्थका

प्रकाशणेहारा दीपक उही है, तिसीकरि सब सिद्ध होते हैं, अरु चंद्रमा सूर्य तारे आदिक जो प्रकाशरूप दिखते हैं, तिनका प्रकाशक उही है, यह जड प्रकाश है, उह चेतन प्रकाश है, तिसकरि इह सिद्ध होते हैं, तिसीतें सब प्रकाश प्रगट भये हैं, सो आत्मसंवित अपणे विचारकरि पाता है ॥ हे रामजी! जेते कछु भावअभाव पदार्थ भासते हैं सो असत हैं, वास्तव कछु हुए नहीं, प्रमाद दोष करिके नानारूप भासते हैं, जब विचार उपजता है, तब यह नष्ट हो जाते हैं ॥ हे रामजी! अहंभाव जिसके अंतर है, ऐसा जो जगतजाल है सो मिथ्या भ्रमकरि भासता है, तिसकों उपजा क्या कहिये, अरु सत्य क्या करिये, किसकी आस्था करियें, इह जगत कछु वस्तु नहीं, आदि अंत मध्यकी कल्पनातें रहित जो देव है, सो ब्रह्मसत्ता समान अपणे आपविषे स्थित है, अवर द्वैत कछु बन्या नहीं, जब यह निश्चय तुझकों दृढ होवैगा, तब तूं व्यवहार करता भी अंतरतें निःसंग शांतरूप होवैगा ॥ हे रामजी! जिस पुरुषकी तिस समान सत्ताविषे स्थिति भई है, सो इष्टअनिष्टकी प्राप्तिविषे रागदोषतें रहित अंतरतें सदा शांतरूप रहता है, उह न उदय होता है, न अस्त होता है, सदा समताभावविषे स्थित रहता है, स्वस्थरूप अद्वैत तत्त्वविषे स्थित होता है, जगत्की उरतें सुषुप्तवत हो जाता है, व्यवहार भी करता है, परंतु क्षोभवान नहीं होता, दर्पणकी नांई, जैसे मणि सब प्रतिबिंबकों ग्रहण करती है, परंतु तिसकों अंतर संग नहीं होता, तैसे ज्ञानवान पुरुष कदाचित् कलनाकलंककों नहीं प्राप्त होता, तिसका चित्त व्यवहारविषे भी सदा निर्मल रहता है, ज्ञानवानकों जगत आत्माका चमत्कार भासता है, न एक है, न अनेक है, आत्मतत्त्व सदा अपणे आपविषे स्थित है, चित्तविषे जो यह चेतनभाव भासता है, तिस चित्त फुरणेका नाम संसार है, अरु फुरणेतें रहित अफुरका नाम परमपद है ॥ हे रामजी! महाचेतनविषे जो निजका अभाव है कि मैं नहीं आत्माकों जाणता, इसीका नाम चित्त स्पंद संसारका कारण है, जबयह भावनाक्षय होवै, तब चित्त अफुर हो जावै ॥ हे रामजी! जहां

निजभाव होता है, तहा पदार्थका अभाव होता है, सो निज सब ठौर अपणे अर्थकों सिद्ध करती है, परंतु आत्माविषे प्रवर्ती नहीं सकती, जब यह कहता है, मैं आत्माकों नहीं जाणता, तब भी आत्माका अभाव नहीं होता, अभावकों जानणेवाला भी आत्माही है, जो आत्मतत्त्व न होवै तब अभाव क्यौं न कहै, सो आत्मा परमशून्य है, परंतु कैसा शून्य है, जो अजडरूप परम चेतन है ॥ हे रामजी ! सो निजका अर्थ तूं आत्माविषे कर, जो आत्माकों निजकी भावना नहीं होती, अर्थ यह जो आत्माका अभाव न मानौ, अरु अनात्मविषे जो निजका भाव है, तिसका अभाव करु, अर्थ यह जो अनात्माकों अभावरूप मान, जब इस प्रकार दृढ भावना करैगा, तब संसार भ्रम निवृत्त हो जावैगा, केवल आत्माभाव शेष रहैगा ॥ हे रामजी ! चित्तके फुरणेका नाम संसार है, चित्तके फुरणेकरि संसार चक्र वर्तता है, माता मान मेय त्रिपुटी रूप चित्तही होता है, जैसे स्वर्णतें भूषण प्रगट होते हैं, तैसे चित्तकरि त्रिपुटी होती है, अरु चित्तस्पंद भी कछु भिन्न वस्तु नहीं, आत्माका आभासरूप है, अज्ञान करिके चित्तस्पंद होता है, ज्ञान करिके लीन हो जाता है, जैसे स्वर्णके भूषणकों गालेतें भूषणबुद्धि नहीं रहती, तैसे चित्त अचल हुए चित्तसंज्ञा जाती रहती है, जैसे भूषणके अभाव हुए स्वर्णही रहता है, तैसे बोधकरि चित्त जगत्के लीन हुए शुद्ध चेतनसत्ता शेष रहती है, बहुरि भोगती तृष्णा लीन हो जाती है, जब भोगभावना निवृत्त भई तब ज्ञानका परम लक्षण सिद्ध होता है ॥ हे रामजी ! जो ज्ञानवान पुरुष है, जिसने सतस्वरूपकों जाण्या है, तिसकों भोगकी इच्छा नहीं रहती, जैसे जो पुरुष अमृतपानकरि अघाय रहता है, तिसकों खलआदिक तुच्छ भोजनकी इच्छा नहीं रहती, तैसे आत्मज्ञानकरि जो संतुष्ट भया है, तिसकों विषयकी तृष्णा नहीं रहती, यह निश्चयकरि जाण, जब चित्त फुरता है, तब जगतभ्रम हो भासता है, अरु सत्य जाणीकरि भोगकी इच्छा होती है, जब बोध होता है, तब जगतभ्रम लीन हो जाता है, बहुरी तृष्णा किसकी करै, अरु जब इंद्रियके विषय आनि प्राप्त होवैं, अरु ह

ठकरि तिनकों न भोगै, तब उह मूर्ख है, मानौ शस्त्रकरि आकाशकों छेदता है ॥ हे रामजी! मन जो वश होता है, सो गुरुशास्त्रोंकी युक्तिकरि होता है, उनकी युक्तिविना शुद्धता नहीं प्राप्त होती, जब कोउ अपणे अंगहीकों काटै अरु तिसकरि चित्तकों स्थित किया चाहै, तौ भी चित्त स्थिर नहीं होता, अरु संसारभ्रम नहीं मिटता, जबलग चित्त कोटिविषे स्थित है, तबलग जगतभ्रमकों देखता है, जब गुरुशास्त्रोंकी युक्तिकों ग्रहण करिके चित्तका अभाव करता है, तब चित्त नष्ट होता है, चित्त अचल हो जाता है, जैसे बालककों अंधकारविषे पिशाच भासता है; अरु दीपक जगाये देखतें अंधकार निवृत्त हुए पिशाचभ्रम नष्ट हो जाता है, तब बालक निर्भय होता है, तैसे आत्मज्ञान युक्तिकरि अज्ञान निवृत्त होता है, असम्यक बुद्धि करिके जगतभ्रम हुआ है, सम्यक बोधकरि निवृत्त हो जाता है, बहुरि जाण्या नहीं जाता, जो अज्ञानका जगतभ्रम कहां गया, जैसे दीपकके निर्वाण हुए नहीं जानता जो प्रकाश कहां गया, तैसे अज्ञान नष्ट हुए नहीं जाणता जो जगत कहां गया, चित्तके फुरणेकरि बंध होता है, अरु अफुरण हुए मोक्ष होता है, परंतु आत्मातें भिन्न कछु नहीं, आत्मसत्ता ज्यौंकी त्यौं है, तिसविषे न बंध है, न मोक्ष है ॥ हे रामजी! जब इसकों मोक्षकी इच्छा होती है, तब भी इसकी पूर्णताका क्षय होता है, अरु निःसंवेदन हुए कल्याण होता है, जो अनाभास अजडरूप परमपद है, सो चैतन्योन्मुखत्वतें रहित है, हे रामजी! बंध मोक्ष आदिक भी कलनाविषे होते हैं, जब कलनातें रहित बोध होता है, तब बंध मोक्ष दोनों नहीं रहते, जबलग विचारकरि नहीं देख्या, तबलग बंध अरु मोक्ष भासता है, विचार कियेतें दोनोंका अभाव हो जाता है, जब अहं त्वं इदं आदिक भावनाका अभाव हुआ, तब कवन किसकों बंध कहै, अरु कवन किसकों मोक्ष कहै, सब कलना चित्तके फुरणेकरि होती है, जब चित्तका फुरणा नष्ट होता है, तब सब कलनाका अभाव हो जाता है, तब शांतिवान होता है, अन्यथा नहीं होता, तातें चित्तकों आत्मपदविषे लीन कर, जिसके आश्रय यह जगत उपजता है, अरु

लीन होता है, ऐसा जो ज्ञानरूप आत्मा है, तिसी अनुभवरूप प्रत्यक् आत्मप्रकाशविषे स्थित होउ ॥ इति श्रीयो॰ निर्वा॰ प्रत्यगात्मबोधवर्णनं नाम सप्तपंचाशत्तमः सर्गः ॥५७॥ ॥ वसिष्ठ उवाच ॥ हे रामजी! परमतत्त्व जो परमात्मपद है, सो हमकों सदा प्रत्यक्ष है, वस्तुरूप उही है, तिसतें इतर कछु नहीं, यह प्रत्यक् आत्मा है, सर्व सत्ताका दर्पण है, सर्व सत्ता इसीतें प्रगट होती है, जैसे बीजतें वृक्षकी सत्ता प्रगट होती है, तैसे आत्मातें जगतसत्ता प्रगट होती है ॥ हे रामजी! मन बुद्धि चित्त अहंकार जडात्मक हैं, उनतें रहित है, सो परमपद है, ब्रह्मा विष्णु रुद्रादिक सब तिसविषे स्थित हैं, तिस सत्ताकों पायकरि बडी उंची प्रभुताकरि शोभते हैं, जैसे चक्रवर्ती राजा निर्धनतें उंचा शोभता है, तैसे यह सर्व लोकतें उंचे शोभते हैं, तिस आत्माकों जो प्राप्त होता है, सो मृत्युकों नहीं प्राप्त होता, अरु शोकवान कदाचित् नहीं होता, अरु क्षीण नहीं होता, एक क्षणमात्र भी जो अप्रमादी होकरि आत्माकों ज्योंका त्यों जाणता है, सो संसारकलनाकों त्यागिकरि मुक्त होता है ॥ राम उवाच ॥ हे भगवन्! मन बुद्धि चित्त अहंकारके अभाव हुए सत्तासामान्य शेष रहती है, सो तिसका भान कैसे होवे ? ॥ वसिष्ठ उवाच ॥ हे रामजी! जो सर्व देहोंविषे स्थित होकरि भोजन करता है, जलपान करता है, देखता सुणता बोलता इत्यादिक क्रिया करता दृष्टि आता है, सो आदि अंततें रहित संवितसत्ता है, सर्वगत अपणे आपविषे स्थित है, अरु सर्व विश्व उहीरूप है; आकाशविषे आकाशरूप उही है, शब्दविषे शब्दरूप उहीहै, स्पर्शविषे स्पर्श, नासिकाविषे गंधरूप उही है, शून्यविषे शून्य, रूपविषे रूप, नेत्रोंविषे नेत्रों उही है, पृथ्वीविषे पृथ्वी, जलविषे जल, तेजविषे तेज, वृक्षविषे रस उही है, मनविषे मन, बुद्धिविषे बुद्धि, अहंकारविषे अहंकाररूप उही है, अग्निविषे अग्नि, उष्णताविषे उष्णता, घटविषे घट, पटविषे पटरूप उही है, बटविषे बट, स्थावरविषे स्थावर, जंगमविषे जंगमरूप, चेतनाविषे चेतन, जडविषे जडरूप उही है, कालविषे काल, नाशविषे नाश, उत्पन्न

होकरि स्थित होता है, बालकविषे बालक, यौवनविषे यौवन, वृद्धविषे वृद्ध, मृत्युविषे मृत्यु होकरि उही परमेश्वर स्थित है ॥ हे रामजी ! इस प्रकार सर्व पदार्थविषे अभिन्नरूप स्थित है; नानात्वदृष्टि भी आती है, परंतु अनाना है, भ्रम करिके नानात्व भासती है, जैसे परछायेविषे भ्रम करिके वैताल भासता है, तैसे आत्माविषे नानात्व भासता है, सर्वविषे सर्व ठौर सर्व प्रकार सर्व आत्माही स्थित है, ऐसा जो आत्मदेव सत्तासमान है, तिसविषे स्थित होउ ॥ वाल्मीक उवाच ॥ इस प्रकार जब वसिष्ठजीनें कहा, तब दिन अस्त हुआ, सर्व सभा परस्पर नमस्कार करिके स्नानकों गये, बहुरि दिनकों अपणे अपणे आसनपर आनि बैठे ॥ इति श्रीयोगवासिष्ठे निर्वाणप्रकरणे विभूतियोगोपदेशो नाम अष्टपंचाशत्तमः सर्गः ॥ ५८ ॥ ॥ ॥

॥ राम उवाच ॥ हे भगवन् ! जैसे हमारे स्वप्नविषे पुर नगर मंडल होते हैं,तैसे ब्रह्मादिकनें देवकों ग्रहण किया है, उनकों असत्में प्रतीति है, हमकों दृढ प्रतीति कैसे उपजी है ? ॥ वसिष्ठ उवाच ॥ हे रामजी ! प्रथम ब्रह्माकों सर्ग असतवत् भासता है, वास्तव नहीं भासता, सर्वगत चेतनसंवितकों संसारके दर्शनकरि जब सम्यक् दर्शनका अभाव भया, स्वप्नरूपविषे आपतें अहंप्रतीति उपजी, तब दृढ होकरि देखणे लगा, जैसे अपणे स्वप्नविषे जगत दृढ भासता है, स्वप्न नहीं जाणता, तैसे ब्रह्माका जगत भी दृढ भासता है, स्वप्न नहीं भासता; जो स्वप्नपुरुषतें उपजा है सो स्वप्नरूप है ॥ हे रामजी ! ऐसा जो सर्ग है सो जीव जीव प्रति उदय हुआ है, जैसे समुद्रविषे तरंग फुरते हैं, तैसे चेतनतत्त्वका आभास जगत फुरते हैं, जैसे स्वप्नपुरविषे अवास्तव पदार्थ होते हैं, तैसे यह पदार्थ भी अवास्तव हैं, भ्रममात्रही मनके संकल्पकारि भासते हैं ॥ हे रामजी ! ऐसा पदार्थ कोउ नहीं जो इस जगतविषे सिद्ध नहीं होता, अरु अवरका अवर नहीं भासता, अरु मर्यादाकों नहीं त्यागता, काहेतें जो मनके संकल्प मात्र उपजे हैं, तूं देख, जलविषे अग्नि स्थित है, जैसे समुद्रविषे वडवाग्नि है, सो विपर्यय है क्यौं ! इसी कारणतें मैं कहता हौं, जो मनोमात्र हैं, अरु देख जो आ

काशविषे नगर वसते हैं, विमान प्रत्यक्ष चलते हैं, अरु शिला जो हैं, चिंतामणि आदिक, तिनतें कमल उपजते हैं, जैसे हिमालय पर्वतविषे बरफ उपजती है, अरु सर्व ऋतुके फूल एकही समय उपजते हैं, जैसे संकल्पवृक्षतें पथ्थर निकसी आते हैं, रत्नोंके गुछे जो लगते हैं, शिलाविषे जल निकसता है, तैसे चंद्रकांतसों अमृत द्रवता है, एक निमेषविषे घट पट हो जाते हैं, अरु घट पट हो जाते हैं, स्वरूपके विस्मरण हुए सतकों असत देखता है, जैसे स्वप्नविषे अपणा मरणा देखता है, जल ऊर्ध्वकों चलता देखता है, मेघ होकरि स्वर्गका चंदोआ होकरि गंगा वहती है, पथ्थर उडते हैं, जैसे पंखहूंसहित पहाड उडते थे, चिंतामणि शिलारूपतें सब पदार्थ उपजते हैं, इत्यादिक भ्रमकरि नानात्व विपर्ययरूप हुए फुरते हैं, तातें तूं देख, जो मनोमात्र हैं, अवरका अवर हो जाते हैं ॥ हे रामजी ! यह इंद्रजाल गंधर्व नगर सांबरमायावत है, असत ही भ्रम करिके सत हो भासते हैं, ऐसा पदार्थ कोउ नहीं जो सत नहीं अरु असत भी नहीं, मनविषे फुरते हैं ॥ ॥ इति श्रीयोगवासिष्ठे निर्वाणप्रकरणे जाग्रतस्वप्नविचारो नाम एकोनषष्टितमः सर्गः ॥ ५९ ॥ ॥

॥ वसिष्ठ उवाच ॥ हे रामजी ! यह संसार मिथ्या है, जो पुरुष इसकों सत्य जाणता है, सो महामूर्ख है, अरु भ्रमविषे भ्रमकों देखता है, अरु महामोहकों प्राप्त होता है, जैसे कोउ मृग टोएविषे गिर पडता है, तब महादुःखी होता है, बहुरि उसतें भी बडे टोएविषे गिरता है, तब अति दुःखकों प्राप्त होता है, तैसे जो मूर्ख पुरुष है, सो आत्माके अज्ञान करिके संसाररूपी टोएविषे गिरता है, तिसविषे अवर अवर भ्रमकों देखता है, स्वप्नतें स्वप्नांतरकों देखता है, इसीतें एक इतिहास कहता हौं ॥ हे रामजी ! तूं श्रवण करु, एक संन्यासी था, सो मननशीलवान था, योगका अष्टवा अंग समाधि है, तिसविषे स्थित था, अरु हृदय उसका समाधि करते करते शुद्ध हुआ था, समाधिकरि दिनकों व्यतीत करै, जब समाधितें उतरै, तब आसन बनायकरि बहुरि समाधिविषे जुडै, इसी प्रकार जब बहुत काल व्यतीत भया, तब एक समय

समाधितें उतरे हुए, यह चिंतना करणे लगा, जो जैसे प्रकृत पुरुष विचरतें हैं, अरु चेष्टा करते हैं, तैसे मैं भी कछु चेष्टा रचौं, ऐसे विचार करिके मनके संकल्पतें विश्व कल्पी तिसविषे एक आप भी बण्या, तिस का नाम झीवट भया, मद्यपान करै, अरु ब्राह्मणकी सेवा भी करै, तिस झीवट शरीरविषे वर्तणे लगा, चेष्टा करते हुए सोय गया, तब स्वप्न पाया, स्वप्नविषे ब्राह्मणका शरीर तिसकों भान हुआ, जो मैं ब्राह्मण हौं, तब ब्राह्मणके शरीरविषे वेदका अध्ययन करणे लगा, तब पाठ बहुत करै, ऐसी चेष्टाकरि चिरकाल व्यतीत भया, तब सोए हुए स्वप्न पाया, तहां आपकों राजा देखत भया, जो मैं राजा हौं, बडी सैनासंयुक्त राजा होकरि विचरणे लगा, केताक काल इसी प्रकार व्यतीत भया, तब सोए हुए बहुरि स्वप्न पाया, तिस स्वप्नविषे आपकों चक्रवर्ती राजा देखत भया, जो मैं चक्रवर्ती राजा हौं, तब चक्रवर्ती होकरि सारी पृथ्वीपर आज्ञा चलावणे लगा, जब केताक काल व्यतीत भया, तब स्वप्न पाया, स्वप्नविषे आपकों देवांगना देखत भया, जो मैं देवताकी स्त्री हौं, तब देवताकी स्त्री होकरि देवताके साथ बागविषे विचरै, जैसे वल्ली वृक्षके साथ शोभा पावती है, तैसे देवताके साथ शोभा पावणे लगा, इसी प्रकार कोइ काल देवताके साथ व्यतीत भया, तब बहुरि स्वप्न पाया, तिस स्वप्नविषे आपकों हरिणी देखत भया, जो मैं हरिणी हौं, हरिणी होकरि वनविषे विचरणे लगा, कोइ काल ऐसे व्यतीत भया, बहुरि स्वप्न पाया, तब आपकों वल्ली देखत भया, जो वल्ली हौं, देवताके वनकी, जब ऐसे कोइ काल व्यतीत भया, तब स्वप्न पाया, स्वप्नविषे आपकों भंवरी देखत भया, जो मैं भंवरी हौं, भंवरी होकरि सुगंधिकों ग्रहण करने लगा, तिसके अनंतर बहुरि स्वप्न पाया, तब देखत भया, जो मैं कमलिनी हौं, कमलिनी हुई, तहां एक दिन हस्ती आएकरि वल्लीकों खाए गया, जैसे कोउ मूर्ख बालक भली वस्तुकों भी तोडी डारता है, तैसे मूर्ख हस्ती वल्लीकों तोडीकरि खाय गया, तिसके उप्रांत तिस वल्लीमैं हस्तीका शरीर पाय बडा दुःख भी पाया, टोएविषे गिर्या, के

ताक काल व्यतीत भया, तब हस्तीकों स्वप्न आया, बहुरि भंवरी होकरि कमलविषे विचरणे लगा, केताक काल व्यतीत भया, तब बहुरि वल्ली हुआ, उस वल्लीके निकट एक हस्ती आया, हस्तिके पादकरि उह वल्ली चूर्ण भई, तब उस वल्लीकों एक हंसनें खाया, उह वल्ली हंस भई, हंस होकरि बडे मानससरोवरविषे विचरणे लगा, बहुरि हंसके मनविषे आया, जो ब्रह्माका हंस होउं, तब संकल्प करिके ब्रह्माका हंस बनि गया, जैसे जलका तरंग बनि जावै, तैसे उह हंस ब्रह्माके बनि गया, तब ब्रह्माके उपदेशकरि हंसकों आत्मज्ञान प्राप्त भया ॥ हे रामजी! अज्ञान करिके ऐसे भ्रमकों प्राप्त भया, सो ज्ञान करिके शांत भया, बहुरि विदेहमुक्त होवैगा, उह हंस सुमेरु पर्वतविषे उड्या जाता था, बहुरि उसके मनविषे आया जो मैं रुद्र होउं, तब सतसंकल्प करिके रुद्र होगया, जैसे शुद्ध दर्पणविषे प्रतिबिंब शीघ्रही पडता है, तैसे शुद्ध अंतःकरणके संकल्पकरि रुद्र भया, रुद्र कहियें, जिसकों अनुत्तर ज्ञान है, अनुत्तर ज्ञान कहियें जिसके जाणेतें अवर जानणा कछु न रहै, सर्वतें श्रेष्ठ ज्ञान सो रुद्रकों अनुत्तर ज्ञान है, तिस अनुत्तर ज्ञानकरि शोभित रुद्र होकरि अपणी चेष्टा करत भया, अरु अपणे गुणकों देखत भया, रुद्रके मनविषे विचार हुआ जो बडा आश्चर्य है, मैं अज्ञान करिके एते बडे भ्रमकों प्राप्त हुआ था, ऐसी आश्चर्य माया, मैं तो एक रूख पडा हौं, अरु यह विश्व मेरा स्वरूप है, अपणे जो मेरे शरीर हैं, तिनकों जायकरि जगावौं, तब रुद्र उठी खडा हुआ, अपणे स्थानोंकों चला, प्रथम जो संन्यासीका शरीर था, तिसकों आयकरि देखा, देखिकरि तिसकों चित्तशक्तिसों जगाया, तब संन्यासीके शरीरविषे ज्ञान हुआ,जो सर्व मैंही खडा हौं परंतु संन्यासीनें जाण्या जो मेरे तांई रुद्रनें जगाया है, तब जानत भया जो इतनें शरीर मेरे अउर भी हैं, तब उहातें रुद्र अरु संन्यासी दोनों चले, झीवटके स्थानमें आये, देख्या जो झीवट सबकी नांई पडा है, अरु मदिराके वासन पडे हैं, अरु चेतना उहांही पडी भ्रमती है, नानाप्रकारके स्थानोंकों देखती है, जैसे झरणेके छिद्रविषे कीडी भ्रमती है, तब झीवटकों

चित्तशक्तिकरि जगाया,उह उठी खडा हुआ,तिसकौं ऐसे स्मरण हुआ जो मेरे तौ इनहुने जगाया, तब झीवटके मनविषे विचार हुआ जो इनतें शरीर मेरे और हैं, तब रुद्र संन्यासी अरु झीवट तीनों चले,बहुरि इननें विचार किया जो हम एते शरीर क्यौंकरि पाये, जो आदि एक परमात्माविषे चैत्योन्मुखत्व करिके मैं संन्यासी भया, बहुरि संन्यासीतें झीवट हुआ; मद्यपान करणे लगा, बहुरि ब्राह्मण हुआ, तहां वेदका पाठ करणे लगा, तिस वेदके पाठ करणेके पुण्यकरि राजाका शरीर धार्या, तिसके आगे जो बडा पुण्य प्राप्त भया, चक्रवर्ती राजा हुआ, जब चक्रवर्ती राजाके शरीरविषे काम बहुत हुआ, तिसके होणेकरि देवताकी स्त्री भया, तब स्त्री शरीरमें बहुत प्रीति नेत्रोंविषे थी, तिसतें हरिणी भया, बहुरि भंवरी भया, तिसतें आगे वल्ली भया, इसतें लेकरि जो शरीर धारे सो मैंनें मिथ्या धारे हैं, अरु अज्ञान करिके मैं बहुत काल भटकता रहा हौं, अनेक वर्ष अरु सहस्रही युग व्यतीत हो गये हैं, संन्यासीतें आदि रुद्रपर्यंत वासना करिके जन्म पाये हैं, एते जन्म पायकरि भी ब्रह्माका हंस जाय हुआ, तहां ज्ञानकी प्राप्ति भई, काहेतें जो पूर्व अभ्यास किया था, तिसकरि अकस्माततें सत्संग आनि प्राप्त भया, ऐसे विचार करते उहांतें चले, तब चेतन आकाशविषे उडे, ब्राह्मण वेदपाठ करनेवालेकी सृष्टिविषे गये, तब उसकों देखा जो सोया पडा है, चित्तशक्ति करिके उसकों जगाया, तब रुद्र संन्यासी झीवट मद्यपान करणेवाला, अरु ब्राह्मण चारौं, उहांतें चले, चित्ताकाशविषे उडे राजाकी सृष्टिविषे गये, तब देखत भये, जो राजाकी सृष्टि चेष्टा करती है, अरु राजा अपणे मंदिरविषे शय्यापर सोया है, अरु राणी भी साथ सोई है, सो राजाका देह स्वर्णकी नांई शोभायमान है, तैसाही राणीका देह है, दोनों सोए पडे हैं, तिसपर सहेलियां चमर करतियां हैं, तब राजा कों चित्तशक्तिकरि जगाया, तब राजा देखत भया जो सर्व विश्व मेराही स्वरूप है, अरु देखत भया जो एते शरीर मैंनें अज्ञान करिके धारे हैं, आश्चर्य माया है, राजा स्वरूपविषे जाग्या, तब रुद्र संन्यासी झी

वट मद्यपान करनेवाला ब्राह्मण अरु राजा उहांतें चले, अरु हस्तीतें आदि लेकरि जो शरीर धारे थे, सो सब जगाये, वह शरीर धारे थे, सो सब जगाये, तिनविषे यही निश्चय भया, जो हम चिन्मात्ररूप हैं, अरु आवरणतें रहित हैं, आवरण कहिये अज्ञानका फुरना तिसतें रहित हैं ॥ हे रामजी ! तव उनके शरीर देखणेविषे सब दृष्ट आवही, परंतु चेष्टा सबकी एक जैसी अरु निश्चय भी एक जैसा, उनका नाम सत रुद्र भया, उह सत रुद्र हुए ॥ तातें हे रामजी ! विश्व संपूर्ण अज्ञानरूप फुरणे करिके होता है, अरु ज्ञानकरिके देखिये, तब कछु हुआ नहीं, ऐसेही उनकी संवेदन अरु निश्चय एक जैसा हुआ, एक देखैं तौ सर्वही मेरा रूप है, जब दूसरा देखैं तब मेराही रूप है, इसी प्रकार सर्वही देखत भये, जो सब अपणाही स्वरूप है, तिसविषे यह दृष्टांत है, जैसे समुद्रतें तरंग होते हैं, आकार उनका भिन्न भिन्न होते हैं, अरु स्वरूप उनका एक जैसा होता है, तैसे ज्ञानवान सर्व विश्वकों अपणाही स्वरूप देखते हैं, अरु अज्ञानी उनकों भिन्न भिन्न जाणते हैं, अरु आपकों भिन्न जाणते हैं, एककों दूसरा नहीं जाणता, दूसरेकों प्रथम नहीं जाणता, सो क्या नहीं जाणते, जो अपणा स्वरूप है, तिसकों नहीं जाणते, जैसे पत्थरके वटे दो पडे होवैं, तव न आपको जानते हैं, न दूसरेकों जानते हैं, जो मेरा स्वरूप है, तैसे अज्ञानी न आपकों जानते हैं, न अवरकों अपणा स्वरूप जाणते हैं ॥ हे रामजी ! यह विश्व अपणाही स्वरूप है, अरु अज्ञान करिके भिन्न भासता है, अज्ञान कहियें जो चिन्मात्रविषे फुरणां, तिस फुरणेविषे संसार है, अरु अफुरणेविषे आत्मही स्वरूप है, तातें हे रामजी ! फुरणेका त्याग करु, अवर कछु नहीं, जिस प्रकार शत्रु मरै तिस प्रकार मारिये, यही यत्न करहु, अरु मैं तेरे तांई ऐसा उपाय कहता हौं, जिसविषे यत्न भी कछु नहीं, अरु शत्रु भी मार्या जावै सो उपाय यही है, जो चिंतवना कछु न करिये, इसविषे यत्न कछु नहीं, सुगम उपाय है ॥ हे रामजी ! यह चिंतवनाही दुःख है, अरु चिंतवनातें रहित होणाही सुख है, आगे जो तेरी इच्छा होवै सो करु, इस चित्तके फुरणेकरि सं

सार है, अरु निवृत्त होणेतें स्वरूपही है, जैसे पत्थरविषे पुतलियां पुरुष कल्पता है, तब पत्थरतें भिन्न पुतलीयांका अभाव है, तैसे चित्तनें विश्वकल्पी है, जब चित्त निवृत्त होवै, तब विश्व अपणां स्वरूप है, अवर भिन्न कछु नहीं, अरु चित्तसाथ जहां जावै, तहां तहां पंचभूतही दृष्टि आवते हैं, आत्मा दृष्टि नहीं आवता, अरु चित्ततें रहित ज्ञानी जहां जावै तहां आत्माही दृष्टि आवते हैं, जब चित्तकी वृत्ति बहिर्मुख होती है, तब संसार होता है, पंचभूतही दृष्ट आवते हैं, अरु जब चित्तकी वृत्ति अंतर्मुख होती है, तब ज्ञानरूप अपणा आपही भासता है, जेते कछु पदार्थ हैं, सो ज्ञानरूप आत्माविना सिद्ध नहीं होते, प्रथम आपकों जाणता है, तब पाछे अवर पदार्थ जाणते हैं, इसीतें ज्ञानवान सर्व अपणा आप जाणता है ॥ हे रामजी ! यह जेते कछु पदार्थ हैं, सो फुरणेकरि कल्पते हैं, अरु जेते जीव हैं, तिनकी संवेदन भिन्न भिन्न है, अरु संवेदनविषे अपणी अपणी सृष्टि है, जैसे कोउ पुरुष सोता है, तिसकों अपणे स्वप्नकी सृष्टि भासती है अरु अवर तिसके पास बैठा होता है, उसकों नहीं भासती, उसकी विश्व स्वप्नकों नहीं जाणती, अरु जो ज्ञानी है, तिसकों अपणा आपही भासता है, यह जगत सब अपणा रूप जानता है, अरु ज्ञानी जिसी उर देखता है, तिसी उर तिसकों पांचभौतिक दृष्टि आवते हैं,जैसे पृथ्वीके खोदे हुए आकाशही दृष्ट आता है, तैसे ज्ञानी चित्तसहित जहां देखता है, तहां पंचभूतही दृष्ट आते हैं, तातें हे रामजी ! तूं फुरणेतें रहित होहु, फुरणेही करिक बंध है, अफुरणे करिके मोक्ष है, आगे जैसे तेरी इच्छा है, तैसे कर ॥ हे रामजी ! जो अफुरणे करिके अस्त हो जावै, तिसके नामविषे कृपणता करणी क्या है, अरु जो अफुरणे करिके प्राप्त होवै, तिसकों प्राप्तरूप जाण ॥ ॥ राम उवाच ॥ हे मुनीश्वर ! यह झीवट ब्राह्मणतें आदि लेकरि संन्यासीके रूप स्वप्नविषे हुए, तिसतें उप्रांत बहुरि क्या हुआ ? ॥ वसिष्ठ उवाच ॥ हे रामजी ! ब्राह्मणतें आदि जेते शरीर थे, सो रुद्रकरि जगाये हुये सुखी भये जब सबही एकठे भये, तब रुद्रनें तिनकों क

हा ॥ हे साधो ! तुम अपणे अपणे स्थानकों जाहु, अरु कोउ काल अपणे कलत्रविषे भोग भोगहु, वहुरि तुम मेरे गण होकरि मुझकों प्राप्त होहुगे, महाकल्पविषे हम सबही विदेहमुक्त होवैंगे ॥ हे रामजी ! जब ऐसे रुद्रनें कहा, तब सब अपणे अपणे स्थानोंकों गये, अरु रुद्रजी भी अंतर्धान हो गये, सो अब भी तारेका आकार धारे हुए कबी कबी मुझकों आकाशविषे दृष्ट आते हैं ॥ ॥ राम उवाच ॥ हे भगवन् ! तुमनें कहा संन्यासीनें झीवटतें आदि सब शरीर धारे सो सत कैसे हुए, अरु तिनकी सृष्टि कैसे सत हुई सो कहो ॥ ॥ वसिष्ठ उवाच ॥ हे रामजी ! आत्मा सबका अपणा आप है, शुद्ध है, अरु चेतन आकाश है, अरु अनुभवरूप है, तिस अपणे आपविषे जैसे देशकाल वस्तुका निश्चय होता है, तैसेही आगे बनि जाता है, जैसे जैसे फुरता है, तैसेही आगे हो जाता है, जिसका मन शुद्ध होता है, तिसका सतसंकल्प होता है, जैसा संकल्प करता है, तैसाही होता है, अरु जब तूं कहै, संन्यासीका अंतःकरण शुद्ध था, तिसनें नीच उंच जन्म कैसे पाये, नीच कहिये मद्यपान करणेवाला, अरु भंवरी वल्लीतें आदि लेकरि, अरु उंच कहिये ब्राह्मण राजातें आदि लेकरि शुद्ध अंतःकरणविषे ऐसे जन्म न चाह्या तिसका उत्तर यह है, जो संवेदनविषे जैसा फुरणा होता है, तैसाही हो भासता है, जैसे एक पुरुषका अंतःकरण शुद्ध होवै, तिसकों मनविषे फुरे, जो एक शरीर मेरा विद्याधर होवै, अरु एक शरीर मेरा भेडका होवै, तिसके हो जाते हैं, दोनों भला भी अरु बुरा भी अरु जब तूं कहै बुरा क्यों वण्या, भला भी बनता, तिसका उत्तर सुण, जैसे भले पंडितके घर पुत्र होवै, अरु संस्कार करिके चोर हो जावै, संस्कार क्या जो वासना मलिन होवै, तब तिसकों दुःख होता है ॥ तातें हे रामजी ! सर्व फुरणेहीकरि उंच नीच होते हैं, जब अभ्यास अरु परम योग होता है, तब शुद्ध होता है, अभ्यास कहियें मंत्रजाप, अरु योग कहियें चित्तका स्थित करणां, इस करिके जैसी जैसी चिंतना होती है तैसीही सिद्धि होती है, अरु अज्ञानीकी नहीं होती, जैसे वस्तु निकट पडी है, भावना नहीं तब दूर

है, तैसे अज्ञानीकी भावना नहीं, तब न दूरवाली प्राप्त होती है, न निकटवाली प्राप्त होती है, क्यों नहीं सिद्ध होती, जो उसकी भावना दृढ नहीं, अरु हृदय शुद्ध नहीं, संकल्प भी तब सिद्ध होता है, जब हृदय शुद्ध होता है, शुद्ध हृदयवाला जिसकी चिंतवना करता है, दूर है, सो भी सिद्ध होता है अरु जो निकट है सो ही सिद्ध होता है, अरु जब तूं कहै संन्यासी तौ एक था, बहुत शरीर कैसे चेतन हुए, तिसका उत्तर सुण, जो कोई योगीश्वर है, अरु जोगणी देवीयां हैं, तिनका संकल्प सत्य है, जैसा संकल्प फुरता है, तैसा ही होता है, ऐसे सतसंकल्पवाले अनेक मैं आगे देखे हैं, एक सहस्रबाहु अर्जुन राजा था, सो घरविषे बैठा हुआ शिरपर छत्र पडा झूलता है, अरु चमर पडा होता है, तिसके मनविषे संकल्प हुआ, जो मैं मेघ होकरि बरसौं, तिस संकल्प करणेकरि एक शरीर तौ राजाका रहा अरु एक शरीर मेघ होकरि बरसणे लगा, अरु विष्णु भगवान् एक शरीर करिके क्षीरसमुद्रविषे शयन करता है, अरु प्रजाकी रक्षानिमित्त अवर शरीर भी धारि लेता है, अरु यज्ञ देवियां अपणे स्थानोंविषे होतियां हैं, बडे ऐश्वर्यकरि देशोंविषे भी विचरतियां हैं, अरु इंद्र भी एक शरीरकरि स्वर्गविषे रहता है, अरु अवर शरीर करिके जगतविषे भी बैठा रहता है, इत्यादिक जो योगीश्वर हैं, तिनका जैसा संकल्प होता है, तैसीही सिद्धि होती है, अरु जो अज्ञानी मूर्ख हैं, तिनका मन बडे भ्रमकों प्राप्त होता है, अरु बडे मोहकों प्राप्त होता है, मोहतें आगे मोहकरि नीच गतिकों प्राप्त होते हैं, जैसे बडे पर्वतके ऊपरतें वटा गिरता है, सो नीचे स्थानकों प्राप्त होता है, तैसे मूर्ख आत्मपदतें गिरने करिके संसाररूपी टोयेविषे पडते हैं, अरु बडे दुःखकों प्राप्त होते हैं ॥ ॥ राम उवाच ॥ हे भगवन्! तुम कहा जो संसार स्वप्नमात्र है, सो मैं जाण्या है, जो अनंत मोहरूपी विषमता है, अरु आत्मचेतनरूप आनंदके प्रमाद करिके आपकों जड दुःखी जाणता है, बडा आश्चर्य है, अरु हे भगवन्! यह जो तुम संन्यासी कहा, तिस जैसा कोउ अवर भी है, अथवा नहीं सो कहो ॥ वसिष्ठ उवाच ॥

हे रामजी! संसाररूपी मढी है, तिसविषे मैं रात्रिके समय समाधि करिके देखौंगा, अरु दिनकों तेरे तांई जैसे होवैगा तैसे कहौंगा ॥ वाल्मीक उवाच ॥ हे राजा! ऐसे जब वसिष्ठजीनें कहा, तब मध्यान्हका समय हुआ, अरु नौबत नगारे बाजणे लगे, बडा शब्द हुआ, जैसे प्रलयकालका मेघ गर्जता है, तैसे शब्द होणे लगा, तब वसिष्ठजीके चरणोंपर राजा, अरु देवतानें फूल चडाये, सबनें बडी पूजा करी, जैसे बडा पवन चलता है, अरु वेगकरिके बाग वृक्षोंके फूल पृथ्वीपर गिर पडते हैं, तैसे बहुत फूलोंकी वर्षाकरि जब बहुत पूजा हो रही, तब वसिष्ठजीकों नमस्कार करिके उठी खडे हुए, बहुरि आपविषे नमस्कारकरि बहुरि राजा दशरथतें आदिलेकरि राजा अरु ऋषि सब उठे, जैसे मंदराचल पर्वततें सूर्य उदय होता है, तैसे वसिष्ठजीतें आदि लेकरि ऋषि अरु राजा दशरथतें आदि सब उठे, तब पृथ्वीके राजा अरु प्रजा पृथ्वीकों चले, आकाशके सिद्ध अरु देवता जो थे सो आकाशकों चले, सब अपणे अपणे कर्मविषे जाय लगे, जैसे शास्त्र उक्त व्यवहार है, तिसविषे स्थित भये, अरु जब रात्र हुई; तब आपही आप विचार करत भये, जो वसिष्ठजीनें कैसे ज्ञान उपदेश किया, तिस विचारविषे रात्र एक क्षणकी नांई व्यतीत भई, अरु वसिष्ठजीके मिलणेकी वांछाविषे रात्र कल्पके समान बीती, तब सूर्यकी किरणां उदय होणेसों आनि स्थित भये,अरु राम, लक्ष्मणजीतें आदि लेकरि सब स्थित भये, अरु सबनें आपसविषे नमस्कार किये, अरु अपणे अपणे आसनपर बैठी गये, शांतरूप होकरि स्थित भये, जैसे पवनतें रहित कमल स्थित होते हैं, तैसेही फुरणेतें रहित शांतरूप स्थित भये, तब वसिष्ठजी अनुग्रह करिके आपही कहत भये ॥ हे रामजी! तेरी प्रीतिके निमित्त मैं संसाररूपी मढीका बहुत खोज किया, आकाश अरु पाताल सप्त द्वीप सब खोजे हैं, परंतु ऐसा संन्यासी कोउ दृष्ट न आया, जैसे अन्यका संकल्प नहीं भासता, जब पिछला प्रहर रात्रि रही, तब मैं बहुरि ढूंढिकरि उत्तर दिशाविषे चिन्माचीन नगरमें एक स्थान है, तहां ए

क मढी देखी, तिसके दरवाजे चडे हुए देखे, तिसविषे पके केसवाला संन्यासी बैठा है, अरु बाहिर उसके चेले बैठे हैं, उह दरवाजे खोलते नहीं, जो मत हमारे गुरुकी समाधि खुली जावै,तिस स्थानविषे बैठा है, मानों दूसरा ब्रह्मा बैठा है, अरु जिस देशविषे बैठा है, तिसके बैठे दिन एकीस भए हैं, समाधिविषे स्थित हुए, अरु उसकों समाधिविषे सहस्र वर्षका अनुभव भया है, अरु बहुत जन्म भी पाये हैं, कैसे जन्म जो प्रत्यक्ष देखत भया, अरु सृष्टि भी प्रत्यक्ष देखी, तिसविषे विचरा ॥ हे रामजी ! इस जैसा एक अवर भी पूर्व कल्पविषे था, यह ती नहीं थे, सो एककों बहुत देखी रहा हों, कोउ दृष्ट नहीं आता, तब राजा दशरथनें कहा; हे महामुनि ! जब तुम आज्ञा करौ, तब मैं अपणा अनुचर चिन्माचीन नगर उतरवाले भेजों, तहां जायकरि तिस संन्यासीकों जगावों, तब वसिष्ठजीनें कहा, हे राजन् ! उह संन्यासी अब ब्रह्माका हंस होकरि ब्रह्माके उपदेशसों जीवन्मुक्त हुआ है, अरु जो शरीर उसका है सो अब मृतक हुआ है, इसविषे अब पुर्यष्टका जो है जीव, सो नहीं, तिसकों क्या जगावणा है, अरु एक महिने पीछे उसका दरवाजा शिष्य खोलैगे, तब लोक उस नगरके देखैंगे, जो मृतक पडा है, तातें हे रामजी ! यह विश्व संकल्पमात्रही है, अरु जब तूं कहै, एक जैसे क्योंकरि हुए तब सुण, जैसे यह मुनीश्वर ऋषि राजा अरु अवर जो संसारविषे लोक हैं सो केई वार एक जैसा शरीर धारते हैं, अरु केई मध्य धारते हैं, केई कछु थोडा धारते हैं, अरु केई विलक्षण धारते हैं, सो श्रवण कर, यह जो नारद है, सो इस जैसा अवर भी नारद होवैगा, तिसकी चेष्टा भी ऐसी होवैगी, अरु शरीर भी ऐसा होवैगा, अरु व्यासजी, अरु शुकदेव, भृगु, अरु भृगुका पिता, अरु जनक, अरु करकरी, अरु अत्रिऋषीश्वर जैसा अब है, अरु अत्रीकी स्त्री भी जैसी अब षंढ है, ऐसाही अत्रि अरु ऐसीही स्त्री होवैगी, इनतें आदि लेकरि बहुरि होवैंगे, जैसे समुद्रविषे तरंग एक जैसे भी होते हैं, अरु वध घट भी होते हैं ॥ हे रामजी ! तैसे यह संसार ब्रह्मातें आदि लेकरि पातालपर्यंत सब मनका रचा

हुआ है, सो सब मिथ्या है, जब यह चित्तकला बहिर्मुख होती है, तब संसार देश काल होता है, जब अंतर्मुख होती है, तब आत्मपद प्राप्त होता है, अरु जबलग बहिर्मुख होती है, तबलग दुःखकों पावता है, अपणां स्वरूप आनंदरूप है, तिसविषे चित्तकला जाती है, जो मैं सदा दुःखी हौं, देह अरु इंद्रियां साथ मिलिकरि दुःखी होता है, तातें हे रामजी ! इस अज्ञानरूप फुरणेतें तूं रहित होउ, फुरणेकरि यह अवस्था प्राप्त होती है, जैसे चंद्रमा अमृत करिके पूर्ण है, तिसविषे चर्मदृष्टि करिके कलंकता भासती है, तैसे आत्मा अमृतरूपी चंद्रमाविषे अज्ञानदृष्टि करिके जन्म मरण शोकदुःख भय कलंक देखता है, महा आश्चर्य माया है, जैसे चंद्रमा एक है, नेत्रदोष करिके बहुत भासते हैं, तैसे एक अद्वैत आत्माविषे विश्व नानात्व अज्ञानकरि भान होता है, यही माया है ॥ हे रामजी ! तूं एकरूप आत्मा है, तिसविषे फुरणेतें विश्व कल्पी है, तातें फुरणेतें रहित होउ, फुरणेतें रहित हुए विना आत्माका दर्शन नहीं होता, जैसे सूर्य उदय हुआ भी बदलके होते शुद्ध नहीं भासता, तैसे फुरणरूपी बदलके दूर हुए आत्मारूपी सूर्य शुद्ध भासता है, अरु दृश्य दर्शन द्रष्टा फुरणेतें कल्पे हैं ॥ हे रामजी ! इस संसारका सार जो आत्मा है, तिसविषे सुषुप्तिकी नांई मौन होउ ॥ ॥ राम उवाच ॥ हे भगवन् ! तीन मौन मैं जाणता हौं, सो कवन हैं, एक वाणीमौन, चुपकरि रहणां; अरु एक इंद्रियकी मौन, अरु एक कष्टमौन कष्टमौन कहियें जो हठकरिके मनइंद्रियांकों वश करणां, यह तीनौं मौन मैं जाणता हौं, अरु सुषुप्तमौन तुम कहौ, जो क्या है ॥ ॥ वसिष्ठ उवाच ॥ हे रामजी ! तीन मौन कष्ट तपसीकी हैं, अरु सुषुप्तमौन ज्ञानी जीवन्मुक्तकी, अरु तीनौं मौन अज्ञानी तपसीकी बहुरि श्रवण कर, एक मौन वाणीकी जो बोलणां नहीं, अरु एक मौन समाधि जो नेत्रोंकों मुंदि लेणां, देखणां कछु नहीं, एक हठकरि स्थित होणां, इंद्रियां अरु मनकों स्थित करणां, अरु एक मौन इंद्रियांकी चेष्टातें रहित होणां, यह तीनौं मौन कष्ट तपसीकी हैं, अरु सुषुप्त मौन ज्ञानीकी सुण, सुषुप्त मौन कहियें जो वाणी क

रिके अरु इंद्रियां करिके चेष्टा भी होवै, अरु आत्मातें इतर अवर न भासै, यह उत्तम मौन है, अथवा ऐसे होवै, जो न मैं हौं, न जगत है, ऐसे निश्चयविषे स्थित होणां, यह महाउत्तम मौन है, अथवा ऐसे होवै, जो सर्व मैंही हौं, ऐसे निश्चयविषे स्थित होणां, यह बडी उत्तम मौन है ॥ हे रामजी! विधि करिके भी आत्माकी सिद्धि होती है, अरु निषेध करिके भी आत्माकी सिद्धि होती है, तिस आत्माविषे स्थित होणां यह बडी मौन है ॥ हे रामजी! यह जो मैं सुषुप्त मौन कही है, सो क्या है, तूं सुण, संसार द्वैतरूपके फुरणेतें सुषुप्त होणां, अरु आत्माविषे जागणां यही सुषुप्त मौन है, द्वैतके फुरणेतें रहित होणां, यही सुषुप्ति है, अरु आत्मविषे जागणां यही तेरे तांई कहा है, अरु ऐसे देखणां जो न मेरेविषे जाग्रत है, न स्वप्न है, न सुषुप्ति है, इस निश्चयविषे स्थित होणां, यह तुरीयातीत सो पंचम मौन है, ऐसा जो तुरीयातीत पद है, सो अनादि है, अनंत है, अरु जरातें रहित है, शुद्ध है, अरु निर्दोष है, इस निश्चयविषे स्थित होणां, यह उत्तम मौन है ॥ हे रामजी! ज्ञानी इंद्रियांके रोकणेकी इच्छा भी नहीं करता, अरु न विचरणेकी इच्छा करता है, जैसे स्वभाविक होती है, तिसीविषे स्थित होता है, यह परम मौन है, अरु ज्ञानीकों सुखकी इच्छा भी नहीं, दुःखका त्रास भी नहीं, हेयोपादेयतें रहित होणां यह परम मौन है ॥ हे रामजी! तुम रघुवंशकुलविषे चंद्रमा हौ, अपणे स्वभावविषे स्थित होणां परम मौन है ॥ हे रामजी! संसारभ्रम मनके फुरणे करिके होता है, सो मिथ्या है, वास्तव कछु नहीं, न शरीर सत्य है, न माया सत्य है ॥ हे रामजी! तेरा स्वरूप ओंकार है, ओंकारकों अंगीकार करिके स्थित होणां, यह परम उत्तम मौन है ॥ राम उवाच ॥ हे भगवन्! यह जो सब रुद्र तुम कहा, सो रुद्र थे, अथवा रुद्रगण थे ॥ वसिष्ठ उवाच ॥ हे रामजी! जिसकों रुद्र कहते हैं, तिसीकों गण कहते हैं, यह सबही रुद्र हैं ॥ ॥ राम उवाच ॥ हे भगवन्! यह जो तुम कहा, सब रुद्र हुए, सो यह तौ एकचित्त था, सब क्योंकरि हुआ, जैसे दीपकतें दीपक होता

है, इसी भांति हुए क्यौं ॥ ॥ वसिष्ठ उवाच ॥ हे रामजी! एक सावरण है, एक निरावरण है, जहां शुद्ध अंतःकरण है, सो निरावरण है, अरु जहां मलिन अंतःकरण है, सो सावरण है, शुद्ध अंतःकरणविषे जैसा निश्चय होता है, तैसा तत्काल आगे सिद्ध होता है, अरु मलिन अंतःकरणका फुरणां सिद्ध नहीं होता, तातें शुद्ध जो निरावरण रुद्र है, सो आत्मा है, अरु सर्वव्यापी है, जैसा उनका निश्चय होता है, सो सत्य है ॥ राम उवाच ॥ हे भगवन्! रुद्र सदाशिवकी चेष्टा तौ मलिन है, जो रुंढोंकी माला गलेविषे धारता है, अरु भभूत लगाई हुई है, अरु मसाणविषे विहरता है, अरु स्त्री डावे अंग रहती है, तिसकों तुम कैसे कहते हो जो शुद्ध अंतःकरण है ॥ ॥ वसिष्ठ उवाच ॥ हे रामजी! यह शुद्ध अशुद्ध अज्ञानीकों कहते हैं, जो शुद्धविषे वर्तै, अशुद्धविषे न वर्तै, अरु नागे हिंडता है, अरु जो ज्ञानी है, सो क्रियाकों अपणेविषे नहीं देखता, तिसकों शुद्ध अशुद्ध मलिनकरि राग दोष कछु नहीं होता, ऐसा जो सदाशिव है, तिसकों न ग्रहण करणां है, न त्याग करणां है, जो स्वभाविक चेष्टा होती है, सो होवै, सो कैसी होती है, श्रवण करु, आदि परमात्मविषे विष्णु भगवानका फुरणां हुआ, जो चार भुजा धारे, संसारकी रक्षा करणी, शुद्ध चेष्टा राखणी अरु अवतार धारण धर्मकी रक्षा करणी, अरु पापीकों मारणे यह आदि फुरणां हुआ है ॥ हे रामजी! यह क्रिया स्वाभाविकही जो आनि प्राप्त हुई है, इस क्रियाका इनकों रागदोष करिके हेयोपादेय कछु नहीं, अरु क्रियाका इनकों अभिमानही नहीं, जो हम कर्ते हैं, इसीतें क्रिया इनकों बंध नहीं करती, तातें इह संसार फुरणे मात्र है, जब तूं फुरणेतें रहित होवैगा, तब तेरे तांई त्रिपुटी न भासैगी, आत्मातें इतर कछु न भासैगा, तातें तूं अज्ञानरूप फुरणेतें रहित होहु, जब तुमकों आत्मपदका साक्षात्कार होवैगा, तब तूं जाणैगा, जो मेरेविषे फुर दृश्य अदृश्य कछु नहीं, अरु आत्मपद है, जिसविषे एक कहणा भी नहीं, तब द्वैत कहांतें होवै ॥ हे रामजी! दृश्य अदृश्य फुरणा अफुरणां, अरु विद्या अविद्या, यह सब जतावणेके निमित्त क

हते हैं, अरु आत्माविषे कहणां कछु नहीं, आत्मा एक है, जिसविषे द्वैतका अभाव है, जब चित्तपरिणाम ब हिर्मुख होते हैं, तब विश्वका भान होता है, अरु जब चित्त अंतर्मुख परिणाम पावता है तब अहंता ममताका नाश होता है, अरु चेतनमय शेष रहता है, अरु जब अतिशय अंतर्मुख परिणाम पावता है, तब चेतन कह णां भी नहीं रहता, अरु जब इसतें भी अतिशय परिणाम पावता है, तब है नहीं, कहणा भी नहीं रहता ॥ हे रामजी! ऐसा आत्मा तेरा अपणां आप स्वरूप है, अरु शांत पद है, जिसविषे वाणीकी गम नहीं, जो ऐसा कहियें अरु तैसा कहियें, ऐसा कहियें इंद्रियांका विषय है, अरु तैसा कहियें इंद्रियांतें पर है, जब तूं अ पणेविषे स्थित होवैगा, तब जाणैगा, जो मेरेविषे अहं फुरणां कछु नहीं, आत्मरूपी सूर्यके साक्षात्कार हु एतें दृश्यरूपी अंधकारका अभाव हो जावैगा, काहेतें जो आत्मा तेरा अपणा आप है, केवल शांतरूप है, अरु निर्मल है, जैसे गंभीर समुद्र वायुतें रहित होता है, तैसे आत्मारूपी समुद्र संकल्परूपी वायुतें र हित गंभीर शुद्ध होता है, अरु यह संसार चित्तका चमत्कार है, सो चित्त निरंश है, तिसविषे अंशांशीभा व नहीं, अद्वैत है ॥ हे रामजी! जब ऐसे बोधविषे स्थित होवैगा, तब इस विश्वकों भी आत्मरूप देखैगा, अरु बोधविना देखैगा, तब विश्वका भान होवैगा, तातें हे रामजी! बोधविषे स्थित होहु ॥ ॥ इति श्री योगवासिष्ठे निर्वाणप्रकरणे ब्रह्मैकताप्रतिपादनं नाम षष्टितमः सर्गः ॥ ६० ॥ ॥ ॥ वसिष्ठ उवाच ॥ हे रामजी ! सदाशिवका आदि फुरणां हुआ है, जो त्रिनेत्र अरु विश्वका संहार करणां अरु शिरकी माला धारणी, अरु ब्रह्माके चार मुख, अरु चारों वेद हाथविषे, अरु संसारकी उत्पत्ति करणी, ऐसे फुरणां हुआ है ॥ हे रामजी! ब्रह्मा विष्णु रुद्र यह तीनों एक रूप हैं, अरु चेष्टा इनकी स्वाभाविक यही बनी पडी है, न राग करिके अंगीकार किया है, न द्वेष करिके त्याग करते हैं, अरु यह संज्ञा भी लोकके देखणेमात्र हैं, अप णे ज्ञानविषे कछु नहीं करते, जो बोधविषेही जाग्रत है, बोधविषे जाग्रत क्या कहियें, अरु कैसे होता है, सो श्रव

ण करु, एक सांख्य मार्गकरि होता है, अरु एक योगमार्गकरि होता है, सांख्य कहियें तत्त्व अरु मिथ्याका विचारणां,तत्त्व कहियें मैं आत्मा हौं,सत हौं,अरु चेतन हौं, अरु मिथ्या सर्व दृश्य जड असत है, मेरेविषे अज्ञान करि कल्पित है, मैं आत्मा अद्वैत हौं, मेरेविषे अज्ञान अरु दृश्य दोनों नहीं, ऐसे निश्चयविषे स्थित होणां, सो सांख्य विचार है, अरु योग कहियें प्राणोंका स्थित करणां, जब प्राण स्थित होते हैं, तब मन भी स्थित हो जाता है, अरु जब मन स्थित हो जाता है, तब प्राण भी स्थित होते हैं, इनका परस्पर संबंध है ॥ ॥ राम उवाच ॥ हे भगवन्! जब प्राण स्थित हुए मुक्त होता है, तब मृतक पुरुषके प्राण नहीं रहते, निवृत्त हो जाते हैं, तब सब मुक्त हुए चहिये ॥ वसिष्ठ उवाच ॥ हे रामजी ! प्रथम तो वर्णाश्रम करु जो क्या है, यह जीव पुर्यष्टकाविषे स्थित होकरि जैसी वासना करता है, बहुरि शरीरकों त्यागिकरि आकाशविषे स्थित होता है, इसका नाम मरणां है, तिस वासनारूप प्राण करिके बहुरि इसकों संसारभान होता है, अरु जब प्राणकी वासना क्षय होती है, तब मुक्त होता है, ज्ञानीकी वासना क्षय हो जाती है, तातें जन्ममरणसों रहित होता है, जैसे भूना बीज बहुरि नहीं उगता, तैसे ज्ञानीकों वासनाके अभावतें जन्ममरण नहीं होता ॥ हे रामजी ! जन्ममरण दोनों मार्गकरि निवृत्त होता है, अरु दोनोंका फल कहा है ॥ हे रामजी ! ज्ञान करिके चित्त सत्य पदकों प्राप्त होता है, अरु योग करिके प्राणवायु स्थित होता है, तब वासना क्षय होजाती है, जब स्वरूपकी प्राप्ति होती है, तब संसारके पदार्थका अभाव हो जाता है, जैसे रसायणकरि तांबा सोना भया, तब तांबा भाव नहीं रहता, तैसे विश्वरूपी तांबेकी संज्ञा नहीं रहती, जैसे तांबाभाव जाता रहता है, तैसे ज्ञानकरि जब चित्त सत्यरूप हुआ फिरि संसारी नहीं होता, अरु आत्माविषे न बंध है, न मुक्त है, एक परमात्मा अद्वैत है, तब बंध कहां अरु मुक्त कहां, बंध अरु मुक्त चित्तके कल्पे हुए हैं, अरु चित्त शांत करणेकों जो उपाय है, सो कहा है, तिसकरि शांत होता है, इसीकों मुक्त कहते हैं, अवर बंध मुक्त कोउ नहीं,

चित्तके उदय होणेका नाम बंध है, चित्तका शांत होणां यही मुक्ति है ॥ हे रामजी ! जब मन अपणे व
श होता है, तब आत्मपद प्राप्त होता है, अथवा प्राण स्थित होते हैं, तब आत्मपद प्राप्त होता है, अ
रु यह संसार मृगतृष्णाके जलवत मिथ्या है, जब वासना निवृत्त होती है, तब आत्मपदविषे स्थिति हो
ती है, जैसे मेघ जलसंयुक्त होते हैं, तब गर्जत हैं, अरु वर्षा करते हैं, जब वर्षाकरि रहित हैं, तब शांत हो
जाते हैं, तैसे जब वासना क्षय होती है, तब शांत चित्त हो जाता है, जैसे शरत्कालविषे बदल अरु कुहीड
निवृत्त हो जाते हैं, अरु शुद्ध निर्मल आकाशही रहता है, तैसे वासनारूपी बदल अरु कुहीडके निवृत्त हु
एतें आत्मा शुद्ध केवल चेतनही भासता है, एक मुहूर्त भी चित्त विना स्थित होवै, तब तेरे तांई आत्मप
दकी प्राप्ति होवै, जबलग चित्तकी वासना क्षय नहीं होती, तबलग बडे भ्रमकों देखता है ॥ हे रामजी ! यह
संसार मृगतृष्णाका जलरूप है, असत है, आभासमात्र पडा फुरता है, तिसपर एक आख्यान आगे हुआ
है, सो कहता हूं, तूं श्रवण कर, मंदराचल पर्वत दक्षिण दिशाविषे है, तिसकी अटवीविषे एक वैताल रहता
था, महाभयानक तिसका आकार था अरु मनुष्यका आहार करता था, तिसके मनविषे विचार उपजा,
जो किसी नगरकों भोजन करौं, अरु वैताल एक समय साधुका संग भी करता था, जो कछु वह साधु ति
स वैतालकों भोजन करावता था, तब साधुसंगके प्रसादकरि वैतालके मनविषे यह उपजी, जो मेरी कवन ग
ति होवैगी, मेरा आहार मनुष्य हो रहा है, अरु मैं जो मनुष्यका भोजन करता हौं सो बडी हत्या है, तातें मैं
एक वृत्ति करौं, जो मूर्ख अज्ञानी मनुष्य है, तिनका भोजन करौं, अरु जो उत्तम पुरुष हैं, तिनका आहार न क
रौं ॥ हे रामजी ! ऐसा वृत्त तिस वैतालनें किया, यद्यपि क्षुधाकरि आतुर भी होवै, अरु भले मनुष्य आय प्रा
प्त होवैं, तौ भी उनका आहार न करै, ऐसे होते एक समय क्षुधाकरि बहुत व्याकुल भया, अरु रात्रके सम
य घरतें बाहेर निकस्या, तब उस नगरका राजा वीर यात्राकों रात्रके समय निकसा था, तिस राजाकों दे

खिकरि वैतालनें कहा ॥ हे राजा ! तूं मेरे तांई अव आय प्राप्त हुआ है, मैं तुझकों भोजन करता हौं, तूं कहां जावैगा, तव राजानें कहा, हे रात्रके विचरणेहारे वैताल ! जव तूं मेरे निकट अन्यायकरि आवैगा, तव तेरा शीस सहस्र टुकडे होवैगा, अरु तूं गिरैगा, तव वैतालनें कहा, हे राजा ! मैं तुझतें डरता नहीं, हे आत्महत्यारे ! मैं तेरे तांई भोजन करौंगा, भावै तैसा वलि तूं होवै, मैं डरता नहीं, परंतु एक प्रतिज्ञा मेरी है, अज्ञानीकों भोजन करता हौं, अरु अज्ञानीकों नहीं मारता, जव तूं ज्ञानी है, तव न मारौंगा, जव तूं अज्ञानी है तव मारौंगा, जैसे वाज चीडीकों मारता है, तैसे तुझकों मारौंगा, जव तूं ज्ञानी है, तव मेरे प्रश्नका उत्तर देही, एक प्रश्न यह है, जिसविषे ब्रह्मांडरूपी अणु है, सो सूर्य कवन है, अरु दूसरा प्रश्न यह है, जिस पवनविषे आकाशरूपी अणु उडते हैं, सो पवन कोण है, अरु तीसरा प्रश्न यह, जो केलेके वृक्षवत् जिसविषे अवर कछु नहीं निकसता, जैसे केलेकी छिलतें अवर कछु नहीं निकसता, सो कवन वृक्ष है, अरु चउथा प्रश्न यह है, वह पुरुष कवन है, जो स्वप्नतें स्वप्न वहुरि तिसविषे अवर स्वप्न देखता है, अरु एक रहता है, परिणामकों नहीं प्राप्त होता, इन प्रश्नका उत्तर कहु, जो प्रश्नका उत्तर न दिया तौ तेरे तांई आहार करौंगा ॥ ॥ इति श्रीयोगवासिष्ठे निर्वाणप्रकरणे वैतालप्रश्नोक्तिर्नाम एकषष्टितमः सर्गः ॥ ६१ ॥ ॥

॥ राजोवाच ॥ हे वैताल ! इन प्रश्नका उत्तर सुण, ब्रह्मांडरूपी एक मिरच वीज है, अरु तिसविषे तीक्ष्णता आत्मा चेतन सतपद है, अरु ऐसे मिरच एक टाससाथ केई सहस्र लगे हुए हैं, अरु ऐसे टास एक वृक्ष साथ केई सहस्र लगे हुए हैं, अरु ऐसे वृक्ष एक वनविषे केई सहस्र हैं, अरु ऐसे केई सहस्र वन एक शिखर पर स्थित हैं, अरु ऐसे केई सहस्र शिखर एक पर्वतपर स्थित हैं, अरु ऐसे केई सहस्र पर्वत एक नगरविषे हैं, अरु ऐसे केई सहस्र नगर एक द्वीपविषे हैं, अरु ऐसे सहस्र द्वीप एक भव पृथ्वीविषे हैं, अरु ऐसे केई सहस्र पृथ्वी भव एक अंडविषे हैं, अरु ऐसे केई सहस्र अंड एक समुद्रविषे लहरी हैं, अरु ऐसे केई सहस्र

समुद्र एक पुरुषके उदरविषे हैं, अरु ऐसे केई पुरुष एक पुरुषके गलेविषे माला परोई हुई है, ऐसे केई लाख कोटि सूर्यके अणु हैं, जिस सूर्यकरि सर्व प्रकाशमान है, सो सूर्य आत्मा है, जिसविषे अनंत सृष्टि स्थित हैं ॥ हे वैताल! जैसे यह सृष्टि भासती है इदं करिके तैसे सर्व सृष्टि जाण, जब यह सृष्टि सत्य है, तौ सब सृष्टि सत जाण, जब यह सृष्टि स्वप्न है, तब सर्व सृष्टि स्वप्न जाण, अरु आत्मा ऐसा सूर्य है, जिसतें इतर अवर अणु भी कछु नहीं, अरु सदा अपणे आपविषे स्थित है, इसतें अवर क्या पूछता है, ऐसे आत्माविषे स्थित होउ, जो आत्मसत्ता मात्र पद है, जिस सत्तामात्र पदतें कालसत्ता हुई है, तिसीतें आकाशसत्ता हुई है, तिस ऐसे सतपदतें सर्व सत्ता प्रगट हुई है, सो सब संकल्पतें उदय हुए हैं, अरु संकल्पके लय हुए सब लय हो जाता है, अरु तैंनें जो प्रश्न किया था, वह कवन सूर्य है, जिसतें ब्रह्मांडरूपी अणु होते हैं, सो उह ब्रह्म सूर्य है, जिसतें इतर अवर कछु नहीं, अरु केलेका वृक्ष जो तैंनें पूछा था, सो केलेकी नांई अंतर बाहिर विश्वके आत्मा स्थित हैं, जैसे केलेके अंतर फोलेतें शून्य आकाशही निकसता है, तैसे विश्वके अंतर बाहिर आत्मातें इतर अवर सार कछु नहीं निकसता, जो अद्वैत है, तिसतें इतर द्वैत कछु नहीं, अरु उह पवन ब्रह्म है, जिस पवनविषे ब्रह्मांडके समूह उडते हैं, अरु उह पुरुष स्वप्नतें स्वप्न आगे अवर स्वप्न देखता है, अरु एक अपणे स्वतःविषे स्थित है, स्वप्न कहियें जो चित्तकला फुरती है, तब अनंत ब्रह्मांड भान होते हैं, तब भी इतर कछु हुआ नहीं, एकही रूप नटवत रहता है, यह सब उसकी आज्ञासों वर्तते हैं, अरु सूक्ष्मतें सूक्ष्म है, स्थूलतें स्थूल है, अरु जिसविषे मंदराचल पर्वत भी अणु है, ऐसा स्थूल है, अरु जिसविषे वाणीकी गम नहीं, अपणे आपहीविषे स्थित है, इंद्रियांतें अगोचर इसकरि सूक्ष्मतें सूक्ष्म है, अरु पूर्णता करिके स्थूलतें स्थूल है ॥ हे मूर्ख वैताल! तूं आहार किसकों करता है, अरु क्षुधाकरि व्याकुल क्यौं भया है, तूं तौ आत्मा अद्वैतरूप है, अरु आनंदरूप है, तूं अपणे स्वतःविषे स्थित होउ, ज

ब ऐसे प्रश्नका उत्तर देकरि राजानें उपदेश किया, तब वैताल उहांतें चल्या, जो एकांत स्थानविषे स्थित होउं, ऐसे झूठ संसार मृगतृष्णाके जलविषे मेरे तांई क्या प्रयोजन है, तब एकांत स्थानविषे जायकरि स्थित हुआ, अरु ध्यान लगाय बैठा, ध्यान कहियें जो एक धाराप्रवाहक प्रवाह स्थित हुआ, धारा प्रवाह प्रवाहक कहियें आत्माका अभ्यास दृढ किया, आत्मातें इतर कछु फुरै नहीं, एकरस स्थित हुआ, ऐसे ध्यानविषे स्थित होकरि वैताल सत आत्मा पदकों प्राप्त हुआ; हे रामजी! यह राजा अरु वैतालका आख्यान तुझकों श्रवण कराया, सो आत्मा कैसा है, जिसविषे ब्रह्मांड अणुकी नांई स्थित है, तातें निर्विकल्प आत्माविषे स्थित होउ, अरु इंद्रियांकों बाहिरतें संकोचकरि स्थित करु ॥ ॥ इति श्रीयोगवासिष्ठे निर्वाणप्रकरणे राजवैतालसंवादे वैतालब्रह्मपदप्राप्तिर्नाम द्विषष्टितमः सर्गः ॥ ६२ ॥ ॥ ॥ ॥ वसिष्ठ उवाच ॥ हे रामजी! एक आख्यान आगे हुआ है, सो श्रवण करु, एक भगीरथ नाम राजा था, उसकी मूढता गई है, अरु स्वस्थ चित्त होकरि आत्मपदविषे स्थित हुआ, अपणे प्रति प्रवाहविषे विचरा है, अरु अपणे पुरुषार्थ करि स्वर्गलोकतें गंगा मध्यलोकविषे ले आया है, तैसे तूं विचरु, सो कैसा था, जो अर्थी कोई आता था, तिसका अर्थ पूर्ण कर्ता था, जिस पदार्थका कोई संकल्पकरि आवै; सो राजा उसका पूर्ण करे, अरु जो राजासों मित्रभाव है, तिनकों चंद्रमारूप होवै, जैसे चंद्रमाकों देखीकरि चंद्रमणी अमृतकों द्रवता है; तैसे मित्रभावकों राजा था, अरु जो राजसों शत्रुभाव है; तिनकों नाश करनेहारा था, जैसे सूर्यके उदय हुए अंधकार नाश हो जाता है, तैसेही शत्रुकों नाश करणेहारा था, जैसे अग्नितें अनेक चिणगारे उठते हैं, तैसे शत्रुकों शस्त्रोंकी भी वर्षा करता था, अरु प्रतिप्रवाहविषे स्थित रहता था, भले बुरे सुखदुःखविषे एक समान रहता था ॥ ॥ राम उवाच ॥ हे भगवन्! ऐसा जो भगीरथ था, तिसके मनविषे क्या आई जो गंगाकों ले आया ॥ ॥ वसिष्ठ उवाच ॥ हे रामजी! एक समय अपणे नगरकों देखत भया, जो लोक भले मार्गकों त्या

गिकरि बुरे मार्ग पापकर्मविषे सब लगे हैं, अरु लोक मूर्ख हुए हैं, तब लोकके उपकारनिमित्त तप करणे लगा, ब्रह्मा रुद्र अरु यज्ञऋषि तिनका तप करिके आराधन किया, अरु गंगाके ल्यावणेनिमित्त मंत्र जपणे लगा, सो गंगा कैसी है, जिसका एक प्रवाह स्वर्गविषे चलता है, अरु एक प्रवाह पातालविषे चलता है, अरु एक प्रवाह राजा भगीरथनें मध्यलोकविषे चलाया है, अरु भगीरथ राजानें गंगाके आणनेकरि समुद्र परि भी उपकार किया है, कैसा समुद्र जो अगस्त मुनिकरि सुकाया है, तिस गंगाके आवणेकरि समुद्रका दारिद्र भी निवृत्त हुआ, ऐसा जो राजा है, तिसके मनविषे विचार उपजा, संसारकों देखीकरि कहणे लगा, जो एकही वारंवार करणा यह बडी मूर्खता है, नित्य उही भोगणां, उही खाणां, इत्यादिक कर्म बहुरि करणे, अरु जिस कर्म कियेतें पाछे सुख निकसै, तिसके करणेका कछु दूषण नहीं ऐसे वैराग्य करिके विचार उपजा, जो संसार क्या है, सो राजा यौवन अवस्थामैं था, जैसे मरुस्थलविषे कमल उपजणां आश्चर्य है, तैसे यौवन अवस्थाविषे विचार उपजणां आश्चर्य है ॥ हे रामजी ! जब राजाकों ऐसे विचार उपजा तब घरतें निकस्या, अरु त्रितल ऋषीश्वर जो गुरु था, तिसके निकट जायकरि प्रश्न करत भया ॥ ॥ राजोवाच ॥ हे भगवन् ! वह कवन सुख है, जिसके पायेतें जरामृत्युके दुःख निवृत्त होते हैं, अरु यह संसारके सुख अंतरतें शून्य हैं, इनके परिणामविषे दुःख है ॥ त्रितल ऋषिरुवाच ॥ ॥ हे राजा ! एक ज्ञेय है, जाणणे योग्य, जिसके जाणेतें शांत पद प्राप्त होता है, सो आत्मज्ञान है, सो आत्मसुख कैसा है, न उदय होता है, न अस्त होता है, ज्यौंका त्यौं अपणे आपविषे है ॥ हे राजा ! यह जरा मृत्यु तबलग भासता है, जबलग अज्ञान है, जब ज्ञानरूपी सूर्य उदय होवैगा, तब अज्ञानरूपी अंधकार निवृत्त हो जावैगा, केवल शांत पदविषे स्थित होवैगा, अरु आत्मानंद सर्वज्ञ है, जिसके जाणेतें चित्तजडग्रंथी टूटि जाती है, चित्तजडग्रंथी कहियें अनात्म देहइंद्रियादिकविषे आत्मअभिमान करनां, सो निवृत्त हो जाता है, अरु सब कर्म

भी निवृत्त होते हैं, संशय सब नष्ट हो जाते हैं, ऐसे शुद्ध स्वरूपकों पायकरि ज्ञानी स्थित होते हैं, सो सत्ता सर्व है, सर्वगत नित्य स्थित है, उदय अस्ततें रहित है ॥ ॥ राजोवाच ॥ हे भगवन्! ऐसे मैं जाणता हौं, जो आत्मा चिन्मात्र सत्ता है, अरु देहादिक मिथ्या है, अरु आत्मा सर्वज्ञ है, अरु शांतरूप है, निर्मल अच्युतरूप है, ऐसे जाणता भी हौं, परंतु शांति मेरे तांई नहीं प्राप्त भई, जो आत्मा चिन्मात्र मेरे तांई नहीं भासता, अरु स्थिति नहीं भई, सो कृपाकरि कहौ, जो मैं स्थित होउ ॥ ॥ ऋषिरुवाच ॥ हे राजा! ज्ञान तेरे तांई कहता हौं, जिसके जाणेतें बहुरि दुःख कोई न रहैगा, तिस ज्ञानकरि ज्ञेयविषे तेरे तांई निष्ठा होवैगी, तब तूं सर्वात्मरूप होकरि स्थित होवैगा, जीवभाव तेरा नष्ट हो जावैगा ॥ श्लोक ॥ आसक्तिरनभिष्वंगः पुत्रदारगृहादिषु ॥ नित्यं च समचित्तत्वमिष्टानिष्टोपपत्तिषु ॥ आसक्त न होवैगा, अरु अनभिष्वंग होवैगा, आसक्त न होणां कहियें देहइंद्रियादिकविषे आत्मअभिमान न करणां, इनकों आप न जानणां, अरु अनभिष्वंग कहियें पुत्र स्त्री कुटुंबके दुःखकरि आपकों दुःखी न जानणां, अरु नित्यही समचित्त रहणां, इष्ट अनिष्टकी प्राप्तिविषे एकरस रहणां, अरु चित्तकों आत्मपदविषे जोडणां, आत्मातें इतर चित्तकी वृत्ति न जावै, अरु एकांत देशविषे स्थित होणां, अरु अज्ञानीका संग न करणां, अरु ब्रह्मविद्याका सदा विचार करणां, तत्त्वज्ञानके दर्शननिमित्त यह तेरे तांई ज्ञानके लक्षण कहे हैं, अरु इसतें विपरीत है सो अज्ञान है ॥ हे राजा! यह ज्ञेय जानणे योग्य है, इसके जाणेतें केवल शांतपदकों प्राप्त होवैगा, अरु देहका अहंकार भी निवृत्त होवैगा ॥ हे राजा! पहिले अहं होता है, तब पाछे मम होती है, तातें तूं अहंममका त्याग करु, जब अहंममका त्याग करैगा, तब आत्मपद अहंप्रत्ययकरि भासैगा, सो आत्मा सर्वज्ञ है, अरु सर्व भी आप है, स्वतः प्रकाश है, अरु आनंदरूप है, कैसा आनंदरूप है, जो संसारके आनंदतें रहित है, जब ऐसे गुरुनें कहा, तब राजा बोलत भया ॥ ॥ राजोवाच ॥ हे भगवन्! यह अ

हंकार तौ चिरकालका देहविषे रहता है, अरु अभिमानी है, जैसे पर्वत चिरकालका वृक्ष स्थित होता है, अरु तिसका नाम प्रसिद्ध होता है, तैसेही अहंकार चिरकालका देहविषे अभिमानी है, तिसका त्याग कैसे करौं सो कहौ ॥ ॥ ऋषिरुवाच ॥ हे राजा ! अहंकार पुरुषप्रयत्न करिके निवृत्त होता है, सो श्रवण कर, प्रथम भोगविषे दोषदृष्टि करणी, भोगकी वासना न करणी, अरु वारंवार अपणे स्वरूपकी भावना करणी, विचार करणां, इस करिके जीव अहंकार तेरा निवृत्त हो जावैगा ॥ हे राजा ! जब तेरा अहंकार निवृत्त होवैगा, तब तेरे तांई सर्वात्माही भासैगा, अरु दुःखतें रहित शांतरूप स्वप्रकाश होवैगा ॥ हे राजन् ! यह लज्जारूप फांसी जबलग निवृत्त नहीं होती, तबलग आत्मपदकी प्राप्ति नहीं होती, लज्जा कहियें मैं हौं, अरु मेरा है, तृष्णा अरु शोक दुःख अरु भला कहावणेकी इच्छा इत्यादिक जो मोहके स्थान हैं, सो लज्जा है, तातें तूं अहंममतें रहित होउ, अरु तेरे शत्रु जो तेरा राज्य लेणेकी इच्छा करते हैं, तिनकों अपणां राज्य देही, अरु क्षोभतें रहित होकरि पुत्र स्त्री बांधव इनके मोहतें रहित होउ, अरु मेरे मोहतें भी रहित होउ, अरु राज्यका त्याग करिके एकांत देशविषे स्थित होउ, अरु तिन शत्रुके घरतें भिक्षा मांग, जो तेरे तांई भला कहणेकी इच्छा न रहै, तातें उठि खडा होउ ॥ ॥ इति श्रीयो० नि० भगीरथोपदेशो नाम त्रिषष्टितमः सर्गः ॥ ६३ ॥ ॥ वसिष्ठ उवाच ॥ हे रामजी ! इस प्रकार जब त्रितल ऋषीश्वरनें उपदेश किया, तब राजा उठि खडा हुआ, घरकों गमन किया, गुरुका उपदेश हृदयाविषे धारिकरि अपणे राज्यविषे आनि स्थित हुआ,अरु राज्य करणे लगा,मनविषे विचार भी करै, जब केताक काल बीत्या तब राजाने अग्निष्टोम यज्ञका आरंभ किया,अग्निष्टोम यज्ञ कहियें धनका त्याग करणां, सो राजा धनका त्याग करणे लगा, दिनत्रयविषे धनका त्याग किया,हस्ती घोडे रथ भूषण वस्त्र इत्यादिक जो ऐश्वर्य था, सो लोककों दिया, ब्राह्मणों अरु अर्थी अरु पुत्र स्त्रीकों अरुअपणे जो शत्रु थे तिनकों, पृथ्वीका राज्य दिया, जब इस प्रकार राज्य दि

या तब राजा जो थे शत्रु तिननें देख्या जो अब राजा भगीरथविषे पराक्रम कछु नहीं रहा, तब उन शत्रु नें आयकरि इसका देश लिया, हवेलीपर आनि स्थित हुए, जेते राजाके स्थान थे सो रोकि लिये, राजा धोती अंगोछासाथ रहि गया, अवर सब शत्रुनें लिया, तब राजा उहांतें निकस्या ॥ हे रामजी! इस प्रकार जब राजा निकस्या, तब वनकों गया, वनतें अवर वनविषे विचरता रहै, अरु शांतपद आत्माविषे स्थित हुआ, अनिच्छित विचरै, जब केताक काल व्यतीत भया, तब राजा भगीरथ अपणे देशविषे आया, जो शत्रु थे राजाके तिनके गृहतें भिक्षा मागणे लगा, तब शत्रु अरु लोकने देख्या, बहुत पूजाकरि, अरु कहा ॥ हे भगवन्! तुम राज्यकों ग्रहण करौ, तब राज्य ग्रहण न किया जैसे पृथ्वीपर पडा तृण तुच्छ बुद्धि करिके नहीं ग्रहण करता, तैसे राज्यका ग्रहण न किया, केता काल उहां रहीकरि बहुरि चल्या, तब त्रितल ऋषि जो अपणां गुरु था, अनिच्छित तहां गया, तब गुरुनें भी आत्मत्व करिके ग्रहण किया, अरु शिष्यने भी गुरुकों आत्मत्व करिके ग्रहण किया, गुरु अरु शिष्यकी भावनातें दोनों रहित हुए, फुरै कछु नहीं, केताक काल एक स्थानविषे रहे, बहुरि वनविषे एकठे विचरणे लगे, अरु शांत आत्मपदविषे दोनों स्थित रहे, अरु राग दोषतें रहित केवल एकरस स्थित रही है, तिनकों न देह त्यागणेकी इच्छा, न देह रखणेकी इच्छा, अनिच्छा प्रारब्धविषे स्थित रहही, तब स्वर्गलोकके जो सिद्ध थे, तिननें आनि पूजा करी, अरु बडे ऐश्वर्य पदार्थ चढाये, अरु बहुत अप्सरा आई, जेते ऐश्वर्य भोग पदार्थ थे, सो आनि स्थित हुए, तिनकों उननें तुच्छ जाण्या, जो आत्मसुखकरि तृप्त थे, अरु केवल आकाशवत् निर्मल थे, प्रकाशरूप अरु समचित्त रहही, कलंकतारूपी मलतें रहित ॥ हे रामजी! जैसे राजा भगीरथ स्थित हुआ है, तैसे तुम भी स्थित होऊ ॥ ॥ इति श्रीयो० निर्वाणप्रकरणे निर्वा० नाम चतुःषष्टितमः सर्गः ॥ ६४ ॥ ॥ वसिष्ठ उवाच ॥ हे रामजी! केताक काल बीत्या, तब भगीरथ उहांतें चल्या, एक देशका राजा मृतक हुआ था, तिसकी जो लक्ष्मी

थी,सो राजाकी याचना करती थी,तिस कालमें अनिच्छित राजा भगीरथ भिक्षा मागता आया,तब उस राजाके मंत्रीनें राजा भगीरथकों देख्या,तब क्या देखे जो जेते कछु गुण राजाविषे होते हैं,तैसेही इसविषे हैं, तब राजा भगीरथकों कहा॥हे भगवन्!तुम इस राज्यकों अंगीकार करौ,काहेतें जो तुमकों अनिच्छित आय प्राप्त हुआ है, तब राजानें राज्यका ग्रहण किया, अरु न कछु भला जाण्या, न बुरा, ऐसे ग्रहण किया, तब राजा हस्तिपर आरूढ हुआ, अरु सैनाकरि शोभत भया, देश अरु स्थान सैनाकरि पूर्ण भये हैं, जैसे मेघकरि ताल पूर्ण होते हैं, तैसेही देश अरु स्थान सैनाकरि पूर्ण करत भया, जब नगारे अरु साज बाजणे लगे, तब राजा गृहविषे गया, सब महलस्त्रियां आय विद्यमान भई, तब उह देश जो राजा भगीरथका पहिला था, तिस देशतें लोक आये, तब मंत्री अरु प्रजानें आनिकरि कहा ॥ हे भगवन्! जिन शत्रुकों तुमनें राज्य दिया था, तिनकों मृत्युनें भोगिकरि लिया है, जैसे मच्छी कोमल मांस ग्रासी लेती है, तैसे उनकों मृत्युनें ग्रासी लिया है, तातें तुम राज्य करौ, यद्यपि तुमकों इच्छा नहीं, तौ भी राज्य करौ, काहेतें जो वस्तु अनिच्छित आय प्राप्त होवै, तिसका त्याग करणां श्रेष्ठ नहीं, तातें तुम राज्य करौ, तब राजानें उस राज्यका भी अंगीकार किया अरु राज्य करणे लगा, जब पिछला वृत्तांत राजानें श्रवण किया; जो मेरे पितर कपिल मुनीके श्रापतें भस्म हुए हैं, अरु कूपविषे पडे हैं, तब राजानें चिंतवनाकरी जो मैं तिनका उद्धार करौं, तब राजा अपणे मंत्रीकों राज्य देकरि एकला वनकों चला, अरु वृत्त किया जो तप करौं, तब राजा एक स्थानविषे स्थित होकरि तप करणे लगा, ब्रह्मा रुद्र अरु जगत ऋषिका गंगाके ल्यावणेनिमित्त आराधन किया, सहस्र वर्षपर्यंत तप किया, तब गंगा मध्यमंडलविषे आई, सो कैसी गंगा है, जो विष्णु भगवानके चरणोंतें प्रगट भई है, तिस गंगाके प्रवाहकों पित्रोंके उद्धारनिमित्त राजा ले आया, बहुरि राजा भगीरथ समचित्त अरु शांत पदविषे स्थित होकरि विचरणे लगा, जिस विषे न कोउ क्षोभ है, न भय है, न

कोउ इच्छा है, केवल शांत आत्मपद है, तिसविषे स्थित भया है, जैसे पवनतें रहित समुद्र अचल होता है, तैसेही संकल्पविकल्पतें रहित होकरि स्थित भया ॥ ॥ इति श्रीयोगवासिष्ठे निर्वाणप्रकरणे भगीरथोपाख्यानसमाप्तिर्नाम पंचषष्टितमः सर्गः ॥ ६५ ॥ ॥ ॥ वसिष्ठ उवाच ॥ हे रामजी ! यह जो भगीरथकी दृष्टि तेरे तांई कही है, तिसकों आश्रय करिके विचरौ, कैसी यह दृष्टि है, जो सर्व दुःखका नाश करती है, अरु एक आख्यान ऐसा आगे भी व्यतीत भया है, ऐसाही शिखरध्वज राजा होत भया ॥ ॥ राम उवाच ॥ हे भगवन्! उह शिखरध्वज कवन था, अरु किस प्रकार चेष्टा करत भया, सो कृपा करिके कहौ ॥ वसिष्ठ उवाच ॥ हे रामजी ! राजा शिखरध्वज आगे था, अरु बहुरि भी होवैगा, सप्त मन्वंतर व्यतीत भये थे, अरु चउकडी चतुर द्वापारयुगकी थी, तिस कालविषे हुआ है सो कैसा राजा था, जो संपूर्ण पृथ्वीका तिलक था, अरु जेते शूरवीर हैं, तिनतें उत्तम था, अरु जेता ऐश्वर्य है, तिसकरि संपन्न था, अरु तिसविषे बंधमान न होत भया, अरु जेते भोग हैं, तिनके भोगणेकों समर्थ था. अरु बडे ओजकरि संपन्न था, उदार अरु धैर्यवान था, किसीपर जोर जुलम न करता था, समचित्त अरु शांतपदविषे स्थित था, संपूर्ण दुःखतें रहित, अरु जो कोई अर्थी होवै, तिसका अर्थ पूर्ण कर्ता था, ऐसा था, अरु बहुरि भी होवैगा ॥ राम उवाच ॥ हे भगवन्! ऐसा जो ज्ञानवान राजा था सो बहुरि जन्म किसनिमित्त पावैगा, ज्ञानी तौ बहुरि नहीं जन्म पावता, उह कैसे पावैगा ॥ ॥ वसिष्ठ उवाच ॥ हे रामजी ! जैसे एक समुद्रविषे केई तरंग समान उठते हैं, केई अर्ध सम, केई विलक्षण भावकरि फुरते हैं, तैसे आत्मसमुद्रविषे केई आकार एक जैसा फुरते हैं, केई अर्धभावकरि फुरते हैं, केई विलक्षणभाव फुरते हैं, जो समान फुरते हैं, तिनकी चेष्टा अरु आकार एक जैसे दृष्ट आवते हैं, तातें जानीता है, उही है, तैसे शिखरध्वजकी आगे ऐसी प्रतिभा होवैगी ॥ हे रामजी ! इस सर्गविषे सप्त मन्वंतर व्यतीत भये, अरु चतुर चवकडी द्वापार युगकी बीती, तब जंबुद्वी

प मालव देशविषे श्रीमान शिखरध्वज राजा होत भया, परंतु उस जैसा शिखरध्वज अवर होवैगा, उह न होवैगा, जब आयुष्य षोडश वर्षकी मैं राजकुमार था, तब एक समय राजा शिकारकों निकस्या, अरु वसंतऋतुका समय था, तब राजा अपणे बागमें जाय स्थित भया, तहां फूलके अचंभा स्थान बणे हुए थे, तहां कमलनियां मानों स्त्रियां हैं, अरु धूडके कणके तिनके भूषण हैं, अरु पुष्प तिनके समीप वृक्ष हैं, इसी प्रकार भंवरीभंवरेकी सुंदर लीला देखत भया, तब राजाकों चिंतवना भई जो मेरे तांई स्त्री प्राप्त होवै, तब मैं चेष्टा करौं, अरु अधिक चिंतना भई, जो कब मेरे तांई स्त्री प्राप्त होवै, अरु कब फूलकी शय्यापर शय न करौंगा, इत्यादिक जो भोगकी वृत्ति है सो राजा चिंतना करणे लगा, तब मंत्रीनें देख्या जो हमारे राजाका मन स्त्रीपर है, ऐसे होवै जो राजाका विवाह करियें, सो मंत्री राजाके त्रिकाल ज्ञान रखते थे, शरीरकी अवस्था जानते थे, इसीतें जानत भये, तब एक राजा था, तिसकी कन्या बहुत सुंदर अरु वरप्राप्ति चाहती थी, तिस राजाकी पुत्रीसाथ राजा शिखरध्वजकों विवाह किया, शास्त्रकी विधिसहित, तब राजा बहुत प्रसन्न होकरि अपणे गृहविषे आया अरु तिस स्त्रीका नाम चूडाला था, अरु बहुत सुंदर थी, तिसविषे राजाका हेत बहुत हुआ, अरु स्त्रीका हेत राजाविषे बहुत हुआ, जो कछु राजाके मनविषे चिंतवना होवै, सो राणी आगे सिद्धकरि देवै, इस प्रकार परस्पर प्रीति आपसविषे बढी, जैसी भंवरे अरु भंवरीकी प्रीति आपसविषे होती है, तब एक समय राजा मंत्रीयांकों राज्य देकरि वनकों गया, वनविषे नानाप्रकारकी चेष्टा करत भया, अरु वनविषे विचरै, जैसे सदाशिव अरु पार्वती, जैसे विष्णु भगवान् अरु लक्ष्मी विचरहीं, तैसे राजा अरु राणी विचरणे लगे, बहुरि योगकला सीखणे लगे, तब राणी राजाकों योगकला सिखावै, संपूर्ण कलाकरि संपन्न हुए, परंतु चूडालाकी बुद्धि राजाकी बुद्धितें तीक्ष्ण शीघ्रही जाणि लेवै, अरु रायाकों सिखावै, इसी प्रकार बहुत चेष्टाकरि अरु विचरै ॥ ॥ इति श्रीयो

गवासिष्ठे निर्वाणप्रकरणे शिखरध्वजचूडालाप्राप्तिर्नाम षट्षष्टितमः सर्गः ॥ ६६ ॥ ॥ ॥ वसिष्ठ उवाच ॥ हे रामजी ! इसी प्रकार राजा अरु राणीनें अनंत भोग भोगे, जैसे छिद्रकरि कुंभतें शनैः शनैः जल निकसता है तैसे शनैः शनैः यौवनके गये वृद्ध अवस्था आय प्राप्त भई, तव राजा अरु राणीकों वैराग्यका कणका आनि उत्पन्न भया, तव वैराग्य करिके यह विचरणे लगे, जो यह संसार मिथ्या अरु विनाशी है, एक जैसा नहीं रहता, अरु यह विषय भोग भी मिथ्या है, जो एता काल हम भोगते रहे, तव तृष्णा पूर्ण न भई, वधती गई ॥ हे रामजी ! इस प्रकार राजा अरु राणी वैराग्य करिके विचारत भये जो यह भोग मिथ्या हैं, अरु हमारी यौवन अवस्था भी व्यतीत हो गई हैं, जैसे विजलीका चमत्कार क्षणमात्र होकरि बीति जाता है, तैसे यौवन व्यतीत हो गया, अरु मृत्यु निकट आया, जैसे नदीका वेग तलेकों चला जाता है, तैसे आयुर्बला व्यतीत हो जाती है, जैसे हाथ ऊपर जल पाया वहि जाता है, तैसे यौवन अवस्था निवृत्त हो गई है, अरु यह शरीर कैसा है, जैसे जलविषे तरंग बुदबुदे उपजीकरि लीन हो जाते हैं, तैसेही शरीर क्षणभंगुर है, अरु जहां चित्त जाता है, तहां दुःख भी इसके साथ चले जाते हैं, निवृत्त नहीं होते, जैसे मांसके तुकडे पाछे ईल पक्षी चला जाता है, तैसे जहां अज्ञान है, तहां दुःख भी पाछे जाते हैं, अरु इह शरीर भी निवृत्त हो जाणां है, जैसे अंबका फल पका वृक्ष साथ नहीं रहता, गिरि पडता है, तैसे शरीर भी नष्ट हो जाता है, जिस शरीर अवश्य गिरता है, तिसका आसरा करणा क्या है, जैसे सूका पात वृक्षतें गिर पडता है, तैसे इह शरीर गिर पडता है, तातें हम ऐसा कछु करैं, जो संसाररूपी विषूचिका निवृत्त होवे, सो संसाररूपी विषूचिका ब्रह्मविद्याके मंत्रकरि निवृत्त होती है, ब्रह्मविद्याकरि ज्ञान उपजता है, अरु आत्मज्ञानकरि सर्व दुःख निवृत्त हो जाते हैं, इसतें अवर उपाय कोउ नहीं, तातें आत्मज्ञानकेनिमित्त हम संतपास जावैं ॥ हे रामजी ! ऐसे विचार करिके राजा अरु चूडाला संत जो हैं, आत्मज्ञानी तिनतें पास चलैं, अरु आत्मज्ञानकी वार्ता करहीं, आत्म

ज्ञानविषे तिनका चित्त अरु भावना आपसमें विचार अरु चर्चा करणीं, आत्मपरायण होकरि संतपास गये, सो कैसे संत हैं, जो संसारसमुद्रतें तरावणेवाले हैं, अरु आत्मवेत्ता हैं, तिनपास जाएकरि पूजा करत भया, अरु उनसों प्रश्न किया, तब राजा अरु राणी उनसों ब्रह्मविद्या श्रवण करने लगे, आत्मा शुद्ध है, अरु आनंदरूप है, जिसके पायेतें दुःख निवृत्त हो जाते हैं, चेतन है, अरु एक है, इस प्रकार सुणते भये ॥ हे रामजी! तब राणी चूडाला विचारविषे लगी, जब राजाकों कोउ टहल करै, परंतु उसके चित्तकी वृत्ति विचारविषे रहै, सो विचार यह, जो मैं क्या हौं, अरु यह संसार क्या है, अरु संसारकी उत्पत्ति किसतें है, ऐसे विचारकरी जानणे लगी जो यह पंचतत्त्वका शरीर है, सो भी मैं नहीं, काहेतें जो शरीर जड है, अरु यह कर्म इंद्रियां भी जड हैं, जैसा शरीर है, तैसे शरीरके अंग हैं, यह जो चेष्टा करते हैं, सो ज्ञानइंद्रियां करिके करते हैं, सो ज्ञान इंद्रियां भी मैं नहीं, काहेतें जो यह भी जड है, मनकरि मनकी चेष्टा होती है, सो मन भी जड है, तिसविषे संकल्प विकल्प चेतना है, सो बुद्धिकरि है, अरु बुद्धि भी जड है, जो तिसविषे निश्चय चेतना है, सो अहंकार करिके होता है, अरु अहंकार भी जड है, जो तिसविषे अहं चेतना करिके होती है सो चेतनता भी जीव करिके होती है, सो जीव भी मैं नहीं, काहेतें जो यह जीवत्व फुरनरूप है, अरु मेरा स्वरूप अफुर है, सदा उदयरूप है, अरु सन्मात्र है, बडा कल्याण है, जो चिरकाल करिके मैं अपणे स्वरूपकों पाया है, सो कैसा पद है, अविनाशी है, अनंत है, अरु आत्मा है, जैसे शरत्कालका आकाश निर्मल होता है, तैसे मैं निर्मल हौं, अरु विगतज्वर हौं, रागदोषरूपी तापतें रहित हौं, अरु चिन्मात्र पद हौं, अरु अहं त्वंतें रहित हौं, मेरेविषे फुरणा कोउ नहीं, इसीतें शांतरूप हौं, जैसे क्षीरसमुद्र मंदराचल पर्वततें रहित शांतरूप है, तैसे चित्ततें रहित अचल हौं, अरु अद्वैत हौं, कदाचित्‌, स्वरूपतें परिणामकों नहीं प्राप्त भया, ऐसा जो तन्मात्र पद है, तिसकी ब्रह्मवेत्तानें संज्ञा कही है, जो ब्रह्म है, चेतन है, अरु परमात्मा है, इत्या

दिक नाम आचार्यनें रखे हैं, अरु यह आत्माही मन बुद्धि आदिक अरु दृश्य संसाररूप होकरि प सर्या है, अरु स्वरूपतें अच्युत है, गिर्या कदाचित् नहीं, अरु फुरणे करिके आकार भासते हैं, तौ भी आत्मातें इतर कछु नहीं, जैसे बडा पर्वत होता है, तिसके पत्थरवटे होते हैं, तौ भी पर्वततें इतर कछु नहीं, तैसे यह दृश्य आत्मातें इतर कछु नहीं, अरु यह आकार कैसे हैं, जैसे गंधर्वनगर नानाआकार हो भासता है, तैसे यह संसार है, ज्ञानवानकों एक रस है, अरु अज्ञानीकों भेदभावना है. जैसे बालक मृत्तिका के खिलोंनें कल्पता है, हस्ती घोडा राजा प्रजातें आदि लेकरि नाम रखता है, अरु जिसकों मृत्तिकाका ज्ञान है, तिसकों मृत्तिकाही भासती है, इतर कछु नहीं भासता, तैसे अज्ञान करिके नाना रंग भासते हैं, अब मैं जाण्या है, एक रस हौं ॥ हे रामजी! इस प्रकार चूडाला आपकों जाणती भई, जो मैं सन्मात्र हौं, अरु अच्छेद हौं, अदाह हौं, स्वच्छ हौं, अरु अक्षर हौं, निर्मल हौं, मेरेविषे अहं त्वं एक अरु द्वैत शब्द कोई नहीं, अरु जन्म मृत्यु भी कोउ नहीं, यह संसार चित्तकरि भासता है, अरु आत्मा स्वरूप है, देवता यक्ष अरु राक्षस स्थावर जंगम आदिक सर्व आत्मरूप है, जैसे तरंग बुदबुदा समुद्रसों भिन्न कछु नहीं, तैसे आत्मातें भिन्न कछु वस्तु नहीं, दृश्य द्रष्टा दर्शन यह भी आत्माकी सत्ताकरि चेतन है, इनकों आपतें सत्ता कछु नहीं, अरु मेरेविषे अहंका उत्थान कदाचित् नहीं, अपणे आपविषे स्थित हौं, अब इ सी पदकों आश्रय करिके चिरकाल इस संसारविषे विचरौंगी ॥ ॥ इति श्रीयोगवासिष्ठे निर्वाणप्रकरणे चूडालाप्रबोधो नाम सप्तषष्टितमः सर्गः ॥ ६७ ॥ ॥ ॥ वसिष्ठ उवाच ॥ हे रामजी ! इस प्रकार चूडाला विचार करत भई, सो कैसी चूडाला है, जो तृष्णा निवर्त भई है जिसकी, दुःख भय अरु भोगवा सना सब निवृत्त भई है, केवल शांत आत्मपदकों पायकरि शोभत भई है, जो पावणे योग्य पद है, तिसकों पायकरि जाणत भई जो एता काल मैं अपणे स्वरूपतें गिरि रही हौं, अब मेरे तांई शांति हुई है, अरु दुः

ख सब मिटि गये हैं, अब मेरे तांई ग्रहण त्याग कछु नहीं ॥ हे रामजी! अपणे आत्मस्वभावविषे स्थित भई, अरु एकांत बैठिकरि समाधिविषे लगी, जैसे वृद्ध गो पर्वतकी कंदराकों पायकरि बहुत तृणघासकरि प्रसन्न होती है, तैसे अपणे आनंदरूपकों पाएकरि चूडाला स्थित भई ॥ हे रामजी! ऐसे आनंदकों प्राप्त भई, जिसकों वाणीकरि कही न सकता, तब राजा शिखरध्वज आय राणीकों देखिकरि आश्चर्यकों प्राप्त भया, अरु कहा, हे अंगना! अब तूं बहुरि यौवन अवस्थाकों प्राप्त भई है, तेरे तांई कोउ बडा आनंद प्राप्त भया है, कदाचित् तैंनें अमृतका सार पान किया है, तातें अमर भई है, अथवा तेरे तांई किसी योगेश्वरनें कलाकों प्राप्त करी है, अथवा त्रिलोकिका ऐश्वर्य तुझ प्राप्त भया है ॥ हे अंगना! तेरे तांई कवन वस्तु प्राप्त भई है, तेरे चित्तकी वृत्ति मैं ऐसे जानता हौं, जो अमृतका सार तैंनें पान किया है, अरु त्रिलोकीके राज्यतें भी तैंनें कोउ अधिक पदार्थ पाया है, तूं बडे आनंदकों प्राप्त भई है, तिस आनंदका आदि अंत कोउ नहीं दिखीता, अरु तेरेविषे भोगवासना भी नहीं दिखीता, शांत हो गई है, जैसे शरत्कालका आकाश निर्मल होता है, तैसे तेरेविषे निर्मलता दिखती है, अरु तेरे श्वेत वाल भी बडे सुंदर दृष्ट आते हैं, सो कहहु तेरे तांई क्या वस्तु प्राप्त भई है ॥ ॥ चूडालोवाच ॥ हे राजन्! यह जो कछु देखिता है, सो किंचित् है, अरु इसतें जो रहित निष्किंचन पद है, तिसकों मैं पाई हौं, तिसका आकार निष्किंचित है, अरु दूसरेका अभाव है, तिसीकों पायकरि मैं श्रीमान भई हौं, अरु जेते कछु भोग हैं, तिनतें रहित अभोगकों भोग्या है, तिस भोगकरि तृप्त भई हौं, अभोग कहियें आत्मज्ञान, तिसकों मैं पाया है, आत्माविषे विश्राम पाया है, सदा शांतरूप श्रीमान हौं ॥ हे राजन्! जेते यह राजभोग सुख हैं, तिनकों त्यागिकरि परम सुखकों भोगती हौं, रागदोषतें रहित होकरि मैं कैसी हौं, जो मैं नहीं अरु मैंही स्थित हौं, अरु जेता कछु नेत्रोंकरि दिखता है, अरु इंद्रियांकरि जाणता है, अरु मनकरि चिंतवना करता है, सो सब मिथ्या है स्वप्नवत, अरु मैं तहां

स्थित भई हौं, जहां इंद्रिया अरु मनकी गम नहीं, अरु अहंकारका उत्थान भी जिसविषे नहीं, तिस पद कों मैं पाई हौं, जो सर्वका आधार है, अरु सर्वका आत्मा है, अरु सर्व जो अमृत हैं, तिनका सार अमृत मैं पान किया है, तातें मेरा नाश कदाचित् नहीं, अरु भय भी कदाचित् नहीं ॥ हे रामजी! इस प्रकार राणीनें जब कहा, तब राजा शिखरध्वज तिसके वचनोंकों न जानत भया, हांसी करी, अरु कहा, हे मूर्ख स्त्री! यह तूं क्या कहती है जो प्रत्यक्ष वस्तुकों झूट कहती है, अरु कहती है मैं नहीं देखती, अरु जो असत है, दिखता नहीं, तिसकों सत्य कहती है, मैं देखती हौं, यह वचन तेरे कवन मानैगा, इन वचनोंवाला शोभा नहीं पावता, अरु कहती है, जो ऐश्वर्यकों त्यागिकरि श्रीमान् भई हौं, निष्किंचनकों पायकरि इन वचनोंवाला शोभा नहीं पावता, अरु कहती है, इन भोगका त्याग किया है, अरु इनतें जो रहित अभोग है, तिसकों मैं भोगती हौं, तातें तूं मूर्ख है, अरु कहती है, मैं कछु नहीं, वहुरि कहती है, मैं ईश्वर हौं, इसतें महामूर्ख दृष्ट आती है, अरु जव इसीविषे तेरा चित्त प्रसन्न है, तव त्यौं विचरु परंतु यह बात सुणीकरि सत् कोउ न मानैगा, जैसे तेरी इच्छा है, तैसे विचरु; परंतु तेरे तांई यह शोभा नहीं ॥ हे रामजी! ऐसे कहिकरि राजा उठि खडा हुआ, मध्यान्हका समय था, स्नानकेनिमित्त गया, तब राणी मनविषे बहुत शोकवान भई, अरु विचार किया जो बडा कष्ट है, राजानें आत्मपदविषे स्थिति न पाई, अरु मेरे वचनों कों जानत न भया, राणी ऐसे मनविषे धारीकरि अपणे आचारविषे प्रवर्तणे लगी, बहुरि अपणा निश्चय राजाकों न दिखाया, जैसे अज्ञान कालविषे चेष्टा करती थी, तैसेही ज्ञानकोंकरि चेष्टा करणे लगी, तव एक समय राणीके मनविषे आया, जो मैं प्राणोंके उपर चडाउं, अरु ऊर्ध्वकों ल्यावौं, अपणे वश करौं, उदान अरु पानकों, किसनिमित्त जो आकाशकों भी उडौं, अधकों भी गमन करौं, ऐसे चिंतवनाकरिके राणी योगविषे स्थित भई, प्राणायाम करणे लगी ॥ ॥ राम उवाच ॥ हे भगवन्! यह संसार संकल्पतें उत्प

न्न भया है, स्थावरजंगमरूप संसारवृक्ष है, अरु संकल्प इसका बीज है, तब वह प्राणायाम पवन है, जिस करि आकाशकों उडते हैं, अरु फिरी तलेकों आते हैं, अरु अज्ञानी पुरुष यत्न करिके सिद्धि करते हैं, अरु ज्ञानवान कैसे लीलाकरि विचरते हैं, इसका उत्तर कहौ ?॥ ॥ वसिष्ठ उवाच ॥ हे रामजी! तीन प्रकार सिद्धि होती है, सो श्रवण करु, एक तौ उपादेय है, जो यह वस्तु मेरे तांई प्राप्त होवै, तिसनिमित्त अज्ञानी यत्न करते हैं, अरु एक जो यह दुःख मेरा निवृत्त होवै, मैं सुखी होउं, महाअज्ञानीकों यह चिंता रहती है, अरु एक यह है, जो मैं कर्म करता हौं, तिसका फल मेरे तांई सिद्धि होवै, यह भी अज्ञानी है, काहेतें जो आपकों करता मानते हैं, अरु ज्ञानवान इनतें उल्लंघित वर्तता है, कदाचित् ज्ञानवान इसविषे वर्तता है, तौ भी तिसके निश्चयविषे यह जो न मैं कर्त्ता हौं, न भोगता हौं, अरु योग करिके इस प्रकार सिद्ध होते हैं, जो देश काल वस्तु क्रिया तिनके आधीन हो जाते हैं, क्रिया कहियें मुखविषे गुटका राखणां, तिसकरि जहां चाहै तिसि ठौरविषे जाय प्राप्त होवैं, अरु अंजन नेत्रोंविषे पावणां, जिसकों देख्या चाहैं, तिसकों देखि लेवैं, अरु खड्ग हाथविषे धारिकरि संपूर्ण पृथ्वीकों वशकरि लेणां, यह तौ क्रिया पदार्थ हैं, अरु देश यह जो सर्व पर्वत हैं, तिनविषे केती पीठ हैं, अरु बडा उत्तम है, अरु जिस प्रकार यह सिद्ध होते हैं, सो श्रवण कर, एक कुंडलनी शक्ति है, आधार चक्रविषे नाभिके तले सर्पिणीकी नांई तिसविषे कुंडल हैं, कुंडलकों मारि बैठी है, अरु वासनाही तिसविषे विष है, अरु जेती नाडी हैं, तिनकी समष्टि नहीं है, तिस कुंडलनीविषे जब मनन होता है, तब मन होकरि प्रगट होता है, अरु जब निश्चय होता है, तब बुद्धि प्रगट होती है, जब अहंभाव होता है, तब अहंकार प्रगट होता है, जब स्मरण होता है, तब चित्त प्रगट होता है, अरु जब तिसविषे स्पर्शकी इच्छा होती है, तब पवन प्रगट होता है, इसी प्रकार पंच तन्मात्रा अरु चारौं अंतःकरण प्रगट होते हैं, अरु जेती नाडी हैं, सो सर्व कुंडलनीतें प्रगट होती है, अरु आत्माका

प्रगट होणा भी तिसीतें जाणता हौं ॥ ॥ राम उवाच ॥ हे भगवन्! आत्माका प्रगट तिसतें कैसे जाणीता है, आत्मा तौ देश काल वस्तुके परिच्छेदतें रहित है, सर्व देश, सर्व काल, सर्व वस्तुकरि पूर्ण है ॥ ॥ वसिष्ठ उवाच ॥ हे रामजी ! जैसे सूर्यका प्रतिबिंब जलविषे देखीता है, अरु धूप सर्व ठौर देखीता है, तैसे ब्रह्मसत्ता सर्वत्र समान है, अरु प्रगट सात्त्विक गुणविषे देखता है, जेती कछु नाडी अरु इंद्रियां हैं; तिनका उदय होणां कुंडलनी शक्तिसों है, अरु जब यह जीव कुंडलनी शक्तिविषे स्थित होकरि पवनकों स्थिर करता है, तब जेती कछु अंतर प्राणवायु है, सो सर्व इसके वश होता है, जैसे सर्व सैना राजाके वश होती है, तिसी प्रकार सर्व इंद्रियां इसके वश होतियां हैं, अरु जो इसके वश प्राणवायु नहीं होती, तौ इसकों आधि व्याधि रोग उपजते हैं ॥ ॥ राम उवाच ॥ हे भगवन्! आधि व्याधि कैसे होती है, सो कहौ ॥ ॥ वसिष्ठ उवाच ॥ हे रामजी ! आधि नाम है मनकी पीडाका, अरु व्याधि नाम है देहके दुःखका, आधि तब होती है, जब इसकों संकल्प होता है, जो यह सुख मेरे तांई प्राप्त होवै, अरु उह वस्तु इसकों नहीं प्राप्त होती, तब चिंता करिके दुःख पावता है, अरु व्याधि तब होती है, जब वात पित्त कफका विकार शरीरविषे होता है, अरु दुःख पावता है, जब मन अरु शरीरका दुःख एकठा होता है, तब आधि व्याधि दुःख एकठे होते हैं, जब भिन्न भिन्न होते हैं, तब दुःख भी भिन्न भिन्न होते हैं, अज्ञानीकों अरु ज्ञानवानकों न आधि होती है, न व्याधि होती है, अरु यह योगकी कला मैं विस्तारकरि नहीं कही, काहेतें जो पूर्वके ज्ञानक्रमका प्रसंग रही जाता है, अरु जेती कला है, तिन सर्वकों मैं जानता हौं, परंतु यह कला ज्ञानमार्गकों रोकणेहारी है, इसीतें विस्तार करिके नहीं कहता, अरु वासना चार प्रकारकी है, सो श्रवण कर, एक वासना सुषुप्ति है, अरु एक वासना स्वप्न है, अरु एक वासना जाग्रत है, अरु एक क्षीण वासना है, स्थावर योनिकों सुषुप्तवासना है, सो आगे फुरैगी, अरु तिर्यक् योनिकों स्वप्न वासना है, जो उन

कों वासनाका ज्ञान भी नहीं, अरु जंगम जो है मनुष्य अरु देवता आदिक तिनकों जागृत वासना है, जो वासनाहिविषे लगे हैं, यह तीन वासना अज्ञानीकों हैं, अरु क्षीण वासना ज्ञानीकी है, जो वासनाकी सत्यता नष्ट भई है, तिसकों वासना कोउ नहीं रहती, जब इस प्रकार वासना निवर्त भई, तब आगे संसार भी नहीं रहता, अरु जब कुंडलनीशक्तितें वासना फुरती है, तब पंच तन्मात्रद्वारा संसारभान होता है, संसाररूपी वृक्षका बीज वासनाहि है, दशों दिशा संसारवृक्षके पत्र हैं, अरु शुभ अशुभकर्म तिसके फूल हैं, अरु स्थावर जंगम तिसके फल हैं, जैसी जैसी वासना पुर्यष्टकासाथ मिलीकरि जीव करता है, तैसाही आगे फल होता है ॥ हे रामजी ! तातें वासनाका त्याग कर, वासनाही संसाररूपी वृक्षका बीज है; यही पुरुषप्रयत्न है, जो निर्वासनिक होणा, तब विश्व कदाचित् न भासैगा, जैसे सूर्यके उदय हुए अंधकाररूपी रात्र नहीं रहती, तैसे ज्ञानरूपी सूर्यके उदय हुए संसाररूपी अंधकार निवृत्त हो जाता है ॥ हे रामजी ! आधि व्याधि बडे रोग हैं, सो मनकरि होते हैं ॥ ॥ राम उवाच ॥ हे भगवन्! आधि रोग तौ मनकरि होता है, अरु व्याधि तौ शरीरका रोग है, मनकरि कैसे होता है, सो कहौ ॥ ॥ वसिष्ठ उवाच ॥ हे रामजी ! व्याधि दो प्रकारकी है, एक लघु है, एक दीर्घ है, लघु कहिए जो शरीरकों कोउ दुःख आनि प्राप्त होवै, सो पुण्यकरि अथवा स्नानकरि अथवा जपकरि निवृत्त हो जावै, यह लघु कही है, अरु दीर्घ व्याधि सो कहियें, जो जन्ममरणका रोग है, सो बडा रोग है, मनके शांत हुए विना निवृत्त नहीं होता, इसतें आधि व्याधि दोउ मनकरि होते हैं ॥ ॥ राम उवाच ॥ हे भगवन्! व्याधि मनकरि कैसे होती है ॥ ॥ वसिष्ठ उवाच ॥ हे रामजी ! जब चित्त शांत होता है, तब रोग कोउ नहीं रहता, अरु जबलग चित्त शांत नहीं होता, तबलग आधि व्याधि होती है, सो श्रवण कर, जो कैसे होती है, जो कछु बाहिर अग्निकरि परिपक्क होता है, तिसकों पुरुष भोजन करते हैं, तब अंतर कुंडलनी जो है, पुर्यष्टकासाथ मिली हुई जीवक

ला अरु प्राणोंकी समष्टिता, सो उदान पवन ऊर्ध्वमुख हो फुरती है, अरु अपान पवन तिसतें अधकों फुरता है, उदान अरु अपानका आपसविषे विरोध है, तिनके क्षोभतें अग्नि उठते हैं, सो हृदयकमलविषे आनि स्थित होते हैं, तब बहिर अग्निका पक्का भोजन हृदयकी अग्नितें बहुरि पक्क होते हैं, अरु सर्व नाडी अपणे अपणे भाग रसकों ले जाते हैं, तब वीर्यवाली नाडी वीर्य करिके राखत है, अरु रुधिरवाली नाडी रुधिरकरि राखत है, अरु जब राग अरु द्वेष करिके चित्त कुंडलनी शक्तिविषे क्षोभ होता है, तब नाडी अपणे स्थानोंकों छोडी देती है, अन्न भी अंतर पक्क नहीं होता, तिस कच्चे रसकरि रोग उठत है, जैसे राजाकों क्षोभ होता है, तब सैनाकों भी क्षोभ होता है, अरु जब राजाकों शांति होती है, तब सैनाकों भी शांति होते है, तैसेही जब मनविषे क्षोभ होत है, तब रोग होत है, अरु जब मनविषे शांति होती है, तब नाडी अपणे अपणे स्थानोंविषे स्थित होत हैं, रोग कोउ नहीं होता ॥ तातें हे रामजी! आधि व्याधि तब होत है, जब पुरुषका चित्त निर्वासना नहीं होता, जब चित्त शांत होत है, तब रोग कोउ नहीं रहता, तातें निर्वासनापदविषे स्थित होहु, तब रामजीनें कहा ॥ हे भगवन्! पीछे तुमनें कहा जो मंत्रोंकरि भी रोग निवर्त्त होत है, सो कैसे निवर्त्त होत है यह कहो? तब वसिष्ठनें कहा ॥ हे रामजी! प्रथम पुरुषकों श्रद्धा होत है, जो इस मंत्रकरि रोग निवर्त्त होवैगा, अरु पुण्यक्रिया जो दान आदिक हैं, अरु संतजनकी संगति होत है, अरु यरलव आदिक जो अक्षर हैं, इनके जाप करिके अरु जेते कछु जाप अरु मंत्र हैं, सो इन अक्षरों करि सिद्ध होत है, जब इनकों जाप करता है, भावनासहित, तब व्याधि रोग निवर्त्त हो जाता है, अरु योगेश्वरका क्रम जो है, अणु अरु स्थूल सो श्रवण कर, जब इह प्राण अरु अपान कुंडलनी शक्तिविषे स्थित होत है, अरु इनकों वश करिके योगी गंभीर होत हैं, जैसे मिसकविषे पवन होवै, इसी प्रकार पवनकों स्थित करिके कुंडलनी सुषुमनाविषे प्रवेश करत है, तब ब्रह्मरंध्रविषे जाय स्थित होती है, एक मूहूर्तपर्यं

त तहां स्थित होवै, तब आकाशविषे सिद्धिकों देखत है, जिस प्रकार क्रम है, तैसे तुझकों कहता हौं ॥ हे रामजी! सुषुमनाके अंतर जो ब्रह्मरंध्र है, पूरककरि तिसविषे कुंडलनी शक्ति जब जाय स्थित होते हैं, तहां अथवा रेचक प्राणवायुके प्रयोगतें द्वादश अंगुलपर्यंत मुखसों बाह्य अथवा अंतर ऊर्ध्वभूत मुहूर्त एक लगे स्थित होती है, तब आकाशविषे सिद्धोंका दर्शन होता है ॥ ॥ राम उवाच ॥ हे ब्राह्मण! जब ब्रह्मरंध्र जीवकला जाय स्थित होती है, तब तहां सिद्धोंका दर्शन कैसे होता है, दर्शन तौ नेत्रोंकरि होता है, सो नेत्र आदिक इंद्रियां उहां कोउ नहीं होती, नेत्रोंविना दर्शन कैसे होता है ॥ ॥ वसिष्ठ उवाच ॥ हे महाबाहु रामजी! भूचर जो हैं, पृथ्वीविषे विचरणेवाले इंद्रियगण, तिनकों नभश्चर जो हैं, आकाशविषे विचरणेवाले, तिनका दर्शन नहीं होता, परंतु दिव्य दृष्टिकरि दृष्ट आती है, चर्मदृष्टिसाथ नहीं दृष्ट आतै, विज्ञानके निकट जो निर्मल बुद्धि नेत्र होते हैं, तिनसाथ दर्शन होता है, जैसे स्वप्नविषे चर्मनेत्रों विना भी सर्व पदार्थ दृष्ट आते हैं, तैसे सिद्धोंका दर्शन होता है, परंतु एती विशेषता है, जो स्वप्नके पदार्थ जाग्रतविषे नहीं भासते, अर्थ सिद्ध नहीं होता, अरु सिद्धोंके समागमकी चेष्टा जाग्रतविषे भी स्थिर प्रतीत होती है मुखके बाह्य जो द्वादश अंगुलपर्यंत अपानका स्थान है, जो रेचकप्राणायामका अभ्यास होता है, अरु चिरपर्यंत प्राण स्थिरभूत होता है, तब और पुरियां अरु दिशाके स्थानमें प्राप्त होणे कों सामर्थ्य होता है ॥ ॥ राम उवाच ॥ हे ब्राह्मण! जो पदार्थ चंचलरूप है, तिसका स्थिर होणा कैसे होता है, वक्ता जो गुरु है, सो कृपाकरि कहते हैं, दुष्ट प्रश्न जो तर्करूप है, तिस करिके भी खेदवान नहीं होते ॥ ॥ वसिष्ठ उवाच ॥ हे रामजी! जैसी जैसी वस्तु हैं, तैसी तिसकी शक्ति स्वाभाविक होती है, इह आदि जगत्के फुरणेकरि नीति भई है, तैसे अबलग आत्माविषे स्वभावशक्तिका फुरणां होता है, इह जो अविद्या है सो असतरूप है, जो कहूं वस्तुरूप होकरि भी भासती है, सो जैसे वसंतऋतुविषे भी शर

त्कालके फूल दृष्ट आवते हैं, अरु वसंतऋतुके शरत्कालविषे भासते हैं, अरु यह भी एक नीति है, जो इस करिके इह द्रव्यकी शक्ति ऐसे हो जावै, परंतु स्वरूपतें सव ब्रह्मरूप है, और द्वैत नानात्व कछु नहीं, केवल ब्रह्मतत्त्व अपणे आपविषे स्थित है, व्यवहारके निमित्त नानात्वकी कल्पना हुई है, वास्तवतें द्वैत कछु नहीं ॥ ॥ राम उवाच ॥ हे भगवन्! सूक्ष्म रंध्रतें स्थूलरूप कैसे निकस जाती है, अरु अणु सूक्ष्मरूप होकरि बहुरि स्थूलभावकों कैसे प्राप्त होती है ॥ ॥ वसिष्ठ उवाच ॥ हे रामजी! जैसे आरेसाथ काष्ठ काटीता है, अरु उसके दो तुकडे हुए तिनकों शीघ्रही घर्षण करिये, तव तिनसों स्वाभाविक अग्नि प्रगट होता है, तैसे मासमय जो कमल हैं, उदरविषे, तिसके मध्य हृदयकमल है, तिसविषे सूर्य अरु चंद्रमाकी स्थिति है, तिस कमलके अंतर दो कमल हैं, एक अध, दूसरा ऊर्ध्व, सो अधःचंद्रमाकी स्थिति है, अरु ऊर्ध्व सूर्यकी स्थिति है, तिसके मध्यविषे कुंडलनी लक्ष्मी स्थित है, जैसे पद्मराग मणिका डबा होवै, जैसे मोतीयोंका भंडार होवै, तैसे उसका महाउज्ज्वलरूप है, जैसे आवर्त फैनके मिलनेतें शल शल शब्द प्रगट होता है, तैसे उसतें शब्द निकसता है, जैसे डंडसाथ हलायेतें सर्पिणी शब्द करती है, तैसे उस कुंडलनीसों प्रणव शब्द उदय होता है ॥ हे रामजी! आकाश अरु पृथ्वी जो है, ऊर्ध्व अरु अधःरूप दो कमल तिनके मध्यविषे कुंडलनी शक्ति स्पंदरूपिणी स्थित है, जीवकला पुर्यष्टक अनुभवरूप अतिप्रकाश सूर्यकी नांई हृदयरूप कमलिकी भ्रमरी है, सो सवनका अधिष्ठान आदिशक्ति है, हृदयकमलविषे विराजमान है, तिस हृदय आकाशविषे कुंडलनी शक्ति सो स्वाभाविकवायु निकसती है, सो कोमल मृदुरूप है, उही पवन निकसीकरि दो रूप होता है, एक प्राण अरु दूसरा अपान, सो अन्योन्य मिलिकरि स्फुरणरूप होता है, जैसे वृक्षके पत्र हलाते हैं, तिसकरि शीघ्रही अग्नि प्रगट होत है, अरु वांसोंके घर्षणेतें अग्नि प्रकट होता है, तैसे प्राण अपानतें अग्नि प्रगट होकरि आकाशविषे उदय होती है, तव सर्व औरतें अंतर प्रकाश होता है, जैसे सूर्यके उदय हुए

सर्व ओरतें भुवन प्रकाशरूप होता है, तैसे सर्व ओरतें प्रकाश होता है, सूर्यरूप तारा अग्निवत् तेज आकार है, हृदयकमलका स्वर्णरूप भ्रमरा है, तिसके चिंतवते योगी तद्गत होते हैं, सो प्रकाश ज्ञानरूप है, तिस तेजसाथ योगीकी वृत्ति तद्गत होती है, अर्थ यह एकत्वभावकों प्राप्त होती है, तब लक्ष योजनपर्यंत जो पदार्थ होवैं तिनका ज्ञान हो आता है, प्रत्यक्ष दृष्ट पडे आते हैं, तिस अग्निका हृदयरूपी ताल स्थान हैं, जैसे वडवाग्नि समुद्रविषे रहता है, अरु जलही ताके इंधन हैं, जो जलकों दग्ध करता है, तैसे हृदयरूपी तालविषे तिसका निवास है, अरु रस शीतलता जलरूपकों पचावत है, तिस हृदयकमलतें जो अपानरूप शीतल वायु उदय होता है, तिसका नाम चंद्रमा है, अरु प्राणरूप उष्ण पवन उदय होता है, सो सूर्यरूप है, सोई उष्ण अरु शीतल सूर्य चंद्रमा नामकरि देहमें स्थित हैं, आदि प्राणवायुरूप सूर्यतें अपानरूप चंद्रमातें सूर्यरूप होकरि स्थित होता है, सूर्य उष्ण अरु चंद्रमा शीतल है, इन दोनोंकरि जगत हुआ है, विद्या अविद्या सत्य असत्यरूप जगत दोनोंकरि युक्ति है, सत् चित् प्रकाश विद्या उत्तरायण सूर्य अग्नि आदिक नाम सो बुद्धिवान निर्मलभाव कहते हैं, अरु असत जड अविद्या तम दक्षिणायन आदिक मार्ग इह चंद्रमारूप मलिन भाव कहते हैं ॥ ॥ राम उवाच ॥ हे भगवन्! अग्निसूर्यरूप जो प्राण वायु है, तिसतें शीतल जलरूप चंद्रमा अपानरूप कैसे उत्पन्न होता है, अरु अपानजल चंद्रमारूपतें सूर्य कैसे उत्पन्न होत है ॥ वसिष्ठ उवाच ॥ हे रामजी! सूर्य चंद्रमा जो हैं, अग्निसोम सो परस्पर कार्यकारणरूप हैं, जैसे बीजतें अंकुर अरु अंकुर वृक्षतें बीज होता है, जैसे दिनसों रात्रि अरु रात्रिसों दिन होता है, छायासों धूप अरु धूपसों छाया होती है, तैसे सूर्य चंद्रमा परस्पर कार्यकारण होते हैं, कबहूं इनकी एकठी भी उपलब्धि होती है, जैसे सूर्यके उदय हुए धूप अरु छाया दोनों एकठे हो आवते हैं, अरु कार्यकारण भी दो प्रकारका है, एक कार्य सत्यरूप परिणाम करिके होता है, एक विनाशरूप परिणाम करिके होता है, एकतें जो दूसरा होता है, जैसे बीज नष्ट

हो गया तिसतें अंकुर होता है, सो विनाशरूप परिणाम होता है, अरु जैसे मृत्तिकातें घट उपजता है, सो सत्यरूप परिणाम कहाता है, जो कारणकार्यके भावविषे भी इंद्रियोंकरि प्रत्यक्ष पाइयें, तिसकर नाम सत्यरूप परिणाम है, अरु जो कार्यविषे इंद्रियोंकरि प्रत्यक्ष नहीं पाइता, दिनविषे रात्रि अरु रात्रिविषे दिनकी नांई सो विनाशरूप परिणाम कहाता है, जैसे प्रत्यक्ष प्रमाण है, तैसे अभाव भी प्रमाण है, तातें एक विनाशभाव भी कारणरूप है, जो कहते हैं, अपना संवितविषे कर्तव्य नहीं बनता, इत्यादिक युक्तिवादी कहते हैं, सो इस अर्थकी अवज्ञा करते हैं, अपणे अनुभवकों नहीं जाणते हैं, अनुभवकी युक्ति उनकों नहीं आवती, इह अभाव प्रमाण भी प्रत्यक्ष प्रगट होता है, अरु शीतलता प्रमाण है, जैसे अग्निके अभावतें शीतलताके अभावविषे उष्णता पाइती है, दिनके अभावविषे रात्रि, छायाके अभावविषे धूप, इत्यादिकका नाम अभाव प्रमाण कारण है, अरु अग्नितें धूम्रभाग निकसता है, सो मेघ जाय होता है, इस प्रकार सत्त्वरूप प्रमाणकरि सोम जो है चंद्रमा, तिसका कारण अग्नि होता है, अरु अग्नि नाश होकरि शीतलभावकों प्राप्त होता है, तब इसका नाम विनाश प्रमाणकरि अग्नि सोम चंद्रमाका कारण होता है, सप्त समुद्रोंका जल पान करिके वडवाग्नि धूम्रकों उद्गीर्ण करता है, सो धूम्र मेघकों प्राप्त होकरि अत्यर्थ जलका कारण होता है, अरु सूर्य जो सो विनाशके अर्थ चंद्रमाकों पान करता है, अमावास्यापर्यंत वारंवार भक्षणकर्ता है, बहुरि शुक्ल पक्षविषे उद्गीर्ण करता है, जैसे सारस पक्षी भेहकों भक्षण करिके उद्गीर्णकरि डारता है ॥ हे रामजी! अमृतके समान शीतल जो अपानवायु चंद्रमारूप है, सो मुखके अग्रविषे रहते हैं, उह जल कणकारूप जब शरीरविषे जाता है, तब उह जलका अणु अपानरूप सूर्यरूप प्राणी फुरणेकों प्राप्त होता है, इस प्रकार सत्यरूप परिणामसों जल अग्निका कणका होता है, अरु जब जलका नाश हो जाता है, तब उह उष्णभाव अग्निकों प्राप्त होता है, इनका नाम विनाशपरिणाम है, इस प्रकार जल अग्निका कारण कहाता

है, अग्निके नाश हुए चंद्रमा उत्पन्न होता है, इसका नाम विनाशपरिणाम है, अरु चंद्रमाके अभाव हुए अग्निका होणां होता है, इसका नाम भी विनाशपरिणाम है, जैसे तमके अभावतें प्रकाश उदय होता है, अरु प्रकाशके अभावतें तम होता है, दिनके अभावतें रात्रि, अरु रात्रिके अभावतें दिन होता है, इसके मध्य विषे जो विलक्षणरूप है, सो बुद्धिवानोंकरि भी नहीं पाइता, तम अरु प्रकाश दोनों रूपोंकरि युक्त है, इनके मध्यविषे जो संधि है, सो आत्मरूप है, तिसविषे स्थित होऊ. चेतन अरु जड दोनों रूपोंकरिके भूत फुरण होते हैं, जैसे दिन अरु रात्रि तम अरु प्रकाश करिके पृथ्वीविषे चेष्टा करते हैं, चेतन अरु जडरूप सूर्य अरु चंद्रमा दोनों रूप करिके युक्त हैं, निर्मलरूप जो प्रकाश चिद्रूप है, तिसका नाम सूर्य है, अरु जडात्मक तमरूप है, सो चंद्रमाका शरीर है, जब निर्मल चेतनरूप सूर्य आत्माका दर्शन होता है, तब संसारके दुःखरूप जो तम है सो नष्ट हो जाता है, जैसे बाह्य आकाशविषे सूर्य उदय हुएतें श्याम रात्रिका तम नष्ट हो जाता है, अरु जड चंद्रमारूप जो देह है, जब तिसकों देखता है, तब चेतनरूप सूर्य नहीं भासता, असत्यकी नांई हो जाता है, अरु चेतनकी और देखता है, तब देह नहीं भासता, केवल लक्षविषे दूसरेकी उपलब्धि नहीं होती, केवल चेतनपदकों प्राप्त हुएतें द्वैततें रहित निर्वाणभाव होता है, अरु जडभावकों प्राप्त हुए चेतन नहीं भासता, तातें संसारके दर्शनका कारण दोनों हैं, सूर्यचेतनकरि चंद्रमाजडकी उपलब्धि होती है, अरु जडचंद्रमाकरि सूर्यचैतन्यकी उपलब्धि होती है, जैसे दीपक अग्निका अंधकारविना प्रकाश नहीं होता, तैसे इन दोनोंविना आत्माकी उपलब्धि नहीं होती, अरु प्रकाशविना केवल जडकी उपलब्धि भी नहीं होती, जैसे सूर्यका प्रतिबिंब कंधउपर प्रकाशता है सो कंध प्रकाशकरि भासता है, अरु प्रकाश कंधकरि भासता है, तैसे चित्त फुरता है, तब चेतनकों जगत भासता है, अरु फुरणा जगतकरि होता है, फुरणेतें रहित अचैत्य चिन्मात्र निर्वाण होता है ॥ तातें हे रामजी ! जगत्कों अग्नि अरु सोम जाणो, देहदेह

विषे है संबंध है, परंतु जिसका अतिशय होवै, तिसका जय होता है, प्राण अग्नि उष्णरूप है, अरु अपान शीतल चंद्रमारूप है, प्रकाश अरु छायारूप है, इनकों जानणा सुखका मार्ग है ॥ हे रामजी ! जब बाह्यसों शीतलरूप अपान अंतरकों आवता है, तब उष्णरूप प्राणविषे जाय स्थित होता है, अरु जो हृदयस्था नसों निकसीकरि प्राण उष्णरूप बाह्यकों द्वादश अंगुलपर्यंत जाता है, तब अपान जो है, चंद्रमाका मंडल, तिसकों प्राप्त होता है, सो अपान प्राणरूप होकरि उदय होता है, अरु प्राण अपानरूप होकरि उदय होता है, जैसे दर्पणविषे प्रतिबिंब पडता है, तैसे इनका परस्पर आपसमें प्रतिबिंब पडता है, जहां षोडश कला चंद्रमाकों सूर्य ग्रास लेता है, तिस मध्यभावविषे स्थित होउ, जब अपान प्राणोंके स्थानविषे आनि स्थित होता है, अरु प्राणरूप होकरि उदय नहीं भया, सो शांतिरूप भाव है, तिसविषे स्थित होउ, अरु प्राण निकसीकरि मुखसों द्वादश अंगुलपर्यंत जब बाह्य स्थित होता है, अरु जबलग अपान भावकों प्राप्त होकरि उदय नहीं भया, उह जो मध्यभाव है, तिसीविषे स्थित होउ, अरु मेष आदिक जो द्वादश राशि हैं, तिस एककों त्यागिकरि दूसरी राशिकों संक्रांति नहीं प्राप्त भई, तिसका नाम संक्रांति है, तिनके मध्यविषे जो संधि, तिसका नाम पुण्यकाल है, सो पुण्यसमय अंतर अरु बाह्य प्राण अपानकी संधिके समय में तृणवत है, अरु तिन संक्रांतिविषे जो वृषवती संक्रांति वैशाखकी है, जो शिवरात्रि चैत्रकी संक्रांति त्रयोदश दिन होत है, अरु आस्तकी संक्रांति त्रयोदश दिन इनका नाम वर्षवती है, जहां दिन अरु रात्रि सम होत है, दक्षिणायन अरु उत्तरायणकी जो संधि होत है, इनके अंतर अरु बाह्य भेदकों जाणै, तब जन्मतें रहित परम बोधकों प्राप्त होवै ॥ हे रामजी ! उत्तरायणमार्ग योगीश्वरोंका है, सो क्रमकरि मुक्त होत हैं, अरु दक्षिणायन मार्ग कर्म करणेवालोंका है, तिसकरि बहुरि संसारभागी होत हैं, तिनके मध्यविषे जो संधि है, तिसविषे स्थित हुएतें परम उत्तम पदकों प्राप्त होत है ॥ ॥ इति श्रीयोगवासिष्ठे निर्वाणप्र

करणे अग्निसोमविचारयोगो नाम अष्टषष्टितमः सर्गः ॥ ६८ ॥ ॥ ॥ ॥ वसिष्ठ उवाच ॥
हे रामजी ! यह सर्व कला योगकी विस्तार करिके कही है, अरु उत्तम प्रभाव तामें वर्णन भया है, अरु प्रयोजन यही है, जो निर्वाण पदमें स्थित होवै, आत्मा ब्रह्मकी एकता होवै, जो बहुरि जन्मादिकोंका दुःख न होवै, ब्रह्म चित सत आनंद स्वभावमात्र है, जो एकवार तामें तद्भाव जो है, एकत्वभावसों होता है, तब सदैव उही भाव रहत है, अरु धनी शक्तिका होत है, अविद्या नाश हो जाती है, इस प्रकार वही चूडा राणी योगके अभ्यास अरु ज्ञानके अभ्याससों पूर्ण होत भई, तब सर्व शक्तिसों संयुक्त होइकरि अरु अणिमा आदि सिद्धोंकी प्राप्ति होत भई, तब मध्य आकाशकों उडी, एक निशामें राजा शयन करी रहा था, अरु तामें अवकाश पाया, अरु मध्य आकाशके बहुत स्थानोंमें विचरत भई, अरु मध्य देवलोकके कालिरूप अरु अविद्यत विलोचन अति चंचल धारिके गमन करत भई, अरु मध्य दिशाके जात भई, अरु मध्य देवलोक अरु मध्य दैतोंके अरु मध्य राक्षसोंके, अरु मध्य विद्याधरोंके, अरु मध्य सिद्धोंके, अरु मध्य सूर्यलोकके,अरु मध्य चंद्रमा लोकके,मध्य तारामंडलके, मध्य मेघमंडलके, अरु मध्य इंद्रलोकके गमन करत भई, तहांका कौतुक देखीकरि बहुरि अधलोकमें आई, अरु मध्य समुद्रके प्रवेश करिके बहुरि मध्य अग्निके प्रवेश करत भई, अरु मध्य पवनके पवनरूप होत भई, अरु मध्य नागलोकके कन्याविषे क्रीडा करत भई, मध्य वनोंके, मध्य पर्वतोंके, अरु मध्य भूतोंके, अरु मध्य अप्सराके, अरु मध्य त्रिलोकीके विचरती भई, लीला करिके एक क्षणमें तिसी स्थान आवत भई, जहां राजा शयन करी रहा था, समीप राजाके शयनकरि रही; जैसे भंवरीभंवरा कमलनीके मध्य शयन करते हैं; अरु राजा तिसकों न जाणत भया, जो राणी गई थी, अथवा न गई थी, बहुरि रात्र व्यतीत भई, प्रातःकाल हुआ, अरु राजा स्नानशालामें जायकरि स्नान करत भया, अरु प्रवाह कर्म वेदोक्त हैं, सो करत भया, अरु राणी भी प्र

वाह कर्म करत भई, अरु राजाकों शनैः शनैः उपदेश तत्त्वका किया, जैसे पिता पुत्रकों मिष्ट वाणीकरि उपदेश करता है, अरु पंडितोंकों कहत भई; जो राजाकों तुम भी उपदेश करो, जो यह जगत स्वप्नवत भ्रम है, अरु दीर्घ रोग है, दुःखका कारण है, सो आत्मज्ञान औषधतें नाश होता है, अवर इसका औषध कोउ नहीं, इसी प्रकार आप भी राजाकों उपदेश करै, अरु पंडितों भी उपदेश करैं, परंतु राजा तिस ज्ञानकों पावत न भया, अरु विक्षेपताविषे रहा, उत्तमपदमें विश्राम पावत न भया, जो अपणा आप है, अरु केवल चित्तरूप प्रत्यक् आत्मा है ॥ राम उवाच ॥ हे महामुनिजी ! वह राणी तौ सर्वशक्तिसंपन्न भई थी, योगकलाविषे भी अति चतुर, अरु ज्ञानकलाविषे भी तद्रूप भई थी, अरु राजा भी अति मूढ न था, तिसकों उसका उपदेश दृढ क्यों न होत भया, अरु राणी भी तिसकों प्रीतिकरि उपदेश करती थी, उह कारण क्या था, जो अपणे पदविषे स्थिति पावत न भया॥ ॥ वसिष्ठ उवाच ॥ हे रामजी ! जैसे अच्छिद्र मोतीविषे तागा प्रवेश नहीं करता, तैसे चूडालाका उपदेश राजाकों न वेधत भया, सो जबलग आप विचार न करै, अरु तिसविषे दृढ अभ्यास न होवै, तबलग ब्रह्मा उपदेश करै, तब भी तिसकों न वेधै, काहेतें जो आत्मा आपहीकरि जाण्या जाता है, अरु इंद्रियका विषय नहीं, जो अधिष्ठानरूप है, अरु स्वभावमात्र है, अरु आपही आपकों देखता है, अरु किसी मन इंद्रियका विषय नहीं, अरु सर्वका अपणा आप है॥ ॥ राम उवाच॥ हे भगवन्! जब अपणे आपकरि देखता है, तब गुरु अरु शास्त्र उपदेश किसनिमित्त करते हैं ॥ ॥ वसिष्ठ उवाच ॥ हे रामजी ! गुरु अरु शास्त्र जताय देते हैं, जो तेरा स्वरूप आत्मा है, परंतु इदं करिके नहीं दिखावते; अरु विचारनेत्रसों आपकों आपही देखीता है, विचारतें रहित तिसकों नहीं देखी सकता, जैसे किसी पुरुषकों चंद्रमा कोउ सचक्षु दिखावता है, जो अमके स्थानमें देख उदय है, जब वह सचक्षु होता है, तौ देखता है, अरु मंददृष्टि होता है, तब नहीं देखता, तैसे गुरु अरु शास्त्र आत्माका रूप वर्णन करते हैं, अरु ल

खावते हैं, जब उह विचार नेत्रसों देखत है, तब कहता है, जो मैं देख्या, अरु अवरके दिखावणेका योग्य होता है ॥ हे रामजी ! आत्मा किसी इंद्रियका विषय नहीं, जो अपणा आप मूलरूप हैं, अरु इंद्रिय कल्पित हैं अरु जब तूं कहे के तुम भी उपदेश इंद्रियकरि करते हौ; तौ सर्व इंद्रियांका विस्मरण करु, जो मूल अपणां तुझे भासै, अरु अभाववृत्ति इंद्रियां किसीकों तेरा अभाव न होवैगा ॥ हे रामजी ! इसीपर एक इतिहास क्रांतका है सो श्रवण करु, एक क्रांत था, उस पास धन अनाज भी बहुत था; परंतु कृपण था, किसीकों देता कछु न था, अरु अवर धनकी तृष्णा करता रहै, जो किसी प्रकार चिंतामणि मेरे तांई प्राप्त होवै, सदा इही वांछा करै, इसी वांछाकरि एक समय घरतें बाहिर निकस्या, अरु पृथ्वीकी उर देखता जावै, तब एक स्थान था, तहां घास अरु भूस पडा था, तिसविषे एक कउडी दृष्ट पडी, तब कउडीकों उठाय लिया, बहुरि देखणे लगा, जो कछु अवर भी निकसै, तब दूसरी कउडी निकसी, इसी प्रकार ढुंढते हुए त्रय दिन व्यतीत भए, तब चार कउडी निकसी, बहुरि अष्ट निकसी जब त्रय दिन अवर व्यतीत भये ढुंढते,तब चिंतामणि चंद्रमाकी नांई प्रगट देखा,तब मणि लेकरि अपणे घर आया; अरु बडे हर्षकों प्राप्त भया ॥ हे रामजी ! तैसे गुरु अरु शास्त्रोंकरि तत्त्वमसि अहंब्रह्मास्मिका पावणा, सो कउडीयांका खोजणां है, अरु आत्मा चिंतामणिरूप है, परंतु जैसे कउडियांके खोजते चिंतामणिविना खोजे न पाई, तैसे गुरु अरु शास्त्रोंकरि आत्मपद पाइता है,गुरुशास्त्रोंविना नहीं पाइता, धनकरि तपकरि कर्मकरि आत्मा नहीं पाइता, केवल अपणे आपकरि पाइता है ॥ हे रामजी ! राजा शिखरध्वज चूडालाके पासतें उठिकरि स्नानकों गया, तब राजाके मनविषे वैराग्य उपजा, जो यह संसार मिथ्या है, बहुत भोग हम भोगे हैं, तौ भी हृदयकों शांति न भई, अरु इन भोगका परिणाम दुःखदायक है, जब मनविषे ऐसा विचार उपजा, तब राजानें गौ, पृथ्वी, स्वर्ण, मंदिर अरु अवर सामग्री बहुत दान करी,जेते कछु ऐश्वर्यके पदार्थ हैं, सो दान किये, ब्राह्मणोंकों दिये, अवर

गरीब अतिथिकों दिया, जैसे जैसे किसीका अधिकार देख्या, तैसे दिया, अरु राणीनें भी ब्राह्मणों मंत्रीयों कों कहा, जो राजाकों तुम यही उपदेश किया करौ, जो यह भोग मिथ्या हैं, इनविषे सुख कछु नहीं, अरु आत्मसुख बडा सुख है, जिसके पायेतें जन्ममृत्युसों मुक्त होता है, इसी प्रकार राजा ब्राह्मणोंतें श्रवण करै, अरु अपणे मनविषे भी वैराग्य उपजा था, तब राजा कहत भया, जो इस संसारदुःखतें मैं रहित होउं यह संसार बडा दुःख है, इसविषे सदा जन्ममरण है, तब राजाके मनविषे हुआ जो मैं तीर्थोंकों जाउं, अरु स्नान करौं, बहुरि राजा तीर्थोंकों चला, तब स्नान भी करै, दान भी करै, इस प्रकार देवता अरु तीर्थों अरु सिद्धोंके दर्शन किये, स्नानकरि बहुरि ग्रहकों आया, तब आयकरि रात्रके समय, राणी साथ शयन किया, अरु राणीकों कहा, जो हे अंगना! अब मैं वनकों जाता हौं, तप करणेके निमित्त जो यह भोग मेरे तांई दुःखदायक भासते हैं, अरु राज्य भी वनकी नांई उजाड भासता है, तातें मैं तपकेनिमित्त वनकों जाता हौं, अरु यह भोग बहुत कालपर्यंत हम भोगते रहे तौ भी इनविषे सुख दृष्ट न आया, तातें मेरे तांई अटकावणा नहीं, मैं वनकों जाता हौं, तब राणीनें कहा ॥ हे राजन्! अब तेरी कवन अवस्था है, जो तूं वनकों जाता है, अब तौ हम राज्य भोगही, जैसे वसंतविषे फूल शोभा पावते हैं, अरु शरत्कालविषे नहीं शोभते, तैसे हम भी वृद्ध होवेंगे, तब वनकों जावेंगे, अरु वनहीविषे शोभा पावेंगे, जैसे वनके फूल श्वेत होवें तैसे हमारे केश श्वेत होवेंगे, तब शोभा पावेंगे, अब तौ राज्य करौ ॥ हे रामजी! इस प्रकार जब राणीनें कहा, तब राजाका चित्त वैराग्यहीविषे रहा, राणीका कहणां चित्तविषे न ल्यावता भया, जो तीर्थोंके स्नान अरु दानकरि राज्यसुखतें राजाकों वैराग्य उपजा, परंतु शांति न पाई, जैसे चंद्रमाविना कमलिनी शांति नहीं पावती,तैसे ज्ञानविना राजाकों शांति न प्राप्त भई,परंतु वैराग्य करिके कहणे लगा, हे राणी! अब मेरे तांई अटकावणां नहीं,अब राज्य मुझकों फीका लगा है,मैं वनकों जाता हौं,जो ठहराव मेरा इहां नहीं होता,

जो तूं कहै हम इहां तेरी टहल करते थे, पाछे कवन करैगा, तब पृथ्वीही हमारी टहल करैगी,अरु वनकी वीथि यां भी स्त्रीयां होवैंगियां,अरु मृगके बालकही पुत्र हैं, आकाश हमारे वस्त्र हैं, फूलके गुच्छे भूषण हैं, ऐसे राजानें कहा, तब आगे रात्रका समय हुआ अरु राजा उहांतें चला, तब उहांतें राणी अरु नगरतें सैना भी पाछे चली, बडी भयानक रात्रविषे चले, कोटके बीचही जाय स्थित भये, तब राजा अरु राणी सोए, जैसे भंवराभं वरी सोवते हैं, सैना अरु सहेलियां सब सोए गये, कर्मनिद्रा करि जड होगये, जैसे पत्थरकी शिला जड होती है, जब अर्ध रात्र व्यतीत भई, तब राजा जाग्या, अरु देख्या जो सब सोए गये हैं, तब शय्यातें उ ठ्या, राणीके वस्त्र एक उर करिके हाथविषे खड्ग लेकरि निकस्या, जैसे क्षीरसमुद्रतें विष्णु भगवान लक्ष्मी सों उठता है,तैसे उठ्या, अरु सब लोक लंघता जब दरवाजे कोटकेपर आया, तब अर्ध मनुष्य जागे थे, अरु अर्ध सोए थे, उननें राजाकों देख्या, तब राजाने कहा, द्वारपालो ! तुम इहांही बैठे रहौ, मैं एकलाही वीरयात्राकों जाता हौं, तब राजा तीक्ष्ण वेगकरि चल्या गया, अरु बाहिर निकसीकरि कहा ॥ हे राजलक्ष्मि ! तुझकों नम स्कार हैं, अब मैं वनकों चला हौं, तब एक वनविषे आया, जहां सिंह अरु सर्प अवर भयानक जीव हैं, ति नके शब्द सुणता आगे चला गया, तिसतें आगे अवर बेला आया तिसकों भी लंघी गया, जब आठ प्रह र राजा चला गया, तब एक ठौर जाय स्थित भया, जब सूर्य उदय हुआ, तब राजानें स्नान करिके संध्या दिक कर्म किये अरु वृक्षके फल लेकरि भोजन किये, बहुरि आगे चला, जो कोइ पाछेतें आयेकरि मेरे तां ई अटकावता होवै, इसनिमित्त तीक्ष्ण चला, बडे पहाड अरु नदियां बेले राजा उल्लंघिकरि दिन द्वादशप र्यंत चला गया,जब मंदराचल पर्वतके निकट गया,तब एक वनविषे जाय स्थित भया, अरु स्नान करिके कछु भोजन किया,अरु पत्र लेकरि झुपडी बणाई, मेघकी रक्षा अरु छायाकेनिमित्त तहां स्थित भया, अरु वा सन भी बनाए, तिनविषे फूल फल राखे, जब प्रातःकाल होवै, तब स्नान करिके प्रहरपर्यंत जाप करै, बहु

रि देवताके पूजननिमित्त फूल चुणै, अरु द्वितीय स्नान करिके प्रहर ऐसे व्यतीत करै, जब तीसरा प्रहर होवै, तब फलभोजन करै, चउथा प्रहर बहुरि संध्या जाप करै, इसी प्रकार दिन अरु रात्र व्यतीत करै, कछुक काल रात्रकों शयन करै, अवर जापविषे व्यतीत करै, इसी प्रकार कालकों व्यतीत करै ॥ हे रामजी! राजाकी तौ यह अवस्था भई, अब राणीकी अवस्था श्रवण करु, जब अर्ध रात्रतें पाछे राणी जागी, तब क्या देखै जो राजा इहां नहीं, वनकों गया है, अरु शय्या खाली पडी है, तब राणीनें सहेलीयांकों जगाई, अरु कहणे लगी बडा कष्ट है, राजा वनकों निकसी गया है, अरु बडे भयानक वनविषे जावैगा, ऐसे कहीकरि मनविषे विचार किया, जो राजाकों देखा चाहिये, तब योगविषे स्थित होकरि आकाशकों उडी, आकाशकी नांई देहकों अंतर्धान करिके जैसे योगेश्वरी भवानी उडती है; तैसे उडी, अरु आकाशविषे स्थित होकरि देखा जो राजा चला जाता है, तब राणीके मनविषे आया जो इसका मार्ग रोकौं, बहुरि एक क्षणमात्र स्थित होकरि भविष्यतकों विचारणे लगी, जो राजा अरु मेरा संयोग नीतिविषे कैसे रचा है, तब देखत भई जो राजा अरु मेरा मिलाप होणेविषे बहुत काल रहता है, अरु अवश्य मिलाप होणा है, मेरे उसकों उपदेशकरि जगावणा है, परंतु केतेक काल उपरांत अब इसीके कषाय परिपक्क नहीं, तातें अब राजाका मार्ग नहीं रोकणां, तब राणी बहुरि अपणे घर आई, अरु शय्यापर शयन किया, अरु बडी प्रसन्नताकों प्राप्त भई, जब रात्र व्यतीत भई, तब मंत्रीकों कहणे लगी जो राजा एक तीर्थ पर्सणे गया है, दर्शन करिके बहुरि आवैगा, ऐसे मंत्री अरु प्रजाकों कहा, बहुरि मंत्रीकों आज्ञा करी जो तुम अपणे कार्यविषे वर्तों, तब मंत्री अपणी चेष्टाविषे वर्तणे लगे, इसी प्रकार राणीनें अष्ट वर्षपर्यंत राज्य किया, अरु प्रजाकों सुख दिया, जैसे बागवान कमलोंके क्यारेकों सुखी पालता है तैसे राणीनें प्रजाकों सुख दिया, अरु उहां राजाकों अष्ट वर्ष तप करते व्यतीत भये हैं, अरु राजाके अंग दुर्बल हो गये, अरु उहां राणीनें राज्य किया, जैसे

भंवरा अवर ठौर होवै, तैसे इनकों व्यतीत भया, और और ठौरविषे, तब राणीनें विचार किया, जो राजा अब मेरे वचनोंका अधिकारि भया है, अंतःकरण राजाका तप करिके शुद्ध हुआ है, अब राजाकों देखियें, तब राणी उडी आकाशकों गई, अरु नंदनवन इंद्रका है सो देख्या, उहांके जो दिव्य पवन हैं, तिनका स्पर्श हुआ, तब राणीके चित्तविषे आया, जो मेरे तांई भर्त्ता कब मिलैगा, बहुरि कहणे लगी जो बडा आश्चर्य है, मैं तौ सतपदकों प्राप्त भई थी, तौ भी मेरा मन चलायमान भया है, तातें इतर जीवकी क्या कहणी है, तब उहांतें चली, आगे कमल फूल देखे, देखिकरि कहणे लगी, जो मेरे तांई यह भर्त्ता कब मिलैगा, जिस करि भर्त्ताकों पाइता है, मैं कामातुर भई हौं, बहुरि मनकों कहणे लगी ॥ हे दुष्ट मन! तूं तौ सतपदकों प्राप्त भया था, तेरा भर्त्ता आत्मा है, अब तूं मिथ्या पदार्थोंकी अभिलाषा काहेकों करता है, बहुरि कहणे लगी, जबलग देह है, तबलग देहके स्वभाव भी साथ रहते हैं; जो मेरे तांई यह अवस्था प्राप्त भई है, तौ भी मन चलायमान होता है, तातें इतर जीवकी क्या वार्त्ता करणी है, तब राणी मेघके स्थानोंकों लंघी अरु महाबिजलीके स्थान लंघे, बडे पर्वत अरु नदियांकों लंघी, समुद्र भयानक स्थानोंकों लंघी, अरु मंदराचल पर्वतकेपास वनविषे आनि स्थित भई, अरु कहणे लगी, जो मेरा भर्त्ता कहां है, बहुरि समाधिविषे स्थित होकरि देखा जो अमके स्थानमें बैठा है, तप करिके अंग महादुर्बल हो गये हैं, अरु ऐसे स्थानविषे प्राप्त भया है, जहां अवर जीवकी गम नहीं, अरु महावैतालकी नांई रात्रिकों चला आया है, तातें अज्ञान महादुष्ट है, जो ऐसा राजा तपकों लगा है, स्वरूपके प्रमाद करिके जड है, अब ऐसे होवै, जो किसी प्रकार अपणे स्वरूपकों प्राप्त होवै, परंतु मेरे इस शरीर करिके ज्ञान इसकों न उपजैगा, काहेतें जो राजाकों प्रथम यह अभिमान होवैगा, जो मेरी स्त्री है, अरु बहुरि कहैगा, मैं इनहीके निमित्त राज्य छोडा है, बहुरि मेरे तांई दुःख देणेकों आई है, तातें अवर शरीर ब्रह्मचारिका धारौं, ऐसे विचार करिके शीघ्र

ही ब्रह्मचारिका शरीर धारत भई, जैसे जलका तरंग एक स्वरूपकों छोडता है, अरु अवर हो जाता है, तैसे महासुंदर शरीरकों धारिकरि एक ग्रिंठ पृथ्वीतें ऊपर चलणे लगी, अरु हाथविषे रुद्राक्षकी माला, अरु कमंडलुकों धारै, अरु मृग छालाकों धारै, अरु मस्तकपर विभूति लगाई, जैसे सदाशिवके मस्तकपर चंद्रमा विराजता है, तैसे सुंदर विभूतिकों लगाया, अरु श्वेतही यज्ञोपवीतकों पाया, ऐसा चिन्ह धारिकरि चली, तब राजा देखीकरि आगेतें उठि खडा हुआ, अरु नमस्कार किया, फूल चरणोंपर चढाये, अरु अपणे स्थानपर बैठाया, अरु कहणे लगा ॥ हे देवपुत्र ! आज मेरे बडे भाग्य हैं, जो तुमारा दर्शन भया ॥ हे देवपुत्र ! तुमारा आवणा कैसे हुआ ? ॥ ॥ देवपुत्र उवाच ॥ हे राजन् ! हम बडे बडे पर्वत देखते आये हैं, अरु तीर्थ करते आये हैं, परंतु जैसी भावना तेरेविषे देखी है, तैसी किसीविषे नहीं देखी ॥ हे राजन् ! तुझनें बडा तप किया है, अरु तूं इंद्रियजित दृष्टि आवता है, अरु मैं जानता हौं जो तेरा तप खड्गकी धारा जैसा तीक्ष्ण है, तातें तूं धन्य है, तेरे तांई नमस्कार है ॥ परंतु हे राजन् ! आत्मयोगके निमित्त भी कछु तप किया है, अथवा नहीं किया, सो कहु ॥ तब राजानें जो फूलकी माला देवपूजनके निमित्त रखी थी सो देवपुत्रके गले पाई, अरु पूजाकरि बहुरि कहा ॥ हे देवपुत्र ! तुमसारखेका दर्शन दुर्लभ है, अरु अतिथिका पूजन देवतातें भी अधिक है ॥ हे देवपुत्र ! तेरे अंग बहुत सुंदर दृष्ट आवते हैं, ऐसेही मेरी स्त्रीके अंग थे, नखशिखपर्यंत तेरे उही अंग दृष्ट आते हैं, परंतु तूं तौ तपसी है, तेरी मूर्ति शांतिके लिये हुई है, मैं कैसे कहौं जो उही है ॥ तातें हे देवपुत्र ! कहूं जो तूं पुत्र किसका है, अरु इहां किसनिमित्त आया है, अरु आगे कहां जावैगा, यह संशय मेरा निवृत्त करौ, तब देवपुत्रनें कहा ॥ हे राजन् ! एक समय नारद मुनि सुमेरु पर्वतकी कंदराविषे आया था, सो महासुंदर कंदरा है, जहां आश्चर्यके वृक्ष अरु मंजरियां फूलफलसाथ सबपूर्ण हैं, ब्राह्मणोंकी कुटी तहां बणी हुई हैं, तिस स्थानकों देखीकरि ब्रह्मवेत्ता नारद मुनि समाधि लगाय बै

ठा, अरु गंगाका प्रवाह चलता है, जहां सिद्धोंकी गम है, अवर जीवोंकी गम नहीं, तब केता काल समाधिविषे स्थित रहा, जब समाधितें उतऱ्या, तब भूषणका शब्द हुआ, तब नारदजीके मनविषे महाआश्चर्य हुआ, जो इहां तौ आवणेकी गम किसीकी नहीं, यह भूषणोंका शब्द कहांतें आया, तब उठीकरि देखणे लगा, जो गंगाका प्रवाह चला आवता है, तहां उर्वशी आदिक अप्सरा स्नान करतियां हैं, वस्त्रों कों उतारे हुए महासुंदर हैं, जब उनकों देख्या, तब नारदजीका विवेक आवरण भया, अरु वीर्य चल्या, तिसके पास सुंदर वल्ली थी, तिसके पत्रपर जाय स्थित भया, चंद्रमाकी नांई उज्वल इस प्रकार सुणीकरि शिखरध्वज कहत भया ॥ हे देवपुत्र! ऐसा ब्रह्मवेत्ता नारद मुनि सर्वज्ञ अरु बडा मननशील तिसका वीर्य किसनिमित्त चल्या, तब देवपुत्रनें कहा ॥ हे राजन्! जबलग शरीर है, तबलग अज्ञानीका अरु ज्ञानीका भी शरीरस्वभाव निवृत्त नहीं होता, परंतु एक भेद है, जब ज्ञानवानकों दुःख आय प्राप्त होता है, तब दुःख नहीं मानता, अरु जब सुख आय प्राप्त होता है, तब सुख नहीं मानता, हर्षवान नहीं होता, अरु जब अज्ञानीकों दुःखसुख आय प्राप्त होता है, तब हर्षशोक करता है, जैसे श्वेत वस्त्रपर केसरका रंग शीघ्रही चडि जाता है, तैसे अज्ञानीकों दुःखसुखका रंग शीघ्रही चडि जाता है, अरु जैसे सोमके वस्त्रकों जलका स्पर्श नहीं होता है, तैसेही ज्ञानवानकों दुःखसुखका स्पर्श नहीं होता, अरु जिसके अंतःकरणरूपी वस्त्रकों ज्ञानरूपी मोम नहीं चडी, तिसकों दुःखसुखरूपी जल स्पर्शकरि जाता है, अरु ज्ञानवान मेणवत है, उनके अंतःकरणकों दुःखसुख नहीं होता, अज्ञानीकों होता है, जो दुःखकी नाडी भिन्न है, अरु सुखकी नाडी भिन्न है, जब सुखकी नाडीविषे स्थित होता है, तब दुःख कोउ नहीं देखता, जब दुःखकी नाडीविषे स्थित होता है, तब सुख नहीं देखता, अज्ञानीकों कोउ दुःखका, कोउ सुखका स्थान है, अरु ज्ञानीकों एक आभासमात्र दिखाई देता है, बंधमान नहीं होता, जबलग इसकों ज्ञानका संबंध है, तबलग दुःख निवृत्त

नहीं होता, तब राजानें कहा, वीर्य जो गिरता है, सो वीर्य कैसे निवृत्त होता है, तब देवपुत्रनें कहा ॥ हे राजन् ! जब इसका चित्त वासना करिके क्षोभवान होता है,तब नाडी भी क्षोभ करतियां है, अरु अपणे स्थानोंकों त्यागणे लगतियां हैं, तब वीर्यवाली नाडीतें स्वाभाविकही वीर्य नीचेकों चला आवता है, बहुरि राजानें कहा ॥ हे देवपुत्र! स्वाभाविक क्या कहिये, देवपुत्रनें कहा॥ हे राजन्! आदि परमात्मशुद्ध चेतनविषे जो फुरणा हुआ है, तिस क्षणमात्र शक्तिके उत्थानकरि आगे प्रपंच बनि गया है,तिसविषे आदि नीति हुई है, जो यह घट है,यह पट है, यह अग्नि है, इसविषे उष्णता है, यह जल है,इसविषे शीतलता है,तैसेही नीति है, जो वीर्य उपरतें नीचेकों आवता है, जैसे पर्वततें पत्थर गिरता है,सो नीचेकों चला आता है, तैसे वीर्य भी नीचेकों आता है, तब राजानें प्रश्न किया ॥ हे देवपुत्र ! इसकों दुःख कैसे होता है अरु सुख कैसे होता है, अरु दुःखसुखका अभाव कैसे होता है, तब देवपुत्रनें कहा ॥ हे राजन् ! जब यह जीव कुंडलनी शक्तिविषे स्थित होता है, अरु दृश्य जो है, चार अंतःकरण, अरु इंद्रियां देह तिनविषे अभिमान करिके दुःखी सुखी होता है, इनके दुःखसाथ दुःखी होता है, अरु इनके सुखसाथ सुखी होता है, जैसा जैसा आगे प्रतिबिंब होता है, तैसा तैसा दुःखसुख भासता है, जैसे शुद्ध मणीविषे प्रतिबिंब पडता है, सो अज्ञान करिके भासता है, ज्ञान करिके इनका अभाव हो जाता है, अरु जब तिसकों ज्ञानरूपका आवरण करिके आगे पडल होत है, तब प्रतिबिंब नहीं पडता, ज्ञान कहियें जो देहादिकके अभिमानतें रहित होणां, जो न देहादिक हैं, अरु न मैं इनकरि कछु करता हौं, जब ऐसे निश्चय होवै, तब दुःखसुखका भान नहीं होता, काहेतें जो संसारका दुःखसुख इसकी भावनाविषे होता है, जब वासनातें रहित हुआ, तब दुःखसुख भी सब नष्ट हो जाते हैं, जैसे जब वृक्षही जलि जाता है, तब पत्र फूल फल कहा रहैं, तैसे अज्ञानरूप वासनाके दग्ध हुए, दुःखसुख कहां रहैं बहुरि राजानें कहा ॥ हे भगवन्! तुमारे वचन श्रवण करते हुए मैं तृप्त नहीं होता, जैसे मेघका शब्द सुणते मोर

तृप्त नहीं होता, तातें कहौ, जो तुमारी उत्पत्ति कैसे भई, तब देवपुत्रनें कहा ॥ हे राजन्! जो कोउ प्रश्न करता है, तब बडे तिसका निरादर नहीं करते, तातें तूं जो पूछता है, सो मैं कहता हौं ॥ हे राजर्षि! उह वीर्य था सो नारदमुनिनें एक मटकीविषे पाया. अरु उह कैसी मटकी थी स्वर्णवत जिसका उज्ज्वल चमत्कार, तिसविषे वीर्य पायकरि तिसके उपर दूध पाया, अरु उपर उसके दूध पाया, मटकीकों पूर्ण किया, अरु वीर्यकों एक कोणकी उर किया, बहुरि मंत्रोंका उच्चार किया, अरु आहुति किये, भली प्रकार पूजन किया, जब एक मास व्यतीत भया, तब मटकीतें बालक प्रगट हुआ, सो कैसा बालक, जैसा चंद्रमा क्षीर समुद्रतें निकसा है, तिस बालककों लेकरि नारद आकाशकों उडता भया, तब नारदका जो पिता है ब्रह्माजी, तिसके पास ले आया, अरु आयकरि नमस्कार किया, तब बालककों पितामहनें गोदविषे बैठाया, अरु आशीर्वाद किया, जो तूं सर्वज्ञ होवैगा, अरु शीघ्रही अपणे स्वरूपकों प्राप्त होवैगा, अरु कुंभतें जो उपजा बालक है, तिसका नाम भी कुंभ राखा, सो कुंभ सर्वज्ञ मैं हौं, नारदजीका पुत्र अरु ब्रह्माजीका पौत्रा हौं, सरस्वती मेरी माता है, गायत्री मेरी मासी है, मेरे तांई सर्व ज्ञान है, तब राजानें कहा, हे देवपुत्र! तुम सर्वज्ञ दृष्ट आते हौ, तुमारे वचनोंकरि मैं जानता हौं, तब देवपुत्रनें कहा ॥ हे राजन्! जो तुम पूछा सो मैं कहा, अब कहु जो तूं कवन है, अरु इहां कर्म क्या करता है, अरु इहां किसनिमित्त आया है, तब राजानें कहा ॥ हे देवपुत्र! आज मेरे बडे भाग्य उदय हुए हैं, जो तुमारा दर्शन भया है, तुमारा दर्शन बडे भाग्यसों प्राप्त होता है, यज्ञ अरु तपतें तुमारा दर्शन श्रेष्ठ है, तब देवपुत्रनें कहा ॥ हे राजन्! अपना वृत्तांत कहु, जो तूं कवन है, राजानें कहा, हे देवपुत्र! मैं राजा हौं, अरु शिखरध्वज मेरा नाम है, अरु राज्यका मैंनें त्याग किया है, जो मेरे तांई संसार दुःखदायक भास्या, तिसके भयकरि त्याग किया, वारंवार जन्म अरु मृत्यु संसारविषे दृष्ट आता है, तातें राज्यका त्यागकरि इहां तप करणे लगा हौं, तुम त्रिकालज्ञ हौ, अरु जान

ते हौं, तथापि तुमारे पूछणेकरि कछु कहा चहिये, मैं त्रिकाल संध्या करता हौं, अरु जाप करता हौं, तौ भी मेरे तांई शांति नहीं प्राप्त भई, तातें जिसकरि मेरे दुःख निवृत्त होवैं, सोइ उपाय कहौ ॥ हे देवपुत्र ! मैं तीर्थ बहुत फिर्या हौं, बहुत देश स्थान फिर्या हौं, अब इसी वनविषे आनि बैठा हौं तौ भी मेरे तांई शांति नहीं प्राप्त भई, तातें जिसकरि मेरे दुःख निवृत्त होवैं, अरु शांति प्राप्त होवै, सो कहौ, तब देवपुत्रनें कहा ॥ हे राजर्षि ! तैनें राज्यका त्याग किया, अरु बहुरि तपरूपी टोयेविषे आय पडा है, यह तैनें क्या किया है, जैसे पृथ्वीका कम बहुरि पृथ्वीविषे रहता है, तैसे तूं एक टोयेकों त्यागिकरि बहुरि दूसरे टोयेविषे आइ पडा है, अरु जिसनिमित्त राज्यत्याग किया, तिसकों न जानत भया, अरु इहां आयकरि एक लाठी अरु मृगछाला अरु फूल राखे, इनकरि तौ शांति नहीं प्राप्त होती, तातें अपने स्वरूपविषे जाग, जब स्वरूपविषे जागैगा, तब दुःख सब निवृत्त होवैंगे, इसी पर एक समय ब्रह्माजीसों मैंनें प्रश्न किया था, जो हे पितामहजी ! कर्म श्रेष्ठ है, अथवा ज्ञान श्रेष्ठ है, दोनोंविषे क्या श्रेष्ठ है, जो मुझकों कर्तव्य है, सो कहौ, तब पितामहनें कहा, ज्ञानके पायेतें दुःख कोउ नहीं रहता, सर्व आनंदका आनंद ज्ञान है, तिसतें आगे आनंद कोउ नहीं, अरु अज्ञानीकों कर्म श्रेष्ठ हैं, क्यौं जो पापकर्म करैंगे, तब नरककों प्राप्त होवैंगे, तातें तप दान करणेतें स्वरूपकी प्राप्ति नहीं होती, तौ भी अज्ञानीकों श्रेष्ठ है, जो नरक भोगणेतें स्वर्ग विशेष है, जैसे कंबलतें पटका वस्त्र श्रेष्ठ है, परंतु पटका न पाइयें तब कंबल भी भला है, तैसे ज्ञान पटकी नांई है, अरु तप कर्म कंबलकी नांई है, कर्मकरि शांति नहीं प्राप्त होती ॥ तातें हे राजन् ! तूं काहेकों इस टोयेविषे पडा है, आगे राज्यवासी था, अब वनवासी भया, तातें यह क्या किया है, जो अज्ञानविषे पडा रहा है, मूर्खताके वश पडा है, जबलग तेरे तांई क्रियाभान होता है, जो मैं यह करौं, तबलग प्रमाद है, इसकरि दुःख निवृत्त न होवैंगे, तातें निर्वासनिक होकरि अपणे स्वरूपविषे जाग, निर्वासनिक होणाही मुक्ति है, अरु वासना

सहितही बंधन है, पुरुषप्रयत्न यही है, जो निर्वासनिक होणां, जबलग वासनासहित है, तबलग अज्ञानी है, जब निर्वासनिक होवै, तब ज्ञेयरूप है, निर्वासनिक कहिये सदा ज्ञेयकी भावना करणी, अरु ज्ञेय कहिये आत्मस्वरूप तिसकों जाणीकरि बहुरि इच्छा कोउ न रहै, केवल चिन्मात्र पदविषे स्थित होणां, इसीका नाम ज्ञेय है, जो जाणने योग्य है, सो जाण्या, तब अवर वासना नहीं रहती, केवल स्वच्छ आपही होता है ॥ हे राजन् ! तैनें अपणे स्वरूपकों जानणा था, तूं अवर जंजालविषे किसनिमित्त पडा है, आत्मज्ञान विना अवर अनेक यत्न करै, तौ भी शांति न प्राप्त होवैगी, जैसे पवनतें रहित वृक्ष शांतरूप होता है, जब पवन होता है, तब क्षोभकों प्राप्त होता है, तैसे जब वासना निवृत्त होवैगी, तब शांत पद प्राप्त होवैगा, अरु क्षोभ कोउ न रहैगा, जब ऐसे देवपुत्रनें कहा, तब राजा कहत भया ॥ हे भगवन् ! तुम मेरे पिता हौ, अरु तुमही गुरु हौ, अरु, तुमही कृतार्थ करणेहारे हो, मैं वासना करिके बडा दुःख पाया है, जैसे किसी वृक्षके पत्र टास फूल फल सूकि जावै, अरु एकला ठूंठ रहि जावै, तैसे ज्ञानविना मैं भी ठूंठेसा हो रहा हौं, तातें कृपाकरि मेरे तांई शांतिकों प्राप्त करौं, तब देवपुत्रनें कहा ॥ हे राजन् ! तैनें त्याग करिके संतका संग करणां था, अरु यह प्रश्न करणा था, जो हे भगवन् ! बंध क्या है, अरु मोक्ष क्या है, अरु मैं क्या हौं, यह संसार क्या है, अरु संसारकी उत्पत्ति किसकरि होती है, अरु लीन कैसे होता है, तैनें यह क्या किया है, जो संतविना ठूंठ वनका आयकरि सेवन किया है, अब तूं संतजनकों प्राप्त होकरि निर्वासनिक होउ, ऐसे ब्रह्मादिकनें भी कहा है, जो जब निर्वासनिक होता है, तब सुखी होता है, बहुरि राजानें कहा ॥ हे भगवन् ! तुमही संत हौ, अरु तुमही मेरे गुरु हौ, अरु तुमही मेरे पिता हौ, जिस प्रकार मेरे तांई शांति प्राप्त होवै, सो कहौ, तब कुंभनें कहा ॥ हे राजन् ! मैं तेरे तांई उपदेश करता हौं, तूं हृदयविषे धारि लेहु, अरु जो तूं हृदयविषे धारै नहीं, तौ मेरे कहणेकरि क्या होता है, जैसे टासपर कउआ होवै, अरु शब्द भी श्रवण करै, तउ भी अपणे कउए स्व

भावकों नहीं छांडता, तैसे जो तूं भी कउएकी नांई होवै, तौ मेरे कहणेका क्या प्रयोजन है, अरु जैसे तोते पक्षीकों जो कहता है सो ग्रहण करता है, तातें तोते पक्षीकी नांई होउ, तब शिखरध्वजनें कहा ॥ हे भगवन्! जो तुम आज्ञा करोगे सो मैं करौंगा, जैसे शास्त्रवेदके कहे कर्म करता हौं, तैसेही तुमारा कहणा करौंगा, यह मेरा नियम है, जो तुम आज्ञा करो सो मैं करौंगा, तब देवपुत्रनें कहा ॥ हे राजन्! प्रथम तौ तूं ऐसे निश्चय कर, जो मेरा कल्याण इन वचनोंसों होवैगा, अरु ऐसे जाण, जो पिता पुत्रकों कहता है सो शुभही कहता है, तैसे मैं जो तेरे तांई कहौंगा, सो शुभही कहौंगा, अरु तेरा कल्याण होवैगा, तातें निश्चय जाण, जो इन वचनोंकरि मेरा कल्याण होवैगा, तातें एक आख्यान आगे व्यतीत भया है सो श्रवण करु, एक पंडित था, सो धन अरु गुणकरि संपन्न था, अरु सर्वदा चिंतामणि पावणेकी इच्छा करता था, जैसे शास्त्रकरि उपाय कहे, तैसेही उपाय करता था, जब केताक काल व्यतीत भया, तब जैसे चंद्रमाका प्रकाश होता है, तैसे प्रकाशवान चिंतामणि आय प्राप्त भया, ऐसे निकट जाना, जो हाथकरि उठाई लीजे, जैसे उदयाचल पर्वतके निकट चंद्रमा उदय होता है, तैसे चिंतामणि निकट आय प्राप्त भया, तब पंडितके मनविषे विचार हुआ, जो यह चिंतामणि है, अथवा कछु और है, जो चिंतामणि होवै, तौ उठाइ लेहुं, जो चिंतामणि न होवै, तौ किसनिमित्त पकडौं, बहुरि कहे, पकडी लेता हौं, मणिही होवैगा, तब मणि न होवै क्या पकडौं, यह मणि नहीं, काहेतें जो मणि बडे यत्नकरि प्राप्त होता है, मेरे तांई सुखेन क्या प्राप्त होणा है, इसतें जाणीता है, जो चिंतामणि नहीं, जो सुखेन प्राप्त होता होवै, तौ सब लोक धनी हो जावै,परंतु सुखेन नहीं पाइता, तातें यह चिंतामणि नहीं; जब ऐसे संकल्पविकल्पकरि पंडित विचार करणे लगा, अरु इसीकरि तिसका चित्त आवरण भया, तब मणि छपन हो गया, काहेतें जो सिद्धि है, तिनका मान आदर न करियें तौ उलटा शाप देती है, जिस वस्तुका आवाहन करता है, तिसका पूजन न करियें तौ त्याग जाती है,

अरु शाप देती है, जब उह चिंतामणि अंतर्धान हो गई, तब उह बडे दुःखकों प्राप्त भया, जो चिंतामणि मेरे पासतें निवृत्त होगई, अरु बहुरि यत्न करने लगा, जब बहुरि उपाय किया, तब काचकी मणि किसी हांसीकरि तिसके आगे दोडि गई, सा तिसके पास आय पडी, उसकों देखत भया, देखीकरि कहणे लगा, जो इह चिंतामणि है, तब उसकों उठाय लीनी, लेकरि अपणे घर आया, अबोधके वशतें उसकों चिंतामणि जानत भया, जैसे मोहकरि असतकों सत् जानता है, अरु रज्जुकों सर्प जानता है, अरु जैसे दो चंद्रमा, अरु शत्रुकों मित्र अरु विषकों अमृतरूप जानता है, तैसे उह काचकों चिंतामणि जानत भया, अरु जेता कछु अपनां धन था, सो लुटाय दिया, अरु कुटुंबका त्याग किया, कहणे लगा, जो मेरे तांई चिंतामणि प्राप्त भई है, अब कुटुंबसाथ क्या प्रयोजन है, अरु घरतें निकसिकरि वनकों गया, वनविषे जाय बडे दुःखकों प्राप्त भया, जो काचकी मणिसाथ कछु प्रयोजन सिद्ध न हुआ, तैसे हे राजन्! जो विद्यमान वस्तु होवै, तिसकों मूर्ख त्यागते हैं, तिसका माहात्म्य नहीं जाणते, अरु नहीं पावते ॥ ॥ इति श्रीयोगवासिष्ठे निर्वाणप्रकरणे चिंतामणिवृत्तांतवर्णनं नाम नवषष्टितमः सर्गः ॥ ६९ ॥ ॥ ॥ ॥ देवपुत्र उवाच ॥ हे राजन्! इसी पर एक अवर आख्यान कहता हौं, सो श्रवण करु, मंदराचल पर्वतके वनविषे एक हस्ती रहता था, सो सर्व हस्तीका राजा था, कैसा था सो मानों मंदराचल पर्वत है, जिसकों अगस्त मुनिनें रोक्या था! ऐसा जो मंदराचल पर्वत है, तिसविषे रहता था, अरु जिसके बडे दंत हैं, इंद्रके वज्रकी नांई तीक्ष्ण हैं, बडा बलवान अरु प्रकाशवान, जैसे प्रलयकालकी वडवाग्नि होती है, ऐसा प्रकाशवान अरु बलवान ऐसा जो सुमेरु पर्वतकों दंतसाथ उठावै, तिस हस्तीकों महावतनें बल छल करिके बांधा, जैसे बलि राजाकों विष्णु भगवाननें बांधा, तैसे लोहकी संकरसों हस्तिकों पाय, अरु आप महावत जो निकट वृक्ष था, तिसपर चडि बैठा, किसनिमित्त बैठा था, जो कुंदकरि हस्तीके ऊपर चडि बैठो, अरु हस्ती संकर

कार महाकष्टको प्राप्त भया, कैसे दुःखको प्राप्त भया, जो वाणीकरि कह्या नहीं जाता, जब ऐसा दुःख पाया तब हस्तिके मनविषे विचार उपजा, जो अब मैं बलसाथ संकर न तोडौंगा, तौ कब छूटौंगा, तिन संकरकों बल करिके तोडि दिया, अरु वृक्षपर जो महावत बेठा था, सो गिर्या, सो हस्तिके चरणों आगे आय पडा, अरु भयकों प्राप्त भया, जैसे फल पवनकरि गिरपडता है, तैसे महावत भयकरि गिरपडा, जब इस प्रकार महावत गिऱ्या, तब हस्तिनें विचार किया, जो यह मृतकसमान है, तातें मुएकों क्या मारणां है, यद्यपि मेरा शत्रु है, तौ भी मैं नहीं मारता, इसके मारणेकरि मेरा क्या पुरुषार्थ सिद्ध होता है, तातें मैं नहीं मारता ॥ हे राजन्! जब ऐसे दयाकरि हस्तिनें महावतकों न मारा, जो पशुयोनिविषे भी दया मुख्य है, तब महावतकों छांडीकरि हस्ती वनविषे चला, जैसे बंधकों पाणी तोडीकरि वेगसाथ चलता है, तैसे संकरकों तोडीकरि हस्ती वनकों गया, जैसे स्वर्गके द्वारे तोडीकरि दैत्य जाय प्रवेश करते हैं, तैसे संकरकों तोडीकरि हस्ती वनविषे जाय प्रवेश किया, अरु हस्तिकों गया देखि महावत जो पडा था सो उठी बैठा, अरु अपणे स्वभावविषे स्थित भया, बहुरि हस्तिके पाछे चला, अरु हस्तिकों खोजि लिया, जैसे चंद्रमाकों राहु खोजि लेता है, तैसे वनविषे हस्तिकों खोजि लिया, देखा जो वृक्षके तले सोया पडा है, जैसे संग्रामकों सूरमा जीतिकरि निचिंत होता है, तैसे हस्तिकों निचिंत सोया पडा देखा, जो संकरकों तोडिकरि आय सोया है, तब महावतनें विचार किया जो इसकों वश करियें अरु यही उपाय करत भया, जो बेलेके चउफेर खाइकरि, जैसे ब्रह्मानें विश्वकों उत्पन्न करिके पृथ्वीके चउफेर समुद्रचक्र किया है, तैसे बेलेके चउफेर खाइका चक्रकरि लिया, अरु खाइके पर कछु तृण घास पाया, जैसे शरत्कालके आकाशविषे बदल देखणे मात्र होता है, तैसे तृण घास खाइ ऊपर देखणे मात्र दृष्ट आवैं, अरु बीच खाईकरि, तब एक समय हस्ती उठीकरि चल्या, अरु खाइके बीच गिरपडा, जब गिरपडा तब महावत हस्तिके निकट आया, अरु

संकरोंसाथ बांधा, जैसे दैत्य छल करिके देवताकों वश करते हैं, जैसे अगस्त्यमुनिनें छल करिके मंदरा चलकों रोकि छोडा था, तैसे हस्तिकों महावतनें वश किया, अरु हस्ति गिरपडा, जैसे सूके समुद्रविषे पर्वत गिरपडता हैं, तैसे खाइविषे हस्ती गिरपडा, अरु बडे दुःखकों प्राप्त हुआ, जो अब तप वनविषे पडा दुःख पावता है, काहेतें जो भविष्यका विचार न किया, अज्ञानीकों भविष्यकता विचार नहीं, इसीतें दुःख पावता हैं, वर्तमानकालविषे विचार नहीं करता, जो आगे क्या होणां है, इसीतें अज्ञानी हस्ती दुःखकों प्राप्त भया ॥ हे राजन्! यह जो आख्यान तेरे तांई मैं श्रवण कराये हैं, एक मणिका, एक हस्तिका, तिनकों जब तूं समझैगा, तब आगे मैं, उपदेश करौंगा ॥ ॥ इति श्रीयोगवासिष्ठे निर्वाणप्रकरणे हस्त्याख्यानवर्णनं नाम सप्ततितमः सर्गः ॥ ७० ॥ ॥ ॥ वसिष्ठ उवाच ॥ हे रामजी! जब देवपुत्रनें ऐसे कहा तब राजा कहत भया ॥ हे देवपुत्र! यह दो आख्यान तुमनें कहे हैं सो तुम जानते हौ, मैं तौ कछु नहीं समझा, तातें खोलिकरि तुमही कहौ, तब देवपुत्रनें कहा ॥ हे राजन्! तूं शास्त्रके अर्थविषे तौ बहुत चतुर हैं, सब अर्थका ज्ञाता हैं, परंतु स्वरूपविषे तेरे तांई स्थिति नहीं, जैसे आकाशविषे पर्वत नहीं ठहरता, तातें जो वचन मैं कहता हौं, सो बुद्धिकरि ग्रहण करु, जो हस्ती क्या है, अरु चिंतामणि क्या है, प्रथम जो सर्व त्याग तैंनें किया था, सो चिंतामणि थी, तिसके निकट तूं प्राप्त होकरि सुखी भया, जब तिसकों तूं अपणे पास राखता, तब दुःख सब निवृत्त हो जाते, सो मणिकों तैंनें निरादर किया, जो तिसकों त्याग्या, अरु काचकी मणि तप क्रियाकों प्राप्त भया, सो दरिद्रीही रहा ॥ हे राजन्! सर्वत्यागरूपी चिंतामणि थी, अरु यह क्रियाका आरंभ काचकी मणि है, सो तैंनें ग्रहण करी, तिसतें दारिद्रकी निवृत्ति नहीं होती, दुःखीही रहता, त्यागरूपी चिंतामणिका आवाहन था, अरु क्रियारंभ तिसका अनादर है ॥ हे राजन्! सर्व त्याग तैंनें नहीं किया, किया भी था परंतु कछुक रहता था, तिसके रहणेतें बहुरि विस्तारकों प्राप्त

भया, जैसे बडा बदल वायुकरि क्षीण होता है, अरु सूक्ष्म रहि जाता है, अरु पवनके रहेतें बहुरि विस्तार कों पावता है, अरु सूर्यकों छिपाय लेता है, सो बदल क्या है, अरु सूर्य क्या है, अरु थोडा रहणा क्या है सो सुण, स्त्रियां अरु कुटुंबतें आदि त्याग किया, अरु अहंकार इनविषे करणां सो बडा बदल है, अरु वैराग्यरूपी पवनकरि राज्य अरु कुटुंबका अहंकाररूपी बडा बदल निवर्त हुआ अरु देहादिकविषे जो अहंकार रहा सो सूक्ष्म बदल रहा, सो बहुरि वृद्ध होगया, जो अनात्म अभिमान करिके क्रियाका आरंभ किया, इस करिके आत्मारूपी सूर्य जो अपणां आप है, सो अहंकाररूपी बदलकरि आच्छाद्या गया, ज्ञानरूपी चिंतामणि ज्ञानरूपी काचकी मणि करिके जैसे छपन भई, जब ज्ञान करिके आत्माकों जाणैगा, तब आत्मा प्रकाशैगा, अन्यथा न भासैगा, जैसे कोउ पुरुष घोडेपर चडिके दउडावता है, तिसकी वृत्ति घोडेविषे होती है, तैसे जिस पुरुषका आत्माविषे दृढ निश्चय होता है, तिसकों आत्मातें भिन्न कछु नहीं भासता है ॥ हे राजन्! आत्माका पावणां सुगम है, जो सुखेनहीं पाइता है, अरु बडे आनंदकी प्राप्ति होती है, अरु तपादिक क्रिया जो हैं, तिसकों कष्टकरि सिद्धि होता है, अरु स्वरूपसुखकी प्राप्ति नहीं होती ॥ हे राजन्! मैं जानता हौं, तूं मूर्ख नहीं, शास्त्रोंका ज्ञाता है, अरु बहुत चतुर है, तथापि तेरे तांई स्वरूपविषे स्थिति नहीं, जैसे आकाशविषे पत्थर नहीं ठहरता, तातें मैं उपदेश करता हौं, तिसकों ग्रहण करु, तेरे दुःख निवर्त हो जावैंगे, अरु पाछे जो राज्यका त्याग आया है, जैसे ब्रह्माकी रात्रविषे संसारका अभाव हो जाता है, तैसे त्याग किया था ॥ हे राजन्! यह सर्वतें श्रेष्ठ ज्ञान कहा है, अरु कहता हौं, तैंनें जो तपक्रियाका आरंभ किया है, अरु तिसका जो फल जाण्या है, तिस ज्ञानतें श्रेष्ठ ज्ञान कहा है, अरु कहता हौं, जो तेरा भ्रम निवृत्त हो जावैगा ॥ हे राजन्! चिंतामणिका तात्पर्य संपूर्ण तेरे तांई कहा, अब हस्तिका वृत्तांत जो आश्चर्यरूप है सो श्रवण करु, जिसके समुझणेकरि अज्ञान निवृत्त हो जावैगा, मंदराचलका हस्ती

सो तूं है, अरु महावत तेरे तांई अज्ञानता है, इस अज्ञानरूपी महावतनें तेरेकों बांधा है, अरु हस्ती जो सं कलहुंसाथ बांधा था, सो आशारूपी संकलोंकरि बांधा था, अरु संकलतें भी तूं अधिक बांधा है, जो संक ल तौ घसते भी हैं, अरु आशारूपी फांसी घटती नहीं, दिन दिन बढती जाती है॥ हे राजन्! आशारूपी फां सी करिके तूं महादुःखी है, अरु जो हस्तीके बडे दंत थे, जिसकरि संकलोंकों तोडा था, सो तेरे दंत विवेक अरु वैराग्य हैं, जो तैंनें विचार किया, मैं बल करिके छूटौं, अरु राज्य कुटुंब पृथ्वीका त्यागकरि आया, अरु फां सीकों काट्या, तब आशारूपी रसे काटे, अज्ञानरूपी महावत भयकों प्राप्त भया, अरु तेरे चरणोंके तले आय प डा, जैसे वृक्ष ऊपर वैताल रहता है, अरु कोउ वृक्षकों काटणे आवता है, तब वैताल भयकों प्राप्त होता है, तैसेही तैंनें वैराग्य अरु विवेकरूपी दंतहूं करिके आशाके फांस काटे तब अज्ञानरूपी महावत गिर्या, अरु तैंनें एक घाउ लगाया, परंतु मारि न डारा तब महावत तुझतें भागि गया, जैसे वृक्षपर वैताल रहता है, वृक्षकों कोऊ काटणे लगता है, तब वैताल भागि जाता है॥ हे राजन्! तैसे वृक्षकों तैंनें काट्या, वैराग्यरूपी शस्त्र करिके तब अज्ञानरूपी वैताल भागा, अरु मूर्खता करिके तिसकों तैंनें न मारा, तिसकों छांडीकरि तूं वनविषे गया, जब तूं वनविषे आया, तब अज्ञानरूपी महावत तेरे पाछे चला आया, आएकरि तेरे चउफेर खाइ करि जो तपादिक क्रियाका आरंभ किया, तिस खाइविषे तूं गिरपडा, अरु महादुःखकों तूं प्राप्त भया, तब तेरेकों संकलहूंसाथ बहुरि बांधा, अरु देखणे लगा, जो अबतक दुःख पावता है अरु तूं कैसी खाइविषे गिर्या है, जो अनात्माभिमान करिके इहां तपादिक क्रियाका आरंभ किया है, जो मैं कहाता हौं ऐसी खाइ विषे तूं पडा है॥ हे राजन्! तूं जाणिकरि खाइविषे नहीं पडा, खाइके उपर घास तृण पडा था, छल करि के तूं गिर पडा है, सो छल अरु तृण कवन है, तूं श्रवण करु, प्रथम जो अज्ञानरूपी शत्रुकों न मारा अरु संकलोंके भय करिके तूं भागा, जो वन मेरा कल्याण करैगा, संत अरु शास्त्रके वचनोंकों न जान्या, जो ते

रे दुःखकों निवृत्त करही, अरु उन वचनरूपी खाइपर तृणादिक था, मूर्खता करिके तूं गिर्या, जैसे बलि राजा पातालविषे छल करिके बांधा हुआ है, तैसे भविष्यतका विचार किया नहीं, जो अज्ञानशत्रु रहा हुआ मेरा नाश करैगा, तिस विचार विना तूं बहुरि दुःखी हुआ, सर्व त्याग तौ किया परंतु ऐसे न जाना जो मैं अक्रिय हौं, इह क्रियाका आरंभ काहेकों करता हौं, इसीतें तूं बहुरि फांसीसाथ बांधा है ॥ हे राजन्! जो पुरुष इस फांसीतें मुक्त भया, सो मुक्त है, अरु जिसका चित्त अनात्म अभिमानकरि बांधा है, जो यह मेरेकों प्राप्त होवै, तिसकरि दुःखकों पावता है, जिस पुरुषनें वैराग्यविवेकरूपी दंतोंकरि आशारूपी जंजीरकों नहीं काटा, सो कदाचित् सुख नहीं पावता, विवेकतें वैराग्य उत्पन्न होता है, अरु वैराग्यतें विवेक होता है, विवेक कहिये सत्यकों जानणां, अरु असत देहादिककों असत्य जानणां, जब ऐसे जाण्या तब असत्की उर भावना नहीं जाती, सो वैराग्य हुआ, अरु वैराग्यतें विवेक उपजता है, विवेकतें वैराग्य उपजता है, इन विवेक अरु वैराग्यरूपी दंतकरि आशारूपी संकलकों तोड ॥ हे राजन्! यह हस्तीका वृत्तांत जो तुझकों कहा है, इसके विचार कियेतें मोह तेरा निवृत्त हो जावैगा ॥ हे राजन्! हस्ती वडा बली था, अरु महावत् छोटा बली था, तिस अज्ञानरूपी महावतकों मूर्खता करिके न मारा तिस करिके दुःख पावता है, तातें तूं वैराग्यविवेकरूपी दंतकरि आशारूपी फांसीकों तोड, तव दुःख सब मिटि जावैंगे ॥ ॥ इति श्रीयोगवासिष्ठे निर्वाणप्रकरणे हस्तिवृत्तांतवर्णनं नाम एकसप्ततितमः सर्गः ॥ ७१ ॥ ॥ ॥

॥ देवपुत्र उवाच ॥ ॥ हे राजन्! ऐसी जो तेरी स्त्री चूडाला ब्रह्मवेत्ता थी, अरु सर्वज्ञान श्रेष्ठ साक्षात ब्रह्मस्वरूप अरु सत्वादी, तिसनें तेरे तांई उपदेश किया; अरु तैंनें तिसके वचनोंका निरादर किसनिमित्त किया, मैं तौ सर्व जाणता हौं, जो त्रिकालज्ञ हौं, तौ भी तूं अपणे मुखतें कहु, जो तिसका उपदेश अंगीकार क्यौं न किया, एक तौ यह मूर्खता करी, जो उपदेश न अंगीकार किया, अरु दूसरी यह मूर्खता

है, जो सर्व त्याग न करिके बहुरि वन अंगीकार किया, जो सर्व त्याग करता तौ सर्व दुःख मिटि जाते, जब ऐसे देवपुत्रनें कहा, तब राजा कहत भया ॥ हे देवपुत्र ! मैं तौ सर्व त्याग किया है, स्त्री पृथ्वी मंदिर हस्ती इत्यादिक जो ऐश्वर्य अरु कुटुंब हैं, सो सर्व त्याग किया है, तुम कैसे कहते हो जो त्याग नहीं किया, तब देवपुत्रनें कहा ॥ हे राजन् ! तैंनें क्या त्यागा है, राज्यविषे तेरा क्या था, जैसे ऐश्वर्य आगे था, तैसे अब भी है, अरु स्त्रीयां भी जैसे अवर मनुष्य थे, तैसे स्त्रियां थी, तिनविषे तेरा क्या था, जो त्याग किया, पृथ्वी, मंदिर अरु हस्ती जैसे आगे थे, तैसे अब भी हैं, तिनविषे तेरा क्या था जो त्याग किया है ॥ हे राजन् ! सर्व त्याग तैंनें अब भी नहीं किया, जो तेरा होवै, तिसका तूं त्याग कर, जो निर्दुःख पदकों प्राप्त होवै ॥ वसिष्ठ उवाच ॥ ॥ हे रामजी ! जब इस प्रकार देवपुत्रनें कहा, तब सूर वीर जो इंद्रजित राजा था, सो मनविषे विचारत भया, जो यह वन मेरा है, अरु वृक्ष फूल फल मेरे हैं, इनका त्याग करौं, अरु कहत भया ॥ हे देवपुत्र ! वन अरु वृक्ष फूल फल टास जो मेरे थे, तिनका मैं त्याग किया, अब तौ सर्व त्याग हुआ क्यों, तब देवपुत्रनें कहा ॥ हे राजन् ! अब भी सर्व त्याग नहीं भया, जो वन अरु वृक्ष फूल फल तुझतें आगे भी थे, इनविषे तेरा क्या है, जो तेरा है, तिसकों त्याग, तब सुखी होवै ॥ हे रामजी ! जब इस प्रकार देवपुत्रनें कहा, तब राजा मनविषे विचारत भया जो मेरी जलपानकी बावली है, अरु मेरे बगीचे हैं, इनका त्याग करौं, जो सर्व त्याग सिद्ध होवै, अरु कहा ॥ हे भगवन् ! मेरी यह बावली अरु बगीचे हैं, तिनका त्याग किया, अब तौ मेरा सर्व त्याग सिद्ध हुआ क्यों, तब देवपुत्रनें कहा ॥ हे राजन् ! सर्व त्याग अब भी नहीं भया, जो तेरा है, तिसकों त्यागैगा, तब शांत पदकों प्राप्त होवैगा ॥ हे रामजी ! जब इस प्रकार देवपुत्रनें कहा तब राजा विचारणे लगा, जो अब मेरी मृगछाला अरु कुटी है, तिसका त्याग करौं, अरु कहा ॥ हे देवपुत्र ! मेरे पास एक मृगछाला अरु एक कुटी है, तिसका त्याग किया, अब सर्व त्यागी भया

क्यौं? तब देवपुत्रनें कहा ॥ हे राजन्! मृगछालाविषे तेरा क्या है, यह तौ मृगकी त्वचा है, अरु कुटीविषे तेरा क्या है, कुटी तौ माटी अरु शिलाकी है, इसकरि तौ सर्व त्याग सिद्ध नहीं होता, जो कछु तेरा है, तिसकौं त्यागै तब सर्व त्याग होवै, अरु तूं सर्व दुःखतें रहित होवै ॥ हे रामजी! जब ऐसे कुंभनें कहा तब राजानें मनविषे विचार किया, जो अब मेरा एक कमंडलु है, अरु एक माला है, एक लाठी है, इसका त्याग करौं, ऐसे विचारकरि राजा शांतिके लिये बोलत भया ॥ हे देवपुत्र! मेरी लाठी अरु कमंडलु अरु एक माला हैं, तिसका भी त्याग किया, अब मैं सर्वत्यागी भया क्यौं, तब देवपुत्रनें कहा ॥ हे राजन्! कमंडलुविषे तेरा क्या है, कमंडलु तौ वनका तुंबा है, तिसविषे तेरा कछु नहीं, अरु लाठी भी वनके वासकी है, अरु माला भी काष्ठकी है, तिनविषे तेरा क्या है, जो कछु तेरा है, तिसका त्याग कर, जब तिसका त्याग करैगा तब दुःखतें रहित होवैगा ॥ हे रामजी! जब इस प्रकार कुंभनें कहा, तब राजा शिखरध्वज मनविषे विचारत भया, जो अब मेरा क्या रहता है, तब देखा जो एक आसन रहता है, अरु वासन है, जिसविषे फूल फल राखते हैं, अब इनका त्याग करौं, तब राजानें कहा ॥ हे भगवन्! आसन अरु वासन यह मेरे पास रहते हैं, इनका भी त्याग किया, अब तौ सर्वत्यागी भया क्यौं, तब कुंभनें कहा ॥ हे राजन्! अब भी सर्व त्याग नहीं भया, आसन तौ भेडकी उनका है, अरु वासन मृत्तिकाके हैं, इनविषे तेरा कछु नहीं, जो कछु तेरा है, तिसका त्याग कर, जो सर्व त्याग होवै, अरु दुःख निवृत्त हो जावै ॥ हे रामजी! जब इस प्रकार कुंभनें कहा, तब राजा उठि खडा हुआ, अरु वनकी लकडी एकठीया करी, अरु अग्नि लगाई, जब बडी अग्नि लगी, तब लाठीकों हाथविषे लेकरि कहणे लगा ॥ हे लाठी! मैं तेरेसाथ बहुत देशोंका रटन किया है, परंतु मेरे साथ उपकार कछु न किया, अब मैं कुंभ मुनिका कृपातें तरौंगा, तेरे नमस्कार है, ऐसे कहिकरि लाठीकों अग्निविषे डारि दिया, बहुरि मृगछालाकों हाथविषे ले

करि कहा ॥ हे मृगकी त्वचा! बहुत कालमैं तेरे उपर आसन किया है, परंतु तुझनें उपकार कछु न किया, अब कुंभ मुनिकी कृपासों मैं तरौंगा, तेरे तांई नमस्कार हैं, ऐसे कहिकरि मृगछालाकों अग्निविषे डारि दीनी, बहुरि कमंडलुकों लेकरि कहणे लगा ॥ हे कमंडलु! धन्य हैं, मैं तेरे तांई धारा, अरु तुझनें मेरे जलकों धारा, तैंनें तुझसाथ, गुण गोप नहीं किया, तौ भी कमंडलुकी जैसे प्रवृत्ति त्यागणी है, तैसे निवृत्तिकी कल्पना भी त्यागणी है, तातें तेरेकों नमस्कार है, तुम जावहु, ऐसे कहीकरि कमंडलु भी अग्निविषे जलाय दिया, बहुरि मालाकों हाथविषे लेकरि कहणे लगा ॥ हे माला! तेरे मणके जो मैं फरे हैं, सो मानौ अपणे मैंनें जन्म गिने हैं, तेरे संबंधकरि जाप किया है, अरु दिशा विदिशा गया हौं, अब तेरेकों नमस्कार है, ऐसे कहीकरि मालाकों भी अग्निविषे डारि दीनी, इसी प्रकार फल फूल कुटी आसन सब जलाय दिये, बडी अग्नि जागी, अरु बडा प्रकाश भया, जैसे सुमेरु पर्वतकेपास सूर्य चढै, अरु मणिका भी चमत्कार होवै,तौ बडा प्रकाश होता है, तैसे बडी अग्नि लगी, अरु राजानें संपूर्ण सामग्रीका त्याग किया, जैसे पके फलकों वृक्ष त्यागता है, जैसे पवन चलणेतें ठेरता है, तब धूडतें रहित होता है, तैसे राजा सर्व सामग्रीकों त्यागी निर्विघ्न हुआ, अरु सर्व सामग्री अग्निविषे डारी, अरु अग्निरूप होत भई; जैसे नदियां समुद्रविषे जाय समुद्ररूप होतियां हैं, तैसे सब सामग्री अग्निरूप होत भई ॥ इति श्रीयोगवासिष्ठे निर्वाणप्रकरणे शिखरध्वजसर्वत्यागवर्णनं नाम द्विसप्ततितमः सर्गः ॥ ७२ ॥ ॥ ॥ वसिष्ठ उवाच ॥ हे रामजी! जब संपूर्ण सामग्री जलाई, अरु भस्म हो गई, जैसे सदाशिवके गणनें दक्षप्रजापतिके यज्ञकों स्वाहाकरि दिया था, तैसे जेती कछु सामग्री थी, सो सब स्वाहा हो गई अरु वन बडा प्रज्वलित भया, जेते कछु वृक्षके रहणेवाले पक्षि थे,सो भाजि गए, अरु मृग पशु केई आहार करते,केई जुगली करते थे,सब भाजि गये,जैसे पुरकों आग लगेतें पुरवासी भाजि जावैं, तैसे भाजि गये, तब राजा मनविषे विचारत भया,जो अब कुंभकी कृपातें मैं

बडे आनंदकों प्राप्त भया ॥ अब दुःख मेरे मिटि गये हैं, जेती कछु वस्तु मनके संकल्पकरि रची थी, जो मेरी है सो जलाय दीई, तिसका न मेरे तांई हर्ष है, न शोक है, जेते कछु दुःख होते हैं, सो ममत्वकरि होते हैं, सो मेरा ममत्व अब किसीसाथ नहीं रहता, तातें दुःख भी कोउ नहीं, अब मैं ज्ञानवान भया हौं, अब मेरी जय है, अब निर्मल भया हौं, अरु सर्व त्याग किया है, ऐसे विचार करिके राजा उठि खडा हुआ, हाथ जोडी कहत भया ॥ हे देवपुत्र! अब मैं सर्व त्याग किया है क्यौं, जो आकाशही मेरे वस्त्र हैं, अरु पृथ्वी मेरी शय्या है, जब राजानें ऐसे कहा, तब कुंभ मुनिनें कहा ॥ हे राजन्! अब भी सर्व त्याग नहीं किया, जो तेरा है, तिसका त्याग करु, तब दुःख तेरे निवृत्त हो जावही, बहुरि राजानें कहा ॥ हे भगवन्! अब तौ अवर मेरेपास कछु नहीं रहता, नागा होकरि तुमारे आगे खडा हौं, अब एक रक्त मांसका देह है इंद्रियाकों धारणहारा, जो कहौ; तौ इसका भी त्याग करौं, पर्वत उपर जायकरि डारी देऊं, ऐसे कहीकरि राजा पर्वतकों दोड्या, जो देहकों डारि देऊं, तब कुंभ मुनिनें कहा ॥ हे राजा! ऐसे पुण्य देहकों क्यौं त्यागता है, इसके त्यागेतें सर्व त्याग नहीं होता, जिसके त्यागणेतें सर्व त्याग होवै, इसका त्याग करु, इस देहविषे क्या दूषण है, जैसे वृक्षसाथ फूल फल होते हैं, जब वायु चलता है, तब फूल फल गिरते हैं, सो फूल फल गिरनेका कारण वायु है, वृक्षविषे दूषण कछु नहीं, तैसे देहविषे दूषण कछु नहीं, जो देहके पालणेहारा अभिमान है, त्याग तिसका करु, जो सर्व त्याग सिद्धि होवै, अरु देह तौ गुण है, जो कछु इसकों देता है, सोइ लेता है, आगेतें बोलता नहीं, जड है, इसके त्यागतें क्या सिद्धि होता है, जैसे पवनकरि वृक्ष हीलता है, अरु भूकंपकरि पर्वत कंपते हैं, तैसे देह आप कछु नहीं करता, अवरके प्रेरी चेष्टा करता है, जैसे पवनकरि समुद्रविषे तरंग होते हैं, अरु तृणकों जहां जल ले जाता है, तहां चले जाते हैं, तैसे देह आपतें कछु नहीं करता, इसका जो प्रेरनेवाला है, तिसकरि चेष्टा करता है, तातें देहके प्रे

रनेवालेका त्याग करु जो सुखी होवै ॥ हे राजा! जिसकरि सर्व है, अरु जिसविषे सर्व शब्द हैं, अरु जो सर्व उरतें त्यागणे योग्य है,तिसका त्याग कर,जो तेरे सर्व दुःख मिटि जावैं, तब राजानें कहा ॥ हे भगवन्! उह कवन है जो सर्व है,अरु जिसविषे सर्व शब्द हैं, अरु जो सर्व उरतें त्यागणे योग्य है ॥ हे तत्त्ववेत्ताविषे श्रेष्ठ! जिसके त्यागेतें जरा मृत्यु नष्ट हो जावै सो कहो,तब कुंभनें कहा,हे राजा! जिसका नाम चित्त है,अरु प्राण है, अरु देह है, ऐसा जो चित्त है, तिसका त्याग कर, अरु बाहर जो नानाप्रकारके आकार दृष्ट आते हैं,सो चित्तही करि दृष्ट आते हैं, तातें चित्तका त्याग करु ॥ हे राजा! जैसे सर्प खुदविषे बैठा होवै तौ खुदका दूषण कछु नहीं; विष सर्प विषे है, जिसकरि डसता है, तिसके नाश करणेका उपाय करु, अरु सर्व शब्द भी इस चित्तविषे है, अरु आत्मा है,जो मात्रपद है,जिसविषे न एक कहणां है,न द्वैत कहणा है,अरु सर्व उरतें इसी चित्तका त्याग करणा योग्य है, जब इस चित्तका त्याग करैगा, तब त्यागरूपी अमृतकरि अमर हो जावैगा, अरु जरा मृततें रहित होवैगा, अरु जब चित्तका त्याग न करैगा, तौ बहुरि देहकों धारैगा, अरु दुःख भोगैगा, अरु जैसे एक क्षेत्रतें अनेक दाणे उत्पन्न होते हैं, अरु जब क्षेत्रही जालि जाता है, तब अन्न नहीं उपजता, तैसे यह जो देह है,अरु जरा मृत्यु दुःख संसार इनका बीज चित्त है, जैसे अनेकका कारण क्षेत्र है, तैसे दुःख संसारका कारण चित्त है, तातें हे राजा! चित्तका त्याग करु, जब इसका त्याग करैगा, तब सुखी होवैगा ॥ हे राजा! जिसनें सर्व त्याग किया है, सो सुखी हुआ है, जैसे आकाश सर्व पदार्थतें रहित है, किसीका स्पर्श नहीं करता, अरु सर्वतें बडा है, अरु सुखरूप है, अरु सर्व पदार्थ नष्ट हो जाते हैं, तौ भी ज्यौंका त्यौं रहता है, जो आकाश सर्व त्याग किया है,हे राजा! तूं भी सर्वत्यागी होउ, राज्य अरु देह अरु कुटुंब गृहस्थ आदिक जो आश्रम हैं, सो सर्व चित्तनें कल्पे हैं, अरु जो एकका त्याग नहीं होता, तौ कछु नहीं त्यागा, जब चित्तका त्याग करै, तब सर्व त्याग होवै ॥ हे राजा! यह धर्म अरु वैराग्य अरु ऐश्वर्य तीनों चित्तके कल्पे हुए हैं,

जब चित्त पुण्यक्रियासों लगता है, तब पुण्यही प्राप्त होता है, जब पापक्रियासों लगता है, तब पापही प्राप्त होता है, अधर्म अरु अवैराग्य अरु दारिद्र होता है, जब पुण्यका फल उदय होता है, तब सुख प्राप्त होता है, अरु जब पापका फल उदय होता है, तब दुःख प्राप्त होता है, तातें जन्ममृत्यु दुःख नहीं मिटते, जब चित्तका त्याग होता है, तब सर्व दुःख नष्ट हो जाते हैं ॥ हे राजा ! जो कोउ पुरुष किसी वस्तुकों नहीं चाहता, जो मैं नहीं लेता, तब तिसकी पूजा बहुत होती है, अरु कोउ कहता है, जो मैं इस वस्तुकों लेउं, मेरेकों यह देवै, तब उसकों देता कोऊ नहीं, तातें सर्व त्याग करु, जो सुखी होवै, अरु सर्व त्याग कियेतें सर्व तूंही होवैगा, सर्वात्मा होवैगा, अरु संपूर्ण ब्रह्मांड अपणेविषे देखैगा, जैसे मालाके मणकेविषे तागा होता है, अरु मणके भी सूत्रके आधार होते हैं, तिनविषे अवर कछु नहीं होता, तैसे देखैगा, जो सर्व मैंही हौं, अरु एकरस हौं, मेरेहीविषे ब्रह्मांड स्थित है, अरु मैंही हौं, तुझतें इतर कछु नहीं ॥ हे राजा ! जिसनें सर्व त्याग किया है, सो सुखी हैं, अरु समुद्रकी नांई स्थित है, उसकों दुःख कोउ नहीं, तातें तूं चित्तका त्याग करु, जो राज्य दोष मिटि जावै, अरु इस चित्तके एते नाम हैं, चित्त मन अहंकार जीव अरु माया, यह सर्व चित्तहीके नाम हैं ॥ हे राजन् ! त्यागणे अरु अवरकी भिक्षा लेणेतें तौ चित्त वश नहीं होता, चित्त तबही वश होता है, जब पुरुष निर्वासनिक होता है, जबलग चित्त फुरता है, तबलग सर्व त्याग नहीं होता, जब यही फुरना निवृत्त होता है, तब चित्तका त्याग होता है, अरु चित्तकों त्यागिकरि भी त्यागके अभिमानतें रहित होणा, ऐसा शून्य पाछे जब तूं रहैगा, तब सर्वात्मा होवैगा, जब चित्तकों त्यागैगा, तब तिस पदकों प्राप्त होवैगा, जो जेते ऐश्वर्यसुख हैं, तिनका आश्रय है, अरु जेते दुःख हैं, तिनका नाश करणेहारा है, अरु जिसके जाणेतें किसी पदार्थकी इच्छा न रहैगी, काहेतें न रहैगी, जो सर्व आनंदके धारणेहारा तेरा स्वरूप है, वहुरि इच्छा किसकी रहै, जैसे आकाशके आश्रय देवलोकतें आदि सर्व विश्व रहता है, अरु आ

काशकों इच्छा कछु नहीं, जो इच्छा नहीं करता तौ भी सर्व आकाशहीविषे है, अरु सर्वका धारणेहारा है ॥ हे राजन्! जब तूं भी इच्छा किसकी न करैगा, तब निर्वासनिक होकरि अपणे स्वरूपविषे स्थित होवैगा, अरु जाणैगा जो सर्वका आत्मा मैंही हौं, सर्वकों धारी रहा हौं, अरु भूत भविष्य वर्तमान तीनों काल भी मेरे आश्रय हैं, जैसे समुद्रके आश्रय तरंग हैं, तैसे मेरे आश्रय काल है, अरु चित्तका संबंध तेरे तांई प्रमाद करिके है, अरु प्रमाद् यही है, जो चिन्मात्र पदविषे चित्त होकरि फुरता है, अरु चित्त कैसा है, जो जड भी है, अरु चेतन भी है, इसीका नाम चिद्‌जड ग्रंथि है, जब इह ग्रंथि खुल जावैगी, तब अपणे आपकों वासुदेवरूप जाणैगा, जब निर्वासनिक होवैगा, तब संसाररूपी वृक्ष नष्ट हो जावैगा, जैसे बीजविषे वृक्ष होता है, तैसे चित्तविषे संसार है, जैसे बीजके जलणेतें वृक्ष भी जलि जाता है, तैसे वासनाके दग्ध हुएतें संसार भी दग्ध होता है ॥ हे राजा! जैसे एक डब्बेविषे रत्न होते हैं, तौ रत्नोंके नाश हुए डब्बा नाश नहीं होता, अरु डब्बेके नष्ट हुए रत्न नष्ट होते हैं, सो डब्बा क्या है, अरु रत्न क्या है; श्रवण करु, डब्बा चित्त है, अरु रत्न देह है, तातें चित्त नष्ट होणेका उपाय करहु, जब चित्त नष्ट होवैगा, तब देहतें रहित होवैगा, देहके नष्ट हुए चित्त नष्ट नहीं होता, अरु चित्तके नष्ट हुए देह नष्ट हो जाता है, जब चित्तरूपी धूडतें रहित होवैगा, तब केवल शुद्ध आकाश होवैगा ॥ ॥ इति श्रीयो० नि० चित्तत्यागवर्णनं नाम त्रिसप्ततितमः सर्गः ॥ ७३ ॥ ॥

॥ वसिष्ठ उवाच ॥ हे रामजी! जब इस प्रकार कुंभने कहा, जो चित्तका त्यागणाही सर्व त्याग है, तब शिखरध्वजनें कहा, हे भगवन्! मैं चित्तकों स्थित कैसे करौं, संसाररूपी आकाशकी चित्तरूपी धूड है, अरु संसाररूपी वृक्षका चित्तरूपी वानर है, जो कबहुं, स्थित नहीं होता, तातें ऐसे चित्तकों मैं कैसे स्थित करौं, तब कुंभनें कहा, हे राजन्! चित्तका रोकणां तौ सुगम है, नेत्रोंके खोलणे अरु मुंदणेविषे भी कछु यत्न है; परंतु चित्तके रोकणेविषे कछु यत्न नहीं, परंतु सुगम किसकों है, जो दीर्घदर्शी है, अरु अज्ञानीकों चित्तका

रोकणां कठिण है, जैसे चंडालकों पृथ्वीका राजा होणां कठिण है, अरु जैसे तृणकों सुमेरु होणां कठिण है तैसे अज्ञानीकों चित्तका रोकणा कठिण है ॥ राजोवाच ॥ हे देवपुत्र! चित्तका तोडनां कठिण है, तौ भी टूटि जाता है, परंतु मनका रोकणां अति कठिण है, जैसे बडे मच्छकों बालक रोकी नहीं शकता, तैसे मैं चित्तकों रोकी नहीं शकता ॥ हे देवपुत्र! तुम कहते हो, जो मनका रोकणां सुगम है, अरु मुझकों ऐसे कठिण भासता है; जैसे मूर्त्ति लिखी हुई अंध पुरुषकों नेत्रसों नहीं दृष्ट आवती, तौ वे हाथविषे कैसे लेवै, तैसे तिनकों वश करणां मेरे तांई कठिण भासता है, प्रथम चित्तका रूप मेरे तांई कहो जो क्या है॥ ॥ कुंभ उवाच ॥ ॥ हे राजन्! इस चित्तका रूप वासना है, जब वासना नष्ट होवै, तब चित्त नष्ट हो जावै, तातें चित्तका बीज तूं नष्ट कर, तब चित्तरूपी वृक्ष भी नष्ट होवै, न कोउ टास रहै, न कोउ फूल फल रहै, अरु जब टासकों काटैगा, तब बहुरि होवैगा, टासके काटणेतें वृक्ष नष्ट नहीं होता, बहुरि केई टास होता है, जब बीजकों नष्ट करै, तब वृक्ष भी नष्ट हो जावै ॥ ॥ राजोवाच ॥ हे भगवन्! संसाररूपी सुगंधि है, तिसका चित्तरूपी फूल है, अरु संसाररूपी तंतु है, तिसका चित्तरूपी भीह है, अरु देहरूपी तृण है, तिसके उठावणे उडावणेवाला चित्तरूपी पवन है, अरु जरा मृत्यु अध्यात्मक अधिभूतक तेल हैं, तिनका यह तिल है, जिसतें तेल उपजता है, अरु संसाररूपी अंधेरी है, तिसका यह चित्तरूपी आकाश है, जो आकाशविषे केई अंधेरी होतियां हैं, अरु हृदयरूपी कमलका चित्तरूपी भंवरा है, तिस बीज भी कहो, अरु टास भी कहो, जो क्या है, अरु टासका काटणां क्या है, अरु वृक्ष क्या है, अरु फूल फल क्या हैं, सो कृपाकरि कहो॥ ॥कुंभ उवाच॥ हे राजन्! चेतनरूपी क्षेत्र स्वच्छ निर्मल है, तिसविषे अहंभाव बीज है, इसीकों अहंकार कहते हैं, अरु इसीकों चित्त कहते हैं, इसीकों मन कहते हैं, अरु इसीकों जड कहते हैं, इसीकों मिथ्या कहते हैं, तिस अहंविषे जो संवेदन है, सोई देह इंद्रियां हो पसरी है, तिसविषे जो निश्चय है, सो बुद्धि है, तिस बुद्धिविषे जो निश्चय

है, यह मै हौं, यह संसार है, सोइ जीव अहंकार है, अहंकार इस वृक्षका बीज है, अरु वासना इस चित्तरूपी वृक्षके टास हैं, अरु सुखदुःख इस चित्तरूपी वृक्षके फल हैं ॥ हे राजन्! इसका जो काटणां है, सो सुण, एकांत बैठीकरि चिंतवनातें रहित होणां, एक आश्रयकों त्यागिकरि दूसरेका अंगीकार करणां, इस प्रकार स्थित होणां, जो मैं ऐसा त्यागी हौं, इसका चिंतवणा यही टासकों काटणा है ॥ हे राजन्! इस टासके काटेतें वृक्ष नष्ट नहीं होता, काहेतें जो ऐसा होकरि स्थित होणां, जो मैं हौं, अरु वासना त्याग करै, कछु फुरै नहीं, जब अहंरूपी बीज नष्ट हो जाता है, तब चित्तरूपी वृक्ष नष्ट हो जाता है, काहेतें जो इसका बीज अहं है, जब अहंभाव बीज नष्ट हुआ, तब वृक्ष भी नष्ट हो जाता है, तातें चित्तका बीज तूं नष्ट कर ॥ राजोवाच ॥ हे देवपुत्र! तुमारा निश्चय मैं इहां जाण्या है, जो चित्तके त्यागेतें चित्तका बीज नष्ट करणां श्रेष्ठ है ॥ हे भगवन्! एता काल मैं टास काटता रहा हौं, इसीतें दुःख मेरे नष्ट नहीं भये, अरु तुमनें कहा, जो अहंही दुःखदायी है, सो अहंका उत्पन्न होणां कैसे होता है? ॥ कुंभ उवाच ॥ हे राजन्! शुद्ध चेतनविषे जो चैत्योन्मुखत्व अहंका फुरणा हुआ जो मैं हौं, सो दृश्यरूप हुआ है, मिथ्या संवेदन करिके हुआ है, जैसे शांत समुद्रविषे पवन करिके लहरी तरंग होते हैं, तैसे शुद्ध आत्माविषे अहं फुर्णा है, तिस करिके संसार हुआ है, तातें अहंभावकों नष्ट करु, जो शांतपदविषे स्थित होवै, जो दुःखदायक वस्तु है, तिसकों नष्ट करै सो शांत होवै ॥ ॥ राजोवाच ॥ हे भगवन्! उह कवन वस्तु है, जो जलावणे योग्य है, अरु उह कवन अग्नि है, जिसविषे जलती है ॥ कुंभ उवाच ॥ हे त्यागवानविषे श्रेष्ठ राजा! तेरा जो अपणां स्वरूप है, तिसका विचार कर, जो मैं क्या हौं, यह संसार क्या है, इसका दृढ विचार करणां सोइ अग्नि है, अरु मिथ्या अनात्मा जो देह इंद्रियांदिकविषे अहंभाव है, तिसकों वास्तवरूप विचार अग्निकरि जलावहु, जब विचार अग्नि करिके अहंकार बीजकों जलावैगा, तब केवल चिन्मात्र होवैगा ॥ हे राजा! मेरे उपदेश करिके तूं आपकों क्या जा

नत भया है, सो मेरे तांई कहौ, तब राजानें कहा, मैं राजा भी नहीं, अरु पृथ्वी भी मैं नहीं, अरु पर्वत भी मैं नहीं अरु आकाश भी मैं नहीं, अरु दशों दिशा भी मैं नहीं, अरु मैं रुधिरमांसकी देह भी नहीं, अरु कर्म इंद्रियां, ज्ञान इंद्रियां भी नहीं, अरु मन बुद्धि भी मैं नहीं, अरु मैं अहंकार भी नहीं, इनतें रहित शुद्ध आत्मा हौं, परंतु हे भगवन्! अहंरूपी कलंकता मेरे तांई कहांतें लगी है, तिस कलंकके दूर करणेकों मैं समर्थ नहीं, तब कुंभनें कहा ॥ हे राजा! इसी अहंका त्याग करु, जो मैं त्याग किया है, यह फुरणां भी न फुरै, शून्य हो रहु, जब इसका त्याग करैगा तब चेतन आकाश होवैगा ॥ हे राजा! तूं अपणे स्वरूपविषे जाणिकरि देख, जो कवन है, तब राजानें कहा ॥ हे भगवन्! मैं यह जानता हौं, जो मेरा स्वरूप आत्मा है, सो सर्वका आत्मा है, अरु मैं आनंदरूप हौं, सर्व मेरा प्रकाश है, परंतु यह नहीं जानता जो अहंभावकलना कहांतें लगी है, इसके नाश करणेकों मैं समर्थ नहीं, अरु इह मैं जाण्या जो संसारका बीज चित्त है, अरु चित्तका बीज अहंकार है, तुमारी कृपातें मैं जाण्या है जो मेरा स्वरूप आत्मा है, अहं त्वं मेरेविषे कोउ नहीं, तुम भी इस अहंरूप कलंकताकों दूरकरि रहे हौ, मेरेतें दूर नहीं होता, बहुरि बहुरि आय फुरता है, जो मैं शिखरध्वज हौं, इस अहं करिके मैं संसारी हौं, इसके नाश करणेका उपाय तुम कहौ ॥ कुंभ उवाच ॥ हे राजा! कारणविना कार्य नहीं होता, अरु जो कारणविना कार्य भासै तो जाणियें जो भ्रममात्र है, अरु मिथ्या है, अरु जिसका कारण पाइये सो जाणिये जो सत्य है, तातें तूं कह, इस अहंकार कारण क्या है, तब मैं उत्तर कहौंगा ॥ राजोवाच ॥ हे भगवन्! अहंकारका कारण शुद्ध आत्मा है, शुद्ध आत्माविषे जो जानना हुआ है, जानणेमात्रविषे जानणेका उत्थान हुआ है, जो दृश्यकी उर लगा है, सो जानणा संवेदनही अहंका कारण है ॥ कुंभ उवाच ॥ हे राजा! इस जानणेका कारण क्या है, प्रथम तूं यह कहु, पाछे दूर करणेका उपाय मैं कहौंगा ॥ हे राजा! जिसका कारण सत् होता है, तौ कार्य भी सत् होता है; अरु जो कारण झूठ होता है, तौ

कार्य भी झूठ होता है, जैसे भ्रम दृष्टि करिके दूसरा चंद्रमा आकाशविषे देखता है, सो कारण तिसका भ्रम है, तातें इस जानणे संवेदनका कारण कहु जो क्या है, जो जानणां संवेदन दृष्ट अरु दृश्यरूप होकरि स्थित भ ई है, अरु दृश्यदृष्टरूप होकरि स्थित भई है ॥ राजोवाच ॥ हे देवपुत्र ! जानणेका कारण देहादिक दृश्य है, काहेतें जो जानणां तब होता है, जब जानणे योग्य वस्तु आगे होती है, जो आगे वस्तु नहीं होती है तौ तिसका जानणाभी नहीं होता, तातें जानणेका कारण देहादिक हुए ॥ ॥ कुंभ उवाच ॥ हे राजन्! यह देहा दिक मिथ्या है, भ्रम करिके हुए हैं, इनका कारण तौ कोउ नहीं ॥ ॥ राजोवाच ॥ हे देवपुत्र! देहका कारण तौ प्रत्यक्ष है, खाता पिता है, अरु पितातें इसकी उत्पत्ति भई है, अरु प्रत्यक्ष कार्य करता दृष्ट आता है, तुम कैसे कहते हौ, जो कारणविना है, अरु मिथ्या है ॥ ॥ कुंभ उवाच ॥ हे राजा ! पिताका कारण कव न है, पिता भी मिथ्या है, जैसे स्वप्नविषे पिता अरु पुत्र देखिये सो दोनों मिथ्या हैं, तातें कहु पिताका का रण क्या है ॥ राजोवाच ॥ हे भगवन् ! पुत्रका कारण पिता, अरु पिताका कारण पितामह है, इसी प्रकार परंपरा करिके सर्वका कारण ब्रह्मा प्रत्यक्ष जानीता है, जो सर्वकी उत्पत्ति ब्रह्माजीतें भई है ॥ कुंभ उवाच ॥ हे राजन् ! ब्रह्मातें आदि काष्ठपर्यंत सर्व सृष्टि संकल्पकी रची है, अरु देह भी भ्रम करिके भासता है, जै से मृगतृष्णाका जल भासता है, जैसे सीपीविषे रूपा भासता है, तैसे आत्माविषे देह भासता है, जैसे आ काशविषे दो चंद्रमा भ्रम करिके देखिते हैं, तैसे आत्माविषे यह संसार भ्रम करिके भासता है, अरु जो तूं कहै, क्रिया कैसे दृष्ट आते हैं तौ सुण, जैसे कोउ कहै, वंध्याके पुत्रकों भूषण पहराये हैं, जो वंध्याके पुत्रही नहीं तौ भूषण किसनें पहिरेसो भ्रम करिके भासता है, जैसे स्वप्नविषे सब क्रिया होती है सो भ्रममात्र है, तैसे यह संसार तेरे भ्रमविषे है, जब भ्रम निवृत्त होवैगा, तब केवल आत्माही भासैगा ॥ हे राजन् ! जैसे तूं आपणा देह जानता है, तैसे ब्रह्माका भी जाण, ब्रह्माका कारण कवन है, तातें इस भ्रमतें जाग, जो

तेरा भ्रम नष्ट हो जावे ॥ ॥ राजोवाच ॥ हे भगवन् ! मैं जाग्या हौं, अब मेरा भ्रम नष्ट भया है, अरु मैंनें यह संसार मिथ्या जाण्या है, जो केवल संकल्पमात्र है, जो कछु दृश्य है सो मिथ्या है, अरु एक आत्माही मेरे निश्चयविषे सत् भया है ॥ हे भगवन् ! ब्रह्माका कारण भी ब्रह्म है, अरु अद्वैत है, अविनाशी है, अरु सर्वात्मा है, ब्रह्मा कारण यह हुआ ॥ ॥ कुंभ उवाच ॥ हे राजन् ! कारण अरु कार्य द्वैतविषे होते हैं सो असत् है, जो तिस कारणका देशतें भी अंत होता है, वस्तुतें भी अरु कालतें भी अंत हो जाता है, अरु परिणामी होता है, जो वस्तु परिणामी होवे सो मिथ्या है ॥ हे राजा ! आत्मा अद्वैत है, जिसविषे न एक कहणां है, न द्वैत कहणां है, न भोगता है, न भोग है, न कर्म है, अद्वैत है, जो स्वरूपतें परिणामकों नहीं प्राप्त भया, अरु सर्वात्मा है, जो सर्वदेश है, अरु सर्वकाल भी है, जो सर्व वस्तुविषे पूर्ण है, अरु अद्वैत है, जो अद्वैत है, तौ कारण कार्य किसका होवै, कारणकार्यका संबंध द्वैतविषे होता है, अरु परिणामी होता है, अरु जिसविषे देशकालका अंत है सो आत्मा अद्वैत है, तिसविषे न कोउ देश है, न काल है, न कोउ वस्तु है, चिन्मात्रपद है ॥ हे राजा ! मैं जानता हौं, जो तूं जाग्रत होवैगा, भ्रम तेरा नष्ट हो जाता है, जैसे बरफकी पुतली सूर्यकी किर्णासों क्षीण हो जाती है, तैसे तेरा अज्ञान नष्ट हो जाता है, अज्ञानके नष्ट हुएतें तूं आत्माही होवैगा, तूं अपणे प्रत्यक् चेतनस्वरूपविषे स्थित होहु, अरु देख, जो ब्रह्मा आदिक सर्व परमात्माका किंचन है, परमात्माही ऐसे होकरि स्थित भया है, अरु जो दृष्टि पडता है, तिस सर्वका अपणां आप आत्मा है, जो जागै तौ जाणै, जागैबिना नहीं जाणता ॥ राजोवाच ॥ हे भगवन् ! तुमारी कृपातें मैं जाग्या हौं अरु जानता हौं, जो मेरा स्वरूप आत्मा है, अरु मैं निर्मल हौं, अब मेरा मुझकों नमस्कार है, एक मैंही हौं, मेरेतें इतर कछु नहीं, अरु मैं आपकों जान्या है ॥ ॥ इति श्रीयोगवासिष्ठे निर्वाणप्रकरणे राजविश्रांतिवर्णनं नाम चतुःसप्ततितमः सर्गः ॥ ७४ ॥ ॥ ॥ राजोवाच ॥ हे भग

वन्! तुम कैसे कहते हौ, जो ब्रह्माका कारण कोउ नहीं, आत्मा ऐसा ईश्वर है, जो अनंत हैं अरु अच्युत अव्यक्त अरु अद्वैत है, परमाणुका विषय नहीं, अरु परमब्रह्म है, सोइ ब्रह्माका कारण है ॥ ॥ कुंभ उवाच ॥ हे राजा! तूंही कहता है, जो आत्मा अनंत है, जो अनंत है, तिसकों देश काल वस्तुका परिच्छेद नहीं, सर्व देश सर्व काल सर्व वस्तु पूर्ण हैं, सो कारण कार्य तिसका होवै, कारण तब होवै जब प्रथम द्वैत होवै सो आत्मा अद्वैत है, अरु कारण तिसकों कहते हैं, जो कार्यतें पूर्व होवै, अरु पाछे भी उही होवै, जैसे घटके आदि मृत्तिका है, अंत भी मृत्तिका होती है, तिसकों कारण कहते हैं, सो आत्माविषे न आदि है, न अंत है, आत्मा अनंत है, अरु कारण तब होता है, जब परिणाम होता है सो आत्मा अच्युत है, अपणे स्वरूपतें कदाचित् नहीं गिर्या, अरु भोक्ता भी द्वैतविषे होता है, सो आत्मा अद्वैत है, भोग भोक्ता दोनों नहीं, अरु आत्माविषे कर्म भी नहीं, जो आत्मातें आदि कवन है, जिसकरि आत्मा सिद्ध होवै, अरु किसीका कार्य भी नहीं, काहेतें जो कार्य होता है सो इंद्रियांका विषय होता है, सो आत्मा अव्यक्त है, अरु जो कार्य होता है, तिसका कारण भी होता है, सो आत्मा सर्वकी आदि है, तिसका कारण कवन होवै जो सर्वात्मा है, अरु स्वच्छ है, आकाशवत निर्मल है, सो तेरा स्वरूप है ॥ ॥ राजोवाच ॥ हे भगवन्! बड़ा आश्चर्य है, मैं जाण्या है, जो आत्मा अद्वैत है, सो न किसीका कारण है, न कार्य है, अरु अनुभवरूप है सो मैं हौं, अरु निर्मल हौं, विद्या अविद्याके कार्यतें रहित हौं, अरु निर्वाण पद हौं, अरु निर्विकल्प हौं, मेरेविषे फुरणां कोउ नहीं, बहुरि कैसा हौं, जो मैं नहीं अरु मैंही हौं, ऐसा जो सर्वात्मा हौं, मेरा मुझकों नमस्कार है ॥ ॥ इति श्रीयो० निर्वाणप्रकरणे शिखरध्वजविश्रांतिवर्णनं नाम पंचसप्ततितमः सर्गः॥७५॥

॥ वसिष्ठ उवाच ॥ हे रामजी! राजा शिखरध्वज कुंभमुनिकों प्रबोध हुआ, ऐसे वचन कहीकरि केवल निर्वाणपदविषे स्थित भया, जब निर्विकल्प फुरणेतें रहित एक मुहूर्तपर्यंत स्थित रहा, जैसे दीपक वायु

तें रहित स्थित होता है, तब कुंभनें जगायकरि कहा ॥ हे राजन्! तेरा समाधिसाथ क्या है, अरु उत्थान क्या है, तूं तौ केवल आत्ममात्र है, अरु मैं जानता हौं, जो तूं परम ज्ञानकरि शोभत भया है, जैसे डब्बे विषे रत्न होता है, तिसका प्रकाश बाहिर दृष्ट नहीं आता, अरु जब डब्बेसों निकासीकरि देखिये, तब बडा प्रकाश भासता है, तैसे अविद्यारूपी डब्बेसों तूं निकस्या है, अरु परमज्ञान करिके शोभत भया है॥ हे राजा! तेरेविषे न कोउ क्षोभ है, न कोउ उपाधि है, संसारके रागदोषतें तूं रहित भया है, शांतरूप जीवन्मुक्त होकरि विचरु, तेरे तांई उपाधि कोउ न लगैगी॥ ॥ वसिष्ठ उवाच ॥ हे रामजी! जब इस प्रकार कुंभमुनिनें कहा, तब राजा शांतरूप हो गया, अरु कहा ॥ हे भगवन्! जो कछु तुमनें आज्ञा करी सो सर्व भली प्रकार मैं जाण्या है, अब एक प्रश्न अवर है, तिसका उत्तर कृपाकरि कहौ, जो मैं दृढ स्थित होउं॥ हे भगवन्! आत्मा तौ एक है, अरु शुद्ध है, केवल आकाशरूप है, चेतनमात्र है, तिसविषे द्रष्टा दर्शन दृश्य त्रिपुटी कहांतें उपजी है, सो कहौ ॥ ॥ कुंभ उवाच ॥ हे राजा! जो कछु स्थावर जंगम संसार है, सो महाप्रलयपर्यंत है, जब महाप्रलय होता है, तब केवल आत्माही शेष रहता है, अरु स्वच्छ निर्मल होता है, तहां न तेज होता है, न अंधकार होता है, केवल अपणे आप स्वभावविषे स्थित होता है, अरु जेता कछु आनंद है, तिसका अधिष्ठान आत्मा है, अरु सतअसततें रहित है, सत कहियें जिसकों बुद्धि इदंकरि कहते हैं, अरु असत कहियें जिसकों नहीं कहते हैं, तिस सतअसततें रहित अरु सर्व लक्ष्मीकरि संयुक्त है, जो अपणां स्वभावमात्र है, जिसविषे उपाधि कोउ नहीं, अरु सर्वदा प्रकाशवान है, अरु सर्वदा उदयरूप है, तिस परमात्माका यह संसार चमत्कार है, जैसे रत्नका चमत्कार लाट होती है, तैसे ब्रह्मका चमत्कार यह संसार है, तातें ब्रह्मरूप है, इतर कछु नहीं हुआ, केवल ब्रह्मरूप है, अरु ब्रह्मतें इतर करिके है, सो मिथ्याही भ्रम जाणनां. जो कछु आकार भासते है, सो असत हैं ॥ हे राजा! जो सब आकार मिथ्या हैं, तौ तेरी सं

वेदन भी मिथ्या है, आत्माविषे अहंत्वंका उत्थान कोउ नहीं, केवल ज्ञानमात्र है, अरु केवल सतरूप है, अरु आनंदरूप है, अरु अविद्या तमतें रहित प्रकाशरूप है, अरु प्राणोंकरि नहीं जाणीता, जो इंद्रियांका विषय नहीं, अरु मनकी चिंतवनातें रहित है, काहेतें जो सर्वका द्रष्टा है, अरु सर्वका अपणां आप अनुभवरूप है ॥ हे राजा ! तिसविषे स्थित होहु, बहुरि आत्मा कैसा है, जो बडेतें बडा है, अरु सूक्ष्मतें सूक्ष्म है, अरु स्थूलतें स्थूल है, जिसविषे आकाश भी किसी उर अणु जैसा पाइता है, अरु ब्रह्मांड भी तिसविषे तृणसमान पाइते हैं, अरु अपणे आपकरि पूर्ण है, अरु अपणे आपकरि घूर्म है, अरु किंचित भी तिसतें उत्पन्न नहीं भया, अरु नानाप्रकार करिके स्थित भया है, फुरणे करिके जगत भासता है, फुरणेके निवर्त हुए केवल शुद्ध आत्मा है ॥ ॥ राजोवाच ॥ हे भगवन् ! तुम कहते हौ, जो संसार फुरणेमात्र है, अरु आत्मा शुद्ध शांतिरूप है, अरु निर्विकल्प है, तौ तिसविषे संवेदन फुरणां कहांतें आया है ॥ ॥ कुंभ उवाच ॥ हे राजन् ! फुरणां भी आत्माका चमत्कार है, जैसे पवनविषे सस्पंद फुरणां शक्ति भी है, अरु निस्पंद ठहरणां शक्ति भी है, जब फुरता है, तब स्पर्श चलणां प्रगट होता है, जब ठहर जाता है, तब प्रगट नहीं होता, तैसे संवेदन जब फुरता है, तब नानाप्रकार होते हैं, अरु जगत भासता है, जब फुरणां मिट जाता है, तब केवल शुद्ध आत्मा भासता है ॥ हे राजन् ! आत्मसत्तामात्र है, अरु संसार भी सन्मात्र आत्माही है, जो सम्यक् दृष्टिकरि देखियें तौ आत्माही भासता है,अरु असम्यक् दृष्टिकरिके दुःखदायक जगत भासता है,जिसके मनविषे संसारभावना है, तिसकों दुःखदायक भासता है, अरु जिसके हृदयविषे आत्मभावना होती है, तिसकों आत्माही भासता है, अरु सुखरूप होता है, काहेतें जो आत्मा नाम अपणे आपका है, जिसनें जगत्कों अपणां आप जाण्या, तिसकों दुःख कहां होवै ॥ हे राजन् ! यह संसार भावनामात्र है, जैसी भावना होती है, तैसेही भासता है, जिसकी भावना विषविषे अमृतकी होती है, तौ विष भी अमृत हो जाता है, अरु जिसकी भावना अमृ

तविषे विषकी होती है, तब अमृत भी विष हो जाता है, काहेतें जो संसार भावनामात्र है, जैसी भावना दृढ करता है, यद्यपि आगे उह वस्तु न होवै तौ भी हो जाती है, तातें संसार भावनामात्र मिथ्या है, ज्ञानवानकों दुःख कदाचित् नहीं देता अरु अज्ञानीकों सुख कदाचित् नहीं देता ॥ हे राजन्! अहंता अरु संवेदन चित्त अरु चैत्य यह भी आत्माकी संज्ञा है, जैसे आकाश कहियें शून्य कहियें, नभ कहियें इह सर्व संज्ञा आकाशहीकी हैं, तैसे सर्व संज्ञा आत्माकी हैं, आत्मातें इतर कछु नहीं, अहं त्वं सर्व आत्माके आश्रय हैं, जैसे भूषण स्वर्णके आश्रय होते हैं, परंतु स्वर्ण परिणामकरि भूषण होता है, जो पूर्वरूपकों त्यागता है, आत्मा तैसे भी नहीं, केवल एकरस है, अरु अपणे आपविषे स्थित है, कदाचित् परिणामकों नहीं प्राप्त भया, यह संवेदन आत्माका चमत्कार है, अरु सत असततें आत्मा पर है, जेती कछु दृश्य है, सो आत्माविषे नहीं, चित्त करिके रची है, इसीतें पर है ॥ हे राजन्! सो कारण कार्य किसका होवै, कारण कार्य तब होता है, जब दृश्य होता है, सो आत्मा किसीका विषय नहीं, कारण कार्य किसीका होवै, अरु विश्वकी आदि भी आत्मा है, अंत भी आत्मा है, अरु मध्यविषे भी आत्माही है, जो कछु अवर भासता है, सो भ्रममात्र है, जैसे आकाशविषे घर मंडल पुर दृष्ट आते हैं, तिसकी आदि भी आकाश है, अंत भी आकाश है, अरु मध्य भी आकाश है, जो घर मंडल पुर भासते सो मिथ्या हैं, जैसे अग्नि नानाप्रकार दृष्ट आता है, सो मिथ्या आकार है, एक अग्निही है, तैसे सर्वकी आदि मध्य अंत एक आत्माही सार है ॥ हे राजन्! जैसे जलविषे भी देश काल होता है, काहेतें जो दृश्य है सो इंद्रियांका विषय है, यह तरंग अमके स्थानतें उठा है, अरु अमके स्थानविषे जाय लीन भया, तौ स्थान देश हुआ, अरु उपजीकरि एता काल रहा सो काल हुआ, अरु जिसकों इंद्रियविषयकरि न शकही, तिसविषे देश काल कैसे होवै ॥ ॥ राजोवाच ॥ हे भगवन्! मैं भली प्रकार जाण्या है, जो आत्मा चिन्मात्र है, ज्ञान इंद्रियां कर्मइंद्रियांतें पर है

अरु देश काल इंद्रियां मनकरि जाणता है,जो अमका देश है, अमका काल है,जहां इंद्रियां अरु मनही न होवै, तहां देश काल कहां है ॥ ॥ कुंभ उवाच ॥ हे राजन्! जो तैंनें ऐसे जाण्या तौ तूं जाग्या है, आत्माविषे देश काल कोउ नहीं, इह मन इंद्रियांकरि जाणीता है, जो यह देश है, अरु यह काल है, जो इनतें रहित होकरि देखै तौ आत्माही भासै, अरु जो इनसहित देखै तौ संसारही दृष्ट आवैगा ॥ हे राजन्! इनतें रहित होकरि देख, ज़ो संसार तेरेविषे कछु न रहै, जो अमका प्रश्न किया, अब अमका प्रश्न करौं, संसार तब लग होता है, जबलग इनका संयोग अपणेसाथ होता है ॥ हे राजन्! ब्रह्मकरि ब्रह्मकों देखै, अरु पूर्णकों देखै, जो तूं भी पूर्ण होवैही, जब पूर्ण होवैगा, तब सर्व उर आपकों जाणैगा, अरु सर्व संज्ञा तेरीही होवैगी, अरु निर्वाच पदकों प्राप्त होवैगा, जहां इंद्रियांकी गम नहीं, केवल आकाशरूप है, जैसे आकाश अपणी शून्यताकरि पूर्ण है, तैसे तूं अपणे चेतन स्वभावकरि आप पूर्ण होवैगा, जब मनसहित षट् इंद्रियांतें रहित होकरि देखैगा, अपणे आपकों बहुरि इनसहित देखैगा तौ भी तेरे तांई चेतन आत्माही भासैगा, संसार का शब्द अर्थ तेरे हृदयतें उठि जावैगा, शब्द यह जो संसार है, अरु तिसकों सत् जानणां यह अर्थ है, सो भावना निवृत्त हो जावैगी, केवल आकाशरूप आत्माही भासैगा, अरु संसार संवेदनमात्र है, संवेदन कहियें चित्तशक्तिका चमत्कार है, यही चित्तशक्ति ब्रह्मा होकरि स्थित भई है, अरु संसारकों देखणे लगी है, जब अंतर्मुख होती है, तब आत्माही दृष्ट आता है, आत्मा सदा एक रस है, जब बहिर्मुख होती है, तब संसार दृष्ट आता है,जैसी यह भावना करता है,तैसेही आगे दृष्ट आता है, जब संसारकी भावना होती है तब संसारही भासता है, जब आत्माकी भावना होती है, तब आत्माही भासता है, आत्मा सदा एकरस है, अरु असंसारी है, तातें हे राजन्! तूं आत्माकी भावना करु,जो तेरे तांई आत्माही भासै॥ ॥ इति श्रीयोगवासिष्ठे निर्वाणप्रकरणे शिखरध्वजबोधनं नाम षट्सप्ततितमः सर्गः ॥ ७६ ॥ ॥ ॥

॥ कुंभ उवाच ॥ हे राजन्! यह संसार जो तेरे तांई भासता है, सो आत्माविषे नहीं, केवल शुद्ध आत्माविषे जो अहं उत्थान है, सोइ संसार है, सो अहंका चमत्कार न सत है, न असत है, न अंतर न वाहिर है, न शून्य है, न अशून्य है, केवल अपणे आपविषे स्थित है, अरु संसारका प्रध्वंसाभाव भी नहीं, प्रध्वंसाभाव कहिये जो पहिले होवै, पाछे नाश हो जावै, सो संसारका उदय अरु अस्त होणां आत्माविषे नहीं, केवल अपणे आपविषे स्थित है, तिसतें इतर कछु नहीं, यह कहणां भी आत्माविषे नहीं, जो केवल अपणे आपविषे स्वाभाविक स्थित है, तिसविषे वाणीकी गम नहीं, वाणी तिसकों कहते हैं, जहां दूसरा होता है, जहां दूसरा न होवै तहां वाणी क्या कहै, यह कहणां भी तेरे उपदेशनिमित्त कहा है, आत्माविषे किसी शब्दकी प्रवृत्ति नहीं ॥ हे राजा ! ऐसा आत्माका कारण कार्य किसका होवै, आत्मा शुद्ध है, निर्विकार है, अरु प्रमाणोंतें रहित है, जो किसी लक्षणकरि प्रमाण किया नहीं जाता, सो आकार होकरि स्थित भया है अरु शांतरूप है ॥ हे राजा ! ऐसा आत्मा है, कारण कार्य किसका होवै, कारण कार्य तब होता है, जब प्रथम परिणामकों प्राप्त होता है, अरु क्षोभकों प्राप्त होता है, सो आत्मा शांतरूप है, अरु कारण तब होवै, जब क्रिया करिके कार्यकों उत्पन्न करै, सो आत्मा अक्रिय है, क्रियातें रहित है, अरु कारणकों कार्यतें जाणीता है, सो आत्मा चिन्हतें रहित है, अरु प्रमाणोंका विषय नहीं तातें कारण कार्य आत्मा किसीका नहीं, अरु आत्माकों कारण कार्य मानणा मेरे तांई आश्चर्य आता है ॥ हे राजन्! जो वस्तु उपजती है, सो नष्ट भी होती है, अरु जो नष्ट होती है सो उपजती भी है, सो आत्मा सर्वकी आदि है, अरु अजन्मा है, अरु निर्विकार है, तिसविषे स्थित होउ, जो तेरा संसार निवृत्त हो जावै, यह संसार अज्ञान करिके भासता है, जब तूं स्वरूपविषे स्थित होकरि देखैगा, तब संसार न भासैगा, अरु ऐसे भी न भासैगा, जो संसार आगे था, अब निवृत्त हुआ है, एकरस आत्माही भासैगा, केवल शून्य आकाश हो जा

वैगा, शून्य कहियें संसारतें रहित हो जावैगा, स्वरूप चेतन नाना करिके भी उही है, अरु एक भी उही है, शून्य है, अरु शून्यतें रहित है, द्वैतरूप भी उही है, अद्वैतरूप भी उही है, ऐसा भासैगा॥ ॥ इति श्रीयोगवासिष्ठे निर्वाणप्रकरणे शिखरध्वजप्रथमबोधो नाम सप्तसप्ततितमः सर्गः ॥ ७७ ॥ ॥

॥ कुंभ उवाच ॥ हे राजा! जो कछु देखता है, सो चेतन घन है, तिसविषे अहं त्वं शब्द कोउ नहीं, अरु अहं त्वं शब्द प्रमादकरि होते हैं, जब आत्माविषे स्थित होकरि देखैगा, तब आत्मातें इतर कछु न भासैगा, तौ अहं त्वं शब्द कहां भासै ॥ हे राजन्! यह नानाप्रकारकी संज्ञा चित्ततें कल्पी है, जब चित्ततें रहित होवैगा, तब नाना अरु एक संज्ञा कोउ न रहैगी ॥ हे राजन्! सर्व ब्रह्म है, यह वाक्य वेदका सार है, जब इस वाक्यविषे दृढ भावना बुद्धि होवैगी तब एकरस आत्मही दृष्ट आवैगा, अरु चित्त नष्ट हो जावैगा, जब चित्त नष्ट हुआ, तब केवल महाशुद्ध आकाशकी नांई स्थित होवैगा, निर्दुःख पदकों प्राप्त होवैगा, जो पद सर्वकी आदि है, अरु सर्वदा मुक्तरूप है ॥ ॥ राजोवाच ॥ हे भगवन्! तुम कहा जो चित्तके नष्ट हुएतें दुःख कोउ न रहैगा, सो चित्तनष्टका उपाय तुम कहा है, परंतु मैं दृढकरि नहीं समझा, तातें मेरे दृढ होणेके निमित्त कृपा करिके बहुरि कहौ, जो चित्त नष्ट कैसे होता है॥ कुंभ उवाच ॥ हे राजन! यह चित्त न किसी कालका है, अरु न किसीकों है, न यह देखता है, चित्त हैही नहीं, तौ मैं तेरे तांई क्या कहौं ॥ अरु जो चित्त तुझकों दृष्ट आता है तौ तूं आत्माही जाण, आत्मातें इतर वस्तु कछु नहीं ॥ हे राजन्! महासर्गके आदि अरु अंत सृष्टि कोउ नहीं, केवल आत्मा है, अरु यह कहणां भी आत्माविषे नहीं, मैं तेरे जतावणेके निमित्त कही है, अरु मध्य जो कछु दृष्ट आता है, सो अज्ञानीकी दृष्टिविषे है, आत्माविषे सृष्टि कोउ नहीं, आत्मा किसीका उपादान कारण, अरु निमित्त कारण नहीं काहेतें जो अच्युत है, परिणामकों नहीं प्राप्त भया, अरु उपादान भी परिणामकरि होता है, आत्मा शुद्ध है, अरु निराकार है,

आकाशरूप है, सो कारण कार्य किसका होवै, अरु चित्त भी वासनारूप है, वासना तब होती है, जब वास होती है, वास कहियें वासना करणेयोग्य, जो आगे सृष्टि भी नहीं तौ वासना किसकी फुरै, अरु चित्त विषे संसारकी स्थिति कैसे होवै, तातें चित्त कछु नहीं, यह विश्व आत्माका चमत्कार है, अरु सृष्टि आत्माविषे कोउ नहीं, निरालंब केवल अपणे आपविषे स्थित है, हे राजन्! संसार भी नहीं भया, अरु चित्त भी नहीं भया, तौ अहं त्वं आदिक शब्द भी आत्माविषे कोउ नहीं, यह शब्द तब होते हैं, जब चित्त होता है, अरु चित्त तबलग है, जबलग वासना है, जब निर्वासनिक पदकों प्राप्त भया, तब कल्पना कोउ नहीं रहती ॥ हे राजन्! यह संसार महाप्रलयविषे नष्ट हो जावैगा, सत असत संसार कछु न रहैगा, एक आत्माही शेष रहैगा, जो निराकार अब शुद्ध है, जबलग महाप्रलय नहीं भया, तबलग संसार है, सो महाप्रलय क्या है, श्रवण करु, एक क्षण आत्माका साक्षात्कार होणां, तिसकरि सृष्टिका शेष भी न रहैगा, सो ज्ञानही महाप्रलय है, अरु अब जो दृष्टि आता है, सो मिथ्या है, यह क्रिया भी मिथ्या है, अरु इसका भान होणां भी मिथ्या है, जैसे स्वप्नकी क्रिया भी मिथ्या है, तिसका भान होणां भी मिथ्या है, तैसे जाग्रत संसार स्वप्नमात्र है, कारणविनाही भासता है, जो कारणविना है, सो मिथ्या है, इसका कारण अज्ञान ही है, जो अपणा न जानणां, जब आपकों जाण्या तब आपणां आपही भासैगा, जैसे स्वप्नविषे अपणे न जानणेकरि भिन्न आकार भासते हैं, जब जाग्या तब आपणा आपही जाणता है जो मैंही था ॥ हे राजन्! मेरे तांई तौ एक आत्माही दृष्ट आता है, आत्माही है, आत्मातें इतर संसार कोउ नहीं, अरु इस संसारकों स्थित मानणां मूर्खता है, सदा चलरूप है, वेद शास्त्र अरु लोक भी कहता है जो संसार मिथ्या है, अरु आप भी जाणता है जो नष्ट हो जाता है, दृष्टि आता है, तिसविषे आस्था करणी मूर्खता है, आत्मा विषे संसार नाना अनाना कोउ नहीं, आत्मा सर्वदा अपणे आपविषे स्थित है, शुद्ध है, अरु अच्युत

ज्यौंका त्यौं है ॥ ॥ इतिश्रीयोगवासिष्ठे निर्वाणप्रकरणे शिखरध्वजबोधो नाम अष्टसप्ततितमः सर्गः ॥७८॥
शिखरध्वज उवाच ॥ हे भगवन्! अब मेरा मोह नष्ट भया है, अरु अपणा आप मैंनें जाण्या है, तुमारी कृपातें मेरा संसार निवृत्त भया है, शोकसमुद्रकों अब तर्या हौं, अरु शांत पदकों प्राप्त भया हौं, अहं त्वं शब्द मेरेविषे कोउ नहीं निर्वाणपदकों प्राप्त भया हौं, अच्युत हौं, चिन्मात्र हौं, केवल हौं, अरु शून्य हौं ॥ कुंभ उवाच ॥ हे राजन्! आत्मा शुद्ध आकाशकी नांई निर्मल है, आकाशतें भी सो अति निर्मल है, तिसविषे अहं मल है, सो अहंमोहतें उपजी है, मोह कहियें अविचार, जब विचार होता है, तब अहंकों नहीं पाइता, यह विश्व संवेदनविषे है, संवेदन सर्वके आदि होकरि स्थित भई है, जब संवेदन अंतर्मुख होती है, तब सर्व विश्व लीन हो जाती है, संवेदनहीविषे बंध अरु मुक्ति है, जब बहिर्मुख होती है, तब बंध है, जब अंतर्मुख होती है, तब मोक्ष है, जिसनें मन अरु इंद्रियांतें रहित होकरि अपणा आप देख्या है, तिसकों ज्यौंका त्यौं दृष्ट आता है, अरु जो मोहसंयुक्त देखता है, तिसकों विपर्यय भासता है, जैसे सम्यक् दृष्टि करिके भूषणविषे स्वर्ण भासता है, जब भूषणके आकार जाते हैं, तब भी स्वर्णही है, अरु मूर्खकों सोनेविषे भूषण दृष्टि आते हैं, चिरकालके अध्यास करिके जो बुद्धि इनविषे फुरती है, तौ भी प्रारब्धके वेगपर्यंत चेष्टा होती है, तब चेष्टाविषे भी आत्माही दृष्टि आता है; तातें केवल आत्माहीका किंचन होता है, जैसे सोनेविषे भूषण अरु आकाशविषे नीलता अरु वायुविषे स्पंद है, तैसे आत्माविषे सृष्टि है, जैसे आकाशविषे नीलता देखणेमात्र है, वास्तव कछु नहीं, तैसे आत्माविषे सृष्टि वास्तव कछु नहीं, भ्रांतिमात्रही है, जब भ्रांति निवृत्त होवैगी, तब जगतका शब्द अर्थ सर्व उरतें शांत होवैगा, अरु शब्द अर्थकी भावनातें जो चेष्टा होती है, तिसतें जब अभिलाषा निवृत्त हो जाती है, तब दुःख कोउ नहीं होता, इसीकों मुनीश्वर निर्वाण कहते हैं, जब ऐसा निश्चय निर्वाण पदका हुआ, तब शांतरूप शून्य पदकों पायकरि स्थित हो

ता है ॥ हे राजन्! अहंका उत्थान होणां यही बंधन है, अरु अहंका निर्वाण होणां यही मुक्ति है, अरु अहंके होणेकरि संसार दुःख है, जबलग अहंका उत्थान है; तबलग संसार है, अरु जबलग संसार है, तबलग अहंका उत्थान है, जब संसारकी सत्ता जाती रहै तब अहं फुरणां भी नष्ट हो जावैगा, जब फुरणा नष्ट भया, तब अहं भी नष्ट हो जावैगा, जब अहं नष्ट भया, तब केवल शुद्ध आत्माही शेष रहैगा, अरु अनामय एकही एक निर्दुःखही भान होवैगा, अहं ब्रह्मका उत्थान भी शांत हो जावैगा, अरु चेतनमात्रही रहैगा ॥ हे राजन्! जिसकों सर्व ब्रह्मकी बुद्धि भई है, तिसकों संसारकी बुद्धि नहीं, अरु जिसकों संसार बुद्धि है, तिसकों ब्रह्मबुद्धि नहीं, जैसी जैसी भावना दृढ होती है, तैसाही आगे भासता है, जिसकों ब्रह्म भावना दृढ होती है, सो ब्रह्मरूप हो जाता है, अरु जिसकों जगतकी भावना दृढ होती है, तिसकों जगत भासता है ॥ हे राजन्! तूं अब जाग्या है, अरु ब्रह्मस्वरूप हुआ है, जो शुद्ध निर्मल है, अरु प्रत्यक् है, जो किसी शब्द अरु लक्षणका विषय नहीं, अरु इंद्रियांका विषय नहीं ॥ हे राजन्! ऐसा आत्मा कारण कार्य जिसका होवै, जो केवल अद्वैत है अरु विश्व आत्माका चमत्कार है, जैसे समुद्रविषे नानाप्रकारके तरंग पवनकरि उपजते हैं, तौ भी समुद्रतें इतर कछु नहीं, तैसे आत्माविषे नानाप्रकारकी विश्व संवेदन फुरणे करिके उपजती है तौ भी आत्मातें इतर कछु नहीं, फुरणेमात्र है, जैसे स्तंभेविषे मनोराज्यकरि कोउ पुरुष पूतलियां कल्पता है, अरु नानाप्रकारकी चेष्टा करता है, इनकी चेष्टा तबलग है, जबलग संकल्प है, जब संकल्प निवृत्त हुआ, तब शून्य स्तंभही रहता है, जैसा आगे भी शून्य था, अरु तिसकी संवेदनविषे सृष्टि थी, तैसे यह संसार संकल्पमात्र है, जब संकल्प अंतर्मुख भया, तब संसारकी सत्ता जाती रहती है ॥ हे राजन्! संसार सत्ता जाती तब है जो आगेही असत है, अरु जो वस्तु सत होती है, तिसका नाश कदाचित् नहीं होता, तातें केवल संवेदन कल्पी है, जैसे एक शिलाविषे पुरुष पूतलियां कल्पता है, तौ

शिलाविषे तौ पूतली कोउ नहीं, ज्यौंकी त्यौं शिलाही है, तैसे फुरणे करिके आकार दृष्ट आते हैं, जब चित्त फुरणेतें रहित होवैगा, तब आत्माकों अपणा आप जाणैगा, अरु अशब्द पदकों प्राप्त होवैगा, जो शांतिपद है, अरु शुद्ध आकाशरूप है ॥ हे राजन्! सर्व शब्द अरु सर्व अर्थकी अभावना यह ब्रह्म अर्थ है, जहां कोउ कल्पना नहीं, जब सम्यक् दृष्टि होती है, तब शेष आत्माही भासता है, अरु यह भावना भी उठ जाती है, जो यह संसार है, यह ब्रह्म है, केवल ज्ञेयमात्रही होय रहता है, कैसा ज्ञेयमात्र है, जो शिलाकी नांईं ज्ञान है, ऐसा शेष रहता है ॥ इति श्रीयो० नि० शिखरध्वजबोधवर्णनं नाम नवसप्ततितमः सर्गः॥७९॥

॥ राजोवाच ॥ हे भगवन्! जैसे तुम कहते हौ, सो सत्य है, अरु मैं ऐसे जाणता हौं जो संसार आत्माका कार्य है, अरु आत्मा कारण है, जो आत्माका कार्य हुआ तौ आत्मस्वरूप हुआ, आत्मातें इतर नहीं ॥ कुंभ उवाच ॥ हे राजन्! आत्मा चेतनमात्र है, कारण कार्य किसीका नहीं, जो आत्मा अप्रत्यक् है, अरु अक्रिय है, अच्युत है, निरस है, जो अशब्द पद है, सो कारण कार्य किसका होवै अरु कारणकों कार्यद्वारा जाणीता है अरु आत्मा किसी प्रमाणका विषय नहीं, जो अप्रत्यक् है, अरूप है, अरु कारण तब होता है, जो क्रिया होती है, न किसीका कारण कार्य है, न कर्म है, केवल ज्यौंका त्यौं अपणे आपविषे स्थित है, चेतनमात्र है, शिवरूप है, शुद्ध है, यह विश्व भी चेतनमात्र है, जैसे आकाशविषे आकाश स्थित है, तैसे आत्माविषे विश्व आत्मरूपकरि स्थित है, ऐसी विश्व चेतनमात्र है, तिसविषे असम्यक्दर्शी अज्ञानकरि नानाप्रकार कल्पता है, अज्ञान कहियें वस्तुका न जानणा, जो वस्तु परमात्मा है, तिसके प्रमाद करिके वासनारूप चित्तसों विश्वकों कल्पता है, सो विश्व शब्दमात्र है, अर्थ कछु नहीं, जैसे दूसरा चंद्रमा आकाशविषे, जैसे तरंग समुद्रविषे, जैसे जल मृगतृष्णाविषे, जैसे वैताल परछायेविषे तैसे असम्यक्दृष्टि आत्माविषे विश्व कल्पता है, अरु सम्यक्दर्शी ऐसे जाणता है जो आत्मा शुद्ध है, अजन्मा है, अविनाशी

है, परम निरंजन है॥ हे राजन्! जब तूं सम्यक् दृष्टिकरि देखैगा तब संसारका प्रध्वंसाभाव भी न देखैगा, काहेतें जो चित्तका कल्प्या हुआ है, अरु चित्त अज्ञान करिके उपजा है, स्वरूपविषे न चित्त है, न अज्ञान है, न संसार है, केवल अद्वैत मात्र है, तहां एक कहां, अरु द्वैत कहां, केवल मात्र पद है, जब अज्ञान नष्ट हुआ, तब अहं त्वं चित्त फुरणां सब नष्ट हो जावैगा, बहुरि भ्रम दृष्ट न आवैगा ॥ हे राजन् ! आत्मातें इतर जो कछु भासता है सो अज्ञान करिके है, विचार कियेतें नहीं रहता ॥ राजोवाच ॥ हे भगवन्! अज्ञान क्या है; अरु नाश कैसे होवै सो कहो ॥ ॥ कुंभ उवाच ॥ हे राजन्! एक ज्ञान है, अरु एक अज्ञान है, ज्ञान यह जो पदार्थकों प्रत्यक्ष जानणां, अरु अज्ञान यह जो पदार्थकों न जानणां, अरु एक ज्ञान भी अज्ञान है, सो श्रवण करु, मृगतृष्णाका जल देखीकरि आस्था करणी जो है, अरु जेवरीविषे सर्प, सीपीविषे रूपा देखणां, अरु तिसकों सत्य जानणां, यह ज्ञान भी अज्ञान है, काहेतें जो सम्यक्दर्शी होकरि नहीं देखता, यह दृष्टांत है, अरु दार्ष्टांत यह है, जो शुद्ध आत्मा निराकार अच्युत है, तिसविषे मैं हौं, अरु मेरा अमका वर्णाश्रम है, अरु नानाप्रकार विश्व जानणां, यह ज्ञान भी अज्ञान है, अरु मूर्खता है ॥ हे राजन्! न कोउ जन्मता है, न कोउ मृत होता है, ज्यौंका त्यौं आत्माही स्थित है, तिसविषे जन्म मरण आदिक विकार देखणां, ऐसा जो ज्ञान है सो अज्ञान है ॥ हे राजन्! जैसे कोउ ब्राह्मण होवै, अरु ऊंची बाहुकरि कहै, मैं शुद्र हौं, मेरे तांई वेदका अधिकार नहीं, अरु जैसे कोउ पुरुष कहै, मैं मुआ हौं, तिसकों मैं जाणता हौं, तैसे आपकों कछु वर्णाश्रमका अभिमान लेकरि कहणां सो मूर्खता है, काहेतें जो असम्यक् दर्शन है, जब ज्यौंका त्यौं जाणै, तब दुःखी न होवै ॥ हे राजन्! ऐसा ज्ञान जो सम्यक् दर्शनकरि नष्ट हो जावै सो अज्ञान है, जैसे सूर्यकी किरणांविषे जलबुद्धि होती है, किरणके ज्ञानतें जलका ज्ञान नष्ट हो जाता है, सो जलका जानणां अज्ञान था, जैसे जेवरीविषे सर्प जानणां, सो सर्पका ज्ञान जेवरीके ज्ञानतें नष्ट हो जा

ता है, यह अज्ञान है, सम्यक् दर्शन करिके नष्ट होता है, जब ऐसा सम्यक्दर्शी होवैगा, तब अध्यात्मक ताप निवृत्त हो जावैगा, अरु शुद्ध होवैगा, जो आत्मा है, अज है, अरु शांतरूप है, सत् असत् सर्व आत्मा है, तिसतें इतर कछु नहीं, अरु प्रकाशरूप है सो ऐसा तूं है ॥ हे राजन्! अज्ञान भी अवर कोउ नहीं, इस चित्तके उदय होणेका नाम अज्ञान् है, अज्ञानका कारण चित्त है, अरु जो पदार्थ चित्त करिके उदय हुआ है, सो नष्ट भी चित्त करिके होता है, तातें तूं चित्त करिके चित्तकों नाश कर, जैसे अग्नि पवन करिके उपजता है, अरु पवनहीकरि शांत होता है, तैसे चित्तकरि चित्तकों नष्ट करु ॥ हे राजन्! न तूं है, न मैं हौं, न इंद्रिय है, न संसार है, न यह जगत है, केवल शुद्ध आत्मा है ॥ हे राजन्! जो चित्तही नहीं, तौ चित्तका कार्य विश्व कहां होवै, यह अज्ञानीकों भासता है, जो चित्त है, अरु विश्व है, केवल अपणे आपविषे आत्मा स्थित है ॥ हे राजन्! चित्तका उदय होणा अज्ञानतें है, जब अज्ञान नष्ट हुआ, तब चित्त अरु अहं त्वं सर्व नष्ट हो जाते हैं ॥ हे राजन्! तूं शुद्ध आत्मा है, एक है, अरु प्रकाशरूप है, अच्युत है, अरु निरंतर है, अरु देह इंद्रियांदिकरूप होकरि भी तूंही स्थित भया है, इच्छा अनिच्छा भी तूंही है, जैसे चंद्रमाकी किरणां चंद्रमातें भिन्न नहीं, तैसे तूं है, अरु निर्विकल्प है, कछु फुरणां तेरेविषे नहीं, तूं केवल ज्यौंका त्यौं स्थित है ॥ ॥ इति श्रीयोगवासिष्ठे निर्वाणप्रकरणे परमार्थोपदेशो नाम अशीतितमः सर्गः ॥ ८० ॥

॥ वसिष्ठ उवाच ॥ हे रामजी! जब ऐसे कुंभमुनिनें कहा, तब शिखरध्वज श्रवण करिके शांतिकों प्राप्त भया, नेत्र मुंदिके सब अंगकी चेष्टातें रहित हुआ, जैसे शिला उपर पुतली लिखी होवै, तैसे स्थित हुआ, एक मुहूर्तपर्यंत निर्विकल्प स्थित रहा, अरु बहुरि उठ्या, तब कुंभनें कहा ॥ हे राजन्! आत्मा जो निर्विकल्प है, तिस निर्विकल्प शिलाविषे तैंनें शयन किया, अरु ज्ञेय जो जानणेयोग्य है सो तैंनें जाण्या है क्यौं, अब अज्ञान तेरा नष्ट भया, अथवा नहीं भया, अरु शांतिकों प्राप्त भया अथवा नहीं भया सो कहु ॥ ॥ रा

जोवाच ॥ हे भगवन्! तुमारी कृपातें मैं उत्तम पदकों प्राप्त भया हौं ॥ हे भगवन्! तत्त्ववेत्ताके संगतें जो अमृत पावता है, सो क्षीरसमुद्रतें भी नहीं पाइता, अरु देवताविषे भी नहीं पावता, तुमारी कृपातें मैं ऐसे अमृतकों पाया है, जिसका आदि अंत कोउ नहीं, अनंत है, अरु अमृतसार है, अव मेरे दुःख सर्व नष्ट हो गये हैं, अब मैं जाग्या हौं, अरु अपणे आपकों जाण्या है, मैं आत्मा हौं, मेरेसाथ चित्त कोउ नहीं, मैं केवल अपणे आपविषे स्थित हौं, अव इच्छा मेरे तांई कोउ नहीं, अपणे स्वभावकों पाया है, अरु सर्वके आदिपदकों प्राप्त भया हौं, जिसविषे क्षोभ कोउ नहीं, ऐसे निर्विकल्प पदकों प्राप्त हुआ हौं ॥ हे भगवन्! ऐसा मेरा अपणा आप है, जिसकरि सर्व प्रकाशतें है, तिसके जाणेविना कोटि जन्म पाये थे, अव दुःख मेरे नाश भये हैं, तुमारी कृपातें एक क्षणविषे जाण्या है, आगे श्रवण भी करता, सो कारण कवन था, जो आगे न जाण्या, अरु अब जाण्या है ॥ कुंभ उवाच ॥ हे राजन्! तेरे कषाय अब परिपक्क हुए हैं, जैसे फल परिपक्क होता है, तब यत्नविना वृक्षतें गिर पडता है, तैसे तेरा अंतःकरण शुद्ध भया है, अब अज्ञान तेरा नष्ट हो गया है, जब अंतःकरण मलिन होता है, तब संतके वचन नहीं लगते, अरु जब अंतःकरण शुद्ध होता है, तब संतके वचन लगते हैं, जैसे कोमल भिहकों बाण लगै, तब शीघ्रही वेध्या जाता है, तैसे शुद्ध अंतःकरणविषे शीघ्रही उपदेश प्रवेश करता है ॥ हे राजन्! अब भोगकी तेरी वासना नष्ट भई है, अरु स्वरूप जाननेकी तेरी इच्छा भई है तातें तूं जाग्या ॥ हे राजन्! मैं उपदेश तव किया है, जो तेरा अंतःकरण शुद्ध भया है अरु प्रतिबिंब भी तहां पडता है, जहां निर्मल ठौर होता है, जैसे श्वेत वस्त्र ऊपर केसर का रंग शीघ्रही चढि जाता है, अरु रंग भी उज्ज्वल होता है, तैसे शुद्ध अंतःकरणविषे संतके वचन शीघ्रही प्रवेश करते हैं, अरु शोभा पावते हैं ॥ हे राजन्! जबलग अंतःकरण मलिन होता है, भावै जेता उपदेश करियें तोउ स्थित नहीं होता, जब भोगतें वैराग्य होता है तब वासना कोउ नहीं रहती, केवल आत्म

पदकी इच्छा होती है, तब स्वरूपका साक्षात्कार होता है ॥ हे राजन्! अब तेरा सर्व त्याग सिद्ध हुए हैं; अरु अ
ज्ञान नष्ट भया है, जो अवर उपाधि कोउ नहीं, चित्तही बडी उपाधि है, जब चित्त नष्ट हुआ, तब दुःख को
उ नहीं रहता, अब तूं सुखेन विचरु, तुझकों दुःख कोउ नहीं, शोक अरु भय कोउ नहीं, तूं शांतिपदकों
प्राप्त भया है ॥ राजोवाच ॥ हे भगवन्! अज्ञानीकों चित्तका संबंध है, अरु ज्ञानवानकों चित्तका संबंध नहीं
होता, जो स्वरूपविषे स्थित है तौ चित्तविना जीवन्मुक्ति क्रियाविषे कैसे वर्त्तता है ॥ कुंभ उवाच ॥ हे राज
न्! तूं सत् कहता है, जो ज्ञानीकों चित्तका संबंध नहीं, जैसे पत्थरकी शिलाविषे अंगुरी नहीं होती, तैसे
ज्ञानीकों चित्तका संबंध नहीं होता ॥ हे राजन्! चित्त वासनारूप है, सो वासना जन्ममरणका कारण है,
अरु जीवन्मुक्तकी वासना नहीं रहती, ज्ञानवानका चित्त सत्य पदकों प्राप्त है, अरु अज्ञानी चित्तविषे बं
धमान है, तिस करिके जन्मता भी है, अरु मरता भी है, अरु जो ज्ञानीका चित्त शांतिविषे स्थित है, ति
सकों न बंध है, न मोक्ष है, प्रारब्ध अनुसार भोग भोगता है, अरु सर्वात्माही देखता है, यद्यपि इंद्रियां
करि चेष्टा भी करता है, तौ भी सर्व ब्रह्मही देखता है, अरु क्रिया करणेविषे अभिमानतें रहित होता है,
जो मैं करता हौं, अरु भोगता हौं, अरु अज्ञानी आपकों करता मानता है, तिसकों संसार सत्य भासता
है, सत्य जाणीकरि संकल्प विकल्प करता है, अरु ज्ञानवानकों संसारकी सत्यता नहीं भासती; आपकों
अकर्ता अभोक्ता देखता है, अरु अभिलाषतें रहित चेष्टा करता है ॥ हे राजन्! संसारकों सत्य जानणा;
अरु अपणेविषे क्रिया देखणी तबलग होती है जबलग चित्तका संबंध होता है जब चित्तही नष्ट हो ग
या, तब संसार अरु फुरणा कहां रहै ॥ हे राजन्! अब चित्तका तैंनें त्याग किया है, तातें सर्वत्यागी भया
है, अरु आगे सर्व त्याग न था किया, जो अज्ञान नष्ट न था भया, अब अहंभाव तेरा दूर भया है, जो
अज्ञानका कार्य था, जब अज्ञान नष्ट भया, तब अहंभाव न रहा, अहंके त्याग करणेतें सर्व त्याग सिद्ध

हुआ, अरु आगे तैंनें राज्यका त्याग किया था, सो राज्यविषे तेरा कछु न था, बहुरि तमका त्याग किया, बहुरि वनतें आदि सर्व सामग्रीका त्याग किया, अब तिसका त्याग किया जो त्यागणे योग्य अहंभाव है, तातें सर्व त्याग भया, अरु जो कछु जानणे योग्य है सो जाण्या है, अरु शांतपदकों प्राप्त भया है ॥ हे राजन्! तूं आत्मा है, सर्व दुःखतें रहित है, जैसे मंदराचल पर्वततें रहित क्षीरसमुद्र शांतपदकों प्राप्त भया है, तैसे तूं अज्ञानतें रहित शांतपदकों प्राप्त भया है, अब तूं जाग्या है, अरु चित्तका त्याग किया है, तातें सर्व आत्मा अद्वैत भया है ॥ हे राजन्! जब दो अक्षर होते हैं, तब तिनकी संज्ञा नानाप्रकार होती है, जो अमृत विष अरु सुखदुःख अरु धर्म अधर्म यह होते हैं, जब एकाएकी अक्षर होता है, तव सर्वका आत्मा है, तैसे दूसरा अज्ञान नष्ट भया है, अरु सत्यपदकों प्राप्त भया है, अरु शुद्ध निर्मल है ॥ हे राजन्! जो ज्ञानवान है, सम्यक् दृष्टि करिके तिस चित्तका त्याग किया है, बहुरि तिसकों दुःख कोउ नहीं होता, सो तूं तिस पदकों प्राप्त भया है, जिसविषे दुःख कोउ नहीं, अरु तिस पदकों प्राप्त भया है, जहां स्वर्गादिक सुख तुच्छ हैं; स्वर्गविषे भी क्षय अतिशय होता है, अतिशय कहियें जो बडे पुण्यवाला आपसों उंचा देखता है, तब चाहता है, जो मैं भी इसी जैसा होउं, अरु क्षय कहियें मत इन सुखसों गिरौं, दोनों प्रकार दुःख होता है, सो पुण्य पाप दोनोंका तैंने त्याग किया है, तातें तूं सर्वत्यागी है, अरु अज्ञानी जो पापी जीव हैं, तिनको स्वर्ग भी भला है, जैसे स्वर्णका पात्र न पाइयें तौ पीतलका भी भला है, तैसे स्वर्णका पात्र जो ज्ञान है, जबलग प्राप्त न होवै, तबलग पीतलका पात्र जो स्वर्गादिक हैं, सो नरकतें भला है, अरु तुम सारखेकों कछु नहीं, जो आत्माविषे सर्व पदार्थकी पूर्णता है, अरु सर्वकी उत्पत्ति आत्मातें है ॥ हे राजन्! वर्णाश्रमविषे क्या आस्था करणी है, जहांतें इनकी उत्पत्ति है, अरु जहां लीन होते हैं, अरु मध्यविषे जिसके अज्ञानतें दृष्ट आते हैं तिसविषे स्थित होइये, जिसके ज्ञानतें सर्व लीन हो जाते हैं ॥ हे राजन्! संकल्प विकल्प जो उठते हैं, तिनविषे स्थित मत होहु;

जिसविषे उत्पन्न अरु लीन होते हैं, तिसविषे स्थित होहु, अरु तपादिक क्रियाकरि क्या सिद्ध होता है, जिसकरि तपादिक सिद्ध होते हैं, तिसविषे स्थित होहु; बुंदविषे क्या स्थित होणां है, जिस मेघतें बुंद उत्पन्न होती है, तिसविषे स्थित होइयें ॥ हे राजन्! जैसे स्त्री होवै, अरु भर्तातें कोउ पदार्थ चाहै, अरु आपन कहै, तैसे तपादिक क्रियाकरि क्या सिद्ध होता है, जो तिनकरि आत्मपदकी इच्छा करें, तौ इनकरि प्राप्त नहीं होता, अपणे आपकरि पावता है ॥ हे राजन्! आत्मा तेरा अपणा आप है, तिसकरि सर्व सिद्ध होता है, जो वस्तु पाछे त्याग करणी होवै, तिसकों ज्ञानवान प्रथमही अंगीकार नहीं करता; अरु जेता कछु तपादिक धंधा है, तिनकों चित्तकरि क्या रचता है, अपणे आपकों देख जो अनुभवरूप है; अरु सर्वदा निरंतर अपणे आपविषे स्थित है, जब तूं अपणे आपकरि आपकों देखैगा, तब तपादिक क्रियाकों दूर करिके शोभा पावैगा, जैसे बादलके दूर भये चंद्रमा प्रकाशवान शोभा पावता है, तैसे तूं भी भोगकी चपलताकों त्यागि करि शोभा पावैगा, जब इंद्रियांकों जीतैगा, अरु किसी पदार्थविषे आसक्त न होवैगा; अरु सर्व वासनाका त्याग करैगा, तब ज्ञानवान होवैगा, अरु जिसनें सर्व वासनाका त्याग किया है, तिसकों विष्णु जानणा, जो सर्व राज्यका स्वामी है, जिसनें मन जीत्या है, सो चेष्टाविषे भी ज्यौंका त्यौं रहता है; अरु समाधिविषे भी ज्यौंका त्यौं है; जैसे पवन चलणे अरु ठहरणेविषे तुल्य है, तैसे ज्ञानवानकों कहूं खेद नहीं होता ॥ राजोवाच ॥ हे सर्व संशयके छेदणेहारे! स्पंद अरु निस्पंदविषे ज्ञानी ज्यौंका त्यौं कैसे रहता है सो कृपाकरि कहौ ॥ ॥ कुंभ उवाच ॥ हे राजन्! चेतन आकाश है सो आकाशतें भी निर्मल है, जब तिसका साक्षात्कार हुआ, तब जहां देखैं तहां चेतनही भासता है, जैसे समुद्रके जाणेतें तरंग बुदबुदे सर्व जलही भासता है, तैसे चित्तविना आत्माके देखे हुए फुरणेविषे भी आत्माही दृष्टि आता है, अरु जिसनें आत्माकों नहीं जाण्या, तिसकों नानाप्रकारका जगतही भासता है, जैसे जलके जाणेविना तरंग बुदबुदे भिन्न भिन्न दृष्टि

आते हैं, अरु जलके जानवेतें तरंग भी जलमय भासते हैं ॥ हे राजन्! सम्यक्दर्शीकों जगत अत्मस्व रूप है, असम्यक्दर्शीकों जगत है, तातें तूं सम्यक्दर्शी होकरि देख जो जगत् भी आत्मरूप है अरु स म्यक्दर्शन जैसे प्राप्त होता है, सो श्रवण करु, संतका संग करणा अरु सतशास्त्रका विचार करणा जब दृ ढ भावना करियें तब केते कालतें स्वरूपका साक्षात्कार होता है, कालकी अपेक्षा दृढ विचारके निमित्त क ही है, जब दृढ विचार होता है, तब साक्षात्कार होता है, जब स्वरूपका साक्षात्कार हुआ, तब स्पंद नि स्पंदविषे एक समान होता है ॥ हे राजन्! जिसके समीप माखी होवे, सो माखीके निमित्त पर्वत क्यों खो जै अरु दउडै, तैसे तेरे घरविषे ब्रह्मवेत्ता चूडाला थी, तिसका त्यागकरि तैंनें वनविषे आय तपका आरं भ किया, तातें कष्ट वडा पाया, परंतु अब तूं जाग्या है, अरु दुःख तेरे नष्ट भये हैं, अब तूं शांति पदकों प्राप्त भया है, जैसे जेवरीके न जानणेकरि सर्प भासता है, अरु भली प्रकार जाणेतें जेवरीही भासती है, तैसे जिसनें भली प्रकार निस्पंद होकरि अपणा आप देख्या है, तिसकों फुरणेविषे भी आत्माही भासता है, जब मनकी चपलता मिटती है, तब तुरीयातीत पदकों प्राप्त होता है. जिस पदकों वाणी विषयकरि न हीं शकती ॥ हे राजा! तूं भी तिसी पदकों प्राप्त भया है, जो मन अरु वाणीतें रहित है, अरु तुरीयातीत पद है, जहां क्षोभ कोउ नहीं, शांति पद है ॥ इति श्रीयोगवासिष्ठे निर्वाणप्रकरणे शिखरध्वजबोधो नाम एकाशीतितमः सर्गः ॥ ८१ ॥ ॥ वसिष्ठ उवाच ॥ हे रामजी! जब राजाकों कुंभमुनिनें ऐसे उपदेश कि या, तिसतें उपरांत कहा ॥ हे राजा! अब हम जाते हैं, स्वर्गकों ब्रह्माजीके पास जो नारदमुनि आया है, देवताकी सभाविषे जब मेरे तांई न देखैगा, तब क्रोध करैगा ॥ हे राजा! जो कल्याणकृत पुरुष है, सो व डोंकी प्रसन्नता लेते हैं, तातें मैं जाता हों, अरु उपदेश जो तेरे तांई किया है, तिसकों भली प्रकार विचार णां, अरु सर्व शास्त्रोंका सार यही है, सो संपूर्ण वासनाका त्याग करणां, किसीविषे चित्तकों बंधमान न

हीं करणां, मेरे आवणेपर्यंत स्वरूपविषे स्थित रहणां, अवर किसी चेष्टाविषे नहीं लगणां, अरु स्वरूपकों भली प्रकार जाणिकरि भावै तैसे विचरहु, ऐसे कहीकरि कुंभमुनि उठी खडा हुआ, तब राजाने अर्घ्य अरु फूल चडावणेके निमित्त हाथविषे लिये, सो जल फूल हाथविषे रहे, जो कुंभमुनि अंतरधान हो गया, जब राजा कुंभमुनिकों अपणे आगे न देखत भया, तब विचार करणे लगा, देखौ ईश्वरकी नीति जाणी नहीं जाती, जो नारदमुनि कहां था, अरु तिसका पुत्र कुंभमुनि कहां, अरु मैं राजा शिखरध्वज कहां, नीतिही नें कुंभमुनिका रूप धारीकरि मुझकों आय जगाया है, अरु कुंभ बडा मुनि दृष्ट आया, जिसनें मेरेतें उपदेशकरि जगाया है, अब मैं अज्ञानरूपी गरतसों निकस्या हौं, अरु स्वरूपकों प्राप्त भया हौं, संपूर्ण संशय मेरे नष्ट भये हैं, अरु निर्दुःख पदविषे स्थित भया हौं, अरु अज्ञान निद्रातें जाग्या हौं, बडा आश्चर्य है॥ हे रामजी! ऐसे कहीकरि राजा शिखरध्वजनें संपूर्ण इंद्रियां अरु प्राण मन स्थित किया, अरु चेष्टातें रहित भया, जैसे शिलाके उपर पुतली लिखी होते हैं, जैसे पर्वतका शिखर स्थित होता है, तैसे स्थित भया, अरु उहां चूडाला कुंभरूप शरीरका त्यागकरि अरु चूडालाका सुंदर रूप धारीकरि उडी आकाशकों लंघिकरि अपणे नगरविषे आवत भई, अरु अंतःपुर जहां स्त्री रहती थी, तहां प्रवेश किया, अरु मंत्रीकों आज्ञा करी जो तुम अपणे अपणे स्थानविषे स्थित होउ, अरु राणी राजाके स्थानविषे स्थित भई, भली प्रकार प्रजाकी खबर लीनी, तीन दिन रहीकरि बहुरि उडी, जहां राजा वनविषे था, तहां आय प्राप्त भई, अरु कुंभका रूप धारीकरि देखा जो राजा समाधिविषे स्थित है, देखीकरि बहुत प्रसन्न भई॥ हे रामजी! ऐसे प्रसन्न होकरि चूडाला विचारत भई, बडा सुख कार्य हुआ, जो राजानें स्वरूपविषे स्थिति पाई, अरु शांतिको प्राप्त भया, बहुरि विचार किया, जो इसकों जगावौं, तब सिंहकी नांई गर्जी अरु बडा शब्द किया, तिस शब्द करिके जेते वनके पशु पक्षी थे, सो सर्व भयकों प्राप्त भये, परंतु राजा न जाग्या, बहुरि हाथ करिके

हिलावती भई, तौ भी राजा न जाग्या, जैसे मेघके शब्दकरि पर्वतका शिखर चलायमान नहीं होता, तैसे राजा चलामायन न भया, काष्ठ अरु पाषाणकी नांई स्थित रहा, तब राणीनें विचार किया जो राजा शरीरकों त्यागि न देवै तौ भला, अरु जो राजानें शरीरका त्याग किया होवै, तौ मै भी त्यागौंगी ॥ हे रामजी! चूडालानें शरीर न त्यागा, परंतु आरंभ करणे लगी, जो राजा अरु मैं एकठा शरीर त्यागणां हैं, बहुरि विचार करणे लगी, जो इसकी भविष्यत क्या होणी है, तब राजाके नेत्र पर हाथ लगाया, अरु देहसाथ देहका स्पर्श किया, तब देखा जो प्राण राजाके शरीरविषे हैं, अरु भविष्यतका भी विचार किया, जो इसका सत्व शेष रहता है, जीवन्मुक्त होकरि राज्यमें विचरणां है ॥ ॥ राम उवाच ॥ हे भगवन्! तुमनें कहा जो राजा काष्ठ अरु पाषाणकी नांई स्थित भया, बहुरि कहा जो हाथ लगायकरि देख्या, जो इसविषे प्राण हैं, जीवता है, तौ कुंभनें क्योंकरि जाण्या, यह मुझकों संशय है, सो दूर करो ॥

॥ वसिष्ठ उवाच ॥ हे रामजी! जिस शरीरविषे पुर्यष्टका होती है, तिसविषे हरियावलता होती है ॥ हे रामजी! अज्ञानीका चित्त रहता है, अरु ज्ञानीका सत्व रहता है, जो प्रारब्धवेग करिके फुरता है, अरु ब्रह्माकार वृत्ति होती है, अरु अज्ञानीका चित्त फुरणे करिके बहुरि शरीर पावता है, अरु ज्ञानी इष्ट अनिष्टविषे एक समान रहता है, अरु अज्ञानी एक समान नहीं रहता, इष्टविषे प्रसन्न अरु अनिष्टकी प्राप्तिविषे शोकवान होता है ॥ हे रामजी! ज्ञानी जब शरीरकों त्यागता है, तब ब्रह्मसमुद्रविषे स्थित होता है, अरु जबलग सत्व शेष है; तबलग फुरता है, अरु अज्ञानी शरीरकों त्यागता है, तब तिसविषे सूक्ष्म संसार होता है, जैसे बीजविषे वृक्ष फूल फल सूक्ष्मता करिके स्थित होते हैं, सो काल पायकरि बहुरि निकसता है, तिसी प्रकार राजाका सत्व शेष रहता था, तिस करिके बहुरि फुरैगा, तब कुंभरूप चूडालानें विचार किया जो इसके अंतर प्रवेश करिके जगावौं, जो मैं न जगावौंगी, तौ भी नीति करिके इसकों जानणां है,

तातें मैंही जगावौं, ऐसे विचार करिके अपणे शरीरका त्याग किया, चेतनताविषे स्थित होकरि अरु फुरणेकों लेकरि उसविषे जाय प्रवेश किया, प्रवेश करि उसकी जो चेतनता सत्व शेष था, उसकों फोडत भई, बडा क्षोभ किया, जब राजा उहांतें हिल्या, तब आप निकस आई, अरु अपणे शरीरविषे प्रवेश किया, जैसे पंखेरू आकाशविषे उडता है, बहुरि आलयविषे आय प्रवेश करता है, तैसे अपणे शरीरविषे आनि स्थित भई, अरु सामवेदका गायन करणे लगी, महासुंदर स्वरसाथ, तब राजाने श्रवण किया, अरु जाणत भया, जो कोउ सामवेद गावता है, ऐसे श्रवण करि जाग्या, अरु देखा जो कुंभमुनि बैठा है, देखी करि बहुत प्रसन्न भया, तब फूल जल चडाया, अरु कहा ॥ हे भगवान्! मेरे बडे भाग्य हैं, देखीकरि बहुत प्रसन्न भया, जो तुमारा दर्शन हुआ ॥ हे भगवन्! कूलरूपी जो कुलाचल पर्वत है, तिसविषे जो देहरूपी वृक्ष है, सो अब फूल्या है, तुमनें हमकों पावन किया है ॥ हे भगवन्! किसीकी समर्थता नहीं, जो तुम सारखेके चित्तविषे प्रवेश करै, जिसविषे सर्वदा आत्माका निवास है, तिस चित्तविषे मेरी स्मृति हुई है, जो दर्शन किया है, तातें मेरे बडे भाग्य हैं ॥ हे भगवन्! अमृतरूपी वचनोंकरि तुम प्रथम मेरे तांई पवित्र किया था, अरु अब जो चित्त किया है, सो मेरे तांई पावन किया है ॥ ॥ कुंभ उवाच ॥ हे राजन्! तेरा दर्शन करिके मैं भी बहुत प्रसन्न हुआ हौं, अरु तुम जैसी प्रीति मैं आगे किसीकी नहीं देखी ॥ हे राजन्! तेरे निमित्त मैं स्वर्गतें आया हौं, स्वर्गके सुख मेरे तांई भले न लगैं, अरु तूं मेरे तांई बहुत प्रीतम है, इसी निमित्त मैं आया हौं, अब स्वर्गविषे भी नहीं जाता, तेरेही पास रहौंगा ॥ ॥ राजोवाच ॥ हे भगवन्! जिस उपर तुम सारखेकी कृपा होती है, तिसकों स्वर्ग आदिक सुख भले नहीं लगते, तौ तुम सारखेकी बात क्या कहणी है, यह वन है, यह झुपडी है, इसविषे विश्राम करौ, मेरे बडे भाग्य हैं, जो तुमारा चित्त इहां रहणेकों भया है ॥ ॥ कुंभ उवाच ॥ हे राजन्! अब मेरे तांई शांति प्राप्त भई है, अरु संकल्पबीज नष्ट भया है, जैसे नदीके किनारेपर वली होती है, अरु

जलके प्रवाहकरि मूलसमेत गिरती है, तैसे तेरा संकल्पबीज नष्ट भया है, अब तूं यथाप्राप्तिविषे संतुष्ट हुआ है, कै नहीं हुआ, हेयोपादेयतें रहित हुआ है, कै नहीं हुआ, अरु जो पावणे योग्य पद है सो पाया है, कै नहीं पाया, अपणा अनुभव कहहु ॥ ॥ राजोवाच ॥ हे भगवन्! तुमारी कृपातें सर्वसों श्रेष्ठ पद मैं पाया हौं, जहां संसार सीमाका अंत है, अरु अब मेरे तांई उपदेशका अधिकार नहीं रहा, जो संपूर्ण संशय मेरे नष्ट भए हैं, हेयोपादेयतें रहित हौं, इसकरि सुखी विचरता हौं, अरु जो कछु जानणे योग्य था, सो मैं जाण्या है, अब दुःख मेरेविषे कोउ नहीं, सर्व ठौर मैं तृप्त हौं, अनीति प्राप्तरूप हौं, अरु आत्मा हौं, निर्मल हौं, अरु अपणे स्वभावविषे स्थित हौं, अरु सर्वात्मा हौं, निर्विकल्प हौं, मेरेविषे फुरणा कोउ नहीं, मैं शांतरूप हौं, अरु चिरपर्यंत सुखी हौं ॥ ॥ वसिष्ठ उवाच ॥ हे रामजी! इस प्रकार राजा अरु कुंभका तीन मुहूर्त संवाद हुआ, तिसतें उपरांत दोनों उठी खडे हुए, अरु चले, निकट एक तलाव था, जहां बहुत कमलिनी थी, तहां आएकरि दोनों स्नान करत भये, अरु गायत्री संध्या करी, पूजा करिके बहुरि उहांतें चले, वनकुंजोंविषे आये, तब कुंभनें कहा, चलियें, राजा कहा, भली बातां चलियें, तब चले, बहुत नगर देश ग्राम अरु तीर्थ देखे, अरु नानाप्रकारके वनविषे विचरे, जो फूल फल संयुक्त थे, तिनविषे विचरे अरु मरुस्थलविषे विचरे ॥ हे रामजी! ऐसे राजसी सात्विकी तामसी स्थानोंविषे विचरे, तीर्थादिक सात्विकी स्थान हैं अरु सुंदर वन आदिक राजसी स्थान हैं, अरु मरुस्थल आदिक तामसी स्थान हैं; तिनविषे विचरै, तौभी हर्षशोककों न प्राप्त भये, समताविषे रहे ॥ हे रामजी! कुंभका प्रयोजन फिरणेका भी यह था, जो राजा शुभ अशुभ स्थानोंकों देखिकरि हर्ष शोक करैगा, अथवा न करैगा, तौ भी राजा हर्षशोककों न प्राप्त भया, बहुरि बडे पर्वतकी कंदरा देखियां, अरु वन कुंज बडे कष्टके स्थान देखे, अरु एक वनविषे जाय स्थित भए, केते कालविषे राजा अरु कुंभ एक जैसे हो गए, एकठेहि स्नान करही, अरु एक जैसी मूर्त्यां, अरु एक जैसे जाप जपही, एक

जैसी पूजा करही,अरु एक जैसे दोनों सुहृद भए, जो उपकारकी अपेक्षाविना उपकारी भए, किसी ठौर माटी शरीरकों लगावैं, किसी ठौर चंदनका लेप करैं,किसी ठौर शरीरकों भस्म लगावैं,किसी ठौर दिव्य वस्त्र पहिरैं, किसी ठौर केले पत्र उपर सोवैं, किसी ठौर फूलकी शय्या होवैं, किसी ठौर क्रूर स्थानोंविषे शयन करैं ॥ हे रामजी ! ऐसे शुभ अशुभ ठौरविषे भी दोनों ज्योंके त्यों रहैं, जो हर्षशोककों न प्राप्त भए, केवल सत्त्व शुद्ध विषे स्थित रहैं, आत्माविना अवर कछु न फुर्या, एक वनविषे जाय स्थित भये, तब राणीके मनविषे विचार हुआ, जो यह मेरा भर्त्ता है, मैं इसकों भोगों, हमारी अवस्था है जो भले कुलकी स्त्री है सो भर्ताकों प्रसन्न रखती है, अरु राजाका शरीर भी देवता जैसा हुआ है, अरु स्थान भी शुभ है, जबलग शरीर है, तबलग शरीरके स्वभाव भी साथ हैं, अरु बहुरि विचार किया जो राजाकी परीक्षा भी करों, जो क्या कहैगा, तब कुंभनें कहा, हे राजन् ! अब हम स्वर्गकों जाते हैं, जो चैत्र शुद्ध एकमकों ब्रह्माजीनें सृष्टि उत्पन्न करी है, इसी दिन वर्षके वर्ष उत्सव होता है, अरु नारदमुनि भी आवैगा, तातें हम जाते हैं, अरु आजही फिरि आवैंगे, मेरे आवणेपर्यंत तुम ध्यानविषे रहणा, अरु ध्यानतें उतरो तब फूलकों देखणा, ऐसे कहीकरि फूलोंकी मंजरी राजाकों दीनी, अरु राजानें भी कुंभकों फूलकी मंजरी दीनी, जैसे नंदनवनविषे स्त्री भर्ताके हाथ देवै, अरु भर्ता स्त्रीके हाथ देवै तैसे दोनों परस्पर देते भए, बहुरि कुंभ आकाशकों उड्या, अरु पाछे राजा देखता रहा, जैसे मेघकों मोर देखता है, तैसे राजा देखता रहा, जेतेपर्यंत राजाकी दृष्टि पडती थी, तबलग कुंभका शरीर रख्या, जब दृष्टिसों अगोचर भया, आकाशविषे, तब फूलकी माला जो गलेविषे थी, सो तोडिकरि राजाके उपर डारि दीनी, अरु चूडालाका शरीर धारि आकाशकों लंघिकरि अपणा अंतःपुर जो था स्त्रीका स्थान, तहां आय प्राप्त भई, अरु राजाके स्थानपर बैठीकरि मंत्रीकों बुलाया, अपणे अपणे स्थानोंविषे स्थित किये, अरु प्रजाकी खबर लीनी, बहुरि उडी, सूर्यके किरणोंके मार्ग मेघ मंडलकों लंघती आई, जहां रा

जाका स्थान था तहां आयकरि देखा, जो राजा बिछुरेकरि शोकवान है, अरु कुंभ भी दिलगीर जैसा राजाके आगे आय स्थित भया, तब राजानें कहा ॥ हे भगवन्! शोकतुमारे तांई कैसे प्राप्त भया है, ऐसा कष्ट मार्गविषे तुमारे तांई कवन हुआ है, अरु सर्व दुःखका नष्ट करणेहारा ज्ञान है, सो तुम सारखे ज्ञानवानकों शोक होवै तो अवरकी क्या बात कहणी है ॥ हे मुनि! तुमारे तांई दुःखका कारण कोउ नहीं, तुम क्यों शोकवान होते हौ अरु तुमारे तांई कवन अनिष्ट प्राप्त भया है, तब कुंभनें कहा ॥ हे राजन्! मेरे तांई एक दुःख है, सो कहता हौं, जो मित्र पूछे तौ सत कहा चाहियें, अरु दुःख भी नष्ट होता है, जैसे मेघ जड अरु श्याम भी होता है, अरु उसका सज्जन जो है, क्षेत्र अरु पृथ्वी, तिस ऊपर वर्षा करता है, तिसकी जडता अरु श्यामता नष्ट होती है, तातें मैं तेरे तांई कहता हौं, हे राजन्! जब स्वर्गविषे सभा स्थित थी, तब मैं नारदके पास था, जब सभा उठी, तब नारदमुनि भी उठ्या, अरु मुझकों कहा, जहां तेरी इच्छा होवै तहां जाहु, अरु मैं भी जाता हौं, काहेतें जो नारद एकही ठौरविषे नहीं ठहरता; विश्वविषे सैल करता फिरता है, इसीतें मेरे तांई कहा जो तूं भी जाहु, तब मैं आकाशतें चला, एक ठौर सूर्यसाथ मिलाप हुआ, बहुरि आगेकों चला, मेघके मार्ग तीक्ष्ण वेगकरि चला आया हौं, जैसे नदी पर्वततें तीक्ष्ण वेगकरि आती है, तैसे मैं तीक्ष्ण वेगकरि चला आता था, तब दुर्वासा ऋषीश्वर उडता आता है, महामेघकी नांई श्याम वस्त्र पहिरे हुए, अरु भूषणसंयुक्त जैसे बीजलीका चमत्कार होता है, तैसे भूषणोंका चमत्कार देखिकरि मैं दंडवत करिके कहा ॥ हे मुनीश्वर! तुम क्या रूप धार्या है, जो स्त्रीकी नांई भासता है, तब दुर्वासाने मेरे तांई कहा ॥ हे ब्रह्माके पोत्रे! तूं कैसा वचन कहता है, ऐसा वचन मुनीश्वरप्रति कहणां उचित नहीं, हम क्षेत्र हैं, जैसा बीज क्षेत्रविषे बोइये तैसा उगता है, तातें मेरे तांई स्त्री तैंनें कहा है, तूं भी स्त्री होवैगा, अरु रात्रिकों तेरे अंग सब स्त्रीके होवैंगे ॥ हे मुनीश्वर! जो कल्याणकृत ज्ञानवान पुरुष हैं, तिनकों नम्रता होती है, जैसे फलसंयुक्त वृक्ष

नम्र होता है, तैसे ज्ञानी भी नम्र होता है, ऐसा वचन तेरे तांई कहणा न चाहियें ॥ हे राजा! ऐसे श्रवण करिके मैं तेरे पास चल्या आया हौं, अरु मेरे तांई लज्जा आती है, जो स्त्रीका शरीर धारे देवताविषे कैसे विचरौंगा, यही मुझकों शोक है, तब राजानें कहा, क्या हुआ, जो दुर्वासनें कहा, अरु स्त्रीका शरीर भया, तुम तौ शरीर नहीं, आत्मा निर्लेप है, किसीसाथ लेप नहीं ॥ हे मुनीश्वर! तुम अपणी समताविषे स्थित रहते हौ, अरु ज्ञानवान पुरुषकों हेयोपादेय किसीका नहीं रहता, अपणी समताविषे स्थित रहता है, तब कुंभनें कहा ॥ हे राजन्! तूं सत्य कहता है, मेरे तांई क्या दुःख है, जो शरीरका प्रारब्ध है, सो होता है, तिससाथ हमारा क्या प्रयोजन है, यह ईश्वरकी नीति है, जबलग शरीर होता है, तबलग शरीरके स्वभाव भी रहते हैं, अरु शरीरका स्वभाव त्याग करणा भी मूर्खता है, जिस स्थानविषे ज्ञानकी प्राप्ति होवै, तिसी चेष्टाविषे विचरिये, अरु यह भी मूर्खता है, जो इंद्रियांकों रोकणां, अरु मनकरि विषयकी चिंतना करणी, तातें इंद्रियां अरु देहकी चेष्टा ज्ञानवान भी करते हैं, परंतु तिसविषे बंधमान नहीं होते, इंद्रियां विषयविषे वर्ततियां हैं, आदि नीति ईश्वरकी इसी प्रकार है ॥ हे राजन्! नीतीका त्याग किसीतें किया नहीं जाता, तातें नीतीका त्याग क्यों करियें, यह नीति है, जो जबलग शरीर है, तबलग शरीरके स्वभाव भी होते हैं, जैसे जबलग तिल है, तबलग तेल भी होते हैं, तैसे जबलग शरीर है, तबलग शरीरके स्वभाव भी होते हैं, जो ज्ञानवान पुरुष है सो देह इंद्रियांकरि चेष्टा भी करते हैं, परंतु बंधायमान नहीं होते, अरु अज्ञानी बंधायमान होते हैं, अरु चेष्टा ज्ञानी करते हैं, अज्ञानी भी करते हैं, जैसे ब्रह्मा विष्णु रुद्रतें आदि लेकरि ज्ञानवान हैं, सर्व चेष्टा भी करते हैं, परंतु बंधायमान किसीकरि नहीं होते ॥ हे राजा! तैसे जो अनिच्छित आय प्राप्त होवै अरु जिसकों शास्त्र प्रमाण करैं, तिसके भोगणेविषे दूषण कछु नहीं ॥ ॥ राजोवाच ॥ हे भगवन्! ज्ञानवानकों दूषण कछु नहीं, जो सत्ता समानविषे स्थित है, तिस करिके दूषण कछु नहीं हो

ता, अरु अज्ञानी शरीरके दुःख अपणेविषे देखता है, तिसकरि दुःखी होता है, अरु ज्ञानवान शरीरके दुःख अपणेविषे नहीं देखता ॥ हे रामजी! ऐसे कहते सूर्य अस्त हुआ, तब राजा अरु कुंभ दोनों सायंकालविषे संध्या करी, अरु जाप किया, जब रात्र हुई तब तारागण निकसे, अरु सूर्यमुखी कमलोंके मुख मुंदे गए, तब कुंभनें कहा ॥ हे राजन्! देख, जो मेरे शिरके बाल बढते जाते हैं, अरु वस्त्र भी गिटेपर्यंत हो गये हैं, अरु स्तन भी स्त्रीकी नांई भए हैं, इत्यादिक वस्त्र भूषण जेती कछु चेष्टा है, सो स्त्रीकी हुई, तब राजाकों भी शोक प्राप्त भया, अरु महासुंदर स्त्री लक्ष्मीकी नांई चूडाला हो गई, तिसकों देखिकरि राजाकों एक मुहूर्त शोक रहा, तिसतें उपरांत सावधान हुआ, अरु कहत भया ॥ हे मुनि! क्या हुआ जो शरीर स्त्रीका हुआ, तुम तौ शरीर नहीं, तुम आत्मा हौ, तातें शोक क्यौं करियें, तुम अपणी सत्ता समानविषे स्थित होहु, तब रात्र हुई अरु राणी महासुंदर रूप धारे, फूलोंकी शय्या बिछाई, तिसपर दोंनों एकठे सोए, हे रामजी! ऐसे रात्रि व्यतीत भई, कोउ फुरणा न फुऱ्या, सत्ता समानविषे दोनों स्थित रहैं, अरु मुखतें कछु न बोले, सोई गए, जब प्रातःकाल हुआ, तब वहुरि कुंभका शरीर धारा, स्नान किया, अरु गायत्रीतें आदि जो कर्म हैं, सो किये इसी प्रकार रात्रिकों स्त्री वणि जावैं, अरु दिनकों कुंभ पुरुषका शरीर धारैं, जब कछु काल ऐसे व्यतीत भया, तब उहांतें चलैं, अरु सुमेरु पर्वत उपर गए, मंदराचल अरु अस्ताचलतें आदि सर्व सुख स्थानोंकों देखते भये ॥ हे रामजी! एक दृष्टिकों लिये रहैं, न कोउ हर्षवान हुए, न शोकवान हुए, ज्यौंका त्यौं रहैं, जैसे पवनकरि सुमेरु पर्वत चलायमान नहीं होता, तैसेही शुभ अशुभ स्थानोंविषे समान रहैं ॥ ॥ इति श्रीयोगवासिष्ठे निर्वाणप्रकरणे शिखरध्वजस्त्रीप्राप्तिर्नाम द्व्यशीतितमः सर्गः ॥ ॥८२॥ ॥ ॥ ॥ ॥ वसिष्ठ उवाच ॥ ॥ हे रामजी! इस प्रकार विचरते विचरते मंदराचलकी कंदराविषे जाय स्थित भए, तब कुंभरूप चूडाला राजाकों परीक्षाके निमित्त कहत भई ॥ हे

से हुआ है, सो कहौ, तब इंद्रनें कहा ॥ हे राजन्! जैसे पक्षी होता है, अरु ऊर्ध्वकों उडता है, तिसकी पेटी तागा होता है, तिसकरि उडता हुआ भी नीचे आता है, तैसे हम ऊर्ध्वके वासी तेरा गुणरूपी जो तागा है, तप अरु शुभ लक्षण, तिसकों श्रवण करिके हम स्वर्गतें खैंचे चले आते हैं, इस वनविषे इस प्रकार हमारा आवणां हुआ है, तातें राजा, तूं स्वर्गकों चल, अरु स्वर्गविषे स्थित होकरि दिव्य भोगकों भोगहु, ऐरावत हस्ती है, तिसपर आरूढ होहु, अथवा यह उच्चैःश्रवा घोडा है, जो क्षीरसमुद्रके मथनतें निकसा है, इसपर आरूढ होकरि चल, अरु सिद्धि भी है, एक तौ यह सिद्धि है, जिसपर पाउं रखिये तौ जहां चाहिये तहां पहुचावै, अरु एक खड्ग सिद्धि है, खड्गकों हाथमें धारिकरि जहां इच्छा होए तहां चला जावै, एक गुटिका है, जो मुखमें राखिकरि जहां इच्छा होए तहां इच्छाचारी चला जाइये, इसतें लेकरि अष्टसिद्धि भी विद्यमान हैं, जो इच्छा होए सो लेहु, अरु स्वर्गविषे चलौ ॥ हे राजन्! तुम तत्त्ववेत्ता हौ, तुमकों ग्रहण त्याग करणां कछु नहीं रहा, परंतु जो अनिच्छित आनि प्राप्त होवै, तिसका त्याग करणां योग्य नहीं, तातें स्वर्गविषे चलो ॥ राजोवाच ॥ ॥ हे देवराज! जाणा तहां होता है, जहां आगे नहीं होता, अरु जहां आगे होइये तहां कैसे जाइये ॥ हे देवराज! हमकों सर्व स्वर्गही दृष्टि आता है, जो उहां स्वर्ग होवै, इहां न होवै तौ जाइए भी, परंतु जहां हम बैठे हैं, तहांही स्वर्ग भासता है, तातें हम कहां जावैं, हमकों तीनो लोक स्वर्ग दृष्ट आते हैं, अरु सदा स्वर्गरूप जो आत्मा है, हम तिसीविषे स्थित है, हमारे तांई सर्वथा स्वर्ग भासता है, हम सदा तृप्त आनंदरूप हैं, तातें हम कहां जावै ॥ इंद्र उवाच ॥ हे राजन्! जो विदितवेद पूर्ण बोध है, सो भी यथाप्राप्त भोगकों सेवते हैं, तुम क्यौं नहीं सेवते, ऐसे जब इंद्रनें कहा तब राजा त्यौंही कहीकरि चुपकरि गया ॥बहुरि इंद्रनें कहा, भला जो तुम नहीं आते तौ हम जाते हैं, तेरा अरु कुंभका कल्याण होवै ॥ हे रामजी! ऐसे कहिकरि इंद्र उठि खडा हुआ अरु चल्या, जबलग दृष्टि

आता था, तबलग देवता भी साथ दृष्टि आते हैं, बहुरि दृष्टि अगोचर भए, तब अंतर्धान हो गए, जैसे समुद्रतें तरंग उठिकरि बहुरि लीन हो जाता है, अरु नहीं जाणीता जो कहां गया, तैसे इंद्र अंतर्धान हो गया, सो इंद्र कुंभरूप चूडालाके संकल्पतें उठ्या था, जब संकल्प लीन भया तब अंतर्धान हो गया, तब चूडालानें देखा जो ऐसे ऐश्वर्य अरु सिद्धि अरु अप्सराके प्राप्त भए भी राजाका चित्त समताविषे रहा, अरु किसी पदार्थविषे बंधमान न हुआ ॥ इति श्रीयोगवासिष्ठे निर्वाणप्रकरणे मायाशक्रागमनवर्णनं नाम चतुरशीतितमः सर्गः ॥ ८४ ॥ ॥ वसिष्ठ उवाच ॥ हे रामजी ! जब चूडाला इंद्रका छलकरि रही, तब विचार किया जो ऐसा चरित्र राजाके मोहणे निमित्त किया, तौ भी राजा किसीविषे बंधायमान न भया, ज्यौंका त्यौंही रहा, बडा कल्याण हुआ, जो राजा सत्ता सामान्यविषे स्थित रहा, तातें बडा आनंद हुआ, अब अवर चरित्र करियें, जो क्रोध होवै, जिसविषे बडा खेद होवै, ऐसे विचार करि चरित्र किया, राजाकी परीक्षाके निमित्त, जब सायंकालका समय हुआ, तब गंगाके किनारे राजा संध्या करणे लगा, अरु कुंभ वनविषे रहा, तब वनविषे संकल्पका मंदिर रचा, जैसे देवताकी रचना होती है, तैसे मंदिरकेपास फूलकी वाडी पाई, अरु कल्पवृक्षतें आदि नानाप्रकारके फूल फल संयुक्त वृक्ष रचे, ऐसे वनके स्थानाविषे एक संकल्पकी शय्या रची, अरु एक संकल्पका महासुंदर पुरुष रचा, तिससाथ सोए रही, अंगसों अंग लगायकरि, अरु गलेविषे फूलोंकी माला डारी, अरु कामचेष्टा करणे लगी, तब राजा संध्याकरि उठ्या, अरु राणीकों देखणे लगा, दृष्ट न आई, ढूंढते ढूंढते तिस मंदिरके निकट आया, तब क्या देखे जो कामी पुरुषकेसाथ मदनिका सोइ हुई है, अरु कामचेष्टा करते हैं, तब राजानें कहा भले, आरामसाथ सोए पडे हैं, सोए रहे इनके आनंदविषे विघ्न क्यौं करियें ॥ हे रामजी ! इस प्रकार राजानें अपणी स्त्रीकों देखी, तौ भी शोकमान न हुआ, अरु क्रोध भी न किया, ज्यौंका त्यौं शांतपदविषे स्थित रहा, क्षोभकों न प्राप्त भया, अरु मंदिरके बाहिर निकसे, तहां एक स्वर्णकी शिला पडी

राजन्! मैं रात्रिकों स्त्री होती हौं, तब मेरे तांई भर्ताके भोगणेकी इच्छा होती है, काहेतें जो ईश्वरकी नीति ऐसेही है, जो स्त्रीकों अवश्यमेव पुरुष चहिता है, अरु जो उत्तम कुलका पुरुष होता है, तिसकों कन्या विवाह करिके पिता देता है, अथवा जिसकों स्त्री चाहै तिसकों आप देखि लेवैं ॥ तातें हे राजन्! मेरे तांई तुझतें अधिक कोउ नहीं दृष्ट आता, तूंही मेरा भर्त्ता है, अरु मैं तेरी स्त्री हौं, तूं अपणी भार्या जाणीकरि जो कछु स्त्री पुरुष चेष्टा करते हैं, सो किया कर, मेरी अवस्था भी यौवन है, अरु तूं भी सुंदर है, ज्ञानवान अनिच्छित प्राप्त हुएका त्याग नहीं करते, यद्यपि तुझकों इच्छा न होवे, तौ भी ईश्वरकी नीति इसी प्रकार है, तिसकों उल्लंघणेकरि क्या सिद्ध होता है, जो अपणे स्वरूप सत्ताविषे स्थित है, तिसकों ग्रहण त्यागकी कछु इच्छा नहीं, परंतु जो नीति है, सो करी चाहियें ॥ ॥ राजोवाच ॥ हे साधो! जो तेरी इच्छा है, सो करियें, मुझकों तौ तीनों जगत आकाशरूप भासते हैं, प्राप्त होणेंकरि मेरे तांई सुख कछु नहीं, अप्राप्तिविषे दुःख नहीं, न कोउ मेरे हर्ष है, न शोक है, जो तेरी इच्छा होए सो करियें ॥ ॥ कुंभ उवाच ॥ हे राजन्! आजही पूर्णमासीका भला दिन है, अरु यह मैंनें आगे लग्न भी गिनि छोडा है, तातें मंदराचल पर्वतकी कंदराविषे बैठिकरि विवाह करियें, अब सामग्री एकठी करिये, तब राजा अरु कुंभ दोनों उठे, जो कछु सामग्री शास्त्रकी है, सो एकठी करी अरु दोनों गंगापर स्नान किया, अरु वेहली पूजन करि अरु वस्त्र फूल फलतें आदिलेकरि जो विवाहकी सामग्री है,सो कल्पवृक्षसों लीनी,बहुरि फलकों भोजन किया, तब सूर्य अस्त भया, दोनों संध्या उपासना करी, बहुरि राजाकों दिव्य वस्त्र भूषण पहिराए, अरु शिरपर मुकुट पहिराया, बहुरि कुंभका शरीर त्याग किया, अरु स्त्रीका शरीर होत भया, तब स्त्रीनें कहा ॥ हे राजन्! अब तूं मेरे तांई भूषण पहिराए, तब राजाने संपूर्ण भूषण फूल अरु वस्त्र पहिराए, अरु पार्वतीकी नांई सुंदर बणी, तब चूडालानें कहा ॥ हे राजा! मैं अब तेरी स्त्री हौं, अरु नाम मेरा मदनिका है, अरु तूं मेरा भर्त्ता है, कामदेवतें

भी तूं सुंदर भासता है ॥ ॥ वसिष्ठ उवाच ॥ हे रामजी! इसी प्रकार चूडालानें वहुत कछु कहा, तौ भी राजाका चित्त हर्षकों न प्राप्त भया, अरु वैराग्यकरि शोकवान भी न भया, ज्यौंका त्यौं रहा, तिसतें उपरांत विवाहका आरंभ किया, चंदोआ आदियां अरु वस्त्र कल्पवृक्षतें लिये, अरु पास स्वर्णके कलश राखै, देवताका पूजन किया, इत्यादिक जो शास्त्रकी विधि थी सो संपूर्ण करि, लावांलिया अरु मंगल किया, बहुरि संकल्प यह दिया जो संपूर्ण ज्ञाननिष्ठा तेरे तांई दीनी अरु राजा भी संकल्प किया, जो संपूर्ण ज्ञाननिष्ठा तेरे तांई दीनी, जब रात्र एक प्रहर रही तब राजा अरु राणी फूलोंकी शय्या बिछाई, शयन करिके आपसविषे चरचाही करते रहे, अरु मैथुन कछु न किया, जब प्रातःकाल हुआ, तब स्त्रीका शरीर त्यागिकरि कुंभका शरीर धारा, अरु स्नान किया, संध्यादिक कर्म किये ॥ हे रामजी! इसी प्रकार एक मासपर्यंत मंदराचलपर्वतविषे रहे, जो रात्रकों स्त्रीका शरीर अरु दिनकों कुंभका शरीर करैं, जब तीसरा दिन होवै, तब राजाकों शयन करायके राजकी शुद्ध आय लेवै, बहुरि राजाके पास जाय शयन करैं ॥

॥ इति श्रीयोगवासिष्ठे निर्वाणप्रकरणे विवाहलीलावर्णनं नाम त्र्यशीतितमः सर्गः ॥ ॥ ८३ ॥ ॥

॥ वसिष्ठ उवाच ॥ हे रामजी! जब उहांसों चले, अस्ताचल पर्वतविषे रहे, उदयाचल अरु सुमेरु कैलास पर्वत इत्यादिक जो पर्वत अरु कंदरा वनोंविषे रहे, कहूं एक मास, कहूं दश मास, कहूं पांच दिन, कहूं सप्त दिन रहे, जब एक वनविषे आये, तब राणीनें विचार किया, जो एते स्थान राजाकों दिखाये हैं, तौ भी इसका चित्त किसविषे बंधमान नहीं भया, तातें अब अवर परीक्षा लेउ ॥ ऐसे विचारकरि अपणी माया पसारी, तब इंद्र तेतीस कोटी देवतासंयुक्त किन्नर गंधर्व सिद्ध अरु अप्सरा आगे नृत्य करती आतीयां हैं ॥ अवर भी जो कछु इंद्रकी सामग्री है, तिस संयुक्त इंद्रकों देखीकरि राजा उठ्या, बहुत प्रीति संयुक्त इंद्रकी पूजा करी, अरु कहा, हे त्रैलोक्यके पति, तुमारा आवणा इस वनविषे कै

थी, तिस उपर बैठी रहा, अरु समाधिविषे स्थित भया, परंतु उन्मीलितलोचन तब दो घडी उपरांत म
दनिका कामी पुरुषकों त्यागिकरि बाहिर आई, अरु राजाके निकट आएकरि अंगोंकों नग्न किया, बहुरि
वस्त्रोंसाथ ढांपे, जैसे अवर स्त्रीयां कामकरि व्याकुल होतियां हैं, तैसे चूडालाकों देखिकरि राजानें कहा ॥
हे मदनिका, तूं ऐसे सुखकों त्यागिकरि क्यों आई है, तूं तौ बडे आनंदकरि मग्न थी, अब तहांही फिरि जा
हु, मेरे तांई तौ हर्ष शोक कछु नहीं, मैं ज्यौंका त्यौं हौं, परंतु तेरी अरु कामी पुरुषकी प्रीति परस्पर देखी
है, परस्पर प्रीति जगतविषे नहीं होती, अरु तुमारी देखी है, तातें तूं उसकों सुख देहु, उह तेरे तांई सुख देवै,
अब जाही, तब मदनिका लज्जासों शिरकों नीचे करिके बोली ॥ हे भगवन्! तुम क्षमा करौ, मेरे उपर
क्रोध न करौ, मुझतें अवज्ञा बडी हुई है, परंतु मैं जाणी न करी, जैसे वृत्तांत है सो श्रवण करौ, जब तुम
संध्या करणे लगे, तब मैं वनविषे आई थी, तहां एक कामी पुरुषका मिलाप भया, मैं निर्बल थी, उह ब
ली था, तिसनें मेरेतें पकडि लीनी, अरु जो पतिव्रता स्त्रीकी मर्यादा है, सो भी मैं करी, जो उसपर क्रोध
किया, अरु निरादर किया, अरु पुकार भी करी, यह तीनों पतिव्रताकी मर्यादा हैं, सो मैं करी, अरु तुम दूर थे, उ
ह बली था, मेरे तांई पकडी लीनी, अरु गोदविषे बैठाई जो कछु उसकी भावना थी, सो करी, हे भगवन्! मु
झविषे दूषण कछु नहीं, तातें तुम क्षमा करौ, क्रोध न करौ ॥ ॥ राजोवाच ॥ हे मदनिका! मेरे तांई क्रोध
कदाचित् नहीं होता, आत्माही दृष्ट आता है, तौ क्रोध किसपर करौं, मेरे तांई न कछु ग्रहण है, न कछु
त्याग करणां है, तथापि यह कर्म साधोंकरि निंदित है, तातें अब तेरा त्याग किया है, सुखे विचरौंगा, अ
रु जो हमारा गुरु कुंभ है सो हमारे पासही है, उह अरु हम सदा निरागरूप हैं, अरु तूं तौ दुर्वासाके श्रा
पतें उपजी है, तेरेसाथ हमारा क्या प्रयोजन है, तूं अब उसी पास जाहु ॥ ॥ इति श्रीयो० निर्वा० माया
पिंजरवर्णनं नाम पंचाशीतितमः सर्गः ॥ ८५ ॥ ॥ वसिष्ठ उवाच ॥ हे रामजी ! तब मदनिका नाम जो चूडा

ला है, तिसनैं विचार किया, बडा कार्य हुआ, जो राजा आत्मपदविषे प्राप्त भया, ऐसे सिद्धि अरु ऐश्वर्य देखे, अरु क्रूर स्थान भी दिखाए तौ भी राजा शुभ अशुभविषे ज्यौंका त्यौं रहा, तातें वडा कल्याण हुआ, जो राजाकों शांति प्राप्त भई, अरु रागदोषतें रहित भया, अब पूर्वला रूप चूडालाका है सो दिखावौं, अरु संपूर्ण वृत्तांत राजाकों बतावौं, ऐसे विचार करि मदनिका शरीरतें चूडालारूप होकरि प्रगट भई, भूषणों अरु वस्त्रोंकरि सहित, तब राजा देखीकरि महा आश्चर्यकों प्राप्त भया, अरु ध्यानविषे स्थित हुआ, अरु देखा जो यह चूडाला कहांतें आई है, बहुरि पूछा, हे देवि! तूं कहांतें आई है, तेरे तांई देखिकरि मैं आश्चर्यकों प्राप्त भया हौं, जो ऐसी मेरी स्त्री चूडाला थी, अरु तूं इहां किसनिमित्त आई है अरु कवकी आई है॥

॥ चूडालोवाच ॥ हे भगवन्! मैं तेरी स्त्री चूडाला हौं, अरु तूं मेरा स्वामी है ॥ हे राजन्! कुंभतें आदि अरु यह चूडाला शरीरपर्यंत सर्व चरित्र तेरे जगावणेके निमित्त मैंही किये हैं, तूं ध्यानविषे स्थित होकरि देख, जो यह चरित्र किसनें किये हैं, अरु मैं अब पूर्वका शरीर चूडालाका धारा हैं ॥ हे रामजी! जब ऐसे चूडालानें कहा, तब राजा ध्यानविषे स्थित होकरि देखणे लगा, एक मुहूर्तपर्यंत वृत्तांत सब देखि लिया, तिसतें उपरांत राजा आश्चर्यकों प्राप्त होकरि नेत्र खोले, अरु राणीके गलेसाथ कंठ लगायकरि मिल्या, अरु दोनों हर्षकों प्राप्त भये, जो सहस्र वर्षपर्यंत शेष नाग उस सुखकों वर्णन करे तौ भी कही न सकैगा, ऐसे सत्ता समानविषे स्थित हुए, अरु शांतिकों प्राप्त भए, जिसविषे क्षोभ कदाचित् नहीं, राजा अरु राणी जुगल कंठ लगाए मिलेथे, तिसतें अंगोंविषे उष्णता उपजी, तब शनैः शनैः करि खोल्या, हर्षमान होकरि राजाके रोमावलि खडे हो आए, अरु नेत्रतें जल चलणे लगा, ऐसी अवस्थासाथ राजा बोल्या ॥ हे देवि! मेरे उपर तैंनें वडा अनुग्रह किया है, तेरी स्तुति करणेकों मैं समर्थ नहीं, कैसे स्तुति करौं, जेते कछु संसारके पदार्थ हैं सो सब मायामय हैं, अरु मिथ्या हैं, अरु तैंनें मेरे तांई सतपदकों प्राप्त किया है, तातें मैं ते

री उपमा क्या करौं ॥ हे देवि! मैंनें जाण्या है, जो जब मैं राज्यका त्याग किया है, अरु इस चूडालाके शरीर पर्यंत सब तेरे चरित्र हैं, अरु मेरे वास्ते बडे कष्ट तैंनें सहन किये हैं, अरु बडे यत्न किये हैं, आणां अरु जाणां, शरीरका स्वांग धारणां, अरु उडणां इत्यादिक बडा तैंनें कष्ट पाया है, अरु बडे यत्नकरि मेरे तांई संसारसमुद्रतें पार किया है, अरु बडा उपकार किया है, तूं धन्य है, अरु जेती कछु देवियां हैं, तिनसों तैंनें श्रेष्ठ कार्य किया है, तातें तूं सबतें अधिक है, सो कवन देवियां हैं, जिनतें तूं अधिक है, अरुंधती अरु ब्रह्माणी अरु इंद्राणी अरु पार्वती, सरस्वती, इत्यादिक देवियांकों तैंनें तिरस्कार किया है ॥ हे देवि! जो श्रेष्ठ कुलकी कन्या है, अरु पतिव्रता है सो जिस पुरुषकों प्राप्त होती है, तिसका सर्व कार्य सिद्ध होता है, सो कवन कवन श्रेष्ठ स्त्रियां हैं, श्रवण कर, बुद्धि अरु शांति अरु दया अरु शक्ति अरु कोमलता, मैत्री इत्यादिक जो शुभ लक्षण हैं, सो पतिव्रता स्त्रीकरि प्राप्त होते हैं ॥ हे देवि! मैं तेरे प्रसादकरि शांतपदकों प्राप्त भया हौं, अब मेरे तांई क्षोभ कोउ नहीं, ऐसा पद शास्त्रोंकरि भी नहीं पाइता, अरु तपकरि नहीं पाइता, जो पतिव्रता स्त्रीकरि पाइता है ॥ ॥ चूडालोवाच ॥ हे राजन्! तूं काहेकों मेरी स्तुति करता है, मैं तौ आपणा कार्य किया है ॥ हे राजा! जब तूं राज्यका त्याग करी वनविषे आया, तब तूं मोहकों साथही लिये आया, मोह कहिये अज्ञान, तिस अज्ञानकरि नीच स्थानविषे पडा, जैसे कोउ गंगाजलका त्यागकरि चीकडके जलका अंगिकार करै तैसे तैंनें आत्मज्ञान अक्रिय पदका त्यागकरी तपका अंगीकार किया ॥ हे राजा! मैं देखा जो तूं चीकडविषे गिर्या है, तातें मैं तेरे निकासणे निमित्त एते यत्न किये हैं ॥ हे राजा! मैं अपना कार्य किया है ॥ ॥ राजोवाच ॥ हे देवी! मेरा यही आशीर्वाद है, जो कोउ पतिव्रता स्त्री होवै, सो सब ऐसे कार्य करै, जैसे तुमनें किया है, जो पतिव्रता स्त्रीतें कार्य होता है, सो अवरतें नहीं होता ॥ हे देवी! जेती अरुंधतीतें आदि पतिव्रता स्त्रीयां हैं, तिनतें तूं प्रथम गिनायगी, अरु मैं जानता हौं, ब्रह्माजीनें तेरे तांई क्रो

धकरि इसनिमित्त उपजाई है, जो अरुंधतीतें आदि देवियां हैं, तिनों आपसविषे गर्व किया होवैगा, तिस गर्वकों सुणीकरि तिनके गर्व निवारणेनिमित्त तुझकों अधिक उत्पन्न किया है, तातें हे देवी! तूं धन्य है, जो तैंनें मेरे ऊपर बडा उपकार किया है ॥ हे देवी! तूं वहुरि मेरे अंग लाग जो तैंनें वडा उपकार मेरेसाथ किया है, हे रामजी! ऐसे कहीकरि राजानें राणीकों वहुरि गले कंठ लगाई, जैसे नोल अरु नोली मिलैं, अरु मूर्त्तिकी नांई लिखी है, ऐसे भासै ॥ ॥ चूडालोवाच ॥ हे भगवन्! एक तौ मेरे तांई यह कहु, जो ज्ञानरूप आत्माके एक अंशविषे जगत लीन हो जाता है, ऐसा जो तूं है, सो आपकों अव क्या जानता है, अरु अव तूं कहा स्थित है, अरु राज्य तेरे तांई कछु दिखाई देताहै, अथवा नहीं देता, अव तेरे तांई इच्छा क्या है ॥ ॥ शिखरध्वज उवाच ॥ हे देवी! जो स्वरूप तैंनें ज्ञानकरिके निश्चय किया है, सोई मैं आपकों जानता हौं, अरु शांतरूप हौं, इच्छा अनिच्छा मेरे तांई कोउ नहीं रही; केवल शांतरूप हौं ॥ हे देवी! जिस पदकी अपेक्षा करिके ब्रह्मा विष्णु रुद्रकी मूर्त्यौं भी शोकसंयुक्त भासतियां हैं, तिस पदकों मैं प्राप्त भया हौं, जहां उत्थान कोउ नहीं, अरु निष्किंचित है, जिसविषे किंचित् मात्र भी जगत नहीं, अरु मैं जो था सोइ भया हौं, इसतें इतर क्या कहौं, हे देवी! तैंनें संसारसमुद्रतें मेरे तांई पार किया है, तातें तूं मेरा गुरु है, ऐसे कहिकरि चूडालाके चरणोंपर राजा गिर पडा, अरु कहा, अज्ञान मेरे तांई कदाचित स्पर्श न करैगा, जैसे तांवा पारसके संगकरि स्वर्ण हुआ, वहुरि तांबा नहीं होता, तैसें मैं मोहरूपी चीकडतें तेरे संगकरि निकसा हौं, वहुरि कदाचित् न गिरौंगा, अरु अब इस जगतके सुखदुःखकरि न तुष्ट होता हौं, ज्यौंका त्यौं स्थित हौं, रागदोषके उठावणेवाला जो चित्त है, सो मेरा नष्ट हो गया है, अब मैं प्रकाशरूप अपणे आपविषे स्थित हौं, जैसे जलविषे सूर्यका प्रतिबिंब पडता है, अरु जलके नष्ट हुए प्रतिविंब भी सूर्यरूप होता है, तैसे मेरा चित्त भी आत्मरूप भया है, अब मैं निर्वाणपदकों प्राप्त भया हौं, अरु सर्वतें अ

तीत भया हौं, अरु सर्वविषे स्थित हौं, जैसे आकाश सर्व पदार्थविषे स्थित है, अरु सर्व पदार्थतें अतीत है, तैसे मैं भी हौं, अहं त्वं आदिक शब्द मेरे नष्ट भये हैं, अरु शांतिकों प्राप्त भया हौं, अब मेरेविषे ऐसा तैसा शब्द कोउ नहीं, मैं अद्वैत हौं, अरु चिन्मात्र हौं, न सूक्ष्म हौं, न स्थूल हौं ॥ ॥ चूडालोवाच ॥ हे राजन्! जो तूं ऐसे स्थित हुआ है, तौ तूं अब क्या करैगा, अब तेरे तांई क्या इच्छा है ॥ राजोवाच ॥ हे देवी! न मेरे कछु अंगीकार करणेकी इच्छा है, न त्याग करणेकी इच्छा है, जो कछु तूं कहैगी सो करौंगा, तेरे कहणेका अंगीकार करौंगा, जैसे मणि प्रतिबिंबकों ग्रहण करती है, तैसे मैं तेरे वचनकों ग्रहण करौंगा ॥ चूडालोवाच ॥ हे प्राणपति! हृदयके प्रीतम राजा, अब तूं विष्णु हुआ है, अरु भला कार्य हुआ जो तेरी इच्छा नष्ट भई है ॥ हे राजन्! अब तूं अरु मैं मोहतें रहित होकरि अपने प्रकृत आचारविषे विचरैं, अखेद जीवन्मुक्त हुए अपणे प्रकृत आचारकों हम क्यों त्यागें ॥ हे राजा! जो अपणे आचारकों त्यागेंगे तौ अवर किसीका ग्रहण करेंगे, तातें हम अपणेही आचारविषे विचरैं, अरु भोग मोक्ष दोनोंकों भोगे हैं ॥ हे रामजी! ऐसे परस्पर विचार करते दिन व्यतीत भया, अरु संध्याकालकी संध्या राजा करत भया, बहुरि शय्याका आरंभ किया, तिस उपर दोनों शयन करत भए, अरु रात्रिकों परस्पर चर्चाही करते रहे, एक क्षणकी नांई रात्रिकों व्यतीत करी ॥

॥ इति श्रीयोगवासिष्ठे निर्वाणप्रकरणे चूडालाप्राकट्यं नाम षडशीतितमः सर्गः ॥ ८६ ॥ ॥

॥ वसिष्ठ उवाच ॥ हे रामजी! जब ऐसे रात्र वीती, अरु सूर्यकी किरणां पसरियां, अरु सूर्यमुखी कमल खिली आए, तब राजानें स्नानका आरंभ किया, चूडाला मनके संकल्प करिके रत्नोंकी मटकी रची, अरु हाथपर धारी, तिसविषे गंगा आदिक तीर्थोंका जल पाया, अरु राजाकों स्नान कराया, शुद्ध किया, अरु संध्यादिक सर्व कर्म किए, तब चूडालानें कहा ॥ हे राजन्! मोहकों नाश करिके सुखेनही अपणे राज्यकार्यकों करें, अरु आनंदसाथ भोग भोगें ॥ ॥ राजोवाच ॥ हे देवि! जो सुख भोगणेकी तेरे तांई इच्छा है तौ स्वर्गविषे भी ह

मारा राज्य है, अरु सिद्धविषे भी हमारा है, तातें स्वर्गहीविषे विचरैं ॥ ॥ चूडालोवाच ॥ हे राजन्! हम कों न सुख भोगणेकी इच्छा है, न त्यागणेकी इच्छा है, हम ज्योंके त्यों हैं ॥ हे राजन्! इच्छा अनिच्छा तब होती है, जब आगे कछु पदार्थ भासता है, हमकों तौ केवल आकाश आत्मा दृष्ट आता है, स्वर्ग कहां अरु नरक कहां, हम सर्वदा एकरस स्थित हैं ॥ हे राजा! यद्यपि हमकों कछु नहीं, तौ भी जबलग शरीर का प्रारब्ध है, तबलग शरीर रहता है, तौ चेष्टा भी हुई चहिए, अवर चेष्टा करणेतें अपणे प्रकृत आचारकों क्यों न करियें, जो रागदोषतें रहित होकरि अपणे राज्यकों भोगें, तातें अब ऊठ, अष्ट वसुके तेजकों धारिकरि राज्य करणेकों सावधान होहु ॥ हे रामजी! जब ऐसे चूडालानें कहा, तब राजा कहत भया, ऐसेही होवै, अरु अष्ट वसुके तेजसंयुक्त होत भया, जब ऐसा तेज राजाकों प्राप्त भया, तब कहा ॥ हे देवि! तूं मेरी पट्टराणी है, अरु मैं तेरा भर्त्ता हौं, तौ भी एक तूं है, एक मैं हौं, अवर कोउ नहीं, अरु राज्य तब होता है, जब सैना भी होवै, तातें तूं सैना रच,तब चूडाला संपूर्ण सैनाकों रचती भई, हस्ती, घोडे, रथ, नउबत, नगारे, निशान इत्यादिक जो राज्यकी सामग्री है सो रची है, अरु प्रत्यक्ष आगे आनि स्थित भई, नउबत, नगारे, तुरियां, सरनाई बाजणे लगे, जो कछु राज्यकी सामग्री है सो अपणे अपणे स्थानविषे स्थित भई, राजाकेशिरऊपर छत्र फिरणे लगा, अरु बेरक खडी हुई, तब राजा अरु राणी हस्तीपर आरूढ होकरि चले, मंदराचल पर्वतके उपर आगे पाछे सब सैना भई अरु राजा जिस जिस ठौर तप करत भया था, सो राणीकों दिखावता जावै, जो इस स्थानविषे मैं ऐता काल रहा हौं, इसविषे एता रहा हौं, जब राज्यका त्याग किया था, ऐसे दिखावता जावै अरु तीक्ष्ण वेगकरि चले, तब आगे जो मंत्री अरु पुरवासी अवर नगरवासी थे, सो राजाकों लेणे आये, अरु बडे आदरसंयुक्त पूजन किया, अरु अपणे मंदिरविषे आनि स्थित भए, अष्ट दिनपर्यंत राजाकों मिलणेनिमित्त लोकपाल मंडलेश्वर आते रहे, तिसतें उपरांत राजा सिंहासनपर आय बैठा, अरु राज्य करणे

लगा, एक समदृष्टिकों लिए दश सहस्र वर्षपर्यंत राज्य किया, चूडालासंयुक्त जीवन्मुक्त होकरि विचरत भए, बहुरि विदेहमुक्त भए ॥ हे रामजी! दश सहस्र वर्षपर्यंत राजा अरु चूडालाने राज्य किया, अरु सत्ता समानविषे स्थित रहे, किसी पदार्थविषे रागवान न भए, अरु दोष भी न किया, ज्यौंके त्यौं शांत पदविषे स्थित रहे, जेती कछु राज्यकी चेष्टा है, सो करते रहे, परंतु अंतःकरणकरि किसीविषे बंधमान न भए, केवल आत्मपदविषे अचल रहे, बहुरि राजा अरु चूडाला विदेहमुक्तिकों प्राप्त भए, जैसे आपकों जानते थे, तिसी केवल परमाकाश अक्षोभ पदविषे जाय स्थित भए, जैसे तेलविना दीपक निर्वाण होता है, तैसे प्रारब्धवेगके क्षय हुए निर्वाण पदविषे प्राप्त भये ॥ हे रामजी ! जैसे शिखरध्वज अरु चूडाला जीवन्मुक्त होकरि भोगकों भोगते विचरे हैं, तैसे तुम भी रागदोषतें रहित होकरि विचरौ ॥ ॥ इति श्रीयो० नि० शिखरध्वजचूडालाख्यानसमाप्तिर्नाम सप्ताशीतितमः सर्गः ॥ ८७ ॥ ॥ ॥ वसिष्ठ उवाच ॥ हे रामजी ! शिखरध्वजका वृत्तांत मैं संपूर्ण तुझकों कहा, ऐसी दृष्टिकों आश्रय करौ, कैसी दृष्टि है, जो पापका नाश करती है, तिस दृष्टिका आश्रय करि जिस मार्ग शिखरध्वज तत्पदकों प्राप्त भया है, अरु जीवन्मुक्त होकरि राज्यका व्यवहार किया है, तैसे तुम भी तत्पदका आश्रय करौ, अरु तिसी परायण होउ, आत्मपदकों पायकरि भोग मोक्ष दोनोंकों भोगौ, अरु तिसी प्रकार बृहस्पतिका पुत्र कच भी बोधवान हुआ है ॥ ॥ राम उवाच ॥ हे भगवन्! जिस प्रकार बृहस्पतिका पुत्र कच बोधवान हुआ है, सो प्रकार सबही संक्षेपतें मुख्यकरि मुझकों कहौ ॥ ॥ वसिष्ठ उवाच ॥ हे रामजी ! ऐसा कच था, जो बालक अवस्था अज्ञात है, तिसकों त्यागिकरि पदपदार्थकों जानणे लगे, जब ऐसा हुआ तब पिता बृहस्पतिसों प्रश्न किया, जो हे पिता, इस संसारपिंजरतें मैं कैसे निकसौं, जेता संसार है, सो जीवितकरि बांधा हुआ है, जीवित कहिये अनात्म देहादिकोंविषे मिथ्या अभिमान करणां, इसीकरि बांधा हुआ है, जो अहं त्वं मान

ता है, तिस संसारतें मुक्त कैसे होउं ?॥ ॥ बृहस्पतिरुवाच ॥ हे तात! इस अनर्थरूप संसारतें तब मुक्त होता है, जब सर्व त्याग करता है, सर्व त्याग कियेविना मुक्ति नहीं होती, तातें तूं सर्व त्याग करु, जो मुक्ति होवै॥ ॥ वसिष्ठ उवाच ॥ हे रामजी! जब इस प्रकार बृहस्पतिनें कहा, तब कच ऐसे पावन वचनोंकों श्रवणकरि ऐश्वर्यका त्यागकरि वनकों गया, वनविषे जायकरि एक कंदरामें स्थित भया, तप करणे लगा॥ हे रामजी! बृहस्पतिका पुत्र कच तिसके जाणेकरि उसकों खेद कछु न भया, जो ज्ञानवान पुरुषकों संयोग वियोगविषे समभाव रहता है, हर्षशोककों कदाचित नहीं प्राप्त होता, ज्यौंका त्यौं रहता है, जब अष्ट वर्षपर्यंत तप किया, तब बृहस्पति आया, अरु देखा जो कच एक कंदराविषे बैठा है, तहां कचके पास आनि स्थित भया, अरु कचनें पिताका पूजन गुरौंकी नांई किया, अरु बृहस्पतिनें कचकों कंठ लगाया, तब दुःखकरि गदगद वाणीसहित कचने प्रश्न किया, हे पिता! अष्ट वर्ष वीते हैं, जो मैं सर्व त्याग किया है, तो भी शांतिकों नहीं प्राप्त भया, जिसकरि मेरे तांई शांति प्राप्त होवै, सो कहौ, तब बृहस्पतिनें कहा, हे तात! सर्व त्याग करु जो तेरे तांई शांति होवै, ऐसे कहीकरि बृहस्पति उठि खडा हुआ, अरु आकाशकों चलागया॥ हे रामजी! जब ऐसे बृहस्पति कहीकरि चलागया, तब कच आसन, अरु मृगछाला, अरु वनकों त्यागिकरि आगे वनकों चला, एक कंदराविषे जायकरि स्थित भया, तब तीन वर्ष उहां व्यतीत भए, बहुरि बृहस्पति आय प्राप्त भया, देखा, जो कच स्थित है, तब कचने भली प्रकार गुरौंकी नांई पूजन किया, अरु बृहस्पतिनें कचकों कंठ लगाया, तब कचनें कहा, हे पिता! अबलग मेरे तांई शांति नहीं प्राप्त भई, अरु मैं सर्व त्याग भी किया, जो अपणे पास कछु नहीं राख्या, तातें जिसकरि मेरा कल्याण होवै, सोई कहौ, तब बृहस्पतिनें कहा॥ हे तात! अब भी सर्व त्याग नहीं, तातें सर्व पद चित्तका नाम है, जब चित्तका त्याग करैगा, तब सर्व त्याग होवैगा, तातें चित्तका त्याग करु॥ ॥ वसिष्ठ उवाच ॥ हे रामजी! ऐसे

कहीकरि बृहस्पति आकाशकों चला गया, तब कच विचारणे लगा, जो पितानें सर्वपद चित्तकों कहा है, सो चित्त क्या है, प्रथम वनके पदार्थोंकों देखिकरि विचारत भया, जो यह चित्त है; तब देखा जो यह भिन्न भिन्न है, तातें यह चित्त नहीं, अरु नेत्र भी चित्त नहीं, जो नेत्र श्रवण नहीं, श्रवण नेत्रहुंतें भिन्न हैं, अरु श्रवण भी चित्त नहीं, इसी प्रकार सर्व इंद्रियां चित्त नहीं, जो एकविषे दूसरेका अभाव है, तातें चित्त क्या है, जिसकों जाणीकरि त्याग करौं, बहुरि विचार किया, जो पिताके पास स्वर्गविषे जाउ ॥ हे रामजी! ऐसे विचारकरि उठि खडा हुआ, दिगंबर आकार आकाशकों चला, जब पिताके पास जाय प्राप्त भया, तब पिताका पूजन किया, अरु कहा, हे तेतीस कोटि देवताके गुरु! चित्तका रूप क्या है, तिसका रूप कहो, जो मैं तिसकों त्याग करौं ॥ ॥ बृहस्पतिरुवाच ॥ हे पुत्र! चित्त अहंकारका नाम है, सो अज्ञानतें उपजा है, अरु आत्मज्ञान करिके इसका नाश होता है, जैसे रसडीके अज्ञानतें सर्प भासता है, अरु रसडीके जानणेतें सर्पभ्रम नष्ट हो जाता है, तातें अहंभावका त्याग कर, अरु स्वरूपविषे स्थित होहु ॥ ॥ कच उवाच ॥ हे पिता! अहंभावका त्याग कैसे करौं, अहं तौ मैं हौं ॥ बहुरि अपणा त्याग करिके स्थित कैसे होउ, इसका त्याग करणां महाकठिण है ॥ ॥ बृहस्पतिरुवाच ॥ हे तात! अहंकारका त्याग करणां तौ महासुगम है, फूलके मिलणेविषे भी कछु यत्न है, अरु नेत्रोंके खोलणे अरु मिटणेविषे भी कछु यत्न है, परंतु अहंकारके त्यागणेविषे यत्न कछु नहीं ॥ हे पुत्र! अहंकार वस्तु कछु नहीं, भ्रम करिके उठ्या है, जैसे मूर्ख बालक अपणे परछायेविषे वैताल कल्पता है, अरु जेवरीविषे सर्प भासता है, अरु मरुस्थलविषे जल कल्पता है, अरु आकाशविषे भ्रमकरि दो चंद्रमा भासते हैं, तैसे परिच्छिन्न अहंकार अपणे प्रमादकरि उपजा है, अरु आत्मा शुद्ध है, आकाशतें भी निर्मल है, अरु देश काल वस्तुके परिच्छेदतें रहित सत्ता समान चिन्मात्र है, तिसविषे स्थित होहु, जो तेरा स्वरूप है, अरु तूं आत्मा है, तेरे

विषे अहंकार कदाचित् नहीं, हे साधो! आत्मा सर्वदा सर्व प्रकार सर्वविषे स्थित है, तिसविषे अहंभाव ऐसे है, जैसे धूड समुद्रविषे कदाचित् नहीं, तैसे तिसविषे अहंकार कदाचित् नहीं, कैसा है आत्मा, जिसविषे न एक कहणां है, न दो कहणां है, केवल अपणे आपविषे स्थित है, अरु जो आकार दृष्ट आते हैं, सो चित्तके फुरणे करिके हैं, चित्तके नष्ट हुए आत्माही शेष रहता है, तातें अपणे स्वरूपविषे स्थित होहु, जो तेरा दुःख नष्ट हो जावै, अरु जो कछु यह दृष्ट आता है, तिसविषे भी आत्मा है, जैसे पत्र फूल फल सर्व बीजतें उत्पन्न होते हैं, तैसे सर्व आत्माका चमत्कार है॥ ॥ इति श्रीयोगवासिष्ठे निर्वाणप्रकरणे बृहस्पतिबोधनं नाम अष्टाशीतितमः सर्गः ॥ ८८ ॥ ॥ ॥ वसिष्ठ उवाच ॥ हे रामजी! जब इस प्रकार बृहस्पतिनें उत्तम उपदेश किया, तब कच श्रवण करिके स्वरूपविषे स्थित भया, योग जो है, आत्मा अरु परिच्छिन्न अहंकारकी एकता तिसकों प्राप्त भया, अरु आत्मस्वरूप हुआ, अरु जीवन्मुक्त होकरि विचरत भया ॥ हे रामजी! जैसे कच जीवन्मुक्त होकरि विचरा है, निरहंकार हुआ, तैसे तूं भी निराश होकरि विचरु, केवल अद्वैत पदकों प्राप्त होहु, जो निर्मल अरु शुद्ध है, जिसविषे एक अरु दो कहणां नहीं, तूं तिस पदविषे स्थित होहु, तेरेविषे दुःख कोउ नहीं, तूं आत्मा है, अरु तेरेविषे अहंकार नहीं, तूं ग्रहण त्याग किसका करै, जो पदार्थ होवै नहीं, तिसका ग्रहण त्याग क्या कहियें ॥ हे रामजी! जैसे आकाशके वनविषे फूल हैं नहीं, तिसका ग्रहण क्या अरु त्याग क्या, तैसे आत्माविषे अहंकार नहीं, जो ज्ञानवान पुरुष हैं, सो अहंकारका ग्रहण त्याग नहीं करते, अरु मूर्खकों एक आत्माविषे नाना आकार भासते हैं, किसीका शोक करणां, कहूं हर्ष करणां, अरु तूं कैसे दुःखका नाश चाहता है, दुःख तेरेविषे है नहीं, तूं कैसे नाश करणेकों समर्थ हुआ है, अरु जेते कछु आकार भासते हैं, सो मिथ्या हैं, तिनाविषे जो अधिष्ठान है, सो सत है, अरु मूर्ख मिथ्या करिके सतकी रक्षा करते हैं, जो मेरे दुःख नाश होवै ॥ ॥ राम उवाच॥ हे भगवन्! तु

मारे प्रसाद करिके मैं तृप्त हुआ हौं, तुमारे वचनरूपी अमृतकरि अघाया हौं, जैसे पपैया एक बुंदकों चाहता है, अरु कृपा करिके मेघ तिसपर वर्षा करता है, अरु अघाय रहता है, तैसे मैं तुमारी शरणकों प्राप्त हुआ था, अरु तुमारे दर्शनकी इच्छा बूंदकी नांई करता था, अरु तुमनें कृपा करिके ज्ञानरूपी अमृतकी वर्षा करी, तिस वर्षा करिके मैं अघाया रहा हौं, अब मैं शांतपदकों प्राप्त हुआ हौं, तीनों ताप मेरे मिटि गये हैं, कोउ फुरणा मेरेविषे नहीं रहा, अरु तुमारे अमृत वचनोंकों श्रवण करता तृप्त नहीं होता, जैसे चकोर चंद्रमाकों देखिकरि किरणांतें तृप्त नहीं होता, तैसे तुमारे अमृतरूपी वचनोंकरि मैं तृप्त नहीं होता, तातें प्रश्न करता हौं, तिसका उत्तर कृपाकरि कहौ ॥ हे भगवन्! मिथ्या क्या है, अरु सत क्या है, जिसकी रक्षा करते हैं ॥ ॥ वसिष्ठ उवाच ॥ हे रामजी! इस उपर एक आख्यान है, सो कहता हौं, जिसके सुणेतें हासी आवै, एक आकाशविषे शून्य वन है, तिसविषे एक मूर्ख बालक है, जो आप मिथ्या है, अरु सत्यके राखणेकी इच्छा करता है, जो मैं इसकी रक्षा करौंगा, अधिष्ठान जो सत्य है, तिसकों नहीं जाणता, अरु मूर्खता करिके दुःख पावता है, क्या जाणता है, सो श्रवण करु, यह आकाश है, मैं भी आकाश हौं, मेरा आकाश है, मैं आकाशकी रक्षा करौंगा, ऐसे विचार करि एक गृह बनाया, गृहविषे जो आकाश है, तिसकी रक्षा करौंगा, जो इसका नाश न होवै, इसनिमित्त गृह बनाया ॥ हे रामजी! ऐसे विचार करिके गृहकी बनावट बहुत करी, जब किसी ठौरतें टूटै तब बहुरि बनाय लेवै, जब केता काल इस प्रकार व्यतीत भया तब कालकरि गृह गिर पडा, तब रुदन करणे लगा, हाय हाय, मेरा आकाश नष्ट हो गया, जैसे एक ऋतु व्यतीत होवै, अरु दूसरा आवै, तैसे कालकरि गृह गिरि गया, तिसतें उपरांत एक कुआ बनाया, अरु कहणे लगा, जो यह आकाश न जावैगा, जो इसकी भली प्रकार रक्षा करौंगा ॥ हे रामजी! इस प्रकार कुएकों बनायकरि सुख मान्या, जब केता काल बीत्या तब जैसे सूका पात वृक्षतें गिरता है, तैसे कुआ भी गिर प

डा, तब बडे शोककों प्राप्त भया, जो मेरा आकाश गिर पडा, नष्ट हो गया; मैं क्या करौंगा, ऐसे शोक संयुक्त केता काल वीत्या तब एक कुटी बनाई, जैसे अनाज राखणेके निमित्त बनाते हैं, तैसे बनायकरि कहणे लगा, जो अब मेरा आकाश कहां जावैगा, मैं अब इसकी भली प्रकार रक्षा करौंगा, ऐसी कुटी करिके बहुत सुख मान्या, जब केता काल व्यतीत भया, तब उह कुटी भी तूटि पडी, जो उपजी वस्तुका विनाश होणा अवश्य है, बहुरि रुदन करणे लगा, जो मेरा आकाश नष्ट हो गया, जब केता काल शोक संयुक्त वीत्या तब एक घट बनाया, अरु घटाकाशकी रक्षा करणे लगा, तब केते कालकरि घट भी नष्ट हो गया, बहुरि एक कुंड बनाया, अरु कुंडाकाशकी रक्षा करणे लगा, केता कालकरि कुंड भी नष्ट हो गया, तब शोकवान हुआ, बहुरि एक हवेली बनाई अरु कहणे लगा; अब मेरा आकाश कहां जावैगा, मैं इसकी भली प्रकार रक्षा करौंगा, अरु बडे हर्षकों प्राप्त हुआ, जब केता काल व्यतीत भया, तब उह हवेली भी गिर पडी, बहुरि दुःखकों प्राप्त भया, जो हाय हाय, मेरा आकाश नष्ट हो गया, मेरे तांई बडा कष्ट आनि प्राप्त भया है ॥ हे रामजी! इसी प्रकार आत्मज्ञानविना अरु आकाशके जानणेविना मूर्ख बालक दुःख पावता रहा, जो आपकों भी यथार्थ जाणता, अरु आकाशकों भी ज्यौंका त्यौं जाणता, तो यह कष्ट काहेकों पावता ॥ ॥ इति श्रीयोगवासिष्ठे निर्वाणप्रकरणे मिथ्यापुरुषाकाशरक्षाकरणं नाम एकोननवतितमः सर्गः ॥८९॥ ॥ ॥ ॥ राम उवाच ॥ हे भगवन्! मिथ्या पुरुष कवन था, अरु जिसकी रक्षा करता था, सो आकाश क्या था, अरु जो गृह कूप आदिक बणावता था, सो क्या था? यह प्रगटकरि कहौ ॥ ॥ वसिष्ठ उवाच ॥ हे रामजी! मिथ्य पुरुषा जो संवेदन फुरणेतें उपजा अहंकार है, अरु आकाश चिदाकाश है, तिसतें उपजा बहुरि जाणता है; जो मैं आकाशकी रक्षा करौं; अरु आकाश गृहघटादिक जो कहा सो देह हैं, तिसविषे जो आत्मा अधिष्ठान है, तिस आत्माकी रक्षा करणेकी इच्छा मूर्ख

ता करिके करता है, आपकों नहीं जाणता, जो मेरा स्वरूप क्या है, तिस अपणे स्वरूपकों न जानणेकरि दुःख पावता है, आप है, मिथ्या अरु मिथ्या होकरि आगे आकाशकों कल्पिकरि राखणेकी इच्छा करता है, जो देह करिके देहीके राखणेकी इच्छा करता है, जो मैं जीता रहौं, अरु देह तौ कालकरि उपजा है, बहुरि देहके नष्ट होणेकरि शोकवान होता है, अरु अपणे वास्तव स्वरूप वस्तुकों नहीं जाणता, तिसका नाश कदाचित् नहीं होता, ऐसे विचारतें रहित क्लेश पावता है ॥ हे रामजी! जिसविषे भ्रम उपजता है, तिसका अधिष्ठान सत्ता नहीं होता, सर्वका अपणा आप आत्मा है, सो कदाचित् नाश नहीं होता, तिसविषे मूर्खता करिके अहंरूप संसारकों कल्पता है, अरु एते इसके नाम हैं, अहंकार, मन, जीव, बुद्धि, चित्त, माया, प्रकृति, दृश्य, यह सर्व इसके नाम हैं, सो मिथ्या हैं, अरु इसका अत्यंत अभाव है, अण होता उदय हुआ है, जो मैं हौं, क्षत्रिय ब्राह्मण वर्ण आश्रम अरु मनुष्य देवता दैत्य इत्यादिक कल्पना करता है ॥ हे रामजी! यह कदाचित् हुआ नहीं, अरु न होवैगा, न किसी काल न किसीकों है, अविचार सिद्ध है, विचार कियेतें कछु नहीं, जैसे जेवरीके अज्ञानतें सर्प कल्पीता है, अरु जानणेतें नष्ट हो जाता है, तैसे स्वरूपके प्रमादकरि अहंकार उदय हुआ है, सो तेरा स्वरूप कैसा है श्रवण करु, आत्मा है अरु प्रकाशरूप है, निर्मल है जो विद्याअविद्याके कार्यतें रहित चेतनमात्र है, अरु निर्विकल्प है, ज्योंका त्यौं स्थित है, अद्वैत है, अरु प्राणकों कदाचित् नहीं प्राप्त होता, आत्मत्वमात्र है, तिसविषे संसार कैसे होवै, अरु अहंकार कैसे होवै, सम्यक्दर्शीकों आत्मातें इतर नहीं भासता, अरु असम्यक्दर्शीकों संसार भासता है, पदार्थकों सत जाणता है, अरु संसारकों वास्तव जाणता है, जो अपणे वास्तव स्वरूपकों नहीं जाणता है, जो मैं कवन हौं, जानणेतें अहंकार नष्ट हो जाता है, अरु जेती कछु आपदा है, तिसकी खाण अहंकार है, सर्व ताप अहंकारतें उत्पन्न होते हैं, इसके नष्ट हुए अपणे स्वरूपविषे स्थित होता है, अरु विश्व भी आत्माका चमत्कार है, इतर नहीं, जैसे समुद्र

विषे पवनकरि नानाप्रकारके तरंग भासते हैं, अरु स्वर्णविषे नानाप्रकारके भूषण भासते हैं, सो उहीरूप हैं, भिन्न कछु नहीं, तैसे आत्मातें विश्व भिन्न कछु नहीं, अरु स्वर्ण भी परिणामकरि भूषण होता है, अरु समुद्र भी परिणामकरि तरंग होता है,अरु आत्मा अच्युत है,परिणामकों नहीं प्राप्त भया, तातें समुद्र अरु स्वर्णतें विलक्षण हैं, आत्माविषे संवेदनकरि चमत्कारमात्र विश्व है, सो आत्मामात्र स्वरूप है, सो न कदाचित् जन्म्या है,न मृत्युकों प्राप्त होता है, न किसी कालविषे न किसीसों मृतक है, ज्यौंका त्यौं आत्मा स्थित है, अरु जन्म मृत्यु तब होवै जब दूसरा होवै, आत्मा तौ अद्वैत है, जिसविषे एक कहणा भी नहीं, तौ दूसरा कहां होवै, तातें प्रत्यक् आत्मा अपणा अनुभवरूप है, तिसविषे स्थित होहु, तब दुःख ताप सब नष्ट हो जावैं, सो आत्मा शुद्ध है, अरु निराकार है, ॥ हे रामजी ! जो निराकार शुद्ध है, सो किसकरि ग्रहण करिये अरु रक्षा कैसे करिये, कवन समर्थ है, जो रक्षा करै, जैसे घटके नष्ट हुए घटाकाश नष्ट नहीं होता, तैसे देहके नष्ट हुए देही आत्माका नाश नहीं होता, आत्मसत्ता ज्यौंकी त्यौं हैं, अरु जन्ममरण पुर्यष्टका करिके भासते हैं, जब पुर्यष्टका देहतें निकसी जाती है, तब मृतक भासता है, जब पुर्यष्टका संयुक्त है, तब जीवत भासता है, अरु आत्मा सूक्ष्मतें सूक्ष्म है, अरु स्थूलतें स्थूल है, तिसका ग्रहण कैसे होवै, अरु रक्षा कैसे करियें, अरु स्थूल भी उपदेश जतावणेके निमित्त कहता है, आत्मा वाचातें अगोचर है, अरु भाव अभाव रूप संसारतें रहित है, सर्वका अनुभवरूप है, तिसविषे स्थित होकरि अहंकारका त्याग कर, अपणे स्वरूप प्रत्यक् आत्माविषे स्थित होहु ॥ ॥ इति श्रीयोगवासिष्ठे निर्वाणप्रकरणे मिथ्यापुरुषोपाख्यानसमाप्तिर्नाम नवतितमः सर्ग ॥ ९० ॥ ॥ ॥ वसिष्ठ उवाच ॥ हे रामजी ! यह संसार आत्मरूप है, जैसे इनकी उत्पत्ति भई है, सो सुण, शुद्ध आत्मा निर्विकल्पविषे विवर्त्त चेतन लक्षण मनकरि स्थित भया है, अरु आगे तिसनें जगतकल्पना करी है, सो मन कैसा है, जैसे समुद्रविषे तरंग, अरु स्वर्णविषे भूषण,

जेवरीविषे सर्प, सूर्यकी किरणांविषे जलाभास, तैसे आत्माविषे विवर्त्त मन है, सो आत्मातें इतर कछु न हीं, जिसकों तरंगका ज्ञान है, तिसकों समुद्रबुद्धि नहीं होती, अरु तरंगकों अवर जाणता है, जिसकों भूष णका ज्ञान है, सो स्वर्णकों नहीं जाणता, अरु सर्पके ज्ञानकरि जेवरीकों नहीं जाणता, अरु जलके ज्ञानकरि किरणोंकों नहीं जाणता, तैसे नानाप्रकार विश्वके ज्ञानकरि परमात्माकों नहीं जाणता, जैसे जिस पुरुषनें समुद्रकों जाण्या है, जो जल है, तिसकों तरंग बुदबुदे भी जलही भासते हैं, भिन्न कछु नहीं भासता, सो पु रुष निर्विकल्प है, अरु जिसकों जेवरीका ज्ञान हुआ, तिसकों सर्पबुद्धि नहीं होती, सो पुरुष निर्विकल्प है, अरु जिसकों स्वर्णका ज्ञान हुआ है, तिसकों भूषणबुद्धि नहीं होती, ऐसा पुरुष है सो निर्विकल्प है, जि सकों किरणोंका ज्ञान हुआ है, तिसकों जलबुद्धि नहीं होती, तैसे जिस पुरुषकों निर्विकल्प आत्माका ज्ञा न हुवा है, तिसकों संसारभावना नहीं होती, तिसकों ब्रह्मही भासता है, ऐसा जो मुनीश्वर है सो ज्ञानवान है ॥ हे रामजी! मन भी आत्मातें इतर कछु नहीं, आदि जो परमात्मातें मन होकरि फुर्या है, सो अहं त्वं आदिक होकरि फुर्या, मात्र पदविषे जो अहंभाव होणा सो उत्थान है, बहिर्मुख होणेकरि अपणे नि र्विकल्प चिन्मात्र आत्मा स्वरूपका प्रमाद हुआ है, तिस प्रमाद होणेकरि आगे विश्व हुई है, अरु मन भी कैसा है, जो कदाचित् उदय नहीं भया, अरु आत्मास्वरूप है सो उदय हुएकी नांई भासता है, मन अरु संसार सत्य भी नहीं, असत्य भी नहीं, जो दूसरी वस्तु होवै तौ सत असत् कहियें, आत्मा अद्वैत ज्यौं का त्यौं स्थित है, तिसका विवर्त्त मन होकरि फुर्या है, सोइ मन कीट है, सोइ मन ब्रह्मा है, बहुरि ब्रह्मानें मनोराज्य करिके स्थावर जंगम सृष्टि कल्पी है, सो न सत्य है, न असत्य है ॥ हे रामजी! सर्व प्रपंच मननें क ल्प्या है, तिसीनें नानाप्रकारके विचार रचे हैं, मन बुद्धि चित्त अहंकार जीव सर्व मनके नाम हैं, जब मन नष्ट हो जावै, तब न संसार है, न कोउ विकार है, अरु जबलग मन दृश्यसाथ मिलिकरि कहै, जो मैं संसारका अंत

लेउं तौ कदाचित् अंत न आवैगा, काहेतें जो संसरनाही संसार है, संसरणे संयुक्त संसारका अंत कहा आवै, अंत लेणेवारा बणीकरि आगे फुरीकरि देखता है तौ अंत कहांतें आवै, जैसे कोउ पुरुष दोडता जावै, अरु कहै, मैं अपणे परछायेका अंत लेउं जो कहांलग जाता है ॥ हे रामजी! जबलग पुरुष चला जावै, तबलग परछायेका अंत नहीं आता, अरु जब ठहरि जावै, तब परछायेका अंत हो जाता है, तैसे जबलग फुरणा है, तबलग संसार का अंत नहीं आता, जब फुरणा नष्ट हो जावै, तब संसारका भी अंत होवै, आत्माही दृष्ट आवै, अरु संसारका अत्यंत अभाव हो जावै, अरु जो फुरनेसंयुक्त देखैगा तो संसारही भासैगा ॥ हे रामजी! जिस पदार्थकों य ह देखता है, सो पदार्थ पूर्व कोउ नहीं, चित्तके फुरणेकरि उदय होता है, जब चित्त फुर्या जो यह पदार्थ है, तब आगे पदार्थ हुआ, अरु फुरणेतें रहित होकरि देखें तौ पदार्थ कोउ नहीं भासता; केवल शांतपद है ॥ हे रामजी! यह जो नानाप्रकारकी कल्पना है, तिसतें रहित निर्विकल्प ब्रह्मपदविषे अहंकारका त्यागकरि स्थित होहु, अहंकार जो है, नामरूप देह वर्णाश्रमविषे मायाकरि कल्पित, जब तिसतें रहित होकरि दे खैगा, तब केवल सतचिदानंद आत्मपद शेष रहैगा, जब तिस पदकों अपणा आप जाणैगा, तब तूंही स र्वात्मा होकरि विचरैगा, दुःख तेरे तांई कोउ न रहैगा ॥ हे रामजी! मनही संसार है, मनही ब्रह्मा है, अ रु मनही कीटी है, मनही सुमेरु है, मनही तृण है, मनही सर्व विश्वरूप होकरि स्थित भया है, सो मन कै सा है, जो आत्मातें इतर कछु नहीं, जैसे फलहीविषे संपूर्ण वृक्ष है, तैसे मन आत्मास्वरूप है, आत्मातें इतर मन कछु वस्तु नहीं, ऐसे जाणीकरि आत्मस्वरूप होवैगा, यह जो संज्ञा है, बंध अरु मोक्ष, तिस का त्याग करु, न बंधकी वांछा करु, न मोक्षकी इच्छा करु, इस कल्पनातें रहित होहु, अरु ऐसे न होवै जो मुक्त हों, अरु यह अवर बंध हैं, केवल सत्तासमान आत्मपदविषे स्थित होहु, यही भावना कर, जो तेरे सर्व दुःख नष्ट हो जावैं, ऐसा जो पुरुष है तिसका चित्तभाव नहीं रहता, सर्व आत्मा तिसकों भासता

है, जैसे जिस पुरुषनें सूर्यकों जाण्या है, तिसकों किरणां भी सूर्यही दृष्ट आता है, तैसे जिसकों आत्माका साक्षात्कार हुआ है, तिसकों जगत भी आत्मस्वरूप भासता है ॥ ॥ इति श्रीयोगवासिष्ठे निर्वाणप्रकरणे परमार्थयोगोपदेशो नाम एकनवतितमः सर्गः ॥ ९१ ॥ ॥ ॥ वसिष्ठ उवाच ॥ हे रामजी ! महाकर्त्ता होहु; अरु महाभोक्ता अरु त्यागी होहु, सर्व शंकाकों त्यागिकरि निरंतर धैर्य धारीकरि स्थित होहु ॥

॥ राम उवाच ॥ हे भगवन् ! महाकर्त्ता क्या कहियें, महाभोक्ता अरु महात्यागी क्या कहियें, कृपा करिके कहो ॥ ॥ वसिष्ठ उवाच ॥ हे रामजी ! तेरे प्रश्न उपर एक आख्यान है सो श्रवण करु, एक समय सुमेरु पर्वतकी उत्तर दिशाके शिखरतें सदाशिवजी आय प्राप्त भया, सो कैसा है सदाशिव, चंद्रमाकों मस्तकविषे धर्या है, अरु गुणसंयुक्त अरु गौरी डावे अंगविषे धारे हैं, सुमेरु पर्वतके शिखरपर आनि स्थित भया, तब भृंगीगण जो है सदाशिवका, तिसनें हाथ जोडकरि प्रश्न किया, कैसा है भृंगीगण, महातेजवान अरु आत्मजिज्ञासा जिसकों उपजी है, तिसनें प्रश्न किया कै, हे भगवन् ! देवके देव, यह संसार मिथ्या भ्रम है, तिसविषे मैं सत्य पदार्थ कोउ नहीं देखता, सदा चलरूप भासता है, अरु जो सत्पदार्थ है, तिसकों मैं नहीं जाणता, मेरे ताप नष्ट नहीं भए, मैं शांतिकों नहीं प्राप्त भया, तातें आपकों दुःखी देखता हौं, जिसकरि शांति प्राप्त होवै सो कृपाकरि कहो, अरु खेदतें रहित होकरि चेष्टाविषे विचरों, सो खेदतें रहित तब होता है, जब कोउ आसरा होता है, अरु जेता कछु संसार है सो मिथ्या है, मैं किसका आसरा करों, तातें सोइ मेरे तांई कहो, जिसकों आश्रय किये, दुःख मेरे नष्ट होवै ॥ ईश्वर उवाच ॥ हे भृंगी ! तूं महाकर्त्ता होहु, अरु महाभोक्ता होहु, अरु महात्यागी होहु, सर्व शंकाकों त्यागिकरि निरंतर धैर्यकों आश्रय करिके तेरे दुःख नष्ट होवैंगे ॥ वसिष्ठ उवाच ॥ हे रामजी ! ऐसा जो है भृंगी गण ! जिसकों सदाशिवनें पुत्रकरि रखा है, तिसनें श्रवण करिके प्रश्न किया ॥ हे परमेश्वर ! महाकर्त्ता क्या कहियें, महा भोक्ता महात्यागी क्या

कहियें, सो कृपाकरि ज्यौंका त्यौं मेरे तांई कहौ ॥ ईश्वर उवाच ॥ हे पुत्र! सर्वात्मा जो अनुभवरूप है, तिसका आश्रय करिके विचरु, जो दुःखतें रहित होवै, अरु इन तीनों वृत्तिकरि दुःख तेरे नष्ट हो जावैंगे, जो कछु शुभक्रिया आय प्राप्त होवै, तिसकों शंका त्यागके करै, ऐसा पुरुष महाकर्त्ता है, धर्म अधर्मक्रिया अनिच्छित आनि प्राप्त होवै, तिसकों रागदोषतें रहित होकरि करै ऐसा पुरुष महाकर्त्ता है, जो पुरुष मौनी निरहंकार निर्मान है, मत्सरतें रहित होकरि ऐसा पुरुष महाकर्त्ता है, अनिच्छित प्राप्त हुएका त्याग न करै, अरु जो नहीं प्राप्त हुआ, तिसकी वांच्छा न करै, ऐसा पुरुष महाकर्त्ता है, अरु पुण्य पाप क्रिया जो अनिच्छित आय प्राप्त होवैं, तिसकों अहंकारतें रहित होकरि करै, पुण्यक्रिया करणेतें आपकों पुण्यवान नहीं मानता, अरु पाप कियेतें पापी नहीं मानता, सदा आपकों अकर्त्ता जाणता है, ऐसा पुरुष महाकर्त्ता है, अरु जो सर्वविषे विगतस्नेह है, सत्यवत स्थित है, निरिच्छा वर्तता है, कार्यविषे सो महाकर्त्ता है, जो दुःखके प्राप्त हुए शोक नहीं करता, अरु सुखके प्राप्त हुएतें हर्षवान नहीं होता, स्वाभाविक चित्तसमताकों देखता है, कदाचित् विषमताकों प्राप्त नहीं होता, जो सुखकी भिन्न भिन्न विषमता है, तिसतें रहित है, सो पुरुष महाकर्त्ता है, अरु जिस पुरुषनें सुखदुःखका त्याग किया है, जो सुखदुःखकी भावना नहीं फुरती, यही त्याग है, जो अवर कछु नहीं फुरता है, ऐसा पुरुष महाकर्त्ता है॥ हे भृंगी! जो पुरुष प्राप्त हुई वस्तुकों रागदोषतें रहित होकरि भोगता है, सो महाभोक्ता है, अरु जो बडा कष्ट आय प्राप्त होवै, तिसविषे दोष नहीं रहता, अरु बडे सुखकी प्राप्तिविषे हर्षवान नहीं होता, सो पुरुष महाभोक्ता है, अरु जो बडे राज्यके सुख भोगणेविषे आपकों सुखी नहीं मानता, राज्यके आभाव होणे अरु भिक्षा मागणेविषे आपकों दुःखी नहीं मानता, सदा स्वरूपविषे स्थित है, सो महाभोक्ता है, अरु जो मान अहंकार अरु चिंतनातें रहित है, केवल समताविषे स्थित है, सो महाभोक्ता है,अरु जो कोउ कछु देवै,तउ आपकों लेणेवाला नहीं मानता, अरु

शुभक्रियाविषे भोक्ता हुआ आपकों कर्तृत्व भोक्तृत्व नहीं मानता सो पुरुष महाभोक्ता है, अरु जो मीठा खाटा तीक्ष्ण सलोणा कटु यह रस प्राप्त होते हैं,तिनके भोगणेविषे समचित्त रहता है,अरु सम जाणता है, सो महाभोक्ता है, जो रसवान पदार्थ प्राप्त हुएतें हर्षवान नहीं होता, अरु विरसके प्राप्त हुएतें दोषवान नहीं होता, ज्यौंका त्यौं रहता है, जैसा आय प्राप्त होवै भला बुरा, तिसकों दुःखतें रहित होकरि भोगता है, ऐसा पुरुष है सो महाभोक्ता है, अरु जेती कछु क्रिया है, शुभ अशुभ भाव अभाव तिसके सुखदुःखतें चलायमान नहीं होता, सो पुरुष महाभोक्ता है, अरु जिसकों मृत्युका भय नहीं, अरु जिणेकी आस्था नहीं, उदय अस्तविषे समान है सो महाभोक्ता है, बडे सुखप्राप्तिविषे हर्षवान नहीं होता, अरु दुःखकी प्राप्तिविषे शोकवान नहीं होता, ज्यौंका त्यौं रहता है, सो महाभोक्ता है, जो कछु अनिच्छित आय प्राप्त होवै, तिसकों कर्त्ता हुआ अहंकारतें रहित है, सो पुरुष महाभोक्ता है, जो पुरुष शत्रु मित्र सुहृदविषे समबुद्धि रहता है, विषमताकों कदाचित् नहीं प्राप्त होता सो पुरुष महाभोक्ता है, जेता कछु शुभ अशुभ दुःख सुख आय प्राप्त होवैं, तिसकों धारि लेता है, कदाचित् विषमताकों नहीं प्राप्त होता, जैसे समुद्रविषे नदिया आय प्राप्त होतियां हैं, तिनकों धारिकरि सम रहता है, तैसे ज्ञानवान शुभअशुभकों धारिकरि सम रहता है, जो संसार अरु देह इंद्रियां अरु अहंकारकी सत्ताकों त्यागिकरि स्थित हुआ है अरु जानता है, न मैं देह हौं, न मेरा देह है, इनका साक्षी हौं, इस वृत्तिकों धारी रहै, सो महात्यागी है, अरुजो सर्व चेष्टा करता है, रागदोषतें रहित होकरि सो महात्यागी है, अरु शुभ अशुभ प्राप्त हुएकों अहंकारतें रहित होकरि करता है, सो महात्यागी है, अरु जो मन इंद्रियां देहकरि इच्छातें रहित हुआ सर्व चेष्टा भी करता है सो महात्यागी है, अरु जो पुरुष समचित्त इंद्रियजीत है, अरु क्षमावान है जो सो महात्यागी है ॥ हे रामजी! जिस पुरुषनें धर्मअधर्मकी देह संसारकी मद मान मननकी इत्यादिक कल्पनाका त्याग किया है, सो महात्यागी है ॥

हे रामजी! इस प्रकार भृंगी गणकों सदाशिवनें उपदेश किया, सो कैसा सदाशिव है, खपरकों हाथविषे धारे, अरु व्याघ्रांबरकों लिए हुए मस्तकविषे चंद्रमाकों धारे, तिसनें सुमेरुके शिखरपर उपदेश किया॥ हे रामजी! तूं भी इसी वृत्तिकों धारिकरि विचरु, तेरे सर्व दुःख नष्ट हो जावैंगे॥ इति श्रीयोगवासिष्ठे निर्वाण प्रकरणे महाकर्त्राद्युपदेशो नाम द्विनवतितमः सर्गः॥ ९२॥ ॥ ॥ ॥ राम उवाच ॥ हे मुनीश्वर! जो तुमने उपदेश किया सो मैं जान्या है अरु तुमनें आगे उपशम प्रकरणविषे उपदेश किया था, जो आत्मा अनंत है, अरु शुद्ध है, तब मैं प्रश्न किया था जो आत्मा अनंत है, अरु शुद्ध है, तौ यह कलना कैसे उपजी है, जैसे समुद्र निर्मल है, तिसविषे धूड कैसे होवै, बहुरि तुमने कहा, इस प्रश्नका उत्तर सिद्धांतकालविषे कहैंगे, सो मैं अब सिद्धांतका पात्र हौं, मेरे तांई कहौ, जैसे स्त्री भर्त्तासों प्रश्न करती है, अरु भर्त्ता कृपा करिके उपदेश करता है, तैसे मैं तुमारी शरण हौं, कृपा करिके मुझकों उत्तर कहौ, जो आशा अरु तृष्णाके फांस मेरे टूटे हैं, अरु आशारूपी जालतें निकसा हौं, अरु संशयरूपी धूड मेरे हृदयविषे उठी है, तिसकों वचनरूपी वर्षाकरि शांत करौं, अरु संशयरूपी मेरे हृदयविषे अंधकार है, वचनरूपी क्रीडाकरि तुम निवर्त करौ, तुमारे वचनरूपी अमृतकरि मैं तृप्त नहीं होता॥ हे भगवन्! अपणे विचार ज्ञानकरि यह गुरुके उपदेश कियेविना नहीं शोभता॥ ॥वसिष्ठ उवाच॥ हे रामजी! जो पुरुष शांतिवान् अरु क्षमावान है, अरु इंद्रियजित है, अरु मनकी क्रिया संकल्पविकल्पकों जीता है, सो सिद्धांतका पात्र है॥ हे रामजी! तूं अब सिद्धांतका पात्र है, तातें उपदेश करता हौं, अरु जो पुरुष रागदोषसहित क्रियाविषे स्थित है, अरु इंद्रियांके सुखकरि जिसकों आराम है, सो सिद्धांतके वाक्य अहं ब्रह्म अस्मि, सर्व ब्रह्म तिनकों श्रवणकरि भोगविषे स्थित होता है, अरु अधोगतिकों पावता है, काहेतें जो उसकों निश्चय नहीं होता, हृदय तिसका मलीन है, तातें इंद्रियांके सुखकरि आपकों सुखी मानता है, इसी नीच स्थानोंकों प्रा

प्त होता है, अरु जो पुरुष क्षमा आदिक साधनकरि पवित्र हुआ है, तिसकों अहं ब्रह्म अस्मि, सर्व ब्रह्मके श्रवणकरि शीघ्रही भावनातें आत्मपदकी प्राप्ति होती है, अरु तुम सारखे जो पुरुष हैं, क्षमा आदिक साधनकरि पवित्र हुए हैं, तिनकों स्वरूपकी प्राप्ति सुगम होती है, अरु जिनका अंतःकरण मलिन है, तिनकों प्राप्त होणा कठिण है, जैसे भूना बीज कलरकी पृथ्वीविषे बोइए, तब उसकी अंगुरी नहीं होती, तैसे इंद्रियारामी पुरुषकों आत्माकी प्राप्ति नहीं होती, अरु तुमसारखे जिनका हृदय शुद्ध है, तिनकों ज्ञानकी प्राप्ति होती है, अरु इन वचनोंकों पायकरि शोभते हैं, जैसे वर्षाकालविषे धान पृथ्वीमें शोभा पावते हैं, वर्षा करिके तैसे सिद्धांत वचनोंकों पायकरि ज्ञानरूपी दीपकसों प्रकाशते हैं, अरु जो ज्ञानवान पुरुष उंची बाहो करि कहते हैं, अरु सर्व शास्त्र भी कहते हैं, सो सर्व शास्त्रोंके सिद्धांतकों अरु तिनके दृष्टांतोंकों मैं जाणता हौं, तातें सर्व सिद्धांतोंका सार कहता हौं, तूं श्रवण करु, जो तेरा स्वरूप है, तिसकों जाणैगा ॥ हे रामजी! जिसकों अभ्यास करिके एक क्षण भी साक्षात्कार हुआ है, सो बहुरि गर्भविषे नहीं आता, अरु सत असतविषे भेद कछु नहीं, उसके संवेदनविषे भेद है, जैसे जाग्रतका सूर्य अरु स्वप्नका सूर्य प्रकाश दोनोंका समान है, जाग्रतविषे जाग्रत सूर्यका प्रकाश अर्थाकार होता है, अरु स्वप्नविषे स्वप्नका सूर्य अर्थाकार होता है, प्रकाश दोनोंका सम है, अरु संवित भिन्न है, स्वप्नकों मिथ्या जानता है, अरु जाग्रतकों सत्य जानता है, संवेदनतें भेद हुआ स्वरूपतें भेद कछु न हुआ, जैसे एक बडा पर्वत मन करिके रचियें तौ संकल्पकरि देखता है, अरु एक पर्वत बाहिर प्रत्यक्षकरि देखता है, तौ संवित करिके भेद हुआ, स्वरूप दोनोंका तुल्य है, जैसे समुद्रविषे तरंग हैं, स्वरूपविषे जलतरंगोंका भेद कछु नहीं, जिसकों जलका ज्ञान नहीं सो तरंगही जानता है, तातें संवितविषे भेद है, तैसे स्वरूपविषे सत असत तुल्य हैं, वास्तव कछु नहीं, केवल शांतरूप आत्मा है, अरु शब्द अर्थ संवेदनविषे है, शब्द कहियें नाम, अर्थ कहियें नामी

सो संवेदन फुरणे करिके है, जब फुरणा नष्ट हो जावै, तब सर्व अर्थ भी आत्मा है, ऐसे भासैगा, जगतकी सत्ता तबलग है, जबलग आत्माका प्रमाद है, अरु प्रमाद तबलग है, जबलग अहंभाव है, जब अहंभाव नष्ट हो जावै, तब केवल आत्मा शेष रहै, सो आत्मा शुद्ध है, विद्याअविद्याके कार्यतें रहित है, कदाचित् स्पर्श नहीं किया ॥ हे रामजी! अविद्याकी दो शक्ति हैं, एक आवरण, एक विक्षेप, आवरण कहियें आत्मा का न जानणा, विक्षेप कहियें अवर कछु जानणा, सो आत्मा सदा ज्ञानरूप है, तिसकों आवरण कदाचित् नहीं, आत्मा अद्वैत है, तिसतें इतर कछु नहीं बण्या, इसीतें आत्मा शुद्ध है, केवल ज्ञानमात्र है ॥ हे रामजी! तिसविषे कलनारूपी धूड कहां होवै, जो आत्ममात्र है, चिन्मात्र जिसविषे अहंका उत्थान है नहीं, केवल निर्वाणपद है, जहां एक अरु द्वैत कहणा भी नहीं, केवल अपणे आपविषे स्थित है ॥ राम उवाच ॥ हे भगवन्! जो सर्व ब्रह्म है तौ मन बुद्धि आदिक यह कवन हैं, जिसकरि तुम इह शास्त्र उपदेश करते हौ ॥ ॥ वसिष्ठ उवाच ॥ हे रामजी! शास्त्रके व्यवहारके अर्थ शब्द यह हैं, परमार्थतें कल्पना है नहीं, यह मन बुद्धि आदिक कछु वस्तु नहीं, ब्रह्मसत्ताही अपणे आपविषे स्थित है, जैसे तरंग जलतें इतर कछु वस्तु नहीं, तैसे मनादिक हैं, आत्मा तत्त्व कैसा है, नित्य है, शुद्ध है, सन्मात्र है, नाहींकी नांई स्थित है ॥ हे रामजी! ऐसे आत्माविषे संसार अविद्याका नाम आदिक कैसे होवै, आत्मा ब्रह्म है, जिसतें इतर कछु नहीं, सर्व अधिष्ठान है, अरु अविनाशी है, देश काल वस्तुके परिच्छेदतें रहित है, इसीतें ब्रह्म है ॥ हे रामजी! ऐसा जो अपणा आप आत्मा है, तिसीविषे स्थित होहु, अरु यह जगत जो दृष्ट आता है, सो सर्व चिदाकाश है, इतर कछु नहीं, जैसे स्वप्नविषे विश्व देखीता है, सो अनुभवमात्र है, जैसे जाग्रत विश्व आत्मरूप है, ऐसा जो तेरा शुद्ध अरु नित्य उदित अविनाशी रूप है, तिसविषे जब स्थित होवेगा, तब कलना जो तेरे तांई भासती है, सो नष्ट हो जावैगी ॥ इति श्रीयोगवासिष्ठे निर्वाणप्रकरणे कलनानिषेधो नाम त्रिनवतितमः सर्गः ॥ ९३ ॥ ॥

॥ वसिष्ठ उवाच ॥ हे रामजी! संसारका बीज अहंकार है, जब अहंभाव होता है, तब संसार होता है, सो अहंकार कछु वस्तु नहीं, भ्रम करिके सिद्ध हुआ है, जैसे मूर्ख बालक परछायेविषे पिशाच कल्पता है, सो पिशाच कछु वस्तु नहीं, उसके भ्रमविषे होता है, तैसे अहंकार कछु वस्तु नहीं, स्वरूपके भ्रमविषे होता है ॥ हे रामजी! जो वास्तव कछु वस्तु न होवै, तिसके त्यागणेविषे यत्न कछु नहीं, तेरेविषे अहंकार वास्तव नहीं, तूं केवल शांतरूप चेतनमात्र है, तिसविषे अहंभाव होणां उपाधि है, तिसतें सुमेरु पर्वत आदिक जगत बनि जाता है, सो संवेदनरूप है, चित्तरूपी पुरुष चेतनके आश्रयतें फुरता है, अरु विश्व कल्पता है, जैसे जेवरीके आश्रयतें सर्प फुरता है, तैसे चेतनके आश्रय विश्व अरु चित्त फुरते हैं, सो आत्मातें इतर नहीं, अरु अहंकार हुएकी नांई हुआ है, जो मैं हौं ऐसा जो अहंभाव है, सो दुःखकी खाण है, सर्व आपदा अहंकारतें होती हैं, जब अहंकार नष्ट होवैगा, तब सर्व दुःख नष्ट होवैंगे ॥ हे रामजी! जैसे सूर्यके आगे बदल होते हैं, तौ प्रकाश नहीं होता, जब बदल दूर होते हैं; तब प्रकाशवान भासता है; अरु सूर्यके प्रकाशकरि कमल प्रफुल्लित होते हैं, तैसे आत्मारूपी सूर्यकों अहंकाररूपी बदलका आवरण हुआ, अहंकार कहियें किसी मायाके गुणसाथ मिलिकरि कछु आपकों मानणा, जब अहंकाररूपी बदल नष्ट होवैगा, तब आत्मरूपी सूर्यका प्रकाश होवैगा, अरु ज्ञानवानरूपी कमल तिस प्रकाशकों पायकरि बडे आनंदकों प्राप्त होते हैं ॥ हे रामजी! तातें अहंकारके नाशका उपाय करौ, जो तुमारे दुःख नष्ट हो जावैं, उह कवन पदार्थ है, जो उपाय किये सिद्ध नहीं होता, जो अहंकारके नाशका उपाय करिये तौ नष्ट हो जाता है, जिस प्रकार अहंकार नष्ट होवै सो श्रवण करु, सच्छास्त्र जो ब्रह्मविद्या है, तिसका वारंवार अभ्यास करि संतके संग जो कथा परस्पर चर्चा करणी, तिसकरि अहंकार नष्ट हो जाता है, जैसे पाणी भरणेकी जेवरीकरि पथ्थरकी शिलाकों घासि पडी जाती है, तैसे ब्रह्मविद्याका अभ्यासकरि अहंकार नष्ट होता है, अरु शि

लाके घसणेविषे कछु यत्न है, अहंकारके त्यागणेविषे यत्न कछु नहीं ॥ हे रामजी! सदा अनुभवरूप आत्मा है, तिसका विचार करौ जो मैं कवन हौं, अरु इंद्रियां क्या है, गुण क्या हैं, अरु संसार क्या है, जो ऐसे विचारकरि इनका साक्षीभूत होहु, जो मेरेविषे अहं त्वं कोउ नहीं, इसकरि अहंकारका नाश करौ, अरु तूं शुद्ध है, मेरा भी आशीर्वाद है, जो तूं सुखी होवै, जब अहंकार नष्ट होवैगा, तब कलना कोउ न फुरैगी, केवल सुषुप्तकी नांई स्थित होवैगा ॥ ॥ राम उवाच ॥ हे भगवन्! जो अहंकार तुमारा नष्ट हुआ है, तौ प्रत्यक्ष उपदेश करते कैसे देखते हैं, अरु जो अहंकार नहीं, तौ सर्व शास्त्र ब्रह्मविद्या कहांतें उपजे हैं, अरु उपदेश कैसे होता है, उपदेशाविषे चारौं सिद्ध होते हैं, अंतःकरण जो प्रथम उपदेश करणेकी इच्छा होती है, तब अहंकार सिद्ध होता है, अरु जब स्मरण होता है, जो उपदेश करौं, तब चित्त भी चैत्यकरि सिद्ध होता है, बहुरि यह उपदेश करिये, यह नहीं करिये, ऐसे संकल्प किये मनकी सिद्धता होती है, बहुरि निश्चय किया यह उपदेश करिये, तब बुद्धिकी सिद्धता होती है, तातें चारौं अंतःकरण सिद्ध होते हैं, तुम कैसे कहते हौ, जो अहंकार नष्ट हो जाता है, अरु सर्व चेष्टा होती है, ? ॥ ॥ वसिष्ठ उवाच ॥ हे रामजी! आत्मस्वरूपविषे अहंकार आदिक अंतःकरण अरु इंद्रियां कल्पित हैं, वास्तव कछु नहीं अरु शास्ता शास्त्र उपदेश भी कल्पना हैं, आत्मा केवल आत्मत्वमात्र है, तिसविषे संवेदन करिके अहंकारादिक दृश्य फुरे हैं, तिसके निवृत्त करणेकों प्रवर्तते हैं, जैसे जेवरीविषे सर्प भासता है, तब भयकरि दुःख पावता है, जब किसनें कहा जो यह जेवरी है, तूं भय मत करु, इसकों भली प्रकार देख, यह सर्प नहीं, तिसके उपदेश करि उह भली प्रकार देखता है, तब भय शोक तिसका निवृत्त हो जाता है, जो भ्रम करिके उसकों सर्पभान हुआ था, सो भी मिथ्या है, अरु उसकों उपदेश करणा जेवरीका सो भी मिथ्या है, काहेतें जो जेवरी तौ, आगे सिद्ध है, उपदेशकरि सिद्ध नहीं होती, तैसे जेवरीकी नांई आत्मा है,

तिसका निवृत्त जो चेतन लक्षण तिसकों अहंभाव है, तिस अहंकारके निवृत्त करणेकों शास्त्र हुए हैं, जो आत्मारूपी जेवरीके प्रमादकरि अहंकाररूपी सर्प फुर्या है, तिसके निवृत्त करणेकों शास्त्रके उपदेश हुए हैं, आत्माकों जताय देते हैं, जब भली प्रकार जेवरीकी नांईं आत्माकों जाण्या, तब सर्पकी नांईं जो परिच्छिन्न अहंकार है, सो नष्ट हो जाता है, जैसे नेत्रविषे मेल होता है, अरु अंजनके पावणेकरि नष्ट हो जाता है, तब ज्यौंका त्यौं निर्मल नेत्र होते हैं, तैसे अज्ञानरूपी जो मेल है, सो गुरुशास्त्रके उपदेशरूपी सुरमेकरि नष्ट हो जाती है, वास्तव न कोउ अहंकार है, न शास्त्र है, काहेतें जो आत्मा सर्वदाकाल उदयरूप है, परंतु तौ भी गुरुशास्त्रकरि जाणीता है ॥ हे रामजी! ज्ञानवानके साथ चारों अंतःकरण अरु इंद्रियां भी दृष्ट आते हैं, सो तिनविषे सत्यता नहीं होती, जैसे भूना बीज दृष्ट आता है, परंतु ऊगणेकी सत्यता नहीं राखता, जैसे जल्या वस्त्र होता है, सो देखणेमात्र है, सत्यता उसविषे कछु नहीं, तैसे ज्ञानवानकों अभिलाषरूप अहंकार नहीं होता, तिसकरि कष्ट नहीं पावता, जैसे सूर्यकी किरणांकरि मरुस्थलविषे जलाभास होता है, तिसकों देखिकरि जलपान करणेनिमित्त मृग दौडता है, अरु दुःखी होता है, तैसे दृश्यरूपी मरुस्थलविषे पदार्थरूपी जलाभास है, तिसकों देखीकरि अज्ञानीरूपी मृग दोडते हैं, अरु दुःख पावते हैं, जब ज्ञानरूपी वर्षाकरि आत्मारूपी जल चडा, तब चित्तरूपी मृग कहां दोडै, जब ज्ञानरूपी वर्षा होती है, अरु अनुभवरूपी जल चडता है, तब चित्तरूपी मृग तिसविषे यत्नरूपी जो फुरणा था, सो नष्ट हो जाता है ॥ हे रामजी! अहंकार अविचारतें सिद्ध है, विचारतें क्षीण हो जाता है, जैसे बरफकी पुतली सूर्यकी किरणांकरि क्षीण होती है, जब अधिक तेज होता है, तब जलरूप हो जाता है, बरफकी संज्ञा नहीं रहती, तैसे अहंकाररूपी बरफ विचाररूपी किरणांकरि क्षीण हो जाता है, जब दृढ विचार होता है, तब अहंकारसंज्ञाही जाती है, केवल आत्मा हो रहता है ॥ ॥ राम उवाच ॥ हे सर्वतत्त्वज्ञ भगवन्! जिसका

अहंकार नष्ट हुआ है, तिसका लक्षण क्या है, सो कहो ॥ ॥ वसिष्ठ उवाच ॥ हे रामजी! अज्ञानरूपी टोया संसार है, तिसविषे पदार्थकी भावनाकरि नहीं गिरता. अरु क्षमा शांति आदिक शुभ गुण तिसकों स्वाभाविक आय प्राप्त होते हैं, जैसे समुद्रविषे नदियां स्वाभाविक आय प्राप्त होतीयां हैं, अरु क्रोध भी तिसका नष्ट हो जाता है, देखणेमात्र भासता है तो भी अर्थाकार नहीं होता, जो विषमता करिके भिन्न भावना अंतरतें नहीं फुरती केवल सत्तासमानविषे स्थित होता है, जैसे शरत्कालका मेघ गर्जता है, अरु वर्षातें रहित होता है, तैसे इंद्रियांकी चेष्टा अभिमानतें रहित होकरि करता है, जैसे वर्षा ऋतुके जाणेकरि कुहिड नहीं रहती, तैसे अभिमान चेष्टा तिसकी नष्ट हो जाती है, अरु लोभ भी तिसके मनतें जाता रहता है, जैसे वनकों अग्नि लगती है, अरु मृग पक्षी तिस वनकों त्याग जाते हैं, तैसे लोभरूपी मृग तिसकों त्याग जाते हैं, तिसके मनविषे कामना कोउ नहीं रहती, जैसे दिनविषे उलूक पिशाच नहीं विचरते. जहां ज्ञानरूपी सूर्य उदय होता है, तहां संपूर्ण कामनारूपी तम नष्ट हो जाता है. शांतरूप आत्माविषे स्थित रहता है, जैसे पैंदोइ दो पोटकों ज्येष्ठ आषाढकी धूपविषे उठावता है, अरु गरमी होती है. थकता भी है, तिसकों डारीकरि वृक्षके नीचे सुखसों स्थित होता है, तैसे वासनारूपी पोट है, अज्ञानरूपी धूप है, तिसकरि दुःखी होता है, ज्ञानरूपी बलकरि वासनारूपी पोटकों डारिके सुखसों स्थित होता है ॥ हे रामजी! भोगभावना तिस पुरुषकी नष्ट हो जाती है, बहुरि दुःख नहीं देती, जैसे गरुडकों देखीकरि सर्प भागता है, बहुरि निकट नहीं आवता, तैसे ज्ञानरूपी गरुडकों देखिकरि भोगरूपी सर्प भागते हैं, बहुरि निकट नहीं आते, आत्मपदकों पायकरि शांतिरूपी दीपकवत् प्रकाशवान होता है, भाव अभाव पदार्थ तिसकों स्पर्श नहीं करते, संसारभ्रम निवृत्त हो जाता है, सो ज्ञान समुझणे मात्र है, कछु यत्न नहीं, संतपास जायकरि प्रश्न करणा, मैं कवन हों, जगत क्या है, परमात्मा क्या है, अरु भोग क्या हैं, इनकों तरिकरि

कैसे परमपदकों प्राप्त होवैं, बहुरि जो ज्ञानवान उपदेश करैं, तिसके अभ्यासकरि आत्मपदकों प्राप्त होवैगा, अन्यथा न होवै॥ ॥ इति श्रीयोगवासिष्ठे निर्वाणप्रकरणे संतलक्षणमाहात्म्यवर्णनं नाम चतुर्नवतितमः सर्गः॥ ९४॥ ॥ ॥ वसिष्ठ उवाच ॥ हे रामजी! जिस प्रकार तुमारा बडा इक्ष्वाकु नामक राजा जीवन्मुक्त होकरि विचर्या है, तैसे तुम भी विचरौ, तुम भी तिस कुलतें उपजे हौ ॥ हे रामजी! इक्ष्वाकु राजा सूर्यवंशी होत भया है, सो मनुका पुत्र अरु सूर्यका पौत्र, सब राजातें श्रेष्ठ था, जैसे पितरोंका राजा धर्म है, अरु बर्फकी नांई तिसका शीतल स्वभाव था, जैसे सूर्यकों देखिकरि मणितें तेज प्रगट होता है, तैसे तिसकों देखिकरि शत्रु तपायमान होवैं, ऐसा परंतप था, साधु अरु मित्र प्रजाकों रमणीय भासै, तिसकों देखिकरि सब शांतिवान होवैं, जैसे चंद्रमाकों देखिकरि चंद्रमुखी कमल प्रसन्न होते हैं तैसे उसकों देखिकरि प्रसन्न होवैं, अरु पापरूपी वृक्षोंके काटणेहारा कुहाडा अरु मित्रका सुखदायक जैसे मोरोंका मेघ सुखदायक है, अरु सुंदर ऐसा जिसकों देखिकरि लक्ष्मी स्थित हो रही है, दरिद्री कदाचित् न होवै, तिसके यशकरि संपूर्ण पृथ्वी पूरि रही थी, जैसे चंद्रमाकी चांदनीकरि रात्र पूर्ण होती है, ऐसा राजा भली प्रकार प्रजाकी पालना करत भया, एक काल तिसके मनविषे विचार उपजा, जो जरा मरण आदिक संसार विषे बडा क्षोभ है, इस संसारदुःखके तरणेका उपाय कवन है, ऐसे विचारता था जो एक समय शंभु मुनी ब्रह्मलोकतें आया, तिसका भली प्रकार पूजण किया, अरु कहत भया॥ इक्ष्वाकुरुवाच ॥ हे भगवन्! तुमारी कृपाका जो पराक्रम है, सो मेरे हृदयविषे बैठीकरि प्रश्न करणेकों प्रेरता है, तातें मैं प्रश्न करता हौं ॥ हे भगवन्! मेरे हृदयविषे संसार फुरता है, जैसे समुद्रकों वडवाग्नि जलावता है, तैसे मुझकों संसार जलावता है, तातें सोइ उपाय कहौ जिसकरि मुझकों शांति प्राप्त होवै॥ हे भगवन्! यह संसार कहांतें उपजा है, अरु दृश्यका स्वरूप क्या है, अरु कैसे निवृत्त होता है, जैसे जालसों पक्षी निकसि जाता है, तैसे जन्म

मरण संसार महाजाल है, तिसतें निकसणेका उपाय मुझकों कहौ, जैसे वरुण सब स्थान समुद्रके जानता है, तैसे तुम जगतके सब व्यवहारकों जानते हौ, अरु संशयरूपी वृक्षके काटणेहारे तुम कुहाडे हौ, अरु अज्ञानरूपी तमके नाशकर्त्ता तुम सूर्य हौ, तुमारे अमृतरूपी वचनोंकरि मैं शांतिकों प्राप्त होउंगा ॥ मुनिरुवाच ॥ हे साधो! मैं चिरकालपर्यंत जगतविषे विचरता रहता हौं, परंतु ऐसा प्रश्न किसीनें नहीं किया, तुझनें परमसार प्रश्न किया है, सर्व अनर्थके नाश करणेहारा प्रश्न है, तेरी बुद्धि विवेककरि विकासमान हुई दृष्ट आवती है ॥ हे राजन्! जो कछु जगत तुझकों भासता है सो सब असत है, जैसे जेवरीविषे सर्प, जैसे गंधर्वनगर, जैसे मरुस्थलविषे जल, जैसे सीपिविषे रूपा, जैसे आकाशविषे नीलता, दूसरा चंद्रमा भ्रमकरि भासता है, तैसे यह जगत असत्यरूप है, जैसे जलविषे चक्रतरंग असतरूप हैं, तैसे जगत असतरूप है, अरु जो मनसहित षट् इंद्रियांतें अतीत है, अरु शून्य भी नहीं, सो सत अविनाशी आत्मा कहाता है, सो निर्मल परम ब्रह्म सर्व उरतें पूर्ण अनंत है, तिसविषे जगत कल्पित है ॥ हे राजन्! जैसे सर्व वृक्षोंविषे एकही रस व्यापक है, तैसे सर्व पदार्थोंविषे एक चिन्मात्रसत्ता व्यापक है, जैसे समुद्र अचलविषे द्रवताकरिके तरंग फुरते हैं, तैसे परमात्माविषे जगत फुरते हैं, तिस महादर्पणविषे सर्व वस्तुजात प्रतिबिंब होते हैं, जैसे समुद्रविषे कोउ तरंगरूप, कोउ बुदबुदे चक्रादिक होते हैं, तैसे आत्माविषे जीवादिक आभास होते हैं, प्रथम फुरणरूप होते हैं,पाछे कारणकार्यरूप होते हैं, सो चित्तशक्ति अपणे संकल्पतें भूतादिक देह रचीकरि तिसविषे स्वरूपके प्रमादकरि आत्मअभिमान करता है, जैसे घुराणकों अपणी क्रिया अपणे बंधनके निमित्त होती है, तैसे इसकों अपणा संकल्प बंधनका कारण होता है ॥ हे राजन्! जीवकलाकों स्वरूपका अज्ञान हुआ है, सो जैसे बालककों अपणा परछाया यक्षरूप होकरि भय देता है, तैसे यह नानाप्रकारके आरंभकों प्राप्त हुआ है, अकारणही ब्रह्मशक्ति फुरणे करिके कारणभावकों प्राप्त हुआ है, तिसकरि बंध अरु मोक्ष भासते हैं, वास्तवतें न बंध है, न मो

क्ष है, निरामय ब्रह्महीं अपणे आपविषे स्थित है, तिसविषे एक अरु अनेक कहणा कछु नहीं, तातें बंधमोक्षकी कल्पनाकों त्यागिकरि अपणे स्वभावविषे स्थित होहु ॥ ॥ इति श्रीयोगवासिष्ठे निर्वाणप्रकरणे इक्ष्वाकु प्रत्यक्षोपदेशो नाम पंचनवतितमः सर्गः ॥ ९५ ॥ ॥ ॥ ॥ मुनिरुवाच ॥ हे राजन्! जैसे द्रवता करिके जलही तरंगभावकों प्राप्त होता है, तैसे चिन्मात्रही संकल्पके फुरणेकरि जीव होता है, सो जीव संसारविषे कर्मोंके वशतें भ्रमता हुआ आपकों कर्त्ता देखता है, अरु सर्वात्मा परम ब्रह्म कर्त्ता हुआ भी कछु नहीं करता; जैसे सूर्यकरि सब चेष्टा होती है, अरु सूर्य अकर्त्ता है, तैसे आत्माकी शक्तिकरि जगत चेष्टा करता है, जैसे चुंबक पथ्थरके निकट लोहा चेष्टा करता है, तैसे आत्माकी चेतनताकरि सब देहादिक चेष्टा करता है, अरु आत्मा सदा अकर्ता है, जैसे जलविषे तरंग फुरते हैं, तैसे आत्माविषे देहादिक फुरते हैं, जैसे स्वर्णविषे भूषण कल्पना होती है, तैसे आत्माविषे मोहकरि दुःख सुख कल्पते हैं, आत्माविषे कल्पना कछु नहीं, शुद्ध आत्माविषे मूढनें सुखदुःखकी कल्पना करी है, अरु जो ज्ञानवान हैं, तिनकों मन चित्त सुख दुःख सब आकाशरूप हैं, उह देहतें रहित केवल चिदाकाशभावकों प्राप्त होते हैं, जरामरणकों नहीं प्राप्त होते, सब कार्यकों करते दृष्ट आते हैं, अरु अंतरतें सदा अकर्तारूप हैं, जैसे जल अरु दर्पणविषे पर्वतका प्रतिबिंब पडता है, परंतु स्पर्श नहीं करता, तैसे ज्ञानवानकों क्रिया स्पर्श नहीं करती, शरीरके व्यवहारविषे भी उह सदा निर्मलभाव है ॥ हे राजन्! आत्मा सदा स्थितरूप है, परंतु भ्रम करिके चंचल भासता है, जैसे जलकी चंचलता करिके पर्वतका प्रतिबिंब भी चंचल होता है, तैसे देहादिककरि आत्मा चलता भासता है, सो आत्मा नित्य शुद्ध अपणे आपविषे स्थित है, जैसे घटके नाश सुए घटत्वनाश नहीं होता, तैसे देहके नाश हुए आत्माका नाश नहीं होता, जैसे शुद्ध मणिविषे नानाप्रकारके प्रतिबिंब होते हैं, तिनकरि रंजित नहीं होती, तैसे आत्माविषे मन इंद्रियां देह दृष्ट आवते हैं, सो स्पर्श नहीं करते, जैसे मिष्ट पदार्थविषे

मिठाई एकही व्यापी है, तैसे सब पदार्थविषे एक आत्मसत्ता व्यापी है ॥ हे राजन्! आत्मा सदा अचलरूप है, परंतु अज्ञान करिके चलरूप भासता है, जैसे वालक दौडतेकों सूर्य दौडता भासता है, तैसे आत्मा देहके संगतें अज्ञानकरि विकारवान भासता है, जैसे प्रतिविंवका विकार आदर्शकों नहीं स्पर्श करता, तैसे देहका विकार आत्माकों स्पर्श नहीं करता, जैसे अग्निविषे स्वर्ण डारियें, तव मैल दग्ध हो जाता है, स्वर्णका नाश नहीं होता, तैसे देहके नाश हुए आत्माका नाश नहीं होता, सो आत्मा नित्य शुद्ध अवाक् अचिंत्यरूप है ॥ हे राजन्! चितवणेविषे नहीं आता, परंतु चेतनवृत्तिकरि देखिता है, जैसे राहु अदृष्ट है, परंतु चंद्रमाके संयोगकरि दृष्ट आता है, तैसे आत्मा अदृष्ट है, परंतु चेतनवृत्तिकरि जाणीता है, जैसे शुद्ध दर्पणविषे प्रतिविंव होता है, तैसे बुद्धि निर्मलविषे आत्मा साक्षात् भासता है, सो संकल्पतें रहित अपणे आपविषे स्थित है, जव बुद्धि निर्मल होती है, तव अपणे आपविषे तिसकों पावती है ॥ हे राजन्! शास्त्रोंकरि परमेश्वर नहीं पाइता, अरु गुरुकरि भी नहीं पाइता, जवलग अपनी बुद्धि निर्मल न होवै, जव अपनी बुद्धि सतपदविषे निर्मल होवै, तव अपणे आपकरि देखता है, सो बुद्धि कैसे निर्मल होती है, जब संसारकी सत्यता हृदयतें दूर होवै, अरु आत्माका अभ्यास होवै, तव बुद्धि निर्मल होती है ॥ हे राजन्! सर्व भाव अभावरूप जो देहादिक पदार्थ हैं, सो असत हैं, केवल भ्रममात्र हैं, तिनकी आस्थाका त्याग करु, जैसे कोउ मार्गमें चलता है, अरु मार्गविषे अनेक मिलते हैं, परंतु तिनविषे रागदोष कछु नहीं होता, तैसे देहइंद्रियांसाथ स्नेहतें रहित आत्मतत्त्व सदा अपणे आपविषे स्थित है तिसविषे देहादिक इंद्रजालकी नांई मिथ्या हैं, तिनकी भावना दूरतें त्यागिकरि नित्य आत्मा शीतल चित्तविषे स्थित होहु ॥ हे राजन्! अपणा मित्र आपही है, अरु शत्रु भी अपणा आपही है, काहेतें जो आत्माविषे अवरकी ठौर नहीं,आत्माविषे आत्माका भाव है, अवर द्वैत कछु नहीं,इस कारणतें अपणा आपही शत्रु

है, आपही अपणा मित्र है, जो दृश्य पदार्थकी उरतें अनात्मधर्म विषयसों खैंचिकरि चित्तकों अपणे आप विषे स्थित करता है, सो अपणा आपही मित्र है, अरु जो अनात्म धर्मविषे पदार्थकी उर चित्तकों लगाता है, सो अपणा आपही शत्रु है, अरु वास्तवतें जेता कछु दृश्यजाल है सो भी आत्मारूप है, आत्मातें भिन्न कछु वस्तु नहीं, जैसे समुद्र जलतें इतर कछु वस्तु नहीं, जलही जल है, तैसे आत्मातें इतर जगत कछु वस्तु नहीं,सबविषे अनुस्यूत एक आत्मसत्ताही स्थित है,जैसे अनेक घटके जलविषे एकही सूर्यका प्रकाश प्रतिबिंब होता है, तैसे अनेक देहोंविषे एकही आत्मा व्यापी रहा है, सो न अस्त होता है, न उदय होता है, सदा एकरस अविनाशी पुरुष ज्योंका त्यों स्थित है, तिसविषे अहंभावना करिके संसार भासता है, जैसे सीपिविषे रूपेकी बुद्धि होती है, तैसे आत्माविषे अहंबुद्धि संसारका कारण है, इस बुद्धिकरि सर्व दुःखका भागी होता है, जैसे वर्षाकालकरि सब नदियां समुद्रविषे आय प्रवेश करतियां हैं, तैसे अनात्म अभिमान करिके सब आपदा आनि प्राप्त होती हैं, वास्तवतें चिन्मात्र अरु जीवविषे रंचक भी भेद नहीं, एकही रूप है, ऐसी जो बुद्धि है, सो बंधनतें मुक्तिका कारण है, आत्मा सर्वविषे अनुस्यूत व्याप्या है, जैसे सूर्यका प्रकाश सर्व ठौरविषे होता है, परंतु जहां शुद्ध जल है, तहां भासता है, तैसे आत्मा सब ठौर पूर्ण है, परंतु शुद्ध बुद्धिविषे भासता है, जैसे तरंग बुदबुदेविषे जलही व्यापी रहा है, तैसे आत्मा अविनाशी दृश्य कलनातें रहित सर्वत्र व्याप्या है, जैसे स्वर्णविषे भूषण नहीं, तैसे आत्माविषे जगतका अभाव है ॥ हे राजन् ! यह संसार आत्माविषे नहीं, केवल आत्माही है, जो एक वस्तु पात्रकी नांई होती है, तिसविषे दूसरी वस्तु होती है, आत्मा तौ अद्वैत है, दूसरी वस्तु संसार कहां होवै, अरु स्वर्णविषे भूषण जैसे चित्तकरि कल्पित हैं, वास्तव कछु नहीं, तैसे आत्माविषे संसार अज्ञानकरि कल्पित है, वास्तव कछु नहीं, केवल चिदाकाश है, जैसे नदियां अरु समुद्र नाममात्र हैं, सो जलही है, तैसे केवल चिदाकाशविषे विश्व नाममात्र है, अरु जेते आकार भासते हैं, ति

नका काल भक्षण करता है, जैसे नदियांकों समुद्र भक्षण करिके अघाता नहीं, तैसे पदार्थ समूहकों काल भक्षण करता अघाता नहीं ॥ हे राजन्! ऐसे पदार्थविषे अभिलाषा करणी क्या है, केई कोटि सृष्टि तपती होतियां हैं, तिनकों काल भक्षण अबलग करता है, कोउ पदार्थ कालतें मुक्त नहीं होता, जैसे समुद्रविषे तरंग बुदबुदे केई उपजते हैं, अरु नष्ट हो जाते हैं, तातें तूं कालतें अतीत पदकी भावना करु, जो कालकों भी भक्षण करे, कैसे भावना करियें, अरु कैसे भक्षण करियें, सो श्रवण करु, जैसे मंदराचलने अगस्त्य मुनिके आनेकी भावना करी है, तैसे तूं अपणे स्वरूपकी भावना करु, तब कालकों भक्षण करैगा, जैसे अगस्त्य मुनीने समुद्रका भक्षण किया था, तैसे आत्मारूपी अगस्त्य कालरूपी समुद्रकों भक्षण करैगा ॥ हे राजन्! जन्ममरणादिक जो विकार हैं, सो भ्रम करिके हैं, आत्माके प्रमादकरि भासते हैं, जब आत्माकों निश्चयकरि जाणैगा, तब विकार कोउ न भासैगा, काहेतें जो अज्ञानकरि रचे हैं, आकाशविषे कोउ नहीं, जैसे जेवरीविषे भ्रमसंयुक्त सर्प भासता है, सो तबलग है, जबलग जेवरीकों नहीं जाण्या, जब जेवरीकों जाणी तब सर्पभ्रम निवृत्त हो जाता है, तैसे जन्म मरण आदिक विकार आत्माविषे तबलग भासता है, जबलग आत्माकों नहीं जाण्या, जब आत्माकों जाणैगा, तब सर्व विकार नष्ट हो जावैंगे ॥ हे राजन्! ऐसा आत्मा विकारतें रहित तेरा स्वरूप है, तिसकी भावना करु, जो तेरे दुःख नष्ट हो जावैं, अरु आत्मपदकों कहूं खोजणे नहीं जाणा, अरु किसी वस्तुकों जायकरि ग्रहण नहीं करणा, जो यह आत्मा है, अरु किसी कालकी अपेक्षा भी नहीं, जो इस कालकरि पावैगा, आत्मा तेरा अपणा स्वरूप है, अरु सर्वदा अनुभवरूप है, तुझतें इतर कछु वस्तु नहीं, तूं आपकों ज्यौंका क्यौं जाण, आत्माके न जानणेकरि आपकों दुःखी जानता है, जो मैं मरौं, दरिद्री हौं, मैं दास हौं, इत्यादिक दुःख तबलग होते हैं, जबलग आत्माकों नहीं जाण्या, जब आत्माकों जाणैगा, तब आनंदरूप हो जावैगा, जैसे किसी स्त्रीके गोदविषे

पुत्र होवै, अरु स्वप्नविषे देखत भई जो बालक मेरे पास नहीं, तब बडे दुःखकों प्राप्त भई, अरु रुदन करणे लगी, जब स्वप्नतें जागै, तब देखा जो बालक मेरे गोदविषे है, अरु एता दुःख मैं भ्रम करिके पाया है, बडे आनंदकों प्राप्त भई, अरु दुःख शोक नष्ट होगए ॥ हे राजन्! तिसी प्रकार आत्मा तेरा अपणा आप है, अरु सदा अनुभवरूप है, तिसके प्रमादकरि तूं आपकों दुःखी जाणता है, जब अज्ञानरूपी निद्रातें तूं जागैगा, तब आपकों जाणैगा, अरु दुःख शोक तेरे नष्ट हो जावैंगे, सो अज्ञानरूपी निद्रा क्या है, श्रवण करु, देह इंद्रियादिक जो दृश्य हैं, तिनसाथ मिलिकरि आपकों जानणा जो मैं हौं, यह अज्ञान निद्रा है, इसतें रहित होकरि देख जो आनंदकों प्राप्त होवै, अरु जेते यह पदार्थ भासते हैं, सो मिथ्या हैं, जैसे बालक मृत्तिकाविषे राजा अरु सैना अरु हस्ती घोडा कल्पता है, सो न कोउ राजा है, न सैना है, न कोउ हस्ती घोडा है, एक मृत्तिकाही है, तैसे चित्तरूपी बालकनें आत्मरूपी मृत्तिकाविषे राजा अरु सैना आदिक संपूर्ण विश्व कल्पी है, सो मिथ्या है ॥ हे राजन्! एक उपाय तेरेकों कहता हौं सो करु, जो दुःख तेरे नष्ट हो जावैं, एक वस्तुका त्याग करु, सो कवन है, अहं अभिलाषसहित जो फुरना है, तिसका त्यागकरि जहां इच्छा है, तहां विचरु, तेरेकों दुःखका स्पर्श न होवैगा, संकल्पही उपाधि है, अवर उपाधि कोउ नहीं, जैसे मणि तृणकरि आच्छादी होती है, जब तृण दूर करियें, तब मणि प्रगट हो आती है, तैसे आत्मरूपी मणि वासनारूपी तृणकरि आच्छादी है, जब वासनारूपी तृण दूर करियें, तब आत्मरूपी मणि प्रगट हो आवै ॥ हे राजन्! जागृत स्वप्न सुषुप्तितें रहित जो आत्मपद है, जब तिसकों प्राप्त होवैगा, तब जाणैगा जो मैं मुक्त हौं, सो तेरा स्वरूप है, तिस पदविषे स्थित होहु, जो केवल आत्मरूप है, अरु अजन्मा है, नित्य है, अरु चेतनमात्र है, सर्वका अपणा आप है, तिसके प्रमादकरि दुःख होता है, जैसे बालक मृत्तिकाके खिलोने बनाते हैं, हस्ती घोडा नाम कल्पते हैं, अ

भिमान करते हैं,जो मेरे हैं, अरु तिनके नाश होणेकरि दुःखी होते हैं, तैसे अज्ञानी जो है, बालकरूप सो स्वरूप के प्रमादकरि अभिमान करता है,हय मेरे हैं,मैं इनका हौं,तिनके नाशहोणेकरि दुःखी होता है,ऐसे नहीं जाणता,जो सतका नाश नहीं होता,असतके नाश होणेकरि सतका नाश मानता है,जैसे घटके नाश होणेकरि घटाकाश नाश मानियें, तैसे मूर्खता करिके दुःख पावता है ॥ हे राजन्! तूं आपकों आत्मा जाण, अरु आत्मादिक संज्ञा भी शास्त्रोंने कल्पी हैं, जतावणेके निमित्त, नहीं तौ आत्मा निर्वाच्य पद है, जिसविषे वाणीकी गम नहीं,अरु इनहीकरि जाणता है,काहेतें जो मनवाणीविषे भी आत्मसत्ता है, तिसीकरि आत्मादिक संज्ञा सिद्ध होती हैं, जैसे जेते कछु स्वप्नके पदार्थ हैं, तिनविषे अनुभवसत्ता है, तिसीकरि पदार्थ सिद्ध होते हैं, तैसे जेति कछु अर्थसंज्ञा हैं,सो सब आत्माकरि सिद्ध होती है, ऐसा जो तेरा स्वरूप है, तिसविषे स्थित होहु, जो तेरे जरा मृतादिक दुःख नष्ट हो जावैं ॥ हे राजन्! जब निस्पंद होकरि देखैगा, तब स्पंदविषे भी उही भासैगा, स्पंद निस्पंद तुल्य होकरि भासैंगे, जो समाधिविषे होवैगा, अथवा ऐसेही चेष्टा करैगा, तौ भी तुल्य होवैगी, न समाधिविषे शांति भासैगी, न चेष्टाविषे दुःख भासैगा, दोनोंविषे एकरस रहैगा, विषमता कछु न भासैगी ॥ हे राजन्! जो कछु प्रकृत आचार आय प्राप्त होवे, देणां अथवा लेणां, यज्ञ दान आदिक क्रिया है, तिसकों मर्यादासहित अरु शास्त्रकी विधि संयुक्त करु, अरु निश्चय आत्मा स्वरूपविषे होवै, जैसे नट स्वांगकों धारि संपूर्ण चेष्टा करता है, अरु निश्चय तिसविषे नटत्वहीका राखता है, तैसे तुम सर्व चेष्टा करौ, तिसके अभिमान अरु संकल्पतें रहित होहु, ग्रहण अथवा त्याग जो कछु स्वाभाविक आए प्राप्त होवैं, तिसविषे ज्योंके त्यों रहौ, जब निर्विकल्प होकरि अपणे स्वरूपकों देखैगा, तब उत्थान कालविषे भी तेरे तांई आत्माही भासैगा, जैसे जलके जानणेतें तरंग फैन बुदबुदा सर्व जलही भासते हैं, तैसे जब तूं आत्माकों जाणैगा, तब तुझकों संसार भी आत्मरूप भासैगा, अरु जो आत्माकों नहीं जाणता

तिसकों जगतही दृष्ट आता है, तिसकरि दुःख पावता है, तातें तूं अंतर्मुख होहु, संकल्पकों त्यागिकरि परम निर्वाण अच्युत पदविषे स्थित होहु ॥ ॥ इति श्रीयोगवासिष्ठे निर्वाणप्रकरणे राजाइक्ष्वाकुप्रत्यक्षोपदेशो नाम षण्णवतितमः सर्गः॥ ९६ ॥ ॥ मनुरुवाच ॥ हे राजन्! यह जो संकल्प पुरुष है, सो संकल्प करिके आप बंधाता है, अरु आपहि मुक्त होता है, जब संकल्पकरि दृश्यकी भावना करता है, तब जन्ममृत्युकों पावता है, अरु दुःखी होता है, आपही संकल्प करता है, आपही बंधनकों प्राप्त होता है, जैसे घुराण कीट आपही गुंफा बनाती है, अरु आपही तिसकों मुंदीकरि फसती है, तैसे अपणे संकल्पकरि आपही दुःख पावता है, अरु जब संकल्पकों अंतर्मुख करता है, तब मुक्त होता है, अरु मुक्तिही मानता है, तातें हे राजन्! संकल्पकों त्यागिकरि आत्मा जो सर्वका अपणा आप है, तिसकी भावना करु, जो तूं सुखी होवे ॥ हे राजा! आत्माके प्रमादकरि देह आस्थाकी भावना हुई है, तिसकरि दुःख पावता है, तातें आत्मस्वरूपकी भावना करु, जो तूं आत्मा है, चिद्रूप है, महाआश्चर्यमाया है, जिसनें संसारकों मोही लिया है, आत्मा सर्वदा अनुभवरूप है, अरु अंग अंग व्यापी है, तिसकों नहीं जाणते यही आश्चर्य है ॥ हे राजन्! आत्मा सदा अनुभवरूप है, तिसविषे स्थित होहु, अरु संसार आत्माके प्रमादकरि फुरणेतें हुआ है, सो सत भी नहीं, अरु असत भी नहीं, जो आत्मातें भिन्न करि देखियें, तो मिथ्या है, तातें सत नहीं, अरु आत्माविना दूसरा है नहीं, सर्वात्मा है, तातें असत भी नहीं, तूं आत्माकी भावना करु, जो कछु पदार्थ भासते हैं, सो आत्मातें भिन्न न जाण, सर्वात्माही है, जो आत्माविना अवर भावना है, तिसका त्याग करु ॥ हे राजन्! जैसे जलविषे तरंग बुदबुदे होते हैं, सो जलतें इतर नहीं, जलही ऐसे भासता है, तैसे जगत जो दृष्ट आता है, सो आत्मा है, ऐसे भासता है, जैसे सूर्य अरु किरणांविषे भेद कछु नहीं, तैसे आत्मा अरु जगतविषे भेद नहीं, आत्माही जगतरूप है, अरु भिन्न भिन्न जो आकार भासतें हैं, सो चित्तशक्तिकरिके हैं, इतर नहीं,

आत्मसत्ता है, जैसे लोहा तप्त हुआ वस्त्रादिककों जलावता है, सो लोहेकी अपणी सत्ता नहीं, अग्निकी है, तैसे चेतनकी सत्ता जगतरूप होकरि स्थित भई है, अरु आत्मा सदा केवलरूप है, जिसविषे प्रकाश अरु तम दोनों नहीं, न सत है, न असत है, न कोउ देश है, न काल है, न कोउ पदार्थ है, केवल चेतन मात्र गुणातीत है, न कोउ गुण है, न माया है, केवल शांतरूप आत्मा है ॥ हे राजन्! न शास्त्रोंकरि पाइता, न गुरोंके वचनकरि पाइता है, न तपकरि पाइता है, केवल अपणे आपकरि जाण्या जाता है, शास्त्रादिक लखाय देते हैं, परंतु इदंकरि नहीं जणावते, जो द्रष्टा पुरुष अपणे आपकरि जाणीता है, जैसे सूर्यकी ज्योती नेत्रविषे है, सोई सूर्यकों देखती है, तैसे आत्माही आत्माकों देखता है, अंतर्मुख होकरि संकल्पतें रहित हुआ अपणे आपकों देखता है, जब संकल्प वहिर्मुख होता है, तब वही दृढ होकरि स्थित होता है, बहुरि तिसकी भावना होती है, जब संकल्परूप जगत दृढताकरि स्थित होता है, तब दुःखदायि होता है ॥ हे राजन्! अवर दुःखदायि तिसका कोउ नहीं, अपणेही संकल्पकरिके असम्यक्दर्शी दुःखी होता है, अरु सम्यक्दर्शीकों जगत दृष्ट भी आता है, तौभी दुःखदायि नहीं होता, जैसे जेवरीविषे सर्पकी भावना होती है, तब भयकों प्राप्त होता है, जब जेवरीके जानणेतें सर्पभावना दूर भई तब भय भी जाता रहता है, तैसे जिस पुरुषकों संसारकी भावना होती है, सो दुःखदायी है, तातें आत्माकी भावना करु जो तेरे सर्व दुःख नष्ट हो जावैं ॥ हे राजन्! तूं सर्वदा आनंदरूप है, अरु अद्वैत है, तेरेविषे कल्पना कोउ नहीं, तूं आत्मस्वरूप है, अरु आत्मा षट् विकारतें रहित है, विकार मिथ्या देहके हैं, आत्मा शुद्ध है, आत्माके प्रमादकरिके विकार भासते हैं, जब तूं आत्माकों जाणैगा, तब विकार कोउ न दृष्ट आवैगा, काहेतें जो आत्मा अद्वैत है ॥ ॥ राजोवाच ॥ हे भगवन्! तुम कहते हौ आत्मा अद्वैत है, जो इस प्रकार है तौ पर्वत आदिक विश्व कैसे भान होता है, पत्थररूप महाबडे आकार बनिके कहांतें उ

पजे हैं, इसका रूप क्या है, सो कृपा करिके कहौ ॥ मुनिरुवाच ॥ हे राजन्! आत्माविषे संसार कोउ नहीं, सदा शांतरूप है, अरु निराकार है, तिसविषे स्पंद निस्पंद दोनों शक्ति हैं, जब निस्पंदशक्ति होती है, तब केवल अद्वैत भासता है, जब स्पंदशक्ति फुरती है, तब जगतके नानाप्रकारके आकार भासते हैं, वास्तवतें आत्माही है, इतर कछु नहीं, जैसे समुद्रविषे तरंग कछु अवर नहीं, उहीरूप हैं, पवनके संयोगतें फुरते हैं, तौ भिन्न भिन्न दृष्ट आवते हैं, तैसे फुरणशक्तिकरि अहंकार भिन्न भिन्न भासते हैं, वास्तवतें आत्मस्वरूप है, इतर कछु नहीं, जैसे वटका बीज होता है, अरु तिसविषे पत्र टास फूल फल अनेक दृष्ट आते हैं, तैसे आत्मसत्ताके नानाप्रकारके आकार धारे यद्यपि दृष्ट आते हैं, तौ भी बन्या कछु नहीं, केवल आत्मा अद्वैत ज्योंका त्यौं स्थित है, अरु सूक्ष्मतें भी अतिसूक्ष्म है, अरु पर्वत आदिक जो विश्व भासता है, सो आत्माका चमत्कार है, जैसे स्वप्नविषे पर्वत वृक्षादिक नानाप्रकारके आकार भान होते हैं, तौ भी अनुभवरूप हैं, तिसतें इतर कछु नहीं, तैसे जाग्रत विश्व भी आत्मा अनुभवरूप है, आत्मातें इतर कछु नहीं ॥ इक्ष्वाकुरुवाच ॥ हे भगवन्! जो आत्मा सूक्ष्म है, तौ पर्वतादिक स्थूल असतरूप सत होकरि कैसे भासता है, सो कृपा करिके कहौ ॥ ॥ मुनिरुवाच ॥ हे राजन्! आत्मा अनंतशक्ति है, सो शक्ति आत्मातें भिन्न नहीं, उहीरूप है, जैसे सूर्यकी किरणां सूर्यतें भिन्न नहीं, तैसे आत्माकी शक्ति आत्मातें भिन्न नहीं, जैसे पवनविषे दो शक्ति हैं, स्पंद अरु निस्पंद सो उहीरूप हैं, स्पंदशक्तिकरि प्रगट भासता है, अरु निस्पंदकरि प्रगट नहीं भासता, तैसे आत्माविषे स्पंद निस्पंद दो शक्ति हैं, जब स्पंदशक्ति फुरती है तब अहंभाव भगट होता है, जब अहंभाव हुआ, तब चित्त उदय होता है, अहंही चित्त है, जब चित्त हुआ, तब आकाशकी भावनातें आकाश बणी जाता है, जब स्पर्शकी भावना हुई, तब पवन उत्पन्न होता है, जब रूपकी भावना करी, तब अग्नि बणी गई, जब रसकी भावना हुई तब जल उत्पन्न हुआ, इसी प्रकार चि

त्तकी कल्पनाकरि तत्त्व उपजे हैं, जब चारौं तत्त्वका समष्टि भया, तब एक अंड हुआ, जब दृढ संकल्प किया, तब स्वायंभु मनु हुआ, जब अंड फुले तब तीन लोक हुए, स्वर्ग मध्य अरु पाताल, सो तीनों लोक तीनों गुण राजस सात्विक तामस हुए, बहुरि पर्वत आदिक दृश्य पदार्थ सर्व हुए ॥ हे राजन्! केवल संकल्पमात्रही सब हुए हैं, जब स्पंदशक्ति फुरती है, तब इस प्रकार आत्माविषे भासते हैं, परंतु वण्या कछु नहीं, जैसे समुद्रविषे फैन बुदबुदे फुरते हैं, सो जलरूप हैं, जलतें इतर कछु नहीं, तैसे आत्मातें इतर कछु वस्तु नहीं, अरु आदिमनु जो स्वयंभु है, तिस संकल्पकरि आगे मन कल्पे हैं, त्रिगुणमय सृष्टि इस प्रकार उत्पन्न होती है, सो केवल संकल्पमात्र है, जबलग चित्त है, तबलग विश्व है, जब चित्त फुरणेतें रहित हुआ, तब निस्पंदशक्ति होती है, जब निस्पंद हुई, तब बहुरि जगत नहीं देखाय देता ॥ हे राजन्! इह विश्व मनके फुरणेविषे है, अरु सत्यकी नांई स्थित हुई है, सो श्रवण करु, सत जो है, सर्व देश सर्व काल सर्व वस्तु पाइता है, सो नहीं भासता, अरु जो असत है, सो सत्यकी नांई भासता है, सत कैसे असतकी नांई हुआ है, अरु असत कैसे सतकी नांई हुआ है सो सुणु, सत जो है, सर्व देश, सर्व काल सर्व वस्तु पाइता है, सो नहीं भासता अरु असत जो है, परिच्छिन्नरूप देश काल वस्तु परिच्छेदसंयुक्त है, सो सतकी नांई हुआ है, जहां देखियें तहां दृश्यही गुणमय संसारभान होता है, महाआश्चर्यरूप माया है, जिसनें सत्यकों असत्यकी नांई किया है, अरु असतकों सतकी नांई स्थित किया है, सो चित्तके संबंधकरि संसार भासता है, आत्माविषे संसार कोउ नहीं, जब चित्तकों स्थित करि देखैगा, तब तेरे तांई संसार न भासैगा, जैसे गंभीर जल होता है, तौ चलता नहीं भासता जो कहां जाता है, तैसे गंभीर जो आत्मा है, तिसविषे संसार नहीं जाणता, जो कहां फुरता है, अरु संसार भी आत्मातें भिन्न कछु वस्तु नहीं, आत्मास्वरूपही है, जैसे अग्निके चिणगारे अग्नितें भिन्न नहीं, अरु जलके तरंग जलतें भिन्न नहीं, अरु मणिका प्रकाश मणितें भिन्न नहीं, तैसे आत्मातें संसार भिन्न नहीं,

केवल आत्मस्वरूप है, ऐसे आत्माकों जाणिकरि शांतिवान होहु जो तेरे दुःख नष्ट हो जावैं, केवल शांत पद आत्मा है, सो तेरा अपणा आप है, अपणे स्वरूपकों भूलिके दुःखी हुआ है, जब आत्माकों जाणैगा तब संसार भी आत्मस्वरूप भासैगा, काहेतें जो आत्मस्वरूप है,आत्मातें इतर वस्तु कछु नहीं, ऐसा आत्मा तेरा स्वरूप है, तिसविषे स्थित होहु ॥ हे राजन्! यह सर्व जगत चिदाकाशरूप है, यही भावना दृढ करु, ऐसी भावना जिसकी दृढ है, अरु सब इच्छा शांत हो गई हैं, तिस पुरुषकों दुःख कोउ नहीं लगता, उसने निरिच्छारूपी कवच पहिऱ्या है ॥ हे राजन्! अहं अर्थतें रहित जो पुरुष है, सर्व जिसकों शून्य हो गया है, निरालंबका आसरा किया है, सो पुरुष मुक्तिरूप है ॥ ॥ इति श्रीयोगवासिष्ठे निर्वाणप्रकरणे मनुइक्ष्वाकुआख्याने सर्वब्रह्मप्रतिपादनं नाम सप्तनवतितमः सर्गः ॥ ९७ ॥ ॥ ॥ मनुरुवाच ॥ हे राजा! यह संसार आत्मातें भिन्न कछु वस्तु नहीं, जैसे जल अरु तरंग भिन्न नहीं, जैसे सूर्य अरु किरण भिन्न नहीं, जैसे अग्नि अरु चिणगारे भिन्न नहीं, तैसे आत्मा अरु संसार भिन्न नहीं, आत्मस्वरूपही है, जैसे इंद्रियां के विषय इंद्रियांविषे रहते हैं, तैसे आत्माविषे संसार है, जैसे पवनविषे स्पंद निस्पंदशक्ति हैं, सो पवनतें भिन्न नहीं, तैसे आत्मातें भिन्न नहीं, आत्मस्वरूप है ॥ हे राजन्! विषयकी सत्यताकों त्यागिकरि केवल आत्माकी भावना करु, जो तेरे संशय मिटि जावैं, तूं आत्मस्वरूप है, अरु निर्गुण है, तुझकों गुणोंका स्पर्श नहीं होता, तूं सर्वतें पर है, जैसे आकाशविषे धूड अरु धुवा अरु मेघ बादल विकार भासते हैं, आकाशकों लेप कछु नहीं करते, केवल आकाश अद्वैतरूप है, तैसे ज्ञानवान पुरुष जिसकों आत्मज्ञान भया है, तिसकों सुख दुःख राजस तामस सात्त्विक गुण लेप नहीं करते, तिनविषे दृष्टि भी आते हैं, लोक दृश्य करि तौ भी अपणेविषे नहीं देखते, जैसे समुद्रविषे अनेक तरंग जलरूप होते हैं, जैसे शुद्ध मणिविषे नील पीत आदिक प्रतिबिंब पडते हैं, सो देखणेमात्र हैं, मणिकों स्पर्श नहीं करते, तैसे जिस पुरुषके हृदयतें

वासना मल दूर भई है, तिसके शरीरकों संबंधकरिके राजस सात्विक तामस गुणोंके कार्य सुख दुःख देखणे मात्र होते हैं, परंतु स्पर्श नहीं करते, केवल सत्तासमान पदका निश्चय तिसविषे होता है, अवर रंग उसकों स्पर्श नहीं करता, जैसे आकाशकों धूडाका लेप नहीं होता, तैसे आत्माकों गुणोंका संबंध नहीं होता, जो पुरुष ऐसे जाणता है, तिसकों ज्ञानी कहते हैं, जब निस्पंद होता है, तब आत्मा होता है, जब स्पंद होता है, तब संसारी होता है, जब चित्त फुरता है तब अनेक सृष्टि भासतियां हैं, जब चित्त फुरनेतें रहित हुआ, तब संसारका अत्यंत अभाव होता है, प्रध्वंसाभाव भी नहीं भासता, जो पूर्व सृष्टि थी, अब लीन हो गई है, संसार भी केवल आत्मरूप हो जाता है, तातें हे राजा ! वासनाकों त्याग, चित्तकों स्थिर करु, यह वासनाही मल है, जब वासनाका त्याग हुआ, तब केवल आकाशकी नांई आपकों स्वच्छ जाणैगा, सो आत्मा वाणीका विषय नहीं, केवल आत्मत्वमात्र है, अरु अपणे आपविषे स्थित है, सर्वदा उदयरूप है, अरु विश्व भी आत्माका चमत्कार है, भिन्न वस्तु कछु नहीं, जैसे जलतें तरंग भिन्न नहीं, तैसे आत्मातें विश्व भिन्न नहीं, आत्मरूप है, द्रष्टा दर्शन दृश्य जो त्रिपुटी है, सो अज्ञान करिके भासती है, आत्मा सर्वदा एकरूप है, अरु त्रिपुटीतें रहित है, फुरणे करिके आत्माही त्रिपुटीरूप होकरि स्थित हुआ है, जैसे स्वप्नविषे एक अनुभवरूप होता है, अरु चेतनता करिके काल विषमतारूप हो भासता है, सो दूसरी वस्तु कोउ नहीं, तैसे आत्माही त्रिपुटीरूप भासता है, तातें चित्तकों स्थिर करि देख, आत्मातें भिन्न कछु वस्तु नहीं, अरु फुरणेविषे संसार है, जब फुरणा मिटि गया, तब संसार भी मिटि जाता है, सो फुरणा कैसे मिटता है, अरु स्वरूपकी प्राप्ति कैसे होती है सो श्रवण करु, सप्त भूमिका कहता हौं, जब प्रथम जिज्ञासु होता है, तब चाहता है, जो संतजनका संग करणा, अरु ब्रह्मविद्या शास्त्रकों देखणा अरु श्रवण करणा सो प्रथम भूमिका है, भूमिका कहिये चित्तके ठहरावणेकी ठौर, बहुरि जब संतोंके संग अरु शास्त्रोंक

रि बुद्धि बढी, तब संतों अरु शास्त्रोंके कहणेकों विचारत भया, जो मैं कवन हौं, अरु संसार क्या है, सो यह दूसरी भूमिका है; तिसके उपरांत विचाऱ्या जो मैं आत्मा हौं, अरु संसार मिथ्या है, मेरेविषे संसार कोउ नहीं, ऐसी भावना वारंवार करणी सो तीसरी भूमिका है; जब आत्मभावकी दृढतातें आत्माका साक्षात्कार हुआ, तब वासना संपूर्ण मिटि जाती है, जब स्वरूपतें उतरिकरि देखता है, तब संसार भासता है, परंतु स्वप्नकी नांई जाणता है, तातें वासना नहीं फुरती, ऐसे जो अवलोकन है, सो चतुर्थ भूमिका है; जब अवलोक हुआ, तब आनंद प्रगट होता है, ऐसे महाआनंदका प्रगट होणां सो पंचम भूमिका है; अरु जब आनंद प्रगट हुआ, अरु तिसविषे स्थित होणा, अपणे बलतें सुषुप्तवत् इसका नाम पंचम भूमिका है; अरु तुरीयापद छठी भूमिका है; चित्तके दृढताका नाम तुरीया है, जब तुरीयातीत पदकों प्राप्त होता है, तब परम निर्वाण होता है, तिसकों सप्तम भूमिका कहते हैं; तिस परम निर्वाण पदकी जीवन्मुक्तिकों गम नहीं, काहेतें जो तुरीयातीत पद है, तिसकों वाणीकरि कहि नहीं सकता, प्रथम तीन भूमिका जो कही हैं सो जागृत अवस्था है, तिसविषे श्रवण मनन निजध्यासन करता है, अरु संसारकी सत्ता भी दूर नहीं होती, इसीतें जागृत अवस्था कही है; अरु चतुर्थ भूमिका स्वप्नवत् है, संसारकी सत्ता नहीं होती, अरु पंचम भूमिका सुषुप्ति अवस्था है; काहेतें जो आनंदघनविषे स्थित होता है, अरु छठी भूमिका तुरीया पद है, जो जागृत स्वप्न सुषुप्ति तीनोंका साक्षी है, केवल ब्रह्मही प्रकाशता है, अरु निर्वाण पदविषे चित्तका लय होजाता है, सो तुरीया पदविषे जीवन्मुक्त विचरते हैं, अरु सप्तम भूमिका तुरीयातीत पद है, सो परमनिर्वाण पद है, तुरीयाविषे ब्रह्माकारवृत्ति रहती है, अरु ब्रह्माकारवृत्ति भी लीन हो जाती है, जहां वाणीकी गम नहीं, तहां चित्त नष्ट हो जाता है, केवल आत्मत्त्व मात्र है, चेतनका मात्र तहां अपणा अहंभाव होणा भी नहीं, शांत अरु परम निर्वाण ऐसा जो निर्वाण है,

सो तेरा स्वरूप है, सर्व विश्व उहीरूप है, इतर कछु नहीं, जैसे स्वर्णही भूषण है, अरु स्वर्णविषे भूषण कल्पता है, अरु भूषण भी परिणामकरि होता है, आत्मा सदा अच्युतरूप है, कदाचित् परिणामकों नहीं प्राप्त भया, केवल एकरस है, तिसविषे चित्त फुरणेतें विश्व कल्पी है, विकारसंयुक्त भासता है, तौ भी आत्मातें इतर कछु नहीं, केवल अपणे आपविषे स्थित है ॥ हे राजा! ऐसा आत्मा तेरा स्वरूप है, तिसविषे स्थित होकरि अपणे प्रकृत आचारविषे निरहंकार हुआ विचरु, अरु अहंकारके त्यागका अभिमान भी त्यागकरि केवल आत्मरूप हो रहु ॥ इति श्रीयोगवासिष्ठे निर्वाणप्रकरणे परमनिर्वाणवर्णनं नाम अष्टनवतितमः सर्गः ॥९८॥ ॥ ॥ मनुरुवाच ॥ हे राजन्! सर्व चिदाकाशसत्ता आदिमध्य अंततें रहित अनाभास ज्यौंका त्यौं स्थित है, अरु आगे भी उही स्थित रहैगा, तिसविषे न ऊर्ध्व है, न अध है, न तम है, न प्रकाश है, न तिसतें इतर है, सर्वकी सत्ता है, सो चिन्मात्र परम सार है, सो आपही संकल्पकरि चेतनता भया, तब जगत हुआ, अरु क्यौंकरि हुआ, क्या रूप है सो श्रवण कर ॥ हे राजन्! यह विश्व आत्मातें भिन्न कछु नहीं, आत्मस्वरूपही है, जैसे जलविषे तरंग है अरु मिरचविषे तीक्ष्णता है, खांडविषे मधुरता है, अग्निविषे उष्णता है, अरु बरफविषे शीतलता है, सूर्यविषेप्रकाश है, तैसे आत्माविषे विश्व है, सो आत्मस्वरूप है, जैसे आकाशविषे शून्यता है, जैसे वायुविषे स्पंद है, तैसे आत्माविषे विश्व है, सो आत्मस्वरूप है, इतर कछु नहीं ॥ हे राजन्! जो आत्मस्वरूप है तौ शोक अरु मोह किसका करता है, अभिमानतें रहित होकरि विचरु, जैसे नीतिका प्रवाह आनि प्राप्त होवै तिसविषे विचर, जैसे काष्ठकी पुतली यंत्रीके तागेकरि अनिच्छित चेष्टा करती है, तैसे नीतिरूपी तागेसों अभिमानतें रहित होकरि विचरु, जो न मैं कछु करता हौं, न करावता हौं, किसीविषे रागदोष न करणा, जैसे शिला ऊपरमूर्त्ति लिखी होती है, तिसीकों न किसका राग है, न दोष है, तैसे शिलाकी मूर्त्तिकी नांई विचरु, आत्मातें इतर कछु फुरै नहीं, ऐसा निरहंकार हो

हु, भावै व्यवहारी गृहस्थ होहु, भावै संन्यासी होहु, भावै देहधारी, भावै देहत्यागी होहु, भावै विक्षेपी होहु, भावै ध्यानी होहु, तेरे ताईं दुःख कोउ न होवैगा; ज्यौंका त्यौंही रहैगा, फुरणाही संसार है, फुरणेतें रहित असंसार है, जब फुरता है, तब संसारी होता है, जब फुरणा मिटि जावै, तब केवल आकाशरूप भासता है ॥ हे राजन्! यह जगत सब आत्मरूप है, आत्माही अपणे आपविषे स्थित है, जो सर्वात्माही है तौ शोक अरु मोह किसका करिये ॥ हे राजन्! आत्मा सर्वदा एकरस है, अरु विश्व आत्माका चमत्कार है, अरु नाना विकार जन्ममरणतें आदि जो भासते हैं, सो आत्माके अज्ञान करिके भासते हैं, जब आत्माका ज्ञान हुआ, तब आत्मरूपही एकरस विषमता कछु न भासैगी, जैसे जलके न जानणेकरि तरंग बुदबुदेका ज्ञान होता है, जब जलकों जाण्या, तब तरंग बुदबुदेकी विषमता कछु नहीं, सर्व जलरूप है, तैसे आत्माके अज्ञानकरि विकार भासते हैं, जब आत्माका ज्ञान हुआ, तब एकरस सर्वात्माही भासता है, अरु संवेदन करिके आकार भासते हैं, संवेदन कहिये अहंकारवासनाका संबंध, अहंकार चित्त दोनो पर्याय हैं ॥ हे राजन्! अहंकारसाथ इसका होणा दुःखदायी है, केवल चिन्मात्रविषे अहंभाव मिथ्या है, जबलग संवेदन दृश्यकी उर फुरती है, तबलग दृश्यका अंत नहीं आता, अरु नानाप्रकारके विकार भासते हैं, जब संवेदन आत्मा अधिष्ठानकी उर आवती है, तब आत्मा शुद्ध अपणा आप होकरि भासता है, अरु संवेदन भी आत्माका आभास कल्पित है, आभासके आश्रय विश्व कल्पी है, अरु आत्मा ज्यौंका त्यौं है, फुरणेविषे भी अफुरणेविषे भी परंतु फुरणेविषे विषमता भासती है, अफुरणेविषे ज्यौंका त्यौं भासता है, जैसे जेवरीके अज्ञानकरि सर्प भासता है, जब जेवरीका ज्ञान भया, तब सर्पकी विषमता जाती रहती है, ज्यौंकी त्यौं जेवरी भासती है, सो सर्प भासणेकालविषे भी जेवरी ज्यौंकी त्यौं थी, जेवरीविषे कछु हुआ नहीं, जानणे न जानणेविषे एक समान है, तैसे आत्मा भी फुरणेकालविषे जगत भासता है, फुरणेके निवृत्त हुए

आत्माही भासता है, आत्मा दोनों कालविषे एक समान है, जैसे सूर्यकी किरणां सूर्यतें भिन्न नहीं; अरु अग्नितें उष्णता भिन्न नहीं, तैसे आत्मातें विश्व भिन्न नहीं, आत्माही स्वरूप है ॥ हे राजन्! अहंकारकों त्यागिकरि सत्ता समान अपणे स्वरूपविषे स्थित होहु, तब तेरे सर्व दुःख निवृत्त होजावैं, एक कवच तेरे तांई कहता हौं, तिसकों धारिकरि विचरु, यद्यपि अनेक शस्त्रोंकी वर्षा होवै, तौ भी छेदकों न प्राप्त होवै, सो श्रवण करु, जो कछु देखता सुणता है, सो सर्व ब्रह्म जाण, वारंवार यही भावना करु, जो ब्रह्मतें इतर कछु न भासै, जब ऐसी भावना दृढ करही, तब शस्त्र कोउ छेदी न शकैगा, इह ब्रह्मभावनाही कवच है, जब इसकों तूं धारैगा, तब सुखी होवैगा ॥ ॥ वाल्मीक उवाच ॥ इस प्रकार वसिष्ठजीनें रामजीकों मनु अरु इक्ष्वाकुका संवाद सुणाया, तब सायंकाल हुआ, सूर्य अस्त भया, अरु संपूर्ण सभा स्नानकों उठी, वसिष्ठजी भी उठे, बहुरि सूर्यकी किरणांसाथ आय प्राप्त भये ॥ ॥ इति श्रीयोगवासिष्ठे निर्वाणप्रकरणे मोक्षरूपवर्णनं नाम नवनवतितमः सर्गः ॥ ९९ ॥ ॥ ॥ ॥ ॥ मनुरुवाच ॥ हे राजन्! जिसका कारणही मिथ्या है, तौ तिसका कार्य कैसे सत होवै, यह आभास जो संवेदन है सो विश्वका कारण है, जो आभास मिथ्या है, तौ विश्व कैसे सत्य होवै, जो विश्वही असत है, तौ भय किसका करता है, अरु शोक किसका करता है, हे राजन्! न कोउ जन्मता है, न कोउ मरता है, न सुख है, न दुःख है; ज्यौंका त्यौं आत्मा स्थित है, तिसविषे संवेदन विश्व कल्पी है, तातें संवेदनका त्याग करु, जो न मैं हौं, न यह है, जब तेरे तांई ऐसा निश्चय दृढ होवैगा, तब पाछे आत्माही शेष रहैगा, अरु अहंकार निवृत्त हो जावैगा, काहेतें जो आत्माके अज्ञानतें हुआ है, आत्मज्ञानतें नष्ट हो जाता है ॥ हे राजन्! जो वस्तु भ्रम करिके सिद्ध होवै, अरु सत दृष्ट आवै, तिसकों विचारियें, जो विचार कियेतें रहै, तौ सत्य जाणियें, अरु आत्मा जाणियें; अरु जो विचार कियेतें नष्ट हो जावै, तिसकों मिथ्या जाणियें, जैसे हीरा भी श्वेत

है, अरु बरफका मणका भी श्वेत होता है, एक समान दोनों भासते हैं, तिनकी परीक्षाके किये सूर्यके सन्मुख दोंनो राखियें जो धूपकरि गलि जावै सो झूठा जाणियें, अरु ज्यौंका त्यौं रहै, तिसकों सत जाणियें, तैसे विचाररूपी सूर्यके सन्मुख करियें तौ अहंकार बरफकी नांई नष्ट हो जाता है, काहेतें जो अहंकार अनात्म अभिमानविषे होता है, सो तुच्छ है, सर्वव्यापी नहीं, अरु इंद्रियांकी क्रिया अपणेविषे मानता है, जो परधर्म अपणेविषे कल्पता है, सो तुच्छ है, अरु आपकों भिन्न जाणता है, आपतें अवर पदार्थ भिन्न जाणता है, तातें विचार कियेतें बरफके हीरेकी नांई मिथ्या होता है, अविचार सिद्ध है, जब विचार किया, तब नष्ट हो जाता है, अरु आत्मा सर्वका साक्षी ज्यौंका त्यौं रहता है, अहंकारका भी अरु इंद्रियांका भी साक्षी है, अरु सर्वव्यापी है ॥ हे राजा! जो सत वस्तु है, तिसकी भावना करु, अरु सम्यक्दर्शी होहु, सम्यक्दर्शीकों दुःख कोउ नहीं, जैसे जेवरी मार्गविषे पडी है, तिसकों जेवरी जाणियें तौ दुःख कोउ नहीं, अरु जो सर्प जाणियें तौ भयमान होता है, तातें सम्यक्दर्शी होहु, असम्यक्दर्शी मत होहु ॥ हे राजन्! जो कछु दृश्य पदार्थ हैं, सो सुखदायी नहीं, दुःखदायी हैं, जबलग इनका संयोग है, तबलग सुख भासता है, जब वियोग हुआ, तब दुःखकों प्राप्त करते हैं, तातें तूं उदासीन होहु, किन दृश्य पदार्थकों सुखदायी न जाण, अरु दुःखदायी भी न जाण, सुख अरु दुःख दोनों मिथ्या हैं, इनविषे आस्था मत करु, अहंकारतें रहित जो तेरा स्वरूप है, तिसविषे स्थित होहु, जब अहंकार नष्ट होवैगा, तब आपकों जन्म मरण विकारोंतें रहित आत्मा जाणैगा, जो मैं निरहंकार हों, अरु ब्रह्म हों, चिन्मात्र हों, ऐसे अहंभावतें रहित होणा, अपणा होणा भी न रहैगा, केवल चिन्मात्र रहैगा, आनंदरूप होवैगा, अरु शांतरूप रागदोषके क्षोभतें रहित होवैगा, जब ऐसा आपकों जाण्या, तब शोक किसका करैगा ॥ हे राजा! इस दृश्यकों त्यागिकरि अपणे स्वरूपविषे स्थित होहु, अरु इस मेरे उपदेशकों विचार; जो मैं सत्य कहता हों,

अथवा असत्य कहता हौं, अरु विचारेतें जो संसार सत्य होवै तौ संसारकी भावना करु, अरु जो आत्मा सत्य होवै, तौ आत्माकी भावना करु॥ हे राजन्! तूं सम्यक्दर्शी होहु, सतकों सत जाण, अरु असतकों असत जाण, अरु जो असम्यक्दर्शी है, सो सतकों असत्य मानता है, अरु असत्यकों सत्य मानता है, असत वस्तु तौ स्थिर नहीं रहती, ऐसे न जानणेकरि अज्ञानी दुःख पावता है, जैसे कोउ पुरुष कुटीकों रचीकरि चितवणे लगा, जो आकाशकी मैं रक्षा करी है, जब कुटी नष्ट भई तब शोक करता है, जो आकाश नष्ट हो गया, काहेतें जो आकाशकों कुटीके आश्रय जानता था, तैसे अज्ञानी पुरुष आत्माकों देहके आश्रय जाणीकरि देहके नष्ट हुए आत्माका नाश मानता है, अरु दुःखी होता है, जैसे स्वर्णविषे भूषण कल्पित हैं, सो भूषणोंके नष्ट हुए मूर्ख स्वर्णकों नष्ट मानता है, तैसे अज्ञानी देहके नष्ट हुए, आपकों नष्ट जानता है, अरु जिसकों स्वर्णका ज्ञान है, सो भूषणोंके नाशतें भी स्वर्णकों देखता है, अरु भूषणसंज्ञा कल्पित जानता है, तैसे जो ज्ञानवान है सो आत्माकों अविनाशी जानता है, अरु देह इंद्रियांकों असत जानता है॥ हे राजन्! तूं देह इंद्रियांके अभिमानतें रहित होहु, जब अभिमानतें रहित इंद्रियांकी चेष्टा करैगा, तब शुभ अशुभ क्रिया बांधि न सकैगी, अरु जो अभिमानसहित करैगा, तब शुभ अशुभ फलकों भोगैगा ॥ हे राजन्! जो मूर्ख अज्ञानी है, सो ऐसी क्रियाका आरंभ करता है, जिसका कल्पपर्यंत नाश न होवै, अरु देह इंद्रियांके अभिमानका प्रतिबिंब आपविषे मानते हैं, मैं कर्त्ता हौं, मैं भोक्ता हौं, ऐसे माननेकरि अनेक जन्म पावते हैं, तिनके कर्मोंका नाश नहीं कब होता, अरु जो तत्त्ववेत्ता ज्ञानवान पुरुष है, सो आपकों देह इंद्रियां गुणतें रहित जानते हैं, तिनके कर्म संचित अरु क्रियमाण नष्ट हो जाते हैं, संचित कर्म वृक्षकी नांई हैं, अरु क्रियमाण फूलफलकी नांई हैं, जैसे रुईसों लपेटीकरि अग्निकों लगायेतें वृक्ष फूल फल सूके तृणवत् दग्ध होते हैं, तैसे ज्ञानरूपी अग्निकरि संचित अरु क्रियमाण

कर्म दग्ध हो जाते हैं, तातें हे राजा! जो कछु चेष्टा फुरणे वासनातें रहित होकरि करैगा, तिसविषे बंधन कोउ नहीं, जैसे बालकके अंग स्वाभाविक भली बुरी प्रकार हिलते हैं, परंतु उसके हृदयविषे अभिमान फुरता नहीं, तातें उसकों बंधन नहीं करता, तैसे तूं भी इच्छातें रहित होकरि चेष्टा करु; तब तेरे तांई बंधन कोउ न होवैगा, यद्यपि सब चेष्टा तेरेविषे भासैंगी तौ भी वासनातें रहित होवैगा, बहुरि अवर जन्म न पावैगा, जैसे भूना बीज देखणेमात्र होता है, अरु उगता नहीं, तैसे तेरेविषे सर्व क्रिया दृष्ट आवैंगी परंतु जन्मका कारण न होवैगा, पुण्य क्रियाका फल सुख न भोगैगा, अरु पाप क्रियाकरि दुःख न भोगैगा, तेरे तांई पापपुण्यका स्पर्श न होवैगा, जैसे जलविषे कमल स्थित होता है, अरु जल तिसकों स्पर्श नहीं करता, तैसे पापपुण्यका स्पर्श तेरे तांई न होवैगा तातें अभिलाषतें रहित होकरि जो कछु अपणा प्रकृत आचार है, सो करु॥ हे राजा! जैसे आकाशविषे जलसाथ पूर्ण मेघ भासते हैं, परंतु आकाशकों लेप नहीं करते, तैसे तुझकों कोउ क्रिया बंधन न करैगी, जैसे जो विषके खाणेवाला है, तिसकों विष नहीं मारि सकता, तैसे ज्ञानीकों क्रिया नहीं बांधि सकती, ज्ञानवान क्रिया करणेविषे भी आपकों अकर्त्ता जानता है, अरु अज्ञानी न करणेविषे भी अभिमानकरि कर्त्ता होता है, जो देह इंद्रियांके न करते आपकों कर्त्ता मानता है, अरु जो देह इंद्रियांकरि करता है, तिसके अभिमानतें रहित है, सो करणेविषे भी अकर्त्ता है, अरु जो पुरुष कर्मतें इंद्रियांका संयम करि बैठता है, अरु मनविषे विषयके भोगकी तृष्णा राखता है, अंतःकरण जिसका रागदोषकरि मूढ है, बडी क्रियाकों उठावता है, अरु दुःखी होता है, सो मिथ्याचारी है, जो पुरुष मनकरि इंद्रियांके रागदोषतें रहित है, अरु कर्म इंद्रियांकरि चेष्टा करता है, सो विशेष है, अपणे जाणेविषे कछु नहीं करता, मोक्षकों पावता है॥ हे राजा! अज्ञानरूप वासनातें रहित होकरि विचरु; ऐसे होकरि विचरैगा, तब आपकों ज्यौंका त्यौं आत्मा जाणैगा, अरु सदा उदयरूप सर्वका प्रकाशक

आपकों जाणैगा, जन्ममरण बंध मुक्त विकारतें रहित ज्यौंका त्यौं आत्मा भासैगा ॥ हे राजन्! तिस पदकों पायकरि शांतिवान होवैगा, अरु अवर सर्व कला अभ्यास विशेषविना नष्ट होती है, जैसे रसविना वृक्ष होता है, यद्यपि फेलाववाला होता है, तौ भी उगता नहीं, अरु ज्ञानकला अभ्यासविना नहीं उपजती है, उपजी हुई नाश नहीं होती, जैसे धान बोते हैं अरु दिन दिन प्रति बढणे लगते हैं, तैसे ज्ञानकला प्राप्त हुई दिन दिन प्रति बढती है ॥ हे राजन्! ज्ञान उपजे हुए ऐसे जाणता है, जो मैं न मरता हौं, न जन्मता हौं, निरहंकार निष्किंचनरूप हौं, सर्वका प्रकाशक हौं, अजर हौं, अमर हौं ॥ हे राजा! ऐसी ज्ञानकलाकों पायकरि मोहकों नहीं प्राप्त होता, जैसे दूधतें दही हुआ बहुरि दूध नहीं होता, तैसे ज्ञान प्राप्त हुए मोहकों नहीं प्राप्त होता, जैसे दूधकों मथीकरि घृत काढि लिया, बहुरि नहीं मिलता, तैसे जिसकों ज्ञानकला उदय हुए बहुरि मोहका स्पर्श नहीं होता ॥ हे राजन्! पुरुष प्रयत्न यही है, जो अपणे स्वरूपविषे स्थित होणा, अरु अवर उपायका त्याग करणा, जिस पुरुषकों आत्माकी भावना हुई है, सो संसारसमुद्रके पारकों प्राप्त भया है, अरु जिसकों संसारकी भावना है सो संसारी जरा मृत्यु दुःखकों प्राप्त होता है ॥ ॥ इति श्रीयोगवासिष्ठे निर्वा० परमार्थोपदेशो नाम शततमः सर्गः ॥ १०० ॥ ॥ मनुरुवाच ॥ हे राजन्! बडा आश्चर्य है, जो शुद्ध आत्मा चिन्मात्रविषे माया करिके नानाप्रकारके देह इंद्रियां दृश्य भासी आई हैं ॥ हे राजा! दृश्यका कारण अज्ञान है, जिस आत्माके अज्ञानकरि दृश्य भासती है, तिसीके ज्ञानकरि लीन होजाता है, तातें इस संवेदनकों त्यागिकरि आत्माकी भावना करु, यह मैं हौं, यह मेरे हैं, सो मिथ्याही फुरते हैं ॥ हे राजन्! प्रथम जो कारणरूपतें एक जीव उपजा है, तिस आदि जीवतें अनेक जीवगण होत भये हैं, जैसे अग्निके चिणगारे निकसते हैं, तैसे तिस जीवनें आगे अनेकरूप धारे हैं, कोउ गंधर्व, कोउ विद्याधर, कोउ मनुष्य, कोउ राक्षस इत्यादिक बहुरि जैसे जैसे संकल्प होते गये हैं, तैसे रूप होते गये, वास्तवतें क्या है, जे

से जलविषे तरंग स्वरूपके प्रमादकरि अनेक भावकों प्राप्त होते हैं, अपणे संकल्प आपहीकों बंधनरूप होते गये हैं,तातें संकल्प नानात्व कलना मिथ्या है॥ हे राजन्! इस भावनाकों त्यागिकरि आत्मपदकी शरणकों प्राप्त होहु,जो आत्मा अनंत है,कोउ विश्व भान अवर प्रकारकी होती है,जैसे समुद्र सम है,तिसविषे कोउ आवर्त उठते हैं, कोउ बुदबुदे उठते हैं, सो जलतें भिन्न नहीं, तैसे आत्माविषे अनेक प्रकारकी विश्व फुरती है,सो आत्मातें भिन्न कछु नहीं,आत्मस्वरूपही है,तातें आत्माकी भावना करु, कहूं ब्रह्म सत संकल्प होकरि फुरता है,तहां जानता है,मैं ब्रह्म हौं,अरु शुद्ध रूप हौं,सदा मुक्तरूप हौं, मैं इस संसारसमुद्रके पारकों प्राप्त भया हौं,अरु जहां चेतनताशक्ति है, तहां आपकों जीवता मानता है, अरु दुःखी भी जानता है, सो जीवका लक्षण श्रवण करु, अंतःकरणसाथ मिलिकरि भोगकी वासना करणी, अरु सदा विषयकी तृष्णा करणी,सो जीवात्मा कहियें,अरु जहां वासना क्षय हुई है,अरु शुद्ध आत्माविषे आत्मप्रत्यय है, तहां जीवसंज्ञा नष्ट होजाती है,केवल शुद्ध आत्मा प्रकाशता है॥हे राजन्! जब चेतन अंतःकरणसाथ मिलिकरि बहिर्मुख फुरता है,तब संसारी हुआ जरा मरण करिके दुःखी होता है,जहां चेतनशक्ति अंतर्मुख होती है,तब जन्ममरणकी भावनाकों त्यागिकरि स्वरूपकी भावना करता है, सर्व दुःखकी निवृत्ति होती है, जब इसकी भावना स्वरूपकी उर लगती है, तब दुःख कोउ नहीं रहता, जब स्वरूपका प्रमाद भया, तब दुःख पावता है, जब स्वरूपका ज्ञान हुआ,तब आनंदरूप मुक्त होता है॥हे राजन्! संसाररूपी कूपकी टिंड नहीं होणा, जब टिंड रसीसाथ बांधिता है, कबहूं ऊर्ध्वकों जाता है,कबहूं अधकों जाता है,जब रसी टूटि पडती है,तब न उर्ध्वकों जाता है,न अधकों जाता है, दुःख पावता है,सो कूप क्या है,अरु अध क्या है,ऊर्ध्व क्या है,सो श्रवण करु॥ हे राजन्! संसाररूपी कूप है,स्वर्गलोक ऊर्ध्व अरु पाताल नरक अध है,पुण्यकर्मकरि स्वर्गकों जाता है,पापकर्मकरि नरककों जाता है,सो आशारूपी रसडीसाथ बांध्या हुआ जन्ममरणरूपी चक्रविषे फिरता है, स्वर्गनरकके फेरणेका कारण आशा है, जब

आशा निवृत्त होती है,तब न कोउ नरक है, न स्वर्ग है, जबलग देहविषे अभिमान है, तबलग नीचतें नीच गति कों प्राप्त होता है, जैसे पत्थरकी शिला समुद्रविषे डारियें, तौ नीचेतें नीचे चली जाती है, तैसे नीच स्थानोंकों देखिकरि देह अभिमानी नीचेकों चला जाता है,अरु जब इंद्रियादिकका अभिमान त्याग किया,तब जैसे क्षीरसमुद्रतें निकसीकरि चंद्रमा ऊर्ध्वतें ऊर्ध्वकों चला जाता है, तैसे ऊर्ध्वकों जाता है ॥ हे राजा ! जब आत्माकी भावना करैगा, तब आत्माही होवैगा, तातें आशारूपी फासीकों तोडीकरि शांत पदकों प्राप्त होहु, आत्मा चिंतामणिकी नांई है, जैसी भावना करियें, तैसी सिद्धि होवे, जब तूं आत्मभावना करैगा, तब संपूर्ण विश्व अपणेविषे देखैगा, जैसे पर्वत शिला पत्थर सर्व अपणेविषे देखता है, तैसे तूं सर्व आत्माविषे जाणैगा ॥ हे राजा ! जेती कछु दृष्टि हैं, सो सर्व आत्माके आश्रय हैं, शास्त्र अरु शास्त्रदृष्टि सब आत्माके आश्रय हैं, राजा आत्माके आश्रय हैं, सो सर्व सत्य है, आत्मा चिंतामणि कल्पवृक्ष है, जैसी कोउ भावना करता है, तैसी सिद्धि होती है ॥ हे राजन् ! फुरणेविषे यह दृष्टि सर्व सत्य है, जब फुरणां नष्ट भया, तब न कोउ शास्त्र है, न कोउ दृष्टि है, केवल अद्वैत आत्मा है, तब निषेध किसका करियें, अरु अंगीकार किसका करियें, जो पुरुष अहंकारतें रहित हुआ है, सो सर्व शास्त्रदृष्टिऊपर विराजता है, सर्व आत्मा होता है, जैन उसीकों जिन कहते हैं, कालवाले उसीकों काल कहते हैं, सर्वका आश्रय आत्मा है, जो पुरुष देह अभिमानी है, सो मूर्ख है, स्वरूपके अज्ञानकरि अधऊर्ध्व लोककों गमन आगमन करता है, अरु पशु पक्षी स्थावर जंगम योनिकों पावता है, अरु आशारूपी फांसीसाथ बांध्या हुआ दुःखकों प्राप्त होता है, अरु जो पुरुष सम्यक्दर्शी है, शुद्ध चेष्टा जिसकी है, तिसकों विकार कोउ दृष्ट न आता है, आकाशकी नांई सदा निर्मल भासता है, अरु संपूर्ण विश्व तिसकों आत्मस्वरूप भासता है, अरु जेती कछु चेष्टा ब्रह्मा विष्णु इंद्रादिक करते हैं, तिसका कर्त्ता भी आपकों जानता है, तिसकों सर्व दुःखका अंत होता है, दुःखतें र

हित आत्मपदकों प्राप्त होता है, अरु सर्व सुखकी सीमा तिनकों प्राप्त होती है ॥ हे राजन्! जब ऐसे सुख कों तूं प्राप्त होवैगा, तब तृष्णा तेरे तांई कोउ न रहैगी, जैसे नदी तवलग चलती है, जबलग समुद्रकों नहीं प्राप्त भई, जब समुद्रकों प्राप्त भई, तब चलणेतें रहित होती है, तैसे जब तूं आत्मपदकों प्राप्त होवैगा, तब इच्छा तेरे तांई कोउ न रहैगी ॥ हे राजन्! तूं अहंकारका त्याग कर, अथवा ऐसे जाण जो सर्व मैंही हों, अरु जरा मरण आदिक दुःख तबलग हैं, जबलग आत्मबोध नहीं प्राप्त भया, जब आत्मबोध भया, तब दुःख कोउ नहीं रहता, अरु दोनोंही दुःख भारी हैं, जन्म अरु मृत्युसों मिटि जाते हैं ॥ इंद्रके वज्रसमान भी दुःख होवै, तौ भी ज्ञानवानकों स्पर्श नहीं करता ॥ हे राजन्! जैसे बूटा होता है, जब तिसकों फल पडता है, तब सूकीकरि गिरता है, तिसी प्रकार जब ज्ञानरूपी फल प्राप्त होता है, तब मन बुद्धि अहंकार बूटेकी नांई गिर पडते हैं, जबलग मनकी चपलता है, तबलग दुःख पावता है, जब मनकी चपलता निवृत्त भई तब क्षोभ कोउ नहीं रहता, शांतपदकों प्राप्त होता है, अरु शांति तब होती है, जब प्रकृतिका वियोग होता है, अरु प्रकृतिके संयोगतें संसारी होता है, अरु दुःख पावता है, तातें प्रकृति कहियें अहंकार तिसका त्याग करु, अहंकारतें रहित होकरि चेष्टा करु, जब तूं अहंकारतें रहित हुआ, तब तिस पदकों प्राप्त होवैगा, जो न जड है,न चेतन है, न शून्य है, न अशून्य है, न केवल है, न अकेवल है, न आत्मा कहिये, न अनात्मा कहिये,न एक कहिये,न दो कहिये,जेते कछु नाम हैं, सो प्रतियोगीसाथ मिले हुए हैं, प्रतियोगी हुआ सो द्वैत हुआ,अरु आत्मा अद्वैतमात्र है, जिसविषे वाणीकी गम नहीं,जो अवाच्य पद है, तिसकों कैसे कहियें,जेती कछु नाम संज्ञा हैं,सो उपदेशमात्र हैं,आत्मा अनिर्वाच्य पद है,तातें संकल्पका त्याग करु, अरु आत्माकी भावना करु, जब आत्मभावना करैगा, तब केवल आत्माही प्रकाशैगा, जैसे फूलका अंग सुगंधतें रहित कोउ नहीं, तैसे आत्मातें इतर कछु नहीं ॥ हे राजन्! जब अहंकारका त्याग करैगा, तब अपणे आपकरि शोभायमान हो

वैगा,आकाशकी नांई निर्मल आत्माविषे स्थित होवैगा,अहंकारकों त्यागिकरि तिस पदकों प्राप्त होवैगा, जहां शास्त्र अरु शास्त्रोंके अर्थ नहीं प्राप्त होते, अरु संपूर्ण इंद्रियांके रस तहां लीन हो जाते हैं, अरु सर्व दुःख तहां नष्ट हो जाते हैं, केवल मोक्षपदकों प्राप्त होवैगा ॥ हे राजा! मोक्ष किसी देशविषे नहीं, जो तहां जायकरि पावैगा; अरु मोक्ष किसी कालविषे नहीं, जो अमका काल आवैगा, तब मुक्त होवैगा, अरु मोक्ष कोउ पदार्थ नहीं, जो तिसकों ग्रहण करैगा, हे राजन्! प्रकृत जो है अहंकार तिसीतें मोक्ष होणा है, जब अहंकारका तूं त्याग करै तबही मोक्ष है, जब इस अनात्मअभिमानकों त्यागैगा, तब अपणे आपकरि शोभायमान होवैगा, जैसे धूम्रतें रहित अग्नि प्रकाशमान होती है, तैसे अहंकारतें रहित तूं प्रकाशैगा, जैसे बडे पर्वत उपर तलाव निर्मल अरु गंभीर शोभता है, तैसे तूं शोभैगा ॥ हे राजा! तूं अपणे स्वरूपविषे स्थित होहु ॥ इति श्रीयोगवासिष्ठे निर्वाणप्रकरणे समाधानवर्णनं नाम एकाधिकशततमः सर्गः ॥ १०१ ॥ ॥ ॥

॥ मनुरुवाच ॥ हे राजा! तूं आत्मारामी होहु, अरु शुद्ध होहु, रागदोषतें रहित नित्य अंतर्मुख होहु ॥ हे राजन्! जब तूं आत्मारामी हुआ तब तेरी व्याकुलता नष्ट हो जावैगी, अरु अंतर शीतल सोम चंद्रमा पूर्णवत् हो जावैगा, ऐसा होकरि अपणे प्रकृत आचारविषे विचरु अरु किसी फलकी वांछा न करु, जो पुरुष वांछातें रहित होकरि कर्म करता है, सो सदा अकर्त्ता है, अरु महाशोभा पावता है ॥ हे राजा! ऐसी अवस्थाविषे स्थित होकरि भोजन आवै, तिसका भक्षण करु, अरु जो अनिच्छित वस्त्र आवै तिसकों पहिरु, जहां निंद आवै तहां शयन करु, अरु रागदोषतें रहित होहु, जब तूं ऐसा होवैगा तब तूं शास्त्र अरु शास्त्रोंके अर्थतें उल्लंघित वरतैगा, जो ऐसा पुरुष है, सो परम रसकों पायकरि मतवाला होता है, तिसकों संसारकी इच्छा कछु नहीं रहती ॥ हे राजन्! ज्ञानवान काशीविषे देह त्यागै, अथवा चंडालके गृहविषे त्यागै, जहां तहां मुक्ति है, उह सदा आत्मस्वरूपविषे स्थित है, अरु वर्तमान कालविषे देहकों नहीं त्यागता, काहेतें

जो जिस कालविषे उसकों ज्ञान हुआ है, तिसी कालविषे देहका अभाव भया है, ज्ञानकरि देह दग्ध हो जाता है ॥ हे राजन्! ज्ञानवान सदा मुक्तरूप है, न किसीकी स्तुति करता है, न निंदा करता है, काहेतें जो चित्तकी कलना तिसकी मिटि गई है, यद्यपि रागदोष ज्ञानवानविषे दृष्ट भी आता है, अरु हसता रोता भी दृष्ट आता है, परंतु अंतःकरण अपणे जानणेकरि न राग है, न दोष है, न हसता है, न रोता है, ज्यौंका त्यौं है, जैसे आकाश शून्यरूप है, अरु मेघ बादल भी दृष्टि आते हैं, परंतु आकाशकों लेप नहीं करते, तैसे ज्ञानवानकों कोउ क्रिया बंधन नहीं करती, अज्ञानी जाणते हैं, जो ज्ञानवान क्रिया करता है ॥ हे राजन्! ज्ञानवान सर्वदा नमस्कार करणेकों योग्य है, अरु पूजणे योग्य है, जिस स्थान ज्ञानवान बैठता है, तिस स्थानकों भी नमस्कार है, जिससाथ बोलता है, तिसकों भी नमस्कार है, जिस ऊपर ज्ञानवान दृष्टि करता है, तिसकों भी नमस्कार है, सो सबका आश्रयभूत है ॥ हे राजन्! जैसा ज्ञानवानकी दृष्टितें आनंद पाइता है, सो तप करिके नहीं पाइता, दानकरि नहीं पाइता, अरु यज्ञ कर्मोंकरि भी नहीं पाइता, ऐसी दृष्टि किसीकरि नहीं पाइती, जैसी संतकी दृष्टि है, ऐसे आनंदकों पाइता है, जिस पदकों वाणीकी गम नहीं अरु जो पुरुष संतकी दृष्टिकों पायकरि कैसा होता है, जिसतें लोक दुःख नहीं पावते, अरु लोकतें उह दुःख नहीं पावता न किसीका भय करता है, न किसीका हर्ष करता है ॥ हे राजन्! सिद्धि पावणेका सुख अल्प है, क्या है, जो उडणेकी सिद्धि पाई, तौ पक्षी अनेक उडते फिरते हैं, इसीकरि आत्मज्ञान तौ नहीं पाइता, अरु आत्मज्ञानविना शांति नहीं होती, जब आत्मज्ञान प्राप्त हुआ, तब जरा मृत्यु आदिक दुःखतें मुक्त होता है, दुःख इसविषे कोउ नहीं रहता, जैसे सिंह पिंजरेतें छुटा बहुरि पिंजरेतें बंधनविषे नहीं पडता तैसे उह पुरुष अज्ञानरूपी पिंजरेविषे नहीं फसता ॥ हे राजन्! तातें तूं आत्माकी भावना करु, जो तेरे दुःख नष्ट हो जावें, अज्ञान करिके तेरे तांई दुःख भासते हैं, अज्ञानतें रहित तूं सदा आ

नंदरूप है, आत्मा अनुभवरूप है, तिस अनुभवरूप प्रत्यक् आत्माविषे स्थित होहु, जब तूं आत्माविषे स्थित होवैगा, तब चेष्टा तेरेविषे दृष्ट भी आवैगी, परंतु स्पर्श न करैगी, जैसे शुद्ध मणिके निकट जैसा रंग राखियें, श्वेत रक्त पीत श्याम तिसके प्रतिबिंबकों ग्रहण करती है, तौ भी रंग कोउ स्पर्श नहीं करता, उसविषे कल्पित जैसे भासते हैं, तैसे तूं प्रकृत आचारकों अंगीकार करता हुआ तेरे तांई पाप पुण्यका स्पर्श न होवैगा ॥ ॥ इति श्रीयोगवासिष्ठे निर्वाणप्रकरणे मनुइक्ष्वाकुसंवादसमाप्तिर्नाम द्व्यधिकशततमः सर्गः ॥ १०२ ॥ ॥ ॥ वसिष्ठ उवाच ॥ हे रामजी! इस प्रकार मनु उपदेश करिके तूष्णीं हो गया, तब राजानें भली प्रकार मनुका पूजन किया, बहुरि मनु भी आकाशकों उडी ब्रह्मलोकविषे जाय प्राप्त भया, अरु राजा इक्ष्वाकु राज्य करणे लगा ॥ हे रामजी! जैसे राजा इक्ष्वाकुनें जीवन्मुक्त होकरि राज्य किया है, तैसे तूं भी इस दृष्टिकों आश्रय करिके विचरु ॥ राम उवाच ॥ हे भगवन्! तुम कहा, जैसे राजा इक्ष्वाकु ज्ञानकों पायकरि राज्य चेष्टा करत भया है, तैसे तूं करु, तिसविषे मेरा प्रश्न है, जो अपूर्व अतिशय होवै तिसका पावणा विशेष है, अरु जो पूर्व केइनें पाया है, तिसका पावणां अपूर्व अतिशय नहीं, तातें मेरे तांई सो कहौ, जो अपूर्व अतिशय सर्वतें विशेष है ॥ ॥ वसिष्ठ उवाच ॥ हे रामजी! ज्ञानवान सदा शांतरूप है, अरु रागदोषतें रहित है, अरु अपूर्व अतिशयकों पावता है, जेती कछु अवर अतिशय है, सो पूर्व अतिशय है, अरु ज्ञानवान अपूर्व अतिशयकों पावता है, सो ज्ञानीतें अन्य कोउ नहीं पावता, आत्मज्ञानकों ज्ञानीही पावता है, सो ज्ञान एकही है ॥ हे रामजी! जो दूसरा नहीं पावता तौ अपूर्व अतिशय हुआ क्यौं ॥ हे रामजी! अपूर्व अतिशयकों पायकरि ज्ञानवान प्रकृत आचार सर्व चेष्टा भी करता है, तौ भी निश्चय सर्वदा आत्माविषे रखता है ॥ ॥ राम उवाच ॥ हे भगवन्! ज्ञानवान ऐसा जो सर्व चेष्टा करता है, अज्ञानीकी नांई तो उसकों क्या लक्षणोंकरि तत्त्ववेत्ता जाणिये ॥ ॥ वसिष्ठ उवाच ॥ हे रामजी! एक स्वसं

वेद लक्षण है, अरु एक परसंवेद लक्षण है, स्वसंवेद कहिए जो आपही आपकों जाणता, अवर नहीं जाणता अरु परसंवेद कहिए जिसकों अवर भी जाणते हैं ॥ हे रामजी ! परसंवेद लक्षण है सो मैं कहौं हौं, जो तप दान यज्ञ व्रत करणे सो परसंवेद है,अरु दुःखसुखकी प्राप्तिविषे धैर्यकरि रहणां सो समान साधुके लक्षण हैं, अरु महाकर्त्ता, महाभोक्ता, महात्यागी,क्षमा दया यह लक्षण साधुके हैं, ज्ञानवानके नहीं,अरु जेती कछु अणिमातें आदि सिद्धि हैं,उडणा,छुपि जावणा यह भी समान लक्षण हैं,परंतु यह स्वाभाविक तिसविषे आनि फुरते हैं, सो अवरकरि भी जाणे जाते हैं, अरु जो ज्ञानीके लक्षण हैं सो स्वसंवेद हैं, अवर कोउ इसतें इतर उसके शिर विषे सिंग नहीं जो तिसकरि जाणिये, जैसे अवर व्यवहार हैं, तैसे सिद्धि ज्ञानीकों समान है, यह भी ज्ञानवानका लक्षण नहीं, अरु पुण्यपापादिक क्रिया परसंवेद हैं, सो मायाके कल्पे हैं, ज्ञानीके नहीं, जेते कछु लक्षण देखणेविषे आवैंगे, सो मिथ्या हैं, मायाके कल्पे हैं, अरु स्वसंवेद हैं, ज्ञानीका लक्षण जो सर्वदा आत्माविषे स्थित है, अरु अपणे आपकरि संतुष्ट है, न किसीका हर्ष है, न शोक है, अरु देहके जीवित मृत्यु विषे समान है, अरु काम क्रोध लोभ मोह सर्वकों जानता है, इसका लक्षण इंद्रियांका विषय नहीं, काहेतें जो निर्वाच्यपदकों प्राप्त भया है ॥ हे रामजी ! जिसकों ज्ञान प्राप्त हुआ है, तिसका चित्त स्वाभाविक विषयतें विरस होता है, अरु इंद्रियजित होता है, भोगकी इच्छा तिसकी निवृत्त हो जाती है, स्वाभाविकही तिसके विषय निवृत्त होते हैं ॥ ॥ इति श्रीयोगवासिष्ठे निर्वाणप्रकरणे ज्ञानीलक्षणविचारो नाम त्र्यधिकशततमः सर्गः ॥ १०३ ॥ ॥ ॥

॥ वसिष्ठ उवाच ॥ हे रामजी ! मायाजालका काटणा महाकठिन है, यह आदिकलना जीवकों भई है, जो कोउ इसविषे सत्य बुद्धि करता है, सो पंखेरुकी नांई जालविषे फस्या हुआ निकसी नहीं सकता है,तैसे अनात्म अभिमानतें निकसी नहीं सकता ॥ हे रामजी ! बहुरि मेरे वचन सुण, जो मेरे वचन तुझकों प्रियतम लगते हैं, जैसे मेघका शब्द मोरकों प्रियतम लगता है, अरु मैं भी तेरे हि

तके निमित्त कहता हौं, उपदेश करता हौं,अरु ऐसा गुरु रघुकुलका कोउ नहीं हुआ,जो शिष्यका संशय निवृत्त करै ॥ हेरामजी! मेरा शिष्य भी ऐसा कोउ नहीं हुआ, जो मेरे उपदेशकरि न जाग्या होवै, सब जाग हुए हैं, इसनिमित्त मैं तप ध्यान आदिककों भी त्यागिकरि तेरे तांई जगावौंगा, तातें मैं तुझकों उपदेश करता हौं, श्रवण करु ॥ हे रामजी! शुद्ध आत्माविषे जो अहंभाव हुआ है, जो कछु अहंकारकरि भासता है, सो थिया है, इसविषे सत्य कछु नहीं, अरु जो इसका साक्षीभूत ज्ञानरूप है, सो सत्य है, तिसका नाश कदाचित् नहीं होता,अरु जो जो वस्तु फुरणेकरि उपजी है सो सर्व नाशवंत है,यह बात बालक भी जानते हैं, जो सत्य है सो असत्य नहीं होता, अरु जो वस्तु असत्य है सो सत्य नहीं होती, जैसे रेततें घृत निकसणां असत्य है, कदाचित् नहीं निकसता, जैसे दर्दुरकों नीकाचूर्ण भी करिये, एक दर्दुरके लाख कणका करियें, अथवा शिला ऊपर घसाइयें, जब तिस ऊपर वर्षा हुई, तब सर्व कणके दर्दुर हो जाते हैं ॥ हे रामजी! सो दर्दुर तब ऊत्पन्न हुए, जब उनविषे सत्यता थी, तातें सत्यका नाश कदाचित् नहीं होता, अरु असत्यका सद्भाव कदाचित् नहीं होता ॥ हे रामजी! सत्य जो है ब्रह्म, तिसकी भावना कर, जो ब्रह्मकी भावना करता है, सो ब्रह्मही होता है, जैसे घृतविषे घृत एक हो जाता है, अरु दूधविषे दूध मिलता, जलविषे जल मिलि जाता है, तैसे यह जीव भावना करिके चिद्घन ब्रह्मसाथ एक हो जाता है, जीवसंज्ञा इसकी निवृत्त हो जाती है, जैसे अमृतके पान कियेतें अमर होता है, तैसे ब्रह्मकी भावना करणेतें ब्रह्म होता है, अरु जो अनात्माकी भावना करता है तौ पराधीन होकरि दुःख पावता है, जैसे विषके पान कियेतें अवश्य मरता है, तैसे अनात्माकी भावनातें अवश्य दुःख पावता है, तिसका नाश होता है, तातें आत्मभाव करु ॥ हे रामजी! जो वस्तु संकल्पकरि उदय होती है, तिसका रहणा भी थोडा काल होता है, जो चल वस्तु है सो अवश्य नाश होती है, यह दृश्य आत्माविषे भ्रम करिके सिद्ध है, जैसे मृगतृष्णाका जल अरु सीपी

विषे रूपा भ्रम करिके सिद्ध है, अरु आकाशविषे दूसरा चंद्रमा भ्रमकरि सिद्ध है, वास्तव नहीं तैसे अहंकार देह इंद्रियांकरि सुख भासता है,सो सब मिथ्या है, तातें दृश्यकी भावना त्यागिकरि अपणे अनुभव स्वरूपविषे स्थित होहु, जब आत्माविषे स्थित होवैगा, तब मोहकों प्राप्त न होवैगा, जैसे पारसके स्पर्शकरि तांबा स्वर्ण हुआ, बहुरि तांबा नहीं होता, तैसे तूं जब आत्मपदकों जाणैगा, तब बहुरि मोहकों प्राप्त न होवैगा, जो मैं हौं, यह मेरा है, अहं त्वं भाव तेरा निवृत्त हो जावैगा, यह भावना न रहैगी ॥ ॥ राम उवाच ॥ हे भगवन्! मच्छर अरु जुं आदिक जो प्रस्वेदतें उत्पन्न होते हैं, सो सब कर्म करिके उत्पन्न होते हैं, देवता मनुष्यादिक जो उत्पन्न होते हैं, सो कर्मोंकरि यह सब उत्पन्न होते हैं अथवा कर्मोंविना भी कछु होते हैं ॥ ॥ वसिष्ठ उवाच ॥ हे रामजी! आदि परमात्मातें जब उत्पति भई है, सो चार प्रकारके जीव हैं, एक कर्मोंकरि उत्पन्न हुए हैं, एक कर्मोंविना हुए हैं, एक आगे होणे हैं, एक अब भी उत्पन्न होते हैं ॥ ॥ राम उवाच ॥ हे संशयरूपी हृदयके अंधकार निवृत्त करणेहारे सूर्य! अरु संशयरूपी बादलोंके निवृत्तिकों पवन! कृपाकरिके कहो, जो कर्मोंविना कैसे उत्पन्न होते हैं, अरु कर्मोंकरि कैसे उत्पन्न होते हैं, कैसे कैसे हुए हैं, कैसे होते हैं, अरु कैसे आगे होणें हैं सो कहो ॥ ॥ वसिष्ठ उवाच ॥ हे रामजी! आत्मा चिदाकाश है, अपणे आपविषे स्थित है, जैसे अग्नि अपणी उष्णताविषे स्थित है, तैसे आत्मा अपणे स्वभावविषे स्थित है, अनंत है, अरु अविनाशी है, तिसविषे फुरणाशक्ति स्वाभाविक स्थित है, जैसे पवनविषे स्पंदशक्ति स्वाभाविक है, जैसे फूलविषे सुगंध स्वाभाविक रहती है, तैसे आत्माविषे फुरणाशक्ति है ॥ हे रामजी! फुरणाशक्ति जैसे आद्य फुरी है, तिस शब्दकी अपेक्षाकरि तब आकाश हुआ, जब स्पर्शकी अपेक्षाकरि, तब पवन प्रगट भया,इसी प्रकार पंचतन्मात्रा हो आई, सो शुद्ध संवितविषे जो आदि फुरणा हुआ, प्रथम अंतवाहक शरीर हुए, तिनका निश्चय आत्माविषे रहा जो हम आत्मा हैं, सं

पूर्ण विश्व हमारा संकल्प ह ॥ हे रामजी! केई इस प्रकार उत्पन्न होकरि अंतवाहकतें वहुरि विदेहमुक्तिकों प्राप्त भये, जैसे जलसों वरफ होकरि सूर्यके तेजतें शीघ्रही जल हो जाती है, तैसे शीघ्रही विदेहमुक्त हुए, अरु केई अंतवाहक शरीरविषे स्थित भये, उनका निश्चय आत्माविषे रहा, अरु केई अंतवाहकतें अधिभूतक हो गए, जवलग अंतवाहकविषे स्मरण रहा, तवलग अंतवाहक रहे, जव स्वरूपका प्रमाद भया, अरु संकल्पकरि जो भूत रचे थे, तिनविषे दृढ निश्चय भया, अरु जानत भए, इह हम हैं, तव अधिभूतक हो गए, जैसे ब्राह्मण शूद्रोंके कर्म करणे लगे, उसके निश्चयविषे हो जावैं, जो मेरा यही कर्म है, अरु जैसे शीत करिके जलतें वर्फ हो जाती है, तैसे संवितविषे दृढ संकल्प हुआ, तव आपकों अधिभूतक जानत भया ॥ हे रामजी! आदि परमात्मातें जो फुरे हैं, सो कर्मविना उत्पन्न हुए हैं, तिनका कर्म कोउ नहीं, जो अंतवाहकविषे रहे, तिनकी ईश्वरसंज्ञा भई, वहुरि उनके संकल्पकरि जीव उपजे, तिनका कारण ईश्वर हुआ, अरु आगे जीवकलनाकरि उनका फुरणा कर्म हुए, आगे जैसे कर्म करते हैं, संकल्पकरि तैसे शरीर धारते हैं ॥ हे रामजी! आत्मातें जो जीव उपजे हैं, सो आदि अकारण होते हैं, जो आज उपजे हैं, तौ भी, अरु चिरकाल उपजे हैं तौ भी, उह पाछे कारणभावकों प्राप्त हुए हैं, कर्मके वशतें ॥ हे रामजी! जो आदि फुरणा हुआ है, अरु स्वरूपविषे जिनका दृढ निश्चय रहा, तिनकी संज्ञा पुण्य है, अरु जो स्वरूपकों विस्मरणकरि अधिभूतकविषे निश्चय करत भये, तिनकी धन संज्ञा है ॥ हे रामजी! पुण्यतें धन होणा सुगम है, अरु धनतें पुण्य होणा कठिण है, कोउ भाग्यवान पुरुष होता है, जो यत्न करिके धनतें पुण्यवान होता है, जैसे पर्वततें पत्थर गिरना सुगम है, तैसे पुण्यतें धन होणा सुगम है, अरु जैसे पत्थरकों पर्वतपर चडावणा कठिण है, तैसे धनतें पुण्य होणा कठिण है, केई चिरकाल धनविषे वहते हैं, केई यत्नकरि शीघ्रही पुण्यवान होते हैं, हे रामजी! जो सदा अंतवाहक रहते हैं, तिनकी संज्ञा ईश्वर है, अरु अंतवाहककों त्यागिकरि अ

धिभूतक होते हैं, सो जीव कहाते हैं, अरु परतंत्र हैं, जैसे कर्म करते हैं, तैसे आगे शरीर धारते हैं, अरु जो धनतें पुण्य होते हैं, सो ज्ञानवान हैं, तिनकों बहुरि जन्म नहीं होता, अब भी जो उत्पन्न होते हैं, सो प्रथम कर्मविना होते हैं, जब अपणे स्वरूपतें गिरते हैं, तब जैसा संकल्प करते हैं, संकल्पही कर्म है, तैसे आगे शरीर धारते हैं ॥ हे रामजी! यह विश्व संकल्पमात्र है, तातें संकल्पका त्याग करौ, इस दृश्यकी आस्था न करु॥ हे रामजी! खाणा पीणा चेष्टा करौ, परंतु तिसविषे अहंभाव न होवै, अहंकार अज्ञानकरि सिद्ध हुआ है, सो दृश्य मिथ्या है, अहंभावके होणेकरि दुःखी होता है, तातें अहंकारतें रहित चेष्टा करौ ॥ हे रामजी! बंध अरु मोक्षका लक्षण श्रवण करु, ग्राह्य ग्राहक जो है, विषय अरु इंद्रियांका संयोग, तिनके इष्टविषे राग करणा, अनिष्टविषे दोष करणा, यही बंधन है, जैसे जलविषे पक्षी बंधायमान होता है, अरु ग्राह्य ग्राहक इंद्रियां अरु विषयका संबंध तिनके इष्ट अनिष्ट होणा है, जिसविषे इंद्रियांका संयोग होता है, तिसविषे समबुद्धि रहै, इनके धर्म अपणेविषे न देखै, इनके जाणनेवाला जो अनुभवरूप आत्मा है, तिसीविषे साक्षीरूप होकरि स्थित रहै, इस प्रकार जो इनका ग्रहण करता है, सो सदा मुक्तरूप है, इसतें इतर हैं सो मूर्ख जीव बंध हैं, तुम इस ग्राह्य ग्राहक संबंधविषे सावधान रहौ, इनका संबंध धन है, इनतें रहित होणा मुक्त है, अरु राग दोष करणेवाला मन है, इस मनका त्याग करौ, मनही दुःखदायी है,जैसे कुंभारका चक्र फिरता है, तिसतें वासन उत्पन्न होते हैं, तैसे मनरूप चक्रतें पदार्थरूपी वासन उत्पन्न होते हैं, मनके फुरणेकरि संसार सत्य होता है, जब फुरणा निवृत्त हुआ, तब दुःख कोउ न रहैगा ॥ हे रामजी! फुरणे अफुरणेविषे समान होवैगा,तब रागदोषतें रहित होकरि विचरैगा, यह होवै, यह न होवै, इसतें रहित होकरि चेष्टा कर, अभिलाषपूर्वक संसारविषे न फुरै ॥ हे रामजी! पूर्व जो ज्ञानवान हुए हैं, तिसकों वीतीकी चिंतवना नहीं, अरु आगे होणेकी आशा नहीं, वर्तमानकालविषे शास्त्र अनुसार रागदोषतें रहित चेष्टा करणी, तातें तूं भी संकल्प

कों त्यागिकरि स्वरूपविषे स्थित होहु ॥ हे रामजी! ब्रह्मातें आदि तृणपर्यंत किसी पदार्थविषे राग हुआ, तौ बंधन है, अरु मेरा यही आशीर्वाद है, जो ब्रह्मातें आदि तृणपर्यंतकरि तेरी रुचि मत होवै, अपणे आपहीविषे रुचि होवै ॥ हे रामजी! यह संसार मिथ्या है, इसविषे पदार्थ कोउ सत नहीं, सर्व मनके रचे हुए हैं, तातें मनकों स्थित करौ, जैसे धोवी साबू मिलायके वस्त्रकी मैल दूर करता है, तैसे मनकरि मनकों स्थिर करौ, जब मनकों स्वरूपविषे स्थित करैगा, तब मन अपणे संकल्पकों आपही नाश करैगा, जैसे कोउ दुष्ट पुरुष धनकरि वृद्ध होता है, तब भाई आदिककों नाश करणेका उपाय करता है, तैसे मन जब आत्मपदविषे स्थित होता है, तब अपणे संकल्पकों नाश करता है, जब मन तेरा स्वरूपविषे स्थित हुआ, तब तूं अमन होवैगा, अरु दुःख तेरे सब नष्ट हो जावेंगे, अरु मनके नाशविना सुख कोउ नहीं ॥ हे रामजी! यह मन ऐसा दुष्ट है, जो जिसतें उपजता है, तिसीके नाशनिमित्त होता है, जैसे बांसतें अग्नि उपजता है, बहुरि तिसीकों जलावता है, तैसे आत्मातें उपजीकरि यह मन आत्माहीकों तुच्छ करता है, जैसे राजाका टहलुआ राजाकी सत्ता पायकरि राजाकों मारीकरि आप राजा होता है, तैसे मन आत्माकी सत्ता पायकरि तिसकों आच्छादी आपही कर्त्ता भोक्ता हो बैठा है, तातें मनकों मनहीकरि नाश कर, जैसे लोहा तपायकरि लोहेकों काटता है, तैसे मनसाथ मनहीकों शुद्ध करु ॥ हे रामजी! वृक्ष वल्ली फूल फल पशु पक्षी देवता यक्ष नाग जेते कछु स्थावर जंगम पदार्थ हैं, सो प्रथम कर्मोंविना उत्पन्न हुए हैं, अरु पाछे जब स्वरूपतें गिरे, अरु धनपदकों प्राप्त हुए, तब शरीर कर्मोंकरि होते हैं, अरु कर्मोंका बीज अहंकार है, अहंकारविषे शरीर है, जैसे बीजविषे वृक्ष होता है, समय पायकरि फूल फल प्रगट होते हैं, तैसे अहंकारतें शरीर प्रगट होते हैं, जब अहंकार नष्ट हुआ, तब शरीर कोउ नहीं, केवल आत्मपद है, अहंकार है नहीं, अरु प्रत्यक्ष देखाइ देता है, अरु आत्मा अच्युत है, गिरेकी नांई भासता है, निरालंब है, अरु आलंबकी

तातें तूं सत्पदविषे स्थित होकारि साक्षीरूप होरहु॥ ॥इति श्रीयो० नि० तुरीयापदविचारो नाम शताधिकपंचमः सर्गः॥ १०५॥ ॥वसिष्ठ उवाच॥ हे रामजी! कर्त्ता कारण कर्म यह तीनों पडे होवैं, तूं इनका साक्षी होहु, इनका कर्तृत्व अभिमान तेरे तांई मत होवै, जो मैं यह कर्त्ता हौं, अथवा इसका मैं त्याग किया है, यह अभिमान भी नहीं करणा, तूं उदासीनकी नांई हो रहु अरुइसीपर एक आख्यान कहता हौं, सो श्रवण कर, तूं आगे भी प्रबुद्ध है, तौ भी दृढ बोधके निमित्त सुण, हे रामजी! एक वनविषे काष्ठमौनि था, अरु एक वेधक मृगकों बाण चलावते हुए मृगके पाछे दउडता जाता था, अरु आगे गये तौ मृग वेधककी दृष्टितें अगोचर हो गया, वेधकने देखा जो एक तपसी बैठा है, तिसीतें पूछत भया॥ हे मुनीश्वर! इहां एक मृग आया था सो किस उरकों गया, तुम देखा है तौ मेरे तांई कहौ॥ काष्ठमौनिरुवाच॥ हे वेधक! हमारे तांई सुधि कछु नहीं, काहेतें जो हम निरहंकार हैं, हमारेसाथ चित्त अहंकार दोनों नहीं, तातें निरहंकार हैं, अरु जो तूं कहै, इंद्रियांकी चेष्टा कैसे होती है तौ सुण, जैसे सूर्यके आश्रय लोककी चेष्टा होती है, अरु दीपक मणिके आश्रय चेष्टा होती है, अरु सूर्य दीपक मणि प्रकाशके साक्षीभूत हैं, तैसे हम इंद्रियांके साक्षीभूत इनकी चेष्टा स्वाभाविक होती है, हमारे तौ इनसाथ प्रयोजन कछु नहीं॥ हे वेधक! अहंभाव करणेवाला अहंकार होता है, जैसे तागेके आश्रय मणके पोते हैं, सो मणके भिन्न भिन्न होते हैं, अरु तागा सर्वविषे एक होता है, तब माला होती है, जब तागा टूटि पडै तब मणके भिन्न भिन्न हो जाते हैं, तैसे इंद्रियांरूपी मणके हैं, अरु अहंकाररूपी तागा है, तिस अहंकाररूपी तागेके टूटणेसों इंद्रियां भिन्न भिन्न हो गइयां हैं, जैसे राजाके नाश हुए सैना भिन्न भिन्न हो जाती है, जैसे गोपालके नष्ट हुए गौआं भिन्न भिन्न हो जातियां हैं, अरु जैसे पिताके नष्ट हुए बालक व्याकुल हो जाते हैं, तैसे अहंकारविना इंद्रियां व्याकुल हुइयां हैं, इनका अभिमान मेरे तांई कछु नहीं, इनका अभिमानी अहंकार था, सो मेरा नष्ट हो गया है, इंद्रियां अपणे अपणे विषयवि

षे विचरतियां हैं, मुझकों इनका न राग है, न दोष है ॥ हे साधो! मेरे तांई न जाग्रत भासता है, न स्वप्न, न सुषुप्ति, इन तीनोंतें रहित हम तुरीयापदविषे स्थित हैं, जिसविषे अहं त्वंका अभाव है, जो अहं त्वं हमारा मिटि गया तौ हम साख किसकी देवैं, जो मृग डाबे गया, कै दाहने गया, जो नेत्र इंद्रियां देखणेवाली हैं, तिसकों बोलणेकी शक्ति नहीं, यह अपणे अपणे विषयकों ग्रहण करतियां हैं, एक इंद्रियकों दूसरेकी शक्ति नहीं, बहुरि तेरे तांई कवण कहै, इन सबके धारणेवाला अहंकार था, जो सबकों अपणां आप जानता था, मैं देखता हौं, मैं बोलता हौं, सो अहंकार हमारा नष्ट हो गया है, जैसे शरत्कालविषे मेघ नष्ट होते हैं, तैसे अहंकारके नष्ट होणेकरि हम स्वच्छ निर्मल शांत तुरीयापदविषे स्थित हैं, अरु इंद्रियांका जीव अहंकार मृतक हो गया है, अरु इंद्रियां भी मृतक हो गइयां हैं, देखणेमात्र दृष्टि आतियां हैं, जैसे भीत ऊपर पुतलियां लिखियां होवैं अरु कार्य तिनके कछु न होवैं, तैसे हमारी इंद्रियांतें कार्य कछु नहीं होता, तौ तेरे तांई कवन कहै? ॥ वसिष्ठ उवाच ॥ हे रामचंद्र! जब इस प्रकार मुनीश्वरनें कहा, तब वेधक समुझी करि अपणी इच्छाचारी उठिगया ॥ हे रामजी! तुरीयापद शांतरूप है, जहां जाग्रत स्वप्न सुषुप्ति तीनोंका अभाव है, केवल अद्वैत पद है, यह जो संज्ञा है, ब्रह्म आत्मा चिदानंदतें आदि लेकरि सो तुरीया पदविषे है, अरु तुरीयातीत पदविषे शब्दकी गम नहीं, अशब्द पद है, विदेह मुक्त पुरुष तिसी पदकों प्राप्त होता है, अरु जीवन्मुक्त तुरीयापदकों साक्षात् करिके तुरीयावस्थाविषे विचरते हैं, जहां जाग्रत जो दीर्घ दुःख सुखका भान है सो नहीं, अरु स्वप्न जो रागदोषकों लिये अल्पकाल है, सो भी नहीं, अरु जडता तामस अवस्था भी नहीं, इन तीनोंतें रहित है, सो तुरीयापद है, अरु शांत जिसविषे क्षोभ कोउ नहीं, अरु यह जगत तिसका आभास है, जैसे समुद्रविषे तरंग वास्तव कछु नहीं, जलही है, तैसे केवल तुरीयास्वरूप सत्तासमान तेरा स्वरूप है, तिसविषे स्थित होहु, अरु तिसविषे जो स्थित हुए हैं, सो श्रवण करु, ब्र

नांई दृष्ट आता है, आत्मा निराकार है, अरु आकारसहित भासता है, निराभास है; अरु आभाससहित दिखाइ देता है, तातें केवल चिन्मात्र आत्माविषे स्थित होहु, यह सब चिन्मात्रहीरूप है ॥ हे रामजी! जब ऐसी भावना होती है, तब चित्त अचित्त हो जाता है, जब चित्त अचित्त हुआ, तब जगतकलना मिटि जाती है, केवल आत्मतत्त्वही भासता है ॥ ॥ इति श्रीयोगवासिष्ठे निर्वाणप्रकरणे कर्माकर्मविचारो नाम शताधिकचतुर्थः सर्गः ॥ १०४ ॥ ॥ वसिष्ठ उवाच ॥ हे रामजी! इस जीवके तीन स्वरूप हैं, एक स्वरूप शुद्धात्मा है, चिदानंद ब्रह्म, जिसकरि सर्व प्रकाशते हैं, अरु दूसरा अंतवाहक पुण्यनाम है, आत्माके प्रमाद करिके हुआ है, जो मात्रपदतें उत्थान हुआ है, तौ भी प्रमाद नहीं, जो आत्माका स्मरण रहा है, जब आत्माका स्मरण भूला, तब तीसरा अधिभूतक हुआ, पंच तत्त्वकों आपणा आप जाणने लगा है॥ हे रामजी! यह तीन स्वरूप जीवके हैं, आत्माके प्रमादकरि जीव संज्ञा पावता है, अरु दुःखी होता है, अरु परतंत्र हुआ है, तातें पंचभूतक अरु अंतवाहकको त्यागिकरि वास्तव स्वरूपविषे स्थित होहु ॥ हे रामजी! यह जो दो शरीर हैं, स्थूल अरु सूक्ष्म विचारकरि नष्ट हो जाते हैं, अरु तीसरा जो स्वस्वरूप है, सो सत्य है, तूं तिसविषे स्थित होहु ॥ राम उवाच ॥ हे भगवन्! यह तीन रूप जो तुमनें जीवके कहे, तिनके मध्यविषे नाशरूप कवन है, अरु सतरूप कवन है ॥ वसिष्ठ उवाच ॥ हे रामजी! हाथ पावकरि जो देह संयुक्त है, भोगसाथ बलगत करी हुइ सो देह स्थूलरूप है, अरु जीव अपणेही संकल्प करिके सदा पसार रचता है, अवर चित्तरूपी देह इस फुरणेरूपसों अंतवाहक है, सो सदा प्राणवायुके रथ ऊपर स्थित रहता है, देह होवै, भावै, न होवै ॥ हे रामजी! यह दोनों शरीर उपजते भी अरु नष्ट भी होते हैं, अरु आदिअंततें रहित चिन्मात्र निर्विकल्प हैं, सो जीवका परम रूप जाण, तुरीयापद है उसीतें जाग्रतादिक उपजते हैं, अरु लीन होते हैं ॥ ॥ राम उवाच ॥ हे भगवन्! मैं तीनकों जानता हौं, एक जाग्रत है

निद्रातें रहित, जिसविषे इंद्रियां अरु चार अंतःकरण अपणे अपणे विषयकों ग्रहण करते हैं, अरु दूसरा स्वप्न है, तहां भी विषयकों जाग्रतकी नांई संकल्प करी ग्रहण करते हैं, विषयविना, अरु तीसरा तहां इंद्रिय अपणे विषयतें रहित होतियां हैं, अरु जडता आती है, भासता कछु नहीं, शिलाकी नांई जडता तमोगुण आता है सो सुषुप्ति है, यह तीनोंकों मैं जानता हौं, तुरीया अरु तुरीयातीत सो कृपाकरि तुम कहौ, जो किसकों कहते हैं? ॥ ॥ वसिष्ठ उवाच ॥ हे रामजी! अपणा होणा अनहोणा दोनोंकों त्यागिकरि पाछे केवल तुरीयापद रहता है, सो शांतपद है, अरु निर्मल है ॥ हे रामजी! तुरीया जाग्रत नहीं, काहेतें जो जाग्रत संकल्प जाल है, इंद्रियां करिके रागदोष होता है, अरु तुरीया स्वप्न अवस्था भी नहीं, काहेतें जो स्वप्न भ्रमरूप होता है, जैसे जेवरीविषे सर्प भासता है सो अवरका अवर संकल्प होता है, अरु तुरीया सुषुप्ति भी नहीं, काहेतें जो अत्यंत जडता है, अरु तुरीया चेतनरूप है, उदासीन है अरु शुद्ध है, जाग्रत स्वप्न सुषुप्तितें रहित है, जीवन्मुक्त तुरीयापदविषे स्थित रहता है ॥ हे रामजी! जो तुरीयापदविषे स्थित है, तिसकों यह स्थित भी है, जगतसों भी शांतरूप हो जाता है, अरु अज्ञानीकों वज्रसारवत् दृढ है, अरु ज्ञानी सदा शांतरूप है, जो तीनों अवस्थाका साक्षी है, न उसके राग है, न दोष है, उदासीनकी नांई है, अरु तुरीयातीत पदकों वाणीकी गम नहीं, जीवन्मुक्त पुरुष जब विदेहमुक्त होता है, तब उसी पदकों प्राप्त होता है, जहां वाणीकी गम नहीं, जबलग जीवन्मुक्त है तबलग तुरीयापदविषे स्थित होता है, अरु रागदोषतें रहित होता है, इंद्रियां भी अपणे विषयविषे स्वाभाविक वर्ततियां हैं, परंतु रागदोषतें रहित होकरि अरु जिस पुरुषकों रागदोष उत्पन्न होते हैं, सो तुरीयापदकों नहीं प्राप्त भया, अरु चित्तसहित है, अरु जिस पुरुषकों रागदोष उत्पन्न नहीं होते, तिसका चित्त सत्पदकों प्राप्त भया है, जिसका चित्त सत्पदकों प्राप्त हुआ है, तिसकों संसारकी सत्यता नहीं भासती, स्वप्नवत् जगतकों देखता है,

ह्मा विष्णु रुद्र सिद्ध ज्ञानी इत्यादिक जो ज्ञानवान् हैं, सो तिसी पदविषे स्थित हैं, अरु काष्ठमौनि वेधक कों उपदेश करणेवाला भी तुरीयापदविषे स्थित है, विशेष कलना तिसकी निवृत्त हुई थी, जो भिन्न भिन्न नामरूपकों देखणेवाली केवल सत्ता समानविषे स्थित था, तातें कलनाकों त्यागिकरि तुम भी तुरीयापदविषे स्थित होहु ॥ इति श्रीयोगवासिष्ठे निर्वाणप्रकरणे काष्ठमौनिवृत्तांतवर्णनं नाम शताधिकषष्ठः सर्गः १०६

॥ वसिष्ठ उवाच ॥ हे रामजी ! यह विश्व केवल आकाशरूप है, आत्मातें इतर कछु नहीं, आत्माका चमत्कार है, जैसे मेघविषे विजलीका चमत्कार होता है, तैसे यह वीश्वरूप चित्तकला आत्माका चमत्कार है ॥ हे रामजी ! वास्तव ब्रह्महीं है, इतर कछु नहीं ॥ राम उवाच ॥ हे भगवन् ! यह विश्व जो तुम ब्रह्मरूप कही, मेघविषे विजलीकी नांई क्षणमें उपजती है, क्षणविषे लीन होती है, सो मेघविषे विजली दृष्ट आती है, जहां मेघ होता है, तहां विजली भी होती है, तातें मेघतें विजली उत्पन्न भई तिसका कारण मेघ है ॥ हे मुनीश्वर ! इस चित्त स्पंद कलाके कारणकी उत्पत्ति ब्रह्मतें कैसे हुई है, सो कृपा करिके मुझकों समुझाय कहो, ब्रह्महीं इसका कारण हुआ ॥ ॥ वसिष्ठ उवाच ॥ हे रामजी ! यह जो वितंडक होकरि तर्क करता है सो कछु नहीं, इस नाशबुद्धिकों त्याग, यह तौ बालक भी जाणते हैं, जो विजली क्षणभंगुररूप है, सत्य कछु नहीं, अवर तेरा क्या प्रयोजन है सो कहु, यह तर्क कारणकार्यरूपका कैसा करता है ॥ ॥ राम उवाच ॥ हे भगवन् ! यह स्पंदकला सत्य है कै असत्य है, इसका कारण कवन है, जिसकरि यह फुरती है ॥ ॥ वसिष्ठ उवाच ॥ हे रामजी ! सर्व प्रकारकरि सर्वात्माही स्थित है, अवर चित्त अरु चित्तस्पंद इह भेदकल्पना वास्तव कछु नहीं, ब्रह्महीं अपणे स्वरूपविषे आप स्थित है, अवर जो कछु उसतें इतर भासता है, सो भ्रमकरि भासता है, जैसे भ्रमदृष्टिकरि आकाशविषे मोती भासते हैं, जैसे नेत्र मुंदीकरि खोलते हैं तब तरवरे आकार भासते हैं, तैसे इह जगत भ्रम करिके भासता है ॥ हे रामजी ! हम इस संसारसमु

द्रके पारकों प्राप्त हुए हैं, हमतें आदि लेकरि जो ज्ञानवान हैं, सो तिनके यथार्थ वचन सुणीकरि हृदयविषे धारैं तौ शीघ्रही आत्मपदकी प्राप्ति होवै, अरु जो मूर्खता करिके मेरे वचनोंकों न धारैगा, जो यह क्या कहते हैं, तब तेरा दुःख नष्ट न होवैगा, वृक्ष तृण वल्ली आदिक योनिकों पावैगा ॥ हे रामजी! आकाश अरु काल आदिक पदार्थ हैं, सो सब कलनाकरि सिद्ध हुए हैं, आत्माविषे कोउ नहीं ॥ हे रामजी! वायुतें रहित जो समुद्रका चमत्कार है, तिस चमत्कारका कारण कवन है, अरु दीपकका जो प्रकाश है, अरु अग्निविषे उष्णता है, तिस प्रकाश अरु उष्णताका कारण कवन है, अरु वायु जो निस्पंद है, जब उही स्पंद हुई, स्पंदका कारण कवन है, जैसे इनका कारण कोउ नहीं, जो वायुका रूप स्पंद निस्पंद है अरु अग्निका रूप उष्णता है, अरु दीपकका रूप प्रकाश है, तैसे कलना भी आत्मस्वरूप है, इतर कछु नहीं, हे रामजी! यह कलना जो तुझकों भासती है, तिसकों त्यागिकरि जव अपणे आपकों देखै, तब संशय सब मिटि जावै,जैसे प्रलयकालका जल चडता है,तब सर्व जलमय हो जाता है,इतर कछु नहीं होता, तैसे अपणे स्वरूपकों जब तूं देखैगा तब तेरे तांई सर्व आत्माही भासैगा, आत्मातें इतर कछु दृष्ट न आवैगा ॥ हे रामजी! आत्मा एकरस है, सम्यक्दर्शनकरि ज्योंका त्यों भासैगा, अरु असम्यक्दर्शनकरि अवरका अवर भासैगा, जैसे जेवरी एक होती है, तिसकों यथार्थ न देखियें तौ सर्पभ्रम होता है, अरु देखीकरि भयमान होता है, जब ज्योंकी त्यों जेवरी जानी तब सर्पभ्रम निवृत्त होता है, तैसे आत्माके न जानणेतें संसारी होता है, अरु भयमान होता है, आपकों जन्मता मरता मानता है, सर्व विकार देहके आत्माविषे जानता है, जब आत्माकों जानता है, तब सर्व भ्रम निवृत्त हो जाते हैं, जैसे नेत्रकरि तारे देखता है, जब नेत्र मुंदि लेवै, तौ भी उनका आकार अंतःकरणविषे भासता है, काहेतें जो तिनकी सत्यता हृदयविषे होती है, अरु जब हृदयतें सत्यता उनकी उठि जावै, तब बहुरि नहीं भासते,

तैसे संसार चित्तके भ्रमकरि हुआ है, इसकों मिथ्या जाण ॥ हे रामजी! फुरणेविषे जो दृढ भावना हुई है, सो सत्य होकरि संसार स्थित हुआ है, जब चित्तका त्याग करैगा, तब संसारकी सत्यता जाती रहैगी ॥

॥ राम उवाच ॥ हे भगवन्! तुम कहा जो यह विश्व कल्पनामात्र है, सो मैं जान्या इस प्रकार है, कछु सत्य नहीं, जैसे लवण राजा, अरु इंद्र ब्राह्मणके पुत्र, अरु शुक्र इनकी कलना फुरणेविषे दृढ भई, तब फुरणरूप विश्व सत्य होकरि स्थित भये, अरु भासणे लगे ॥ हे भगवन्! यह मैं जाणता हौं, जो विश्व फुरणेमात्र है, जब फुरणा मिटि जाता है, तिसके पाछे जो शांतिरूप शेष रहता है, सो कहो ॥ ॥ वसिष्ठ उवाच ॥ हे रामजी! अब तूं सम्यक् बोधवान हुआ है, जो जानणे योग्य है, सो तैंनें जाण्या है ॥ हे रामजी! यह अध्यात्म शास्त्रका सिद्धांत है, जो अवर सब दृश्यका असंभव है, एक चिद्घन ब्रह्म अपणे आपविषे स्थित है ॥ हे रामजी! आत्मा शुद्ध है, अरु निर्मल है, विद्या अविद्यातें रहित है, संसारका तिसविषे अत्यंत अभाव है, जेती कछु शुद्ध आदिक संज्ञा कहते हैं, सो भी फुरणेविषे है, आत्मा निर्वाच्य पद है, सो शेष रहता है, तिसरी संज्ञा शास्त्रकारोंनें कही है, सो श्रवण करु, एक शून्यवादी उसीकों शून्य कहते हैं, विज्ञानवादी विज्ञानरूप कहते हैं, केई उपासनावान उसीकों ईश्वर कहते हैं, केई कहते हैं आत्मा सर्वका कारण है, वही शेष रहता है, अरु एक आत्माकों सर्व शक्त कहते हैं, अरु एक कहते हैं आत्मा निःशक्त है, साक्षी आत्माकों अरु शक्तिकों भिन्न मानते हैं ॥ हे रामजी! जेते वाद हैं, सो सर्वही कलनाकरि हुए हैं, कलनाकों मानिकरि वाद उठावते हैं, वास्तव वाद कोउ नहीं, आत्मा निर्वाच्य पद है, अरु मेरा जो सिद्धांत है, सो भी श्रवण करु, जेती कछु कलना है, आत्मा तिसतें अतीत है, जैसे पवन स्पंदशक्तिकरि फुरता है, निस्पंदकरि ठहरि जाता है, जो स्पंद भी पवन है, निस्पंद भी पवन है, इतर कछु नहीं, तैसे आत्मा जो शुद्ध अद्वैतरूप है, अरु कलना भी आत्माके आश्रय फुरती है, आत्मातें इतर कछु नहीं; अरु जो इतर प्रतीत होती है,

तिसकों मिथ्या जाणी त्याग, अपणे निर्विकार स्वरूपविषे स्थित होहु, जव तूं आत्मस्वरूपविषे स्थित होवैगा, तब जेते कछु शास्त्रोंके भिन्न भिन्न मतवाद हैं, सो कोउ न रहैगा, केवल अपणा आप स्वच्छ आत्माही भासैगा ॥ हे रामजी! तिस निर्विकल्प पदकों पायकरि शांतिवान हुए हैं, अरु असतकी नांई स्थित भए हैं,जो द्वैतकलना तिनकी कछु नहीं फुरती ॥ हे रामजी! आत्मा ब्रह्म आदिक शब्द भी उपदेशनिमित्त कहे हैं, आत्मा शब्दतें अतीत है, अरु सर्व जगत भी आत्मस्वरूप है, अरु संसाररूप विकार आत्माविषे असम्यक्दर्शनकरि भासते हैं, जैसे शून्य आकाशविषे तरवरे मोतीवत भासते हैं, सो अविदित हैं, तैसे आत्माविषे जगत द्वैत अविदित भासता है, तातें जगत द्वैतकी भावना त्यागिकरि निर्विकल्प आत्मस्वरूपविषे स्थित होहु ॥ ॥ इति श्रीयोगवासिष्ठे निर्वाणप्रकरणे अविद्यानाशरूपवर्णनं नाम शताधिकसप्तमः सर्गः ॥ १०७ ॥ ॥ ॥ राम उवाच ॥ हे भगवन्! देह इंद्रियां अरु कलनाविषे सार वस्तु क्या है सो कहौ ॥ ॥ वसिष्ठ उवाच ॥ हे रामजी! जो कछु यह जगत दृश्य है, अहं त्वंतें लेकरि सो सव चिन्मात्र है, जैसे समुद्र जलही मात्र है, तैसे जगत है, अरु मनसहित षट् इंद्रियांकरि जो कछु दृश्य भासती है सो भ्रममात्र है ॥ हे रामजी! देह इंद्रियां सब मिथ्या है, आत्माविषे कोउ नहीं, चित्तके कल्पे हुए हैं, अरु चित्तही इनकों देखता है, जैसे मरुस्थलविषे मृगकों जलबुद्धि होती है, देखिकरि जलके निमित्त दउडता है, अरु दुःख पावता है, तैसे चित्तरूपी मृग आत्मारूपी मरुस्थलविषे देह इंद्रियां विषयरूपी जल कल्पिकरि दउडता है, अरु दुःख पावता है, सो देह इंद्रियांविषे भ्रम करिके भासते हैं, जैसे मूर्ख बालक परछायेंविषे वैताल कल्पता है, तैसे मूर्ख चित्तनें देह इंद्रियांदिक कल्पना करी है ॥ हे रामजी! आत्मा शुद्ध निर्विकार है, तिसविषे चित्तनें भ्रम करिके विकार आरोपण किये हैं, जैसे भ्रांतिदृष्टि करिके आकाशविषे दो चंद्रमा भासते हैं, तैसे चित्तनें देह इंद्रियां कल्पियां हैं, अरु चित्त भी आपतें कछु नहीं, आत्माकी

सत्ता लेकरि चेष्टा करता है,जैसे चुंबककी सत्ता लेकरि लोहा चेष्टा करता है, तैसे निर्विकार आत्माकी सत्ता लेकरि चित्त नानाप्रकारके विकार कल्पता है, तातें चित्तका त्याग कर, जो विकारजाल तेरा मिटि जावै ॥ हे रामजी ! देह इंद्रियांविषे सार क्या है सो सुण, जेता कछु संसार है, तिसविषे सार देह है, जो सब देहके संबंधी हैं, जब देह मिटि जावै, तब संबंधी भी नहीं रहते, अरु देहविषे सार इंद्रियां हैं, अरु इंद्रियांविषे सार प्राण हैं, प्राणोंविषे सार मन है, अरु मनका सार बुद्धि है, बुद्धिका सार अहंकार है, अरु अहंकारका सार जीव है, जीवका सार चिदावली है, चिदावली कहिये, वासना संयुक्त चेतना जिसकरि इसका संबंध है, अरु चिदावलीका सार चित्ततें रहित शुद्ध चेतन है, जिसविषे सर्व विकल्पकी लय है, शुद्ध अरु निर्मल है, चिन्मात्र ब्रह्म आत्मा है, जिसविषे उत्थान कोउ नहीं ॥ हे रामजी ! चिदावलीपर्यंत सर्वकों त्यागिकरि इनका जो सार चेतनमात्र आत्मा है, तिसविषे स्थित होहु, विश्वकलनामात्र है, आत्माविषे कछु नहीं, संकल्पकी दृढता करिके सतकी नांई भासती है, अरु आगे भी शुक्र, अरु लवणराजा, अरु इंद्रके पुत्रोंका वृत्तांत कहा है; जो संकल्पकी भावनातें दृढ होकरि भासि आया था, सो वास्तव कछु नहीं, तैसे यह विश्व भी चित्तके फुरणेविषे स्थित है, असम्यक् दृष्टि करिके अद्वैत आत्माविषे दृश्य भासी है, जैसे सूर्यकी किरणाविषे जल भासता है, तैसे आत्माविषे अहंकार आदिक अज्ञानकरि दृश्य भासी है, तातें इनकों त्यागिकरि अपणे वास्तव स्वरूपविषे स्थित होहु ॥ हे रामजी ! एक गड तेरे तांई कहता हौं, जिसविषे किसी शत्रुकी गम नहीं, तिसविषे स्थित होहु, हम भी तिसी गडविषे स्थित हैं, जेते ज्ञानवान हैं, सो भी तिसीविषे स्थित होते हैं ॥ हे रामजी ! काम क्रोध लोभ अभिमानादिक विकार आत्माविषे नहीं पाइते, जैसे रात्रिविषे दिन नहीं पाइता, तैसे विकाररूपी दिन गडरूपी रात्रिविषे नहीं पाइता, तातें अचिंत्यरूप गड है, जहां फुरणा कोउ नहीं, केवल शांतरूप है, तिसविषे अहंभाव त्यागिकरि स्थित होवै, तब अहं त्वं भाव निवृत्त

हो जावै, जब स्वरूपका साक्षात्कार होता है, तब ज्ञानी फुरणे अफुरणेविषे स्वरूपकों तुल्य देखता है, संपूर्ण जगत तिसकों आत्मरूप भासता है, तातें चिदावलीतें आदि देहपर्यंत जो अनात्म है, तिसकों क्रम करिके त्याग, प्रथम देहकों त्याग, बहुरि इंद्रियांके अभिमानकों त्याग, इसी क्रमकरि सर्वकों त्यागिके अपणे वास्तव स्वरूपविषे स्थित होहु ॥ ॥ इति श्रीयोगवासिष्ठे निर्वाणप्रकरणे जीवत्वाभावप्रतिपादनं नाम शताधिकाष्टमः सर्गः ॥१०८॥ ॥ वसिष्ठ उवाच॥ हे रामजी! यह संसार चेतनमात्र है, आत्मातें इतर कछु नहीं, आत्माही विश्वरूप होकरि स्थित हुआ है, जैसे सूर्यकी किरणांही जलाभास होता है, तैसे आत्माका चमत्कार दृश्यरूप होकरि स्थित हुआ है, जैसे संकल्प अरु संकल्प कर्त्ता भिन्न नहीं, जैसे आकाशही मोतीकी माला होकरी भासता है, तैसे आत्माही दृश्यरूप होकरि भासता है, जैसे बीजही वृक्ष फूल फल होता है, तैसे आत्माही दृश्यरूप होकरि स्थित हुआ है, जैसे जलके तरंग जलही हैं, तैसे विश्व आत्माही है ॥ हे रामजी! चिदावली भी आत्माही है, जीव भी आत्माही है; अहंकार बुद्धि प्राण इंद्रियां देह विश्व आकाश काल दिशा पदार्थ सर्व आत्माही हैं, आत्मातें इतर कछु नहीं, तातें विश्वकों अपणा स्वरूप जाण, जैसे सूर्यका प्रकाश सूर्यही है, तैसे तूं जाण, सर्व मैं हों, जो ऐसे न जाणी सकै तौ ऐसे जाण, जो देह भी जड है, इंद्रियांकरि पालित है सो मैं नहीं, अरु इंद्रियां भी मैं नहीं, जो प्राण इंद्रियांका सार है, जो प्राण न होवैं तौ इंद्रियां किसी कामकी नहीं, अरु प्राण भी मैं नहीं, प्राणका सार मन है, जो मन मूर्छा होता है, प्राण आते जाते भी हैं तौ भी किसी कामके नहीं, अरु मन भी मैं नहीं, जो मनके प्रेरणेवाली बुद्धि है, जो निश्चय बुद्धि करती है, मन भी तहां जाता है सो भी मैं नहीं, जो बुद्धिका प्रेरक अहंकार है, अहंकार भी मैं नहीं, अहंकारका सार जीव है, जीवविना अहंकार किसी कामका नहीं, अरु जीव भी मैं नहीं, जीवका सार चिदावली है, चिदावली कहिये शुद्ध चिद्विषे चैतन्योन्मुखत्व होणा, जीव संज्ञातें प्रथम ईश्वरभाव चिदावली भी मैं नहीं, जो चिदावलीका सार चिन्मात्र

है, सो अद्वितीय निर्विकल्प स्वरूप है,इह सर्व अनात्म भ्रमकरि सिद्ध हुए हैं, मैं केवल शांतरूप आत्मा हौं ॥ हे रामजी! तेरा वास्तव स्वरूप है, सोइ होहु, तिसतें इतर अनात्मविषे अहंप्रतीतिका त्याग कर, तूं देहतें रहित निर्विकार है, तेरेविषे जन्ममृतादि विकार कोउ नहीं, अरु शांतरूप ज्यौंका त्यौं स्थित है, तूं कदाचित् स्वरूपतें अवर नहीं हुआ, तिसी स्वरूपविषे स्थित होहु ॥ इति श्रीयोगवासिष्ठे निर्वाणप्रकरणे सारप्रबोधनं नाम शताधिकनवमः सर्गः ॥१०९॥ ॥ ॥ ॥ वसिष्ठ उवाच ॥ हे रामजी! आत्मा चिन्मात्रतें सार अवर कछु नहीं, तिसीविषे स्थित होहु, जो ताप मिटि जावै ॥ हे रामजी! सर्व आत्माही स्थित है, जैसे बीज ही फल फूल होकरि स्थित होता है, तैसे सर्व आत्माही स्थित है, तौ निषेध अरु त्याग किसका करिये ॥ ॥ वाल्मीक उवाच ॥ हे शिष्य! ऐसे वसिष्ठजीके वचन श्रवण करिके रामजी प्रसन्न हुआ, जैसे कमल सूर्यकों देखिकरि खिलि आता है, तैसे रामजीकी बुद्धि वसिष्ठजीके वचनोंरूपी सूर्यकरि खिलि आई अरु बोलत भया ॥ ॥ राम उवाच ॥ हे भगवन्! सर्वधर्मज्ञ, तुमारी कृपातें अब मैं जाग्या हौं, अरु बडा आश्चर्य है, जो आत्मा सर्वदा अनुभवरूप है, अरु अपणा आप है, तिसके प्रमादकरि मैं एता काल दुःख पाया है, जो अहंताममतारूपी बडा बोझा शिर उपर था, तिसकरि मैं दुःखी था, जैसे किसीके शिर उपर पथ्थरकी शिला होवै, अरु ज्येष्ठआषाढका सूर्य तपै, अरु पैदे चलैं, तब दुःख पावते हैं, अरु जो उसके शिरतें कोउ उतारी लेवै, बलसों छायाविषे बैठावै तौ बडे सुखकों प्राप्त होता है, तैसे अज्ञानरूपी पैदे अरु धूप तिसविषे अहंताममतारूपी शिलाकरि दुःखी था, तुम वचनरूपी बलकरि उतारि लीनी है, अरु आत्मरूपी वृक्षकी छायाविषे विश्राम कराया है ॥ हे भगवन्! अब मेरे तांई शांत पद प्राप्त हुआ है, अरु तीनों ताप मिटि गए हैं, अब जो सुमेरु पर्वतका भार आनि प्राप्त होवै तौ भी मेरे तांई कष्ट कोउ नहीं, अब मेरे सर्व संशय निवर्त हुए हैं, जैसे शरत्कालका आकाश निर्मल स्वच्छरूप होता है, तैसे रागदोषरूपी द्वंद्व मेरा नष्ट भया

है, अब मैं अपणे स्वभावविषे स्थित हुआ हौं, परंतु एक प्रश्न है, उत्तर कृपाकरि कहौ, जो महापुरुष वारंवार प्रश्न करणेविषे खेद नहीं मानते ॥ हे भगवन्! तुम कहते हो सर्व ब्रह्मही है, तौ शास्त्रका विधि निषेध उपदेश किसकों है, जो यह कर्म कर्तव्य है, यह कर्म कर्तव्य नहीं, सो इह उपदेश किसकों है? ॥ ॥ वसिष्ठ उवाच ॥ हे रामजी! आत्मातें इतर कछु नहीं, विश्व भी तिसका चमत्कार है, जैसे समुद्रविषे पवन करिके नानाप्रकारके तरंग फुरते हैं, अरु जलतें इतर कछु नहीं, तैसे आत्मा चेतनमात्र है, तिसतें चैत्योन्मुखत्व अहंभावकों लेकरि फुऱ्या है, तिसकरि देशकाल वस्तु बनि गए हैं, अरु शास्त्र फुरे हैं, बहुरि फुरणेनें दो रूप धारे हैं, एक विद्या, एक अविद्या, तिसविषे जो विद्यारूप जीव हुए हैं, सो ईश्वर कहाते हैं, अरु अविद्यारूप हुए हैं, सो इतर जीव हैं, जिनकों अपणे स्वरूपविषे अहंप्रत्यय वास्तवकी रही है, सो ईश्वर है, अरु जिनकों स्वरूपका प्रमाद हुआ, अरु संकल्पविकल्पविषे वहते हैं, सो जीव दुःखी हैं, हे रामजी! एती संज्ञा फुरणेविषे हुई है, तौ भी आत्मातें इतर कछु नहीं, जैसे एकही रस फूल फल वृक्ष हुआ है, रसतें इतर कछु नहीं, अरु आत्मा रसकी नांई भी प्रमाणकों नहीं प्राप्त भया, फुरणेकरि ईश्वर जीव विद्या अविद्या हुई है, आत्माविषे कछु नहीं ॥ हे रामजी! जिसका संकल्प अधिभूतकविषे दृढ नहीं हुआ, सो जीव शीघ्रही आत्मपदकों प्राप्त होता है, तिसकों आत्माका साक्षात्कार शीघ्रही होता है, अरु जिनका संस्कार अधिभूतकविषे दृढ हुआ है, सो चिरकालकरि प्राप्त होते हैं, आत्मपदकी प्राप्तिविना दुःख पावते हैं, अरु जिनकों आत्मपदकी प्राप्ति होती है, सो सुखी होते हैं ॥ हे रामजी! ज्ञानी अरु अज्ञानीके स्वरूपविषे भेद कछु नहीं, सम्यक् अरु असम्यक् दर्शनका भेद है ॥ हे रामजी! विद्या भी दो प्रकारकी है, एक ईश्वरवाद, एक अनीश्वरवाद है, जो ईश्वरवादी हैं, सो तुरत पदकों प्राप्त होते हैं, जो अनीश्वरवादी हैं, तिनकों जब ईश्वरकी भावना होती है, तब शास्त्र गुरु करिके ईश्वरकी प्राप्ति होती है, अरु ईश्वरवाद भी

दो प्रकार है, एक यह है, जो अवर वासना त्यागिकरि ईश्वरपरायण होते हैं, तौ शीघ्रही ईश्वरकों प्राप्त होते हैं, सो आत्माही ईश्वर है, जो सर्वका अपणा आप है, अरु एक ईश्वरकों मानते हैं; वासना संसारकी उर होती है, तौ चिरकालकरि प्राप्त होते हैं, अरु अनीश्वरवादी भी दो प्रकारके हैं, एक कहते हैं, जो कछु होवैगा, तिनकों होते होतेकी भावनातें शास्त्र गुरुकरि आत्मपदकी प्राप्ति होवैगी, अरु एक कहते हैं, कछु नहीं, तिनकों चिरकालकरि जब आस्तिकभावना होवैगी, तब आत्मपदकों प्राप्त होवैंगे ॥ हे रामजी! तिनके निमित्त विधि अरु निषेध कही है, जो इस शुभ कर्मकों अंगीकार करौ, अरु अशुभ कर्म त्यागौ, तिसकरि जब अंतःकरण शुद्ध होवैगा, तब आत्मपदकी प्राप्ति होवैगी, इसनिमित्त विधिनिषेध कही है, जो विधिनिषेध शास्त्र न कहै तौ बडा छोटेकों भोजन करि लेवै, इसनिमित्त शास्त्रका दंड है ॥ हे रामजी! स्वरूपतें किसीकों उपदेश नहीं, भ्रमविषे उपदेश है, जिस पुरुषका भ्रम निवृत्त हुआ है, सो मोहविषे बहुरि नहीं डुबता, जैसे जलविषे तूंबा नहीं डुबता, तैसे ज्ञानवान संसार अज्ञानविषे नहीं डुबता, अरु जिसका चित्त वासनाकरि आवर्या हुआ संसरता है, तिसकों इस संसारतें निकसणा कठिन है, जैसे उजाडका कूआ होता है, तिसविषे कोउ गिरै, तौ निकसणा कठिण होता है, तैसे चित्तसाथ मिलीकरि संसारतें निकसणा कठिण होता है ॥ हे रामजी! इस चित्तकों स्थिर कर,जो दुःख तेरे मिटि जावैं, अरु सत्ता समान पदकों प्राप्त होवै ॥ हे रामजी! जिसकों आत्माका साक्षात्कार हुआ है, अरु अनात्मविषे अहंप्रत्यय निवृत्त भया है, सो पुरुष जो कछु करता है, तिसकरि बंधायमान नहीं होता, सदा अकर्ता आपकों देखता है, अरु जिसकी अहंप्रत्यय अनात्मविषे है, सो पुरुष करै तौ भी करता है, अरु जो न करै तौ भी करता है ॥ हे रामजी! जो ज्ञानी शुभ कर्म करता है, तौ शुभ कर्म करता हुआ स्वर्गकों प्राप्त होता है, अरु अशुभ कर्म करणेसों नरककों प्राप्त होता है, अरु जो शुभ कर्मकों त्यागता है, तौ भी

नरककों प्राप्त होता है, काहेतें जो अनात्मविषे आत्मअभिमान है, तातें बुद्धि इंद्रियांकों मनकरि निग्रह करु, अरु कर्म इंद्रियांकरि चेष्टा करु, देखणे सुनणे सुंघणेतें मैं तुझकों वर्जन नहीं करता, यही कहता हौं जो अनात्मविषे अभिमानकों त्याग, जब अनात्म अभिमानकों त्यागैगा, तब शांत पदकों प्राप्त होवैगा, जहां तेरा चित्त फुरैगा, तहां आत्माही भासैगा, आत्मातें इतर कछु न भासैगा, तातें चित्तकों त्याग, चित्त कहियें अहंभाव, अहंभावकों त्यागिकरि आत्मपदविषे स्थित होहु, अरु जैसे विश्वकी उत्पत्ति भई है, सो सुण, शुद्ध चेतनमात्र स्वरूपविषे चिदावलीरूप अहं तरंग फुर्या है, अरु तिस चिदावलीरूपी समुद्रविषे जीवरूपी तरंग उपजता है, अरु जीवरूपी समुद्रविषे अहंकाररूपी तरंग भास्या है, अरु अहंकाररूपी समुद्रविषे बुद्धिरूपी तरंग उपजा है, तिस बुद्धिरूपी समुद्रविषे चित्तरूपी तरंग भास्या, अरु चित्तरूपी समुद्रविषे संकल्परूपी तरंग उपजा है, तिस संकल्परूपी समुद्रविषे जगतरूपी तरंग उपजा है, अरु जगतरूपी समुद्रविषे देहरूपी तरंग भास्या है, तिसके संयोगतें दृश्यका ज्ञान हुआ है, जो यह पदार्थ है, यह नहीं, यह ऐसे है, तिसविषे देश काल दिशा सर्व हुए हैं ॥ हे रामजी! संकल्पकरि हो गए हैं, सो आत्मातें इतर कछु नहीं, केवल शांतरूप एकरस आत्मा है, तिसविषे नानाप्रकारके आचार रचे हैं, आत्मातें इतर कछु नहीं, जैसे स्वप्नकी सृष्टि नानाप्रकार हो भासती है, सो अपणाही अनुभव होता है, तैसे यह जगत भी जाण, आत्मा सर्वदा एकरस अद्वैत है, शुद्ध है, परम निर्वाण है, सर्वदा अपणे आपविषे स्थित है, फुरणे करिके नानाप्रकारकी कलना उदय भई है ॥ हे रामजी! शुद्ध आत्माविषे जो चिदेव हुई है, चिदेव पंचभूतानि, चिदेव भुवनत्रयं, सो चिदेव संज्ञा भी संकल्पविषे हुई है, आत्माविषे चिदेव संज्ञा भी नहीं, आत्मा निर्वाच्य पद है, तिसविषे वाणीकी गम नहीं, शुद्ध शांतरूप है, तिसविषे चिदेव जो फुरी है, तिस फुरणेविषे संसार हुएकी नांई स्थित है, जैसे एकही बीजनें वृक्ष फूल फल आदिक संज्ञा पाई है, सो

बीजतें इतर कछु नहीं, अरु आत्मा बीजकी नांई भी परिणम्या नहीं, संकल्पतेंही नाना संज्ञा कल्पी है, अरु जगत स्थित हुआ है, तौ भी आत्मातें इतर कछु नहीं, जैसे वायु चलता है, तौ भी वायु है, ठहरता है, तौ भी वायु है, तैसे आत्माविषे नानात्व कछु नहीं, केवल शुद्ध अद्वैत आत्मा है, आत्मारूपी समुद्र विषे नानाप्रकार विश्वरूपी तरंग स्थित हैं॥ हे रामजी! आकार भी आत्मातें इतर कछु नहीं, जो आत्मातें इतर भासै सो मिथ्या जाण, मृगतृष्णाके जलकी नांई जाणीकरि तिसकी भावना त्याग, अरु स्वरूपकी भावना करु॥ ॥ इति श्रीयोगवासिष्ठे विर्वाणप्रकरणे ब्रह्मैकत्वप्रतिपादनं नाम शताधिकदशमः सर्गः ॥११०॥ ॥ ॥ ॥ वसिष्ठ उवाच॥ हे रामजी! मेरे वचनोंकों धारि, अरु हृदयविषे आस्तिक भावना करु, जो यह सत्य कहते हैं, अरु सर्व त्याग करु, जब सर्व त्याग करैगा, तब चित्त क्षीण हो जावैगा, जब क्षीणचित्त हुआ, तब शांति होवैगी॥ हे रामजी! काष्ठ मौन होकरि अंतरतें सर्व त्याग करु, अरु बाह्य कर्मों कों करु, अभिमानतें रहित होकरि अंतर्मुखी होहु, अंतर्मुखी कहिये आत्माविषे स्थित होणा, जब आत्माविषे स्थित होवैगा, तब विद्यमान दृश्य भी तेरे तांई न भासैगा, काहेतें जो सर्व आत्माही भासैगा, अरु जो तेरे पास भेरीके शब्द होवैंगे तौ भी न भासैगा, अरु जो सुगंधि लेवैगा, तौ भी नहीं लीनी, जो कछु क्रिया करैगा, सो तेरे तांई स्पर्श न करैगी, आकाशकी नांई सर्वतें असंग रहैगा॥ हे रामजी! कछु देखै सो स्वरूपतें इतर न देखै, अरु जो बोलै सो भी आत्मातें इतर न फुरै, अंध अरु गुंगेकी नांई अरु पत्थरकी शिलावत् मौन हो रहु, संकल्पतें रहित अरु चेष्टा तेरी यंत्रकी पुतलीवत् खडी होवैगी, जैसे यंत्रकी पुतली तागेकी सत्ता करि चेष्टा करती है, तैसे नीति शक्तिकरि प्राणोंकी चेष्टा तेरी होवैगी, स्वाभाविक जो कछु क्रिया है, सो अभिमानतें रहित होकरि स्थित होणा, अरु जो अभिमानसहित चेष्टा करता है, सो मूर्ख असम्यक्दर्शी है, अरु जो सम्यक्दर्शी है, तिसकों अनात्मविषे अभिमान नहीं होता॥ हे रामजी! जिसकों अनात्म अभिमान

नहीं अरु चित्त जिसका लेपायमान नहीं होता, सो सारी सृष्टिका संहार करै, अथवा उत्पत्ति करै, तौ उसकों बंधन कछु नहीं होता, जो सर्व कर्मअभिलाषतें रहित होकरि करता है॥ हे रामजी! समाधिविषे स्थित होहु, अरु जाग्रतकी नांई सब कर्म करु, तेरेविषे दृष्टि भी आवै तौ भी तिनतें सुषुप्तकी नांई फुरणा कोउ न फुरै, अपणे स्वरूपकी समाधि रहै, अरु समाधि भी तब कहिए जो कोउ दूसरा होवै, जो इसविषे स्थित होइयें इसका त्याग करियें॥ हे रामजी! जहां एक शब्द अरु दो शब्द कहणा भी नहीं, अद्वितीयात्मा परमार्थसत्ता है, तिसविषे चित्तनें नानाप्रकारके विकार कल्पे हैं, ज्ञानीकों एकरस भासता है, अरु ज्ञानीकों ज्ञानी जानता है, जैसे सर्पके खोजकों सर्प जानता है, तैसे ज्ञानीकों एकरस आत्माही भासता है, सो ज्ञानीही जानता है, अरु मूर्खकों संकल्पकरि नानाप्रकार जगत भासता है, तातें संकल्पकों त्यागिकरि अपणे प्रकृत आचारविषे विचरु, जैसे उन्मत्तकी चेष्टा स्वाभाविक होती है, जैसे बालककी चेष्टा स्वाभाविक होती है, अंग हलते हैं, तैसे अभिमानतें रहित होकरि चेष्टा करु, जैसे पत्थरकी शिला जड होती है, तैसे दृश्यकी भावनातें रहित होहु, जो फुरै कछु नहीं, जडकी नांई जब ऐसा होवैगा, तब शांत पदकों प्राप्त होवैगा॥ हे रामजी! चित्तके संबंधकरि क्षोभ उत्पन्न होता है, जैसे वसंतऋतुविषे फूल उत्पन्न होते हैं, तैसे चित्तरूपी वसंतऋतुविषे दुःखरूपी फूल उत्पन्न होते हैं, जब तूं चित्तकों शांत करैगा, तब परमपदकों प्राप्त होवैगा, सो पद कैसा है, सूक्ष्मतें सूक्ष्म है, अरु स्थूलतें स्थूल है, तातें तूं असंग होहु, जब तूं स्थूलतें स्थूल होवैगा, तव भी असंग रहैगा, ऐसे पदकों पायकरि काष्ठपत्थरकी नांई मौन होहु॥ हे रामजी! दृश्य पदार्थकों त्यागिकरि जो द्रष्टा है जानणेवाला, तिसविषे स्थित होहु॥ हे रामजी! इंद्रियां अपणे अपणे विषयकों ग्रहण करतियां हैं, तिनकी उर तूं भावना मत करु, जो यह सुंदररूप है, इसकी प्राप्ति होवै, भलेविषे प्राप्त होणेकी भावना तूं मत करही, इनके जानणेवाला जो आत्मा है, तिसविषे स्थित होहु, जो पुरुष द्रष्टाविषे स्थित होता है, सो

गोपदकी नांई संसारसमुद्रकों लंघि जाता है ॥ हे रामजी ! जो पदार्थ दृष्ट आते हैं, तिनविषे अपणी अपणी सृष्टि है, कैसी सृष्टि है, जो संकल्पमात्रही है, अपणे अपणे संकल्पविषे स्थित है, अरु सर्व संकल्प आत्माके आश्रय हैं, जैसे सब पदार्थ आकाशविषे स्थित हैं, तैसे सर्व संकल्पकी सृष्टि आत्माके आश्रय है, अरु एकके संकल्पकों दूसरा नहीं जानता, सृष्टि अपणी अपणी है, जैसे समुद्रविषे जेते बुदबुदे हैं, तिनकों जलकरि एकता है, अरु आकारकरि एकता नहीं, तैसे स्वरूपकरि सबकी एकता है, अरु संकल्प सृष्टि अपणी अपणी है, अरु जो पुरुष ऐसे चिंतवता है, जो मैं उसकी सृष्टिकों जाणों तब जानता है ॥ हे रामजी ! आत्मा कल्पवृक्ष है, जैसी कोउ भावना करता है तैसी सिद्धि होती है, जब ऐसीही भावना करिके स्वरूपविषे जुडता है, जो सब सृष्टि मेरे तांई भासै तौ भावना करिके भासी आती है, अरु ज्ञानी ऐसी भावना नहीं करता, काहेतें जो आत्मातें इतर कोउ पदार्थ नहीं जानता, अरु जानता है, जो स्वरूपतें सबकी एकता है, अरु संकल्परूपकरि एकता नहीं होती, जैसे तरंगोंकी एकता नहीं, अरु जलकी एकता है, अरु जो एक तरंग दूसरेसाथ मिलि जाता है, तौ उससाथ एकता होती है, तैसे एकका संकल्प भावनाकरि दूसरेसाथ मिलता है, तातें ज्ञानी जानता है, संकल्परूप आकार नहीं मिलते, अरु स्वरूपकरि सबकी एकता है, अरु जिसकी भावना होती है, जो मैं इसकी सृष्टिकों देखों, तब उसके संकल्पसाथ अपणा संकल्प मिलायकरि देखता है, तब उसकी सृष्टिकों जानता है, जैसे दो मणि होवैं, तिनका प्रकाश भिन्न भिन्न होता है, जब दोनों एकठी राखियें, एकही ठौरविषे, तब दोनोंका प्रकाश भी एकठा हो जाता है, तैसे संकल्पकी एकता भावनाकरि होती है, अरु ज्ञानीकों प्रथम संकल्प हुआ होवै, जो मैं उसकी सृष्टिकों देखों तौ संकल्पकरि देखता है, अरु ज्ञानके उपजेतें वांछा नहीं रहती ॥ हे रामजी ! इच्छा चित्तका धर्म है, जब चित्तही नष्ट हो गया, तब इच्छा किसकी रहै, जब स्वरूपका प्रमाद होता है, तब चित्तरूपी दैत्य प्रसन्न होता

है, जो यह मेरा आहार हुआ, मैं इसका भोजन करौंगा ॥ हे रामजी ! जो पुरुष चित्तकी उर हुआ अरु स्वरूपकी भावना न भई, तब चित्तरूपी दैत्य जन्मरूपी वनविषे लिये फिरता है, अरु तिसका भोजन करता रहता है, जो उसका पुरुषार्थ नाश करता है, अरु आत्मभावनावाली बुद्धि उत्पन्न होणे नहीं देता, जैसे वृक्षकों अग्नि लगै, तब बहुरि उसविषे फल नहीं पडते, तैसे पुरुषार्थरूपी वृक्षकों भोगरूपी अग्नि लगी, तब शुद्धबुद्धिरूपी फल उत्पन्न नहीं होता ॥ हे रामजी ! चित्त आत्माविषे जोड, विषयकी उर जाणे न देवहु, यह चित्त दुष्ट है, जब इसकों स्थिर करौगे, तब परम अमृतकरि शोभायमान होहुगे, जैसे पूर्णमासीका चंद्रमा अमृतकरि शोभता है, तैसे ब्रह्म लक्ष्मीकरि शोभौगे, अरु परम निर्वाण पदकों प्राप्त होहुगे ॥
इति श्रीयोगवासिष्ठे निर्वाणप्रकरणे निर्वाणवर्णनं नाम शताधिकैकादशः सर्गः ॥ १११ ॥ ॥ ॥

॥ वसिष्ठ उवाच ॥ हे रामजी ! सप्तभूमिका ज्ञानकी हैं, इनकरि ज्ञान उत्पन्न होता है ॥ ॥ राम उवाच ॥ हे भगवन् ! जिस भूमिकाविषे जिज्ञासी प्राप्त होता है, तिसका लक्षण क्या है, यह सप्त भूमिका क्या हैं, अरु प्राप्त कैसे होतियां हैं सो कहौ ॥ ॥ वसिष्ठ उवाच ॥ हे रामजी ! यह सप्त भूमिका तुझकों कहता हौं, जिस प्रकार प्राप्त होतियां हैं,अरु जिस प्रकार भूमिकातें ज्ञान प्राप्त होता है,सो श्रवण करु ॥ हे रामजी ! जब बालक माताके गर्भविषे होता है, अरु बाह्य निकसता है, तब इसकों दृढ सुषुप्ति जड अवस्था होती है,जैसे ज्ञानीकी होती है, परंतु बालकविषे संस्कार रहता है, तिसकरि संस्कारकी सत्यता आगे होणी है, जैसे बीजविषे अंकुर होता है, तिसतें आगे वृक्ष होणा है, तैसे बालककी भावी होणी है, अरु ज्ञानीकी भावी नहीं होणी, जैसे दग्धबीजविषे अंकुर नहीं होता, तैसे ज्ञानीकी भावी नहीं होणी, संसारतें सुषुप्त है, अरु स्वरूपविषे नहीं, इसीतें भावी तिसविषे नहीं होणी, जब बालककों बाह्य निकसेतें कोउ काल व्यतीत होता है, तब दृढ जडता निवृत्त होती है, अरु सुषुप्ति रहती है, केते कालतें उपरांत सुषुप्ति भी लय

होती है, अरु चेतनता होती है, तब जानता है जो यह मैं हौं, यह मेरे पिता माता हैं, तब कुलवाले तिसकों सिखावते हैं जो यह मीठा है, यह कडवा है, यह तेरी माता है, यह पिता है, यह तेरा कुल है, इसकरि पाप होता है, इसकरि पुण्य होता है, इसकरि स्वर्ग पावता है, इसकरि नरक पावता है, इस प्रकार यज्ञ होता है, इस प्रकार तप होता है, इस प्रकार दान करता है ॥ हे रामजी! इस प्रकार कुलके उपदेशकरि अरु शास्त्रके भयकरि धर्मविषे विचरता है, अरु पापका त्याग करता है, ऐसा जो शास्त्र अनुसार विचरणे वाला पुरुष सो धर्मात्मा कहता है, सो धर्मात्मा पुरुष भी दो प्रकारके हैं, एक प्रवृत्तिकी उर हैं, एक निवृत्तिकी उर हैं, जो प्रवृत्तिकी उर हैं सो पुण्यकर्मोंकरि स्वर्ग फल भोगते हैं, उह मोक्षकों उत्तम नहीं जानते, इसतें संसारविषे भ्रमते हैं, जलके तृणवत्, कबि चिरकालतें इस क्रमविषे आयकरि मुक्त होते हैं, अरु जो निवृत्तिकी उर होता है, तिसकों विषयभोगतें वैराग्य उपजता है, अरु कहता है जो यह संसार मिथ्या है, मैं इसकों तरौं, अरु तिस पदकों प्राप्त होउं, जहां क्षय अरु अतिशय न होवै, यह संसार सर्वदा चलरूप है, अरु दुःखदाई है ॥ हे रामजी! तिस पुरुषकों इस क्रम करिके ज्ञानविज्ञान उत्पन्न होते हैं, अरु जो पशुधर्मा मनुष्य हैं, तिनकों ज्ञान प्राप्त होणा कठिन है, पशुधर्मा कहिये जो शास्त्रके अर्थकों नहीं जानते, जो शुभ क्या है, अरु अशुभ क्या है, अपणी इच्छाविषे वर्त्तणा, अनुभवकों ग्रहण करणा, विचारतें रहित होणा, अरु मनुष्य भी दो प्रकारके हैं, एक प्रवृत्तिका लक्षण, एक निवृत्तिका लक्षण है, प्रवृत्ति कहियें जिसकों शास्त्र शुभक हैं, तिसकों ग्रहण करणा, अशुभका त्याग करणा, कामना धारिके यज्ञादिक शुभ कर्म करणे फलके निमित्त, जो स्वर्गधनपुत्रादिक मेरे तांई प्राप्त होवेंगे, तिन प्रार्थना धारीकरि शुभ कर्म करणे, इस प्रकार संसारसमुद्रविषे वहते हैं, अरु चिरकालकरि निवृत्तिकी उर भी आते हैं, तब स्वरूपकों पावते हैं, सो निवृत्ति क्या है, जो निःकाम होकरि शुभ कर्म करणे; तिनकरि अंतःकरण शुद्ध होता है, तब तिस

कों वैराग्य उपजता है, अरु कहता है, मेरे तांई कर्मोंसाथ क्या है, अरु फलोंकरि क्या है, मैं किसी प्रकार आत्मपदकों प्राप्त होउं, अरु संसारतें कब मुक्त होउंगा, यह संसार मिथ्या है, अरु भोगकरि मेरे तांई क्या है, यह भोग सर्प हैं ॥ हे रामजी ! इस प्रकार भोगकी निंदा करता है, अरु उपरत होता है, अरु शम दम आदिक जो ज्ञानके साधन हैं तिनविषे विचरता है, अरु देश काल पदार्थकों शुभ अशुभ विचारता है, अरु मर्यादासाथ बोलता है, अरु संतजनका संग करता है, सच्छास्त्र ब्रह्मविद्याकों वारंवार विचारता है, इस प्रकार उसकी बुद्धि बढती जाती है, अरु संतजनका संग करता है, जैसे शुक्लपक्षके चंद्रमाकी कला दिन दिनप्रति बढती है तैसे इसकी बुद्धि बढती है, अरु विषयतें उपरत होती है, तीर्थ ठाकुरद्वारे शुभ स्थान पूजता है, अरु देह इंद्रियांकरि संतकी टहल करता है, अरु सर्वसाथ मित्रभाव दया सत्य कोमलताकरि विचरता है, ऐसा वचन बोलता है, जिसकरि सब कोउ प्रसन्न होवैं, अरु यथाशास्त्र होवैं, अरु इतर किसीकों नहीं कहणा, अरु अज्ञानीका संग त्यागणा, अरु स्वर्ग आदिक सुखकी भावना न करणी, केवल आत्मपरायण होणा, संत अरु शास्त्रोंकी दृढ भावना करणी, तिनके अर्थोंविषे सुरती लगावणी अवर किसी उर चित्त न लगावणा, जैसे कदर्यदरिद्री सर्वदा धनकी चिंतवना करता है, तैसे उह सदा आत्माकी चिंतवना करता है, जो पुरुष एते गुण संयुक्त है, तिसकों प्रथम भूमिका प्राप्त भई है, अरु पापरूपी सर्पकों मोर समान सिरनी करिके नाश करता है, संतजन सच्छास्त्र अरु धर्मरूपी मेघकों गर्दन उंची करि देखता है, अरु प्रसन्न होता है, इसका नाम शुभेच्छा है, तिसकों बहुरि दूसरी भूमिका आय प्राप्त होती है, जैसे शुक्लपक्षके चंद्रमाकी कला बढती जाती है, तैसे उसकी बुद्धि बढती जाती है, तिसके यह लक्षण हैं, जो सच्छास्त्र ब्रह्मविद्याकों विचारणा, अरु दृढ भावना लगावणी, तिस विचारका कवच गलेविषे पावता है, तिसकरि शस्त्रोंका घाउ कोउ नहीं लगता, जो इंद्रियांरूपी चोर हैं, इच्छारूपी तिनके हाथविषे बरछी

है, सो विचाररूपी कवच पहिरणेवालेकों नहीं लगती ॥ हे रामजी ! इंद्रियांरूपी सर्प हैं, तृष्णा तिनविषे विष है, तिसकरि मूर्खकों मारतियां हैं, अरु विचारवान जो पुरुष है, सो इंद्रियांके विषयकों नाशकरि छोडता है, अरु सर्व उरतें उदासीन रहता है, दुर्जनकी संगतिका बल करिके त्याग करता है, जैसे गधा तृणकों त्यागता है, तैसे मूर्खकी संगति देहतें लेकरि त्यागता है, अरु सर्व इच्छाका त्याग किया है, परंतु एक इच्छा तिसविषे भी रहती है, सो दया सर्वपर करता है, अरु संतोषवान रहता है, अरु निषेध गुण स्वाभाविक जाते रहते हैं, दंभ गर्व मोह लोभ आदिक तिसके स्वाभाविक नष्ट हो जाते हैं, जैसे सर्प कंचुकीकों त्यागिकरि शोभायमान होता है, तैसे विचारवान बाह्य इंद्रियांकों त्यागि करिके शोभता है, अरु जो क्रोध भी तिसविषे दृष्ट आता है, तौ क्षणमात्र होता है, हृदयविषे स्थित नहीं हो शकता है, अरु खाणा पीणा लेणा देणा जो कछु क्रिया है, सो विचारपूर्वक करता है, अरु सर्वदा शुद्धमार्गविषे विचरता है, संतजनोंका संग करणा, अरु सच्छास्त्रोंके अर्थ विचारणे, बोधकों बढावणा, तप करणा, तीर्थोंका स्नान करणा इस प्रकार कालकों व्यतीत करता है ॥ हे रामजी ! यह दूसरी भूमिका है, जब तीसरी भूमिका आती है, तब श्रुति जो हैं वेद, अरु स्मृति जो हैं धर्मशास्त्र तिनके अर्थ हृदयविषे स्थित होते हैं, जैसे कमलपर भंवरा आनि स्थित होता है, तैसे तिस पुरुषके हृदयविषे शुभ गुण स्थित होते हैं, फूलोंकी शय्या भी सुखदाई नहीं भासती, वन अरु कंदरा सुखदायके भासते हैं, जो वैराग्य तिसका दिन दिन बढता जाता है, अरु तलाव बावलियां नदियांविषे स्नान करणा अरु शुभस्थानोंविषे रहणा, पत्थरकी शिलापर शयन करणा, अरु देहकों तपकरि क्षीण करणा, अरु धारणाकरि चित्तकों किसी ठौरविषे न लगावणा, अरु आत्मभावना ध्यान करणा, अरु भोगतें सर्वदा उपरांत होणा, भोगकों अंतवंत विचारणा, जो यह स्थिर नहीं रहते, अरु देहके अहंकारकों उपाधि जाणीकरि त्यागता है, रक्त मांस पुरीषादिकतें पूर्ण जाणीकरि इसविषे अहंकारकों त्यागता है, अरु

निंदा करता है, सूके तृणकी नाई तुच्छ जाणीकरि त्यागता है, जैसे तृण विष्ठाकरि संयुक्त होवै, अरु तिसकों त्यागता है, तैसे देहके अहंकारकों त्यागता है, अरु कंदराविषे विचरणा, फूलफलका आहार करणा, अरु संतजनोंकी टहल करणी, इस प्रकार आयुर्बलाकों वीतावता है, सदा असंग रहता है, यह तीसरी भूमिका है॥ ॥ इति श्रीयोगवासिष्ठे निर्वाणप्रकरणे प्रथमद्वितीयतृतीयभूमिकालक्षणविचारो नाम शताधिकद्वादशः सर्गः ॥ ११२ ॥ ॥ वसिष्ठ उवाच ॥ हे रामजी! यह ज्ञानका साधन है, ब्रह्मविद्याकों विचारणा, वारंवार उसके अर्थकी भावना करणी, अरु पुण्यक्रियाविषे विचरणा, इसतें इतर ज्ञानका साधन नहीं, इसकरि ज्ञानकी प्राप्ति होती है, जिस पुरुषकों ऐसी भावना हुई है, तिसकों नानाप्रकारकी सुंगधि अगर चंदन चो एतें आदि लेकरि अरु अप्सरा अनिच्छित आय प्राप्त होवै, तब तिनका निरादर करता है, अरु जो स्त्री कों देखता है, तौ भी माता समान जाणता है, अरु पराए धनकों पत्थरे वटे समान देखीकरि वांछा न करता है, अरु सर्व भूतकों देखीकरि दयाही कर्त्ता है, जैसे आपकों सुख करि प्रसन्न दुःखकरि अनिष्ट जानता है,तैसे उह अवरकों भी आप जाणीकरि सुख देता है,अरु दुःख किसीकों नहीं देता, इस प्रकार पुण्यक्रियाविषे विचरता है, अरु सच्छास्त्रके अर्थका अभ्यास करता है, सर्वदा असंग रहता है, अरु असंगता भी दो प्रकारकी है ॥ ॥ राम उवाच ॥ हे भगवन्! असंग संगका लक्षण क्या है, तिनका भेद तौ तुमकों होवैगा ॥ ॥ वसिष्ठ उवाच ॥ हे रामजी! असंग दो प्रकारका है, एक समान है, एक विशेष है, तिनका लक्षण श्रवण करु, प्रथम समान यह है, जो उह कहता है, मैं कछु नहीं करता, न मैं किसीकों देता हौं, न मेरे तांई कोउ देता है, सर्व ईश्वरकी आज्ञा वर्ती है, जिसकों धन देणेकी इच्छा होती है, तिसकों धन देता है, जिससों लेणा होता है, तिससों लेता है, इसके आधीन कछु नहीं, अरु जो कछु दान तप यज्ञादि करता है, सो ईश्वरार्पण करता है,अपणा अभिमान कछुनहीं करता,अरु कहता है,सब ईश्वरकी शक्तिकरि होता है,

इस प्रकार निरभिमान होकरि धर्मचेष्टाविषे स्वाभाविक विचरता है, अरु जो कछु इंद्रियांके भोगकी संप
दा है, तिसकों आपदा जानता है, भोगकों महाआपदारूप मानता है, संपदा आपदारूप है, संयोग वियो
गरूप है, जेते पदार्थ हैं, सो सब संनिपातरूप हैं, विचारकरि नष्ट हो जाते हैं, सबकों नाशरूप जानता
है, संयोगवियोगविषे दुःखदाई है, परस्त्रीकों विषकी वल्ली समान रसतें रहित जानता है, अरु सर्व पदार्थों
कों परिणामी जाणीकरि इच्छा किसीकी नहीं करता है, अरु संपूर्ण विश्वका जो ईश्वर है, जिसकों सुख दे
णा है, तिसकों सुख देता है, जिसकों दुःख देणा है, तिसकों दुःख देता है, इसके हाथ कछु नहीं, करणे क
रावणेवाला ईश्वर है, न मैं कर्त्ता हौं, न मैं भोक्ता हौं, न मैं वक्ता हौं, जो कछु होता है, सो सब ईश्वरकी स
त्ता होकरि होता है, ऐसे निरभिमान होकरि पुण्यक्रियाकों करता है, सो समान असंग है, तिसके वचन सु
नणेतें श्रवणकों अमृतकी प्राप्ति होती है, इस प्रकार संतके मिलणेकरि भूमिकातें जिसकी बुद्धि बढी है, अ
रु निरभिमान है, तिसके उपदेशविषे अनुभवकरि तबलग अभ्यास करै, जबलग हाथपर आंवलेकी नांई
आत्माका अनुभव साक्षात्कार प्रत्यक्ष होवै, अरु यह जो कहा था ईश्वर सब कर्त्ता है, सो समान असंग
है, अरु विशेष असंगवाला कहाता है, जो न मैं कछु करता हौं, न करावता हौं, केवल आकाशरूप आत्मा
हौं, न मेरेविषे करणा है, न करावणा है, न कोउ अवर है, न मेरा है, केवल आकाशरूप अद्वैत आत्मा हौं ॥
हे रामजी! उह पुरुष न अंतर न बाहिर देखता है, न पदार्थ न अपदार्थ, न जड, न चेतन, न आकाश, न
पातालकों देखता है, न देशकों, न पृथ्वीकों, न मैं मेरेकों देखता है, निर्वास अज अविनाशी सर्व शब्द अ
र्थोंतें रहित केवल शून्य आकाशविषे स्थित है, चित्ततें रहित चेतनविषे जो प्रस्थित है, तिसकों असंग श्रे
ष्ठ कहिता है, बाह्य उसकी चेष्टा दृष्ट भी आती है, तौ भी अंतर पदार्थकी भावनाका अभाव है, जैसे जलविषे
कमल दृष्ट भी आता है, परंतु उंचाही रहता है, तैसे क्रियाविषे विचरता दृष्ट भी आता है, परंतु असंग र

हता है, कामना उसकों कोउ नहीं रहती, जो यह होवै, अरु यह न होवै, काहेतें जो उसकों संसारका अभावनिश्चय भया है, सर्व कलनातें रहित है, आत्मातें इतर किसी पदार्थकी सत्ता नहीं फुरती, सो श्रेष्ठ असंग कहता है, अरु करणेकरि उसका अर्थ कछु सिद्ध नहीं होता, अकरणेविषे प्रत्यवाय नहीं होता, उह सर्वदा असंग है, संसारविषे डूबता कदाचित् नहीं, संसारसमुद्रके पारकों प्राप्त हुआ है, अरु अनात्मविषे आत्मभावना तिस पुरुषनें त्यागी है, अहंभावका त्याग किया है, जेते पदार्थ हैं, इष्टअनिष्टरूप, तिनके सुखदुःखकी वेदना नहीं फुरती, सदा मौनरूप है, ऐसा पत्थर समान है, सो श्रेष्ठ असंग कहता है ॥ हे रामजी! एक कमल है, सो अज्ञानरूपी कीचसों निकसीकरि आत्मारूपी जलविषे विराजता है, संसारकी अभावना उसका बीज है, अरु तृष्णारूपी उस जलविषे मच्छियां हैं, कमलके चउफेर फिरतियां हैं, अरु कुकर्म दुःखरूपी तिससाथ कांटे हैं, अज्ञानरूपी रात्रिकरि मुख मूंदि रहता है, अरु विचाररूपी सूर्यके उदय हुएतें खिलता है, अरु शोभता है, सुगंधि तिसविषे संतोष है, सो हृदय बीच लगता है, फल तिसका असंग है, तीसरी भूमिकाविषे यह उगता है ॥ हे रामजी! संतकी संगति अरु सच्छास्त्रोंका विचरणा सारकों प्राप्त करता है, इन करिके अमृत मोक्षकों प्राप्त होता है, बडा कष्ट है, जो ऐसे स्वरूपकों विस्मरण करिके जीव दुःखी होते हैं, इसका स्वरूप दुःखोंका नाश करता है, जिसविषे दुःख कोउ नहीं, आनंदरूप है, इन भूमिकाद्वारा प्राप्त होता है, बहुरि बंधमान नहीं होता ॥ हे रामजी! यह तीसरी भूमिका ज्ञानके निकट वरती है, अरु विचारवान इन भूमिकाविषे स्थित होकरि बुद्धिकों बढावते हैं, जब इस प्रकार बोधकों बढावता है, अरु शास्त्र युक्तिसाथ रक्षा करता है, तब क्रम करिके यह तिसरी भूमिकाकों प्राप्त होता है, तहां इसकों असंगता प्राप्त होती है, जैसे किरसांणी खेतीकी रक्षा करता है, बढावता है, तैसे विचाररूपी जलकरि बुद्धिकों बढावता है, जब बुद्धिरूपी वल्ली बढती है, तब चतुर्थ भूमिका प्राप्त होती है,

अरु अहंकार मोहादिक शत्रुतें रक्षा करता है॥ हे रामजी ! इस भूमिकाकों प्राप्त होकरि यह ज्ञानवान होता है, सो यह भूमिका क्रम करिके प्राप्त होती है, कै बडे पुण्य कर्म कियें होवैं, तिनकरि आनि फुरती है, अथवा अकस्मात् आनि फुरती है, जैसे नदीके तटपर कोउ आय बैठा होवै, अरु नदीके वेगकरि बीच जाय पडै, तैसै जब पहिली भूमिका प्राप्त होती है, तब फेरिबुद्धिकों बढावता है, जब बुद्धिरूपी वल्ली बढती है, तब ज्ञानरूपी फल लगता है, जब ज्ञान उपजा, तब प्रत्यक्ष क्रिया तिसविषे दृष्ट भी आवै, तौ भी इसका अभिमान नहीं रहता, जैसे शुद्ध मणि प्रतिबिंबकों ग्रहण भी करती है, परंतु रंग कोउ नहीं चढता॥ ॥ इति श्रीयोगवासिष्ठे निर्वाणप्रकरणे तृतीयभूमिकाविचारो नाम शताधिकत्रयोदशः सर्गः॥ ११३॥

॥ राम उवाच॥ हे भगवन्! तुमनें भूमिका वर्णन करि, तिसविषे मेरे तांई यह संशय है, जो भूमिकातें रहित हैं, अरु प्रकृतिके सन्मुख हैं, तिनकों भी कदाचित् ज्ञान उपजैगा, अथवा न उपजैगा, अरु जिसनें एक भूमिका पाई होवै, कै दो भूमिका पाई होवैं, अथवा तीसरी भूमिका पाई होवै, और शरीर तिसका छूटि गया, अरु आत्मापदका साक्षात्कार न भया, अरु स्वर्गादिककी उसकों कामना भी नहीं तब उह किस गतिकों प्राप्त होता है॥ ॥ वसिष्ठ उवाच॥ हे रामजी! उह पुरुष जो विषयी हैं, तिनकों ज्ञान प्राप्त होणा कठिन है, उह वासना करिके घटीयंत्रकी नांई फिरते हैं, कबहू स्वर्ग, कबहू पाताल जाते हैं, अरु दुःख पावते हैं, कदाचित् अकस्मात काकतालीयन्यायकी नांई उसकों संतका संग, अरु सच्छास्त्रोंका श्रवण करणा यह वासना आय फुरती है, अरु जैसे मरुस्थलविषे वल्ली लगणी कठिन है, तैसे जिस पुरुषकों आत्माका प्रमाद है, अरु भोगकी भावना है, तिसकों ज्ञान प्राप्त होणा कठिन है, परंतु जब अकस्मात् संतके संगतें तिसकों वैराग्य उपजता है, अरु बुद्धि उसकी निवृत्तिकी उर आती है, तब भूमिका द्वारा ज्ञान तिसकों प्राप्त होता है, तब मुक्त होता है॥ हे रामजी ! यह भावना अकस्मात् उपजेंविना यो

निविषे भ्रमता है, अरु जिसकों एक अथवा दो भूमिका प्राप्त भई हैं, अरु शरीर तिसका छूटि गया, तब अवर जन्म पायकरि ज्ञानकों प्राप्त होता है, पिछला संस्कार जागि आता है, अरु दिन दिन बढता जाता है, जैसे बीजतें वृक्षका अंकुर होता है, बहुरि टास फूल फलकरि बढता जाता है, तैसे उसकों अभ्यासका संस्कार बढता जाता है, अरु ज्ञान प्राप्त होता है, जैसे पहिलवान खेलता है, अरु रात्रिकों सोय जाता है, बहुरि दिन हुए ॥ उठता है, तब पहिलवानहिका अभ्यास आय फुरता है, जैसे कोउ मार्ग चलता चलता सोय जावै, अरु जागिकरि चलणे लगै, तैसे उह फेरि पूर्वके अभ्यासकों लगता है ॥ हे रामजी! जिसकों भावना होती है, जो मेरे तांई विशेषता प्राप्त होवै, तिसकरि जन्मकों पावता है, ब्रह्मा आदि चीटीपर्यंत जिसकों विशेष होणेकी कामना है, सो जन्म पावता है, अरु ज्ञानीकों भोगकी इच्छा, अरु विशेष प्राप्त होणेकी इच्छा नहीं होती, जिनकों भोगकी इच्छा होती है, सो भोगकरि आपकों विशेष जानता है, अरु अनिष्टके निवृत्तिकी इच्छा करते हैं, अरु ज्ञानीकों वासना कोउ नहीं होती, जो यह विशेषता मेरे तांई प्राप्त होवै, इसीतें बहुरि जन्म नहीं पावता, जैसे भूना बीज नहीं उगता, तैसे वासनातें रहित ज्ञानी जन्म नहीं पावता ॥ हे रामजी! जन्मका कारण वासना है, जैसी जैसी वासना होती है, तैसी अवस्थाकों प्राप्त होता है; सो नानाप्रकारकी वासना है, जब शरीर छूटणेका समय आवता है, तब जो वासना दृढ होती है, जिसका सर्वदा अभ्यास होता है, अंतकालविषे उह सर्व वासना दिखाइ देती है, पाठकी अरु तपकी कर्मकी देवताकी इत्यादिक वासना आगे आनि स्थित होती हैं, तिस समय सबकों मर्दन करिके उही भासती है ॥ हे रामजी! तिस समय अग्रगत पदार्थ होते हैं, सो भी नहीं भासते, पांचों इंद्रियके विषय विद्यमान होवैं तौ भी नहीं भासते,उही पदार्थ भासता है, जिसका दृढ अभ्यास किया होता है, वासना तौ अनेक होती हैं,परंतु जैसी वासना दृढ होती है, तिसीके अनुसार शरीर धारता है, जब देह छूटता है, तब मुहूर्त

पर्यंत जडता रहती है, सुषुप्तिकी नांई, तिसके उपरांत चेतनता होती है, तब वासनाके अनुसार शरीरकों देखता है, अरु जानता है, यह मेरा शरीर है, मैं उत्पन्न हुआ हौं, एक इसी प्रकार होते हैं, अरु एक ऐसे होते हैं, जो तहां तिसी क्षणविषे युगका अनुभव करते हैं, बहुरि एक ऐसे होते हैं, जो चिरकालपर्यंत जड रहते हैं, चिरकालतें उनकों चेतनता फुरती है, तिसके अनुसार संसारभ्रमकों देखते हैं, अरु एक संस्कारवान होते हैं, तिनकों शीघ्रही एक क्षणतें चेतनता होती है, अरु जानता है, जो मैं उस ठौरतें मुआ हौं, अरु इस ठौर आय जन्म्या हौं, यह मेरी माता है, यह मेरा पिता है, यह मेरा कुल है, इस प्रकार एक मुहूर्तविषे जागिकरि देखता है, अरु बडे कुलकों देखता है, इसी प्रकार परलोककों देखता है, अरु यमराजाके दूतकों देखता है, अरु जानता है, यह मेरे तांई लिये जाते हैं अरु देखता है जो मेरे पुत्रोंनें मेरे पिंड किये हैं, तिनकरि मेरा शरीर हुआ है, अरु मेरे तांई दूत ले चले हैं, तब आगे धर्मराजाकों देखता है, तिसके निकट जाय खडा होता है, अरु पुण्य पाप दोनों मूर्त्यां धारिकरि इसके आगे आनि स्थित होते हैं, तब धर्मराज अंतरजामीसों पूछता है; जो इसनें क्या कर्म किये हैं, जब पुण्यवान होता है, तब स्वर्गभोग भोगाय करि बहुरि योनिविषे डारी देते हैं, जो पापी होता है तौ नरकविषे डारि देते हैं, इस प्रकार जन्मकों धारता है, सर्पकी योनिमें कहता है, मैं सर्प हौं, बलद वानर तीतर मच्छ बगला गर्दभ वल्ली वृक्ष इत्यादिक योनीकों पावता है, अरु जानता है, मैं यही हौं, अकस्मात् काकतालीय योगकी नांई कदाचित् मनुष्य शरीर पावता है, अरु माताके गर्भविषे जानता है, जो इहां मैं जन्म लिया है, यह मेरी माता है, मैं पितातें उत्पन्न भया हौं, यह मेरा कुल है, बहुरि बाहिर निकसता है, बालक होता है, अरु जानता है जो मैं बालक हौं, बहुरि यौवन अवस्था होती है, तब जानता है, मैं ज्वान हौं, बहुरि वृद्ध होता है, तब जानता है, मैं वृद्ध हौं, इस प्रकार कालकों वीतावता है, बहुरि मृत्युकों पावता है, अरु सर्प तोता तीतर वानर

मच्छ कच्छ वृक्ष पशु पक्षी देवता इत्यादिक जन्म धारता है ॥ हे रामजी! संसारविषे घटीयंत्रकी नांई फिरता है, कबहू ऊर्ध्वकों, कबहू अधकों जाता है, स्वरूपके प्रमादकरि दुःख पावता है ॥ हे रामजी! एता विस्तार जो तुमकों कहा है, सो बन्या कछु नहीं, केवल अद्वैत आत्मा है, चित्तके संयोगकरि एते भ्रमकों देखता है, वासनाद्वारा विमानोंकों देखता है, तहां आकाशम जाता है, जैसे पवन गंधकों ले जाता है, तैसे पुर्यष्टकाकों ले जाता है, अरु शरीरकों देखता है ॥ हे रामजी! आत्मातें इतर कछु नहीं, परंतु चित्तके संयोगकरि एते भ्रमकों देखता है, तातें चित्तकों स्थित करौ, तब भ्रम मिटि जावैगा, अरु आत्मतत्त्वमात्रही शेष रहैगा, सो शुद्ध है, अरु आनंदरूप है, तिसविषे स्थित होहु ॥ ॥ इति श्रीयोगवासिष्ठे निर्वाणप्रकरणे विश्ववासनारूपवर्णनं नाम शताधिकचतुर्दशः सर्गः ॥ ११४ ॥ ॥ ॥

॥ वसिष्ठ उवाच ॥ हे रामजी! पूर्व तुझकों प्रवृत्तिवालेका क्रम कहा है, अब निवृत्तिका क्रम सुण, जिसकों भूमिका प्राप्त भई है, अरु आत्मपद नहीं प्राप्त भया, तिसके पाप तौ सर्व दग्ध हो जाते हैं, जब उसका शरीर छूटता है, तब वासनाके अनुसार शून्याकार हुआ, बहुरि अपणेसाथ शरीर देखता है, बहुरि बडेपर लोककों देखता है, तहां स्वर्गके सुख भोगता है, विमानपर चढता है, लोकपालके पुरोंविषे विचरता है, जहां मंद मंद पवन चलता है, सुंदर वृक्षोंकी सुगंधी है, पांचों इंद्रियांके रमणीय विषय हैं, तिन स्थानोंविषे विचरता है, देवताविषे क्रीडा करता है, भोगकों भोगीकरि संसारविषे उपजता है, बहुरि भूमिकाक्रमकों प्राप्त होता है, जैसे मार्ग चलता कोउ सोय जावै, जागिकरि बहुरि चलता है, तैसे शरीर पायकरि बहुरि भूमिकाके क्रमकों प्राप्त होता है, जैसी जैसी भावना दृढ होती है, तैसे हो भासता है, यह सब जगत संकल्पमात्र है, संकल्पके अनुसारही भासता है, वासनाके अनुसार परलोक भ्रम सुख दुःख देखता है, तहांतें भोगीकरि बहुरि संसारविषे आनि पडता है, इसी प्रकार संकल्पकरि भटकता है, जब आत्माकी उर आता है,

तब संसारभ्रम मिटि जाता है,जबलग आत्माकी उर नहीं आता, तबलग अपणे संकल्पकरि संसारकों देखता है, जीव जीव प्रति अपणी अपणी सृष्टि भासती है, देवता दैत्य भूमिलोक स्वर्ग सब संकल्पके रचे हुए हैं, जेता कछु संसार भासता है, ब्रह्मा विष्णु रुद्रतें आदि लेकरि सब जगत मनोमात्र है, मनके संकल्पतें उदय हुआ है, असतरूप है, जैसे मनोराज्य गंधर्व नगर स्वप्नसृष्टि भ्रमरूप है, तैसे यह जगत भ्रमरूप है, सब जीवकी अपणी अपणी सृष्टि है, परस्पर अदृष्ट है, उसकी सृष्टि उह नहीं जाणता, कहूं उदय होती भासती है, कहूं लय हो जाती है, जैसे मूर्ख अवर देशकों जाता है, तैसे देहकों त्यागिकरि परलोक जाता है, अरु स्वरूप विषे आणा जाणा अहं त्वं कल्पना कोउ नही, केवल सत्तामात्र अपणे आपाविषे स्थित है, जगत भी उ ही है ॥ हे रामजी! यह विश्व आत्मस्वरूप है, जैसे मणीका चमत्कार होता है, तैसे विश्व आत्माका च मत्कार है, अरु जो कछु तेरे तांई भासता है, सो आत्माही है, आत्माविना आभास नहीं होता, जैसे इ क्षुविषे मधुरता होती है, अरु मिरचाविषे तीक्ष्णता होती है, तैसे आत्माविषे विश्व है, जो कछु देखता है, श्रवण करता है, जो स्पर्श करै, सुगंध लेवै, सो सर्व आत्माही जाण, अथवा जो इनके जाणनेवाला है अनुभवरूप तिसविषे स्थित होहु, इंद्रियां अरु विषयकों त्यागिकरि अनुभवरूपविषे स्थित होहु ॥ हे रा मजी! यह विश्व संवितरूप है, अरु संवितही विश्वरूप है, जब संवित बहिर्मुख होकरि रस लेती है, तब जाग्रतकों देखती है, जब अंतर्मुख होकरि रस लेती है, तब स्वप्न होता है, जब शांत हो जाती है, तब सुषु प्ति होती है, संसारकों सत्य जाणीकरि जो रस लेती है, तब जाग्रत स्वप्न अरु सुषुप्ति अवस्था होती है, अरु जब संवितते रसकी सत्यता जाणी रहै, तब तुरीया पद होता है, जो इसकों जाणना फुरता है, यह पदार्थ है, यह नहीं; जब यह नष्ट होवै तब तुरीया पद है ॥ हे रामजी! यह विश्व फुरणेमात्र है, जब फुर णां नष्ट होवै तब विश्व देखी नहीं जाती, जैसे स्वप्नके देश काल पदार्थ जागेतें मिथ्या होते हैं, तैसे यह ज

गत भी मिथ्या है, अरु जीव जीव प्रति जो अपणी अपणी सृष्टि होती है, तिसविषे आप भी कछु बनि पडता है, तातें दुःखी होता है, जब इस अहंकारकों त्यागिकरि अपणे स्वरूपविषे स्थित होवै, तब विश्व कहूं नहीं ॥ ॥ इति श्रीयोगवासिष्ठे निर्वाणप्रकरणे सृष्टिनिर्वाणैकताप्रतिपादनं नाम शताधिकपंचदशः सर्गः ॥११५॥ ॥ वसिष्ठ उवाच ॥ हे रामजी! यह सृष्टिका स्वरूप संकल्पमात्र है,अरु संकल्प भी आकाशरूप है, आकाश अरु स्वर्गविषे कछु भेद नहीं, जैसे पवन अरु स्पंदविषे भेद नहीं, कैसी सृष्टि है जो अनेक पदार्थ हैं, परंतु परस्पर रोकती नहीं, अरु वास्तवतें विश्व भी आत्माका चमत्कार है, अरु आत्मरूप है, जो आत्मरूप है, तौ राग किसविषे करियें, अरु दोष किसविषे करियें, चेतन धातुविषे कोटि ब्रह्मांड स्थित हैं, अरु यह आश्चर्य है, जो आत्मातें इतर हुआ कछु नहीं, अरु भिन्न भिन्न संवेदन दृष्ट आती है, अरु नाना प्रकारके पदार्थ भासते हैं ॥ हे रामजी! जीव जीव प्रति अपणी अपणी सृष्टि है, एक सृष्टि ऐसी है जो तिनका संकल्प एक दृष्ट आता है, परंतु सृष्टि अपणी अपणी है, अरु एक ऐसे है जो भिन्न भिन्न है, परंतु समानता करिके एकही दृष्ट आती है, जैसे जलकी बूंदां एकठी होतियां हैं, जैसे धूडके कणके भिन्न भिन्न होते हैं, परंतु एकही धूड भासती है, जैसे नदीविषे नदी पडती है, तौ एकही जल हो जाता है, तैसे समान अधिकरण करिके एकही भासते हैं, एक एककेसाथ मिलते हैं, अरु नहीं भी मिलते, जैसे क्षीरसमुद्रविषे घृत डारियें तौ नहीं मिलता, तैसे एक संकल्प ऐसे है, जो अवरसाथ नहीं मिलते, जैसे एक सूर्यका प्रकाश होवै, अरु एक दीपकका प्रकाश होवै, अरु एक मणीका प्रकाश होवै, तब उहां भिन्न भिन्न दृष्ट आते हैं, अरु एक जैसे होते है, तैसे केई सृष्टि एकही भासतियां हैं, अरु भिन्न भिन्न होतियां हैं, अरु केई एकठी होतियां हैं, अरु भिन्न भिन्न दृष्ट आतियां हैं ॥ हे रामजी! एती सृष्टि जो मैं तेरे तांई कही है, सो सब अधिष्ठानविषे फुरणे करिके केई कोटि उत्पन्न होती हैं, अरु केई कोटी लीन हो जातियां हैं, जैसे जलविषे तरंग बु

दबुदे उपजीकरि लीन हो जाते हैं, तैसे सृष्टि उत्पन्न अरु लीन होतियां हैं, अधिष्ठान ज्योंका त्यों है, काहेतें जो तिसतें इतर कछु नहीं, अरु ब्रह्म आत्मा आदिक जो सर्व है, सो भी फुरणेविषे हुए हैं, जबलग शब्द अर्थ की भावना है, तबलग भासते हैं, जब भावना निवृत्त हुई, तब शब्द अर्थ कोउ नहीं भासैगा, केवल शुद्ध चेतनमात्रही शेष रहैगा, बहुरि संसारका भाव किसी ठौर न होवैगा, जैसे पवन जबलग चलता है, तबलग जाणता है जो पवन है, अरु गंध भी पवन करिके जाणीती है, सुगंध आई अथवा दुर्गंध आई, अरु जब पवन चलणेतें रहित होता है, तब नहीं भासता, अरु गंध भी नहीं भासती, तैसे जब फुरणा निवृत्त हुआ, तब संसार अरु संसारका अर्थ दोनों नहीं भासते, अरु फुरणेविषे जीव जीव प्रति ज्यों ज्यों अपणी अपणी सृष्टि है, तिस सृष्टिविषे सत्ता समान ब्रह्म स्थित है, अरु सर्वका अपणा आप है, द्वैतभावकों कदाचित् नहीं प्राप्त भया॥ हे रामजी! तातें ऐसे जाण जो आकाश भी आत्मा है, पृथ्वी भी आत्मा है, जल भी आत्मा है, अग्नि आदिक सर्व पदार्थ आत्माही है, अथवा ऐसे जाण जो सर्व मिथ्या है, इनका साक्षीभूत सत् ब्रह्मही अपणे आपविषे स्थित है, इतर कछु नहीं, उसी ब्रह्मविषे अंशतें अनेक सुमेरु अरु मंदराचल आदिक स्थित हैं, अरु अंशांशी भाव भी आत्माविषे स्थूलताके निमित्त कहे हैं, वास्तव नहीं, जतावणेनिमित्त कहे हैं, आत्मा एक रस है॥ हे रामजी! ऐसा पदार्थ कोउ नहीं, जो आत्मसत्ताविना होवै, जिसकों सत्य जाणता है सो भी आत्मा है, अरु जिसकों असत्य जानता है, सो भी आत्मा है, आत्माविषे जैसे सत्यका फुरणा है, तैसे असत्यका फुरणा है, फुरणा दोनोंका तुल्य है, जैसे स्वप्नविषे एक सत्य जाणता है, एक असत्य जाणता है, तैसे जो इंद्रियांके विषय होते हैं, तिनकों सत जाणता है, अरु आकाशके फूल, ससेके सिंगकों असत् कहता है, सो सर्व अनुभवकरि फुरे हैं, तातें अनुभवरूप है, अरु ऐसा पदार्थ कोउ नहीं जो आत्माविषे असत् नहीं, जो कछु भासते है सो सर्व फुरणेविषे हुए हैं, सत्य क्या अरु असत्य क्या, सब मिथ्या है, स्वप्नके सत् अ

रु असत्की नांई है, जो अनुभव करिके सिद्ध है, सो सर्व सत्य है, अरु सत्य अनुभवतें इतर है, सो सब असत्य है ॥ हे रामजी! गुणातीत परमात्मस्वरूपविषे स्थित होहु ॥ हे रामजी! भूत भविष्य वर्तमान तीनों कालविषे ज्ञानवान् पुरुष सम है, अरु दशों दिशा आकाश जल अग्नि आदिक पदार्थ तिसकों सर्व आत्माही दृष्ट आता है, आत्मातें इतर कछु नहीं भासता, सूर्य चंद्रमा तारे सर्व आत्मा हैं, यह विश्व आकाशरूप है, अरु शुद्ध निर्मल है, आकाशविषे आकाश स्थित है, इतर कछु नहीं, अरु जो तेरे तांई इतर भासे, सो मिथ्या जाण, भ्रम करिके सिद्ध हुआ है, सत् कछु नहीं, अरु जो परमार्थकरि देखैं तौ, सर्व आत्मा है ॥ इति श्रीयोगवासिष्ठे निर्वाणप्रकरणे विश्वाकाशैकताप्रतिपादनं नाम शताधिकषोडशः सर्गः ॥ ११६ ॥

॥ वसिष्ठ उवाच ॥ हे रामजी! यह विश्व स्वप्नसमान है, जैसे स्वप्नकी सैना नानाप्रकार दिखती है, शस्त्र चलते हैं, इत्यादिक भासते हैं, अरु आत्माविषे इनका रूप देखणा, अरु मानणा, शब्द अर्थ कोउ नहीं, जगततें रहित है, अरु जगतरूप भान होता है, अहं त्वं मेरा तेरा जेता कछु भासता है, सो सब स्वप्नवत् है, भ्रम करिके सिद्ध हुआ है, सर्वका अधिष्ठान है, सो सत्य है, सर्व तिसीविषे कल्पित है, अरु जो अनुभवकारि देखियें तौ सर्व आत्मस्वरूप है, इतर देखियें तौ कछु नहीं, जैसे स्वप्नके देश काल पदार्थ सब अर्थाकार भी भासते तौ भी मिथ्या है, तैसे यह विश्व भ्रम करिके फुरती है, उनकी अपेक्षाकरि उह तूं है, उसकी अपेक्षाकरि उह अहं है, वास्तवतें दोनों नही, जो है सो आत्माही है ॥ राम उवाच ॥ हे भगवन्! तुम कहा जो त्वं आदिक अहंपर्यंत अरु अहं आदिक त्वं पर्यंत सर्व स्वप्नसैनाकी नांई मिथ्या है, अरु अनुभवकरि देखिये तौ आत्मस्वरूप है, हम स्वप्न सैनाविषे हैं, अथवा हमारा अहं आत्मा है सो कहौ ॥ ॥ वसिष्ठ उवाच ॥ ॥ हे रामजी! जो अनात्म देहादिकविषे अहंभावना करणी मैं हौं तौ स्वप्नसैनाके तुल्य हैं, अरु जो अधिष्ठान चिन्मात्रविषे दृश्यतें अरु अहंकारतें रहित अहंभावना करणी सो आत्मरूप है ॥ हे रामजी! तूं आत्मरूप है, अरु यह वि

श्व सत् भी नहीं, असत् भी नहीं, जो अधिष्ठानरूपकरि देखियें सो आत्मरूप है, अरु जो अधिष्ठानतें रहित देखियें तौ मिथ्या है, सो अधिष्ठान शुद्ध है, आनंदरूप है, चित्ततें रहित चिन्मात्र परम ब्रह्म है, तिसविषे अज्ञानकरि दृश्य दिखती है, जैसे असम्यक्दृष्टि करिके सीपिविषे रूपा भासता है, तैसे आत्माविषे अज्ञानी दृश्य कल्पते हैं॥ हे रामजी! दृश्य अविचारतें सिद्ध है, विचार कियेतें कछु वस्तु नहीं होती, जिसके आश्रय कल्पित है सो अधिष्ठान सत्य है, जैसे सीपीके जाणेतें रूपेकी बुद्धि जाती रहती है, तैसे आत्मविचारतें विश्वबुद्धि जाती रहती है, जैसे समुद्रविषे पवनकरि चक्र तरंग फुरते हैं, अरु प्रत्यक्ष भासते हैं, विचार कियेतें चक्रविषे भी जलबुद्धि होती है, तैसे आत्मरूपी समुद्रविषे मनके फुरणेकरि विश्वरूपी चक्र उठते हैं, विचार कियेतें तुझकों मनके फुरणेविषे भी आत्मरूप भासैगा, विश्वरूपी चक्र न भासैंगे, भ्रम निवृत्त हो जावैगा, जो वस्तु फुरणेविषे उपजी है, सो अफुर करिके निवृत्त हो जाती है, यह विश्व अज्ञानकरि उपजी है, अरु ज्ञान करिके लीन हो जावैगी, तातें विश्व भ्रममात्र जाण॥ ॥रामउवाच॥ हे भगवन्! तुम कहा जो ब्रह्मा रुद्र आदि अरु उत्पत्ति संहार करणेपर्यंत सब विश्व भ्रममात्र है, ऐसे जानणेकरि क्या सिद्ध होता है, यह तौ प्रत्यक्ष दुःखदायक भासती है यौं दिखती है॥ ॥वसिष्ठ उवाच॥ हे रामजी! जो कछु तूं देखता है, सो सर्व आत्मरूप है, इतर कछु नहीं, सम्यक्दृष्टि करिके, अरु असम्यक्दृष्टि करिके विश्व है, तौ दृष्टिका भेद है, सम्यक् असम्यक् देखणेका अधिष्ठान ज्यौंका त्यौं है, जैसे एक जेवरी पडी होवै, अंधकारकी उपाधिकरि सर्प हो भासै, अरु भयदायक होवै, जो प्रकाशकरि देखियें तौ जेवरीही भासती है, तैसे जिसतें आत्माकों जाण्या है, तिसकों दृश्य भी आत्मरूप है, अज्ञानीकों विश्व भासती है, अरु दुःख पावता है, जैसे मूर्ख बालक अपणे परछायेंविषे वैताल कल्पिकरि भयमान होता है, अपणे न जानणेकरि दुःख पावता है, जो जाणै तौ भय किस निमित्त पावै॥ हे रामजी! अपणेही संकल्पकरि आप बंधायमान होता है, जैसे धुरा

ण कीट अपणे बैठणेका स्थान बनावती है, आपही फसी मरती है, तैसे अनात्मविषे अहंप्रतीति करिके आपही दुःख पावता है ॥ हे रामजी! आपही संसारी होता है, आपही ब्रह्म होता है, जब दृश्यकी उर फुरता है, तब संसारी होता है, जब स्वरूपकी उर आता है, तब ब्रह्म आत्मा होता है, तातें जो तेरी इच्छा होवै सो करु, जो संसारी होवणेकी इच्छा होवै तौ संसारी होउ, अरु जो ब्रह्म होणेकी इच्छा होवै तौ ब्रह्म होउ, अरु जो मेरेसों पूछै तौ दृश्य अहंकारकों त्यागिकरि आत्माविषे स्थित होउ, विश्व भ्रम मात्र है, वास्तव कछु नहीं, यही पुरुषार्थ है, जो संकल्पसाथ संकल्पकों काटहू, जब बाह्यतें अंतर्मुख हुआ; तब ब्रह्महही भासैगा, दृश्यकी कल्पना मिटिजावैगी, काहेतें, जो आगे भी नहीं ॥ हे रामजी! जो सत् वस्तु आत्मा है, अनेक यत्न करियें तौ नाश नहीं होता, अरु जो असत्य अनात्मा है, तिसके निमित्त यत्न करियें तौ सत नहीं होता, जो सत् वस्तु है, तिसका अभाव कदाचित् नहीं, अरु जो असत् है, तिसका भाव नहीं होता, असत् वस्तु तबलग भासती है, जबलग तिसकों भली प्रकार नहीं जाण्या, जब बिचार करि देखियें तब नाश हो जाती है, अविद्यक पदार्थ विद्याकरि नष्ट हो जाता है, जैसे स्वप्नका सुमेरु पर्वत सत्य होवै तौ जाग्रतविषे भी भासै, तातें है नहीं, जो जाग्रततें नष्ट हो जाता है, तैसे यह संसार जो तुझकों भासता है, सो स्वरूपके ज्ञानतें नष्ट हो जावैगा, अरु जो हमतें पूछै तौ हमकों आत्मातें इतर कछु नहीं भासता, सर्व आत्माही है, यह भी नहीं, जो यह जीव अज्ञानी है, किसी प्रकार मोक्ष होवै, न हमारि ताईं ज्ञानसाथ प्रयोजन है, न मोक्षहोणेसाथ प्रयोजन है, काहेतें जो हमकों सर्व आत्माही भासता है ॥ हे रामजी! जबलग चेतन है तबलग मरता अरु जन्म भी पावता है, जब जड होता है, तब शांतिकों प्राप्त होता है, अरु मुक्त होता है, चेतन कहिये दृश्यकी उर फुरणा, इसीकरि जन्ममरणके बंधनमें आवता है, जब दृश्यके फुरणेतें जड हो जावै, तब मुक्त होवै, इसका होणाही दुःख है, न होणा मुक्ति है, अहंकारका होणा बंधन है,

अहंकारका न होणा मुक्ति है, तातें पुरुषप्रयत्न यही है, जो अहंकारका त्याग करणा, अरु चेतन ब्रह्म घन अपणे आपविषे स्थित होणा, जिसकों संसारकी सत् भावना है, तिसकों संसारही है, ब्रह्म नहीं, अरु जिसकों ब्रह्मभावना हुई है, तिसकों ब्रह्मही भासता है ॥ हे रामजी! जो पाताल जावैं, अथवा संपूर्ण पृथ्वी फिरैं, दशों दिशा फिरैं, आकाशविषे देवताके स्थान फिरैं, तोऊ सुखकों न पावैगा, अरु आत्माका दर्शन न होवैगा, काहेतें जो अनात्माविषे अहंकार कियेतें सुख नहीं, अरु जो आत्मदर्शी होकरि देखें तौ सर्व आत्माही भासैगा ॥ इति श्रीयोगवासिष्ठे निर्वाणप्रकरणे विश्वविलयो नाम शताधिकसप्तदशः सर्गः ॥११७

॥ वसिष्ठ उवाच ॥ हे रामजी! यह संसार संकल्पमात्र है, अरु तुच्छ है, पर्वत नदियां देश काल सर्व भ्रमकरि सिद्ध हैं, जैसे स्वप्नविषे पर्वत नदियां देश काल भासते हैं, निद्रा दोष करिके अरु हुआ कछु नहीं, तैसे अज्ञान निद्राकरि यह संसार भासता है ॥ हे रामजी! जागीकरि देखें तौ संसार है नहीं, इसका तरणा महा सुगम है, अरु सुमेरु पर्वतादिक जो भासते हैं, सो कमलकी नांई कोमल हैं, जैसे कमलके मूंदणेविषे यत्न कछु नहीं, तैसे यह कोमल निवृत्त होते हैं, अरु आकार जो भासते हैं, भूत प्राणी, सो इनकी स्थूल दृष्टि है, आकारकों देखी रहे हैं, जैसे पवनका चलणा जाण्या जाता है, अरु जब जलणेतें रहित होता है, तब मूर्खकी गम नहीं, जो निराकारकों जाणै, तैसे भूत प्राणी आकारकों जानते हैं, इसविषे जो निराकार स्थित है, तिसकों नहीं जानते, जैसे पवन चलता है, तौ भी पवन है, जो ठहरता है, तौ भी पवन है, तैसे विश्व फुरती है, सो भी आत्मा है, अफुरविषे भी उही है, तातें विश्व भी आत्मरूप है, इतर कछु नहीं, जो सम्यक्दर्शी है, तिसकों फुरणेअफुरणेविषे आत्माही भासता है, जैसे स्पंद निस्पंदरूप पवनही है, तैसे ज्ञानीकों सर्वदा एकरस है, अरु अज्ञानीकों द्वैत भासता है, जैसे वृक्षविषे पिशाचबुद्धि बालक करता है, तैसे आत्माविषे जगतबुद्धि अज्ञानी करता है, जैसे नेत्रदोषकरि आकाशविषे तरवरे भासते हैं, तैसे मनके फुरणेकरि

जगत भासता है ॥ हे रामजी ! जैसे वायुका रूप कदाचित् नहीं, तैसे जगतका रूप अत्यंत अभाव है, जैसे मरुस्थलविषे जलका अभाव है, तैसे आत्माविषे जगतका अभाव है ॥ हे रामजी ! सुमेरु पर्वत आकाश पाताल देवता यक्ष राक्षस इत्यादिक ऐसे अनेक ब्रह्मांड एकठेकरि विचाररूपी कांटेविषे पाए, अरु पाछे अर्धरति पाई तौ भी पूरी नहीं होते, काहेतें जो है नहीं, अविचारसिद्ध है, स्वप्नके पर्वत जागे हुए चावल प्रमाण नहीं रहते, काहेतें, जो है नहीं, भ्रममात्र है ॥ हे रामजी ! इस संसारकी भावना मूर्ख करते हैं, ऐसे जो अनात्मदर्शी पुरुष है, तिनकों ऐसे जाण, जैसे लुहारकी खलोतें पवन निकसता है, तैसे तिन पुरुषके श्वास वृथा आते जाते हैं, जैसे आकाशविषे अंधेरी व्यर्थ उठती है, तैसे तिन पुरुषका जीवणां अरु चेष्टा सर्व व्यर्थ है, अरु यह आत्मघाती है, अपणा आप नाश करते हैं, उनकी चेष्टा दुःखके निमित्त है ॥ हे रामजी ! यह अपणे आधीन है, जो दृश्यकी उर होता है, तौ संसार होता है, अरु जो अंतर्मुख होता है, तौ सर्व आत्मा ही होता है, अरु यह संसार मिथ्या है, न सत् कहिये, न असत् कहिये, भ्रममात्रकरि हुआ है, पूर्व काल, भविष्यत् काल, वर्तमान कालविषे बंध होता है, अरु अग्नि शीतल होवै, अरु आकाश पातालविषे होवै, अरु पाताल आकाशविषे होता है, अरु तारे पृथ्वी उपर हैं, पृथ्वी आकाश उपर भी होती है, अरु बादर विना मेघ वर्षा करता है, ऐसे कौतुक मैं देखता हौं, आकाशविषे हल फिरते देखता हौं ॥ हे रामजी ! इसविषे आश्चर्य कछु नहीं, मन करिके सब कछु होता है, जैसा मनोराज्य किया तैसा आगे स्थित होता है, अरु सिद्धि होती है, पर्वत भिक्षा मागते फिरते हैं, पुरविषे भिक्षुककी नांई अरु ब्रह्मांड उडते फिरते हैं, वालुतें तेल निकसता है, अरु मृतक युद्ध करते हैं, मृग गाते हैं, अरु वन नृत्य करते हैं ॥ हे रामजी ! मनोराज्य करिके सब कछु बणता है, चंद्रमाकी किरणासाथ पर्वत भस्म होते भी मानते हैं, इसविषे क्या आश्चर्य है, तैसे यह संसार भी मनोराज्य है, अरु तीव्र संवेग है, तातें इसकों सत् मानता है, अरु आगे जो वालुतें ते

लादिक कहै, तिनकों सत् नहीं जानता, काहेतें जो उसविषे मृदु है, अरु हैं दोनों तुल्य ॥ हे रामजी ! जि
नकों सत् अरु असत् कहते हैं, सो आत्माविषे दोनों नहीं, अरु यह जो तेरे तांई पदार्थ सत् भासते हैं, तौ
अग्नि आदिक शीतल भी सत्य हैं, अरु जो यह मिथ्या भासते हैं, तौ उह भी मिथ्या है, तीव्र अरु मृदु सं
वेगका भेद है, तीव्र संवेग जब दूर हुआ तब सब मिथ्या मानते हैं, जैसे स्वप्नतें जाग्या तब स्वप्नकों मि
थ्या कहता है, अरु जाग्रत्कों सत कहता है, दोनों मनोराज्य हैं ॥ हे रामजी ! जेते कछु आकार दृष्ट आव
ते हैं,सो सब मिथ्या जाण, न तूं है, न मैं हौं,न यह जगत है,परमार्थसत्ता ज्योंकी त्यों है, तिसविषे अहंत्वंका उ
त्थान कोउ नहीं, केवल शांतरूप है, आकाशरूप अरु निराकाशरूप है, जिसविषे द्वैत कछु नहीं, केवल अ
पणे आपविषे स्थित है,जैसे बालक मृत्तिकाके हस्ती घोडे मनुष्य बनावता है,अरु नाम कल्पता है, यह राजा
है,यह हस्ती है, यह घोडा है, सो मृत्तिकातें इतर कछु नहीं, अरु बालकके मनविषे उनके नाम भिन्न भिन्न दृ
ढ होते हैं, तैसे मनरूपी बालक नानाप्रकारकी संज्ञा कल्पता है, अरु आत्मातें इतर कछु नहीं. तातें भय कि
सका करता है, तूं निर्भय होउ, तेरा स्वरूप शुद्ध है, अरु निर्भय है, अविद्याके कारणकार्यतें रहित है, तिसवि
षे स्थित होउ, यह संसार तेरे फुरणेविषे हुआ है, आत्मा न सत्य कहिये, न असत्य कहिये, न जड कहिये,
न चेतन कहिये, न प्रकाश है, न तम है, न शून्य है, न अशून्य है, अरु शास्त्रनें जो विभाग कहे हैं, यह ज
ड है, चेतन है, सो इस जीवके जगावणेनिमित्त कहे हैं, आत्माविषे वास्तव संज्ञा कोउ नहीं, केवल आत्म
त्वमात्र है, तातें दृश्यकी कलना त्यागिकरि आत्मविषे स्थित होउ, ब्रह्मातें आदि स्थावरपर्यंत सर्व कल
नामात्र है, इसविषे क्या आस्था करणी, संसारके भाव दोनों तुल्य हैं, फुरणा जैसा भावका है, तैसा अ
भावका है, स्वरूपविषे दोनोंकी तुल्यता है, अरु व्यवहार कालविषे जैसा है, तैसाही है ॥ ॥ इति श्रीयो
गवासिष्ठे निर्वाणप्रकरणे विश्वप्रणामवर्णनं नाम शताधिक अष्टादशः सर्गः ॥ ११८ ॥ ॥ ॥ राम

उवाच ॥ हे भगवन्! भूमिकाका प्रसंग इहा चल्या था, तिसविषे सार तुम कहा सो मैं जाण्या, अब भूमि काका विस्तार कहौ, अरु योगीका शरीर जब छूटता है, अरु स्वर्गके भोगकों भोगीकरि गिरता है, तब फिरि उसकी क्या अवस्था होती है, सो कहौ ॥ ॥ वसिष्ठ उवाच ॥ हे रामजी! जिस योगीकों भोगकी वांच्छा होती है; तब स्वर्गकों प्राप्त होता है, अरु भोगकों भोगता है, जब उसकों अवर भी भोगणेकी इच्छा होती है, तब पवित्र स्थान अरु धनवानके गृहविषे आय जन्म लेता है, मध्य मंडल मनुष्य लोकविषे प्राप्त होता है, जो भोगकी वांच्छा तिनकों अवर नहीं होती, तौ ज्ञानवानके गृहविषे जन्म लेता है, केते काल उपरांत तिसकों पिछला संस्कार आय फुरता है, तिसका स्मरण करिके आत्माकी उर आगे होता जाता है, जैसे कोउ पुरुष लिखता हुआ सोय जाता है, जब जागता है, तब उस लिखेकों देखी करि बहुरि आगे लिखता है, तैसे उह योगी पूर्वके अभ्यासकों पायकरि दिन दिन बढावता जाता है, अरु अज्ञानका संग नहीं करता, जो भोगके सन्मुख है, अरु आत्ममार्गतें बहिर्मुख है, अरु जो चुगली करणेवाले तिनका संग नहीं करता, सर्व अवगुण तिसकों त्याग जाते हैं, दंभ गर्व अरु राग दोष भोगकी तृष्णा यह स्वाभाविक तिसके छूटि जाते हैं, अरु शांतिकों प्राप्त होता है, कोमलता दयातें आदि शुभ गुण तिसकों स्वाभाविक आय प्राप्त होते हैं ॥ हे रामजी! इस निश्चयकों पायकरि वर्ण आश्रमके धर्म यथाशास्त्र करता हुआ संसारसमुद्रके पारकों निकट जाय प्राप्त होता है, पार नहीं भया, यह भेद है सो तीसरी भूमिका है, बहुरि मोहकों नहीं प्राप्त होता, जैसे चंद्रमाकी किरणां कदाचित् तप्तकों नहीं प्राप्त होतियां तैसे तीसरी भूमिकावाला संसाररूपी गरतविषे नहीं गिरता ॥ हे रामजी! यह सप्त भूमिका ब्रह्मरूप हैं, एताही भेद है, जो तीन भूमिका जाग्रत अवस्था हैं, चतुर्थ स्वप्न अरु पंचम सुषुप्ति है, षष्ठ तुरीया, सप्तम तुरीयातीत है ॥ हे रामजी! प्रथम तीन भूमिकाविषे संसारकी सत्यता भासती है, तातें जाग्रत कही है, अरु अवर चारों

विषे संसारका अभाव है, तातें जाग्रततें विलक्षण है, जाग्रतविषे घट पट आदिक सत भासते हैं, घट घटही है, पट पटही है, अन्यथा नहीं, अपणा अपणा कार्य सिद्ध करते हैं, तातें अपणे कालविषे ज्यौंके त्यौं हैं, इसी प्रकार सर्व पदार्थ हैं, स्थावर जंगमकों जानता है, नामरूपकरि ग्रहण करता है, अरु हृदयविषे राग दोष नहीं धारता, जो विचार करिके तुच्छ जाणे है, सो संसारका अत्यंत अभाव नहीं जाण्या, अरु ब्रह्मस्वरूप भी नहीं जानता, काहेतें जो तिसकों स्वरूपका साक्षात्कार नहीं भया, जब स्वरूपकों जाणे तब संसारका अत्यंत अभाव हो जावै, इन तीनों भूमिकाकरि संसारकी तुच्छता होती है, नष्टता नहीं होती, इनकों पायकरि जब शरीर छूटता है, तब अवर जन्मविषे उसकों ज्ञान प्राप्त होता है, अरु दिन दिनविषे ज्ञानपरायण होता है, जब दृढबुद्धि हुई, तब ज्ञान उपजता है, जैसे बीजके प्रथम अंकुर होता है, बहुरि टास फूल फल निकसते हैं, तैसे प्रथम भूमिका ज्ञानका बीज है, दूसरी अंकुर है, तीसरी टास है, चतुर्थ ज्ञानकी प्राप्ति होती है, सो फल है, प्रथम तीन भूमिकावाला धर्मात्मा होता है, पुरुषोंविषे श्रेष्ठ है, तिसका लक्षण यह जो निरहंकार अरु असंगी धीर्य होता है, जिसकी बुद्धितें विषयकी तृष्णा निवर्त भई है, अरु आत्मपदकी इच्छा है, सो पुरुष श्रेष्ठ कहाता है, अरु प्रकृत आचारविषे यथाशास्त्र विचरता है, शास्त्र मार्गतें उल्लंघित कदाचित् नहीं वर्तता, शास्त्रमार्गकी मर्यादासाथ अपणे प्रकृत आचारविषे विचरता सो पुरुष श्रेष्ठ है ॥ राम उवाच ॥ हे भगवन्! पाछे तुमनें कहा जो जब उह पुरुष शरीर छोडता है, तब एक मुहूर्तविषे उसकों युग व्यतीत होता है, जन्मतें आदि मृत्युपर्यंत जैसी किसीकों भावना होती है, तैसा आगे भासता है, सो एक मुहूर्तविषे युग कैसे भासता है, यह कहौ ॥ वसिष्ठ उवाच ॥ हे रामजी! यह जगत जो तीनों काल भासता है, सो ब्रह्मस्वरूप है, इतर कछु नहीं भासता, समानही है; जैसे इक्षुविषे मधुरता है, तैसे ब्रह्मविषे जगत है, जैसे तिलोंविषे तेल है अरु मिरचविषे तीक्ष्णता है, तैसे आत्माविषे जगत है, जैसे तिलोंविषे तेल होता है,

तैसे ब्रह्मविषे जगत कहूं सत, कहूं असत, कहूं जड, कहूं चेतन, कहूं शुभ, कहूं अशुभ, कहूं नरक, कहूं मृतक, कहूं जीवित, ब्रह्मा आदि काष्ठपर्यंत भाव अभावरूप होता है, सो सत असततें विलक्षण है, आत्मसत्ता तें सर्व सत्य है; अरु भिन्नकरि देखियें तौ असत्य है ॥ हे रामजी! जिनकों सत्य असत्य जाणता है, जो पृथ्वी आदिक पदार्थ सत्य भासता है, अरु आकाशके फूलादिक असत्य भासते हैं, सो दोनों तुल्य हैं, जो विद्यमान पदार्थ सत्य मानियें तौ आकाशके फूल भी सत मानियें, जैसे स्वप्नविषे केई पदार्थ सत भासते हैं, केई असत भासते हैं, तैसे जाग्रतविषे भासते हैं, फुरणा दोनोंका समान है; जैसे सत्य पदार्थोंका फुरणा हुआ तैसा असतका फुरणा हुआ, फुरणेतें रहित सत असत दोनोंका अभाव हो जाता है, तातें यह विश्व भ्रम करिके सिद्ध हुई है, जैसे जलविषे पवन करिके चक्र आवर्त उठते हैं, तैसे आत्माविषे फुरणे करिके संसार भासता है, इसकी भावना त्यागिकरि स्वरूपविषे स्थित होहु, अरु पाछे तुझनें प्रश्न किया जो एक मुहूर्तविषे युग कैसे भासता है, तिसका उत्तर सुण, जैसे किसी पुरुषकों स्वप्न आता है, तौ एक क्षणविषे बडा काल वीत्या भासता है, अवरका अवर भासता है, आश्चर्य तौ कछु नहीं, मोहतें सब कछु उत्पन्न होता है, भ्रम करिके दृष्ट आता है ॥ हे रामजी! पुरुष सोया है तौ एक आपही होता है, तिसविषे नाना प्रकारका जगत भ्रम करिके भासता है, तैसे स्वरूपके प्रमादकरि केई भ्रम देखता हैं, स्वरूपके जानणेविना भ्रमका अंत नहीं होता, तातें तूं अवर प्रश्न किसनिमित्त करता है, एक चित्तकों स्थिर करि देख, न कोउ संसार भासैगा, न कोउ जन्म मृत्यु भासैगा, न कोउ बंध मोक्ष भासैगा, केवल आत्माही भासैगा, जब संकल्प फुरता है, तब आपकों बंध जानता है, संकल्पतें रहित मुक्त जानता है, सो अविद्याकरि बंध जानता है, विद्याकरि मुक्त जानता है, अरु आत्मस्वरूप ज्यौंका त्यौं है, न बंध है, न मुक्त है, न विद्या है, न अविद्या है, केवल शांतरूप है, तातें सर्वदा सर्व प्रकार सर्व उरतें ब्रह्मही है, दूसरा कछु नहीं ॥ हे रामजी!

जब स्वरूपकी भावना हुई, तब संसारकी भावना जाती रहती है, यह सर्व शब्द कलनाविषे हैं, यह पदार्थ है, यह नहीं, आत्माविषे कोउ नहीं, जैसे पवन चलणे ठहरणेविषे एकही है, तैसे विश्व चित्तका चमत्कार है, ब्रह्मादि चीटिपर्यंत ब्रह्मसत्ताही अपणे आपविषे स्थित है, अरु आत्माहीके आश्रय सर्व शब्द फुरते हैं, आत्मा फुरणे अफुरणेविषे सम है, काहेतें जो दूसरा कोउ नहीं ॥ हे रामजी! जो ब्रह्मसत्ताही है यह पश्न क्या है, आकाश क्या है, पृथ्वी क्या है, मैं क्या हौं, यह जगत क्या है, यह प्रश्न बणतेही नहीं, एक मनकों स्थिरकरि देख, जो ब्रह्मा आदि चीटिपर्यंत कछु भी पदार्थ भासै तौ प्रश्न करियें, तातें यह पदार्थ भ्रम करिके भासते हैं, जैसे दूसरा चंद्रमा भासता है, तैसे भ्रम करिके भासता है, रूप अवलोक नमस्कार इनके शब्द कलनाविषे फुरे हैं, रूप कहिये दृश्य, अवलोक कहिये इंद्रियां, नमस्कार कहिये मनका फुरणा; सो सर्व मिथ्या हैं, आत्माविषे कोउ नहीं ॥ हे रामजी! आकाश आदिक जो पदार्थ हैं, सो भावनाविषे स्थित हुए हैं, जैसी भावना कराती है, तैसे पदार्थ सिद्ध होता है, अरु भासता है, जब संसारकी भावना उठि जावै, तब पदार्थ कोउ न भासै ॥ हे रामजी! सुषुप्तिविषे भी इसका अभाव हो जाता है तौ तुरीयाविषे कैसे भान होवै, जब स्वरूपतें गिरता है, तब इसकों संसार भासता है, अरु संसारविषे वासना करिके घटीयंत्रकी नांई फिरता है, प्रमाद करिके अबलग वहता जाता है, प्रमाद कहिये स्वरूपतें उतरीकरि अनात्मविषे अभिमान करणा, जो मैं हौं सो अज्ञान है, तिस करिके दुःख पावता है, जब अज्ञान नष्ट होवै, तब संसारके शब्द अर्थका अभाव हो जावै, अहंकारतें संसार होता है, संसारका बीज अहंकार है, अहंकार कहिये अनात्माविषे आत्मअभिमान करणा ॥ हे रामजी! आत्मा शुद्ध है, अहंके उत्थानतें रहित है, केवल शांतरूप है, अरु विश्व भी उहीरूप है, इसकी भावनाविषे दुःख है, यह संवितशक्ति आत्माके आश्रय फुरती है, जैसे तेलकी बुंद जलविषे डारिये तौ चक्रकी नांई फिरती है, तैसे संवेदन शक्ति

आत्माके आश्रित फुरती है, अरु ब्रह्म एक स्वरूप है. तिसका स्वभाव ऐसे है, जैसे मोरका अंडा अरु तिसका वीर्य एकरूप है, अपणे स्वभाव करिके वीर्यही नानाप्रकारके रंगकों धारता है, तौ भी मोरतें इतर कछु नहीं, तैसे आत्माके संवेदन स्वभाव करिके नानाप्रकारकी विश्व भासती है, परंतु आत्मातें इतर कछु नहीं, आत्मरूप है, सम्यक्दर्शीकों नानाप्रकारविषे एक आत्माही भासता है, अरु अज्ञानीकों नानाप्रकारका जगत भासता है ॥ हे रामजी! ब्रह्मरूपी एक शिला है, तिसविषे त्रिलोकीरूपी अनेक पुतलियां कल्पित हैं, जैसे एक शिलाविषे खुरपी पुतलियां कल्पता है, जो इसविषे एती पुतलियां हैं, सो उसके चित्तविषे हैं, जो शिलाविषे हुआ कछु नहीं, तैसे आत्मरूपी शिलाविषे चित्तरूपी खुरपी नानाप्रकारके पदार्थरूपी पुतलियां कल्पता है, सो सर्व आत्मरूप है, तातें पदार्थकी भावना त्यागिकरि आत्माविषे स्थित होहु, अरु यह संसार भी निर्वाच्य है, काहेतें जो ब्रह्मही है, ब्रह्मतें इतर कछु नहीं, न कोउ उपजता है, न कोउ विनसता है, कदाचित् भी ज्यौंका त्यौं आत्माही स्थित है ॥ ॥ इति श्रीयोगवासिष्ठे निर्वाणप्रकरणे जगत अभावप्रतिपादनं नाम शताधिकैकोनविंशतितमः सर्गः ॥ ११९ ॥ ॥ ॥ राम उवाच ॥ हे भगवन्! इस संसारका बीज अहंकार हुआ, इसका पिता अहंकार है, तौ मिथ्या संसार अविद्यमान जो विद्यमान भासता है, सो भ्रमरूप हुआ, जो भ्रमरूप है, तौ लोक शास्त्र श्रुति स्मृति कहते हैं, जो इसका शरीर पिंडकरिके होता है, जो पिंडकरि होता है, तौ तुम कैसे भ्रम कहते हौ, अरु जो ब्रह्म है, तौ लोक शास्त्र श्रुति स्मृति क्यौं पिंडकरि कहते हैं, इस मेरे संशयकों निवृत्त करौ ॥ ॥ वसिष्ठ उवाच ॥ हे रामजी! मेरा कहणा सत है, तैसेही है, अरु ब्रह्मविषे ब्रह्मतत्त्व स्वभाव है, अरु जगतविषे जगतका लक्षण भी उही है ॥ हे रामजी! आदि जो किंचन हुआ है, चित्त शक्ति फुरी है, सो ब्रह्मरूप हुआ है, तिसविषे पदार्थका मनोराज्य हुवा है, यह आकाश है, यह पवन आदी हैं, यह कर्तव्य है, यह अकर्तव्य है, यह सत्य है, यह झूट है, इत्यादिकरि जवलग

मनोराज्य है, तबलग सर्व मर्यादा ऐसेही है, बहुरि ब्रह्मविषे ऐसे हुआ जो जगतकी मर्यादाके निमित्त वेद कहता है, जो यह पदार्थ शुभ है, यह अशुभ है ॥ हे रामजी! आत्माविषे द्वैत कछु नहीं, मायारूप जगत विषे मर्यादा है, जो न होवै, तौ अध ऊर्ध्व नीच ऊंच कवन कहै, यह मर्यादा भी वेदविषे नेति निश्चय हुआ है, जो यह शुभ कर्म हैं, इनके कियेतें स्वर्गसुख भोगते हैं, अरु यह अशुभ कर्म हैं, इनके कियेतें नरकदुःख भोगते हैं ॥ ॥ हे रामजी! जैसे वेदविषे निश्चय किया है, तैसे यह पुरुष अपणी वासनाके अनुसार भोगता है ॥ ॥ हे रामजी! यह चित्तशक्ति नेति होकरि ब्रह्मादिकविषे फुरी है, परंतु उनकों सदा स्वरूपविषे निश्चय है, तातें उह बंधायमान नहीं होते, अरु ब्रह्मा विष्णु रुद्रने यह वेदमाला धारी है, जो जैसा कोउ कर्म करै, तैसा फल देते हैं, यह वेद सर्वकी नेति है ॥ ॥ हे रामजी! जिन पुरुषकों संसारकी सत्यता दृढ भई है, सो जैसा कर्म शुभ अथवा अशुभ करते हैं तैसे शरीरकों धारते हैं, इसविषे संशय नहीं, जो शास्त्रमर्यादातें उल्लंघित वरतते हैं, अपणी इच्छाकरि सो शरीर त्यागिकरि कोउ काल मूर्च्छित हो जाते हैं, मुहूर्तविषे जागिकरि बडे नरकोंकों चले जाते हैं, आत्मज्ञानविना अरु जिनकों शून्यभावना भई है, जो आगे नरक स्वर्ग कोउ नहीं, लोकपरलोकके भयकों त्यागिकरि शास्त्रबाह्य वरतते हैं, तौ मरीकरि पत्थर वृक्षादिक जड योनिकों पावते हैं, चिरकालतें उनकी वासना परिणमती है, फेरि दुःखभागी होते हैं,अरु जिनकों आत्मभावना हुई है, संसारकी भावना निवृत्त भई है तौ शास्त्रविहित करै, अथवा अविहित करै, तिनकों बंधन कोउ नहीं ॥ हे रामजी! चित्तरूपी भूमि है, इसविषे निश्चयरूपी जैसा बीज बोता है, तैसाही कालकरि उगवता है, यह निःसंशय है, तातें तुम आत्मभावनारूपी बीज बोहु,जो सर्व आत्मा है, ऐसी भावना करहु, तब सिद्धही आत्मा भासैगा, अरु जिनकों संसारका निश्चय हुआ है, तिनकों संसार है ॥ हे रामजी! जो पुरुष धर्मात्मा है, तिनकों उसी वासनाके अनुसार भासता

है, सो धर्मात्मा भी दो प्रकारके हैं, एक सकामी, एक निष्कामी, जो धर्म करते हैं, अरु पापरूपी कामनास हित हैं, तौ स्वर्गभोग भोगीकरि बहुरि गिरते हैं, अरु जो निष्काम हैं, ईश्वरार्पण कर्म करते हैं, तिनका अंतःकरण शुद्ध होता है, बहुरि ज्ञानकी प्राप्ति होती है, यह भी संसारविषे मर्यादा है, जैसा किसीकों निश्चय होता है, तैसाही संसारकों देखता है, पिंड करिके भी शरीर होता है, काहेतें जो यह भी आदि नेतिविषे निश्चय हुआ है, सो जैसे आदि नेतिविषे निश्चय हुआ है, तैसे होता है, जो पवन है, सो पवनही है, जो अग्नि है, सो अग्निही है, इसी प्रकार कल्पपर्यंत जैसे मनोराज्य हुआ है, तैसेही स्थित है, जैसे जल नीचेहीकों जाता है, ऊंचे नहीं जाता, तैसे जो आदि किंचनविषे निश्चय हुआ है, कल्पपर्यंत सोइ है॥ हे रामजी! जगत व्यवहार विषे तौ ऐसे है, अरु परमार्थतें दूसरा कछु हुआ नहीं, इस जीवने आकाशविषे मिथ्या देह रची है, परमार्थतें केवल निराकार अद्वैत आत्मा है, शरीर इसकेसाथ है नहीं, तातें जगत कैसे होवै॥ ॥ इति श्रीयोगवासिष्ठे निर्वाणप्रकरणे पिंडनिर्णयो नाम शताधिकविंशतितमः सर्गः॥ ॥ १२०॥ ॥ ॥ वसिष्ठ उवाच॥ हे रामजी! तेरे प्रश्न उपर एक इतिहास है, बृहस्पति अरु बलराजाका सो श्रवण कर, जब छ कल्प व्यतीत हुए थे, दूसरे परार्धके तिस दिनके जुगविषे राजा बल होत भया, सो कैसा था, पराक्रमी मूर्त्ति था, तिस राजा बलनें संपूर्ण दैत्यों अरु राक्षसोंकों जीतिकरि अपणे वश किया, अपणी आज्ञा तिनपर चलाई, अरु राजा हुवा, अरु इंद्रकों भी जीतिकरि अपणे वश किया, पूर्ण ऐश्वर्य तिसका एक नगरकी नांई ले लिया था, देवता किंनरपर तिसकी आज्ञा चली, अरु भूलोक भी लिया, जब सबकों ले रहा, तब धर्म आचारकों ग्रहण किया, जैसे धर्मात्माका आचार है सो ग्रहण किया, एक समय सर्व सभा बैठी थी, अरु यह कथा चली, जो जन्म कैसे होता है, अरु मृत्यु कैसे होता है, तब राजा बली बृहस्पति देवगुरुसों प्रश्न करत भया॥ हे ब्राह्मण! इह पुरुष जब मृतक होता है, तब शरीर तौ भस्म हो जाता है, बहुरि

कर्मोंके फल कैसे भोगता है, अरु शरीरविना आता जाता कैसे है, सो कहौ ॥ बृहस्पतिरुवाच ॥ हे राजन्! इस जीवकों देह है नहीं; जैसे मरुस्थलविषे जल भासता है, अरु है नहीं तैसे इससाथ शरीर भासता है, अरु है नहीं, यह जीव न जन्मता है, न मरता है, न भस्म होता है, न जलिके दुःखी होता है, तत्त्वतें तत्त्व यह सदा अच्युतरूप है, स्वरूपके प्रमादतें आपकों दुःखी जानता है, जो मैं इनकों भोगता हौं, अरु जन्म्या हौं, एता काल हुआ है, यह मेरी माता है, यह पिता है, मैं इनतें उपजा हौं, बहुरि आपकों मृतक हुआ जानता है ॥ हे राजन्! भ्रमकरि ऐसे देखता है, जैसे निद्रा भ्रमकरि स्वप्नविषे देखता है, तैसे अज्ञान करिके यह जीव आपकों मानता है, जब मृतक होता है, तब जानता है, जो मेरा शरीर पिंडकरि हुवा है, अब मैं दुःखसुखकों भोगौंगा, जैसे स्वप्नविषे आकाश होता है, तहां वासनाकरि अपणेसाथ शरीर देखता है, अरु सुखदुःखकों भोगता है, तैसे मरिकरि अपणेसाथ शरीर देखता है, अरु दुःखसुखका भागी होता है, अरु परमार्थतें इसकेसाथ शरीरही नहीं, तौ जन्म मृत्यु कैसे होवै, स्वरूपतें प्रमादकरि देहधारीकी नांई स्थित हुआ है, तिस देहसाथ मिलीकरि जैसी जैसी भावना करता है; तैसाही फल भोगता है, वासनाके अनुसार जैसी इसकों भावना होती है, तैसा आगे शरीर देखता है, अरु पंचभौतिक संसारकों देखता है, इस प्रकार भ्रमता है, अरु जन्मता मरता आपकों देखता है, जैसे समुद्रतें तरंग उठता है, अरु मिटि जाता है, तैसे शरीर उपजता अरु नष्ट होता है, शरीरके संबंधकरि उपजता अरु बिनसता भासता है, यह आश्चर्य है, जो आत्मा ज्यौंका त्यौं स्वभावकरि स्थित है, तिसविषे वासनाके अनुसार विश्वकों देखता है ॥ हे राजन्! विश्व इसके अंतर स्थित है, भावनाके अनुसार आगे देखता है, इस जीवविषे विश्व है, अरु विश्वविषे जीव नहीं, जैसे तिलविषे तेल है, अरु तेलविषे तिल नहीं, जैसे स्वर्णविषे भूषण कल्पित हैं, भूषणविषे स्वर्ण कल्पित नहीं, तैसे जीवविषे विश्व कल्पित है, इसके आश्रय फुरती है, सो विश्व सत भी नहीं, अरु असत भी नहीं, सत इस कारण नहीं; जो च

लरूप है स्थित नहीं,अरु असत इसतें नहीं,जो विद्यमान भासती है, तातें इसकी भावना त्याग, यह दृश्य मिथ्या है, इसका अनुभव मिथ्या है, अरु इसके जानणेवाला अहंकार जीव भी मिथ्या है, जैसे मरुस्थलविषे जल मिथ्या है,तैसे आत्माविषे अहंकार जीव मिथ्या है॥ हे रामजी! जबलग शास्त्रके अर्थविषे चपलता है,अरु स्थितितें रहित है,तबलग संसारकी निवृत्ति नहीं होती, जब दृश्यके फुरणे अरु अहंकारतें जड हो जावै, तब इसकों आत्मपदकी प्राप्ति होवै,जबलग दृश्यकी उर फुरता है,चेतन सावधान है, तबलग संसारविषे भ्रमता है ॥ हे राजन्! आत्मा न कहूं जाता है,न आता है, न जन्मता है, न मरता है, जब चैत्य अरु चित्तका संबंध मिटि जावै तब आनंदरूपही है, चैत्य कहियें दृश्य अरु चित्त कहियें अहंकार, संवित जब दोनोंका संबंध आप समें मिटि जावैगा, तब शेष आत्माही रहैगा, सो ब्रह्म है, आत्मा है, अरु शिवपद है, जिसविषे वाणीकी गम नहीं, सोइ शेष रहैगा, सो अनुभव निर्वाच्य पद है, तिसविषे स्थित होहु ॥ हे रामजी! जिस युक्तिकरि इसकी इच्छा अनिच्छा निवृत्त होवै सो युक्ति श्रेष्ठ है, जबलग इसकों फुरणा उठता है, जो यह भाव है, यह अभाव है, तबलग इसकों जीव कहते हैं, जब भावअभावका फुरणा मिटि जावै, तब जीवसंज्ञा भी चलती रहै, तब शिवपद आत्माकों प्राप्त होवै, तहां वाणीकी गम नहीं ॥ ॥ इति श्रीयोगवासिष्ठे निर्वाणप्रकरणे बृहस्पतिबलसंवादवर्णनं नाम शताधिकैकविंशतितमः सर्गः ॥ १२१ ॥ ॥ ॥ वसिष्ठ उवाच ॥ हे रामजी ! इस प्रकार बृहस्पतिनें बल राजाकों कहा, सो तेरे प्रश्नके उत्तरनिमित्त मैं कहा है ॥ हे रामजी! जबलग इसके हृदयविषे संसारकी सत्यता है, तबलग जैसे कर्म करैगा, तैसा शरीर धारैगा ॥ हे रामजी! जिस वस्तुकों चित्त देखता है, तिसकी उर अवश्य जाता है, तिसके देखणेका संस्कार इसके अंतर होता है, जिस पदार्थकों इसनें सत जाण्या है, तिस पदार्थका संस्कार स्थित हो जाता है, अरु समय करि उह संस्कार प्रगट होता है, जैसे मोरके अंडविषे शक्ति होती है, जब समय आया, तब नानाप्रकारके

रंग तिसाविषे प्रगट भासते हैं, तैसे चित्तका संस्कार भी समय पायकरि जागता है ॥ हे रामजी! सो चित्त अज्ञानतें उपजा है, बहुरि बृहस्पतिनें कहा ॥ हे राजन्! बीज पृथ्वीपर उगता है, आकाशविषे नहीं उगता, जैसा बीज पृथ्वीविषे बोता है, तैसाही फल होता है, सो इहां अहंरूप जो है, अपणा होणा सो पृथ्वी है, जैसी जैसी भावनाकरि कर्म करता है, तैसा तैसा चित्तरूपी पृथ्वीपर उत्पन्न होता है, बहुरि फल होता है, जो उन कर्मोंके अनुसार धारता है, अरु सुखदुःखकों भोगता है, अरु ज्ञानवान जो है, सो आकाशरूप है, सो आकाशविषे बीज कैसे उपजै, बीज भावनाकरि अज्ञानीरूपी पृथ्वीविषे उगता है ॥ बल उवाच ॥ ॥ हे देवगुरु! जीव जीवता होवै अथवा मृतक होवै, इसकों जो अनुभव होता है, सो अपणी भावनाहितें होता है, तातें जब यह मृतक हुआ, अरु इसकी पिंडादिकविषे भावना न हुई, तौ फेर इसका शरीर कैसे होता है, सुखदुःख भोगणेवाला जो हुआ तौ अकृत्रिम देह हुआ ॥ ॥ बृहस्पतिरुवाच ॥ हे राजन्! पिंडदान आदिक क्रिया न होवै, अरु इसके अंतर भावना है, अरु तिसी समय किसी न किया तौ भी उह जो अंतर भावना है, सोइ कर्मरूप है, उसीकरि भासि आता है, अरु जो उसके अंतर भावना नहीं, अरु किसी बांधवनें इसके निमित्त पिंडदान किया, तौ भी उसकों भासि आता है, काहेतें जो उह भी इसकी वासनाविषे स्पंद है ॥ हे राजन्! जो अज्ञानी जीव है, जिसकों अनात्मविषे आत्मबुद्धि है, तिनके कर्म कहां गये हैं, जो उह कर्म करते हैं सोइ उनके चित्तरूपी भूमिविषे पडे उगते हैं, उनके शरीरकी क्या संख्या है, अनेक वासनारूपी शरीर धारते हैं, ज्ञानविना स्वप्नवत् ॥ ॥ बल उवाच ॥ हे देवगुरु! यह निश्चयकरि मैं जान्या है, जो जिसकों निष्किंचनकी भावना होती है, सो निष्किंचन पदकों प्राप्त होता है, अरु संसारकी उरतें शिलाकी नांई हो जाता है, जैसी इसकी भावना होती है, तैसा स्वरूप हो जाता है, जब संसारतें पत्थरवत् होवै तब मुक्त होवै ॥ ॥ बृहस्पतिरुवाच ॥ हे राजन्! निष्किंचनकों जब जा

नता है, तब संसारकी उरतें जड होता है, राग दोष संसारका नहीं फुरता, इसीका नाम जड है, अरु केवल सार पदविषे स्थित होता है, जब गुण इसकों चलाय नहीं सकै, तब जाणियें, जो निष्किंचन पदकों प्राप्त हुआ है, सोई निःसंदेह मुक्ति है ॥ ॥ हे राजन्! जबलग संसारकी सत्यता चित्तविषे स्थित है तबलग इसकों वासना है, जबलग वासना है, तबलग संसार है, अरु संसारके अभावविना इसकों शांति नहीं प्राप्त होती, सो स्वरूपके प्रमादकरि चित्त हुआ है, चित्ततें वासना हुई है, अरु वासनातें संसार हुआ है, तातें इस वासनाकों त्यागिकरि कोउ फुरणा न फुरै, निष्किंचन भाव हो जावै, तब शांतभागी होवें ॥ हे राजन्! जिस युक्तिसाथ, जिस क्रमसाथ यह निष्किंचनरूप होवै, सोइ करै ॥ ॥ वसिष्ठ उवाच ॥ हे रामजी! इस प्रकार सुरपुरविषे असुरनायककों सुरगुरुनें कहा था, सो मैं तेरे आगे पिंडदानादिकका क्रम कहा है ॥ ॥ इति श्रीयोगवासिष्ठे निर्वाणप्रकरणे बृहस्पतिवलसंवादो नाम शताधिकद्वाविंशातितमः सर्गः ॥ १२२ ॥ ॥ ॥ वसिष्ठ उवाच ॥ हे रामजी! भावै जीवता होवै, भावै मृतक होवै, जो कछु इसके चित्तसाथ स्पर्श हुआ होवैगा, तिसका अनुभव अवश्य करैगा, जैसे मोरके अंडेविषे रस होता है, उह समयकरि विस्तारकों पावता है, तैसे इसके अंतर जो वासनाका वीज है, जो उह प्रगट नहीं भासता, तौ भी समयकरि विस्तारवान होता है, जबलग चित्त है, तबलग संसार है, जब चित्त नष्ट होवैं, तब सब भ्रम मिटि जावै ॥ हे रामजी! सो चित्त भी असत है,तौ विश्व भी असत्य है,जैसे आकाशविषे नीलता भ्रमकरि भासती है,तैसे आत्माविषे विश्व भ्रम है ॥हे रामजी! हमकों न चित्त भसता है, न विश्व भासता है, मैं भी आकाश हौं, तूं भी आकाशरूप है, यह चित्त स्वरूपके प्रमाद करिके उपजता है, जैसे जहां काजल होता है, तहां श्यामता होती है, तैसे जहां चित्त होता है, तहां वासना होती है, जब ज्ञानरूपी अग्निकरि वासना दग्ध होवै, तब चित्त सतपदकों प्राप्त होता है, अरु जीवितसंज्ञा निवृत्त होती है ॥ हे रामजी! चित्तके उपशमका उ

पाय मुझतें श्रवण करु, तिसकरि चित्त निर्वाण हो जावैगा, जो सप्त भूमिका ज्ञानकी हैं, तिनकरि चित्त नष्ट हो जावैगा, तिनविषे तीन भूमिका तेरे तांई कही हैं,क्रम करिके, अरु चार कहणी रहती है ॥ हे रामजी! प्रथम तीन भूमिकाविषे जिसकों एक भी प्राप्त भई है, तिसकों महापुरुष जाण, सो संसारतें कैसा हो जाता है सो श्रवण करु, मान मोह तिसके निवृत्त हो जाते हैं, अरु संग दोष तिसकों नहीं लगता, अरु उसविषे विचार स्थित होता है, कामना सर्व नष्ट हो जाती है, अरु राग दोष तिसकों नहीं रहता, सुखदुःखविषे सम रहता है, ऐसा अमूढ पुरुष अव्यय पदकों प्राप्त होता है, जेते गुण तीसरी भूमिकाविषे प्राप्त हुए पाइते हैं, अरु चित्त नष्ट हो जाता है, तब संसारकों नहीं पाइता, जैसे दीपकसाथ देखियें तौ अंधकारकों नहीं पाइता ॥ इति श्रीयोगवासिष्ठे निर्वाणप्रकरणे चित्तभावप्रतिपादनं नाम शताधिकत्रयोविंशतितमः सर्गः ॥ १२३ ॥ ॥ ॥ वसिष्ठ उवाच ॥ हे रामजी! जब तीसरी भूमिका दृढ पूर्ण होती है, अरु दृढ अभ्यासकरि चउथी उदय होती है, तब अज्ञान नष्ट हो जाता है, अरु सम्यक् ज्ञान चित्तविषे उदय होता है, तब पूर्णमासीके चंद्रमावत् शोभा पावता है, अरु आदि अंततें रहित निर्विभाग चेतनतत्त्वविषे योगीका चित्त स्थित होता है, अरु सर्वकों सम देखता है, जिस योगीकों चतुर्थ भूमिका प्राप्त होती है, तिसके नानाप्रकार भेदभाव निवृत्त हो जाते हैं, अरु अभेद सर्व आत्मभाव उदय होता है, जगत् तिसकों स्वप्नकी नांई भासता है, अरु इंद्रियांका व्यवहार स्वप्नवत् हो जाता है, जैसे अर्ध सुषुप्ति जिसकों होती है, तिस कालविषे खाणा पिणा रसतें रहित हो जाता है,तैसे चतुर्थ भूमिकावालेका व्यवहार रसतें रहित होता है,जैसे सूर्य अपणे प्रकाशकरि प्रकाशता है, तैसे तिसकों आत्माका प्रकाश उदय होता है,अरु सर्व कल्पना तिसकी नाश हो जाती है, न किसी पदार्थविषे राग रहता है, न किसीविषे दोष रहता है, संसारसमुद्रविषे डूबावणेवाले राग अरु दोष हैं, इष्ट पदार्थविषे राग होता है, अनिष्टविषे दोष होता है, सो रागदोष दोनोंका तिसकों अभाव हो जाता है, तातें संसारसमुद्र

विषे गोते नहीं खाता, तिसके चित्तकों कोउ मोहित नहीं करि सकता ॥ हे रामजी! जबलग तृतीय भूमिका होती है, तबलग उसकों जाग्रत अवस्था होती है, जब चतुर्थ भूमिका प्राप्त भई, तब जगत स्वप्नवत् हो जाता है, सर्व जगतकों क्षणभंगुर नाशवंत देखता है, द्रष्टा दर्शन दृश्य भावनाका अभाव हो जाता है ॥

॥ राम उवाच ॥ हे भगवन्! जाग्रत स्वप्न सुषुप्तिका लक्षण मुझकों ज्यौंका त्यौं कहौ, तुरीया अरु तुरीयातीत भी कहौ, बड़े जो हैं सो शिष्यकों कहते खेदवान नहीं होते ॥ ॥ वसिष्ठ उवाच ॥ हे रामजी! जो तत्त्वका विस्मरण है, अरु पदार्थकी भावना है, नाशवंत पदार्थकों सतकी नांई जाणना सो जाग्रत है, जो पदार्थविषे भावअभावकी सत्यता होती है, अरु जगतकों मिथ्या भावनामात्र जानणा सो स्वप्न कहते हैं, जाग्रत अरु स्वप्न जिसविषे लय हो जावैं सो सुषुप्ति है, जो ज्ञानभाव करिके भेदकी शांति हो जावै, जाग्रत स्वप्न सुषुप्ति तीनोंका अभाव होवै, ऐसी जो निर्मल स्थिति है सो तुरीया है ॥ हे रामजी! अज्ञानी जीव संसारकों वर्षाकालके मेघकी नांई देखते हैं, जो तिनकों दृढ होकरि भासता है, अरु जिसकों चतुर्थ भूमिका प्राप्त भई है, सो शरत्कालके मेघकी नांई संसारकों देखता है, अरु जिसकों पंचम भूमिका प्राप्त भई है, सो शरत्कालके मेघ नष्ट हुएकी नांई देखता है, जैसे निर्मल आकाश होता है, तैसे उसकों निर्मल भासता है, सो तीनोंका वृत्तांत सुण, अज्ञानी जगतकों जाग्रतकी नांई देखता है, अरु दृढसत्यता जगतकी तिसकों भासती है, तिसकरि रागदोष उपजता है,अरु चतुर्थ भूमिकावाला ऐसे देखता है, जैसे शरत्कालका मेघ वर्षातें रहित होता है, अरु जैसे स्वप्नकी सृष्टि होती है, तैसे तिसकों सत्यता जगतकी नहीं भासती, काहेतें जो स्मृति तिसकों स्वप्नकी होती है, स्वप्नवत् देखता है, तातें उसकों रागदोष नहीं उपजता है, अरु पंचम भूमिका प्राप्तिवाला जगतकों सुषुप्तिकी नांई देखता है, जैसे शरत्कालका मेघ नष्ट हुआ बहुरि नहीं दिखता, तैसे उसकों संसारका भान नहीं होता, अरु चेष्टा उसकी स्वाभाविक पडी होती है, जैसे क

मल स्वाभाविकही खुलता अरु मुंदि जाता है, तैसे तिसकों यत्न कछु नहीं, चेष्टाविषे जैसा प्रतियोगी तिसकों स्वाभाविक आय प्राप्त हुआ सो करता है,जैसे कमलके खुलणेका प्रतियोगी सूर्य हुआ तब खुलि गया, अब जब मुंदणेका प्रतियोगी रात्रि भई तब मुंदि जाता है, उसकों खेद कछु नहीं, तैसे तिस पुरुषकी अहंममतातें रहित स्वाभाविक चेष्टा होती है ॥ हे रामजी ! अहंताममतारूपी जाग्रततें उह पुरुष सुषुप्त हो जाता है, अरु संपूर्ण भावरूप जो शब्द अरु अर्थ हैं, तिनका तिसकों अभाव हो जाता है, अशेष शेषका मनन नष्ट हो जाता, पशु पक्षी मनुष्य देवता भला बुरा इत्यादिक भिन्न भिन्न पदार्थकी भावना तिसकों नहीं रहती, द्वैतकलना नष्ट हो जाती है, एक ब्रह्मसत्ताही भासती है, तिसकों संसार नहीं भासता ॥ हे रामजी ! अहंतारूपी तिलतें संसाररूपी तेल उपजता है, अरु अहंतारूपी फूलतें संसाररूपी गंध उपजती है, संसारका कारण अहंता है, सो अहंता जिस पुरुषकी नष्ट हो जाती है, उह पुरुष इंद्रियांके इष्टकों पायकरि हर्षवान नहीं होता, अरु अनिष्टके प्राप्त हुए दोष नहीं करता, ऐसे आपकों नहीं जानता, जो मैं खडा हों, अरु इहां बैठा हों, अरु चलता हों,आपकों सर्वदा आकाशरूप जानता है, न अंतर देखता है न बाहिर देखता है, न आकाशकों देखता है, न पृथ्वीकों देखता है, सर्व ब्रह्मही देखता है, तिसकों इतर कछु नहीं भासता, अरु द्रष्टा दर्शन दृश्य तीनोंका साक्षी रहता है, अहंकारका भी साक्षी, इंद्रियांका भी साक्षी, अरु विश्वका भी है, इनके साथ, स्पर्श कदाचित् नहीं करता, जैसे ब्राह्मण चंडालसाथ स्पर्श नहीं करता, अरु जैसे बीजतें अंकुरी होती है बहुरि अंकुरीतें टास होते हैं, इस प्रकार पदार्थ परिणामी हैं, अरु आकाश तिनविषे ज्योंका त्यों रहता है, काहेतें जो उनके साथ स्पर्श नहीं करता तैसे उह पुरुष द्रष्टा दर्शन दृश्यतें अतीत रहता है, जैसे मरुस्थलविषे जल असत है, तैसे उस पुरुषकों त्रिपुटी असत्य है, त्रिपुटी अहंता तिस पुरुषकी नष्ट भई है, तातें भेदबुद्धि भी नहीं रहती, तिसीतें शांत है, अरु निर्मल है, संसारतें सुषुप्त है, अरु चेतन घनता करिके

पूर्ण है, सर्वदा शांतरूप है, जिन नेत्रकरि संसार जानता है, सो तिनतें अंध हुआ है, अर्थ यह जिस मन करि फुरणा होता है, तिस मनकों नाश किया है, अरु भय क्रोध अहंकार मोह तिस पुरुषविषे दिखते हैं, तौ भी उसके हृदयविषे कछु स्पर्श नहीं करते, जैसे पक्षी आकाशविषे आलणा भी करता है, परंतु आकाशकों स्पर्श नहींकरि सकता, तैसे उस पुरुषकों विकार कोउ स्पर्श नहीं करता ॥ हे रामजी! तिस पुरुषके संपूर्ण संशय नष्ट हो गये हैं, सर्वदा स्वरूपविषे स्थित है, अरु शांतरूप है, आत्मातें इतर किसी सुखकी वांछा नहीं करता, अरु सर्व संकल्प तिसके नष्ट हुए हैं, अरु आत्मातें इतर कछु नहीं भासता, जाग्रतकी नांई दृष्ट आता है, अरु सर्वदा जाग्रततें सुषुप्त है ॥ ॥ इति श्रीयोगवासिष्ठे निर्वाणप्रकरणे पंचमभूमिकावर्णनं नाम शताधिकचतुर्विंशतितमः सर्गः ॥ ॥ १२४ ॥ ॥ ॥ ॥ वसिष्ठ उवाच ॥ हे रामजी! तीसरी भूमिकापर्यंत जाग्रत है, अरु चतुर्थ भूमिकाविषे जाग्रत अवस्था स्वप्नवत् देखता है अरु पंचम भूमिकावाला संसारतें सुषुप्त होता है, अरु छठी भूमिकावाला तुरीयापदविषे स्थित होता है, अरु सर्वदा अक्रिय है, किसी क्रियाविषे बंधमान नहीं होता, सर्वकाल आनंदरूप है, अरु भिन्न होकरि आनंदकों भोगता नहीं, आपही आनंद है, केवल अपणे आप स्वतः स्थित है, अरु सर्वदा निर्वाण है ॥ हे रामजी! सर्व क्रियाविषे यथाशास्त्र विचरता दृष्ट आता है, परंतु अंतरतें शून्य है, उसकों किसी साथ स्पर्श नहीं, जैसे आकाशविषे सर्व पदार्थ भासते हैं, अरु आकाशका स्पर्श किसीसाथ नहीं, तैसेही सर्व क्रिया तिसविषे विद्यमान दृष्ट भी आती हैं, तौ भी अंतरतें किसीसाथ स्पर्श नहीं करता, काहेतें, जो क्रियाविषे बंधमान करणेहारा अहंकार था, सो तिसका नष्ट हो गया है, केवल शांतरूप है, अहंका फुरणा चिन्मात्रविषेतें निवर्त भया है, चिन्मात्रतें उत्थान अहंभावका, सोइ अज्ञान है, अरु दुःखदायी है, जब अहंभाव निवर्त भया, तब कोउ कर्म स्पर्श नहीं करता, यद्यपि विश्व तिसकों दृष्ट भी आता है, तौ भी वा

स्तवकरि नहीं देखता, तिसकों सर्व ब्रह्मही भासता है, खाता है, अरु नहीं खाता है, देता भी है, अरु कदाचित् नहीं दिया, लेता है, तौ भी कदाचित् किसीतें कछु नहीं लिया है, चलता है, परंतु कदाचित् नहीं चल्या ॥ हे रामजी! जेते कछु देश काल वस्तु पदार्थ हैं, तिसकों सर्वविषे आत्मभाव होता है, यद्यपि प्रत्यक्ष चेष्टा उसविषे दिखती है, तौ भी तिसके हृदयविषे कछु नहीं, जैसे स्वप्नविषे खाता पीता लेता देता आपकों भासता है, अरु जागेतें सर्वका अभाव हो जाता है, तैसे जो पुरुष परमार्थ सत्ताविषे जाग्या है, तिसकों गुणकी क्रिया अपणेविषे कोउ नहीं भासती, अरु जो करता है, तिसविषे अभिलाष नहीं, तिसकी चेष्टा स्वाभाविक होती है, अपणेनिमित्त कर्तव्य कछु नहीं, ऐसे भगवाननें भी कहा है, अरु सर्व आत्माही देखता है, आकाश पृथ्वी सूर्य ब्राह्मण हस्ती श्वान चंडाल आदिक सर्वविषे आत्मभाव देखता है, अरु आकारकों मृगतृष्णाके जलवत् देखता है, जो अत्यंत अभाव है, अरु द्रष्टा दर्शन दृश्य भी उसकों आकाशवत् भासते हैं, अरु निर्मल आकाशवत् शांतरूप है, अहंभावतें रहित केवल चिन्मात्रविषे स्थित है, ग्रहण त्यागतें अतीत अरु सर्व कलनातें रहित निर्वाण पद है, केवल स्वच्छ निर्मल आकाशरूप स्थित है, अहं मम आदिक चिद्ग्रंथी तिसकी भेदी है, चिद् जड कहियें अनात्मविषे अहं अभिमान, सो तिसका नष्ट भया है, केवल शांतरूप हो रहता है, जैसे क्षीरसमुद्रतें मंदराचल पर्वत निकस्या, अरु शांतरूप हुआ, तैसे रागदोषरूपी क्षोभ करणेवाले इसके अंतःकरणरूपी पर्वत निकसी गया, तब शांतरूप अक्षोभ हुआ, परम शोभाकरि शोभता है,जैसे विश्वकर्मानें सूर्यका मंडल रचा है,अरु प्रकाश करिके शोभा पावता है, तैसे ज्ञानरूपी प्रकाशकरि प्रकाशता है,जैसे चक्री फिरता फिरता रहि जाता है, अरु शांतिकों प्राप्त होता है, तैसे अज्ञानकरि फिरता फिरता ठहर्या हुआ, तिसकरि सदा शांतिकों प्राप्त भया है, अरु अपणे आपकरि प्रकाशता है, जैसे पवनतें रहित दीपक प्रकाशता है, तैसे कलनारूपी पवनतें रहित पुरुष अपणे आपकरि प्रकाशता है, अरु सर्व

दा निर्मल है, एकरस है, जैसे घटके अंतर भी शून्य है, अरु बाहिर भी शून्य है, तैसे देहके अंतर बाहिर आत्मा है, जैसे जलविषे घट राखियें तिसके अंतर बाहिर जल होता है, तैसे उह पुरुष अपणे आपकरि अंतर बाहिर पूर्ण हो रहा है, अरु एकरस है, द्वैत कलनाकों नहीं प्राप्त होता; अरु तिस पदकों पायकरि आनंदमान है, जैसे कोउ मारणेके निमित्त पकड्या हुआ तिसकी रक्षा होवै, तौ बडे आनंदकों प्राप्त होता है, तैसे उह पुरुष आनंदकों प्राप्त हुआ है, जैसे कोउ आधिव्याधितें छूटा आनंदकों प्राप्त होता है, तैसे उह ज्ञानवान आनंदकों प्राप्त हुआ है, जैसे कोउ पेंढेकरि थका हुआ शय्यापर आय विश्राम करे, अरु आनंदकों प्राप्त होता है, तैसे ज्ञानवानकों आनंद है, जैसे पूर्णमासीका चंद्रमा अमृतकरि आनंदवान होता है, तैसे उह पुरुष अपणे आनंदकरि घुरम है, जैसे काष्ठके जलेतें स्वच्छ अग्नि धुंएतें रहित प्रकाशती है, तैसे ज्ञानवान अज्ञानरूपी धुंएतें रहित शोभता है ॥ हे रामजी! जब संसारकी उर देखता है, तब अग्निकरि जलता हुआ आपतें जुदा देखता है, ज्ञानरूपी पर्वत ऊपर स्थित होकरि जलता देखता है ॥ हे रामजी! यह जो कहा है संसारकों जलता देखता है, सो ऐसे भी नहीं फुरता, जो मैं ज्ञानी हों, यह संसार है, स्वरूपकी अपेक्षाकरि यह कहा है, जो संसार उसकों दुःखदायी भासता है, आनंदतें रहित उह परमानंदकों प्राप्त भया है; बहुरि कैसा है, जो सत असततें रहित आपणा आप है, तिसविषे स्थित है, जैसें पर्वत अंतर बाहिर अपणे आपविषे स्थित है, अरु एकरस है, तैसे उह पुरुष एकरस है, अरु संसारविषे जाग्रत होकरि चेष्टा करता है, अरु अंतर संसारकी भावनातें रहित है, अरु तिस पदकों वाणीकी गम नहीं, परंतु कछु कहता हों, श्रवण कर, केई ब्रह्म कहते हैं, केई चेतन कहते हैं, आत्मा कहते हैं, साक्षी कहते हैं, अरु कालवाले उसीकों काल कहते हैं, ईश्वरवादी ईश्वर कहते हैं, सांख्यवाले प्रकृति कहते हैं, इत्यादिक जो संज्ञा है, सर्व उसीके नाम हैं, तिसतें इतर नहीं, तिस पदकों संत जन जाणते हैं ॥

हे रामजी! ऐसे पदकों पायके अपणे आपकरि शोभता है, जैसे मणिके अंतर बाहिर प्रकाश होता है, तैसे उह पुरुष अंतर बाहिर शोभता है, अपणे स्वरूपकरि सदा घुरम रहता है, जो पुरुष छठ्ठी भूमिकाविषे स्थित है, तिसके यह लक्षण होते हैं, संसारतें सुषुप्त हो जाता है, अरु स्वरूपविषे चेतन होता है, जीवत्व भाव तिसका चलता रहता है; जीवत्व कहियें परिच्छिन्नता, जैसे घटकी उपाधिकरि घटाकाश परिच्छिन्न भासता है, जब घट भग्न हुआ, तब घटाकाश महाकाश एक हो जाता है, तैसे अहंकाररूपी घटके भग्न हुए आत्माही भासता है ॥ ॥इति श्रीयोगवासिष्ठे निर्वाणप्रकरणे षष्ठभूमिकोपदेशो नाम शताधिकपंचविंशतितमः सर्गः ॥ १२५ ॥ ॥ ॥वसिष्ठ उवाच॥ हे रामजी! इसतें अनंतर जब सप्तम भूमिका पुरुषकों प्राप्त होती है, तब आपकों आत्माही जानता है, अरु भूतका ज्ञान जाता रहता है, केवल आत्मत्वमात्र होता है, दृश्यका ज्ञान नहीं रहता, अरु यह भी ज्ञान नहीं रहता जो विश्व मेरे आश्रय फुरती है, देहसहित होवै अथवा विदेह होवै, उसकों आत्मातें उत्थान कदाचित् नहीं होता, जैसे आकाश अपणी शून्यताविषे स्थित है, तैसे आत्मस्वरूपविषे स्थित है, अरु चेष्टा भी स्वाभाविक होती है, जैसे बालक पींघूडेविषे होता है, तिसके अंग स्वाभाविक हलते हैं, तैसे उसकी चेष्टा खान पान आदिक स्वाभाविक होती है, जैसे काष्ठकी पुतली तागे करिके चेष्टा करती है, तैसे प्रारब्धवेगके तागेकरि उसकी चेष्टा पडी होती है, अपणी इच्छा उसकों कछु नहीं रहती॥ हे रामजी! जैसी अवस्थाकों सप्तम भूमिकावाला प्राप्त हुआ है, सो आपही जानता है, इतर कोउ जाणी नहीं सकता, जिसका चित्त साथ है, अरु जिसका चित्त सत्पदकों प्राप्त हुआ है, सो भी नहीं जाणी सकता, जिसकों उह पद प्राप्त हुआ है सोइ जाणै॥ हे रामजी! जीवन्मुक्तका चित्त सत्पदकों प्राप्त हुआ है, अरु तुरीयापदविषे स्थित है, इसका चित्त निर्वाण हो गया है, तुरीयातीत पदकों प्राप्त भया है, अरु विदेहमुक्त है, तिसकों अहंभावका उत्थान कदाचित्

नहीं होता, सतरूप है, अरु असतकी नांईं स्थित है ॥ हे रामजी! उह पुरुष तिस पदकों प्राप्त हुआ है, जिसकों वाणीकी गम नहीं, परंतु कछु कहता हौं, सो पद शुद्ध है, अरु निर्मल है, अद्वैत है, अरु चेतन ब्रह्म है, कालका भी काल भक्षण करणेहारा केवल चिन्मात्र है, अरु ज्यौंका त्यौं अच्युत पद है, तिस पदकों पायकरि ऐसे होता है, जैसे वस्त्र ऊपर मूर्त्ति लिखी है, तैसे उत्थानतें रहित है, अहं ब्रह्माका उत्थान भी नहीं रहता ॥ ॥ इति श्रीयोगवासिष्ठे निर्वाणप्रकरणे सप्तमभूमिकालक्षणविचारो नाम शताधिकषड्विंशतितमः सर्गः ॥ १२६ ॥ ॥ ॥ वसिष्ठ उवाच ॥ हे रामजी! यह सप्त भूमिका तेर तांईं कही है, जो ज्ञानकी प्राप्ति इनहीकरि होती है, अन्य साधनकरि ज्ञानकी प्राप्ति नहीं होती ॥ हे रामजी! पुरुष ज्ञानवान हुआ तब जाणिये, जब तिसकी वृत्ति प्रथम भूमिकाविषे स्थित हुई है, तातें तुम भूमिकाकी उर चित्तरूप चरण राखौ, तब तुमकों स्वरूपकी प्राप्ति होवै ॥ हे रामजी! तीसरी भूमिकापर्यंत सर्व कामना निवर्त होती है, एक आत्मपदकी कामना रहती है, जब तिस अवस्थाविषे शरीर छूटि जावै, तब अवर जन्म पायकरि ज्ञानकों प्राप्त होता है, अरु जब चतुर्थ भूमिकाविषे प्राप्त हुए शरीर छूटै, तब बहुरि जन्म नहीं पावता, काहेतें जो आत्मपदकी प्राप्ति हुई बहुरि कछु पावणेकी इच्छा नहीं रहती, जन्मका कारण इच्छा है,जब इच्छा कछु न रही, तव जन्म भी न रहा, जिसकों चतुर्थ भूमिका प्राप्त भई है, तिसकों स्वरूपकी प्राप्ति भई है, बहुरि इच्छा कैसे होवै, जैसे भूना बीज नहीं उगता, तैसे उसका चित्त ज्ञान अग्नि करिके दग्ध हुआ है, जो सत पदकों प्राप्त हुआ है, इसीतें जन्म नहीं लेता, अरु मरता भी नहीं, संसारकों स्वप्नवत् देखता है, अरु पंचम भूमिकावाला सुषुप्तकी नांईं होता है, अरु छठी भूमिका साक्षीरूप तुरीया पद है,सप्तम तुरीयातीत निर्वाच्य पद है॥ हे रामजी! मेरे एते कहणेका प्रयोजन यही है, जो वासनाका त्याग करु, अरु अचित्त पदकों प्राप्त होहु, सो वासना क्या है, इसका अभिमान होणाही वासना है,

जब इसका अभिमान निवर्त भया, तबही शांति हुई, इस परिच्छिन्न अहंकार रहणा नहीं, आत्माके अज्ञानतें हुआ है, अरु आत्मज्ञानतें लीन हो जाता है॥ हे रामजी ! संसाररूपी एक नदी है, तिसविषे आधि व्याधि उपाधि रोग तरंग हैं, अरु रागदोषरूपी छोटे मत्स्य हैं, अरु तृष्णारूपी बडे मत्स्य हैं, तिसविषे तिसकरि जीव दुःख पावते हैं, जैसे जल नीचेकों चला जाता है, तैसे मृत्युके मुखमें संसार चला जाता है, अरु अज्ञानरूपी जल है॥ हे रामजी! तृष्णाकरि पुरुष बांधे हैं, तातें तुम तृष्णारूपी संगलकों काटौ, हस्तिकी नांई वैराग्य अभ्यासरूपी दंतकरि तृष्णारूपी जंजीर काटहू ॥ हे रामजी! यह तृष्णारूपी सर्पिणी है, विषयरूपी फुत्कारेकरि विचाररूपी वल्लीकों जलावती है, तिसकरि जीवरूपी कृषाण दुःख पावता है, तातें वैराग्यरूपी अग्निकरि सर्पिणीकों जलावहु ॥ हे रामजी! तृष्णा दुःखदायी है, जबलग तृष्णा है, तबलग संतके वचन इसके हृदयविषे स्थित नहीं होते, जैसे दर्पण उपर मोती नहीं ठहरता, तैसे तृष्णावानके हृदयविषे संतके वचन नहीं ठहरते, सो तृष्णाके एते नाम हैं, तृष्णा, अभिलाषा, इच्छा, फुरणा, संसरणा इत्यादिक सर्व इसीके नाम हैं, सो इच्छारूपी मेघ है, तिसनें ज्ञानरूपी सूर्य आच्छाद्या है, तिसकरि भासता नहीं, जब विचाररूपी पवन चलै, तब इच्छारूपी मेघ नष्ट हो जावै, अरु आत्मरूपी सूर्यका साक्षात्कार होवै ॥ हे रामजी! यह जीव आकाशका पक्षी है, तिसका कर्मविषे इच्छारूपी तागा है, तिसकरि उडि नहीं सकता, अरु परमात्मपदकों नहीं होता, अरु इच्छाहीकरि दीन है, जब इच्छा नष्ट होवै, तब आत्मस्वरूप है, तातें इच्छाका नाशकरि आत्मपरायण होहु, आत्मपरायण कहिये विषयसंसारतें वैराग्य अरु आत्म अभ्यास करौ ॥ हे रामजी! यह जो मैं तेरे तांई भूमिका क्रम कहा है, जब इसविषे आवै, तब ज्ञानकी प्राप्ति होवै, सो इनकों तब प्राप्त होता है, जो एक हस्तिणीकों जीतता है, एक वनविषे रहती है, दो उसके पुत्र महामत्तरूप हैं, उह अनेक जीवकों मारिकरि अनर्थकों प्राप्त करती है, तिसके जीते

तें सर्व जगत जीत्या जाता है ॥ राम उवाच ॥ हे भगवन्! ऐसी हस्तिनी मत्तरूप सो कवन है, अरु कहां रहती है, कवन उसके दंत अरु पुत्र हैं, कैसे उह मारती है, अरु कैसे उसकों रचा है, अरु कवन बन है, यह सब मुझकों कहौ ॥ ॥ वसिष्ठ उवाच ॥ हे रामजी! इच्छारूपी हस्तिनी है, शरीररूपी बन है, मनरूपी गुंफा विषे रहती है, इंद्रियांरूपी बालक है, संकल्पविकल्परूपी दंत हैं, तिनसाथ छेदती है ॥ हे रामजी! एक नदी है, तिसका प्रवाह सदा चला जाता है, तिसविषे दो मत्स्य रहते हैं, जो नाश नहीं होते, यह संसरणाही नदी है, अरु राग दोष तिसविषे मत्स्य रहते हैं, सो नाश नहीं होते ॥ हे रामजी! मत्स्य तब नाश होवैं, जब संसरणरूपी जल नष्ट होवै, तिसके सुकृतदुष्कृतरूपी किनारे हैं, चिंतारूपी ग्राह है, कर्मरूपी लहरी है, तिन विषे आया जीवरूपी तृण भटकता है, अरु तृष्णारूपी विषकी वल्लीकों नाश करौ ॥ हे रामजी! तृष्णारूपी अंकुरका बढावणा घटावणा अपणे आधीन है, जो अंकुरकों जल देइए तौ बढता जाता है, अरु जो न देइए तौ जलि जाता है, सो फुरणेरूपी जल देणेकरि तृष्णारूपी अंकुर बढता जाता है, अरु न देणेकरि जलि जाता है,स्वरूपके अभ्यासकरि ॥ हे रामजी! तृष्णारूपी बडा मत्स्य है, धैर्य आदिक मांसकों भक्षण करणेवाला है, तिसकों वैराग्यरूपी कुंडा अरु अभ्यासरूपी दंतीकरि नाश करौ ॥ हे रामजी! इच्छाका नाम बंधन है; निरिच्छाका नाम मुक्ति है ॥ हे रामजी! एक सुगम उपाय कहता हौं, जिसकरि तृष्णा नष्ट होजावै, सो निज अर्थकी भावना करु, जब निज अर्थकी भावना करी, तब शीघ्रही आत्मपदकी प्राप्ति होवैगी, अरु तेरी जय होवैगी, सर्वतें उत्तम पदकों प्राप्त होवैगा, अरु वासना तेरी कोउ न रहैगी, शरीरकी चेष्टा स्वाभाविक होवैगी, संकल्प सर्व नष्ट हो जावैंगे ॥ ॥ इति श्रीयोगवासिष्ठे निर्वाणप्रकरणे संसरणाभावप्रतिपादनं नाम शताधिकसप्तविंशतितमःसर्गः ॥ १२७ ॥ ॥ ॥ ॥ राम उवाच ॥ हे भगवन्! तुम कहते हौ निज अर्थकी भावना करु, वासना नष्ट हो जावैगी, अरु शीघ्रही आत्मपदकी प्राप्ति होवैगी सो वासना तौ चिरकाल

की चित्तविषे स्थित है, एकही वार कैसे नष्ट होवैगी ? अरु तुम कहते हौ वासनाके नष्ट हुए जीवन्मुक्त होता है, जिसकी वासना नष्ट हुई तिसका शरीर कैसे रहैगा ? अरु वासना बिन चेष्टा क्योंकरि होवैगी ? तातें जीवन्मुक्त पद कैसे बणै ॥ ॥ वसिष्ठ उवाच ॥ हे रामजी ! मेरे वचन प्रीतिसाथ सुण, कैसे वचन हैं, श्रवणोंके भूषण हैं, जिनके सुनणेतें दारिद्य न रहैगी, निज अर्थके धारणेतें संशय नष्ट हो जावैंगे, अरु आत्मपदकी प्राप्ति होवैगी, सो निज अक्षरके तीन अर्थ हैं, एक तौ अन्यके अर्थ हैं, जो पंचभौतिक शरीरतें तेरा स्वरूप अन्य विलक्षण है, अरु दूसरा अर्थ यह जो विरुद्ध है, शरीर जड है, तमरूप है, अरु तेरा स्वरूप आदित्यवर्ण है, तमतें परे है ॥ हे रामजी ! जब तैंनें ऐसे धारा जो मैं आत्मा हौं, अरु यह देहादिक अनात्मा है, तब देहसाथ मिलिकरि अभिलाषा कैसे रहैगी, अर्थ यह जो न करैगा, जबलग जाण्या नहीं, तबलग अभिलाषा है, अरु तीसरा अर्थ निजका यह जो अभाव है, जो न मैं हौं, न कोउ जगत है, ऐसे जाण्या तब इच्छा किसकी रहैगी, अर्थ यह जो न रहैगी, अथवा जो तूं आपकों आत्मा जाणैगा, देहतें विलक्षण तौ भी अविद्यक तमरूप शरीरकी अभिलाषा न रहैगी, देह तमरूप है, तूं आदित्यवर्ण है, आदित्यवर्ण कहिये जो तूं प्रकाशरूप है, तेरा अरु इसका संयोग कहां होवै, जैसे सूर्यके मंडलविषे रात्रि नहीं देखिती तैसे जब तूं आपकों प्रकाशरूप जाणैगा, तब तमरूप संसार न देखैगा, शरीरकी चेष्टा स्वाभाविक होवैगी, अरु तेरेविषे चेष्टा कछु न होवैगी, जैसे अर्ध निद्रावालेकी चेष्टा होती है, अरु जानिती भी नहीं, तैसे चेष्टा होवैगी, अरु बालककी नांई तुझकों अभिमान न होवैगा, जैसे बालककी उन्मत्त चेष्टा होती है, तैसे तेरी चेष्टा भी स्वाभाविक होवैगी ॥ हे रामजी ! जो तूं इच्छा करै, जो यह सुख होवै, अरु यह दुःख न होवै, तौ कदाचित् न होवैगा, जो कछु शरीरकी प्रारब्ध है सो अवश्य होती है, परंतु ज्ञानवानके हृदयतें संसारकी सत्यता जाती रहती है, अरु चेष्टा स्वाभाविक होती है, इच्छा नहीं रहती ॥ हे रामजी ! जैसे किसी पुरुषकों मंज

ल पेंडा करणा होता है, पेंडा बडा होवै, अरु पहुंचणेका समय थोडा होवै तौ उह पुरुष मार्गके स्थान दे
खता भी जाता है, परंतु बंधमान किसीविषे नहीं होता, तैसे चित्तकों आत्मपदविषे ल्यावहु, जो किसी
प्रकार पहुंचणा है, ऐसा शरीर पायकरि आत्मपद न पाइए तौ कव पावणा है, जो आत्मपदतें विमुख है,
सो वृक्षादिक जन्मोंकों पावैगा, तातें ॥ हे रामजी! चित्त आत्मपदविषे राख, अरु स्वाभाविक इच्छावि
ना चेष्टा होवै, इच्छाही दुःखदायक है, जब इच्छा नष्ट हुई, तब इसीकों ज्ञानवान तुरीया पद कहते हैं, ज
हां जाग्रत स्वप्न सुषुप्तिका अभाव होवै सो तुरीया पद है ॥ हे रामजी! यह जाग्रत स्वप्न सुषुप्ति अवस्था
जहां न पाइयें सो तुरीयापद है, जब संवेदन फुरणा अहंकारका अभाव हो जावै, तब तुरीयापद प्राप्त हो
वै ॥ हे रामजी! अहंकारका होणा दुःखदायक है, जब इसका नाश हुआ तबही आनंद है, आत्मपदतें इत
र जो मायाकी रचना है, तिससाथ मिलीकरि आपकों जानता है, मैं हौं, यही अनर्थ है, तातें अहंकारका
त्याग करौ, जिसकों देखीकरि फुरता है, तिसकों निज अर्थकी भावनाकरि नाश करु, जो आत्मपदतें इ
तर भासता है, सो मिथ्या जाणौ, यही निज अक्षरका अर्थ है, जेता कछु संसार भासता है, तिसकों स्वप्न
मात्र जाणौ, सत जाणीकरि इसविषे इच्छा करणी यही अनर्थ है, अरु मिथ्या जाणीकरि इच्छा न करणी
यही कल्याण है ॥ हे रामजी! मैं उंची बाहूकरि पुकारता हौं, मेरे वचन सुणता कोउ नहीं, जो इच्छाही
संसारका कारण है, अरु इच्छातें रहित होणा परम कल्याण है, जब इच्छातें रहित हुआ तब शांतपदकों
प्राप्त होता है, निरिच्छित हुए आत्मा भासता है, जो आनंदरूप है, सम है, अद्वैत है, तिसविषे जगतका
अभाव है ॥ हे रामजी! मोहका बडा माहात्म्य है, हृदयविषे जो आत्मरूपी चिंतामणि स्थित है, तिसका मू
र्ख विस्मरण करिके अहंकाररूपी काचकों ग्रहण करते हैं ॥ हे रामजी! तुम निरभिमान होकरि चेष्टा करौ,
जैसे यंत्रीकी पुतलीविषे अभिमान कछु नहीं, अरु चेष्टा तिसकी होती है; तैसे पारब्धवेगकरि तुमारी चे

ष्टा होवैगी, यह अभिमान तुम न करौ, जो ऐसे होवै, अरु ऐसे न होवै, जब ऐसा होवैगा, तब शांत पद कों प्राप्त होवैगा, जहां वाणीकी गम नहीं, ऐसे आनंदकों प्राप्त होवैगा, जबलग इंद्रियांके अर्थकी तृष्णा है, तबलग जन्ममृत्युकें बंधनमें है, तातें पुरुषप्रयत्न यही है, जो तृष्णाका नाश करौ, कर्मके फलकी तृष्णा तेरे तांई न होवै, अरु कर्मके करणेविषे भी तेरे तांई इच्छा न होवै, इन दोनोंकों त्यागिकरि स्वरूपविषे स्थित होहु, अरू ऐसा भी निश्चय न होवै, जो मैं त्याग किया है ॥ हे रामजी! जिस पुरुषनें कर्मका त्याग किया है, अरु अहंकारसाथ है, तौ पुण्य अरु पाप तिसनें सब कछु किया है, अरु जिसविषे अहंभाव नहीं, सो भावै तैसे कर्म करै, तौ भी कछु नहीं किया, सो बंधनकों नहीं प्राप्त होता, जो कर्मविषे आपकों अकर्त्ता जानता है, अरु अकरणेविषे अभिमानसहित है, तिसकों करता देखते हैं, सो बंधवान हैं ॥ हे रामजी! ऐसे आत्माकों जाणीकरि अहंममका त्याग करौ, ऐसे संवेदनके त्यागणेविषे यत्न कछु नहीं, स्मृति तिसकी होती है, जिसका अनुभव होता है, जिसका अनुभव न होवै, तिसका त्याग करणा सुगम है, अनुभव कहिए प्रत्यक्ष देखणा, विश्व तेरे स्वरूपविषे है नहीं, तौ अनुभव क्या होवै, यह पदार्थ जो तेरे तांई भासते हैं, तिनके कारणकों जाण, इनका कारण अनुभव है, जो अनुभवही इनका मिथ्या है, तौ स्मृति सत कैसे होवै? जेवरीविषे सर्पका अनुभव हुआ बहुरि स्मरण किया, जो उहां सर्प देखा था, जो सर्पका अनुभवही मिथ्या है, बहुरि उसका स्मरण सत कैसे होवै, तातें जो वस्तु मिथ्या है, तिसके त्यागणेविषे क्या यत्न है, जब प्रपंचकों मिथ्या जान्या तब तुमकों कोउ क्रिया बंधन न होवैगी, चेष्टा स्वाभाविक होवैगी, अरु रागदोष चलता रहैगा, जैसे शरत्कालकी वल्ली सूकी जाती है, अरु आकार उसका दृष्ट आता है; तैसे तुमारा चित्त देखणेमें आवैगा, अरु चित्तका धर्म जो राग दोष है, सो चलता रहैगा, उह चित्त सत पदकों प्राप्त होवैगा, जब सर्व विस्मरण होवैगा, तिसकों शिवपद कहते

हैं, सो परमपद है, अरु ब्रह्म है; शब्द अर्थतें रहित केवल चिन्मात्रअद्वैत पद है, अहंममका त्याग करिके तिसविषे स्थित होहु, अरु संसार इसीका नाम है, जो अहं हौं, अरु यह मेरा है, इसकों त्यागिकरि अपणे स्वरूपविषे स्थित होहु ॥ हे रामजी! जबलग अहं मम यह संवेदन है, तबलग दुःख नहीं मिटते, जब यह संवेदन मिटी, तब आनंद है, आगे जो इच्छा है, सो करो ॥ ॥ इति श्रीयोगवासिष्ठे निर्वाणप्रकरणे इच्छाचिकित्सोपदेशो नाम शताधिकाष्टविंशतितमः सर्गः ॥ १२८ ॥ ॥ ॥ वसिष्ठ उवाच ॥ हे रामजी! आत्मा अद्वैत है, जिसविषे एक दो कहणा नहीं, अपणे आप स्वभावविषे स्थित है, अंतःकरण चतुष्टय अरु बाह्य पदार्थ सर्व चेतनमात्र हैं, इतर कछु नहीं, रूप इंद्रियां अरु मनका फुरणा, देश काल सर्व आत्मारूपही है, जैसे बालक माटीकी सैना बनाता है, अरु हस्ती घोडे राजा प्रजा नाम कल्पता है, सो सर्व माटीही है, इतर कछु नहीं, तैसे अहं मम आदिक भी सर्व आत्मरूप हैं, इतर कछु नहीं, जैसे माटीविषे हस्ती घोडा आदिक नाम कल्पता है, तैसे आत्माविषे जगत जीव कल्पता है, आत्मातें इतर कछु नहीं, इस अहंकारका त्याग करु, आत्मपदतें इतर कछु फुरै नहीं ॥ हे रामजी! रूप अवलोक नमस्कार यह सब शिवरूपी मृत्तिकाके नाम हैं, मान मेय प्रमाण आदिक यह सब उही रूप हुए तौ किसकरि किसकों संचित कहिये, यह अहं मम आदिक भी चिदाकाशतें इतर कछु वस्तु नहीं, इनकों ऐसे जाणिकरि अफुर शिलावत् निःसंग होय रहु ॥ ॥ राम उवाच ॥ हे भगवन्! तुमनें कहा जो अहं मम फुरणेका त्याग करु, यह मिथ्या है, अहं मम असत है, ज्ञानी ऐसी भावना करते हैं, इनकी सत्ता कछु नहीं, अरु असंग होहु, सो असंग निष्कर्मकरि होता है, अथवा सकर्मकरि होता है यह कहो ॥ वसिष्ठ उवाच ॥ हे रामजी! यह तूंही कहु, जो कर्म क्या है, निष्कर्म क्या, अरु इनका कारण कवन है, अरु इनका नाश कैसे होवै, अरु नाश होणेकरि सिद्धि क्या होवैगी? जो तूं जानता है, तौ कहु ॥ ॥ राम उवाच ॥ हे भगवन्! जैसे तुमतें श्रवण किया

है, अरु समुझा है, सो मैं कहता हौं; जो वस्तु नाश करणी होवै, तिसकौं निश्चयकरि मूलतें नाश करियें; त
बही तिसका नाश होता है, शाखा पत्र काटेतें उसका नाश नहीं होता, तातें इनका क्रम सुणौ, यह संसार
रूपी वनविषे देहरूपी वृक्ष है, तिसका बीज कर्म है, अरु पाणि पाद आदिक उसके पत्र हैं, अरु रुधिर श्वा
स वासना इसविषे रस हैं, अरु सुख दुःख इसके फूल हैं, अरु जाग्रत कर्म वासनारूपी वसंतऋतु है, तिस
करि प्रफुल्लित होते हैं, अरु सुषुप्ति पाप कर्मरूपी इसकौं शरत्काल है, तिसकरि सूकि जाता है, ऐसा शरी
ररूपी वृक्ष है, बहुरि कैसा है, तरुणपवनरूपी कली है, क्षणका क्षण सुंदर है, जरारूपी फूल इसकौं हसते हैं,
अरु रागदोषरूपी वानर क्षण क्षणविषे क्षोभते हैं, जाग्रतरूपी इसकौं वसंतऋतु है, अरु सुषुप्तिरूपी हिम क
रती है, अरु वासनारूपी रसकरि बढता है, अरु पुत्र कलत्र आदिक यह तृण घास है; अरु इंद्रियाके गढरूपी
तिसका मुख है, इनकरि शरीरकी चेष्टा होती है, ज्ञान इंद्रिया इसके पंच स्तंभ हैं, इनकरि वृक्ष धारा है, अ
रु इच्छा इसविषे बेले हैं, जो अपणे अपणे विषयकौं चाहती है, अरु बडा स्तंभ इसका मन है, जो सर्वकौं
धारता है, अरु पंच प्राण इसके रस हैं, प्रत्यक्ष उन मांस शब्द इनकरि सर्वकौं ग्रहण करता है, आगे इनका
बीज जीव है, जीव कहियें चैत्योन्मुखत्व चेतन,अरु जीवका बीज संवित् है, जो मात्रपदतें उत्थान हुआ
है, तिस संवितका बीज ब्रह्म है,तिसके बीज आगे कोउ नहीं ॥ हे भगवन्! सबका मूल संवितका फुरणा है,
जब इसका अभाव हुआ, तब शेष आत्माही रहा है ॥ हे भगवन्! यह तौ मैं जानता हौं, आगे कछु कृपा क
रि तुम कहौ ॥ हे भगवन्! जबलग चित्तसाथ संबंध है, तबलग संसारविषे जन्म मृत्यु पावता है, जब
चित्ततें रहित हुआ, तब परब्रह्म है, सो शिवपद है, अनिच्छित है, शांत है, अनंतरूप है, चिन्मात्रविषे
जो अहंका उत्थान है, सोइ कर्मरूपी वृक्षका कारण है, जबलग अनात्मासाथ मिलिकरि कहता है, मैं हौं ऐ
से जानता है, सो संसारका कारण है, यह तुमारे वचनकरि समुझा है, सो प्रार्थना करी है, आगे कछु कृपा

करि तुम कहौ ॥ ॥ वसिष्ठ उवाच ॥ हे रामजी! इसी प्रकार कर्मका बीज सूक्ष्म संवित् है, जवलग संवित् है, तबलग कर्मोंका बीज नाश नहीं होता, अरु यह सब संज्ञा इसकी हैं, कर्मोंका बीज कहियें, इच्छा कहियें, तृष्णा कहियें, अज्ञान कहियें, चित्त कहियें, इत्यादिक बहुत संज्ञा हैं, अवर क्या किसीविषे हेयोपादेय बुद्धि करें ॥ हे रामजी! जबलग अज्ञान है,तबलग इच्छा नाश नहीं होती,अरु कर्म भी नाश नहीं होते, नाश दोनोंका भेद नहीं होता,परंतु भेद है,अज्ञानीकों भासता है,जो इच्छा है, यह कर्म है, अरु ज्ञानवानकों सर्व ब्रह्मही भासता है, तातें सुखी रहता है, अरु अज्ञानीकों कर्मविषे कर्म भासता है, तातें बंधमान होता है, अरु इसीका नाम त्याग है, जो कर्मतें कर्मबुद्धि जावै, अरु इसका नाम त्याग नहीं, जो क्रियाका त्याग करणा है ॥ हे रामजी! बडी उपाधि अहंकार है, जिसका अहंकार नष्ट हुआ है, उह पुरुष कर्म करता है, तौ भी उसनें कबहु कछु नहीं किया, अरु जो अहंकारसहित है, उह पुरुष जो तूर्ष्णीं हो वैठा है, तौ भी सब कर्म करता है, इस अहंके त्यागका नाम सर्व त्याग है, अवर क्रियाके त्यागका नाम सर्व त्याग नहीं, पुरुष प्रयत्न यही है, जो सर्व कर्मोंका बीज अहंकारका त्यागणा, अरु परम शांतिकों प्राप्त होणा ॥ ॥ इति श्रीयोगवासिष्ठे निर्वाणप्रकरणे कर्मबीजदाहोपदेशो नाम शताधिकनवविंशतितमः सर्गः ॥ १२९ ॥ ॥

॥ वसिष्ठ उवाच ॥ हे रामजी! इस संवेदनका होणाही अनर्थ है, जो आपकों कछु जानता है, जब इह निवृत्त होवै, तबही इसकों आनंद है ॥ हे रामजी! ज्ञानीकी चेष्टा अहंकारतें रहित स्वाभाविक होती है, जैसे अर्ध निद्रित पुरुष होता है, तैसे ज्ञानी अपणे स्वरूपविषे घूर्म है, जैसे हस्ती मदकरि उन्मत्त होता है, तैसे ज्ञानवान स्वयंब्रह्म लक्ष्मीकरि घूर्म है, अरु ज्ञान ऐसा व्यसन है, जैसा कामीकों काम व्यसन होता है, तैसे यह सुखरूपी स्त्रीकों पायकरि घूर्म रहता है, काहेतें जो निरहंकार है, सर्व दुःखका बीज अहंकार है, जब अहंकार नष्ट हुआ, तब आनंद भया ॥ हे रामजी! संसाररूपी विषकी वल्ली है, तिसका बीज अ

हंकार है, जब अहंकारका अभाव होवै, तब संसारका अभाव होता है ॥ हे रामजी! अहंकार दुःखका मूल है, इस संवेदनका विस्मरण करणा बडा कल्याण है, जो कछु अनात्मसाथ मिलिकरि आपकों मानणा यही अनर्थ है ॥ ॥ राम उवाच ॥ हे भगवन्! जो वस्तु असत्य है, तिसका होणा नहीं होता, अरु जो सत्य है, तिसका अभाव नहीं होता, तुम कैसे कहते हौ, जो अहं संवेदनका नाश करौ, ए तौ सत भासती है, संवेदन अवेदन कैसे होवै? ॥ ॥ वसिष्ठ उवाच ॥ हे रामजी! तूं सत्य कहता है, जो वस्तु असत्य है, तिसका होणा नहीं, अरु जो सत है, तिसका नाश नहीं होता है ॥ हे रामजी! यह जो अहंकार दृश्य तुझकों भासता है, सो इसका होणा कदाचित् नहीं, मिथ्या कल्पित है, जैसे जेवरीविषे सर्प होता है, तैसे आत्माविषे अहंकार है, जैसे सूर्यकी किरणांविषे जलाभास होता है, तैसे आत्माविषे अहंकार शब्द अर्थ फुरता है, यह शब्द अरु अर्थ मिथ्या है, तिसका लक्षण यह जो मैं हौं सो कल्पित है, आत्मा केवल शुद्ध स्वरूप है, तिसविषे अहं त्वंका शब्द अर्थ कोउ नहीं, यह अबोधकरि भासते हैं, बोधकरि लीन हो जाते हैं, अरु वेदनाका जो बोध है, सो अनर्थका कारण है, अबोधतम है, जब यह निर्वाण होवै, तब कर्मका बीज मूलतें काट्या ॥ हे रामजी! जो कर्मोंकों त्यागिकरि एकांत जाय बैठता है, जो मैं कर्म नहीं करता हौं, ऐसे मानता है सो कहताही है, जो अहंकारसाथ है तौ फलकों भोगताही है, काहेतें जो अहंकारसहित मैं बहुरि करैगा, आत्मज्ञानविना अनात्मसाथ मिलीकरि आपकों मानता है, अरु जो पुरुष कर्म इंद्रियांसाथ चेष्टा करता है, अरु आत्माकों लेप नहीं जानता है सो अकर्त्ताही है, तिसकों करणेविषे कछु अर्थ सिद्ध नहीं होते, अकरणेकरि भी नहीं होता, ऐसा पुरुष परम निर्वाणपदकों प्राप्त होता है, जिसकों वाणीकी गम नहीं ॥ हे रामजी! उसविषे फुरणा कोउ नहीं, चमत्कार है, चमत्कार कहिए हुआ कछु नहीं अरु भासता है, जैसे बिल्लकी मज्जा होती है, उह बिल्लतें इतर कछु वस्तु नहीं, तैसे जगत है, जैसे सोनेतें भूषण

भिन्न नहीं, तैसे निजशब्दका अर्थ है, सो यह भिन्न भिन्न शब्द अर्थ तबलग भासता है, जबलग अहंवेदनाकार है ॥ हे रामजी! आत्मपद सदा अपणे आपविषे स्थित है, जैसे पत्थर अपणी जडताविषे स्थित है, तैसे आत्मा अपणी चेतनघनताविषे स्थित है, तिसकों मुनीश्वर चेतनसार कहते हैं, तिस अपणे स्वरूपके प्रमादकरि दुःख पावता है ॥ हे रामजी! जो पुरुष गृहविषे स्थित है, अरु अहंकारतें रहित है, तिसकों वनवासी जाण, सदा एकांत है, अरु जो वनवासी है, अरु अहंकारसहित है सो जनोंविषे स्थित है, प्रथम एक गरतविषे था, तिसकों त्यागिकरि दूसरी गरतमें पडा है, जो भेषधारी है, अरु वनवास लिया है, तिसकों ईश्वर चाहै तौ निकसै, नहीं तौ बडे कूपविषे पडा है ॥ हे रामजी! जो पुरुष अर्ध त्याग करता है, एक अंगका त्याग किया, अरु दूसरेका अंगीकार किया, ऐसा पुरुष आपकों निष्कामी मानता है, तिसकों उह त्यागरूपी पिशाचिनी भोगती है ॥ हे रामजी! निष्कर्म यह तबही होता है, जब इसकी अहंवेदना नष्ट होती है, अन्यथा नहीं होता, तातें कर्मकों मूलतें उखाडहु, जैसे शूरदंड बल बुंटेकों मूलतें काटता है, तैसे काटहु, अहं वेदनाही मूल है, तिसका मूल काटणा है ॥ हे रामजी! पुरुष प्रयत्न इसीका नाम है, जो अपणे आपका नाश करणा, अरु आपही रहणा, देहसाथ मिल्या हुआ आपकों जानता है, तिसका नाश करणा, अरु शिवपदकों प्राप्त होणा, जो सर्वदा सतस्वरूप है, अरु अद्वैत है, तिसविषे स्थित होहु, यह विश्व भी तिसका चमत्कार है, जैसे बिल्वविषे गरी होती है, तिसके बहुत नाम राखते हैं, सो बिल्वतें इतर कछु नहीं, तैसे संसार आत्मातें इतर कछु नहीं, जैसे स्तंभविषे काष्ठतें इतर कछु नहीं, तैसे यह संसार है, नानात्व जो भासता है, सो भी चेतनघन आत्माही है, अरु निज अक्षरका अर्थ जो तेरे तांई कहा है, सो भी उही है, विधिनिषेध किसका करियें, सर्व परमात्मा तत्त्व है, दूसरा किंचित मात्र भी नहीं ॥ हे रामजी! ऐसे आत्माकों जाणीकरि सुखेन विचरौ, स्वाभाविक चेष्टा होवैगी, जैसे अर्ध नि

द्रितकी होती है, अरु जैसे बालक पिंघुडेविषे होता है, अंग उसके स्वाभाविक हलते हैं, तैसे तुमारी चेष्टा होवैगी, अपणा अभिमान तुम न करौ ॥ हे रामजी ! जेते कछु भाव अभाव पदार्थ भिन्न भिन्न भासते हैं, सो आत्माके साक्षात्कार हुएतें परमात्मतत्त्वही भासैंगे, जब अहंकार उत्थान निवर्त होवैगा ॥ हे रामजी ! एक अवर युक्ति सुण, जिसकरि आत्मज्ञान होवै, यह जो अहं अहं क्षणक्षणविषे फुरती है, सो जब फुरै तबही तिस क्षणविषे जाण, जो मैं नहीं, जब ऐसे दृढ हुआ, तब अहंकाररूपी पिशाच नाश हो जावैगा, अरु आत्मतत्त्वका साक्षात्कार होवैगा, जब अहंकार नाश होवै, तब आत्मा भासै, तातें अहंकारके नाशका यत्न करु, जो न मैं हौं, न जगत है ॥ हे रामजी ! ज्ञान इसीका नाम है, जो अहं मम न रहै, तिसकों मुनीश्वर परम ब्रह्म कहते हैं, अरु सम्यक् पद कहते हैं, अरु जहां अहं मम है, तहां अविद्यारूपी तम खडा है ॥ हे रामजी ! अज्ञानीके हृदयविषे सर्व पदार्थका भाव स्थित है, देश काल घर नगर मनुष्य पशु पक्षी आदिक त्रिगुण संसार तिसकों भासता है, जब इनका अभाव हो जावै, तब शांतपदकी प्राप्ति होवै ॥ इति श्रीयोगवासिष्ठे निर्वाणप्रकरणे अहंकारनाशविचारो नाम शताधिकत्रिंशतितमः सर्गः ॥ ॥ १३० ॥ ॥

॥ वसिष्ठ उवाच ॥ हे रामजी ! जिसके मनतें मैं मेरेका अभिमान गया है, तिसकों शांति प्राप्त भई है, अरु जिसके हृदयविषे मैं देह मेरेसंबंधी गृह आदिक अभिमान है, तिसकों शांति कदाचित् नहीं, अरु शांतिविना सुख नहीं ॥ हे रामजी ! प्रथम आप बनता है, तब जगत है, जो आप होता न बनै तौ जगत कहां होवै, इसका होणाही अनर्थका कारण है, जिस पुरुषनें अहंकारका त्याग किया है, सो सर्वत्यागी भया, अरु जिसनें अहंकारका त्याग नहीं किया, तिसनें कछु नहीं त्याग्या, अरु जिसनें क्रियाका त्याग किया है, अरु आपकों सर्वत्यागी मानता है, सो मिथ्या है, जैसे वृक्षके टास काटिए तौ फिरि उगता है, नाश नहीं होता, तैसे क्रियाके त्याग किये त्याग नहीं होता, त्यागणे योग्य अहंकार जो नष्ट नहीं होता,

तौ क्रिया बहुरि उपजती है, तातें अहंकारका त्याग करै, तब सर्वत्यागी होवै, इसका नाम महात्याग है, तिसकौं स्वप्नविषे भी संसार न भासैगा; जागृतकी क्या कहणी है, तिसकौं संसारका भान कदाचित् नहीं होता ॥ हे रामजी! संसारका बीज अहंभाव है, तिसकरि स्थावर जंगम जगत भासता है, जब इसका नाश हुआ, तब जगतभ्रम मिटि जाता है, तातें इसके अभावकी भावना करु, जब तेरे तांई अहंभाव फुरै, तब तूं जाण, जो में नहीं, जब इस प्रकार अहंका अभाव हुआ, तब पाछे जो शेष रहैगा, सो आत्मपद है ॥ हे रामजी! सब अनर्थका कारण अहंभाव है, तिसीका त्याग करु ॥ हे रामजी ! शस्त्रका प्रहार जीव सहि रहता है, अवर व्याधिरोगकौं सही रहता है, इस अहंके त्यागणेविषे क्या कदर्थना है ॥ हे रामजी! संसारका बीज अहंका सद्भाव है, तिसका नाश करना संसारका मूलसंयुक्त नाश है, तातें तिसके नाशका उपाय करौ, जिसका अहंभाव नष्ट हुआ है, तिसकौं सब ठौर आकाशरूप है, उसके हृदयविषे संसारकी सत्ता कछु नहीं फुरती, यद्यपि गृहस्थविषे होवै, तौ भी प्रपंच यह शून्य वनकी अटवी तिसकौं भासती है, अरु जो अहंकारसहित है, वनविषे जाय बैठै, तौ भी जनके समूहविषे बैठा है, काहेतें जो तिसका अज्ञान नाश नहीं भया, अरु जिसनें मनसहित षट् इंद्रियांकौं वश नहीं किया, तिसकौं मेरी कथा श्रवणका अधिकार नहीं, उह पशु है, अरु जिस पुरुषनें मनकौं जीत्या है, अथवा जीतणेकी इच्छा करता है, दिन दिन प्रति सो पुरुष है, अरु जो इंद्रियांकरि विश्रामी है, काम क्रोध लोभ मोहकरि संपन्न है, सो पशु है, महाअंधतमकौं प्राप्त होता है ॥ हे रामजी! जो पुरुष ज्ञानवान है, अरु इच्छा कर्मकी तिसविषे दृष्टि आवती है, तौ भी इच्छा तिसकी अनिच्छाही है, अरु कर्म अकर्मही है, जैसै भून्या दाणा बहुरि नहीं उगता अरु आकार तिसका भासता है, तैसे ज्ञानवानकी चेष्टा दृष्ट आती है, सो देखणे मात्र है, उसके हृदयविषे कछु नहीं ॥ हे रामजी! पुरुष कर्मेंद्रियांसाथ चेष्टा करता है, अरु जगतकी सत्यता हृदयविषे नहीं, तब बंध

न कोउ नहीं होता, अरु जो जगतकों सत्य मानीकरि थोडा कर्म करता है, तौ भी पसरी जाता है, जैसे थोडा अग्नि जागीकरि बहुत हो जाता है, तैसे थोडा कर्म भी उसकों जन्ममरण दुःख देता है, अरु ज्ञानीकों नहीं होता, उसकी प्रारब्ध शेष है, सो भी हृदयविषे नहीं मानता, जानता है, जो शरीरकी है, आत्माकी नहीं, सो भी वेग उतरता जाता है, जैसे कुंभारका चक्र होता है, अरु चरण चलावणेतें रही जाता है, तौ शनैः शनैः वेग उतरता जाता है, तैसे प्रारब्धवेग उसका उतरता जाता है, बहुरि जन्म नहीं होता, काहेतें जो तिसकों अहंकाररूपी चरण नहीं लगता, तातें अहंकारका नाश करु, जब अहंकार नाश हुआ तब सर्वके आदि पदकों प्राप्त होवैगा, सो परम निर्वाणपद है, तिसविषे निर्वाण भी निर्वाण हो जाता है ॥ हे रामजी ! जब वर्षाकाल होता है, तब बदल होते हैं, जब शरत्काल आता है, तब बदल चलते रहते हैं ॥ हे रामजी ! जबलग अज्ञानरूपी वर्षाकाल है, तबलग अहंकाररूपी वर्षा है, जब विचाररूपी शरत्काल आवैगा, तब अहंकाररूपी मेघ चलते रहैंगे, अरु आत्मरूपी आकाश निर्मल भासैगा ॥ हे रामजी ! जैसे मलिन आदर्श होता है, तब मुखका प्रतिबिंब उज्वल नहीं भासता, जब मैल निवर्त होवै तब मुखका प्रतिबिंब प्रत्यक्ष भासै, तैसे अहंकाररूपी मैलकरि जीव आच्छाद्या है, तिसकरि आत्मा नहीं भासता, जब अहंकाररूपी मैल निवृत्त होवै, तब आत्मा ज्योंका त्यों भासै, जैसे समुद्रविषे नानाप्रकारके तरंग उठते हैं, अरु सम्यक्दर्शीकों सब जलमय दृष्टि आते हैं, अरु भूषणविषे स्वर्णही भासता है,तैसे नानाप्रकारके प्रपंच तिस समदर्शीकों चेतनघन आत्माही दृष्ट आता है,आत्मातें इतर कछु नहीं देखता,अवर उरतें पथ्थरकी शिलावत् हो जाता है,काहेतें जो अहंकार उसका नष्ट हो गया है,अरु जो अहंकार साथ है,क्रियाका त्याग करता है,अरु त्यागकरि आपकों सुखी मानता है, सो मूर्ख है, जैसे कोउ लकडी लेकरि आकाशकों नाश किया चाहै तौ नहीं होता, तैसे क्रियाके त्यागकरि दुःख नष्ट नहीं होता, जब संपूर्ण संसार क्रियाका बीज अहंकार नाश होवै, तब अक्रिय आत्मस्वरूपकों प्राप्त हो

ता है,जैसे तांबा अपणे तांबाभावकों त्यागता है, तब स्वर्ण होता है, तैसे जब जीव अपणा जीवत्वभाव त्यागै, तब आत्मा होता है, अरु जैसे तेलकी बुंद जलविषे पाइती है, अरु पसरी जाती है, नानाप्रकारके रंग जलविषे भासता है जैसे ब्रह्मरूपी जलविषे अहंतारूपी तेलकी बुंद नानाप्रकारकी कलना दिखाइ देती है, आत्मा ब्रह्म निराकार निरंजन इत्यादिक नाम भी अहंकार करिके शुद्धविषे कल्पे हैं, सो अफुर केवल सत्तामात्र है, सत अरु असतकी नांई स्थित हैं ॥ हे रामजी! संसाररूपी मिरचका बूटा है, अरु संसाररूपी फूल हैं, अहंतारूपी तिसविषे सुगंधि है ॥ हे रामजी! जब अहंता उदय हुई, तब संसार उदय होता है, अरु अहंताके नाश हुए संसारनाश हो जाता है, क्षणविषे उदय होता है, अरु क्षणविषे नाश होता है, सो अहंताका होणाही उदय होणेका क्षण है, अरु अहंताका लीन होणा सो नाशका क्षण है ॥ हे रामजी! जैसे मृत्तिकाकों जलका संयोग होता है, तिसकरि घट बणता है, तब मृत्तिका घट संज्ञाकों पावती है, तैसे पुरुषकों जब अहंकारका संग होता है, तब संसारी होता है, अरु जीवसंज्ञाकों पावता है, देश काल पृथ्वी पर्वत आदिक दृश्यकों प्रत्यक्ष देखता है, जब अहंता नाश होवै, तब सुखी होता है, जेता कछु नामरूप है, अरु तिसका अर्थ है, सो अहंताकरि भासता है, जब अहंताकों त्यागै, तब शांतरूप आत्माही शेष रहैगा, जैसे पवनतें रहित दीपक प्रकाशता है, तैसे अहंकाररूपी पवनतें रहित अपणे स्वभावविषे स्थित होता है, अरु आनंदपदकों प्राप्त होता है, अरु अनादि पद अपणेकों प्राप्त होता है, अरु सर्वका अपणा आप होता है, देश काल वस्तु अपणेविषे देखता है ॥ हे रामजी! जबलग अहंताका नाश नहीं होता, तबलग मेरे वचन हृदयविषे स्थित न होवैंगे ॥ हे रामजी! जिस पुरुषनें अपणा स्वभाव नहीं जान्या, तिसकों ब्रह्म पावणा कठिन है, जैसे रेतविषे तेल निकसणा कठिन है, तैसे उसकों ब्रह्मका पावणा कठिन है, अरु अपणा स्वभाव जानणा अति सुगम है, जब अहंताका त्याग करै जो न मैं हौं, न जग

त है, तब कल्याण हुआ, तब अहंताका नाश होता है, तब भ्रम कोउ नहीं रहता, जैसे जेवरीके जाणे सर्पभ्रम निवर्त हो जाता है, जबलग अहंता फुरती है, तबलग उपदेश इसकों नहीं लगता, जैसे आरसी उपर मोती नहीं ठहरता, तैसे उसके हृदयविषे मेरे वचन नहीं ठहरते, अरु जिसका हृदय शुद्ध है, तिसकों मेरे वचन लगते हैं, जैसे तेलकी बुंद जलविषे विस्तारकों पावती है; तैसे उसकों थोडा वचन भी बहुत हो लगता है ॥ हे रामजी! इसीपर एक पुरातन इतिहास मुनीश्वर कहते हैं सो तूं श्रवण कर, मेरा अरु कागभुषंडका संवाद है, एक समय सुमेरु पर्वतके शिखरपर मैं गया था, तहां भुषंड वैठा था, तिससों मैं प्रश्न किया, जो हे अंग, ऐसा भी कोउ पुरुष है, जिसकी आयुर्बला बडी होवै, अरु ज्ञानतें शून्य रहा है, जो उनकों देखा होवै तौ कहु ॥ ॥ भुषंड उवाच ॥ हे भगवन्! एक विद्याधर देवता होत भया है, तिसकी बडी आयुर्बला थी, अरु विद्या बहुत अध्ययन करी थी, सत्कर्मोंविषे विचरता था, अरु भोग भी तिसनें बडे भोगे थे, अरु सत्कर्मोंकों करै, परंतु केवल सकाम चतुर्युग पर्यंत सकाम कर्म करता रहा, जप तप नियम आदिक कर्म करत भया, जब चतुर्थ युगका अंत हुआ, तब उसकों विचार आनि उपजा, जेते भोग सुखरूप जाणीकरि भोगता था, तिन भोगतें उसकों वैराग्य उपजत भया, तब भोगकों त्यागिकरि लोकालोक पर्वतपर गया, तहां जायकरि विचारत भया, जो यह संसार असाररूप है, किसी प्रकार इसतें छूटौं, वारंवार जन्म है, वारंवार मृत्यु है; पदार्थ सत्य कोउ नहीं, किसका आश्रय करौं, ऐसे विचार करिके उह विकृत आत्मा पुरुष सुमेरु पर्वत ऊपर मेरेपास आय प्राप्त भया, अरु शिर नीचा करि मेरे तांई दंडवत करे, अरु मैं भी बहुत आदर किया, तब हाथ जोडिकरि तिसनें कहा ॥ ॥ विद्याधर उवाच ॥ हे भगवन्! एते कालपर्यंत विषयकों भोगता रहा हौं, परंतु शांति मेरे तांई प्राप्त नहीं भई, तिसतें मैं दुःखी रहा हौं, तुम कृपाकरि शांतिका उपाय कहौ ॥ हे भगवन्! चित्ररथका जो बाग बना हुआ है, तिसविषे सदाशिवजी रहता है, अरु कल्पवृक्ष भी बहुत हैं; तिसविषे मैं चिरकाल रहा हौं, बहुरि विद्याध

रके स्वर्गविषे रहा हौं, अरु इंद्रके नंदनवनविषे रहा हौं, अरु स्वर्गकी कंदराविषे रहा हौं, अरु सुंदर अप्सरासाथ स्पर्श किया, अरु विमानपर आरूढ वहुत रहा हौं ॥ हे भगवन्! इत्यादिक वहुत स्थान मैं देखे हैं, अरु तप भी बहुत किया है, दान यज्ञ व्रत भी वहुत किया है, अरु सहस्र वर्ष सुंदररूप देखता रहा हौं, जिनकी सुंदरता कहणेविषे नहीं आती, तौ भी नेत्रकों तृप्ति नहीं भई, अरु बहुत सुगंधिकरि नासिकाकों तृप्ति न भई, अरु रसनाकरि भोजन बहुत प्रकारके खाए हैं, तौ भी शांति न भई, तृष्णा बढती गई, अरु श्रोत्रकरि शब्द राग बहुत प्रकार सुणे हैं, अरु त्वचाकरि स्पर्श वहुत किये हैं तौ भी शांति न प्राप्त भई ॥ हे भगवन्! मैं जिस उर सुख जाणीकरि प्रवेश करौं, तिसी उर दुःख प्राप्त होवै, जैसे मृग क्षुधा निवारणे अर्थ घास खाणे आता है, अरु राग सुणी मूर्च्छित हो जाता है, अरु वेधक उसकों पकडी लेता है, तव मृग दुःख पावता है, तैसे मैं सुख जाणीकरि विषयकों ग्रहण करता था, अरु बडे दुःखकों प्राप्त भया ॥ हे भगवन्! मैं चिरकालतक दिव्य भोग भोगे हैं, पांचों इंद्रिय छठे मनसहित कछु कहणेविषे नहीं आते, ऐसे शब्द स्पर्श रूप रस गंध भोगे, परंतु मेरे तांई शांति न प्राप्त भई, अरु न इंद्रिय तृप्त भई, जैसे घृतकरि अग्नि तृप्त नहीं होती, तैसे दिन दिन प्रति तृष्णा वृद्ध होती जाती है, अरु अंतर पडी जलाती है, जो पुरुष इन भोगके निमित्त यत्न करता है, जो मैं इनकरि सुखी होउंगा, सो मूर्ख है, तिसकों धिःकार है, उह समुद्रविषे तरंगका आश्रय करता है, अरु यह सुखरूप तवलग भासते हैं, जबलग इंद्रियां अरु विषयका संयोग है, जब इंद्रियांतें विषयका वियोग हुआ, तब महादुःखकों प्राप्त होता है, काहेतें जो तृष्णा अंतर रहती है, अरु भोग जाते रहते हैं, जो जो विषय भोगते हैं, सोइ दुःखदायक हो जाते हैं ॥ हे भगवन्! इसीकरि मैं बहुत दुःख पाया है, यद्यपि इंद्रियां कोमल हैं, तौ भी सुमेरकी नांई कठिण हैं, कोमल भासती हैं, परंतु ऐसे हैं, जैसे सर्पिणी कोमल होती है, खड्गकी धारा कोमल है, स्पर्श किया मर जाता है, बहुरि के

सी है, जैसे बेडी जलविषे पवनकरि भ्रमती है, तैसे अज्ञानरूपी नदीविषे पवनरूपी इंद्रियांनें मेरे तांई दुःख दिया है ॥ हे भगवन्! ऐसे भी मैं देखे हैं, जो सारा दिन मागते रहे हैं, अरु भोजन खाणेके निमित्त एकठा नहीं हुआ, अरु एक ऐसे देखे हैं, जो ब्रह्मातें आदि काष्ठपर्यंत सब भोगकों एक दिनविषे भोग्या है, जिसकों दिनविषे भोजनमात्र भी प्राप्त नहीं होता, जो सब विषय इंद्रियांके इष्टरूप भोगता है, तिन दोनोंकों भस्म होते देखी, भस्म दोनोंकी तुल्य हो जाती है, विशेषता कछु नहीं, इंद्रियांके बंधनविषे वारंवार जन्मते अरु मरते हैं, अज्ञानी शांतिकों कदाचित् नहीं प्राप्त होते, अरु जो तुम कहौ तूं तौ सुखी दृष्ट आता है, तेरे तांई क्या दुःख है, तौ हे भगवन्! इह दुःख देखणेमें नहीं आता, जैसे चक्रवर्ती राजा होवै, अरु शिरपर चंवर झुलता है, अरु अंतर अध्यात्मतापकरि तपता है, जो मनविषे ज्वलन है, तिसकरि जलता है, अरु बाहिरतें सुखी दृष्ट आता है, तैसे देखणेमात्र मैं सुखी दृष्ट आता हौं, अरु अंतर इंद्रियां मेरे तांई जलाती हैं ॥ ॥ हे भगवन्! ब्रह्माके लोकविषे मैं बडे सुखकों देखे हैं, परंतु तहां भी दुःखी रहा हौं, काहेतें जो क्षय अरु अतिशय तहां भी रहती है, जिसकरि उह भी जलते हैं, अरु इन इंद्रियांका शस्त्रतें भी कठिन घाव है, सो घाव क्या है, जो संसारकी विषमता नानाप्रकारकी दिखावतियां हैं, सर्वदा राग दोष इनविषे रहता है, तिसकरि मैं बहुत जलता रहा हौं, तातें सोइ उपाय मेरे तांई कहौ, जिसकरि मैं शांतिकों प्राप्त होउं, अरु उह कवन सुख है, जिसकरि बहुरि दुःखी न होवें, अरु जिसका नाश नहीं, आदि अंततें रहित है, सो कहौ, जो तिसके पावणेविषे कष्ट है, तौ भी मैं यत्न करता हौं, जो किसी प्रकार प्राप्त होवै ॥ हे मुनीश्वर! इंद्रियानें मेरे तांई बडा कष्ट दिया है, यह इंद्रियां कैसी हैं, जो गुणरूपी वृक्षकों अग्नि हैं, शुभ गुणोंकों जलावती हैं, विचार धैर्य संतोष अरु शांति आदिक गुणरूपी वृक्षके नाश करणेहारी हैं ॥ हे भगवन्! इननें मेरे तांई दुःख दिया है, जैसे मृगका बच्चा सिंहके वश

पडै, तिसकों मर्दन करता है, तैसे इंद्रियां मेरे तांई मर्दन किया है ॥ हे भगवन्! जिस पुरुषनें इंद्रियांकों वश किया है, तिसका पूजन सर्व देवता करते हैं, अरु दर्शनकी इच्छा करते हैं, अरु जिसने मनकों वश नहीं किया, तिनकों दीनकरि जानते हैं,अरु जिस पुरुषनें इंद्रियांकों वश किया है, सो सुमेरु पर्वतकी नांई अपणी गंभीरताविषे स्थित हैं, अरु जिसनें इंद्रियां वश नहीं कियां, सो तृणकी नांई तुच्छ हैं, अरु जिसकों इंद्रियांके अर्थविषे सदा तृष्णा रहती है, सो पशु है, तिसकों मेरा धिःकार है ॥ हे मुनीश्वर! जो वडा महंत भी है, अरु इंद्रिय उसके वश नहीं तो उह महानीच है ॥ हे मुनीश्वर! इंद्रियांनें मेरे तांई बडा दुःख दिया है, जैसे महाशून्य उजाडविषे पैंदोईकों तस्कर लूटि लेते हैं, तैसे इंद्रियांनें मेरे तांई लूटि लिया है, अरु इंद्रियांरूपी सर्पिणी है, अरु तृष्णारूपी विष है, तिसकरि इनविषे सारी विश्व मोहित दिखती है, कोउ विरला इनहुतें बचे होवैंगे, यह इंद्रियां दुष्ट हैं, अपणे अपणे विषयकों लेतियां हैं, अवरकों देती नहीं, तुच्छ अरु जड हैं, अनहोतियांनें दुःख दिया है, जैसे वीजलीका चमत्कार होता है, बहुरि छपन हो जाती है, तैसे इंद्रियांके सुख क्षणमात्र दिखाइ देते हैं, बहुरि छपन हो जाते हैं, जबलग इंद्रिय अरु विषयका संयोग है, तबलग सुख भासता है, जब इनका वियोग हुआ, तब दुःख उत्पन्न होता है, काहेतें जो तृष्णा रहती है, एक सैना है, तिसविषे इंद्रियांके भोग उन्मत्त हस्ती हैं, तिसविषे तृष्णारूपी जंजीर हैं, अरु इंद्रियांरूपी रथ हैं, अरु नानाप्रकारके विषय तिसमें घोडे हैं, अरु संकल्पविकल्परूपी खड्ग हैं, तिसके धारणेहारा अहंकार है, अरु यह जो क्रिया होती है, अहंकारसहित, सो शस्त्रोंके समूह हैं ॥ हे मुनीश्वर! जिस पुरुषनें इस सैनाकों नहीं जीती, सो मोहरूपी अंधके कूपविषे गिर्या है, अरु कष्ट पावता है, अरु जिसनें जीती है, सो परम सुखकों प्राप्त होता है ॥ हे मुनीश्वर! यह इंद्रियां कैसियां हैं, जो भोगकी इच्छारूपी खाईविषे अहंकाररूपी राजाकों डारि देतियां हैं, अरु निकसना कठिन हो पडता है, जिस पुरुषनें इनकों जीता है, ति

सकी त्रिलोकीविषे जय होती है, अरु जिसनें नहीं जीता, सो महा दीनताकों प्राप्त होता है, अरु जन्मजन्मांतरकों पावता है, इन इंद्रियांविषे रजोगुण अरु तमोगुण रहता है, तबलग दाहकों देतियां हैं, जबलग रज तम वृत्ति है, यह भी मनकी वृत्ति है, जब इनका अभाव होवै, तव शांति प्राप्त होवै, यह शोधि देखा है, जो इंद्रियां तपकरि भी वश नहीं होतियां हैं, न यज्ञकरि, न व्रतकरि, न तीर्थकरि वश होतियां हैं, न किसी औषधकरि, न किसी अवर उपाय करिके वश होतियां हैं, एक संतके संगकरि निरवासी होवै, तब वश होतियां हैं, तातें मैं तुमारी शरण हौं, मेरे तांई आपदाके समुद्रतें कृपा करिके निकासहु, जो मैं बूडता हौं, अरु यह संसारसमुद्रविषे दीन हौं, तातें तुमारी शरणकों प्राप्त भया हौं, तुम पार करौ, अरु तुमारी महिमा संतनें भी सुणी है, तुम कृपा करौ ॥ हे भगवन्! जो कोउ आयुबलपर्यंत विषयके दिव्य भोग भोगता रहै, अरु इनतें शांति चाहै तौ न प्राप्त होवैगी, बडे सुख सो दुःख समान हैं, अरु आकाशविषे उडणेवाले भी हैं, तौ भी इंद्रियांकों वश नहीं करि सकते, तातें दीन दुःखी रहते हैं, अरु ऐसा भी कोउ पुरुष होवै, जो फूलकी नांई महामत्त हस्तीके दंतकों चूर्ण करै, तौ भी मानीता है, परंतु इंद्रियांकों अंतर्मुख करणा महाकठिन है ॥ हे मुनीश्वर! एता काल मैं जलता रहा हौं, महा अध्यात्म तापविषे मैं दुःखी हौं, तुम कृपाकरि निकासहु, मैं तुमारी शरण हौं ॥ ॥ इति श्रीयोगवासिष्ठे निर्वाणप्रकरणे विद्याधरवैराग्यवर्णनं नाम शताधिकएकत्रिंशत्तमः सर्गः ॥ १३१ ॥ ॥ ॥

भुशुंड उवाच ॥ हे वसिष्ठजी! जब इस प्रकार विद्याधरनें मेरे आगे प्रार्थना करी, तब मैं कहा ॥ हे अंग, तूं धन्य है, अब तूं जाग्या है, जैसे कोउ पुरुष अंधे कुएविषे पडा होवै, अरु तिसकी इच्छा हुई जो निकसौं तौ जाणिएं जो निकसैगा, तातें तूं धन्य है ॥ हे विद्याधर, मैं उपदेश करता हौं, सो तूं अंगीकार करियो, अरु सत जाण जो मेरे वचनोंविषे संशय नहीं करणा, जो यह उपदेश ऐसे क्यों किया जो सबके

सार वचन हैं सो तेरे तांई कहता हौं, अरु मैं जानता हौं जो तूं शीघ्रही अंगीकार करैगा, जैसे उज्ज्वल आरसी प्रतिबिंबकों ग्रहण करती है, यत्नविना, तैसे मेरे वचन तेरे अंतर प्रवेश करैंगे, जिसका अंतःकरण शुद्ध होता है, तिसकों संत उपदेश करौ अथवा न करौ, उनकों सहज वचनही उपदेश हो लगते हैं, जैसे शुद्ध आदर्श प्रतिबिंबकों यत्नविना ग्रहण करता है, तैसे मेरे वचनोंकों तूं धारि लेवैगा, तब तेरे दुःख नाश हो जावैंगे, अरु परमानंदकों प्राप्त होवैगा, जो अविनाशी सुख है, अरु आदिअंततें रहित है, अरु इंद्रियांके सुख आगमापायी हैं, सो दुःखके तुल्य हैं, इनतें रहित परम सुख है ॥ हे विद्याधरविषे श्रेष्ठ! जो कछु तेरे तांई सुखरूप दृष्ट आवै, तिसका त्याग करु, तब परम सुख तेरेतांई प्राप्त होवैगा, अरु सर्व दुःखका मूल अहंभाव है, जब अहंकार नाश हुआ, तब शांति होवैगी, संसारका बीज अहंकार है, अरु संसार मृगतृष्णाके जलवत् है, अणहोता भासता है, तबलग संसार नष्ट नहीं होता, जबलग अहंतारूपी संसारका बीज है, जब अहंतारूपी बीज नष्ट होजावै, तब संसार भी निवृत्त हो जावै, अरु संसाररूपी वृक्ष है, सुमेरु आदिक पर्वत तिसके पत्र हैं, तारागण तिसके कली फूल हैं, अरु सप्त समुद्र तिसका रस है, अरु जन्ममरण तिससाथ वल्ली हैं, अरु सुखदुःख तिसके फल हैं, अरु आकाश दिशा पातालकों धारिके स्थित हुआ है, अरु अहंकाररूपी पृथ्वीपर उत्पन्न हुआ है, अहंकार तिसका बीज है, अरु मिथ्या भ्रममात्र उत्पन्न हुआ है, असत अरु सतकी नांई स्थित हुआ है, तातें अहंकार बीजका नाश करौ, निरहंकाररूपी अग्निकरि इसकों जलावहु, तब अत्यंत अभाव हो जावैगा, यह भ्रम करिके भयकों देता है, जैसे जेवरीविषे सर्पभ्रम भयकों देता है, तातें निरहंकाररूपी अग्निकरि इसका नाश करौ ॥ ॥ इति श्रीयोगवासिष्ठे निर्वाणप्रकरणे संसाररूपीवृक्षवर्णनं नाम शताधिकद्वात्रिंशत्तमः सर्गः ॥ १३२ ॥ ॥ ॥ भुशुंड उवाच ॥ हे विद्याधर! यह ज्ञान जैसे उत्पन्न होता है, सो श्रवण करु, ब्रह्मविद्या शास्त्र तिसकों श्रवण करणां, अरु आत्मविचार करणा, तिसकरि

ज्ञान उपजता है, तिस आत्मज्ञानरूपी अग्निकरि संसाररूपी वृक्षकों जलावहु, अरु आगे भी है नहीं अणहोता उदय हुआ है, मनके संकल्पकरि हुएकी नांई स्थित है, जैसे पत्थरविषे शिल्पी कल्पता है, जो एती पुतलीयां निकसैगियां, सो हुइयां कछु नहीं, तैसे मनरूपी शिल्पी यह विश्वरूपी पुतलियां कल्पता है, जब मनका नाश करौगे, तब संसारभ्रम मिटि जावैगा. आत्मविचार करिके परमपदकों प्राप्त होहुगे, अपणा आप परमात्मरूप प्रत्यक्ष भासैगा, तातें अहंताकों त्यागिकरि अपणे स्वरूपविषे स्थित होहु ॥ हे विद्याधर! यह जो संसाररूपी वृक्ष है सो अहंतारूपी बीजतें उपजा है, तिसकों जब ज्ञानरूपी अग्निकरि जलाइएं, तब फिरि यह जगत नहीं उपजता, जब इसकों विचारकरि देखियें, तब अहंत्वंकों नहीं पाइता ॥ हे विद्याधर! यह अहं त्वं मिथ्या हैं, इनके अभावकी भावना करु, यही उत्तम ज्ञान है ॥ हे साधो! जब गुरुके वचन सुणिकरि तिनके अनुसार इसनें पुरुषार्थ किया, तब यह परम ऊंचे पदकों प्राप्त होता है, इसकी जय होती है ॥ हे विद्यारूपी कंदराके धारणेहारे पर्वत, अरु विद्यारूपी पृथ्वीके धारणेहारे, यह संसाररूपी एक आडंबर है, तिसके सुमेरु जैसे केई थंभे हैं, अरु रत्नोंकी पंक्तिसाथ जडे हुए हैं, अरु बन दिशा पहाड वृक्ष कंदरा वैताल देवता पाताल आकाश इत्यादिक जो ब्रह्मांड है, सो तिसके उपर स्थित है, अरु रात्रिदिन भूत प्राणी अरु इनके जो घर हैं सो चउपडके खाने हैं, कोउ जैसा कर्म करता है, तिसके अनुसार दुःख सुख भोगता है, सो खेलै है, ऐसेही संपूर्ण प्रपंच क्रियासंयुक्त दिखाइ देता है, सो भ्रमकरि सिद्ध है, तातें मिथ्या है, जैसे स्वप्नकी सृष्टि संकल्पकरि भासती है, तैसे यह सृष्टि भी भ्रमकरि भासती है, अज्ञानकरि रची हुई है, आत्माके अज्ञानकरि भासती है, सो आत्माके ज्ञानकरि लीन हो जाती है, तब भी परमात्म तत्त्वही है, अरु जब सृष्टि होवैगी, तब भी परमात्मतत्त्वही होवैगा, आगे भी उही था, अरु जो कछु प्रपंच तेरे तांई दृष्टि आता है सो शून्य आकाशही है, त्रिगुणमय प्रपंच गुणोंका रचा हुआ है, अपणे स्वरू

पके प्रमादकरि स्थित भया है, अरु आत्मज्ञानकरि शून्य हो जावैगा, जब प्रपंचही शून्य हुआ, तब आत्मा अरु अनात्माका कहणा भी न रहैगा, पाछे जो शेष रहैगा सो केवल शुद्ध परमतत्त्व है, सो तेरा अपणा आप है, तिसविषे स्थित होहु, अरु दृश्यका त्याग करु, जो है नहीं, न मैं हौं, न जगत् है, जब तूं ऐसा होवैगा, तब तेरी जय होवैगी, आत्मपद सबतें उत्तम है, जब तूं आत्मपदविषे स्थित हुआ, तब तूं सबतें उत्तम हुआ, अरु तेरी जय होवैगी, तातें आत्मपदविषे स्थित होहु ॥ इति श्रीयोग० नि० प्र० संसाराडंबर उ० शताधिकत्रयस्त्रिंशत्तमः सर्गः ॥१३३॥ ॥ भुशुंड उवाच॥ हे विद्याधर! यह प्रपंच भी आत्मका चमत्कार है, अरु आत्मा शुद्ध चेतन है, जिसविषे जड अरु चेतन स्थित हैं, अरु सबका अधिष्ठान है, सो सत्तामात्र तेरा अपणा आप है, अहं त्वं शब्द अर्थतें रहित है, अरु आत्मतत्वमात्र है, अरु सत्य स्वरूपकी असतकी नांई स्थित है ॥ हे विद्याधर! तूं इस जड अरु चेतनतें अबोधमान होहु, जब तूं अबोध हुआ तब तूं शांति चिद्घन होवैगा, अरु यह जो जड चेतन है, सो दोनों जड परमार्थ चेतन आगे इन दोनोंका अंतर रहता है, यद्यपि अदृश्य है तौ भी इनके अंतरही रहता है, जैसे समुद्रके अंतर वडवाग्नि रहती है, अरु इन जड चेतनका जो कारणरूप है सो उही है, उत्पत्ति भी उसीतें होती है, अरु नाश भी उही करता है, जैसे पवनकरि अग्नि उपजती है, अरु पवनहीकरि लीन होती है ॥ हे विद्याधर! जब ऐसे जाण्या जो मैं चेतनरूप भी नहीं अरु जड भी नहीं, जब ऐसी भावना हुई, तब पाछे जो रहैगा सो तेरा स्वरूप है, जब तेरे अंतर इन जड चेतन दोनोंका स्पर्श हुआ नहीं, तब सर्वके अंतर जो चेतन है उह ब्रह्म तेरे तांई भासैगा, अरु विश्व भी आत्माविषे कछु हुई नहीं, जैसे सूर्यकी किरणांका चमत्कार जलाभास होता है, तैसे शुद्ध चेतनका चमत्कार विश्वहो भासता है ॥ हे अंग! जैसे भीत उपर पूतलियां लिखी होतियां है, सो भीततें इतर कछु वस्तु नहीं, चितेरेनें पूतलियां लिखियां हैं, तैसे शून्य आकाशविषे चित्तरूपी चितेरेनें विश्वरूपी पूतलियां कल्पी हैं, सो आ

त्मरूपी भीततें इतर कछु नहीं, जैसे स्वर्णविषे भूषण कल्पित हैं, सो स्वर्णतें इतर कछु नहीं, तैसे आत्माविषे अज्ञानी विश्व देखते हैं, सो आत्मातें इतर कछु नहीं, सब आत्मस्वरूपकी संज्ञा है, जगतका ब्रह्म, आत्मा, आकाश, देश, काल, सब उसी तत्त्वकी संज्ञा है, उही शुद्ध चेतन आकाश है, जिसका चमत्कार ऐसे स्थित है, तिसी तत्त्वविषे स्थित होहु, यह जगत ऐसे है, जैसे दूर दृष्टिकरि आकाशविषे बदल हाथीकी सुंड भासते हैं, तैसे यह जगत है, यह जो अहं त्वंरूप जगत है सो अबोधकरिके भासता है, अरु बोधकरिके लीन हो जाता है, जैसे मरुस्थलविषे सूर्यकी किरणाकरि जल भासता है, जैसे गंधर्वनगर है, तैसे यह जगत है, तातें इसका त्याग करहु ॥ ॥ इति श्रीयोगवासिष्ठे निर्वाणप्रकरणे चित्तचमत्कारो नाम शताधिकचतुस्त्रिंशत्तमः सर्गः ॥ १३४ ॥ ॥ . ॥ भुशुंड उवाच ॥ हे विद्याधर! यह जगत स्थावर जंगम सब आत्मातें उत्पन्न हुआ है, आत्माहीविषे स्थित है, अरु आत्माही विश्वविषे स्थित है, जैसे स्वप्नकी विश्व स्वप्नवालेविषे स्थित है, इतर कछु नहीं, अरु आत्मा किसीका कारण नहीं, काहेतें जो अद्वैत है, जिसविषे दूसरा फुरणां नहीं ॥ हे अंग! जब तूं तिस पद पावणेकी इच्छा करता है, तब तूं ऐसे निश्चय करु जो न मैं हौं, न इह जगत है, जब तूं ऐसा हुआ तब आत्मपदकी प्राप्ति होवैगी; जो देश काल वस्तुके परिच्छेदतें रहित है, अरु सर्व उही परमात्मतत्त्व स्थित है, अरु जगतका कर्ता संकल्पही है, काहेतें जो संकल्पकरि उत्पन्न होता है, बहुरि संकल्पहीकरि नाश होता है, जैसे पवनकरि अग्नि उत्पन्न होती है, अरु पवनहीकरि दीपक निर्वाण होता है, तैसे जब संकल्प बहिर्मुख फुरता है, तब संसार उदय हो भासता है, जब संकल्प अंतर्मुख होता है, तब आत्मपद प्राप्त होता है, अरु प्रपंच लय हो जाता है, तातें संसारकी नानाप्रकार संज्ञा फुरणेकरि होती है, स्वरूपविषे कछु नहीं, न सत्य है, न असत्य है, न स्वतः है, न अन्य है, यह सब कल्पनामात्र है, सत असत अरु स्वतः अन्यका अभाव हुआ तहां अहं त्वं कहां पाइयें, है नहीं,

सो भ्रममात्र है, बालकके यक्षवत ॥ हे साधो! जहां अहं त्वं नष्ट हो गए, तहां जो सत्ता है, सो परम पद है, अरु जहां जगत है तहां विचारकरि लीन हो जाता है, अरु वास्तव पूछै तौ ब्रह्म अरु जगतविषे भेद कछु नहीं, नाममात्र दो हैं, जैसे घट अरु कुंभ हैं, परंतु भ्रमकरि नानात्व भासता है, जैसे समुद्रविषे आवर्त तरंग उठते हैं, सो जलतें इतर कछु नहीं, अरु पवनके संयोगतें आकार भासते हैं, तैसे आत्माविषे जगत इतर कछु नहीं, परंतु संकल्पके फुरणेकरि नानाप्रकारका जगत भासता है ॥ हे अंग! यह संकल्पके साथ मिलिकरि चित्तशक्ति जैसी भावना करता है, तैसा रूप अपणा देखता है, स्वरूपतें इतर कछु नहीं, परंतु भावनाकरि अवरका अवर देखता है, जैसे शुद्ध मणिके निकट कोउ रंग राखिये तैसा रूप भासता है, अरु मणिविषे कछु रंग हुआ नहीं, तैसे चित्तशक्तिविषे कछु हुआ नहीं, अरु हुएकी नाई स्थित है, तातें अपणे स्वरूपकी भावना करु, अरु जड चेतनकों छांडीकरि शुद्ध चेतनविषे स्थित होहु, जब ऐसे जाणीकरि अपणे स्वरूपविषे स्थित होवैगा; तब तेरे तांई उत्थानविषे भी विश्व अपणा स्वरूप भासैगा ॥ ॥ हे विद्याधर! यह जगत भी आत्मातें भासता है, जैसे स्थिर समुद्रविषे तरंग फुरते हैं, सो कारणरूप जलविना तौ नहीं, तैसे ब्रह्म कारणरूपविना जगत नहीं, परंतु कैसे है ब्रह्मसत्ता जो अकर्त्तारूप है, अद्वैत है, अच्युत है, इसीतें कहा है जो अकर्ता है, अरु जगत अकारणरूप है, जो जगत अकारणरूप है तौ न उपजता है, न नाश होता है, मरुस्थलके जलवत है, इसीतें कहा है जो जगत कछु वस्तु नहीं, केवल अज अच्युत शांतरूप आत्मतत्त्वही अखंडित स्थित है, शिलाकोशवत अचेत चिन्मात्र है, जिसकों चिन्मात्रकी अंतरभावना नहीं, तिस मूर्खसाथ हमारा क्या है ॥ हे साधो! परमार्थतें कछु बन्या नहीं, अरु जहां जहां यह मन है, तहां तहां अनेक जगत हैं, तृण सुमेरु आदिक जो है, तिन सर्वविषे जगत है, जो विचारकरि देखिये तौ उहीरूप है, अवर कछु नहीं, जैसे स्वर्णके जाणेतें भू

षण भी स्वर्ण भासते हैं, तैसे केवल सत्ता समानपद एक अद्वैत है, इतर कछु नहीं, भिन्न भिन्न संज्ञा भी उ
ही है ॥ ॥ इति श्रीयोगवासिष्ठे निर्वाणप्रकरणे सर्गोपसर्गोपदेशो नाम शताधिकपंचत्रिंशत्तमः
सर्गः ॥ १३५ ॥ ॥ ॥ भुशुंड उवाच ॥ हे विद्याधर! जब यह आत्मपदकों प्राप्त होता है, तब इस
की अवस्था ऐसी होती है, जो नग्न शरीर होवै, अरु तिसपर बहुत शस्त्रोंकी वर्षा होवै, तिसकरि दुःखी न
हीं होता, अरु सुंदर अप्सरा कंठसाथ मिलैं तौ तिनकरि हर्षवान नहीं होता, दोनोंहीविषे तुल्य रहता है ॥
हे विद्याधर! तबलग यह पुरुष आत्मपदका अभ्यास करै, जबलग संसारतें सुषुप्तिकी नांई नहीं होता, अ
भ्यासहीकरि आत्मपदकों प्राप्त होवैगा, जब आत्मपदकी प्राप्ति भई, तब पंचभौतिक शरीरके ज्वर स्प
र्श न करैंगे, यद्यपि शरीरविषे प्राप्ति भी होवै, तौ भी तिसके अंतर प्रवेश नहीं करते, केवल शांतपदविषे
स्थित रहता है, विद्यमान भी लगते हैं, तौ भी स्पर्श नहीं कर शकते, जैसे जलविषे कमलकों स्पर्श नहीं
होता ॥ हे देवपुत्र! जबलग देहादिकविषे अध्यास है, तबलग इसकों सुख दुःख स्पर्श करते हैं, आत्माके
प्रमादकरि जब आत्माका साक्षात्कार हुआ, तब सर्व प्रपंच भी आत्मरूप भासैगा ॥ हे विद्याधर! जैसे
कोउ पुरुष विषपान करता है, तब उसकों ज्वलनता अरु खांसी होती है, यह अवस्था विषकी है सो वि
षतें इतर कछु नहीं, परंतु नाम संज्ञा हुई है न विष जन्मती है, न मरती है, अरु, धूप खांसी उसविषे दृष्ट
आई है, तैसे आत्मा न जन्मता है, न मरता है, अरु गुणोंकेसाथ मिलिकरि अवस्थाकों प्राप्त हुआ दृष्ट
आता है, आत्मा जन्ममरणतें रहित है, अरु गुणों संकल्पसाथ मिलणेकरि जन्मता मरता भासता है, अं
तःकरण अरु देह इंद्रियांदिक भिन्न भिन्न भासते हैं, ॥ हे साधो! इह जगत भ्रमकरि भासता है, जो ज्ञान
वान पुरुष है सो इस जगतकों गोपदकी नांई लंघि जाता है, अपणे पुरुषार्थकरि अरु जो अज्ञानी हैं, ति
नकों अल्प भी समुद्रसमान हो जाता है, तातें आत्मपद पावणेका यत्न करौ, जिसके जाणेतें संसारसमु

द्र तुच्छ हो जावै, सो आत्मतत्त्व कैसा है जो सर्वविषे अनुस्यूत व्याप्या है, अरु सर्वतें अतीत है, बहुरि कैसा है, जिसके जाणेतें अंतर शीतल हो जाता है, सब ताप नष्ट हो जाते हैं, ॥ हे साधो ! फिरि तिसका त्याग करणां अविद्या है, अरु बडी मूर्खता है ॥ हे साधो ! यह पदार्थजात सब ब्रह्मस्वरूपही है, जो ब्रह्म स्वरूप हुए तौ; मन अहंकार आदिक कलंक कैसा, सब उही है, किसीकरि किसीकों कछु दुःखसुख नहीं ॥ ॥ हे विद्याधर ! जब आत्मपदकों जाण्या, तब अंतःकरण भी ब्रह्मस्वरूप भासैंगे, जो संकल्पकरि भिन्न भिन्न जाणते हैं, सो संकल्पके होते भी ब्रह्मस्वरूप भासैंगे तातें निःसंकल्प होकरि स्थित होहु, जो न मैं हौं, न इह जगत है, न इदं है, इन शब्दों अरु अर्थोंतें रहित होकरि स्थित होहु, जो संशय सब मिटि जावे ॥ हे विद्याधर ! जब तूं ऐसे निरहंकार होवैगा, अरु निःसंकल्प होवैगा, तब उत्थान कालविषे भी सर्व आत्मा भासैगा, बुद्धि बोध लज्जा लक्ष्मी स्मृति यश कीर्ति इत्यादिक जो शुभ अशुभ अवस्था है, सो सर्व आत्म बुद्धि रहैगी, इनके प्राप्त हुए भी केवल परमार्थसत्तातें इतर न भासैगा, जैसे अंधकारविषे सर्पके पैरका खोज नहीं भासता, काहेतें जो है नहीं, तैसे तेरे तांई सर्व अवस्था न भासैगी, सर्व आत्माही भासैगा, जेते कछु भावरूप पदार्थ स्थित हैं, सो अभाव हो जावैंगे ॥ हे अंग ! जिस पुरुषनें विचारकरि आत्मपद पावणेका यत्न किया है, सो पावैगा, अरु जिसनें कहा जो मैं, मुक्त हो रहौंगा, मेरे तांई दया करैंगे, तिस पुरुषनें कदाचित नहीं मुक्त होणां, आत्मस्वरूपविषे स्थित होणेंकों पुरुषप्रयत्नविना कदाचित मुक्त न होवैगा, आत्मस्वरूपविषे न कोउ दुःख है, न किसी गुणसाथ मिल्या हुआ सुख है, केवल शांतरूप है, किसीकरि किसीकों कछु सुख दुःख नहीं, न सुख है, न दुःख है, न कोउ कर्ता है, न भोक्ता है, केवल ब्रह्मसत्ता अपणे आपविषे स्थित है ॥ इति श्रीयोग० निर्वाणप्रकरणे यथाभूतार्थभावरूपयोगोपदेशो नाम शताधिकषट्त्रिंशत्तमः सर्गः ॥ १३६ ॥ ॥

॥ भुशुंड उवाच ॥ हे विद्याधर ! जैसे कोउ कलना करे, जो आकाशविषे अवर आकाश स्थित है, तौ

मिथ्या प्रतीति है, तैसे आत्माविषे जो अहंकार फुरणां है, सो मिथ्या है, जैसे आकाशविषे अवर आकाश कछु वस्तु नहीं, परमार्थ तत्त्व ऐसा सूक्ष्म है, जिसविषे आकाश भी स्थूल है, केवल आत्मत्वमात्र है, अरु स्थूल ऐसा है, जिसविषे सुमेरु आदिक भी सूक्ष्म अणुरूप हैं, द्वैततें रहित चेतन केवल शांतरूप है, गुण अरु तत्त्व क्षोभतें रहित है ॥ हे देवपुत्र! अपणां अनुभवरूप चंद्रमा है, अरु अमृतके स्रवणेहारा है ॥ हे अंग! जेते कछु दृश्य पदार्थ भासते हैं, सो हुए कछु नहीं हैं, अंग आत्मरूप अमृतकी भावना करु, जो तूं जन्ममृत्युके बंधनतें मुक्त होवै, जैसे आकाशविषे दूसरे आकाशकी कल्पना मिथ्या है, तैसे निराकार चिदात्माविषे अहं मिथ्या है, जैसे आकाश अपणे आपविषे स्थित है, तैसे आत्मसत्ता अपणे आपविषे स्थित है, अहं त्वं आदिकतें रहित है, जब अहंका उत्थान तिसविषे होता है, तब जगत विस्तार होता है, जैसे जलविषे द्रवताकरि तरंग पसरते हैं, तैसे अहंकरि जगत पसरता है, अरु जैसे वायु फुरणेतें रहित हुई आकाशरूप हो जाती है, तैसे संवित उत्थान अहंतें रहित हुई, तब आत्मरूप हो जाती है, जगतभ्रम मिटि जाता है, फुरणेकरि जगत फुरि आया है, वास्तव कछु नहीं, ज्ञानवानकों आत्माही भासता है, देश काल बुद्धि लज्जा लक्ष्मी स्मृति कीर्ति सब आकाशरूप हैं, ब्रह्मरूपी चंद्रमाके प्रकाशकरि प्रकाशते हैं, जैसे बदलोंके संयोगकरि आकाश धूम्रभावकों प्राप्त होता है, तैसे प्रमाद करिके संवित दृश्यभावकों प्राप्त होती है, परंतु अवर कछु नहीं होती, जैसे तरंग करिके जल अवर कछु नहीं होता, जैसे काष्ठ छेदेतें अवर कछु नहीं होता, तैसे द्रष्टातें दृश्य भिन्न नहीं होती, जैसे केलेके स्तंभविषे पत्रविना अवर कछु नहीं निकसता, पत्र शून्यरूप है, तैसे क्रूररूप जगत भासता है, परंतु आत्मातें भिन्न कछु नहीं, शून्यरूप है, सीस भुजा नेत्र चरण आदिक नानाप्रकार भिन्न भिन्न भासते हैं, परंतु सब शून्यरूप केलेके पत्रोंकी नांई भासते हैं, सब असाररूप हैं ॥ हे विद्याधर! चित्तविषे रागरूपी मलिनता है, जब वैराग्यरूपी झाडुकरि

झाडियें, तब इसका चित्त निर्मल होवै, जैसे कंध उपर चित्र लिखे होते हैं, तैसे आत्माविषे जगत भासता है, देवता मनुष्य नाग दैत्य आदिक सब जगत संकल्परूपी चितेरेनें मूर्त्यां लिखियां हैं, स्वरूपके विचारकरि निवर्त हो जातियां हैं, जब स्नेहरूप संकल्प फुरता है, तब भावअभावरूप जगत विस्तारकों पावता है, जैसे जलविषे तेलकी बुंद विस्तारकों पावती है, जैसे वांसतें अग्नि निकसीकरि वांसकों दग्ध करती है, तैसे स्नेह इसतें उपजीकरि इसीकों खाते हैं, आत्माविषे जो देश काल पदार्थ भासते हैं, यही अविद्या है ॥ पुरुषार्थकरि इसका अभाव करौ, दो भाग साधुसंग अरु कथाश्रवणविषे व्यतीत करौ, तृतीय भाग शास्त्रका विचार करौ, चतुर्थ भाग आत्मज्ञानका आपही अभ्यास करौ, इस उपायकरि अविद्या नष्ट हो जावैगी, अरु अशब्द अरूप पदकी प्राप्ति होवैगी ॥ विद्याधर उवाच ॥ ॥ हे मुनीश्वर ! चार भाग जो उपायकरि अशब्द पद प्राप्त होता है, सो सब काल क्या है, नाम अर्थके अभाव हुए शेष क्या रहता है? भुषंड उवाच ॥ हे विद्याधर ! संसारसमुद्रके तरणेकों ज्ञानवानका संग करणां, जो विकृत निर्वैर पुरुष है, तिनकी भली प्रकार टहल करणी, तिसकरि अर्धभाग अविद्याका नष्ट होवैगा, उनकी संगति करिके अरु तीसरा भाग मनन करिके चतुर्थ भाग अभ्यास करिके नष्ट होवैगा, अरु जो यह उपाय न करि सकै तौ यह युक्तिकर जिसविषे चित्त अभिलाष करिके आसक्त होवै, तिसीका त्याग करु, एक भाग अविद्या, इस प्रकार नष्ट होवैगी, तीन भाग शनैःशनैःकरि नष्ट होवैगी; साधुसंग अरु सच्छास्त्रविचार अरु अपणा यत्न होवै, तब एकही वार अविद्या नष्ट हो जावैगी, यह समकाल कहियें, अरु एक एकके सेवेतें एक एक भाग निवर्त होता है, पाछे जो शेष रहता है, तिसविषे नाम अर्थ सब असतरूप है, अजर अनंत एकरूप है, संकल्पके उपजेतें पदार्थ भासते हैं, संकल्पके लीन हुए लीन हो जाते हैं ॥ हे विद्याधर ! यह जगत संकल्पकरि रचा है, जैसे आकाशविषे सूर्य निराधार स्थित होता है, तैसे देशकालकी अपेक्षातें रहित यह मननमात्र स्थि

त है, तीनों जगत मनके फुरणे करिके फुरि आते हैं मनके लय हुए लय हो जाते हैं, जैसे स्वप्नके पदार्थ जागेतें अभाव हो जाते हैं ॥ हे विद्याधर ! ब्रह्मरूपी वनविषे एक कल्पवृक्ष है, तिसकी अनेक शाखा हैं, तिसकी एक शाखासाथ जगतरूपी पुरलका फल है, तिसविषे देवता दैत्य मनुष्य पशु आदिक मच्छर हैं, वासनारूपी रसकरि पूर्ण मज्जा पहाड है, पंचभूत मुखद्वारा तिसका खुला निकसनेका मार्ग है, इत्यादिक सुंदर रचना बणी है, तिसविषे त्रिलोकीका ईश्वर इंद्र एक होत भया, गुरुके उपदेशकरि तिसका आवरण नष्ट हो गया, बहुरि इंद्र अरु दैत्यका युद्ध होणे लगा, इंद्र अपणी सैनाकों ले चला, तब इंद्रकी हीणता भई, इंद्र भागा, दशों दिशाविषे भ्रमता रहा, जहां जावै तहां दैत्य चले आवैं, जैसे पापी परलोकविषे शोभा नहीं पावता, तैसे इंद्र शांतिकों न पाया, तब अंतवाहकरूप करिके सूर्यकी त्रसरेणुविषे प्रवेशकरि गया, जैसे कमलविषे भंवरा प्रवेश करै, तैसे प्रवेश किया, वहां युद्धका वृत्तांत इसकों विस्मरण हो गया, तब एक मंदिरविषे बैठा आपकों देखत भया, जैसे निद्राकरि स्वप्नसृष्टि भासी आवै, तहां रत्न मणीसाथ संवित नगर देखा तिसविषे प्रवेश करत भया,तहां पृथ्वी पहाड नदीयां चंद्र सूर्य त्रिलोकी इसकों भासणे लगी, तिस जगत्का इंद्र आपकों देखत भया,जो दिव्य भोग ऐश्वर्यकरि संपन्न मैं इंद्र स्थित हों,सो इंद्र केतेक काल उपरांत शरीरकों त्यागिके निर्वाण हुआ,जैसे तेलतें रहित दीपक निर्वाण होता है, तब कुंदनाम पुत्र उसका इंद्र हुआ, राज्य करणे लगा, बहुरि तिसका एक पुत्र भया, तब कुंद इंद्र शरीरकों त्यागिकरि परमपदकों प्राप्त हुआ, तिसका पुत्र राज्य करणे लगा, बहुरि तिसका पुत्र हुआ इसी प्रकार सहस्रपुत्रही होकरि राज्य करते रहे, उनके कुलविषे यह हमारा इंद्र राज्य करता है, तातें यह जगत संकल्पमात्र है, तिस त्रसरेणुविषे यह सृष्टि है, तातें इस जगत्कों संकल्पमात्र जाणीकरि इसकी आस्था त्यागु ॥ ॥ इति श्रीयोगवासिष्ठे निर्वाणप्रकरणे इंद्रोपाख्याने त्रसरेणुजगतवर्णनं नाम शताधिकसप्तत्रिंशत्तमः सर्गः ॥ १३७ ॥ ॥

॥ भुषंड उवाच ॥ हे विद्याधर ! बहुरि उनके कुलविषे एक इंद्र हुआ, बडा श्रीमान् त्रिलोकीका राज्य करत भया, बहुरि उह निर्वाण हुआ, तिसके पुत्र रहा तिसकों बृहस्पतिके वचनकरि ज्ञानरूप प्रतिमा उदय भई, तब यह विदितवेद होकरि स्थित भया, अरु यथाप्राप्तविषे इंद्र होकरि राज्य करै, दैत्योंकों जीतै, तब एक कालविषे किसी कार्यके निमित्त भिहकी तंतुविषे प्रवेश किया, तहां तिसकों नानाप्रकारका जगत् भासणे लगा, तहां इसकों अपणी इंद्रकी प्रतिमा भई, तब इच्छा उपजी जो मैं ब्रह्मतत्त्वकों प्राप्त होउं, दृश्य पदार्थकी नांई प्रत्यक्ष देखौं, एकांत बैठीकरि समाधिविषे स्थित हुआ, तिसकों अंतर बाहिर ब्रह्म साक्षात्कार हुआ, तिस प्रतिमाके उदय होणेकरि एक निश्चय भया, जो सर्व ब्रह्महीं है, अरु सर्व उर पूजणे योग्य है, सर्व पूजते भी इसीकों हैं, अरु सर्व है, अरु सर्व शब्दतें रहित है, रूप अवलोकनतें रहित है, अरु मननतें भी रहित है, केवल शुद्ध आत्मपद है, अरु सर्व उरतें प्राणपद उसीके हैं, सर्व शीस अरु मुख उसीके हैं, अरु सर्व उरतें तिसीके श्रवण हैं, अरु सर्व उरतें तिसीके नेत्र हैं, अरु सर्वकों आत्मत्वकरिके स्थित हो रहा है, सर्व इंद्रियां अरु सर्व विषयकों प्रकाशता है, अरु सर्व इंद्रियांतें रहित है, अरु असक्त हुआ भी सर्वकों धारि रहा है, निर्गुण है, अरु इंद्रियांसाथ मिलिकरि गुणोंका भोक्ता है, अरु सर्व भूतके अंतर बाहिर व्यापी रहा है, अरु सूक्ष्म है, तातें दुर्विज्ञेय है, इंद्रियांका विषय नहीं अरु अज्ञानीकों ज्ञानकरिके दूर है, अरु ज्ञानीकों ज्ञानकरिके निकट है, आत्मत्वकरिके अरु अनंत है, सर्व व्यापी है, अरु केवल शांतरूप है, जिसविषे दूसरा कोउ नहीं,घट पट कंध गाए आवा बरा नरा सबविषे उही तत्त्व भासता है,पर्वत पृथ्वी चंद्र सूर्य देश काल वस्तु सर्व ब्रह्महीं है, ब्रह्मतें इतर कछु नहीं ॥ हे विद्याधर ! इस प्रकार इंद्रकों ज्ञान हुआ, अरु जीवन्मुक्त भया, जो कछु चेष्टा होवै सो सब करै, परंतु अंतःकरणविषे बंधमान न होवै, जब केता काल बीत्या, तब इंद्र निर्वाणपदकों प्राप्त हुआ, आकाश भी जिसविषे स्थूल है, तिस पदकों प्राप्त भया, बहु

रि इंद्रका एक पुत्र सो बडा शूरवीर था, तिसनें सर्व दैत्योंकों जीत्या, बहुरि देवताका अरु त्रिलोकीका राज्य करणे लगा, तिसकों भी ज्ञान उत्पन्न भया, सत शास्त्र अरु गुरुके वचनकरि केता काल बीत्या, तब उह भी निर्वाण हुआ, उसका जो पुत्र रहा, उह राज्य करणे लगा इसी प्रकार केई इंद्र हुए अरु तिसविषे राज्य करत भये, अरु नानाप्रकारके व्यवहारकों देखते भये, तब तिसके कुलविषे इसका कोउ पुत्र था, तिसकों यह हमारी सृष्टि भासि आई, उह भी ब्रह्मध्यानी होत भया, तब उह आयकरि इस त्रिलोकीका राज्य करणे लगा, अबलग विश्वका इंद्र उही है ॥ हे विद्याधर! इस प्रकार विश्वकी उत्पत्ति है, सो संकल्पमात्र है, सब मैं तेरे तांई कही है, उसकों पहिले त्रसरेणुविषे सृष्टि भासी, बहुरि तिस सृष्टिके एक भिहकी तंतुविषे उसकों भासी, बहुरि तिसविषे केई वृत्तांत जो संकल्पमात्र थे, उनकों तुरत देखे, अणुविषे अनेक अवस्था देखियां ॥ हे विद्याधर! वास्तव कछु घुई नहीं, जैसे आकाशविषे नीलता भासती है, अरु है नहीं, तैसे यह विश्व है, आत्माविषे विश्वका अत्यंत अभाव है, यह विश्व अहंभावतें उपजा है, जब अहंभाव फुरता है, तब आगे सृष्टि बनती है, जब अहंका अभाव हुआ, तब विश्व कोउ नहीं, इस विश्वका बीज अहं है, तातें तूं ऐसी भावना करु जो न मैं हौं, न जगत है, जब ऐसी भावना करी, तब आत्माही शेष रहैगा, जो प्रत्यक्ष ज्ञानरूप अपणा आप है, ज्योंका त्यों भासैगा ॥ हे विद्याधर! इस मेरे उपदेशकों अंगीकार करु ॥ ॥ इति श्रीयोगवासिष्ठे निर्वाणप्रकरणे संकल्पासंकल्पैकताप्रतिपादनं नाम शताधिक अष्टत्रिंशत्तमः सर्गः ॥ १३८ ॥ ॥ ॥ भुशुंड उवाच ॥ हे विद्याधर! जब अहंका उत्थान होता है, तब आगे सृष्टि बनी भासती है, जब अहंका अभाव हुआ, तब विश्व कछु नहीं भासती, केवल शुद्ध आत्माही भासता है ॥ हे विद्याधर! इंद्रनें कहा जो मैं हौं, उसकों सूर्यकी किरणोंके अणुविषे ऐसे अहं हुआ तब उसविषे देखा अरु कष्ट पाया, जब उसकों अहं न होता, तब दुःखकों न पावता, दुःखरूपी वृक्षका अहंरूपी बीज है, अरु आत्मविचारतें अहंका नाश हो

ता है, जब अहंका नाश होता है तब आत्मपदका साक्षात्कार होता है, अरु आत्मपदके साक्षात्कार हुए परिच्छिन्न अहंका नाश होता है ॥ हे विद्याधर! आत्मरूपी एक पर्वत है, तिस ऊपर आकाशरूपी बन है, तिसविषे संसाररूपी वृक्ष लगे है, वासनारूपी तिनविषे रस हैं, अज्ञानरूपी भूमितें उत्पन्न हुआ है, अरु नदियां समुद्र इसकी नाडी हैं, अरु चंद्रमा तारे इसके फूल हैं, वासनारूपी जलसाथ बढता है, अरु अहंकाररूपी वृक्षका बीज, सुख दुःखरूपी इसके फल हैं, रसविषे अनात्मपद है, अरु टास इसके आकाश है, अरु जडां इसकी पाताल है, तुम इस वृक्षकों ज्ञानरूपी अग्निकरि जलावहु, अहंरूपी जो वृक्षका बीज है, तिसीका नाश करौ ॥ हे विद्याधर! एक खाई है, तिसके जन्ममरणरूपी दोनों किनारे हैं, अनात्मरूपी तिसविषे जल है, अरु वासनारूपी तिसविषे तरंग हैं, अरु विश्वरूपी तिसविषे बुदबुदे होते भी हैं, अरु मिटि भी जाते हैं, अरु शरीररूपी तिसविषे झग है, अहंकाररूपी वायु है, जब वायु हुई तब तरंग बुदबुदे सब होते हैं, जब वायु मिटि गई, तब केवल स्वच्छ निर्मलही भासता है ॥ हे विद्याधर! जो वायु हुई तौ जलतें इतर कछु न हुआ, अरु जो न हुई तौ भी जलतें इतर कछु नहीं, जलही है, तैसे अज्ञानके होते भी अरु निवर्त हुए भी आत्मपद ज्योंका त्यों है, परंतु सम्यक् दर्शन करिके आत्मपद भासता है, अरु अज्ञान करिके जगत भासता है, सो अहंका होणाही अज्ञान है, जब अहं हुआ तब मम भी होता है, सो अहं मम भी नाम संसारका है, जब अहं मम मिटि गया, तब जगत्का अभाव होता है, अहंके होते दृश्य भासती है, अरु दृश्यविषे अहं होती है, तातें संवेदनकों त्यागिकरि निर्वाणपदकों प्राप्त होहु ॥ भुशुंड उवाच ॥ हे वसिष्ठजी! इस प्रकार जब मैं विद्याधरकों उपदेश किया, तब समाधिविषे स्थित हुआ, अरु परम निर्वाणपदकों प्राप्त भया, जैसे दीपक निर्वाण हो जाता है, तैसे उसका चित्त क्षोभतें रहित शांतिकों प्राप्त भया ॥ हे ब्राह्मण! उसका हृदय शुद्ध था, मेरे वचनों शीघ्रही उसके हृदयविषे प्रवेश किया, ज

ब समाधि स्थित भया, तब मैं उसकों जगाय रहा वारंवार, परंतु न जाग्या, जैसे कोउ जलता जलता शीतल समुद्रविषे जाय बैठै, अरु उसकों कहिये तूं निकस तौ नहीं निकसता, तैसे संसारतापकरि जलता जो था, अरु आत्मसमुद्रकों उह प्राप्त हुआ, तब अज्ञानरूपी संसारके प्रवाहकों नहीं देखता ॥ हे वसिष्ठ जी ! जिसका अंतःकरण शुद्ध होता है, तिसकों थोडे वचन भी बहुत हो लगते हैं, जैसे तेलकी एक बुंद ज लविषे पाई बडे विस्तारकों पावती है, तैसे जिसका अंतःकरण शुद्ध होता है, तिसकों थोडा वचन भी ब हुत होकरि लगता है, अरु जिसका अंतःकरण मलिन होता है, तिसकों वचन नहीं लगता, जैसे आरसी ऊपर मोती नहीं ठहरता, तैसे गुरु शास्त्रके वचन उसकों नहीं लगते, जब विषयतें वैराग्य उपजै, तब जा णियें जो हृदय शुद्ध हुआ है ॥ हे वसिष्ठजी ! जब मैं विद्याधरकों उपदेश किया, तब उह शीघ्रही आत्मप दकों प्राप्त भया, काहेतें जो उसका चित्त निर्मल था ॥ हे मुनीश्वर ! जो तुमनें मुझतें पूछा था, सो क हा, जो ज्ञानतें रहित चिरकाल जीता देखा ॥ ॥ वसिष्ठ उवाच ॥ हे रामजी ! ऐसे मैं काक भुषंडकों पू छा था, सो मुझसों कहा, अरु कहीकरि तूष्णी हो गया, जैसे मेघ वर्षाकरि तूष्णी होवै, तैसे उह तूष्णी भया, अरु मैं नमस्कार करिके उठी आकाशमार्गतें अपणे घर आया ॥ हे रामजी ! अब एकादश चउक डी युग बीते हैं, मेरे अरु काग भुषंडके संवादकों ॥ हे रामजी ! कालका नियम नहीं, जो थोडे कालकरि ज्ञान उपजता है, अथवा बहुत कालकरि उपजता है, यह हृदय शुद्धकी बात है, जिसका हृदय शुद्ध होता है, तिसकों गुरु शास्त्रोंका वचन शीघ्रही लगता है, जैसे जल नीचेकों स्वाभाविक जाता है, तैसे शुद्ध हृद यविषे उपदेश शीघ्रही प्रवेश करता है ॥ हे रामजी ! एता उपदेश क्रम करिके तुझकों किया है, तिसका तात्पर्य यह जो फुरणेका त्याग करु, जो न मैं हौं, न कोउ जगत है, तब पाछे निर्विकल्प केवल आत्मप द रहैगा, जो सर्वका अपणा आप है, तिसका साक्षात्कार तुझकों होवैगा, जैसे दर्पण मलिनविषे मुख नहीं

दिखता, तैसे आत्मरूपी दर्पण अहंरूपी मलकरि आच्छाद्या है, जब इसका त्याग करौ, तब आत्मपद की प्राप्ति होवैगी, अरु जगत भी अपणा आप भासैगा, जो आत्मातें इतर कछु नहीं, काहेतें जो इतर कछु नहीं, केवल आत्मत्वमात्र है, अरु अवर जो कछु भासता है, सो मृगतृष्णाके जलवत् जाण, अरु वंध्याके पुत्रवत् जाण, यह जगत आत्माके प्रमादकरि भासता है, जैसे आकाशमें नीलता भासती है, अरु है नहीं, तैसे जगत प्रत्यक्ष भासता है, अरु है नहीं, जैसे जेवरीविषे सर्प मिथ्या है, तैसे आत्माविषे जगत मिथ्या है, जब आत्माका ज्ञान हुआ, तब जगत्का अत्यंत अभाव होवैगा, केवल आत्मत्व मात्र अपणा आप भासैगा ॥ ॥ इति श्रीयोगवासिष्ठे निर्वाणप्रकरणे भुषंड विद्याधरोपाख्यानसमाप्तिर्नाम शताधिकनवत्रिंशत्तमः सर्गः ॥ १३९ ॥ ॥ ॥ ॥ ॥ वसिष्ठ उवाच ॥ हे रामजी ! तूं अहं वेदनातें रहित होहु, संसाररूपी वृक्षका बीज अहंही है, वासना करिके शुभ अशुभरूप कर्मका सुख दुःख फल है, अरु वासनाहीकरी प्रफुल्लित होता है, तातें अहंभावकों निवृत्त करौ, जब अहं फुरता है, तब आगे जगत भासता है, जब अहंतातें रहित होवैगा तब जगतभ्रम मिटि जावैगा, सो अहंता आत्मबोधकरि नष्ट होती है, आत्मबोधरूपी खंभाणीकरि उडाया अहंतारूपी पाषाण जानियेगा नहीं जो कहां गया, अरु स्वर्ण पाषाण तुझकों तुल्य हो जावैगा, अरु शरीररूपी पत्र उपर अहंतारूपी अणु स्थित है, जब बोधरूपी वायु चलैगी, तब न जानियेगा जो कहां गया, अरु शरीररूपी पत्रउपर अहंतारूपी बरफका कणका स्थित है, बोधरूपी सूर्यके उदय हुए न जानियेगा जो कहां गया, बोध विना अहंता नष्ट नहीं होती, भावै चिकडविषे गमन होवै, भावै पहाडविषे जाय रहै, भावै घरहिविषे रहै, भावै आकाशविषे उडै, भावै जलविषे रहै, भावै स्थलविषे रहै, भावै स्थूल होवै, भावै सूक्ष्म होवै, भावै निराकार होवै, भावै रूपांतरकों प्राप्त होवै, भावै भस्म होवै, भावै मृतक हो जावै, भावै दूर होवै, अथवा

निकट होवै, जहां रहैगा, तहांही अहंता इसकेसाथ है ॥ हे रामजी! संसाररूपी वट है, तिसका बीज अहंता है, तिसतें सब शाखा पसरती हैं, सब अनर्थका कारण अहंता है, जबलग अहंता है, तबलग दुःख नहीं मिटता, जब अहंभाव नष्ट होवै, तब परम सिद्धताकी प्राप्तिहोवैगी ॥ हे रामजी! जो कछु मैं उपदेश किया है, तिसकों भली प्रकार विचारिकरि तिसका अभ्यास करु, तब संसाररूपी वृक्षका बीज जलि जावैगा, अरु आत्मपदकी प्राप्ति होवैगी ॥ ॥ इति श्रीयोगवासिष्ठे निर्वाणप्रकरणे अहंकारासत्ययोगोपदेशो नाम शताधिकचत्वारिंशत्तमः सर्गः ॥ १४० ॥ ॥ वसिष्ठ उवाच ॥ हे रामजी! संसार संकल्पमात्र सिद्ध है, भ्रम करिके उदय हुआ है, आत्मस्वरूपविषे सृष्टि वस्तियां हैं, केई लीन होतियां हैं, केई उत्पन्न होतियां हैं, केई उडतियां हैं, कहूं एकठियां जाय होतियां हैं, कहूं भिन्न भिन्न उडतियां हैं, सो मुझकों प्रत्यक्ष भासतियां हैं, उह उडतियां जातियां हैं, तुम भी देखो अरु आकाशरूप हैं, अरु आकाशही सों मिलतियां हैं, जैसे केलेका वृक्ष देखणेमात्र सुंदर होता है, अरु तिसविषे सार कछु नहीं होता, तैसे विश्व देखणेमात्र सुंदर है, अरु आकाशरूप है, बहुरि कैसी हैं, जैसे जलविषे पहाडका प्रतिबिंब पडता है, अरु हलता भासता है, तैसे यह जगत है ॥ ॥ राम उवाच ॥ हेभगवन्! तुम कहते हौ, प्रत्यक्ष सृष्टि उडतियां मुझकों भासतियां हैं,तूं भी देख यह तौ,मैं कछु नहीं समुझा,क्या कहते हौ?॥ वसिष्ठ उवाच ॥ हे रामजी! अनेक सृष्टि उडतियां हैं, सो श्रवण करु, पंचभौतिक शरीरविषे प्राण स्थित हैं, अरु प्राणविषे चित्त स्थित है, तिस चित्तविषे अपणी अपणी सृष्टि है, जब यह पुरुष शरीरका त्याग करता है, तब लिंगशरीर जो वासना अरु प्राणवायु है, सो उडते हैं, तिस लिंगशरीरविषे विश्व है, उह सूक्ष्म दृष्टिकरि मुझकों भासती है ॥ हे रामजी! आकाशकी जो वायु है, जिसका रूप रंग कछु नहीं, उही वायु प्राणोंसाथ मिलि मेरे तांई प्रत्यक्ष देखाइ देती है, इसीका नाम जीव है, स्वरूपतें न कोउ आया है; न जाता है; परंतु लिंगशरीरके संयोगकरि

आपकों आता जाता देखता है, अरु जन्मता मरता देखता है, अपणी वासनाके अनुसार आत्माविषे विश्व देखता है, अवर वन्या कछु नहीं, यह वासनामात्र सृष्टि है, जैसी वासना होती है, तैसी विश्व भासती है ॥ हे रामजी ! यह पुरुष आत्मस्वरूप है, परंतु लिंगशरीरके मिलणेकरि इसका नाम जीव हुआ है, अरु आपकों परिच्छिन्न जानता है, वास्तवतें ब्रह्मस्वरूप है, देश काल वस्तुके परिच्छेदतें रहित सो ब्रह्म है, तिसके प्रमादकरि आपकों कछु मानते हैं, इसीका नाम लिंगशरीर है,जैसे घटाकाश भी महाकाश है,परंतु घटके खपरकरि परिच्छिन्न हुआ है, तैसे यह पुरुष भी आत्मस्वरूप है,अहंकारके संयोगकरिके जीव परिच्छिन्न हुआ है, जैसे घटकों एक देशतें उठाए देशांतरविषे ले जाय रखा, तो क्या ले गया, आकाश तो न कहूं गया है, न आया है, खपरकरि आता जाता भासता है, तैसे आत्मा अखंडरूप है, परंतु प्राण चित्तकरि चलता भासता है, जव अहंकाररूप चित्त नष्ट होवै, तव अखंडरूप होवे, जवलग अहंकाररूपी खपर नहीं फूटता तवलग जगत भ्रम दिखता है, अरु वासना करिके भटकता फिरता है, वासनाकरि सृष्टि अपणे अपणे चित्तविषे स्थित है, जव शरीरका त्याग करता है, तव आकाशविषे उडता है, प्राणवायु उडीकरि जो आकाशविषे शून्यरूप वायु है, तिसविषे जाय मिलती है, तहां इसकों अपणी वासनाके अनुसार सृष्टि भासी आती है, अपणी सृष्टिकों लेकरि इस प्रकार उडते हैं, जैसे वायु गंधकों ले जाती है, तैसे यह वासनारूप सृष्टिकों ले जाते हैं, सो उडते मेरे तांई सूक्ष्म दृष्टि करिके भासते हैं ॥ हे रामजी ! स्थूल दृष्टि करिके लिंगशरीर नहीं भासता, सूक्ष्म दृष्टिकरि देखता है, जिस पुरुषकों सूक्ष्म दृष्टि लिंग शरीर देखणेकी है, अरु ज्ञानतें रहित है, सोउ मेरे मतविषे मूर्ख पशु है ॥ हे रामजी ! जव यह पुरुष वासनाका त्याग करता है, वासना कहिये अहंकार, जो मैं हों, इस होणेका त्याग करता है, तव आगे विश्व नहीं दिखाइ देती, केवल निर्विकल्प ब्रह्म भासता है, उसके प्राण नहीं उडते तहांही लीन हो जाते हैं, काहेतें जो उसका चित्त अचित्त हो जाता

है, इसकरि नहीं उडते, जबलग अहंकारका संयोग है, तबलग विश्व इसके चित्तविषे स्थित है, जैसे बीज विषे वृक्ष स्थित होता है, जैसे तिलोंविषे तेल स्थित होता है, तैसे इसके हृदयविषे विश्व स्थित है, जैसे मृत्तिकाविषे वासन बडे छोटे होवैं, जैसे लोहेविषे सुई खड्ग होवै, जैसे बीजविषे वृक्षभाव चेतन अथवा जड होवै ॥ हे रामजी ! तैसे यह संकल्पकलनाविषे भेद है, स्वरूपतें कछु नहीं, तैसे यह जगत है ॥ हे रामजी ! विश्व संकल्पमात्र है, काहेतें जो दूसरी अवस्थाविषे नाश हो जाती है, यह जाग्रत जो तुझकों भासती है, सब मिथ्या है, जब स्वप्न आया, तब जाग्रत नहीं रहती, अरु जाग्रत आई तब स्वप्न नाश हो जाता है, जब मृत्यु आती है, तब सृष्टिका अत्यंत अभाव हो जाता है, अरु देश काल पदार्थ सहित वासनाके अनुसार अवर सृष्टि भासती है ॥ हे रामजी ! यह विश्व कैसी है, जैसे स्वप्ननगर होवै तैसे है, जैसे संकल्पपुर होवै तैसे यह सब संकल्प उडते फिरते हैं, सृष्टिकेई परस्पर मिलतियां हैं, केई नहीं मिलतियां, परंतु सब संकल्परूप भ्रम करिके अवरका अवर भासता है, जैसे कोउ पुरुष बडा होता है, अरु छोटा भासता है, अरु छोटेकों बडा भासता है, जैसे हस्तीके निकट अवर पशु तुच्छ भासते हैं, अरु चीटीके निकट अवर बडे भासते हैं, तैसे जो ज्ञानवान् पुरुष है, तिसकों बडे पदार्थ देशकाल संयुक्त विश्व तुच्छ भासती है, असत् जानता है, अरु जो अज्ञानी है, तिनकों संकल्पसृष्टि बडी होकरि भासती है, जैसे पहाड बडा भी होता है, परंतु जिसकी दृष्टितें दूर है, तिसकों महालघु तुच्छ जैसा भासता है, अरु चीटीके निकट तुच्छ मृत्तिकाकी टेल राखी पहाडके समान है, तैसे ज्ञानीकी दृष्टीतें यह जगत रहित है, इसकरि बडा जगत भी उसकों तुच्छरूप भासता है, अरु अज्ञानीकों तुच्छरूप भी बडा भासता है ॥ हे रामजी ! यह विश्व भ्रम करिके सिद्ध हुई है, जैसे भ्रम करिके सीपीविषे रूपा भासता है, अरु जेवरीविषे सर्प भासता है, तैसे आत्माके प्रमादकरि विश्व भासती है, अरु आत्मातें भिन्न कछु नहीं, जैसे निद्रा दोष करिके पुरुष अपणे अं

ग भूलि जाते हैं, अरु जागे हुए सव अंग अपणे भासते हैं, तैसे अविद्यारूपी निद्रा करिके पुरुष सोया हुआ, जव जागता है, तव सव विश्व अपणा आप दिखाई देती है, जैसे स्वप्नतें जाग्या हुआ स्वप्नकी विश्व कों अपणा आपही देखता है, तैसे यह विश्व अपणा आपही भासैगा ॥ हे रामजी! जव यह पुरुष निद्रा में सोया होता है, तव शुभ अशुभ विश्वविषे रागद्वेष कछु नहीं होता, अरु जागता है, तव इष्टविषे राग होता है, अनिष्टविषे द्वेष होता है, सो जवलग इसकों विश्वविषे हेयोपादेय वुद्धि है, जो सर्वज्ञ है तो भी मूर्ख है ॥ हे रामजी! जव यह पुरुष जड हो जावै, तव कल्याण होवै सो जड होणा यही है, जो दृश्यतें रहित आत्माविषे स्थित होवै, सो आत्मा चिन्मात्र है, आत्मातें इतर जो कछु करता है, सत् अथवा असत् जानता है, तवलग स्वरूपकी प्राप्ति नहीं होती, जव संवित् फुरणेतें रहित होवै, तव स्वरूपका साक्षात्कार होवै, तातें फुरणेका त्याग करु, अरु यह स्थावर जंगम जगत जो तुझकों भासता है सो सर्व ब्रह्मस्वरूप है, जव तूं ऐसे निश्चय करैगा, तव सर्व विवर्त्तका अभाव हो जावैगा, आत्मपदही शेष रहैगा॥ ॥ राम उवाच ॥ हे भगवन्! यह जीव जो तुम कहा सो जीवका स्वरूप क्या है, अरु जीव आकारकों ग्रहण कैसे करता है, अरु इसका अधिष्ठान परमात्मा कैसे है, अरु इसके रहणेका स्थान कवन है सो कहो ॥ ॥ वसिष्ठ उवाच ॥ हे रामजी! शुद्ध जो परमात्मतत्त्व निर्विकल्प चिन्मात्रपद है, तिसविषे चैत्योन्मुखत्व हुआ जो मैं हों, ऐसे जो चित्कला ज्ञानरूप फुरी, अरु तिसकों चित्तका संवंध हुआ, जो चित्तका संयोग भया, तिसका नाम जीव है, सो जीव न सूक्ष्म है, न स्थूल है, न शून्य है, न अशून्य है, न थोडा है, न वहुत है, केवल आत्मत्व मात्र है, अरु शुद्ध है, न अणुरूप है, न स्थूल है, अनंत चेतन आकाशरूप है, तिसकों जीवकरि कहते हैं, स्थूलका स्थूल उही है, सूक्ष्मका सूक्ष्म उही है, अनुभव चेतन सर्वगतरूप सो जीव है, तिसविषे वास्तव शब्द कोउ नहीं, जो कोउ शब्द है, सो प्रतियोगीसाथ मिलिकरि हुआ है, अरु जीव अद्वैत है, जो अद्वैत

है, तिसका प्रतियोगी कैसे होवै, यह जीवका स्वरूप है, चैत्यके संयोगकरि जीव हुआ है, अरु जीवका अधिष्ठान परमात्मतत्त्व है, चेतन आकाश है, निर्विकल्प है, चैत्यतें रहित शुद्ध चेतन है, तिसविषे जो संवित फुरी है, तिसका नाम जीव है, सो सूक्ष्मतें सूक्ष्म है, स्थूलतें स्थूल है, सर्वका बीज है, इसीका नाम वैराट कहते हैं, अरु शरीर तिसका मनोमय है, आदि जो परमात्मतत्त्वतें फुर्या है, अरु अवर अवस्थाकों नहीं प्राप्त भया, अवर अवस्था कहिये परिच्छिन्नताकों नहीं प्राप्त हुआ, आपकों सर्व आत्मा जानता है, इसका नाम विराट है, प्रथम शरीर उसका मनोमात्र अरु शुद्ध प्रकाशरूप है, रागदोषरूपी मलतें रहित है, अरु अनंत आत्मा है, सर्व मन अरु कर्मों अरु देहोंका बीज है, अरु सबविषे व्यापी रहा है, सब जीव का अधिष्ठाता है, तिसीके संकल्पकरि यह जीव रचे हैं, पंच ज्ञान इंद्रियां अरु अहंकार मन अरु संकल्प इन आठोंके आकार धारे हैं, अरु आपही ग्रहण किए हैं, परमार्थरूपकों त्यागि फुरणेतें जो आकार उत्पन्न हुए हैं, तिनकों ग्रहण किया इसका नाम पुर्यष्टका है, बहुरि इन इंद्रियांके छिद्र रचता भया, स्थूलरूप रचीकरि तिनविषे आत्मप्रतीति करत भया, जैसे पुरुष शयन करता है, अरु जाग्रत शरीरका त्यागकरि स्वप्नशरीरका अंगीकार करता है, तैसे शुद्ध चिन्मात्र निर्विकार अद्वैत स्वरूपकों त्यागिकरि वासनामय शरीरका अंगीकार किया है, अरु वास्तव स्वरूपका कछु त्याग नहीं किया, स्वरूपतें उह गिर्या नहीं, शुद्ध निर्विकल्प भावकों त्यागिकरि विराट भाव होत भया है,इसी प्रकार आगे तिस पुरुषनें चारों वेदज्ञान करिके रचे, अरु नीतिकों निश्चय किया, नीति कहियें जो यह पदार्थ ऐसे होवै, अरु एताकाल रहै, यह रचना रची जो जो संकल्प करत भया, सो सो देशकाल पदार्थ दिशा ब्रह्मांड सब आगे होत भये, तिस पुरुषके एते नाम हैं, ईश्वर वैराट आत्मा परमेश्वर इत्यादिक जीवके नाम हैं, सो इस जीवका स्वरूप वासनारूप कछु झूट नहीं, वासनाके शरीर ग्रहण करणेकरि वासनारूप कहा है, अरु वास्तवरूप शुद्ध है, निर्विका

र अद्वैत है, कदाचित् स्वरूपतें अन्य अवस्थाकों नहीं प्राप्त भया, सदा ज्ञानरूप है, अद्वैत परम शुद्ध है, तिसकों अपणे चेतन स्वभावकरि चैत्यका संयोग हुआ है, तिसकरि कहा है; जो उसका वपु वासनारूप है, तिस आदि जीवतें ब्रह्मा विष्णु रुद्रतें आदि लेकरि देवता दैत्य आकाश मध्य पाताल त्रिलोकी उत्पन्न हुई है, जैसे दीपकतें दीपक होता है, अरु जलतें जल होता है, तैसे सव विराट स्वरूप है, सो विराट कैसा है, महाआकाश जिसका उदर है, अरु समुद्र तिसका रुधिर है,अरु नदियां जिसकी नाडी हैं, अरु दिशा जिसके वपु हैं, अरु जिसके उदरविषे केई ब्रह्मांड सुमेरु पर्वतसहित समाए रहते हैं, अरु पवन जिसके मुंड हैं, अरु उनचास पवन जिसके प्राणवायु हैं, मांस जिसका पृथ्वी है, हस्त जिसके सुमेरु आदिक पर्वत हैं, तारे जिसकी रोमावली हैं, ऐसा विराट है, सहस्र जिसके शीस हैं, अरु सहस्र मस्तक हैं, सहस्रही नेत्र हैं, अरु अनंत है, अनादि है, अरु चंद्रमा जिसकी कफ है, जिसतें अमृत स्रवता है, भूत उपजते हैं, अरु सूर्य पित्त है, अरु सर्वका उत्पन्न करता है, सर्व मन अरु सर्व कर्म अरु सर्व शरीरका बीज आदिविराट है ॥ हे रामजी ! इस चित्तके संबंध करिके तुच्छ हुआ है, वास्तवतें परमात्मस्वरूप है, जैसे महाकाश घटके संयोगकरि घटाकाश होता है, तैसे विराट जो परमात्मा है, तिसनें फुरणेकरि सृष्टि रची है, अरु तिसविषे अहं प्रत्यय करी है, इसतें तुच्छ हुआ है, सो इसकों मिथ्या भ्रम हुआ है, जैसे स्वप्नविषे अपना मरणा देखता है, तैसे आपकों दृश्य देखता है, सो लघुता भी इसकों आत्माकी अपेक्षा करिके है, दृश्यविषे विराट है, अरु आत्माविषे इसका अनुभव है ॥ हे रामजी ! इसी प्रकार इसनें उपजीकरि सृष्टि रची है, जैसे एक विराट पुरुषने आदि निश्चय किया है, तैसेही अवलग है, सो यह आपही उपजा है, अरु आपही लीन हो जाता है ॥ हे रामजी ! जिस प्रकार विराटकी आत्मातें उत्पत्ति हुई है, तैसेही सव जीवकी है, यह सब विराटरूप है, परंतु जो स्वरूपतें उपजीकरि दृश्यसाथ तद्रूप हुए, अरु वास्तव स्वरूप

जिनकों भूलि गया, सो जीव तुच्छरूप भये, अरु स्वरूपसों फुरिकरि स्वरूपतें न गिरै, अरु आगे अपणांही संकल्परूप विश्व देखी प्रमाद न हुआ, तिसका नाम विराट आत्मा है ॥ हे रामजी ! जीव चेतनरूप है, अरु निराकाररूप है, इसकों जो शरीरका संयोग हुआ है, सो कलनाकरि हुआ है, जब आपकों दृश्य संयुक्त देखता है, तब महाआपदाकों प्राप्त होता है, जब द्वैततें रहित निर्विकल्प होकरि देखै, तब शुद्ध चेतनघन आत्मपदकों प्राप्त होता है ॥ हे रामजी ! यह विराट कैसा है, सबका उत्पन्नकर्ता है, सो ऐसे केई विराट आत्मपदतें उदय हुए हैं, अरु केई मिटि गये हैं, अरु केई आने होवैंगे, जैसे समुद्रतें केई तरंग बुदबुदे उठते हैं, अरु लीन होते हैं, तैसे आत्मरूपी समुद्रतें केई उठते हैं, केई लीन होते हैं, केई उपजैंगे, ऐसा परमात्मा सबका अधिष्ठान है, सबके अंतर बाहिर पूर्ण ज्ञानस्वरूप है, ऐसा तेरा अपणा आप अनुभवरूप है ॥ हे रामजी ! इस संवेदनकों त्यागिकरि देख, उही परमात्मस्वरूप है, यह जो कछु तुझकों भासता है, तिसकों विचारिकरि त्याग, जब तूं इसका त्याग करैगा, तब चिन्मात्र जो परम शुद्ध तेरा स्वरूप है सो प्रकाश तुझकों भासैगा, तिसके आगे चेतनताही आवरणरूप है, जैसे सूर्यके आगे बदलोंका आवरण होता है, जबलग बदल होते हैं, तबलग सूर्यका प्रकाश ज्योंका त्यों नहीं भासता, जब बदल दूर होवैं, तब प्रकाश स्वच्छ भासता है, तैसे जब फुरणां निवृत्त होवैगा, तब शुद्ध आत्माही प्रकाशैगा ॥ ॥ इति श्री योगवासिष्ठे निर्वाणप्रकरणे विराडात्मावर्णनं नाम शताधिकैकचत्वारिंशत्तमः सर्गः ॥ १४१ ॥ ॥ ॥

॥ वसिष्ठ उवाच ॥ हे रामजी ! यह परमात्मा पुरुष फुरणे करिके जीवसंज्ञाकों प्राप्त हुआ है, फुरणेविषे भी उही है, अरु अपणे स्वरूपकों नहीं जानता, इसीतें दुःख पावता है, जैसे पवन चलता है तौ भी उहीरूप है, जब ठहरता है, तौ भी उहीरूप है, दोनोंविषे तुल्य है, तैसे आत्मा सर्वदा एकरस है, कदाचित् परिणामकों नहीं प्राप्त भया, अरु यह जीव प्रमाद करिके दृश्यकों कल्पता है, दृश्यकों आप जानता है, इसीतें दुःख पा

वता है, अरु जो इसकों अपणा स्वरूप स्मरण रहै तौ दृश्यविषे भी अपणा रूप भासै, अरु जो निःसंकल्प होवै तौ भी विश्व अपणा रूप भासै, विश्व भी इसीका रूप है, परंतु अविचारतें भिन्न भिन्न भासती है, जैसे स्वप्नकी विश्व स्वप्नवालेका रूप है, परंतु निद्रादोषकरि नहीं जानिता, जब जागता है, तब जानता है, जो मैंही था, तैसे यह प्रपंच सब तेरा स्वरूप है, तूं अपणे स्वरूपविषे निरहंकार स्थित होकरि देख तौ बन्या कछु नहीं अरु जो आत्मातें इतर परिच्छिन्न कछु तूं बणैगा, तौ प्रपंच विश्व भासैगा, जो आत्मस्वरूपविषे स्थित होवै तौ अपणा आप भासैगा, प्रपंचका अभाव हो जावैगा ॥ हे रामजी! शून्याशून्य जड चेतन किंचन निष्किंचन सत् असत् सब आत्माही पूर्ण है, निषेध किसका करियें, सब उहीरूप है ॥ हे रामजी! ऐसा अनुभवरूप है, जिसकरि सर्व पदार्थ सिद्ध होते हैं, अरु ऐसे आत्माकों मूर्ख नहीं जानते, जैसे जन्मका अंध मार्गकों नहीं जानता, तैसे अज्ञानी महाअंध जागती जोति आत्माकों नहीं जानते, जैसे उलूकादिक सूर्य उदय हुएकों नहीं जानते, तैसे वासनाकरि आवरे हुए आपकों जाणी नहीं सकते, जैसे जालविषे पक्षी आवर्या होता है, तैसे जीव आवरे हुए हैं, इसीका नाम बंधन है, जब वासनाका वियोग हुआ, तब इसीका नाम मुक्ति है ॥ हे रामजी! विषमता करिके इसकी जीवसंज्ञा हुई है, जब सम हुआ तब ब्रह्म है, सो ब्रह्म अहंकारकों त्यागिकरि होता है, जैसे खपरके संयोगकरि घटाकाश कहाता है, जब खपर टूटा तब महाकाश हो जाता है, तैसे जब अहंकार नष्ट हुआ, तब आत्मस्वरूप है ॥ हे रामजी! अज्ञान करिके एक देशी जीव हुआ है, जब परिच्छिन्नताकों वियोग हुआ, तब आत्मस्वरूप है ॥ हे रामजी! अपणा वास्तव स्वरूप जो निर्गुण है, तिसविषे गुणका संयोग उपाधि करिके भासता है, सो अनर्थरूप है, जब निर्गुण अरु सगुणकी गांठ टूटी तब केवल अद्वैत तत्त्व अपणा आप भासैगा, सो कैसा स्वरूप है, जो अनामय है, दुःखतें रहित है, अरु सत् असत्तें पर है, ज्ञानरूप आदि अंततें रहित है, जिसके पायेतें बहुरि पावणा कछु नहीं र

हता, अरु जिसके जाणेतें अवर जानणा कछु नहीं रहता, ऐसा जो उत्तम पद है, तिसकों आत्मत्व करिके प्राप्त होवैगा ॥ हे रामजी! यह जो ज्ञान तेरे तांई कहा है, तिसकों आश्रय करिके तुम ज्ञानवान् होणा, ज्ञानबंध नहीं होणा, ज्ञानबंधतें अज्ञानी भला है, काहेतें जो अज्ञानी भी साधुसंग अरु सच्छास्त्र श्रवणकरि ज्ञानवान् होता है, अरु ज्ञानबंध मुक्त नहीं होता, जैसे रोगी होवै, अरु कहै, मुझकों रोग कोउ नहीं, मैं अरोग हौं, तब वैद्यका औषध नहीं खाता, काहेतें जो आपकों अरोगी जानता है, तैसे जो ज्ञानबंध है, तिसतें संतका संग भी नहीं होता, अरु सच्छास्त्रोंका श्रवण भी नहीं होता, तातें अंधतमकों प्राप्त होता है ॥ राम उवाच ॥ हे भगवन्! ज्ञानका लक्षण क्या है, अरु ज्ञानबंधका लक्षण क्या है, अरु ज्ञानबंधका फल क्या है सो कहौ ॥ ॥ वसिष्ठ उवाच ॥ हे रामजी! तिस पुरुषनें आत्माके विशेषण शास्त्रोंतें श्रवण किये हैं, जो आत्मा नित्य है, शुद्ध है, अरु ज्ञानस्वरूप है, अरु तीनों शरीरतें भिन्न है, ऐसे सुणीकरि आपकों मानता है, अरु विषय भोगणेकी सदा तृष्णा रहती है, जो किसी प्रकार इंद्रियांके विषय मेरे तांई प्राप्त होवें, ऐसा जो पुरुष है, सो ज्ञानबंध है, उह बोध शिल्पी है, बहुरि कैसा है, जो कर्म फलके विचारतें रहित है, भला बुरा विचारकरि नहीं करता, तिसविषे विचारता है, अरु मुखतें शुभ अशुभ निरूपण करता है, सो शास्त्र शिल्पी है, अरु फलके अर्थ कर्म करता है, एक एक ऐसे हैं जो शास्त्र उक्त आपकों उत्तमकरि मानते हैं, अरु शास्त्रोंके अर्थ बहुत प्रकार भी कहते हैं, पढते भी हैं, पढावते भी हैं, अरु विषयसों बंधमान हैं, सदा विषयकी चिंतवना करते हैं, ऐसा पुरुष है सो ज्ञानबंध कहाता है, तिसनिमित्त अर्थ शिल्पी कहता है, चितेरा करणेकों समर्थ है, अरु धारणेकों समर्थ नहीं ॥ ॥ हे रामजी! एक प्रवृत्ति मार्ग है, एक निवृत्ति मार्ग है, प्रवृत्ति संसार मार्ग है, निवृत्ति आत्मज्ञान मार्ग है, अरु जिस पुरुषनें निवृत्ति मार्ग धारा है, अरु प्रवृत्ति मार्गविषे वर्तता है, प्रवृत्ति कहिये जो बहिर्मुख विषयकी उर व

तेता है, अरु इंद्रियोंके विषयकी वांछा करता है, विषयतें उपरांत नहीं होता, तिनकरि तुष्टमान होता है, अरु स्वरूपका अभ्यास नहीं करता ऐसा पुरुष ज्ञानबंध कहाता है ॥ हे रामजी! श्रुति उक्त शुभ कर्म करता है, हृदयविषे उनके फलकों धारिकरि उह पुरुष ज्ञानके निकट वर्ती है, तौ भी ज्ञानबंध है, अरु जिसकों आत्माविषे प्रीति भी है, विषयकों चिंतवता है, अरु आपकों उत्तम मानता है, सो ज्ञानबंध कहाता है, अरु जो आत्मतत्त्वका निरूपण यथार्थ करता है, अरु स्थिति नहीं, उह ज्ञान आभास है, ज्ञानका फल तिसकों प्रत्यक्ष साक्षात्कार नहीं, अरु जिस पुरुषनें सिद्धता पाई है, अरु ऐश्वर्य पाया है, तिसकरि आपकों बडा जानता है, अरु आत्मज्ञानतें रहित है, सो ज्ञानबंध कहता है ॥ हे रामजी! निदिध्यास करिके जो ज्ञानकी प्राप्ति होती है, तिसकरि शांतिका प्रकाश होता है, जबलग शांति नहीं प्राप्त होती, तबलग आपकों बडा न मानै ॥ हे रामजी! बडा जो होता है, सो ज्ञानकरि होता है, जबलग ज्ञान नहीं उपजा, तबलग आत्मा परायण होवै, अभ्यास यत्न करै, छांडि न देवैं, अरु चेष्टा भी शुभ करै, शुभ व्यवहारकरि उपजीविका उत्पन्न करणी, प्राणोंकी रक्षाके निमित्त, अरु प्राणोंकों ब्रह्मजिज्ञासाके अर्थ धारै, अरु ब्रह्म जिज्ञासा इसनिमित्त है, जो संसारसमुद्र दुःखरूपतें मुक्त होवै, बहुरि संसारी न होवै, यह इसी निमित्त आत्मपरायण होवै, जब आत्मपरायण होवैगा, तब दुःख सब मिटि जावैंगे, जैसे सूर्यके उदय हुए अंधकार नष्ट हो जाता है, तैसे आत्मपदकों प्राप्त हुए दुःख सब नष्ट हो जाता है, तिस पदकों प्राप्त होणेका उपाय इह है, जो सच्छास्त्रोंतें आत्माके विशेपण सुणे हैं, तिनकों समुझीकरि वारंवार अभ्यास करणा, अरु अनात्म दृश्यतें उपरात होणा, तिनकों मिथ्या जाणी वैराग्य करणा, इसकरि आत्मपदकी प्राप्ति होती है ॥ इति श्रीयोगवासिष्ठे निर्वाणप्रकरणे ज्ञानबंधयोगो नाम शताधिकद्विचत्वारिंशत्तमः सर्गः ॥ १४२ ॥ ॥ ॥ ॥ वसिष्ठ उवाच ॥ हे रामजी! जिज्ञासी होकरि ज्ञाननिष्ठ होणा जो कछु गुरुशास्त्रोंतें आत्मविशेषण श्रवण किये हैं, तिनविषे अहंप्रत्यय

करणीं, स्थित होणां इसीका नाम ज्ञाननिष्ठा है, तिस ज्ञाननिष्ठाकरि परम उच्च पदकों प्राप्त होता है, जो स
बका अधिष्ठानपद है, तिस पदकों पावता है, जब तिस पदविषे स्थित हुआ, तब कर्मोंके फलका ज्ञान न
हीं रहता, काहेतें जो शुभ कर्मोंविषे फलका राग नहीं रहता, अरु अशुभ कर्मोंके फलविषे दोष नहीं रहता,
ऐसा जो पुरुष है, सो ज्ञानी कहाता है, शीतलचित्त रहता है, अकृत्रिमशांतिकों प्राप्त होता है, किसी विषयके सं
बंधकरिके नहीं फसता, अरु वासनाकी गांठ टूटि जाती है, ऐसा जो पुरुष है,तिसकों ज्ञानी कहते हैं॥हे रामजी!
बोध सोई है, जिसके पाएतें बहुरि जन्म न पावै, जन्ममरणतें रहित होवै, तिसकों ज्ञानी कहते हैं, जब संसारतें
विमुख हुआ जो संसारकी सत्यता न भासै, तब जाणियें जो बहुरि जन्म न पावैगा, काहेतें जो संसारकी वास
ना नष्ट हो गई॥ हे रामजी! जिसकरि ज्ञानीकी वासना नष्ट होती है सो श्रवण कर, यह जो संसार है, तिसका
कारण नहीं देखीता, जो पदार्थ कारणतें उत्पन्न नहीं भया, सो सत्य नहीं होता, तातें संसार मिथ्या है, जैसेजेव
रीविषे सर्प भासता है, तिसका कारण कोउ नहीं, भ्रमकरि सिद्ध हुआ है, तैसे यह विश्व कारणविना दृष्ट आती
है, तातें मिथ्या है, जो मिथ्या है, तौ इसकी वासना कैसे होवै॥हे रामजी! जो प्रवाहपतित कार्य आनि प्राप्त हो
वै,तिसविषे ज्ञानी विचरता है, संकल्पतें रहित होकरि अपणां अभिमान कछु नहीं करता, जो इस प्रकार होवै,
इस प्रकार न होवै, अरु हृदयकरि आकाशकी नांई संसारतें न्यारा रहता है, अरु फुरणेतें शून्य है, ऐसा जो
पुरुष है, सो पंडित कहता है॥ हे रामजी! यह जीव परमात्मरूप है, जब अचेतन होवै, तब आत्मपदकों
प्राप्त होवै, अचेतन कहिए संसारके फुरणेतें रहित होवै, जब जडहुआ तब आत्मा है, जैसे अंबका वृक्ष
फलतें रहित है, तौ भी नाम तिसका अंब है, परंतु निष्फल है तैसे यह जीव आत्मस्वरूप है, परंतु चित्त
के संबंधकरि इसका नाम जीव है, जब चित्तका त्याग करै तब आत्मा होवै, जैसे अंबकों फल लगा तब
शोभता है, अरु सफल कहाता है, तैसे जब यह जीव आत्मपदकों प्राप्त होता है, तब महाशोभाकरि वि

राजता है ॥ हे रामजी ! ज्ञानवान् पुरुष कर्मके फलकी स्तुति नहीं करता, फल कहियें इंद्रियांके विषय इष्ट की वांछा नहीं करता, जैसे जिस पुरुषनें अमृतपान किया होवै, सो मद्यपान करणेकी इच्छा नहीं करता, तैसे जिसकों आत्मसुख प्राप्त भया है, सो विषयके सुखकी वांछा नहीं करता, अरु जो किसी पदार्थकों पायकरि सुख मानते हैं, सो मूढ हैं, जैसे कोउ पुरुष कहै वंध्याके पुत्रके कांधेपर आरूढ होकरि नदीकों पार उतरता है, ऐसा पुरुष महामूढ है, काहेतें जो वंध्याका पुत्र है नहीं, तौ तिसके कांधेपर कैसे आरूढ होवैगा, तैसे जो पुरुष कहै, संसारके किसी पदार्थकों लेकरि मुक्त होउंगा, सो महामूढ है ॥ हे रामजी ! ऐसा पुरुष ज्ञानतें शून्य है, तिसकी इंद्रिय स्थित नहीं होती, अरु जो शास्त्रोंके अर्थ प्रगट भी करता है, परमात्मज्ञानतें रहित है, तिसकों इंद्रियवलकरि गिराय देती हैं, विषयविषे जैसे इल्ह पक्षी आकाशविषे उडता भी मांसकों देखीकरि पृथ्वी उपर गिर पडता है, तैसे अज्ञानी विषयकों देखीकरि उर्ध्वतें गिर पडता है, तातें इन इंद्रियांकों मनसंयुक्त वश करौ, अरु युक्तिकरि तत्परायण होहु, अंतर्मुख होहु, यह जो संवेदन फुरती है, तिसका त्याग करौ, जब फुरणा निवृत्त हुआ, तब परमात्माका साक्षात्कार होवैगा, जब परमात्माका साक्षात्कार हुआ, तब रूप अवलोकन मनस्कार जो त्रिपुटी है, तिसके सब अर्थकी भावना जाती रहैगी, केवल आत्मतत्त्वही प्रत्यक्ष भासैगा, अरु संसारका अत्यंत अभाव हो जावैगा ॥ हे रामजी ! संसारकी आद्य परमात्मतत्त्व है, अरु अंत भी वही है, जैसे स्वर्ण गालीए तौ भी स्वर्ण है, जो न गालिए तौ भी स्वर्ण है, तैसे जब सृष्टिका अभाव होता है, तौ भी शेष आत्माही रहता है, अरु जब उपजी न थी, तब भी आत्माही था, अरु मध्य भी उही है, परंतु सम्यक्दर्शीकों भासता है, अरु असम्यक्दर्शीकों आत्मसत्ता नहीं भासती ॥ हे रामजी ! विश्व आत्माका परिणाम नही, चमत्कार है, जैसे स्वर्ण लगता है, तब रेणी संज्ञा उसकी होती है, अथवा शलाका कहता है, यद्यपि भूषण तिसविषे हुए नहीं तौ भी चमत्कार उसका ऐसाही होता है, जो

भूषण उसतें उपजीकरि लय हो जाता है, तैसे विश्व आत्माका चमत्कार है, बन्या कछु नहीं; ज्यौंका त्यौं आत्मसत्ता है, तिसका चमत्कार विश्व होकरि स्थित हुआ है, जैसे सूर्यकी किरणा जलाभास हो भासती है ॥ हे रामजी! जब तुम ऐसे जाण्या जो केवल आत्मसत्ता है, तब वासना क्षय हो जावैगी, अरु चेष्टा स्वाभाविक होवैगी, जैसे वृक्षके पत्र हलते हैं पवन करिके, तैसे शरीरकी चेष्टा होवैगी, प्रारब्ध वेगकरिके ॥ हे रामजी! देखणे मात्र तुमारेविषे क्रिया होवैगी, अरु अंतरतें मनकरि शून्य भासैगी, जैसे यंत्रीकी पूतली संवेदन विना तागेकरि चेष्टा करती है, तैसे शरीरकी चेष्टा प्रारब्धकरि स्वाभाविक होवैगी, अरु तुझकों अभिमान न होवैगा, जैसे कोउ पुरुष दूधके निमित्त गुजर पास वासन ले गया, तिसकों दूध चोवणे विषे कछुक विलंब है, तब उसनें कहा जो वासन इहां रहै, जो मैं गृहतें कोउ कार्य शीघ्रहीकरि आऊं, जब वह गृहका कार्य करणे लगा, तब उसका मन दूधकी उर रहा, जो शीघ्रही जाउं, मत आगे चोवता होवै, गृहका कार्य किया, परंतु मन उसका दूधकी उर रहा, तैसे तुमारी क्रिया प्रारब्ध वेगकरि होवैगी, परंतु मन आत्मतत्त्वविषे रहैगा, जब अहंकारतें रहित होवैगा, जबलग अहंकार फुरता है, तबलग प्रसन्न जीव है, प्रसन्न कहीए तुच्छ है, तिसकों शरीरमात्रका ज्ञान होता है, अंतःकरणविषे जो प्रतिबिंब है, जीव तिसकों नख शिखपर्यंत शरीरका ज्ञान होता है, अरु इसीविषे आत्मअभिमान होता है, अवर ज्ञान नहीं होता, तातें जीव है, अरु विराट जो आगे तुझकों कहा है, सो ईश्वर है, सर्व शरीर अरु अंतःकरणका ज्ञाता है, अरु सर्व लिंगशरीरका अभिमानी है, सर्वकों अपणा आप जाणता है, तातें ईश्वर है ॥ हे रामजी! यद्यपि विश्वरूप है, तौ भी अहंकार करिके तुच्छसा भया है, जैसे मेघतें भिन्न हुआ एक बादर कहाता है, अरु घटकरि घटाकाश कहाता है, सो बादर भी मेघ है, अरु घटाकाश भी महाकाश है, तैसे अहं फुरणेकरि प्रसन्न हुआ है, सो फुरणा दृश्यविषे हुआ है, अरु दृश्य फुरणेविषे हुई है, जैसे फलविषे गंध है, अरु तिलोंवि

षे तेल है, तैसे फुरणेविषे दृश्य है ॥ हे रामजी ! आत्माविषे बुद्धि आदिक फुरणा है, जो मैं हौं, जब ऐसे फुरता है, तब आगे दृश्य होती है, जब अहंकार होता है, तब आगे देह इंद्रियांदिक विश्वकों रचता है, तातें फुरणेविषे दृश्य हुई, अरु फुरणा दृश्यविषे हुआ, जो देह इंद्रियां मन आदिक दृश्य हैं, तिनविषे अहं प्रत्यय करिके फुरणा हुआ, इसी कारणतें इसकी जीवसंज्ञा हुई है, जब फुरणा नष्ट हो जावे, तब आत्माका साक्षात्कार होवै, अरु यह जन्म मरण आणा जाणा आदिक विकारसंयुक्त प्रपंच भासता है, तौ भी मिथ्या है, काहेतें जो विचार कियेतें कछु नहीं रहता, जैसे केलेके स्तंभविषे सार कछु नहीं, तैसे विचार कियेतें प्रपंचकों नहीं पाइता, जैसे स्वप्नविषे जन्ममरण आणा जाणा देखीता है, परंतु मिथ्या है, तैसे जाग्रत क्रिया भी सर्व मिथ्या है ॥ हे रामजी ! जो परावरदर्शी है, सो एती अवस्थाविषे निर्विकल्प है, जन्मता भी है, परंतु नहीं जन्मता, सर्व क्रिया करता भी है, परंतु नहीं करता, स्वप्नवत् है, स्वरूपतें कदाचित् कछु नहीं हुआ ॥ हे रामजी ! ज्ञानी जाग्रतविषे भी ऐसेही देखता है, जब यह आत्मपदविषे जगता है, तब सर्व विकारका अभाव हो जाता है, कोउ विकार नहीं भासता ॥ हे रामजी ! जो पुरुष इंद्रियांके विषयकी चिंतवना करता रहता है, सो बंध है, काहेतें जो अभिलाषही दुःखदायक है, यद्यपि राजा है, अरु अंतर अभिलाष है तौ दरिद्री जाण, अरु जो पुरुष छाजन भोजन शयन कष्टसाथ देखता है, जो भोजन भिक्षाकरि होता है, अथवा किसी अवर यत्नकरि होता है, अरु छाजन भी निर्गुणसा पहिरता है, अरु शयन करणेकों स्थान भी जैसा कैसा होता है, अरु ज्ञानकरि संपन्न है, तौ उसकों चक्रवर्ती जाण ॥ दोहा ॥ सात गांठ गोपीनकी, साध न माने शंक; राम अमल माता फिरै, गिनै इंद्रकों रंक ॥ १ ॥ हे रामजी ! तिसकों चक्रवर्तीतें भी अधिक जाण, यद्यपि आरंभ क्रिया करता भी दृष्ट आता है, अरु संकल्पतें रहित है, तौ कछु करता नहीं, करणा अकरणा क्रियाका दोनों उसकों तुल्य है, काहेतें जो निरभिमान है, शुभ कर्म करणेतें स्वर्ग नहीं भो

गता, अशुभ कर्मकरि नरक नहीं भोगता, तिसकों दोनों एकसमान हैं ॥ हे रामजी! ज्ञानी अज्ञानीकी चेष्टा समान है, परंतु अज्ञानी अहंकारसहित करता है, इसकरि दुःख पावता है, तातें तुम अहंकारका त्याग करौ,अरु अपणा स्वरूप जो है, चैत्यतें रहित चेतन तिसविषे स्थित होहु, जो संशय सर्व मिटि जावें अरु जेते कछु जीव तुमकों भासते हैं, सो सर्व संवितरूप हैं, संवित कहियें ज्ञानरूप है, परंतु बहिर्मुख जो फुरते हैं, तिसकरि भ्रमकों प्राप्त हुए हैं, जब अंतर्मुख होवें तब केवल शांतरूप हैं, जहां गुणों अरु तत्त्वोंका क्षोभ नहीं, तिसकों शांतपद कहते हैं ॥ हे रामजी ! जैसे विराटका मन चंद्रमा है, तैसे सर्व जीवका है, अर्थ यह जो सब विराटरूप है,परंतु प्रमादकरि वास्तव स्वरूप नहीं भासता ॥ हे रामजी ! यह जीव संपूर्ण देहविषे व्यापक है, अरु भासता हृदयकोशविषे है, जैसे गुलाबकी संपूर्ण बुटीविषे सुंगधि व्यापक है, परंतु भासती फूलहीविषे है, तैसे चेतनसत्ता सर्व शरीरविषे व्यापक है, परंतु भासती हृदयविषे है, जो त्रिकोण निर्मल चक्र है, तहांही अहंब्रह्मका उत्थान होता है, तहांतें वृत्ति पसरीकरि पंच इंद्रियांके छिद्रतें निकसीकरि विषयकों ग्रहण करती है, तिन इंद्रियांके इष्ट अनिष्ट प्राप्तिविषे राग दोष मानता है ॥ तातें हे रामजी ! एता कष्ट प्रमाद करिके है, जब बोध होवै तब संसारभ्रम मिटि जावै ॥ हे रामजी ! वासनारूप जो संसार है, तिसका बीज अहंभाव है, प्रत्यक्ष संसारविषे फुरता है, जब इसकी अचिंतवना होवै, अरु स्वरूपविषे अहंप्रत्यय होवै, तब संसारभ्रम मिटि जावै, अरु अहंभावके शांत हुए ज्ञानवान् यंत्रीकी पुतलीवत् चेष्टा करता है ॥ हे रामजी ! जो पदार्थ सत् है, तिसका अभाव कदाचित् नहीं होता, अरु जो असत् है, सो सत् नहीं होता, यद्यपि होणेकी भावना करियें तौ भी उसका होणा नहीं, जैसे अग्निकों जाणिकरि स्पर्श करियें तौ भी जलावती है, अरु अजाणी स्पर्श करियें तौ भी जलाती है, काहेतें जो सत् है, अरु जैसे मृगजलकी भावनाकरि मरुस्थलविषे धावता है, परंतु जल नहीं पावता, काहेतें जो असत्य है, तैसे ॥ हे रामजी ! अ

हंकार जो फुरता है, सो असत्य है, भ्रमकरि सिद्ध है, विचारकरि नष्ट हो जावैगा ॥ हे रामजी! यह अहंकाररूपी कलंक उठा है, जब निरहंकार होकरि देखैं, तब मुक्तरूप है, अरु जब अहंकारसंयुक्त है, तब बंध है, तातें निरहंकार होकरि परम निर्वाणकों प्राप्त होहु, इह मेरा सिद्धांत है, परम भूमिका यही है, जैसे पूर्णमासीका चंद्रमा शोभता है, तैसे तुम ब्राह्मी लक्ष्मीकरि सोभहुगे ॥ हे रामजी! ज्ञानवानका चित्त सत्पदकों प्राप्त होता है, तातें अहंकार नहीं रहता, तिसके चित्तकी चेष्टा फलदायक नहीं होती, जैसे भूना बीज नहीं उगता, तैसे उसकों जन्म फल नहीं होता अरु अज्ञानीका चित्त जन्ममरणका कारण होता है, जैसे कच्चा बीज उगता है, तैसे अज्ञानीकी चेष्टा जन्मफल देती है ॥ हे रामजी! जेते कछु पदार्थ हैं, तिन सबतें निरास हो रहु, जो हृदयविषे अभिलाषा किसकी न फुरै, अरु न किसीका सद्भाव फुरै, पाषाणकी नांई तुमारा हृदय होवै ॥ हे रामजी! जिसका हृदय कोमल है, स्नेहसंयुक्त सो अज्ञानी है, अरु जिसका हृदय पाषाण समान है, स्नेहतें रहित, सो ज्ञानी है, तातें निर्मन निरहंकार होकरि स्थित होहु, इह भोग मिथ्या है, इनकी इच्छाविषे सुख नहीं ॥ हे रामजी! जब संसारतें उपरांत होवैगा, अरु अंतर्मुख आत्मपरायण होवैगा, तब अहंकार निवृत्त हो जावैगा, अरु आत्मा भासैगा, जैसे वसंतऋतु आती है, अरु वृक्ष प्रफुल्लित होते हैं, तब पुरातन पत्र त्यागि देते हैं, अरु नूतन हो आते हैं, तैसे जब तुम अंतर्मुख होहुगे, तब अहंकार निवृत्त हो जावैगा, अरु विभुताकों प्राप्त होहुगे, तुच्छ जो अहं प्रत्यय सो जाती रहैगी, परम निर्वाण पद पावैगे, तातें एक अहंकार संवेदनका त्याग करौ, अवर यत्न कोउ न करौ, तुमकों यही हमारा उपदेश है ॥ ॥ इति श्रीयोगवासिष्ठे निर्वाणप्रकरणे सुखेनयोगोपदेशो नाम शताधिकत्रिचत्वारिंशत्तमः सर्गः ॥ १४३ ॥ ॥ ॥ वसिष्ठ उवाच ॥ हे रामजी! यह जो वासनारूप संसार है, तिसकों तुम तरि जाहु, जैसे मंकीऋषि तऱ्या है ॥ राम उवाच ॥ हे भगवन्! मंकीऋषि किस प्रकार तऱ्या है, सो कृ

पाकरि कहौ ?॥ वसिष्ठ उवाच ॥ हे रामजी ! मंकीऋषिका वृत्तांत श्रवण कर, तिसनें महातीक्ष्ण तप कियेथे, एक समय तुमारा जो पितामह है, राजा अज, तिसनें मेरा आवाहन किया, मैं अपणे गृहविषे था आकाशमें, तब मैं राजा अजके निमित्त आकाशतें उतऱ्या मार्गविषे एक अटवी देखी, तिसविषे मानौं एकांत अनेक बनके समूह हैं, सो महाभयानक मैं शून्य देखे, तहां न कोउ मनुष्य दृष्ट आवै, न कोउ पशु दृष्ट आवै, शून्य मानौं एकांत ब्रह्म स्थान है, केतेक योजनपर्यंत मरुस्थलही दृष्ट आवै, अरु मध्यान्हका समय था, अति तीक्ष्ण धूप पडै, रेत उरुपर्यंत तपी हुई तिसविषे मैं प्रवेश किया, केई वृक्ष तहां दग्ध हुए दृष्ट आये ॥ हे रामजी ! तिस शून्य स्थलविषे एक पैंडोइ अति दुःखित आता मुझकों दृष्ट आया तिसनें यह वाक्य मुखतें निकास्या, जो हाय हाय, महाकष्ट पाया है ! जैसे किसीकों दुष्ट जन दुःख देते हैं, अरु दया नहीं करते तैसे मुझकों धूप अरु पैंडेनें जलाया है, मैं अति दुःखकों प्राप्त भया हौं ॥ हे रामजी ! ऐसे वचन कहता हुआ मेरे पासतें चल्या जावै, केता मारग आगे गया तब एक धीवरका गांउ तिसकों दृष्ट पडा, तहां गृह पांच अथवा सात थे, तिसकों देखिकरि शीघ्र चला, जो इहां मुझकों शांति प्राप्त होवैगी, मैं जलपान करौं, अरु छाया तले बैठौंगा ॥ हे रामजी ! तिसकों देखिकरि मुझकों दया उपजी, तब मैं कहा जो हे, मार्गके मीत, तूं कहां धावता है, जिनकों सुखदायी जाणिकरि तूं धावता है, सो तौ दुःखदायक हैं, जैसे मृग मरुस्थलकों नदी जाणीकरि जलपानके निमित्त धावता है, जो शांति पाउं सो अति दुःख पावता है, तैसे जिस स्थानकों तूं सुखरूप जानता है, सो दुःरूप है ॥ हे अंग ! यह जो इस गांवके वासी हैं, तिसका संग कदाचित् नहीं करणा, इनका संग दुःखरूप है, जो पुरुषविचारपूर्वक चेष्टा करता है, तिसकों दुःख नहीं होता अरु जो विचारविना चेष्टा करता है, सो दुःख पावता है, यह जो नगरवासी हैं, सो आप जलते हैं, तौ तुझकों सुख कैसे होवैंगे, जैसे कोउ पुरुष अग्निकुंडविषे जलता होवै, तिसकों कहियें, तूं मेरी तप्त शांत करु, तौ कहणेवाला

मूढ होता है, वह आप जलता है, अवरकी तप्त कैसे शांत करेगा, तैसे वह आप इंद्रियांके विषयकी तृष्णा रूपी अग्निविषे जलते हैं, सो तुझकों शांत कैसे करेंगे ? ॥ ॥ हे मार्गके मित्त! एते कष्ट होहि तौ अंगीकार करियें, परंतु अज्ञानीका संग न करियें, सो कवन दुःख होहि, जो पृथ्वीके छिद्रविषे सर्प हो रहना, अरु मरुस्थलका टुंटा मृग हो रहणा, अरु पाषाणकी शिलाविषे कीट हो रहणा, एते कष्ट अंगीकार करियें परंतु अज्ञानीका संग न करियें जिनकों इंद्रियांके सुखकी तृष्णा रहती है, सो इंद्रियांके सुख कैसे हैं, जो अपातरमणीय हैं, अर्थ यह जो जबलग इंद्रियांके विषयसाथ संयोग है, तबलग सुख है, जब वियोग हुआ, तब दुःख होता है, विषयी जनोंकी प्रीति भी विषवत् है, अरु विचारवति बुद्धिरूपी कमलिनीके नाश करणेहारी बरफ है, बहुरि इनकी संगति कैसी है, जिनके वचनरूपी पवनकरि राख उडती पास बैठणेहारेकों भी अंधकरि डारती है, तातें इन गांउवासी अज्ञानीका संग नहीं करणा, बहुरि कैसे हैं, विचारवती बुद्धिरूपी सूर्यके आवरण करणेहारे बदल हैं, जैसे वल्ली उपर अग्नि डारियें तौ जलावती है, तैसे वैराग्यकों ग्रहण करणेहारी बुद्धि है, तिसके नाश करणेहारी इनकी संगति है, तातें इनका संग नहीं करणा ॥ हे साधो! तिसका संग कर, जिसके संगकरि तेरा ताप मिटे इनके संगकरि शांति न पावेगा ॥ हे रामजी! इस प्रकार जब मैं कहा तब वह मेरे निकट आएकरि बोलत भया ॥ ॥ मंकीऋषिरुवाच ॥ हे भगवन्! तुम कवन हौ, अरु तुमारा नाम क्या है, तुमारे वचन सुणिकरि मैं शांतिकों प्राप्त भया हौं, तुम शून्य जैसे दृष्ट आते हौ, अरु सर्व करिके पूर्ण हौ, अरु तुमारा दिव्य प्रकाश मुझकों भासता है, तुम आदि पुरुष विराट हौ, के कवन हौ, तुम सुंदर दृष्ट आते हौ ॥ हे भगवन्! जो सुंदर होता है, तिसकों देखीकरि राग उपजता है, अरु चित्त क्षोभकों भी प्राप्त होता है,अरु तुम ऐसे सुंदर हौ, जो तुमारे दर्शनकरि मुझकों शांति आती जाती है, तुम दिव्य तेजकों धारे हुए दृष्ट आते हौ, जेते कछु तेजवान् हैं, देखणे नहीं देते, तिनकों तिरस्कार

करते हौं, अर्थ यह जो अवर सुंदरता तुमारे समान किसीकी नहीं, अरु तुमारा तेज हृदयकों शांति उप
जाता है, शीतल प्रकाश है॥ हे भगवन्! तुम उन्मत्तवत् घूर्मसे दृष्ट आते हौ, सो कैसी शांतिकों लेकरि
एकांतविषे स्थित हौ, अरु अपणे स्वरूप प्रकाशकी दया करते दृष्ट आते हौ, अरु पृथ्वीपर स्थित भी दृ
ष्ट आते हौ, परंतु त्रिलोकीके उपर विराजमान भासते हौ, अरु एकाएकी दृष्टि आते हौ, परंतु सर्वात्मा
हौ, अरु किंचित् अकिंचित् तुमही हौ, सर्व भाव पदार्थतें शून्य दृष्ट आते हौ, अरु सर्व पदार्थ तुमारी स
त्ताकरि प्रकाशते हैं, सर्व पदार्थके अधिष्ठान हौ; तुमारे नेत्रोंके खोलणेकरि उत्पत्ति होती है, अरु मुंदणेक
रि लय हो जाती है, तातें ईश्वर हौ, अरु सकलंक दृष्ट आते हौ, परंतु निष्कलंक हौ, अर्थ यह जो फुरणा
तुमारेविषे दृष्ट आता है, परंतु अंतरतें शून्य हौ, अरु किसी अमृतकों पायकरि तुम आए हौ अरु वडे
ऐश्वर्यकरि संपन्न दृष्ट आते हौ, तातें हे भगवन्! तुम कवन हौ, अरु जो मुझतें पूछौ तूं कवन है, तौ मैं
मांडवऋषिके कुलविषे हौं, अरु मेरा नाम मंकी है, मैं ब्राह्मण हौं, तीर्थयात्राके निमित्त निकसा था,
अरु सर्व दिशा भ्रम्या हौं, अतिभयानक स्थानोंविषे जो तीर्थ हैं, तहां भी गमन किया है, परंतु शांति मु
झकों प्राप्त न भई, ऐसी शांति कहुं न पाई जो इंद्रियांकी जलनतें रहित होइए, अब मैं गृहकों चल्या
हौं॥ हे भगवन्! अब गृहतें भी चित्त विरक्त भया है, जो यह संसारही मिथ्या है, तौ गृह किसका है,
संसारविषे सुख कहूं नहीं, अरु यह प्राण ऐसे हैं, जैसा दामिनीका चमत्कार होता है, तैसे यह संसार न
ष्ट होता दृष्ट आता है, शरीर उपजते भी हैं, अरु मिटि भी जाते हैं, दृष्टि मात्र हैं, जैसे रात्रि आती
है, बहुरि नहीं जाणते जो कहां गई॥ हे भगवन्! इस संसारकों असार जाणीकरि मैं उदासीन भया हौं,
जो अनेक जन्म पाये हैं, सो नष्ट हो गये हैं, इसी प्रकार भ्रमता फिऱ्या हौं, अब तुमारी शरणागत हौं,
अरु जानता हौं जो तुमसों मेरा कल्याण होवैगा, अरु तुम कल्याणरूप दृष्ट आते हौ, तातें कृपाकरि क

हौ जो कवन हौ ? ॥ ॥ वसिष्ठ उवाच ॥ हे मंकीऋषि ! मैं वसिष्ठ ब्राह्मण हौं, अरु मेरा गृह आकाशविषे है, मुझकों राजा अजनें स्मरण किया है, तिसनिमित्त मैं इस मार्ग गमन करता हौं, अव तुम संशय मत करौ, जो ज्ञानमार्गकों पाया है ॥ हे रामजी ! जब मैं ऐसे कहा, तब उह मेरे चरणोंपर गिरिपडा, अरु नेत्रोंतें जल चलणे लगा, जो महा आनंदकों प्राप्त भया, तव मैं कहा जो हे ऋषि ! तूं संशय मत करु, मैं तुझकों अकृत्रिम शांतिकों प्राप्त करिके गमन करौंगा, जो कछु पूछा चाहता है, सो पूछ, मैं तुझकों उपदेश करौं अरु मैं जानता हौं, तूं कल्याणकृत है, जो कछु मैं कहौंगा, सो तूं धारैगा, अब तूं कछु प्रश्न कर जो तेरे कषाय परिपक्व भये हैं, तूं मेरे वचनोंका अधिकारी है, तुझकों मैं उपदेश करौंगा, अब तूं संसारके तटकों आय प्राप्त भया है, अब तुझकों निकासणेका विलंब है, जो वैराग्यकरि पूर्ण है, सो संसारका तट वैराग्य है, तातें संशय मत करु ॥ ॥ इति श्रीयोगवासिष्ठे निर्वाणप्रकरणे मंकिऋषिपरमवैराग्यनिरूपणं नाम शताधिकचतुश्चत्वारिंशत्तमः सर्गः ॥ १४४ ॥ ॥ ॥ मंक्युवाच ॥ हे भगवन् ! अब मैं जानता हौं जो मेरा कार्य सिद्ध हुआ है, मुझकों अज्ञानकरि मोह था, तिसके नाश करणेकों तुम समर्थ दृष्ट आते हौ, मेरे हृदयका तम नाश करणेकों तुम सूर्य उदय भए हौ ॥ हे भगवन् ! यह संसार असार है, अरु लोककी बुद्धि विषयकी उरही धावती है, जहां दुःखही होता है, जैसे जल नीचे स्थानकों चला जाता है, तैसे हमारी बुद्धि नीच स्थानोंविषे धावती है, उहीं चाहती है ॥ हे भगवन् ! जेते कछु भोग हैं, तिनकों मैं भोग्या है, परंतु शांति न पाई, उलटी तृष्णा बढती गई, जैसे तृष्णा लगै अरु खारा जलपान करियें तौ तृष्णा नहीं मिटती, बढती जाती है, तैसे विषयके भोगणेकरि शांति नहीं प्राप्त होती, तृष्णा बढती जाती है ॥ हे मुनिराय ! देह जर्जरीभाव हो जाती है, अरु दंत गिरि पडते हैं, अति क्षोभ होता है, तौ भी तृष्णा नहीं मिटती, तातें अब मैं दुःखकों चाहता हौं, सुख कोउ नहीं चाहता, काहेतें जो संसारके जेते सुख हैं, तिनका परिणाम दुःख है, जो

प्रथम दुःख है, तिसका परिणाम सुख है, इसीतें दुःख चाहता हौं, संसारके सुख नहीं चाहता ॥ हे भगवन्! अपणी वासनाही दुःखदायक है, जैसे घुरायण गुफा बनायकरि तिसविषे आपही फसी मरती है, तैसे अपणी वासनाकरि आपही बंधमान होता है ॥ हे मुनी! उह काल कब हुआ है, जो अज्ञानरूपी हस्तिनें मुझकों वश किया है, अरु तिसका नाश करणेहारा ज्ञानरूपी सिद्ध कब प्रगट होवैगा, अरु कर्मरूपी तृणोंका नाशकर्ता विवेकरूपी वसंत कब प्रगटैगा, अरुवासनारूपी अंधेरी रात्रिका नाशकर्त्ता ज्ञानरूपी सूर्य कब उदय होवैगा ॥ हे भगवन्! वैताल तबलग भासता है, जबलग निशा है, जब सूर्य उदय होवैगा, तब निशा जाती रहैगी, बहुरि वैताल न भासैगा, सो अहंकाररूपी वैताल तबलग है, जबलग अज्ञानरूपी रात्रि दूर नहीं भई ॥ हे भगवन्! जब संत जनके उपदेशतें आत्मज्ञानरूपी सूर्य प्रगटै, तब अहंकाररूपी वैताल तहां नहीं विचरता, संतजनका संग अरु सच्छास्त्रोंका देखणा चांदनी रात्रिवत् है, तिनकरि जब स्वरूपका साक्षात्कार होवै, तब दिन हुआ, जबलग संतजनका संग अरु सच्छास्त्रोंका देखणा न होवै, तबलग अंधेरी रात्रि है ॥ हे भगवन्! जिसकों सच्छास्त्रका श्रवण भी होवै, बहुरि विषयकी उर भी गिरै, तौ बडा अभागी जाणिए सो मैं हौं, परंतु अब मैं तुमारी शरणकों प्राप्त भया हौं, मेरे हृदयरूपी आकाशविषे जो अज्ञानरूपी कुहिड है सो तुमारे वचनरूपी शरत्काल करिके नष्ट हो जावैगी, हृदयाकाश निर्मल होवैगा ॥ हे भगवन्! मैं त्रिदंड साधे हैं, मनकरि भी शरीरकरि भी वाणीकरि भी यह तीन तप किये हैं, दीर्घकालपर्यंत, परंतु आत्मप्रकाश नहीं हुआ, अब मैं तुमारी शरणागत हुआ तरौंगा, तातें कृपा करिके उपदेश करौ, जो मेरे हृदयका तम दूर होवै ॥

इति श्रीयोगवासिष्ठे नि॰ मंकीवैराग्ययोगो नाम शताधिकपंचचत्वारिंशत्तमः सर्गः ॥ १४५ ॥ ॥ ॥

॥ वसिष्ठ उवाच ॥ हे तात! संवेदन भावना वासना कलना यह चारौं, अनर्थके कारण हैं, जब इनका अभाव हो जावै, तब कल्याण होवै, शुद्ध चिन्मात्र पद प्रत्यक्ष चेतन अपणे आपविषे जो अहंकार उत्था

न है, सो संवेदन है, अरु भावना यह जो कछु बण्या बहुरि चेत्या अरु अपणा आप चित्त स्मरण भया, तब भ्रम मिटी जाता है,अरु जो कछु बन्या है, तिसकी भावना हुई जो मैं यह हौं,तब भावनाकरि संसार दृढ हुआ, बहुरि तैसेही वासना दृढ होती है, अपणे शरीरके अनुसार नानाप्रकारकी कलना होती है, बहुरि संसारके संकल्पविकल्प उठते हैं॥ हे ब्राह्मण! यह चतुर अनर्थके कारण हैं, जब इनका अभाव हो जावै तब कल्याण होवै, अरु जेते कछु शब्द अर्थ हैं, तिनका अधिष्ठान प्रत्यक् चेतन है, सर्व शब्द उसीके आश्रित हैं, अरु सर्व उही है, जब तूं ऐसे जाणैगा, तब वासना क्षय हो जावैगी, जब अहं संवेदन इसकों फुरती है, तब आगे संसार भासता है, जैसे वसंतऋतु आती है; तब वल्ली प्रफुल्लित होतियां हैं,तैसे जब संवेदन फुरती है, तब आगे संसार सिद्ध होता है, जब संसार हुआ तब नानाप्रकारकी वासना फुरती है, अरु संसार नहीं मिटता॥ हे अंग! संसार इसका नाम है जो संसरता है, जब संसरना मिटि जावै, तब आत्मपदही शेष रहै, सो तेरा अपणा आप है; तातें इस फुरणेकों त्यागिकरि अपणे आपविषे स्थित होहु, सर्व तेराही रूप है, जबलग वासना फुरती है, तबलग संसार दृढ हो जाता है, जैसे वृक्षकों जल दीजिये तब वढता जाता है, तैसे वासनारूपी जल देणेकरि संसाररूपी वृक्ष वृद्ध हो जाता है, तातें वासनाका नाश करो, करणा यह जो संवेदन न फुरै, जब वृक्ष जलतें रहित भया, तब आपही जलि जाता है॥ हे पुत्र! आत्माविषे जगत कछु हुआ नहीं, केवल परमार्थसत्ता है, जैसे जेवरीविषे सर्प कछु वस्तु नहीं, जेवरीके अज्ञानतें सर्प भासता हैं, तैसे आत्माके अज्ञानतें संसार भासता है, जब तूं आत्मपदकों जाणैगा, तब परमार्थसत्ताही भासैगी, जैसे बालक अपणे परछायेविषे भूत कल्पिकरि भय पावता है, जब विचारकरि देखा तब भूत कोउ नहीं, भय दूर हो जाता है, तैसे आत्माके अज्ञानकरि संसारके राग दोष जलावते हैं, अरु ज्ञानवानकों वासनासंयुक्त संसारका अभाव हो जाता है, केवल अद्वैत आत्मसत्ताही भासती है, जैसे स्वप्नतें जाग्या स्वप्नका प्रपंच वासनासंयुक्त अभाव हो जाता है,

तैसे जब आत्माका साक्षात्कार हुआ, तब वासनासंयुक्त संसारका अभाव हो जाता है, काहेतें जो है नहीं, जैसे घटादिकविषे मृत्तिकातें इतर कछु नहीं, तैसे सर्व प्रपंच चिन्मात्र स्वरूप है, इतर कछु नहीं, जेते कछु शब्द अर्थ हैं, सर्व आत्माही है ॥ हे मित्र! जो कछु आत्मातें इतर भासता है, तिसकों भ्रममात्र जाण, जैसे आकाशविषे नीलता भासती है सो भ्रममात्र है, तैसे विश्व असम्यक्दृष्टि करिके भासती है, सम्यक् दृष्टि करिके सर्व प्रपंच आत्मस्वरूप है, अरु द्रष्टा दर्शन दृश्य जो त्रिपुटी भासती है, सो भी बोधस्वरूप है, बोधही त्रिपुटीरूप होकरि स्थित होता है, जैसे स्वप्नविषे एकही अनुभव त्रिपुटीरूप हो भासता है, तैसे यह जाग्रतकी त्रिपुटी भी आत्मस्वरूप है ॥ हे अंग! जेते कछु स्थावर जंगम पदार्थ हैं, सो सर्व आत्मस्वरूप है, जो परमात्मस्वरूप न होवै, तौ भासै नहीं, द्रष्टारूप जो अनुभव करता है सो एक अद्वैतरूप है, तिस स्वरूपके प्रमादकरि भिन्न भिन्न त्रिपुटी भासती है, तौ भी इतर कछु नहीं, जैसे स्वप्नविषे त्रिपुटी अपणे अनुभवकरि भासती है, जो अनुभव न होवै तौ काहेतें भासै, तैसे यह त्रिपुटी अनुभव आत्माकरि भासती है, तातें सर्व परमात्मस्वरूप है, भिन्न कछु नहीं, जो नहीं तौ है नहीं, काहेतें जो सर्वकी एकता परमार्थ स्वरूपविषे होती है ॥ हे ऋषीश्वर! सजातीय वस्तु मिलि जाती है, जैसे जलविषे जलकी बुंद डारिएं तौ मिलि जाती है, काहेतें जो एकरूप है, तैसे बोध करिके सर्व पदार्थकी एकता भासती है, काहेतें जो द्वैतसत्ता है नहीं, जैसे स्पंद निस्पंद दोनों पवनही है, जैसे जल अरु तरंग अभेदरूप हैं, तैसे विश्व परमार्थस्वरूप है, तातें ऐसे निश्चय करो जो सर्व ब्रह्मस्वरूप है, अथवा आपकों उठाय देवहु, जो मैं नहीं, जब तूंही न हुआ, तब विश्व कहांतें होवै ॥ हे मंकीऋषि! प्रथम जो अहं होता है तौ पाछे ममत्व होता है, जो अहंही न रहैगा तौ ममत्व कहां रहैगा, इस अहंका होणाही बंधन है, इसके अभावका नाम मुक्ति है ॥ हे मित्र! इस युक्तिविषे क्या यत्न है, यह तौ अपणे आधीन है जो मैं नहीं जब अहंकारकों निवृत्त किया,

तब शेष वही रहैगा, जो सर्वका परमार्थरूप है, तिसीकों ब्रह्म कहते हैं ॥ हे मुनीश्वर! जब अहंकार फुरता है, तब नानाप्रकारकी वासना होती है, तिस वासनाके अनुसार अनेक जन्मकों पावते हैं, जो वर्णन किये नहीं जाता है, जैसे पवनकरि तृण भटकते फिरते हैं, तैसे वासना करिके जीव भटकते फिरते हैं, जब पर्वततें कंकर गिरता है,तब चोटां खाता नीचेकों चला जाता है, तैसे स्वरूपके प्रमादकरि जन्मजन्मांतर पावते चले जाते हैं, घटीयंत्रकी नांई कवहु ऊर्ध्व, कबहु अधकों जाते हैं, अपणी वासनाके अनुसार, जैसे खेनु हाथकरि ताडन किया कबहु ऊर्ध्व, कबहु अधकों जाता है ॥ हे अंग! इस संसारका बीज वासना है, जब वासना निवृत्त होवै, तब सर्वकी एकता हो जाती है, जबलग संसारकी वासना दृढ है, तबलग एकता नहीं होती, जैसे दूध अरु जल मिलता है, उनका संयोग हो जाता है, तैसे भी आत्मा अरु विश्वका संयोग नहीं, आत्मा केवल अद्वैत है, अरु सर्वका अपणा आप है, जैसे मृत्तिकाही घटादिकरूप हो भासती है, तैसे आत्मसत्ताही जगतरूप हो भासती है, तातें आत्मातें इतर कछु वस्तु नहीं ॥ हे साधो! आत्मा अरु दृश्यका संयोग कछु नहीं,काष्ठ अरु लाखवत् अथवा घट अरु आकाशवत् संयोग कछु नहीं, काहेतें जो आत्मा अद्वैत है, सर्व दृश्य बोधमात्र है ॥ हे साधो! जो जड है सो चेतन नहीं होता, अरु चेतन जड नहीं होता, तातें न कोउ जड है, न चेतन है, चेतन आत्माही भावनाकरि जड दृश्य हो भासता है, तिसके बोधकरि एक अद्वैतरूप हो जाता है, तौ जाणीता है, जो सर्व वही है, इतर कछु नहीं है, मित्र अज्ञानकरि नानाप्रकारकी विश्व भासती है, जैसे मेघकी वर्षाकरि नानाप्रकारके बीज प्रफुल्लित हो आते हैं, तैसे अहंरूपी बीजतें संसाररूपी वृक्ष वासना मुखकरि प्रफुल्लित होता है, जब अहंकाररूपी बीज नष्ट हो जावै, तब संसाररूपी वृक्ष नष्ट हो जावैगा ॥ हे अंग! जैसे वानर चपलता करता है, तैसे आत्मतत्त्वतें विमुख अहंकाररूपी वानर वासनाकरि चपलता करता है, जैसे खेनु हस्तके प्रहारकरि अध ऊर्ध्वकों उछलता है, ते

से जीव वासनाके प्रहारकरि जन्मांतरविषे भटकता फिरता है, कबहु स्वर्ग, कबहु पाताल, कबहु भूलोक विषे आता है, स्थिर कदाचित् नहीं होता, तातें वासनाका त्याग करौ, अरु आत्मपदविषे स्थित होहु ॥ हे तात ! इह संसार रात्रिका पैंडा है देखते नष्ट हो जाता है, इसकों देखी इसविषे प्रीति करणी अरु सत् जानणां यही अनर्थ है, तातें संसारकों त्यागिकारि आत्मपदविषे स्थित होहु, चित्तकी वृत्ति जो संसरती है, इसीका नाम संसार है॥ ॥ इति श्रीयोगवासिष्ठे निर्वाणप्रकरणे मंकीऋषिप्रबोधो नाम शताधिकषट्चत्वारिंशत्तमः सर्गः ॥ ॥ १४६ ॥ ॥ ॥ ॥ वसिष्ठ उवाच ॥ हे तात! यह संसारका मार्ग गहन है, इसविषे जीव भटकते हैं, यह चेतन वृत्ति जो संसरती है, यही संसार है, जब यह संसरना मिटै, तब स्वच्छ अपणा आपही स्वरूप भासै, चेतनावृत्ति जो बहिर्मुख फुरती है इसीका नाम बंधन है, अवर बंधन कोउ नहीं ॥ हे साधो ! यह जगत वासनाकरि बांधा है, जैसे वसंतऋतुकरि रस पसरता है, तैसे वासनाकरि जगत पसरता है, बडा आश्चर्य है, जो मिथ्या वासनाकरि जीव भटकते फिरते हैं, दुःखकों भोगते हैं, अरु वारंवार जन्म मृत्यु पावता है, बडा आश्चर्य है, जो वासना विषमरूप है, इसतें जीव वश हुए अविद्यमान जगतकों भ्रमकरि सत् जानते हैं॥ हे साधो ! जो इस वासनारूप संसारकों तरी गए हैं,सो धन्य हैं,वह प्रत्यक्ष चंद्रमाकी नांई हैं, जैसे चंद्रमा अमृतरूप शीतल प्रकाशवान् प्रसन्न करता है, तैसे ज्ञानी पुरुष हैं, तातें तूं धन्य है, जिसकों आत्मपद्की इच्छा हुई है ॥ हे अंग! यह संसार तृष्णाकरि जलता है, जिनकी चेष्टा तृष्णासंयुक्त है, तिनकों तूं बिल्ला जाण, जैसे बिल्ला तृष्णाकरि चूहेकों ग्रहण करता है, तैसे यह जीव भी अपणी तृष्णासंयुक्त चेष्टा करते हैं, अरु इस मनुष्यशरीरविषे यही विशेषता है,जो किसी प्रकार आत्मपद्कों प्राप्त होवै, अरु जो नरदेह पायकरि भी आत्मपद पावणेकी इच्छा न करै तौ पशुसमान है, जैसे पशु तैसे मनुष्य ॥ हे मित्र ! मूढ जीव ऐसी चेष्टा करते हैं, जो प्राणोंके अंतपर्यंत

भी तृष्णा करते रहते हैं ॥ हे अंग! ब्रह्मलोकतें आदि काष्ठपर्यंत जेते कछु इंद्रियांके विषय हैं, तिनके भोगणे करि शांति नहीं प्राप्त होती, काहेतें जो आपातरमणीय हैं, इनविषे सुख कदाचित् नहीं, जो ज्ञानवान् पुरुष हैं, तिनकों शांति ऐसी है, जैसे चंद्रमाविषे है, अरु सूर्यकी नांई प्रकाशते हैं, अरु विषयकी तृष्णा कदाचित् नहीं करते, जैसे कोउ पुरुष अमृत पानकरि तृप्त हुआ होवै, तब वह खल खाणेकी इच्छा नहीं करता, तैसे जिस पुरुषकों आनंद प्राप्त हुआ है सो विषय भोगणेकी इच्छा नहीं करता, तातें इसी वासनाका त्याग करु, अरु वासनाका बीज अहंकार है, तिसकों निवृत्त करु, जो मैं नहीं, काहेतें जो तेरा होणाही अनर्थ है ॥ हे साधो! शुद्ध चिन्मात्र निरहंकार पदविषे जो कछु तूं आपकों प्रसन्न जाणता है, जो मैं ब्राह्मण हौं, अथवा किसी प्रकृतिसाथ मिलिकरि आपकों मानता है जो मैं यह हौं, यही अनर्थ है ॥ हे ऋषि! तेरे नेत्रोंके खोलणेकरि संसार उत्पन्न होता है, अरु नेत्रोंके मुंदणेकरि नष्ट हो जाता है, सो नेत्र क्या है, अहंकारका फुरणा इसीकरि आगे विश्व सिद्ध होती है, तातें तेरा होणाही अनर्थ है ॥ हे अंग! जैसे जेवरीविषे सर्प भ्रममात्र उदय होता है, तैसे आत्माविषे अहंकार उदय हुआ है, इसीके अभावतें भय शांत होती है, जब अहंकार हुआ, तब आगे स्त्री कुटुंब धन होते हैं, सो इसकों बंधन है, इनका चमत्कार ऐसे है, जैसे दामिनीका चमत्कार क्षणविषे उदय होकरि नष्ट हो जाता है, तातें इनविषे बंधमान नहीं होणा ॥ हे अंग! जब तूं कछु बन्या, तब सब आपदा तुझे आय प्राप्त होवैगी, अरु जब तूं अपणा अभाव जाणै, तब पाछे आत्मपदही शेष रहैगा, सो परम शांतरूप है, जिसकी अपेक्षाकरि चंद्रमा भी अग्निवत् जाणता है, सो परम शून्य है, अरु सर्व पदार्थोंकी सत्ता वही है सो आकाशरूप है ॥ हे मित्र! इन मेरे वचनोंकों धार, जो मोह तेरा नष्ट हो जावै, यह विश्व कछु हुई नहीं, जैसे आकाशविषे दूसरा चंद्रमा भासता है, सो है नहीं, तैसे विश्व नहीं, आत्माके प्रमादकरि भासती है ॥ हे ऋषि! तूं तिसीकों जाण,जिसके अज्ञानकरि विश्व भासती है, अरु

जिसके ज्ञानकरि लय हो जाती है ॥ हे मंकी ! शून्यमात्र जैसे आकाश है,स्पंदमात्र जैसे पवन है, जलमात्र जैसे तरंग है, तैसे संवितमात्र जगत है, तिस संवित आकाशतें जो इतर भासता है, सो भ्रममात्र जाण, जैसे असम्यक्दृष्टि करिके जल पहाडरूप भासै, तैसे असम्यक् दृष्टिकरि जगत भासता है, अरु सम्यक् अवलोकनकरि परमार्थसत्ताही भासती है, जिसके अज्ञानकरि जो विश्व भासती है, तिसकों भी ज्ञानवान् ब्रह्म शब्दकरि कहते हैं, तिस ब्रह्मपदका अहंकारही व्यवधान है, सो ज्ञानवान्का नष्ट भया है, तातें सर्वका अधिष्ठान वही परमार्थ स्वरूप एक देखते हैं, तिसीविषे तूं एकत्र होउ, जैसे आकाश अनेक घटके संयोगकरि भिन्न भिन्न भासता है, जो घटकों फोडियें तौ सर्व एकही हो जाता है, तैसे अहंकाररूपी घट फोडियें तौ सर्व पदार्थ एकत्र हो जाते हैं ॥ हे अंग ! सर्वकी परमार्थसत्ता एक ब्रह्मपद है, सो कैसा है, अजन्मा है, अच्युत है, आनंद है, शांतरूप है, निर्विकल्प अद्वैत है, सर्वका अधिष्ठान है, तिसीविषे स्थित होहु, जो शिलावत् आत्मसत्तातें इतर कछु न फुरै, तातें निर्बोधबोध हो जावहु ॥ हे मंकीऋषि ! यह जो पदार्थ भासते हैं, दुःखके देणेहारे, ऐसे जो शब्द अर्थ है, सो आकाश फूल है, तातें शोक मत करु, जो सर्व परमार्थसत्ताही है, जैसे पुरुष निराकार है, तिसकी भावनाकरि अंगका संयोग होता है, तैसे विश्व भी इसकी भावनाकरि होती है, जैसी जैसी संसारकी भावना दृढ होती है, तैसा रूप आगे दृष्ट आता है, जो विश्व उपादानकरि हुई नहीं, तौ आरंभ परिणामकरि बन्या कछु नहीं, जैसे यह विना उपादान है तैसे श्रवण कर ॥ हे मित्र ! शुद्ध परमात्माका जो पावणा है सो साधन है, अरु विश्व उपादान है सो शब्द है, अरु आत्मा अद्वैत है सो इनका हेतु है, अरु अचिंत्य है, इसीतें विश्व निरुपादान है, स्वप्नवत्, जैसे स्वप्नसृष्टि निरुपादान होती है, तैसे जाग्रत सृष्टि भी है, अरु उपादानमृत्तिकाकरि जैसे घट कार्य बनता है, आत्मा विश्वका उपादान ऐसे भी नहीं, काहेतें जो मृत्तिका परिणामकरि घटाकार होती है, अरु आत्मा अच्युत है, जैसे भीतविना

चित्र होवै सो हैही नहीं, तातें यही विश्व आकाशविषे चित्र है, जैसे स्वप्नविषे नानाप्रकारकी विश्व आधार भीतविना चित्र होता है, तैसे यह विश्व भी आकाशविषे चित्र हुई है, इसीतें आत्मा अकर्त्ता है, अरु विश्व जो दृष्ट आती है सो निरुपादान है, तिसका शोक क्या करियें, अरु हर्ष क्या करियें यह प्रपंच सर्व आत्मरूप है, प्रमाद करिके नहीं जाणीता ॥ हे साधो! संवेदन करिके जो अहंकार फुरता है तब विश्व भासती है, जैसे स्वप्नविषे जो कछु बनता है सो अपणे स्वरूपतें भिन्न देखता है, अरु तिसविषे रागदोष भासते हैं, अरु जागे हुए अवर कछु नहीं, सब अपणाही अनुभव था, तैसे जब संवेदन उठ गई, तब सब विश्व अपणा आप हो जाती है, यह अहंकार होणाही विश्व है, जव अहंकार नाश होवै, तब सर्व शब्द अर्थ जो मैं दुःखी हौं, मैं सुखी हौं, यह नरक है, यह स्वर्ग है, इत्यादिक सब परमार्थसत्ताहीविषे फुरते हैं, सर्वका अधिष्ठान आत्मा है, तातें सर्व आत्मस्वरूप है, सो कैसा है, दृश्यतें रहित द्रष्टा है, ज्ञेयतें रहित ज्ञाता है, अरु निर्बोध बोध है, इच्छातें रहित इच्छा है, अद्वैत है, अरु नानात्व भी वही है, निराकार है, आकार भी वही है, अकिंचन है, किंचन भी वही है, अक्रिय है, अरु सर्व क्रिया वही करता है, ऐसे आत्मज्ञानकों पायकरि आत्मवेत्ता विचरते हैं, अरु जगत्का भान तिनकों किंचित् भी नहीं, जैसे स्वर्णके भूषण जलके तरंग होते हैं, तैसे सर्व विश्व तिसकों आत्मस्वरूप भासती है, ऐसे जाणीकरि सर्व चेष्टा करते हैं, जैसे यंत्रीकी पुतलीविषे संवेदन नहीं फुरती, तैसे उनकों जगत सत्यता नहीं फुरती, काहेतें जो निरहंकार भये हैं ॥ हे मंकीऋषि! जैसे स्वर्णविषे भूषण बनि आए हैं, तैसे आत्माविषे विश्व फुरि आई है, सो अहंकार फुऱ्या है, तातें इसके अभावकी भावना करु, निरहंकार होकरि चेष्टा करु, जैसे पिंघुडेविषे बालकके अंग स्वाभाविक हलते हैं, तैसे ज्ञानीकी निर्वेदन चेष्टा होती है ॥ हे ऋषी! जब तूं इस मेरे उपदेशकों धारैगा, तब सुखेनही आत्मपदकी प्राप्ति होवैगी, यह विश्व भी आत्मस्वरूपही भासैगी, जो कछु विश्व भासता है,

सो सब आत्मरूपही है ॥ हे रामजी ! जब मैं इस प्रकार कहा, तब मंकीऋषि परम निर्वाणपदकों प्राप्त भया, परम समाधिविषे स्थित होगया, सौ वर्षपर्यंत समाधि स्थित रहा सो कैसी समाधि जो शिलावत् फुरै कछु नहीं ॥ हे रामजी ! जैसे मंकीऋषि स्वरूपकों प्राप्त भया है, तैसे तुम भी स्थित होहु ॥

॥ इति श्रीयोगवासिष्ठे निर्वाणप्रकरणे मंकीऋषिनिर्वाणप्राप्तिर्नाम शताधिकसप्तचत्वारिंशत्तमः सर्गः ॥ १४७ ॥ ॥ ॥

॥ वसिष्ठ उवाच ॥ हे रामजी ! यह विश्व आत्माका चमत्कार है, सर्व उही चिन्मात्र स्वरूप है ॥ हे रामजी ! मेरा आशीर्वाद है, जो तुम चिन्मात्र स्वरूपकों प्राप्त होहु, जो तुमारा अपणा आप है, तिसकों अपणा आप जाण, तुमारे दुःख नष्ट हो जावै ॥ हे रामजी ! तुम निर्वाण शांत आत्मा होहु, अरु यथा लाभविषे संतुष्ट रहौ, अरु सत् हुआ असत्की नांई स्थित होहु, रागदोषका रंग तुमकों स्पर्श न करै, स्फटिक मणिकी नांई ॥ हे रामजी ! यह सर्व जगत एकही स्थित है, अरु वास्तवतें एकविषे कछु स्थित नहीं, आदि अंततें रहित एक चिदाकाश अपणे आपविषे स्थित है, सो शरीरादिकके नाशविषे भी अखंडरूप है, तिसका यह जगत चमत्कार है, उपजी उपजीकरि लय हो जाता है, जलतरंगवत् ॥ हे रामजी ! ध्याता ध्यान ध्येय त्रिपुटी भ्रांतिमात्र सिद्ध हुई है, अरु वास्तवतें द्रष्टा दर्शन दृश्य सर्व उहीरूप है, तिसतें इतर कछु नहीं, सब आत्मस्वरूप है, अरु सदा एकरस है, कदाचित् क्षोभकों नहीं प्राप्त होता, यद्यपि यह दशा होवै जो आमावास्याका चंद्रमा दृष्ट आवै, अरु प्रलयकालबिना प्रलयकाल वायु चलै, तौ भी आत्माकों क्षोभ नहीं होता, आत्मपद सदा ज्यौंका त्यौं है ॥ हे रामजी ! ऐसे आत्माके प्रमादकरि जीव दुःख पावते हैं, जब आत्माका प्रमाद होता है, तब इसकों प्रत्यक्ष देह इंद्रिय अपणेविषे भासती हैं, तौ भी है नहीं, जैसे वालुसों तेल नहीं निकसता, अरु आकाशविषे वन नहीं होता, चंद्रमाके मंडलविषे तप्तता नहीं होती, तैसे आत्माविषे देह इंद्रिय कदाचित् नहीं ॥ हे रामजी ! यह जीव सर्व आत्मरूप हैं, तातें इन

कों देह इंद्रियांका संबंध कछु नहीं, परंतु इनकी क्रियाविषे जो अभिमान करता है, इसीतें बंधमान होता है ॥ हे रामजी ! जैसे बेडीपर पुरुष बैठता है, तिसकों भ्रांतिकरि नदीतटके वृक्ष चलते भासते हैं, तैसे मनके भ्रमकरि आत्माविषे चित्त देह इंद्रियां भासते हैं, अरु वास्तवतें चित्त देह इंद्रियां कछु भिन्न वस्तु नहीं, यह भी आत्मस्वरूप है, तौ निषेध किसका करियें ॥ हे रामजी ! यह मन इंद्रियादिककों अपणी सत्ता कछु नहीं, भ्रांति करिके भासती है, जैसे पर्वत ऊपर उज्ज्वल मेघ होता है, तिसविषे वस्त्रबुद्धि निष्फल होती है, तैसे देहादिकविषे अहंबुद्धि निष्फल है तातें ॥ हे रामजी ! एक अखंड आत्मतत्त्व है, अवर द्वैत कछु नहीं, जब तैंनें ऐसे धारा, तव तूं निरंजन स्वरूप है ॥ हे रामजी ! यह सर्व शरीर चित्तके फुरणेविषे स्थित है, जैसे चित्तके फुरणेविषे शरीर है, तैसे जीवविषे चित्त है, तैसे परमात्माविषे जीव है ॥ हे रामजी ! इस प्रकार फुरणेमात्र दृश्य हुई तौ द्वैत तौ कछु न हुआ क्यों ? इस प्रकार विचारपूर्वक दृश्य भ्रमकों त्यागिकरि स्वरूपविषे स्थित होहु ॥ हे रामजी ! ऐसे धारीकरि सुखेन विचरहु, जो कछु चेष्टा नेतिकरि आय प्राप्त होवै तिसकों करौ, परंतु अपणा अभिमान न होवै, जब अपणा अहंभाव दूर भया, तव स्पंद होवै, अथवा निस्पंद होवै, समाधिस्थित होवै अथवा राज्य करै, स्थिति क्षोभ तुमकों दोनों तुल्य हो जावैंगे, जब अपणी अभिलाषा दूर भई तव जैसी चेष्टा आय प्राप्त होवै तैसीही होवै, उह फुरणा भी अफुर है, जैसे जलके ज्ञानतें तरंग बुदबुदे जलही भासता है, तैसे तुमकों स्पंद निस्पंद दोनों तुल्य होवैंगे, एक अद्वैत सत्ताही भान होवैगी, जैसे सम्यक्दर्शीकों तरंग अरु सोमजल एक भासता है, तैसे तुमकों भी एकही भासैगा, जीवन्मुक्त होहु, अथवा विदेहमुक्त होहु, समाधि होवै अथवा राज्य होवै, तुमकों दोनों तुल्य हैं ॥ हे रघुकुल आकाशके चंद्रमा रामजी ! इसकों अपणी अभिलाषाही बंधन करती है, जब अभिलाषा मिटी, तब कर्म करौ अथवा न करौ, बंधन कछु नहीं, काहेतें जो करणेविषे भी आत्माकों अक्रिय देख

ता है, अरु अकरणेविषे भी तैसे देखता है, द्वैतभावना तिसकी निवर्त हो जाती है, तातें तिसकों चित्त देह इंद्रियादिक सर्व पदार्थ आत्मरूपही भासते हैं ॥ हे रामजी ! मैं जानता हौं जो तुमारे हृदयका मोह निवृत्त भया है, अब तुम जागे हौ, अरु जो कछु तुमकों संशय रहा होवै तौ बहुरि प्रश्न करौ, जो मैं उत्तर देउं ॥ इति श्रीयो॰ निर्वा॰ सुखेनयोगोपदेशो नाम शताधिकाष्टचत्वारिंशत्तमः सर्गः ॥ १४८ ॥ ॥

॥ राम उवाच ॥ हे भगवन् ! एक संशय मुझकों है, तिसकों तुम निवृत्त करौ, एक कहते हैं, जो बीजतें अंकुर होता है, अरु एक कहते हैं, अंकुरतें बीज होता है; अरु एक कहते हैं, जो कछु कर्ता है, सो दैवही करता है, अरु एक कहते हैं, कर्म करते हैं, तब जन्म पावते हैं, कर्महीकरि सब कछु होता है, अवर किसीके आधीन नहीं, अरु एक कहते हैं जब देह होती है, तब कर्म करते हैं, एक कहते हैं, कर्मोंतें देह होती है, एक कहते हैं, देहतें कर्म होते हैं, इह अर्थ है, एक पुरुषप्रयत्न मानते हैं, जो जैसे है, तैसे तुम कहौ ॥ ॥ वसिष्ठ उवाच ॥ हे रामजी ! एक एक मैं तुझकों क्या कहौं, कर्मतें आदि दैवपर्यंत, अरु घटतें आदि आकाशपर्यंत जेती कछु क्रिया कर्म द्रव्य है, सो यह विकल्पजाल सब भ्रांतिमात्र है, केवल आत्मस्वरूप अपणे आपविषे स्थित है, द्वैत कछु हुआ नहीं ॥ हे रामजी ! जब संवेदन फुरती है, तब सब कछु भासता है, अरु निःसंवेदन हुए कछु नहीं, कर्म पुरुषप्रयत्न सब दैवसमेत आत्माके पर्याय हैं, जैसे शीत श्वेत आदिक बरफके पर्याय हैं, तैसे यह सर्व आत्माके पर्याय हैं, दैव पुरुष है, अरु पुरुष दैव है, कर्म देह है, अरु देह कर्म है, बीज अंकुर है, अरु अंकुर बीज है, दैव कर्म है, अरु कर्म दैव है, सो पुरुषप्रयत्न है, जो इनविषे भेद मानते हैं, सो पंडितविषे पशु हैं, काहेतें जो इनका बीज अहंकार है, जब अहंकार हुआ तब सब कछु सिद्ध हुआ, जैसे बीजतें वृक्ष होता है, फूल फल टास सर्व बीजतें होते हैं, अरु जो बीजही न होवै, तौ वृक्ष कैसे उपजै ॥ हे रामजी ! इनका बीज संवेदन है, अहंकार संकल्प संवेदन तीनों पर्याय हैं, जब फुरणा हुआ तब कर्म देह दैव सर्व सिद्ध होते हैं, जब फुरणा मिटि

गया तब कछु नहीं भासता,इसीकों ज्ञान अग्निकरि जलावहु, जो फूल फल टास जलि जावै; यह जो संवेदन फु रती है, जो मैं ही हौं, यही संसारका बीज है,ज्ञानरूपी अग्निकरि जलावहु, जब अहंकार नष्ट भया तब द्वैत कछु न भासैगा ॥ हे रामजी ! यह जो प्रपंच भासता है, तिनका बीज संवेदन है,अरु संवेदनका बीज शुद्ध संवितत त्त्व है, तिसका बीज अवर कोउ नहीं, दैव कर्म पुरुषप्रयत्न क्या है, सो श्रवण करु, आदि जो स्पंद संवेदन फुर णा हुआ है,तिसका नाम दैव है,काहेतें जो कर्मतें आदिही फुरता है,बहुरि जो आगे क्रिया करती है, सो कर्म हैं, इसीका नाम पुरुषप्रयत्न है,अरु उह जो कर्मतें आदि दैवरूप फुर्या है,सो क्या रूप है, इसीका जो प्रकृति कर्म हुआ है, तिसीका नाम दैवकरि कहते हैं, इन सर्वका बीज संवेदन है ॥ हे रामजी ! जो स्वतः पुरुष चिन्मात्र पद एकही था, जब तिसतें विकारसंयुक्त उत्थान हुवा, तब आगे प्रपंच भासणे लगा, बहुरि जब उत्थानका अभाव होवै, तब प्रपंचका भी अभाव हो जावै॥हे रामजी ! जब यह कछु बणता है, तब सर्व आपदा इसकों प्राप्त होती है, जैसे सुइ वस्त्रविषे प्रवेश करती है, तिसके पाछे तागा भी चला जाता है, अरु जो सुइ प्रवेश न करै तौ ता गा कहांतें जावै, तैसे जब अहंकार प्रवेश करता है, तब सब आपदा आती है, जब अहंकार निवृत्त भया, तब सब विश्व आनंदरूप अपणा आप भासती है, तातें अहंकारका अभाव करौ, काहेतें जो विश्व भ्रांति करि सिद्ध है, आगे कछु हुई नहीं सर्व आत्मस्वरूप है ॥ हे रामजी ! वासनामात्र विश्व है, जब वासना नष्ट होवै तब परम कल्याण है, जिस प्रकार इसकी वासना क्षय होवै सोइ युक्ति श्रेष्ठ है, जब युक्तिकरि वा सना क्षय होवैगी, तब चेष्टा भी होवैगी, परंतु बहुरि जन्मकों न देवैगी ॥ हे रामजी ! ज्ञानी अज्ञानीकी चे ष्टा तुल्य दृष्ट आती है, परंतु ज्ञानीका संकल्प दग्ध बीजवत् है, बहुरि जन्मकों नहीं देता, अरु अज्ञानी का संकल्प कच्चे बीजवत् है, बहुरि जन्म देता है, अरु वास्तव देखियें तौ न कोउ जन्मही पावता है, न कोउ मृत होता है, केवल अपणे आप भावविषे स्थित है, भ्रांति करिके भिन्न भिन्न भासते हैं, स्वरूपतें स

वे अपणाही आप है, द्वैत कछु हुआ नहीं, अरु जो भासता है, सो मिथ्या है, जैसे केलेके स्तंभविषे सार क
छु नहीं होता, तैसे प्रपंच सर्व मिथ्या है, इसविषे सार कछु नहीं, तातें इसकी वासना त्यागिकरि अपणे
आपविषे स्थित होहु ॥ हे रामजी ! जिस प्रकार तुमारी वासना निर्मूल होवै, सोइ यत्नकरि निर्मूल करौ,
तब शेष परम शिवपदही रहैगा ॥ हे रामजी ! पुरुषप्रयत्नकरि जब निरहंकार होवहुगे, तब वासना आप
ही क्षय हो जावैगी, वासना क्षयका उपाय अपणे पुरुषप्रयत्नबिना कोउ नहीं, तातें हे रामजी ! पुरुषार्थ क
रिके इसी एक देवपरायण होहु, कर्म दैव आदिक वही पुरुष होकरि भासता है, अरु कछु हुआ नहीं, जैसे
एकही पुरुष देवनका स्वांग धारे ॥ हे रामजी ! इस प्रकार विचारपूर्वक सब ईषणाकों त्यागिकरि स्वरू
पविषे स्थित होहु ॥ ॥ इति श्रीयोगवासिष्ठे निर्वाणप्रकरणे निरासयोगोपदेशो नाम शताधिकनवचत्वा
रिंशत्तमः सर्गः ॥ १४९ ॥ ॥ ॥ वसिष्ठ उवाच ॥ हे रामजी ! ज्ञानवानकी बुद्धि नि
र्मल हो जाती है, हृदयविषे शीतलता होती है, चेतन रसकरि बुद्धि पूर्ण होती है, दूसरा भान उठि जाता
है, तातें नित्य अंतर्मुखी होहु, अरु वीतराग निर्वासी होहु, चिन्मात्र निर्मल शांतरूप सर्व ब्रह्मकी भावना
करु, ब्रह्मपदकों पायकरि नेतिके अनुसार चेष्टा कर, जो हर्षका स्थान होवै, तिसविषे हर्ष करु, जो शोक
का स्थान होवै, तहां शोक करु, जैसे अज्ञानी करते हैं, तैसे कर, अरु हृदयविषे आकाशकी नांई रहु ॥ हे
रामजी ! जब इष्टकी प्राप्ति होवै, तिससाथ स्पर्श करहु, परंतु हृदयविषे तृष्णा न होवै, जब युद्ध आए
प्राप्त होवै तब शूरमा होकरि युद्ध करहु, अरु जहां दीन होवै तहां दया करहु, जो राज्य आय प्राप्त
होवै तिसकों भोगहु, जो कोउ कष्ट आय प्राप्त होवै, तिसकों भी भोगहु ॥ हे रामजी ! सब चेष्टा अ
ज्ञानीकी नांई करहु, अपणे हृदयकों कोउ जानी न सकै, अरु हृदयविषे,सदा समता रहै, इतर कछु
फुरै नहीं, रागदोषतें रहित सदा निर्मल होहु, जब तूं ऐसे निश्चयकों धारैगा, तब तुझकों खेद कछु

न होवैगा, यद्यपि बडा दुःख इंद्रका वज्र पडै तौ भी तुझकों स्पर्श न करैगा ॥ ॥ हे रामजी! तेरा रूप कैसा है, जो शस्त्रकरि छेद्या नहीं जाता, अरु अग्निकरि जलता नहीं, जलकरि गलता नहीं, पवनकरि सूकता नहीं, केवल निराकार अजर अमर है, सर्वका अपणा आप है ॥ हे रामजी! कष्ट तव होता है, जब विलक्षण वस्तु होती है, अग्नि तव जलाती है, जव भिन्न काष्ठ आदिक वस्तु होती है, अग्निकों अग्नि तौ जलाती नहीं, जलकों जल तौ गालता नहीं, तातें तूं अपणे आपविषे स्थित होहु ॥ हे रामजी! संवितरूप आलयवत् स्थिर स्थान है, तिसविषे स्थित होहु, जैसे पक्षी सर्व उरतें संकल्पकों त्यागिकरि आलयविषे स्थित होता है, तव सुख पावता है, तैसे जव तूं सर्व कलनाकों त्यागिकरि अंतर्मुख संवितविषे स्थित होवैगा, तव रागदोषरूपी धुंध कोउ न रहैगा ॥ हे रामजी! संसाररूपी समुद्र वडा प्रवाह है, तिसतें निकसणा तव होवै, जव आश्रय होवै, सो आश्रय तुझकों कहता हौं, अनुभवरूप आत्माकों आश्रयकरि संसारसमुद्रके पारकों प्राप्त होहु, तातें विलंब न करहु, अपणे आपविषे स्थित होहु ॥ हे रामजी! संसाररूपी वृक्षका अंत लिया चाहै, तौ नहीं पाइता, अरु मैं तुझकों ऐसा उपाय कहता हौं, जो सर्वका अंत कहियें सुगंधिकों ग्रहण किये, संसाररूपी एक वृक्ष है, तिसविषे चेतनमात्र सुगंधिता है, सो तेरा अपणा आप है, तिसकों ग्रहण करु, जो सर्वका अधिष्ठान है, जव तिसकों ग्रहण किया, तव सर्वकों ग्रहण किया है ॥ हे रामजी! जेता कछु प्रपंच तुमकों भासता है, सो सव आत्मरूप है, तिसकी भावना करु, अरु जाग्रतविषे सुषुप्त होहु, सुषुप्तिविषे जाग्रत होहु, संसारकी सत्ता जो जाग्रत है, तिसकी उरतें सुषुप्त होहु, सुषुप्त कहियें फुरणेतें रहित होकरि तुरीया पदविषे स्थित होहु, जहां गुणका क्षोभ कोउ नहीं, अरु निर्मल शांतिरूप है, जहां एक अरु दोकी कलना कोउ नहीं, तिसविषे स्थित होहु ॥ ॥ राम उवाच ॥ हे भगवन्! ऐसे जो शांतरूप तुरीया पदविषे स्थित होणा तुमनें कहा, सो तुमारेविषे यह नहीं फुरता,

जो मैं वसिष्ठ हौं, तिसका रूप क्या है, जो अहं प्रतीति तुमकों न होती है ॥ ॥ वाल्मीक उवाच ॥ हे भारद्वाज! जब इस प्रकार रामजीनें प्रश्न किया, तब वसिष्ठजी तूष्णी हो गये, अरु सर्व सभा संशयके समुद्रविषे मग्न भई तब रामजी बोले ॥ हे भगवन्! तूष्णी होणा तुमारा अयोग्य है, तुम साक्षात् विश्वगुरु हौ, ब्रह्मवेत्ता हौ, ऐसी कवन बात है, जो तुमकों न आवै, अथवा मुझकों समर्थ नहीं देखते सो कहौ, जब ऐसे रामजीनें कहा, तब वसिष्ठजी एक घडी उपरांत बोले ॥ ॥ वसिष्ठ उवाच ॥ हे रामजी! असमर्थता करिके मैं तूष्णी नहीं भया परंतु जैसा तेरे प्रश्नका उत्तर है, सोई दिखाया, जो तेरे प्रश्नका तूष्णीही उत्तर है, जो प्रश्न करणेवाला अज्ञान होवै तौ उसकों अज्ञान लेकरि उत्तर कहियें, अरु जो तज्ज्ञ होवै, तिसकों ज्ञानकरि उत्तर दीजियें, आगे तूं अज्ञानी था तब सविकल्प उत्तर मैं देताथा अब तूं ज्ञानवान् है, तेरे प्रश्नका उत्तर तूष्णीही है ॥ हे रामजी! जो कछु कहणां है, सो प्रतियोगीसाथ मिल्या हुआ है, प्रतियोगी बिना शब्द मैं कैसे कहौं, आगे तूं सविकल्प शब्दका अधिकारी था, अरु अब तुझकों निर्विकल्पका उपदेश किया है ॥ हे रामजी! शब्द चार प्रकारके हैं, एक सूक्ष्म अर्थका, दूसरा परमार्थका; एक अल्प है, एक दीर्घ है, सो तीन कलंक इनविषे रहते हैं, एक संशय एक प्रतियोग, एक भेद, यह तीनों कलंक शब्दविषे रहते हैं, जैसे सूर्यकी किरणाविषे त्रसरेणु रहते हैं, तैसे शब्दविषे कलंक रहते हैं, अरु जो पद मन अरु वाणीतें अतीत है, तौ कलंकित शब्द कैसे तिसकों ग्रहण करै ॥ हे रामजी! काष्ठमौन तिसकों कहते हैं, जहां न इंद्रियां फुरही, न मन फुरै, कोउ फुरणा न फुरै, सो कहियें काष्ठमौन, ऐसे पदकों मैं वाणीकरि कैसे कहौं, जेता कछु बोलणा होता है, सो सविकल्प होता है, उस तेरे प्रश्नका उत्तर तूष्णी है ॥ राम उवाच ॥ हे भगवन्! तुम कहते हौ, बोलणा सविकल्प अरु प्रतियोगीसहित होता है, जो कछु ब्रह्मविषे दूषण है, तिसका निषेध करिके कहौ, मैं प्रतियोगीकों न विचारौंगा ॥ वसिष्ठ उवाच ॥ हे रामजी! मैं चिदाकाशस्वरूप

हौं, चैत्यतें रहित चिन्मात्र हौं, अरु शातरूप हौं, सम हौं, सर्व कलनातें रहित केवल आत्मत्वमात्र हौं, अरु तूं भी चिदाकाश है, सर्व जगत् भी चिदाकाश है, अरु अहं त्वं कोउ नहीं कहणा, काहेतें जो दूसरी सत्ता कोउ नहीं, सब चिदाकाश है, अहं संवेदनतें रहित शुद्ध है, जो सापेक्षिक अहं अहं फुरती है, अरु मोक्षकी भी इच्छा होवै तौ सिद्ध नहीं होती;काहेतें जो कछु आपकों मानीकरि फुरती है, तौ एक अहंकारके केई अहंकार हो जाते हैं, यह अहं इसके गलेमें फांसी पडती है, जब अहंतातें रहित होवै, तव आत्मपदकों प्राप्त होवै ॥ हे रामजी! जब यह सबकी नाई हो जावै;कछु अपणी अहंता अभिमान न फुरै, तव संसारसमुद्रके पारकों प्राप्त होवै, अरु जब द्वैतसों मिल्या हुआ जीवता है, तबलग जन्ममरणके बंधनमें है, कदाचित् मुक्त नहीं होता, जैसे जन्मका अंध चित्रकी पुतलीकों देखि नहीं सकता, तैसे अहंतासंयुक्त मुक्तिकों नहीं प्राप्त होता; जब अहंताका अभाव होवै, तव कल्याण होवै, स्वरूपके आगे अहंताही आवरण है ॥ हे रामजी! जब यह चेतन हुआ फुऱ्या तब इसकों बंधन पडा, अरु जब जड अफुर हो जावै तब कल्याण हुआ, जब चैतन्योन्मुखत्व होता है, तब इसका नाम पशु होता है, पशुका शरीर पाया, जब चैत्यतें रहित शुद्ध चेतन प्रत्यक आत्माविषे स्थित होता है, तब मनुष्य जन्म सफल होता है, यह मनुष्य जन्म पाय जो कछु पावणा था, सो पाया ॥ हे रामजी! जब मनुष्य जन्मकों पायकरि न जाणैगा, तब अवर जन्मविषे जाणना कहां है, यह संसार चित्तके फुरणेकरि उत्पन्न हुआ है, जब चित्त संसरणेतें रहित होवै, तब केवल केवलीभाव स्वरूप भासै, ज्ञानवानकी दृष्टिविषे अब भी कछु नहीं हुआ, केवल आत्मस्वरूपही भासता है, फुरणा अफुरणा दोनों तिसकों तुल्य दिखाई देते हैं, अंतःकरणचतुष्टय आत्मस्वरूप है, अरु अज्ञानीकों भिन्न भिन्न भासते हैं, इसीतें चित्त आदिक जड हैं, अरु मिथ्या हैं, अरु आत्मस्वरूप करिके सब आत्मस्वरूप हैं, आत्मा देश काल वस्तुके परिच्छेदतें रहित है, ज्ञानीकों सर्व आत्माही भास

ता है, भावै कैसी चेष्टा करै, उह लोक धन पुत्र सर्व ईषणातें रहित है, न लोककी इच्छा करता है, जो लोक मुझकों कछु भला कहै, अरु न पुत्रधन पावणेकी इच्छा करता है, केवल आत्मअनुभवरूपाविषे स्थित है, अरु सबकों अपणा आप जानता है ॥ हे रामजी! जिस पदकों उह प्राप्त होता है, तिस पदकों मेरी वाणी कही नहीं सकती, अनिर्वाच्य पद है, अरु जो पुरुष अहं ब्रह्म अस्मि कहता है, जो मैं ब्रह्म हौं, अरु यह जगत् है, तब जाणियें जो तिसकों ज्ञान नहीं उपजा, तिसकों शास्त्र श्रवणका अधिकार है, जैसे कोउ कहै, मेरे हाथविषे दीपक है, अरु अंधकार भी मुझकों दृष्ट आता है, तब जाणिये जो इसके हाथविषे दीपक नहीं, तैसे जबलग जगत् भासता है, तबलग ज्ञान उपजा नहीं, इस जीवनें निर्वाण हो जाणा है, जब प्रत्यक् चेतनविषे स्थित हुआ, तब जड हो जावैगा; संसारकी भास कछु न रहैगी; इसी भी दृष्ट न रहैगी, जो मैं सम्यक्दर्शी हौं, केवल निर्वाण हो जावैगा ॥ हे रामजी! अब भी निर्वाणपद है, इतर हुआ कछु नहीं, किस करिके किसकों कवन उपदेश करै, केवल एकरस शून्य है, शून्य अरु आत्माविषे भेद कछु नहीं, अरु जो कछु भेद है, तिसकों ज्ञानवान् जानते हैं, अरु वाणीकी गम नहीं, तिसविषे जोअनंत संवेदन फुरती है, तिसकरि संसार फुरता है, अरु संवेदनहीकरि लीन होता है, जैसे पवनकरि अग्नि प्रज्वलित होती है, अरु पवनहीकरि लीन होता है, तैसे संवेदन बहिर्मुख फुरती है, तब संसार भासता है, अरु जब अंतर्मुख होती है, तब जगत् लीन हो जाता है, तातें संसार फुरणे मात्र है, जैसे आकाशविषे नीलता भ्रमकरि भासती है, तैसे आत्माविषे जगत् प्रमाद करिके भासता है, जगत् कछु बन्या नहीं, केवल ब्रह्मसत्ता ज्योंकी त्यों है, तिसविषे स्थित होहु, जब स्थित होवैगा, तब अशेष विशेष भाव मिटि जावैगा ॥ हे रामजी! ग्राह्य अरु ग्राहक संबंध भी जाता रहैगा, केवल जो परमात्मतत्त्व शुद्ध है, अजर अमर है, खाते पीते चलते सोवते वृत्ति तहांही रखणी ॥ ॥ इति श्रीयोगवासिष्ठे निर्वाणप्रकरणे भावनाप्र

तिपादनोपदेशो नाम शताधिकपंचाशत्तमः सर्गः ॥ १५० ॥ ॥ ॥ वसिष्ठ उवाच ॥ हे रामजी! जिस प्रकार आत्मपदकों प्राप्त होता है, सो सुण, जब निरहंकार होता है पुरुष, तब आत्मपदकों प्राप्त होता है, जो सर्वात्मा है, तिसकों आवरण करणेहारी अविद्या है, जैसे सूर्यमंडलके आगे बदल आय आच्छादि लेता है, तैसे अविद्या आत्माविषे आवरण करती है, तिस अविद्याकरि उन्मत्तकी नांई मूर्ख चेष्टा करते हैं, अरु जो अहंतातें रहित ज्ञानवान् पुरुष है, तिसकों दुःख कोउ नहीं स्पर्श कर्त्ता, संदेह भी निर्दुःख होता है, जैसे भींत उपर मूर्त्यां युद्धकी सैना लिखी होती है, सो देखणेमात्र शोभा दृष्ट आता है, परंतु उह शांतरूप हैं, तैसे ज्ञानवानकी चेष्टाविषे भी क्षोभ दृष्ट आता है, परंतु सदा अक्षोभ निर्वाणरूप है, वासनासहित दृष्ट आता है, अरु सदा निर्वासी है, जैसे जलविषे लहरीचक्र क्षोभ दृष्ट आता है, परंतु जलतें इतर कछु नहीं, तैसे ज्ञानवानकों ब्रह्मतें इतर कछु नहीं भासता, जिसके अंतरतें दृश्यभाव शांत हो गया है, बाहिर क्षोभवान् दृष्ट आता है, तौ भी मुक्तिरूप है, जैसे धुंएके बदल आकाशविषे हस्ती घोडा पहाडरूप दृष्ट आते हैं, परंतु है कछु नहीं, तैसे जगत दृष्ट आता है, परंतु है कछु नहीं, अहंकारकरि जगत् भासता है, अहंकारतें रहित निर्विकार शांतरूप होता जाता है, ऐसा जो निरहंकार आत्मपद है, तिसकों पायकरि ज्ञानवान् शोभता है, ऐसा शरत्कालका आकाश नहीं शोभता, अरु क्षीरसमुद्र भी ऐसा नहीं शोभता, अरु पूर्णमासीका चंद्रमा भी ऐसा नहीं शोभता ऐसा ज्ञानवान् पुरुष शोभता है ॥ हे रामजी! अहंताही इस पुरुषकों मल है, जब अहंता नाश होवै, तब स्वरूपकी प्राप्ति होवै, अरु संसारके पदार्थकी जो भावना थी सो निवृत्त हो जाती है, काहेतें जो भ्रम करिके उपजी थी जो वस्तु भ्रम करिके उपजी होती है, सो भ्रमके अभाव हुए तिसका भी अभाव हो जाता है, जैसे आकाशविषे धुंएका बदल नानाप्रकारके आकार हो भासता है, अरु है नहीं, तैसे यह विश्व अन होती भासती है, विचार कियेतें रहती नहीं ॥

हे रामजी ! जबलग इसकों संसारकी वासना है, तबलग बंध है, जब वासना निवृत्त हो जावै, तब आत्म पदकी प्राप्ति होवै अरु संपूर्ण कलना मिटि जावै, इंद्रियांके इष्ट अनिष्टविषे तुल्य हो जावै, यद्यपि व्यवहार कर्ता है तौ भी शांतरूप है, जैसे शब्दकों रागदोष नहीं फुरता, तैसे ज्ञानी निर्वाणपदकों प्राप्त होता है, जिस निर्वाणविषे सत् असत् शब्द कोउ नहीं, केवल ब्रह्मस्वरूप है, ब्रह्म कहणां भी उहां नहीं रहता, केवल आत्मत्व मात्र है, अरु अद्वैत है ॥ हे रामजी ! विश्व भी उहीरूप है, चेतन आकाश है, जैसी जैसी भावना होती है, तैसा तैसा चेतन होकरि भासता है, जब जगतकी भावना होती है, तब नानाप्रकारके आकार दृष्ट आते हैं, अरु जब ब्रह्मकी भावना होती है, तब ब्रह्म भासता है, जैसे विषविषे अमृतकी भावना होती है, अरु विधिसंयुक्त खाते हैं, तब विष भी अमृत हो जाती है, अरु जो विधिविना खाइएं तौ मृतक होता है, तैसे जब इस संसारकों विधिसंयुक्त देखियें, अर्थ इह जो विचारकरि देखियें तौ ब्रह्मस्वरूप भासता है, अरु जो विचारविना देखिये तौ जगतरूप भासता है, सो विचार तब होता है, जब अहंकार निवर्त्त होता है, अरु अहंकार आकाशविषे उपजा है, अरु आकाश शून्यताविषे उपजा है, अरु शून्यता आत्माके प्रमादकरि उपजी है, बहुरि अहंकारतें जगत हुआ है, अरु अहंकार मिथ्या है ॥ हे रामजी ! शरीर आदिक चित्तपर्यंत विचारी देखियें तो दृष्ट कहूं नहीं आते, इनविषे जो अहंप्रत्यय है सो भ्रांतिमात्र है, जब तूं विचारि देखैगा, तब मरीचिकाके जलवत भासैगा ॥ हे रामजी ! इस प्रपंचके त्यागणेविषे यत्न कछु नहीं, जैसे स्वप्नके पर्वतका त्यागणा यत्न कछु नहीं, तैसे मिथ्या संसारके त्यागणेविषे यत्न कछु नहीं, बहुरि इसका निर्णय क्या करियें, जो हैही नहीं, जैसे वंध्याके पुत्रकी वाणी विचारियें जो सत्य कहता है, अथवा असत्य कहता है, सो मिथ्या कल्पना है, वंध्याका पुत्र है नहीं तौ तिसका विचार क्या करियें, तैसे प्रपंच है नहीं, इसका निर्णय क्या करियें, तातें तुम ऐसे करो जैसे मैं कहता हौं, तब आत्मपदकी प्राप्ति होवै ॥ हे रा

मजी! ऐसी भावना करु जो न मैं हौं न जगत है, जब अहंकार न रहा तब कलना कहां होवै, इसका हो णाही अनर्थ है, जब ऐसे विचार उत्पन्न होता है, तब भोगकी वासना क्षय हो जाती है, अरु संतकी संगति होती है, अन्यथा भोगकी वासना नष्ट नहीं होती ॥ हे रामजी! जबलग इसकों अहंता उठती है, अर्थ यह जो दृश्य प्रकृतिसाथ मिलाप है, तबलग द्वैतभ्रम नहीं मिटता, जब अहंका उत्थान मिटि जावै, तब शुद्ध चिन्मात्र आत्मसत्ताही रहै ॥ इति श्रीयोगवासिष्ठे निर्वाणप्रकरणे हंससंन्यासयोगो नाम शताधिकएकपंचाशत्तमः सर्गः ॥ १५१ ॥ ॥ वसिष्ठ उवाच ॥ हे रामजी! जब अहंताका उत्थान होता है, तब स्वरूपका आवरण होता है, अरु जब अहंता मिटि जावै, तब स्वरूपकी प्राप्ति होती है, इस संसारका बीज अहंताही है सो अहंकारही मिथ्या है, तिसका कार्य सत्य कैसे होवै, जो प्रपंच मिथ्या हुआ, तौ पदार्थ कहांतें सत् होवै॥ हे रामजी! ऐसा जो ब्रह्म है, तिसकी युक्ति क्या है, जो संकल्पपुरुष भी असत्य है, अरु तिसका संशय भी मिथ्या है, अरु जिसप्रति प्रश्न करता है सो भी मिथ्या है, जैसे स्वप्नविषे द्वैतकलना होती है, सो असत् है, तैसे यह जगत द्वैत भी असत्य है ॥ हे रामजी! इह सब जगत इसके अंतर स्थित है, अरु प्रमादकरि बाहिर भासता है, इह अपनाही स्वप्न दृष्ट आता है, जो अंतरकी बाह्य सृष्टि भासती है, तातें इह जगत सब चिद्रूप है, इतर कछु नहीं, सो चेतनसत्ता आकाशतें भी अति सूक्ष्म है, अरु स्वच्छ है ॥ हे रामजी! इह जगत चित्तकरि चेत्या है, तातें कहूं हुआ नहीं, न किसीका नाश होता है, न उत्पन्न होता है, न किसीका कहूं जन्म है, न मृत्यु है, सर्व ब्रह्मही है ॥ हे रामजी! जगतकेनाश हुए कछु नाश नहीं होता, काहेतें जो हुआ कछु नहीं, जैसे स्वप्नके पहाड नष्ट हुए, जैसे संकल्प पुर नष्ट हुए, क्या नष्ट हुआ जो कछु उपजे नहीं तौ, तैसे इह जगत है, कछु हुआ नहीं, इह विचारकरि देख्या है, जो वस्तु अविचारतें उपजी होवै सो विचारकरि कैसे रहै, जैसे जो पदार्थ तमतें उपजा होवै, सो प्रकाश हुए कैसे रहै, तैसे यह जगत है, अविचारकरि भासता है,

विचार करेतें नाश हो जाता है ॥ हे रामजी! यह जगत संकल्पहीमात्र है, जैसे संकल्प नगर होता है, तैसे यह संसार है, इसविषे कोउ पदार्थ सत्य नहीं, तातें रूप अरु इंद्रियां अरु मनके अभावकी चिंतवना करणी, इह संसार ऐसा है, जैसे समुद्रविषे चक्र है नहीं, जलही है, तिसविषे प्रीति भावना करणी अज्ञान है ॥ हे रामजी! एक ऐसे हैं, जो बाह्यतें शांतरूप दृष्ट आते हैं, अरु अंतर उनके क्षोभ होता है, अरु एक ऐसे हैं, जो अंतरतें शीतल है, बाह्य नानाप्रकारकी चेष्टा करते हैं, जिनके दोनों मिटि जाते हैं, सो मोक्षके भागी होते हैं, तिनके अंतर बाहिर एकता होती है, जैसे समुद्रविषे घट भरि राखियें, तिसके अंतर बाहिर जल होता है ॥ हे रामजी! जिस पुरुषनें ज्यौंका त्यौं जाण्या है, आत्माकों तिसकों न भय होता है, न शोक होता है, न मोह होता है, केवल स्वच्छरूप शांत आत्माविषे स्थित है, भय तब होता है, जब दूसरा भासता है, सो सर्व द्वैतका तिसके अभाव हो जाता है, अरु शांतरूप होता है ॥ हे रामजी! सम्यक्‌दर्शीकों जगत दुःख नहीं देता अरु असम्यक्‌दर्शीकों दुःख देता है, जैसे जेवरी होती है, जो जानता है, तिसको जेवरी भासती है, अरु जो नहीं जानता तिसकों सर्प भासता है, अरु भयकों प्राप्त होता है, तैसे जिसकों आत्माका साक्षात्कार है, तिसकों जगतकल्पना कोउ नहीं भासती, चिदानंद ब्रह्म अधिष्ठानरूप भासता है, अरु जिसकों अधिष्ठानका अज्ञान है, तिसकों जगत द्वैतरूप होकरि भासता है, अरु राग दोषविषे जलता है ॥ हे रामजी! अवर जगत कोउ नहीं, इसके अनुभवविषे जगत कल्पना होती है, अज्ञान करिके द्वैतरूप हो भासता है, जब अपणे स्वभावसत्ताविषे जागता है, तब सब अपणां आप भासता है, जैसे स्वप्नविषे अपणा आपही द्वैतरूप हो भासता है, अरु राग दोष उपजता है, जब जागता है, तब सब आत्मरूप हो भासता है, तैसे यह जगत है, न इस जगतका कोउ निमित्त कारण है, न कोउ उपादान कारण है, जो पदार्थ कारणविना भासै सो असत् जाणिएं, वास्तव उपज्या नहीं, भ्रमकरि सिद्ध

हुआ है, जैसे स्वप्नसृष्टि अकारण है, तैसे यह जगत अकारण है, भ्रम करिके भासता है, ॥ हे रामजी! शास्त्रकी युक्तिसाथ विचार करिके देख जो द्वैतभ्रम मिटि जावै, रंचकमात्र भी कछु बन्या नहीं, जैसे आकाशविषे नीलता कछु बनी नहीं, अरु मरुस्थलकी नदी भासती है तैसे यह जगत भी जाण, आत्मा शुद्ध है, अद्वैत है, तिसविषे अहंकृतका फुरणाही दुःख है, अरु दुःखका कारण है, अरु जो स्वरूपका प्रमाद न होवै तौ अहंकृत भी दुःखका कारण नहीं, अरु जो स्वरूप भूला है, तौ अहंकृतादिक दृश्य विषकी वल्ली बढती जाती है, अरु नानाप्रकारके आकारकों धारती है, अरु वासना दृढ होती है, जवलग वासना होती है, तबलग बंध है, जब वासना निवृत्त होवै, तबही कल्याण होता है ॥ हे रामजी! जिस दृश्यकी भावना करता है, सो दृश्य भी कछु भिन्न नहीं, जैसे समुद्रविषे तरंग चक्र होते हैं, सो इतर कछु नहीं, तैसे अहंकार आदिक जो दृश्य है सो है नहीं, जो है नहीं तिसकी इच्छा करणी यही मूर्खता है, अरु ज्ञानवानकी वासना क्षय हो जाती है, जैसे महा अणु होता है, तब आकाशकों ग्रहण करता है, जो आकाशवत् वहुत सूक्ष्म होता है, तैसे ज्ञानवानकी वासना सूक्ष्म होती है, उह वासना उसके बंधनका कारण नहीं होती, काहेतें जो संसारकी सत्यता हृदयविषे नहीं रहती, अरु सत्यता इसकरि नहीं रहती, जो आत्माका साक्षात्कार हुआ है, अरु जव आत्माका प्रमाद है, तब अहंता उदय होती है अरु दृश्य भासती है, जैसे नेत्रके खोलणेकरि दृश्यका ग्रहण करता है, जब नेत्र मुंदि लिये, तब दृश्यरूपका अभाव हो जाता है, तैसे जब अहंता उदय होती है, तब दृश्य भी होती है, जब अहंता नष्ट भई, तब संसारका अभाव हो जाता है ॥ हे रामजी! अज्ञान किसका नाम है, सो सुण, अहंताका उदय होणां, इसीका नाम अज्ञान है, अहंता करिके बंध है, अहंतातें रहित मोक्ष है, आगे जो इच्छा होवै सो करहु ॥ हे रामजी! देह इंद्रियादिक मृगतृष्णाके जलवत् हैं, इनविषे अहंता करणी मूर्खता है, अरु ज्ञानवान् अहंताकों त्यागिकरि आत्मपदविषे स्थित होता है,

संसारके इष्ट अनिष्टविषे हर्ष शोक नहीं करता, जैसे आकाशविषे बदल हुए तौ भी ज्यौंका त्यौं है, तैसे ज्ञानी ज्यौंका त्यौं है, इनविषे अहंकार नहीं, तातें सुखरूप है ॥ हे रामजी ! रूप दृश्य अरु इंद्रियां अरु मन उसके जाते रहते हैं, जैसे वंध्याके पुत्रकी नृत्य नहीं होती, तैसे ज्ञानीके रूप अवलोकन मनस्कार नष्ट हो गये हैं, काहेतें जो सर्व ब्रह्म तिसकों भासता है, द्वैत भावना नष्ट हो गई है, अरु संसारका बीज अहंता ज्ञानीविषे दृढ है ॥ हे रामजी ! अहंता करिके इसकी बुद्धि बुरी हो गई है, अर्थ यह जो स्थूल हो गई है, तातें दुःख पावता है, इस दुःखके नाशका उपाय कहता हौं तूं सुण, जो संतजनके वचनोंविषे भावना करणी, अरु विचार करिके हृदयविषे धारणी, इसकरि अहंतारूपी दुःख नष्ट हो जाता है, अरु संतके वचनोंका निषेध करणा इसकों मुक्तिफलके नाश करणेहारा है, अरु अहंतारूपी वैतालके उपजावणे हारा है, तातें संतकी शरणकों प्राप्त होहु, अहंताकों दूर करहु, इसविषे खेद कछु नहीं, यह अपणे आधीन है, अपणा अभाव चिंतवना इसविषे क्या खेद है ॥ हे रामजी ! संतकी संगती द्वारा इसकों बहुत सुगम होता है, जो ज्ञानवान् होवै, इनकी पृथक् पृथक् सेवा करणी, अरु बुद्धिकों बढावणी, तिनके वाक्य श्रवण करिके वचनोंकों एकठा करणा, अरु विचार करिके बुद्धिकों तीक्ष्ण करणी, बुद्धि जब तीक्ष्ण होवैगी, तब अहंतारूपी विषकी वल्लीका नाश करैगी, यह विचार करियें जो मैं कवन हौं, यह जगत क्या है, जब ऐसा विचार करैगा, संत अरु शास्त्रोंके वचनोंकरि निर्णय कियेतें सत् है, सो सत् होता है, अरु असत् है, सो असत् हो जाता है, सत् जाणीकरि आत्माकी भावना करणी, अरु असत् जगत मृगतृष्णाके जलवत् जाणीकरि भावना त्यागणी, जिनकों सुख जाणीकरि भावना पावणेकी करता था, सो दुःखदाई भासते हैं, जैसे मरुस्थलविषे जाणीकरि मृग दौडता है, तौ दुःख पावता है, अधिष्ठानके अज्ञान करिके तैसे अधिष्ठान सबका आत्मतत्त्व है, सो शुद्धरूप परम शांत परमानंद स्वरूप है, जिसकों पायकरि बहुरि दुःखी न होवै ॥ हे रामजी ! इसकों

बंधनका कारण भोगकी वासना है, सो भोगकरि शांति नहीं होती, जब संतकी संगती होती है, तब इस का कल्याण होता है, अनात्मविषे अहंभाव छूटि जाता है,अवर प्रकार शांति नहीं होती ॥ हे रामजी ! बालककी नांई हमारे वचन नहीं, हमारा कहणा यथार्थ है, काहेतें जो स्वरूपका भान हमकों स्पष्ट है, जब इसकी अहंता मिटि जावै, तब सुखी होवै, तातें अहंताका नाश करहु, अहंता नाश हुई तब जाणियें जो चैत्यकी भावना मिटि जाती है ॥ हे रामजी ! जब ज्ञानरूपी सूर्य उदय होता है, तब अहंतारूपी अंधकार नष्ट हो जाता है, अरु ज्ञान तब होता है, जब संतका विचार प्राप्त होवै, विषयतें वैराग्य होवै, अरु स्वरूपका अभ्यास करै, इसीकरि स्वरूपकी प्राप्ति होती है ॥ ॥ इति श्रीयोगवासिष्ठे निर्वाणप्रकरणे निर्वाणयुक्त्युपदेशो नाम शताधिकद्विपंचाशत्तमः सर्गः ॥ १५२ ॥ ॥ ॥ ॥ वसिष्ठ उवाच ॥ हे रामजी ! जिन पुरुषनें अपणां अज्ञान नाश नहीं किया, ज्ञानकरिके तिननें कछु करणे योग्य नहीं किया, अज्ञान करिके इसकों अहंभावना होती है, तब आगे जगत भासता है, अरु लोक परलोककी भावना करता है, इसी वासनाकरि जन्म मरणकों पावता है ॥ हे रामजी ! जबलग संसारका शब्द अर्थ इसके हृदयमें दृढ है, तबलग शब्द अर्थके अभावकी चिंतवना करै, जहां इसकों जगत भासता है, तहां ब्रह्मकी भावना करै, जब ब्रह्म भावना करैगा, तब संसारके शब्द अर्थतें रहित होवैगा, अरु आत्मपद भासैगा ॥ हे रामजी ! इस संसारविषे दो पदार्थ हैं, एक इह लोक, दूसरा परलोक, अज्ञानी इस लोकका उद्यम करते हैं, परलोकका नहीं करते, तातें दुःख पावते हैं, अरु तृष्णा मिटती नहीं, अरु जो विचारवान् पुरुष है, सो परलोकका उद्यम करते हैं, सो इहांही शोभा पावते हैं, अरु परलोकविषे भी सुख दुःख पावते हैं, अरु दोनों लोकके कष्ट तिनके मिटि जाते हैं, अरु जो इसी लोकका उद्यम करते हैं, तिनकों दोनोंही दुःखदायक होते हैं, इहां तृष्णा नहीं मिटती, अरु आगे जायकरि नरक भोगते हैं, अरु जिन पुरुषनें आत्म परलोकका

यत्न किया है, तिनकों उही सिद्ध होता है, अरु सुखी होते हैं, अरु जिनने नहीं, यत्न किया सो दुःखी होते हैं, तातें अहंकारसों रहित होणा यही आत्मपदकी प्राप्ति है, जबलग इसकों परिच्छिन्न अहंकार उपजता है, तबलग दुःखी होता है, अरु नाम इसका जीव है, जो कछु फुरता है, तिसकरि विश्वकी उत्पत्ति होती है, जैसे नेत्रके खोलणेकरि रूप भासता है, अरु नेत्रके मुंदणेकरि रूपका अभाव हो जाता है, तैसे जब अहंता फुरती है, तब दृश्य भासती है, अरु जब अहंताका अभाव होवै, तब दृश्यका अभाव हो जाता है, सो अहंता अज्ञानकरि सिद्ध होती है, ज्ञानके उपजेतें निवृत्त हो जाती है ॥ हे रामजी! जब यह पुरुष अपणा प्रयत्न करै, अरु साथही सत् संग करै, इसकरि संसारसमुद्र उतरी जावैगा, इतर नहीं तरता ॥ हे रामजी! युक्ति करिके जैसे विष भी अमृत हो जाती है, तैसे पुरुषार्थकरि सिद्धता प्राप्ति होती है ॥ हे रामजी! इस जीवकों दो व्याधि रोग हैं, इस लोकका, परलोकका, तिसकरि जीव दुःख पावते हैं, जिन पुरुषनें संतसाथ मिलापकरि इसका औषध किया है, सो मुक्तरूप है, अरु जिनने औषध नहीं किया, सो पुरुष पंडित है, तौ भी दुःख पावता है, सो औषध क्या है, शम दम करणा, अरु सतसंग करणा, इन साधनकरि यत्नकरि जिननें आत्मपद पाया है, सो कल्याण मूर्ति है ॥ हे रामजी! चिकित्साका औषध भी यही है, जिननें किया, तिनने किया अरु जिननें न किया, भोगविषे लंपट रहे, उह मूर्ख तहां पडैंगे, जहां फेर किसी औषधकों न पावैंगे, तातें ॥ हे रामजी! इन भोगका त्याग करहु, अरु आत्मविचारविषे सावधान होवहु, यही औषध है ॥ हे रामजी! जिस पुरुषनें मन नहीं जीत्या, सो मूढ है, भोगरूपी चीकडविषे मग्न है, उह आपदाका पात्र है, जैसे समुद्रविषे नदियां प्रवेश करतियां हैं, तैसे आपदा तिसकों प्राप्त होती है, अरु जिसकी तृष्णा भोगतें निवृत्त भई है, अरु वैराग्य उपजा है, सो मुक्ति योगकों प्राप्त होता है, जैसे जीणेकी आदि बालक अवस्था है, तैसे निर्वाण पदकी आदि वैराग्य है ॥ हे रामजी! यह संसार

मिथ्या है, भ्रमकरि भासता है, जैसे दूसरा चंद्रमा भ्रमकरि भासता है, अरु संकल्प नगर भ्रममात्र होता है, अरु मृगतृष्णाका जल भ्रमकरि भासता है, तैसे यह जगत भ्रमकरि भासता है, संसारका बीज अहंता है, जब अहंता उदय हुई तब रूप अवलोक भासते हैं, तातें यही चिंतवना कर जो मैं नहीं, जब येहि भावना करैगा, तब शेष जो रहैगा, सो तेरा शांतरूप है, जिसविषे आकाश भी शून्य है; केवल आत्मत्वमात्र है, अहंके उत्थानतें रहित है, अरु जड अजड है, अरु जडताका अभाव है, तातें अजड है, केवल ज्ञानमात्र है, अरु विश्व तिसविषे ऐसे है, जैसे जलविषे तरंग होते हैं, अरु जैसे पवनविषे स्पंद होता है, अरु आकाशविषे जैसे शून्यता है, तैसे आत्माविषे जगत है, सो आत्मातें इतर कछु नहीं, जो कछु आत्मातें इतर होता, तौ प्रलयविषे नाश हो जाता सो प्रलयकालविषे भी रहता है, जैसे सूर्यकी किरणविषे जलाभास सदा रहता है, तैसे आत्माविषे विश्वका चमत्कार रहता है, जैसे स्वप्न सृष्टि अनुभव होती है, तैसे यह जागृत सृष्टि भी अनुभवरूप है, सो आत्मा अंतर बाहिरतें रहित है, अरु शुद्ध है, अद्वैत है, अजर है, अमर है, चैत्यतें रहित चेतन है, अरु सर्व शब्द अर्थका अधिष्ठान उही है, फुरणे करिके दूसरा भासता है, अरु फुरणा अफुरणा उही है, जैसे चलणा ठहरणा दोनों पवनके रूप हैं, जब चलता है, तब भासता है, जब ठहरता है, तब नहीं भासता, तैसे जब चित्तशक्ति फुरती है, तब विश्वरूप होकरि भासती है, जब अफुर होती है, तब केवलमात्र पद रहता है, सो निराभास है, अविनाशी अरु निर्विकल्प है, अरु सबका अपणां आप है, अरु सत् असत् जड चेतन आदिक शब्द अर्थ सब उसी अधिष्ठान सत्ताविषे फुरते हैं, इतर कछु नहीं, तातें उसी अपणे स्वरूपविषे स्थित होहु, जो परमार्थ सत्ता आत्मतत्त्व अपणे स्वभावविषे स्थित है, अहं त्वंतें रहित केवल आकाशरूप सबका अधिष्ठान है, तिसीविषे स्थित होहु ॥ ॥ इति श्रीयोगवासिष्ठे निर्वाणप्रकरणे शांतिस्थितियोगोपदेशो नाम शताधिकत्रिपंचाशत्तमः सर्गः ॥ १५३ ॥ ॥ ॥ वसिष्ठ उवाच ॥

हे रामजी! जिनकों दुःख सुख चलावते हैं, इंद्रियके इष्टविषे सुखी होते हैं, अरु अनिष्टविषे दुःखी होते हैं, राग दोषके आधीन वर्त्तते हैं, तिनकों ऐसे जाण जो नष्ट हुए हैं, जिनका पुरुषप्रयत्न नष्ट हुआ है, सो वारंवार जन्मकों पावैंगे, अरु जिनकों सुख दुःख नहीं चलावते, तिनकों अविनाशी जाण, वह जन्ममरणके फांसेतें मुक्त हुए हैं, तिनकों शास्त्रका उपदेश नहीं है॥ हे रामजी! राग दोष तब फुरता है, जब मनविषे इच्छा होती है, अरु इच्छा तब होती है, जब संसारकी सत्यता दृढ होती है, जिसकों असत्य जाणता है तिसकों बुद्धि नहीं ग्रहण करती, अरु इच्छा भी नहीं होती, अरु जिसकों सत्य जाणता है, तिसविषे बुद्धि दौडती है॥ हे रामजी! अज्ञानीकों संसार सत्य भासता है, तिसकरि दुःख पावता है, जब शांतपदका यत्न करै, तब दुःखतें मुक्त होवै, शांतपद कैसा है, जिसविषे अहं त्वं अरु जगत ब्रह्म इह शब्द कोउ नहीं, केवल चिन्मात्र आकाशरूप है, तिसविषे अहं त्वं जगत ब्रह्म शब्द कैसे होवै, यह शब्द सब विचारके निमित्त कहे हैं, वास्तवतें शब्द कोउ नहीं, अद्वैत चैत्यतें रहित चिन्मात्र है, जब सर्व शब्दका बोध किया, तब शेष शांतपद रहता है, अभावतें नहीं, इसीतें आत्मत्वमात्र कहा है, अरु जगत फुरणेकरि उसीविषे भासता है, तिस जगतविषे जहां ज्ञप्ति जाती है, तिसका ज्ञान इसकों होता है॥ हे रामजी! एक अधिष्ठान ज्ञान है, अरु एक ज्ञप्तिज्ञान है, अधिष्ठानज्ञान सर्वज्ञ है, सो ईश्वरकों है, अरु ज्ञप्तिज्ञान जीवकों है, एक लिंगशरीरका जिसकों अभिमान है, सो जीव है, अरु सर्व लिंगशरीरका अभिमानी ईश्वर है, जहां इस जीवकी ज्ञप्ति पहुंचती है, तिसकों जानता है, जैसे एक शय्यापर दो पुरुष सोय होवैं, एककों स्वप्न आया तिसविषे मेघ गर्जते हैं, अरु दूसरा सोया है तिसकों मेघका शब्द सुणीता नहीं, काहेतें जो ज्ञप्ति उसकेविषे नहीं आई, परंतु मेघ तौ उसके स्वप्नमें है, जैसे सिद्ध विचरते हैं, अरु इसकों दृष्ट नहीं आते, काहेतें जो इसकी ज्ञप्ति नहीं जाती, अरु सब सृष्टि वसती है, तिसका ज्ञान ईश्वरकों है, सो सृष्टि भी संकल्पमात्र है,

कछु बनी नहीं, भ्रम करिके भासती है, जैसे बदलविषे हस्ति घोडा मनुष्य आदिक विकार भासते हैं, सो भ्रांति मात्र है, तैसे आत्माके अज्ञानकरि यह सृष्टि भासती है, नानाप्रकारकी ॥ हे रामजी ! यह आश्चर्य है, जो आत्माविषे अहंका उत्थान होता है, जो मैं हौं, ऐसे जानता है, अरु वर्णाश्रम अपणेकों मानता है, अरु विचारकरि देखियें तौ अहं कछु वस्तु नहीं सिद्ध होती, अरु अहं अहं फुरती है, यह आश्चर्य है, जो भूत कहांतें उठ्या है, शुद्ध आत्मब्रह्मविषे यह कैसे हुआ है, अनहोते अहंकारनें तुमकों मोहित किया है, इसके त्यागणेविषे तौ यत्न कछु नहीं, इसका त्याग करहु ॥ हे रामजी ! मिथ्या यह संकल्प उठा है, जब अहंकारका उत्थान होता है, तब जगत होता है, जब अहंता मिटि जावे, तब जगतका भी अभाव हो जाता है, काहेतें जो बन्या कछु नहीं भ्रममात्र है, जैसे संकल्प नगर भ्रममात्र है, अरु स्वप्नसृष्टि भ्रम मात्र है, तैसे यह विश्व भी भ्रममात्र है, कछु बनी नहीं, अरु आत्मत्वरूप है, इतर कछु नहीं, जैसे पवन के दो रूप हैं, चलता है, तौ भी पवन है, ठहरता है, तौ भी पवन है, तैसे विश्व भी आत्मस्वरूप है, जैसे पवन चलता है, तब भासता है, अरु ठहरि जाता है, तब नहीं भासता, तैसे चित्त चैत्यशक्तिका चमत्कार है, जब फुरता है, तब विश्व भासती है, तौ भी चिद्घन है, जब ठहरि जाता है, तब विश्व नहीं भासती, परंतु आत्मा सदा एकरस है, जैसे जलविषे तरंग होते हैं, जैसे सुवर्णविषे भूषण होते हैं, सो इतर कछु हुआ नहीं, तैसे आत्माविषे विश्व इतर कछु हुई नहीं, आत्मस्वरूप है, ज्ञप्ति भी ब्रह्म है, अरु ज्ञप्तिविषे फुरी विश्व भी ब्रह्म है, विधिनिषेध अरु हर्षशोक किसका करियें, सर्व उही है ॥ हे रामजी ! संकल्पकों स्थित करिके देख, जो सब तेराही स्वरूप है, जैसे पुरुष शयन करता है, उसकों स्वप्न सृष्टि भासती है, जब जागता है, तब देखता है, सब मेराही स्वरूप है, तैसे जाग्रत विश्व भी तेरा स्वरूप है, जैसे समुद्रविषे तरंग उठतें हैं, सो जलरूप हैं, तैसे विश्व आत्मस्वरूप है, जैसे चितेरा काष्ठविषे कल्पता है, जो एती पुतलियां नि

कसैगियां, अरु जैसे मृत्तिकाविषे कुंभार घटादिक कल्पता है, जो एते पात्र बनैंगे, काष्ठ मृत्तिकाविषे तौ कछु नहीं, ज्यौंका त्यौं काष्ठ है, अरु ज्यौंकी त्यौं मृत्तिका है, परंतु उनके मनविषे आकारकी कल्पना है, तैसे आत्माविषे संसाररूपी पुतलियां मन कल्पता है, जब मनका संकल्प निवृत्त हो जावै, तब ज्यौंका त्यौं आत्मपद भासै, जैसे तरंग जलरूप हैं, जिसकों जलका ज्ञान है, सो तरंग भी जलरूप जानता है, अरु जिसकों जलका ज्ञान नहीं, सो भिन्न भिन्न तरंगके आकार देखता है, तैसे जब निःसंकल्प होकरि स्वरूपकों देखै, तब फुरणेविषे भी आत्मसत्ता भासैगी, अहं त्वं आदिक सब जगत ब्रह्मस्वरूपही है, तौ भ्रम कैसे होवै, अरु किसकों होवै, सब विश्व आत्मस्वरूप है, सो आत्मा निरालंब है, आलंबरूप जो चैत्य है अहंकार, तिसतें रहित है, केवल आकाशरूप है, जब तूं तिसविषे स्थित होवैगा, तब नानाप्रकारकी भावना मिटि जावैगी, नानाप्रकारकी भावना जगतविषे फुरती है, अरु जगतका बीज अहंता है, जब अहंता नाश होवै, तब जगतका भी अभाव हो जावैगा ॥ हे रामजी ! अहंताका फुरणाही बंधन है, अरु निरहंकार होणा मोक्ष है, एक चित्तबोध है, अरु एक ब्रह्मबोध है, चित्तबोध जगत है, अरु ब्रह्मबोध मोक्ष है, चित्तबोध अहंताका नाम है, जबलग चित्तबोध फुरता है, तबलग संसार है, अरु जब चित्तका अभाव होवै तब मुक्त होवै, इस चित्तके अभावका नाम ब्रह्मबोध है ॥ हे रामजी ! जैसे पवन फुरता है, तैसे ब्रह्मविषे चित्तबोध है, अरु जैसे पवन ठहरि जाता है, तैसे चित्तका ठहरणा ब्रह्मबोध है, जैसे फुर अफुर दोनों पवनही है, तैसे चित्तबोध है, ब्रह्मबोध ब्रह्मही इतर कछु नहीं, हमकों तौ ब्रह्मही भासता है, चेतन मात्र शांतरूप है, अरु अपणे स्वभावविषे स्थित है, जिसकों अधिष्ठानका ज्ञान होता है, तिसकों निवृत्त भी उही रूप भासता है, अरु जिसकों अधिष्ठानका ज्ञान नहीं, तिसकों भिन्न भिन्न जगत भासता है, जैसे एक बीजविषे पत्र टास फूल फल भासते हैं, अरु जिसकों बीजका ज्ञान नहीं, तिसकों भिन्न भिन्न भासते हैं ॥ हे रामजी ! हमकों अधिष्ठान आत्मतत्त्वका ज्ञान है, ता

तें सब विश्व आत्मस्वरूप भासती है, अरु अज्ञानीकों नानाप्रकारकी विश्व भासती है, जन्म अरु मृत्यु भासते हैं ॥ हे रामजी ! सब शब्द आत्मतत्त्वविषे फुरते हैं, सर्वका अधिष्ठान आत्मा है, निराकार निर्विकार है, अरु शुद्ध है, सबका अपणा आप है, तातें सब विश्व आकाशरूप है, इतर कछु हुई नहीं, जैसे तरंग जलरूप हैं, तैसे विश्व आत्मस्वरूप है, अरु चित्त जो फुरता है, तिसके अनुभव करणेहारी चेतनसत्ता है, सो ब्रह्म है, अरु तेरा स्वरूप भी उही है, तातें अहं त्वं आदिक जगत सब ब्रह्मरूप है, संशयकों त्यागिकरि अपणे स्वरूपविषे स्थित होहु, अरु पाछे तुमकों कहा है, द्वैत अद्वैत सब उपदेशमात्र है, एक चित्तकी वृत्तिकों स्थित करिके देख, सब ब्रह्म है, इतर कछु नहीं, निषेध किसका करियें ॥ हे रामजी ! चित्तकी दो वृत्ति ज्ञानवान कहते हैं, एक मोक्षरूप है, एक बंधरूप है, जो वृत्ति स्वरूपकी उर फुरती है, सो मोक्षरूप है, जो दृश्यकी उर फुरती है, सो बंधरूप है, जो तुमकों शुद्ध भासती है, सोइ करहु, अरु जो द्रष्टा है, सो दृश्य नहीं होता, अरु जो दृश्य है, सो द्रष्टा नहीं होता, आत्मा तौ अद्वैत है, तातें द्रष्टाविषे दृश्य पदार्थ कोउ नहीं, तुम क्यों दृश्यकी उर फुरते हौ, अनहोती दृश्यकों ग्रहण क्यों करते हौ, अरु द्रष्टा भी तेरा नाम दृश्यकरि होता है, जब दृश्यका अभाव जाण्या, तब अवाच्य पद है, तिसकों वाणीकरि कछु कह्या नहीं जाता ॥ हे रामजी ! जैसे अंगी अरु अंगवालेविषे भेद कछु नहीं, जैसे आकाश अरु शून्यताविषे भेद कछु नहीं, जैसे जल अरु द्रवताविषे भेद कछु नहीं, बरफ अरु शीतलताविषे भेद कछु नहीं, तैसे ब्रह्म अरु जगतविषे भेद कछु नहीं, कोउ जगत कहै, अथवा ब्रह्म कहै, एकही पर्याय है, जगतही ब्रह्म है, ब्रह्मही जगत है, तातें आत्मपदविषे स्थित होहु, भ्रम करिके आपकों कछु अवर मानते हैं, तिसकों त्यागिकरि ब्रह्महीकी भावना करहु, अरु आपकों मनुष्य कदाचित् नहीं जानणा, जो आपकों मनुष्य जाणैगा तौ यह निश्चय अधोगतिकों प्राप्त करणेहारा है, तातें अधोगतिकों मत प्राप्त होहु, अपणे स्वरूपविषे स्थित होहु ॥ ॥ इति श्रीयोगवा

सिष्ठे निर्वाणप्रकरणे परमार्थयोगोपदेशोनाम शताधिकचतुःपंचाशत्तमः सर्गः ॥ १५४ ॥ ॥ ॥

वसिष्ठ उवाच ॥ हे रामजी! देशतें देशांतरकों वृत्ति जब जाती है, तिसके मध्य जो संविततत्त्व है, तिसकों जो अनुभव करता है, सो तेरा स्वरूप है, तिसविषे स्थित होहु, अरु जैसी चेष्टा आवै तैसी करहु, देख, सुण, स्पर्श कर, गंध ले, बोल, चाल, हसहु, सब क्रिया करहु, परंतु इनके जानणेवाली जो अनुभवसत्ता है, तिसविषे स्थित होहु, यह जाग्रताविषे सुषुप्ति है, चेष्टा शुभ करहु, अरु अंतरतें पत्थरकी शिलावत् होहु, फुरणेतें रहित ॥ हे रामजी! तेरा स्वरूप निराभास है, भास जो दृश्य है, तिसतें रहित है, अरु निर्मल शांतरूप है, तिसविषे स्थित होहु, जैसे सुमेरु पर्वत स्थित है, तैसे होहु, यह दृश्य अज्ञानकरिके भासती है, तमरूप है, अरु आत्मा सदा प्रकाशरूप है, तिस प्रकाशविषे अज्ञानीकों तम भासती है, जैसे सूर्य सदा प्रकाशरूप है, अरु उलूककों नहीं भासता है, अज्ञानकरिके तमही भासती है, तैसे अज्ञानीकों अविद्यारूप जगत भासता है, सो अविचारतें सिद्ध है, अविद्या करिके इसकी विपर्यय दृष्टि हुई है, इसका वास्तव स्वरूप निर्विकार है, जो जायते अस्ति वर्धते परिणमते विपक्षीयते नश्यते इन षट् विकारतें रहित है, तातें निर्विकार है, तिसकों विकारी जानता है, आत्मा निर्विकार निराकार है, तिसकों साकार जानता है, आत्मा आनंदरूप है, तिसकों दुःखी जानता है, आत्मा शांतरूप है, तिसकों अशांत जानता है, आत्मा महत् है, तिसकों लघु जानता है, आत्मा पुरातन है, तिसकों उपजा मानता है, आत्मा सर्वव्यापक है, तिसकों परिच्छिन्न मानता है, आत्मा नित्य है, तिसकों अनित्य देखता है, आत्मा चैत्यतें रहित शुद्ध चिन्मात्र है, यह चैत्य संयुक्त देखता है, आत्मा चेतन है, यह जड देखता है, आत्मा अहंतें रहित सदा अपणे स्वभावविषे स्थित है, यह अनात्म अहंकारविषे अहंप्रतीति करता है, आत्माविषे अनात्मभावना करता है, अरु अनात्मविषे आत्मभावना करता है, आत्मा निर

वयव है, तिसकों अवयवी देखता है, आत्मा अक्रिय है, तिसकों सक्रिय देखता है, आत्मा निरंश है, तिसकों अंशांशी भावकरि देखता है, आत्मा निरामय है, तिसकों रोगी देखता है, आत्मा निष्कलंक है, तिसकों कलंकसहित देखता है, आत्मा सदा प्रत्यक्ष है, तिसकों परोक्ष जानता है, अरु जो परोक्ष है, तिसकों प्रत्यक्ष जानता है ॥ हे रामजी ! इत्यादिक जो विकार हैं, सो आत्माविषे अज्ञानकरिके देखता है, आत्मा शुद्ध है, अरु सूक्ष्मतें सूक्ष्म है, अरु स्थूलतें स्थूल है,अरु बडेतें बडा है, लघुतें लघु भी है, सर्व शब्द अरु अर्थका अधिष्ठान है ॥ हे रामजी! ब्रह्मरूपी एक डब्बा है, तिसविषे जगतरूपी रत्न हैं, पर्वत अरु वनसहित भी जगत दृष्ट आता है, परंतु आत्माके निकट रुइके लोम जैसा लघु है, आत्मरूपी वन है, तिसविषे संसाररूपी मंजरी उपजी है, सो कैसी मंजरी है,पांचों तत्त्व पृथ्वी आप तेज वायु आकाश इसके पत्र हैं, तिनकरिके शोभती है, सो अहंताके उदय हुए उदय होती है, अरु अहंताके नाश हुए नाश होती है, अरु आत्मरूपी समुद्र है, तिसविषे जगतरूपी तरंग हैं, सो उठते भी हैं, अरु लीन भी हो जाते हैं, अरु आत्माकाशविषे संसार भ्रममात्र है, आकाश वृक्षकी नांई है, आत्माके प्रमादकरि भासता है ॥ हे रामजी ! मायारूपी चंद्रमा है, तिसकी किरणां जगत है, अरु नेति शक्ति नृत्य करणेहारी है, सो तीनों अविचारसिद्ध हैं, विचार कियेतें शांत हो जाते हैं, जैसे दीपक हाथविषे लेकरि अंधकार देखियें तौ दृष्ट नहीं आता, तैसे विचारकरि देखियें तौ जगतका अभाव हो जाता है, केवल शुद्ध आत्माही प्रत्यक्ष भासता है ॥ हे रामजी ! जगत कछु बन्या नहीं, जैसे किसीनें बरफ कही, किसीनें शीतलता कही, तिसविषे भेद नहीं, तैसे आत्मा अरु जगतविषे भेद कछु नहीं, अरु भेद जो भासता है, सो भ्रममात्र है, जैसे तंतु अरु पटविषे भेद कछु नहीं, तैसे आत्मा अरु जगत है ॥ हे रामजी ! आत्मरूपी रंगविषे जगतरूपी चित्र पुतलियां हैं अरु आत्मरूपी समुद्रविषे जगतरूपी तरंग हैं, सो जलरूप हैं, तैसे आत्मा अरु जगतविषे भेद कछु नहीं, आत्मरूप

ही है, आत्मातें इतर कछु बन्या नहीं, जिसकरि सर्व पदार्थ सिद्ध होते हैं, अरु जिसकरि सर्व क्रिया सिद्ध होती हैं, जो अनुभवरूप सदा अप्रौढ है, तिसकों प्रौढ जानणा यही मूर्खता है ॥ हे रामजी! यह विश्व तेरा ही स्वरूप है, तूं जागिकरि देख, तूंही खडा है, अरु स्वच्छ आकाश सूक्ष्म प्रत्यक् ज्योति अपणे आपविषे स्थित है ॥ इति श्रीयोगवासिष्ठे निर्वा॰ परमार्थयोगोपदेशो नाम शताधिकपंचपंचाशत्तमः सर्गः ॥ १५५ ॥

॥ वसिष्ठ उवाच ॥ हे रामजी! रूप अवलोकन मनस्कार यह तीनों संसार हैं, सो ज्ञानवानकों भ्रम मात्र भासते हैं, वास्तव कछु नहीं, मिथ्या हैं, जैसे जलविषे लहरी तरंग उठते हैं, सो जलरूप हैं, तैसे आत्माविषे रूप अवलोकन मनस्कार फुरते हैं, सो सब आत्मरूप हैं, इतर कछु नहीं ॥ हे रामजी! यह शुद्ध परमात्माका चमत्कार है, अरु आत्मा दृश्यतें रहित है, शुद्ध है, चिन्मात्र है, निर्मल है, अद्वैत है, तिसविषे जगत कछु बन्या नहीं, हमकों तौ सदा उही भासता है, जगत कछु नहीं भासता, जैसे कोउ आकाशविषे नगर कल्पता, अरु सब रचना तिसविषे देखता है सो उसके हृदयविषे दृढ हो जाती है, अरु जो संकल्पकी सृष्टिकों मिथ्या जानता है, तिसकों शून्याकाशही भासता है, तैसे यह विश्व मूर्खके हृदयविषे दृढ भई है, अरु ज्ञानवानकों आत्मस्वरूपही भासता है, जैसे माटीके खिलोनें सैना होती है, हस्ति घोडा आदिक दृष्ट आते हैं, तिसविषे उह राग दोष नहीं करता, जिसकों माटीका ज्ञान है, अरु बालक माटीके ज्ञानतें रहित है, तिसविषे रागदोष करते हैं, तैसे ज्ञानवान इस जगतविषे रागदोष नहीं करते, अरु अज्ञानी रागदोष करते हैं, जैसे खिलोनेंविषे सारभूत मृत्तिका होती है, तैसे इस जगतविषे सारभूत चेतन आत्मा है, जो कछु पदार्थ भासते हैं सो आत्माका निवृत्त है, मिथ्याही भ्रमकरि सिद्ध हुए हैं, जो वस्तु मिथ्या भ्रममात्र होवै, तिसविषे सुखके निमित्त इच्छा करणी यही मूर्खता है ॥ हे रामजी! हमकों तौ इच्छा कछु नहीं, काहेतें जो हमकों जगत मृगतृष्णाके जलवत् भासता है, तातें इच्छा किसकी करैं, जिसविषे सत्य प्रतीति होती है, तिसविषे

इच्छा भी होती है, जो सत्यही न भासै तौ इच्छा कैसे करि होवै ॥ हे रामजी ! इच्छाही वंधन है, अरु इच्छातें रहित होणा इसीका नाम मुक्ति है, तातें ज्ञानवानकों इच्छा कछु नहीं रहती, अनिच्छितही चेष्टा होती है, जैसे सूका बांस होता है, तिसके अंतर वाहिर शून्य होती है, संवेदन उसकों कछु नहीं फुरती, तैसे ज्ञानवानके अंतःकरणविषे अरु वाह्यकारणविषे भी शांति होती है, अंतःकरणविषे संकल्प कोउ नहीं उठता, अरु वाह्यविषे भी उपाधि कोउ नहीं, निःसंकल्प निरुपाधि चेष्टा उसकी होती है ॥ हे रामजी ! जिस पुरुषके अंतरतें संसारका रस सूकि गया है, सो संसारसमुद्रतें पार हुआ है, ऐसे जाण, अरु जिसका रस नहीं सूकि गया, तिसकों रागदोष फुरते हैं, इष्ट अनिष्टकरिके, तव संसार वंधनविषे जाण ॥ हे रामजी ! मैं तुझकों ऐसी समाधि कहता हौं जो सुखेनही प्राप्त होवै, अरु जिसकरि मुक्ति होवै सो श्रवण करु, सर्व इच्छातें रहित होणा यही परम समाधि है, जिस पुरुषकों इच्छा फुरती है, तिसकों उपदेश भी नहीं लगता, जैसे आरसी उपर मोती नहीं ठहरता, तैसे उसके हृदयपर उपदेश नहीं ठहरता, अरु इसकों इच्छाही दीन करती है, अरु इच्छातें रहित हुआ तव शांतरूप होता है, वहुरि इसकों शांतिके निमित्त कर्तव्य कछु नहीं रहता ॥ हे रामजी ! हम तौ निरिच्छित हैं, हमकों अंतर वाहिर शांति है, हमकों कर्तव्य करणे योग्य कछु नहीं, जो कछु प्रारब्ध तिसकरि चेष्टा होती है रागदोषतें रहित, वोलते हैं, परंतु बांसरीकी नांई जैसे बांसरी वोलती है, अहंकारतें रहित, तैसे ज्ञानवान अहंकारतें रहित है, अरु स्वादकों ग्रहण करते हैं, परंतु कडछीकी नांई; जैसे कडछीकों सर्व व्यंजनविषे पाइता है, अरु तिसीद्वारा सब निकास पाइते हैं, परंतु उसकों रागदोष कछु नहीं फुरता, जो यह होवै, यह न होवै, तैसे ज्ञानवान स्वादकों लेता है, अनिच्छितही, अरु गंध भी लेता है, पवनकी नांई, जैसे पवन भली बुरी गंधकों लेता है, परंतु रागदोषतें रहित है, तैसे ज्ञानवान रागदोषकी संवेदनतें रहित गंधकों लेता है, इसी प्रकार सर्व इंद्रियांकी चेष्टा करता है, परंतु

इच्छातें रहित होता है, इसीतें परम सुखरूप है, अरु जिसकी चेष्टा इच्छासहित है, सो परम दुःखी है ॥ हे रामजी ! जिस पुरुषकों भोग रस नहीं देते सो सुखी है, अरु जिसकों रस देते हैं, रागकरि तृष्णा बढती जाती है, तिसकों ऐसे जाण जैसे किसीके मस्तक उपर अग्नि लगै, तिस उपर तृण डारे बुझावणे निमित्त, तब उह बूझती नहीं, बढती जाती है, तैसे विषयकी इच्छा भोगणेकरि तृप्त नहीं होणेकी, सो इच्छाही बंधन है, इच्छाके निवृत्तिका नाम मोक्ष है ॥ हे रामजी ! संसाररूपी विषका वृक्ष है, तिसका बीज इच्छा है, जिसकी इच्छा बढती जाती है, तिसका संसार बढता जाता है, तिसकरि वारंवार जन्म अरु मृतक होता है ॥ हे रामजी ! ऐसा सुख ब्रह्माके लोकविषे भी नहीं, जैसा सुख इच्छाकी निवृत्तिविषे है, अरु ऐसा दुःख नरकविषे भी नहीं, जैसा दुःख इच्छाके उपजावणेविषे है, इच्छाके नासका नाम मोक्ष है, अरु इच्छाके उपजणेका नाम बंधन है, जिस पुरुषकों इच्छा उत्पन्न होती है, सो दुःखकों पावता है, संसाररूपी गरत खातविषे पडता है, अरु इच्छारूपी विषकी वल्ली है, तिसकों समतारूपी अग्निकरि जलाहु; सम्यक् दर्शनकरि जलाए विना बडे दुःखकों प्राप्त करैगी, अरु बढि जावैगी ॥ हे रामजी ! जिस पुरुषनें इच्छा दूर करणेका उपाय नहीं किया, तिसनें अंधे कूपविषे प्रवेश किया है, शास्त्रका श्रवण भी इसी निमित्त है, जो किसी प्रकार इच्छा निवृत्त होवै, अरु तपदान यज्ञ भीइसी निमित्त है, जो किसी प्रकार इच्छा निवृत्त होवै, जो एकही वार निवृत्त करि न सकियें, तौ क्षणे क्षणे निवृत्त करियें ॥ हे रामजी ! यह विषकी वल्ली बढी हुई दुःख देती है, जो पुरुष शास्त्रोंकों पढता भी है, अरु इच्छाकों बढावता भी है, सो दीपक हाथ लेकरि कूपविषे गिरता है, अरु इच्छारूपी कंटीआरीका बुंटा है, जिसकों सर्वदा कंटक लगे रहते हैं, तिसविषे सुख कदाचित् नहीं, जो पुरुष कांटेकी शय्यापर शयन करै, अरु सुखी हुआ चाहै तौ नहीं होता, तैसे असारकरि कोउ सुख पाया चाहै तौ कदाचित् नहीं होवैगा, जिसकरि इच्छा निवृत्त होवै सोइ उपाय किया चाहिये, इच्छा

के निवृत्त होणेविषे सुख है, अरु इच्छाके उत्पन्न होणेविषे वडा दुःख है ॥ हे रामजी! जो अनिच्छित पदविषे स्थित हुआ है, तिसकों जब यह क्षण भी इच्छा उपजती है, तब रुदन करता है, जैसे चोरतें लुंटा रुदन करता है, तैसे उह रुदन अरु पश्चात्ताप करता है, अरु तिसके नाश करणेका उपाय करता है ॥ हे रामजी! इच्छारूपी क्षेत्र है, अरु राग दोषरूपी तिसविषे विषकी वल्ली हैं, जो पुरुष तिसके दूर करणेका उपाय न हीं करता, सो मनुष्यविषे पशु है, यह इच्छारूपी विषका वृक्ष वढ्या हुआ नाशका कारण है, तातें तुम इसका नाश करहु ॥ ॥ इति श्रीयोगवासिष्ठे निर्वाणप्रकरणे इच्छानिषेधयोगोपदेशो नाम शताधिकषट्पंचाशत्तमः सर्गः ॥ १५६ ॥ ॥ वसिष्ठ उवाच ॥ हे रामजी! इच्छारूपी विषके नाश करणेका उपाय तुमकों आगे भी कहा है, अब बहुरि स्पष्टकरि कहता हौं, तूं श्रवण करु, इच्छाके त्याग करणे योग्य संसार है, सो मिथ्या है, आत्मसत्ता भिन्न करियें तौ मिथ्या है, जो मिथ्या हुआ तौ तिसविषे इच्छा करणी क्या है, अरु जो आत्माकी उर देखियें तौ सर्व आत्माही है, जब सर्व आत्माही हुआ तौ इच्छा करणी क्या है, इच्छा दूसरेविषे होती है, सो दूसरा कछु है नहीं, इच्छा किसकी करियें ॥ हे रामजी! द्रष्टा दृश्य भी मिथ्या है, दृष्टि कहियें इंद्रियां दृश्य कहियें विषय, सो ग्राहक इंद्रियां हैं, अरु ग्राह्य विषय हैं, अविचार सिद्ध हैं, भ्रम करिके भासते हैं, आत्माविषे कोउ नहीं, जैसे स्वप्नविषे भ्रम करिके रूप भासते हैं, यह ग्राह्य ग्राहक भ्रम करिके भासते हैं, अरु सुख दुःख भी इनहीकरि होता है, आत्माविषे कोउ नहीं, भ्रमकरि भासता है ॥ हे रामजी! द्रष्टा दर्शन दृश्य तीनों ब्रह्मविषे कल्पित हैं, वास्तवतें ब्रह्मही है, चिरकाल हम खोजि रहे हैं, परंतु द्वैत हमकों कछु दृष्ट नहीं आता, एक ब्रह्मसत्ताही ज्योंकी त्यों भासती है, अरु निराभास है, फुरणेतें रहित ज्ञानरूप है, आकाशतें भी सूक्ष्म है, अरु सर्व जगत भी हुई है, सो मैं हौं ॥ हे रामजी! जैसे जलविषे तरंग होता है, अरु आकाशविषे शून्यता है, अरु जैसे पवनविषे चलना है, अग्निविषे उष्णता है, सो सवही अनन्य रूप है, तैसे आत्माविषे ज

गत अनन्यरूप है, आत्माही विश्व आकार होकरि भासता है, अवर कछु हुआ नहीं ॥ हे रामजी! जो हुई है, तौ इच्छा किसकी करता है, यह जो मैं तुझकों मोक्ष उपाय कहता हौं, तूं आपकों क्यौं बंधन करता है, बडा बंधन इच्छाही है, जिस पुरुषकों इच्छा बढती जाती है, सो जगतरूपी बनका मृग है, तिस मृग अरु पशुका संग कदाचित् नहीं करणा, मूर्खका संग बुद्धिकों विपर्यय करि डारता है, तातें विपर्यय बुद्धि कों त्यागिकरि आत्मपदविषे स्थित होहु, अरु विश्व भी सब तेरा अनुभवरूप है, अरु इसका सुख दुःख विद्यमान भी देखीता है, परंतु आत्माविषे भ्रममात्र भासता है, कछु है नहीं, विश्व भी आनंदरूप शिवही है, तूं विचारि देख; दूसरा तौ कछु है नहीं, जैसे मृत्तिकाविषे नानाप्रकारकी सैना हस्ति घोडा आदिक होती है, परंतु मृत्तिकातें इतर कछु नहीं, तैसे सब विश्व आत्मरूप है, इतर कछु नहीं, तिसविषे कारण कार्य भाव देखणा भी मूर्खता है, जो दूसरी वस्तुही नहीं तौ कारण कार्य किसका होवै, बहुरि इच्छा किसकी करता है, जिस संसारकी इच्छा करता है, सो है नहीं, जैसे सूर्यकी किरणांविषे जलाभास होता है, अरु सीपी विषे रूपा भासता है, सो दूसरी कछु वस्तु नहीं, अधिष्ठान किरणां अरु सीपि हैं, तैसे अधिष्ठानरूप परमार्थ सत्ताही है, न सुख है, न दुःख है, केवल यह जगत शिवरूप है, तिस शिव चिन्मात्रतें अन्य कछु नहीं, मृत्तिकाकी सैनावत, तौ इच्छा कैसे उदय होवै ॥ राम उवाच ॥ हे मुनीश्वर! जो सर्व ब्रह्मही है, तौ इच्छा अनिच्छा भी भिन्न नहीं, इच्छा उदय होवै, भावै न होवै, बहुरि तुम कैसे कहते हौ जो इच्छाका त्याग करहु?॥ वसिष्ठ उवाच ॥ हे रामजी! जिस पुरुषकी ज्ञप्ति जागी है, अर्थ यह जो ज्ञानरूप आत्माविषे जाग्या है, तिसकों सर्व ब्रह्मही है, इच्छा अनिच्छा दोनों तुल्य हैं, इच्छा भी ब्रह्म है, अनिच्छा भी ब्रह्म है ॥ हे रामजी! ज्यौं ज्यौं ज्ञानसंवित् होती है, त्यौं त्यौं वासना क्षय होती है, जैसे सूर्यके उदय भए रात्रि नष्ट हो जाती है, तैसे ज्ञानके उपजेतें वासना नहीं रहती॥ हे रामजी! ज्ञानवानकों ग्रहण त्यागकी कर्तव्य नहीं, इच्छा अनिच्छा

तिसकों तुल्य हैं, यद्यपि ऐसेही है परंतु स्वाभाविकही वासना तिसकों नहीं रहती, जैसे सूर्यके उदय हुए अंधकार नहीं रहता, तैसे आत्माके साक्षात्कार हुए द्वैत वासना नहीं रहती, ज्यौं ज्यौं ज्ञानकला जागती है, त्यौं त्यौं द्वैत नाश हो जाता है, द्वैतके निवृत्त होणेकरि वासना भी निवृत्त हो जाती है ॥ हे रामजी! ज्यौं ज्यौं स्वरूपानंद इसकों प्राप्त होता है, त्यौं त्यौं संसार विरस होता जाता है, जब संसार विरस हो गया, तब वासना किसकी करै ॥ हे रामजी! अमृतविषे इसकों विषकी भावना भई थी, तब अमृत विष भासता था, जब विषकी भावनाका त्याग किया, तब अमृत तौ आगेही था, सोई हो जाता है, तैसे जो कछु तुझकों भासता है, सो सब ब्रह्मरूपी अमृतही है, जब तिस ब्रह्मरूपी अमृतविषे अज्ञान करिके जगतरूपी विषकी भावना हुई, तब दुःखकों पावता है, अरु जब संसारकी भावना त्यागी, तब आनंदरूपही है, तिसकों करणा अकरणा दोनों तुल्य हैं, यद्यपि ज्ञानवानविषे इच्छा दृष्ट आती है, तौ भी उसके निश्चयविषे नहीं, उसकी इच्छा भी अनिच्छा है; काहेतें जो संसारकी भावना उसके हृदयविषे नहीं, तौ इच्छा किसकी रहै, हे रामजी! यह संसार है नहीं, हमकों तौ आकाशरूप भासता है, जैसे अवरके मनोराज्यका संकल्प तिसविषे आणे जाणेका खेद कछु नहीं होता, तैसे यह जगत हमकों अवरकी चिंतवनावत् है, जैसे किसी पुरुषनें मनोराज्य करिके मार्गविषे कोउ स्थान रच्या होवै, अरु तिसविषे किंवाड लगाए होवैं, अरु नाना प्रकारका प्रपंच रच्या होवै, अरु जो कोउ अवर पुरुष आता है, तिसकों अटकावता कोउ नहीं, किंवाडविषे अरु न कोउ किंवाड है, न कोउ पदार्थ है, उसका शून्यमार्गका निश्चय होता है, तैसे हमकों सब प्रपंच शून्यही भासता है, अज्ञानीके हृदयविषे हमारी चेष्टा है, अरु हमकों ब्रह्मतें इतर कछु नहीं भासता ॥ हे रामजी! जिसकों जगतही न भासै, तिसकों इच्छा किसकी होवै, जिसके हृदयविषे संसारकी सत्यता है तिसकों इच्छा भी फुरती है, अरु राग दोष भी उठता है, जिसकों राग दोष उठता है, तब जाणियें जो

संसारसत्ता हृदयविषे स्थित है, अरु जिसकों नानापदार्थसहित संसार सत्य भासता है, सो मूर्ख है, अज्ञान निद्राविषे सोया हुआ है, जैसे निद्रादोष करिके स्वप्नविषे पुरुष अपणा मृत्यु देखता है, तैसे जिसकों यह जगत सत भासता है, सो निद्राविषे सोया है ॥ हे रामजी! बहुत प्रकारके स्थान मैं देखे हैं, तिनविषे रोग औषध भी नानाप्रकारके देखे हैं, परंतु इच्छारूपी छुरीके घावका औषध अवर नहीं दृष्ट आया, न जापकरि, न तपकरि, न पाठकरि, न यज्ञ दान तीर्थकरि निवृत्त होता है, जेते कछु संसारके पदार्थ हैं, तिन करिके इच्छारूपी रोग नाश नहीं होता, जब आत्मरूपी औषधकी उर आवै, तबही नाश होता है, अन्यथा किसी प्रकार यह रोग नहीं जाता ॥ हे रामजी! जिस पुरुषकों ज्ञान प्राप्त हुआ है, तिसकी इच्छा स्वाभाविकही निवृत्त हो जाती है, अरु आत्मज्ञानविना अनेक यत्नकरि न जावैगी, जैसे स्वप्नकी वासना जागेविना नहीं जाती, अवर अनेक उपाय करियें तौ भी दूर नहीं होती ॥ हे रामजी! ज्यों ज्यों वासना क्षीण होती है, त्यों त्यों सुखकी प्राप्ति होती है, अरु ज्यों ज्यों वासनाकी अधिकता है, त्यों त्यों दुःख अधिक है, अरु यह आश्चर्य है जो मिथ्या संसार सत्य हो भासता है, जैसे बालककों वृक्षविषे वैताल हो भासता है, तिसकरि भय पावता है, सो हैही नहीं, तैसे मूर्खता करिके आत्माविषे संसार कल्पता है, तिसकरि दुःखी होता है ॥ हे रामजी! स्थावर जंगम जेता कछु जगत भासता है, सो सब ब्रह्मरूप है, ब्रह्मतें इतर बन्या कछु नहीं, भ्रम करिके भिन्न भिन्न होय भासता है, जैसे आकाशविषे शून्यता है, जलविषे द्रवता है, सत्यताविषे सत्यताही है, तैसे आत्माविषे जगत है, सो न सत है, न असत है, अनिर्वाच्य है ॥ हे रामजी! दूसरा कछु बन्या नहीं तौ क्या कहियें, केवल ब्रह्मसत्ता अपणे आपविषे स्थित है, सो सर्वका अपणा आप वास्तवरूप है, जब तिसका साक्षात्कार होता है, तब अहंरूप भ्रम मिटि जाता है, जैसे सूर्यके उदय हुए अंधकारका अभाव हो जाता है, तैसे आत्माके साक्षात्कार हुए अनात्म अभिमानरूपी अंधकारका

अभाव हो जाता है, अरु परम निर्वाण भासता है, तिसविषे तहां न एक कहणा है, न दो कहणा है, केवल शांतरूप परम शिव है, जैसे आकाशविषे नीलता भासती है, तैसे आत्माविषे जगत भासता है ॥ हे राम जी! जिननें ऐसे निश्चय किया है, तिनकों इच्छा अनिच्छा दोनों तुल्य हैं, तौ भी मेरे निश्चयविषे यह है, जो इच्छाके त्यागविषे सुख है, जिसकी इच्छा दिन दिन घटती जावै, अरु आत्माकी उर आवै, तिसकों ज्ञानवान् मोक्षभागी कहते हैं, काहेतें जो संसारभ्रम करिके सिद्ध है, इसहीकी कल्पना जगतरूप होकरि भासती है, विचार कियेतें निकसता कछु नहीं, संसारके उदय होणेकरि आत्माकों कछु आनंद नहीं, अरु नाश होणेकरि कछु खेद नहीं होता, काहेतें जो भिन्न कछु नहीं, जैसे समुद्रविषे तरंग उपजते विनसते हैं, तौ जलकों हर्षशोक कछु नहीं होता, काहेतें जो जलतें इतर नहीं, तैसे संपूर्ण जगत ब्रह्मस्वरूप है तौ इच्छा क्या अरु अनिच्छा क्या ॥ हे रामजी! आदि जो परमात्मातें चित्तशक्ति फुरी है, तिसविषे जब अहं ऐसे हुआ, तब स्वरूपका प्रमाद हुआ, तब यह चित्तशक्ति मनरूप हुई, बहुरि आगे देह इंद्रियां हुई, अज्ञान करिके मिथ्या भ्रम उदय हुआ है, इसी प्रकार अपणे साथ मिथ्या शरीरकों देखता है, जैसे जल दृढ जडता करिके बरफरूप हो जाता है, तैसे चित्तसंवित् प्रमादकी दृढता करिके मन इंद्रियां देहरूप होती है, जैसे कोउ स्वप्नविषे अपणे मरणेकों देखता है, तैसे अपणेसाथ शरीरकों देखता है, जब चित्तशक्ति नष्ट होती है, तब शरीर कहां अरु मन कहां, यह कोउ नहीं भासता, जैसे स्वप्नविषे भ्रम करिके शरीरादिक भासते हैं, तैसे यह जाग्रत भी जाण, जो मिथ्या भ्रम करिके उदय हुए हैं, जब अपणे स्वरूपकी उर आवै, तब सबही भ्रम मिटि जावै ॥ हे रामजी! जैसे भ्रम करिके आकाशविषे नीलता भासती है, तैसे विश्व भी अनहोती भ्रमकरि भासती है, आत्माविषे कछु आरंभ परिणाम करिके नहीं बन्या, उही स्वरूप है, जैसे आकाश अरु शून्यताविषे भेद नहीं, जैसे पवन अरु स्पंदविषे भेद नहीं, तैसे आत्मा अरु जगतविषे भेद न

हीं, जैसे स्वप्नकी सृष्टि अनुभवरूप है, इतर कछु नहीं, तैसे जगत आत्मअनुभवतें इतर कछु नहीं ॥ हे रामजी! चेतन आकाश परम शांतरूप है, तिसविषे देह इंद्रियां भ्रमकरिके भासती हैं, अरु क्रिया काल पदार्थ सब भ्रममात्र हैं, जब आत्मस्वरूपविषे जागीकरि देखैगा, तब द्वैतभ्रम निवृत्त हो जावैगा, कैवल्य अद्वैत आत्माही भासैगा, दृश्यका अभाव हो जावैगा, यह पृथ्वी आदिक तत्त्व जो भासते हैं, सो अविद्यमान हैं, इनकी प्रतिमा मिथ्या उदय हुई है, जैसे स्वप्नविषे अनहोते पृथ्वी आदिक तत्त्व भासते हैं, परंतु हैं नहीं, तैसे आत्माविषे यह जगत भासता है ॥ हे रामजी ! पृथ्वी भी आकाशरूप है, अरु कंध कोट भी आकाशरूप हैं, अरु पर्वत भी आकाशरूप हैं, सब प्रपंच आकाशरूप है, जो सर्व आकाशरूप हैं, तौ ग्रहण त्याग किसका होवै, अरु आकाशरूप दिवारउपर संकल्पनें मूर्त्यां रचियां हैं, अरु रंग तहां आत्मचैतन्यता है, तातें विश्व संकल्पमात्र है, जैसा जैसा निश्चय होता है, तैसी तैसी सृष्टि भासती है, जो कछु बन्या होता है, तौ अवरका अवर भासता, तातें बन्या कछु नहीं, जैसा संकल्प होता है, तैसा आगे रूप हो भासता है ॥ हे रामजी! सिद्ध पास एक चूर्ण होता है, तिसकरि जो चाहते हैं, सो करते हैं, पर्वतकों आकाश करते हैं, अरु आकाशकों पर्वत करते हैं, तैसे मैं तुझकों चूर्ण कहता हौं, जब चित्तरूपी सिद्ध संकल्परूपी चूर्ण करि फुरता है, तब आत्मरूपी आकाशविषे पर्वत हो भासते हैं, अरु जब चित्तरूपी सिद्धका संकल्प उलटता है, तब पर्वत भी आकाशरूप हो भासता है, जैसे स्वप्नविषे संकल्प फुरता है, तब अनुभवविषे पर्वत आदिक पदार्थ भासि आते हैं, अरु जब संकल्पतें जागता है, तब स्वप्नके पर्वत आकाशरूप हो जाते हैं, आकाशही पर्वतरूप हुआ, अरु पर्वत आकाशरूप होता है ॥ हे रामजी ! तैसे यह सृष्टि संकल्पमात्र है, कछु बन्या नहीं, जैसा संकल्प होता है, तैसा भासता है, अरु जब विश्वके अत्यंत अभावका संकल्प किया तब तैसेही भासता है, जैसे विश्वका अभ्यास किया है, अरु विश्व भासी है, तैसे आत्माका अभ्यास

करियें तौ क्यों न भासै, उह तौ अपणा आप है, जब आत्माका अभ्यास करियें तब आत्माही भासता है, विश्व का अभाव हो जाता है, अनेक सृष्टि अपणे अपणे संकल्पकरि आकाशविषे भासतियां हैं, जैसा किसीका संकल्प होता है, तैसी सृष्टि उसकों भासती है, जैसे चिंतामणी अरु कल्पवृक्षविषे दृढ संकल्प करता है, तब यथा इच्छित पदार्थ निकसि आते हैं, सो कछु बने नहीं, अरु चिंतामणी भी परिणामकों प्राप्त भई, ज्यौंकी त्यौं पडी है, संकल्पकी दृढताकरि भासि आते हैं, तैसे यह प्रपंच भी आकाशरूप है, जैसे आकाशविषे शून्यता है, तैसे आत्माविषे जगत है ॥ हे रामजी! सिद्धके जो वचन फुरते हैं, सोही संकल्पकी तीव्रता होती है, जो चित्त शुद्ध होता है, तौ दूसरी सृष्टिकों भी जानता है, जो पुरुष वचन सिद्ध होणेके निमित्त वासना सूक्ष्म करता है, अर्थ यह जो वासनाकों रोकता है, सो तिसकरि वचन सिद्धताकों पावता है, जैसा संकल्प करता है, तैसा सिद्ध होता है ॥ हे रामजी! जेता यह दृश्यकी उरतें उपरांत होकरि अंतर्मुख होता है, तेती वचन सिद्धता होती जाती है, भावै वर देवै, भावै शाप देवै, उह सिद्ध होता है ॥ हे रामजी! एक प्रमाणज्ञान है, जो यह पदार्थ इस प्रकार है, तिसका जो नामरूप है, सो सब आकाशरूप भ्रममात्र है, आत्माविषे अवर कछु नहीं, अरु आत्मरूपी समुद्रविषे जगतरूपी तरंग उठते हैं, सो आत्मरूपही हैं, जिनकों ऐसा ज्ञान हुआ है, तिनकों इच्छा अरु अनिच्छाका ज्ञान नहीं रहता, तिनकों सब आकाशरूप भासता है ॥ हे रामजी! आत्मरूपी फूल है, तिसविषे जगतरूपी गंध है, जैसे पवन अरु स्पंदविषे भेद नहीं, तैसे आत्मा अरु जगतविषे भेद नहीं, जैसे पत्थर उपर लकीर काढियें सो पत्थरतें भिन्न नहीं, तैसे ब्रह्मतें जगत भिन्न नहीं ॥ हे रामजी! देश काल पृथ्वी आदिक तत्त्व, अरु मैं मेरा सब आत्मरूप है, अरु अविनाशी है, काहेतें जो अजन्मा है, जिनकों ऐसे निश्चय हुआ तिनकों रागदोष नहीं रहता, सब आत्मरूपही भासता है ॥ इति श्रीयोगवासिष्ठे निर्वाणप्रकरणे जगदुपदेशो नाम शताधिकसप्तपंचाशत्तमः सर्गः ॥ १५७ ॥ ॥ ॥

॥ वसिष्ठ उवाच ॥ हे रामजी ! शुद्ध आत्मतत्त्वविषे जो संवेदन फुरी है, तिस संवेदनकरि आगे जगत भास्या है, जैसे किसीके नेत्रविषे एक अंजन डारीकरि आकाशविषे पर्वत उडते दिखावते हैं, तैसे अन होता जगत फुरणेकरि भासता है ॥ हे रामजी ! ब्रह्म स्वर्गविषे अरु चित्त स्वर्गविषे भेद कछु नहीं, परमार्थतें एकही है, दृष्टि सृष्टि अरु वस्तु पर्याय हैं, अरु नानातत्त्व भी इसकी भावना करि भासते हैं, आत्माविषे दूसरा कछु नहीं बन्या, चित्त अरु चैत्य आत्मातें इतर नहीं, चित्तही चैत्य होकरि भासता है, ज्ञान करिके इनकी एकता होती है, इसीतें दृश्य भी द्रष्टारूप है, जैसे स्वप्नविषे शुद्ध संवितही दृश्यरूप होकरि स्थित होती है, अरु जागेतें एक हो जाती है, सो एकता भी तब होती है, जब उही रूप है, तातें तूं अब भी उही जाण, दृश्य दर्शन दृष्टा त्रिपुटी सब उहीरूप है ॥ हे रामजी ! जो सजाति है, तिसकी एकता होती है, विजातीका एकता नहीं होती, जैसे जलविषे जलकी एकता होती है, तैसे बोधकरि सबकी एकता होती है, तातें दृश्य भी उहीरूप है, जो एकता हो जाती है, जो दृश्य कछु आत्मातें भिन्न होती तौ एकता न होती ॥ हे रामजी ! आकाश आदिक तत्त्व भी आत्मरूप हैं, जिसतें यह सर्व है, अरु जो उह सर्व है, तिस सर्वात्माकों नमस्कार है, बहुरि कैसा है आत्मा, सर्व व्यापी है, अरु सर्वगत है, सर्वकों धारी रहा है, अरु सर्व उही है, ऐसे सर्वात्माकों मेरा नमस्कार है, जो कछु भासता है, सर्व उही है, जैसे जलविषे गलावणेकी शक्ति है, अरु काष्ठविषे नहीं, तैसे ब्रह्मविषे भावना स्वभाव है, अवरविषे नहीं, जो ब्रह्मभावनातें सर्व ब्रह्मही भासता है ॥ हे रामजी ! जड पदार्थ जो भासते सो भी ब्रह्म हैं, काहेतें जो भासता है, सो ब्रह्मही है, जो जड होवै, तौ भासै नहीं, जड भी चेतनता शुद्ध संवितविषे है, उसविषे शब्द चेतन है, इतर कछु नहीं भासता है, जैसे शुद्ध संवितविषे स्वप्न फुरता है, तिसविषे जड भी अरु चेतन भी भासते हैं, परंतु जो जड भासते हैं, उस संवितविषे उह भी चेतन है, जब चेतन है, तब फुरते हैं, जिनकों शुद्ध

संवितविषे अहं प्रयत्न नहीं सो जाणी नहीं शकता, अज्ञानी है, परंतु सब ब्रह्म है, जैसे समुद्रविषे जल होता है, सो उंचे आवै, तौ भी जल है, अरु नीचेकों जावै, तौ भी जल है, जैसे जो कछु देखीता है, अरु भासता है, सो सब ब्रह्मरूप है, इतर कछु नहीं, अरु इंद्रियका ग्राम जो भासता है, सो भी आत्मा है, अरु पृथ्वी आदिक तत्त्व जो फुरे हैं, सो प्रथम आकाश फुऱ्या है, बहुरि वायु फुरी है, बहुरि अग्नि फुरी है, तिसतें अनंतर जल फुऱ्या है, बहुरि पृथ्वी फुरी है, सो अनिच्छित फुरे हैं, चमत्कारकी नांई, तातें सब आत्मरूप है, जैसे वटबीजविषे वृक्ष होता है, तैसे आत्मरूपी बीजविषे जगत होता है, अरु नानाप्रकार भासते हैं ॥ हे रामजी ! एक बीजही नानाप्रकारके रूप धारता है, परंतु बीजतें इतर कछु नहीं, तैसे आत्मसत्ता नानाप्रकार हो भासती है, परंतु बीजकी नांई भी आत्मा परिणम्या नहीं, विश्व आत्माका चमत्कार है, तातें उही रूप है, जैसे स्वर्णविषे अनेक भूषण होते हैं, स्वर्णतें इतर कछु नहीं, तैसे विश्व आत्मरूप है, द्वैत कछु नहीं, जो आत्मातें इतर होवै, तौ भासे नहीं, तातें भासति जो है, सो चेतनरूप है, इसतें दृश्य अरु द्रष्टातें एकही रूप है, द्रष्टा दृश्यकी नांई हो भासता है ॥ हे रामजी ! जैसे कोउ पुरुष तुमारे निकट सोया होवै, अरु उसकों स्वप्न आवै, तिसविषे मेघ गर्जते हैं, अरु नानाप्रकारकी चेष्टा होती है, सो उसकों भासती है, अरु तुमकों नहीं भासती, तैसे यह दृश्य तुमारी भावनाविषे स्थित है, अरु हमकों आकाशरूप है ॥ हे रामजी ! चेतन आकाश शांतरूप है, तिसविषे सृष्टि कछु बनी नहीं, जो कछु उपजा नहीं तौ नष्ट भी नहीं होता, केवल शांतरूप है, भ्रम करिके जगत भासता है, जैसे कोउ बालक मनोराज्य करिके आकाशविषे पुतलियां रचै सो आकाशविषे कछु बण्या नहीं परंतु उसके संकल्पविषे है, तैसे यह विश्व मनरूपी बालकने रची है, तिसकी रची हुईविषे भी ज्ञानवानकों शून्यता भासती है ॥ हे रामजी ! संकल्पमात्रही सृष्टि हुई क्यों, जब इसका संकल्प नष्ट होता है, तब शांतपद शेष रहता है, सो कैसा पद है, निरहंकार सत्तामात्र पद है, अरु असतकी नांई स्थित है, बहुरि

तिस चिन्मात्र अद्वैतविषे अहंता करिके जगत भासि आता है, जब अहंता फुरती है, तब जगत भासता है, अरु जब स्वरूपका साक्षात्कार होता है, तब अहंतारूप भ्रम मिटि जाता है, जब अहंतारूप भ्रम मिट्या, तब जगतका भी अभाव होता है, अरु इच्छाका भी अभाव हो जाता है, तातें ज्ञानीकों इच्छा वासना कोउ नहीं रहती, जब प्रसन्नरूप अहंता नष्ट हुई, तब तिस पदकों प्राप्त होता है, जिस पदविषे अणिमा आदिक सिद्धि भी सूके तृणकी नांई भासतीयां हैं, ऐसा आनंदरूप है, जिसविषे ब्रह्मादिकका सुख भी तृणसमान भासता है ॥ हे रामजी ! जिसकों ऐसा ब्रह्मानंदपद प्राप्त हुआ है, तिसकों बहुरि इच्छा किसीकी नहीं रहती, अरु तिसकों मारणेहारे विषयादिक पदार्थ मृतक नहीं करते, अरु जीवावणेहारे पदार्थ अमृत आदिक जीवावते नहीं, केवल निर्वाण पदविषे तिसकी स्थिति है ॥ हे रामजी ! जिस पुरुषकों संपूर्ण संसारतें वैराग्य हुआ है, तिसकों संसारके पदार्थ सुखदायक नहीं भासते, मिथ्या भासते हैं, सो संसारसमुद्रके पारकों प्राप्त भया है, जिसकी संसारकी वासना अरु अहंता नष्ट भई है, तिसकी मूर्त्ति देखणेमात्र भासती है, सो निर्वासी ज्ञानवान शांतरूप है ॥ हे रामजी ! इच्छाही बंधन है, जब इच्छाका अभाव हुआ, तब आनंद हुआ, अरु इच्छा भी तब फुरती है, जब संसारकों सत्य जाणता है, अरु संसारकी सत्यता अहंताकरि भासती है, जब अहंतारूपी बीज नष्ट हो जावै, तब निर्वाणपदकी प्राप्ति होवै ॥ हे रामजी ! संसार कछु बन्या नहीं, भ्रमकरि सिद्ध हुआ है, सर्वही ब्रह्म है, तिस परमात्माविषे जो परिच्छिन्न अहंता फुरी, सोई उपाधि है ॥ हे रामजी ! बुद्धितें आदि लेकरि जेती यह दृश्य है, जिसकों अपणेविषे स्वाद नहीं देती, आकाशकी नांई रहता है, तिसकों संत मुक्तरूप कहते हैं ॥ हे रामजी ! इह अहं अविचारतें सत भासती है, विचार कियेतें असत्य हो जाती है, अनहोती अहंतानें दुःख दिया है, तातें तुम निरहंकार होकारि चेष्टा करहु, जैसे यंत्रीकी पुतली अभिमानतें रहित चेष्टा करती है, तैसे तुम निरहंकार होकारि चेष्टा करहु, अरु अपणे स्वरूपविषे स्थित होहु, त

वव्यवहार अरु अव्यवहार तुझकों तुल्य हो जावैगा, जैसे पवनकों स्पंद निस्पंद दोनों तुल्य होते हैं, तैसे तुम कों होजावैगा, अरु अहंकारतें रहित तेरी चेष्टा होवैगी, अहंताही दुःख है, जब अहंताका नाश हुआ, तव शांत पदकों प्राप्त होवैगा, अरु निर्मल अनामय पदकों प्राप्त होवैगा, जो सर्व पदार्थका अधिष्ठान है, अरु सव का अपणा आप है, तिसविषे न कोउ सुख है, न दुःख है, न कोउ इंद्रियांका विषय है, परम शांतरूप है ॥ इति श्रीयोगवासिष्ठे निर्वाणप्रकरणे परमनिर्वाणयोगोपदेशो नाम शताधिकाष्टपंचाशत्तमः सर्गः ॥ १५८ ॥

वसिष्ठ उवाच ॥ हे रामजी! जो ज्ञानवान पुरुष है सो निरावरण है, दोनों आवरणतें रहित है, एक असत्त्वापादक आवरण है, एक अभानापादक आवरण है, जो आत्मब्रह्मकी सत्यता हृदयविषे न भासे सो असत्त्वापादक है, तिसकों कहता है जो है नहीं, अरु जो सत्यता आत्माकी हृदयविषे भासे, परंतु दृढ प्रत्यक्ष न भासै, सो अभानापादक आवरण है, असत्त्वापादक आवरण अज्ञानीकों भासता है, अरु अभानापादक आवरण जिज्ञासीकों होता है, ज्ञानवानकों यह दोनों आवरण नहीं रहते, तातें उह निरावरण शांतरूप होता है, आकाशवत् निर्मल अरु निरालंव है, सो किसी गुणतत्त्वके आश्रय नहीं होता, अरु एक द्वैत भ्रम तिसका नष्ट हो जाता है, तिसनें आत्मरूपी तीर्थका स्नान किया है, सो आत्मरूपी तीर्थ कैसा है, जो अपवित्रकों भी पवित्र करता है, जिन पुरुषनें शरीरविषे आत्माका दर्शन किया है, तिनका शरीर भी पवित्र भया है, ऐसे पुरुषकों शरीरकी सत्यता नहीं रहती, अरु संसार भी नहीं रहता, आत्माके साक्षात्कार हुए सब इच्छा नष्ट हो जाती है, अरु सर्व ब्रह्मही तिसकों भासता है, द्वैत कछु नहीं भासता, सर्व आत्मस्वरूप है, तिसविषे संकल्पकरि नानाप्रकार सृष्टि भासती है ॥ हे रामजी! तुम संकल्पकी उर मत जावहु, काहेतें जो चित्तकी वृत्ति क्षणक्षणविषे परिणमती है, अनंत योजनपर्यंत चली जाती है, जो तिसके अनुभव करनेवाली सत्ता मध्यविषे है, जिसके आश्रय उह जाती है सो चिन्मात्र तेरा स्वरूप है, जव तिसविषे

स्थित होकरि देखैगा, तब फुरणेविषे भी ब्रह्मसत्ता भासैगी ॥ हे रामजी! यह संवित सदा प्रकाशरूप है, चित्तके क्षोभतें रहित है, द्वैतरूप विकारतें रहित शुद्ध है, अरु जेते कछु प्रकाश हैं, तिनके विरोधी भी हैं, दीपकका विरोधी पवन है, निर्वाणकरि लेता है, अरु सूर्यके विरोधी राहु केतु हैं, जो आच्छादि लेते हैं, अरु महाप्रलयविषे सर्व प्रकाश तमरूप हो जाता है, अरु आत्मप्रकाश तत्त्व सिद्ध है, तमकों भी प्रकाशता है, अरु सदा ज्ञानरूप एकरस है, तिसकों त्यागिकरि अवर कछु नहीं तुम लगणा ॥ हे रामजी! यह दृश्य सब मिथ्या है, जैसे जेवरीविषे सर्प अरु सीपीविषे रूपा कल्पित है, तैसे आत्माविषे विश्व कल्पित है, जब तूं जागिकरि देखैगा, तब सबका अभाव हो जावैगा, जैसे वंध्याके पुत्रके रूपका अभाव है, तैसे सब विश्व मिथ्या भासैगी, काहेतें जो है नहीं, भ्रममात्र स्वप्नकी नांई अविचारसिद्ध है, विचार कियेतें आत्मा ही है, इतर कछु नहीं, जैसे स्वप्नकी सृष्टि अनुभवतें इतर कछु नहीं, तैसे यह विश्व भी आत्मस्वरूप ज्ञान मात्र है, अहं मम देह इंद्रियादिक सब ज्ञानमात्र हैं, दृश्यही दूसरी कछु वस्तु नहीं, जब ऐसे निश्चयकों धारैगा, तब निःशोक होवैगा, अरु मोहतें भी रहित होवैगा, परमार्थसत्ता ज्योंकी त्यौं भासैगी, जैसे समुद्रविषे तरंग उठते हैं, तैसे आत्माविषे दृश्य उठती है, सो उहीरूप है, अरु जो इतर भासै सो मिथ्या है, अरु सब सृष्टि इसके अंतर स्थित है, अज्ञान करिके बाह्य भासती है, जैसे स्वप्नकी सृष्टि सब इसके अंतर होती है, अरु अपणा स्वरूप होता है, निद्रा दोष करिके बाह्य भासती है, जब जागता है, तब अपणाही स्वरूप भासता है, तैसे जाग्रत सृष्टि भी विचार कियेतें अपणे अनुभवविषे भासती है, तातें स्थित होकरि देख, जो सर्वदा जागती ज्योति है, तिसकों त्यागिकरि अवर यत्न करणा व्यर्थ है ॥ हे रामजी! अपणे अनुभवविषे स्थित होणा क्या कष्ट है, अरु जो कठिण जानते हैं, सो मूढ हैं, तिनकों मेरी धिक्कार है, काहेतें जो गउके पगकों समुद्रवत् जानते हैं, तिनोंतें अवर मूर्ख, कवन है, अनुभवविषे स्थित होणा, गउपग

की नांईही तरणा सुगम है, अरु जो अवर पदार्थ हैं, जिनके पावणेकी इच्छा करैगा, तिनविषे व्यवधान है, अरु आत्माविषे व्यवधान कछु नहीं, काहेतें जो अपणा आप है ॥ हे रामजी! जिन पुरुषनें आत्मा विषे स्थिति पाई है, तिनकों मोक्षकी इच्छा भी नहीं, तौ स्वर्गादिककी इच्छा कैसे होवै, मोक्ष अरु स्वर्ग आत्माविषे जेवरीके सर्पवत् मिथ्या भासते हैं, तिनकों केवल अद्वैत आत्मा निश्चय होता है ॥ हे रामजी! स्वप्नविषे सुषुप्ति नहीं, अरु सुषुप्तिविषे स्वप्न नहीं, इनके अनुभव करणेवाली शुद्ध सत्ता है, इह दोनों मिथ्या हैं, निर्वाण अरु जीणा तिनकों दोनों तुल्य हैं, ऐसे जाणीकरि इच्छा किसीकी नहीं करते, प्रपंच उनकों शशेके सिंग अरु वंध्याके पुत्रवत् भासते हैं ॥ हे रामजी! हमकों तौ सदा आकाशरूप भासता है, अरु जो तूं कहै, उपदेश क्यों करते हौ तौ हमकों भास कछु नहीं, तेरी इच्छाही तुझकों वसिष्ठरूप होकरि उपदेश करती है, हमकों विश्व सदा शून्यरूप भासता है, अरु हमकों चेष्टा करता भी अज्ञानी जानते हैं, हमारे निश्चयविषे चेष्टा भी नहीं, अरु हमारी चेष्टा अर्थाकार भी कछु नहीं, अरु अज्ञानीकी चेष्टा अर्था कार होती है, हमकों चेष्टा सत नहीं भासती, तातें अर्थाकार नहीं होती, जैसे ढोलका शब्द होता है, परंतु अर्थ उसका नहीं होता, जो क्या कहता है, अरु वाणीकरि शब्द बोलीता है, तिसका अर्थ होता है, तैसे हमारी चेष्टा अर्थाकार नहीं, अर्थ यह जो जन्मकों नहीं देती, अरु अज्ञानकी चेष्टा जन्मकों देती है, अरु हमकों संसार ऐसे भासता है, जैसे अवयवी सर्व अवयवकों अपणा स्वरूपही देखता है, हस्त पाद सीस आदिक सब अपणेही अंग देखता है, तैसे हमकों जगत अपणा स्वरूपही भासता है ॥ हे रामजी! जगतविषे एक ऐसे जीव दृष्ट आते हैं, जो तिनकों हम स्वप्नके जीव भासते हैं, अरु हमकों उह शून्य आ काशवत् दृष्ट आते हैं, अरु उनके हृदयविषे हम नानाप्रकारकी चेष्टा करते अवरकी नांई भासते हैं, अरु हमकों तौ जगत ऐसे भासता है, जैसे समुद्रविषे तरंग होते हैं, तैसे आत्माविषे जगत है, मैं भी ब्रह्म हौं,

तूं भी ब्रह्म है, जगत भी ब्रह्म है, रूप अवलोकन मनस्कार सब ब्रह्मरूप है, तातें तूं भी ब्रह्मकी भावना करु जो अपणे स्वभावविषे स्थित होणा परम कल्याण है, अरु पर स्वभावविषे स्थित होणा दुःख है ॥ हे रामजी ! अपणा स्वभाव साधणा इसीका नाम मोक्ष है, अरु न साधणा इसीका नाम बंधन है ॥ हे रामजी ! अवर पदार्थ इस ऊपर उपकार कोउ करी नहीं सकता, न धन, न कोउ मित्र, न कोउ क्रिया, एक अपणा पुरुषार्थ उपकार करता है, सो पुरुषार्थ यही है जो अपणा चेतन स्वभाव है, तिसीविषे स्थित होणा, परंतु स्वभावका त्याग करणा, अरु जब अपणे स्वभावविषे स्थित होवैगा, तब सब अपणा स्वरूपही भासैगा, अरु जो तूं स्वरूपतें इतर करि देखै तौ न मैं हौं, न तूं है, न जगत है, सब भ्रममात्र है, मृगतृष्णाके जलवत् भासता है, अथवा ऐसे जाण जो मैं भी ब्रह्म हौं, तूं भी ब्रह्म है, जगत भी ब्रह्म है, अथवा ऐसे जाण न तूं है, न मैं हौं, न जगत है, पाछे जो शेष रहैगा, सो तेरा स्वरूप है ॥ हे रामजी ! जिन पुरुषकों ऐसे निश्चय हुआ है, जो मैं तूं जगत सब ब्रह्म है, अथवा मैं तूं जगत सब मिथ्या है, तिनकों बहुरि इच्छा कोउ नहीं रहती, अरु जिनकों इच्छा उठती है तौ जाणियें जो ब्रह्म आत्माका साक्षात्कार नहीं भया, जब भोगकी वासना निवृत्त होवै, अरु संसार विरस हो जावै, तब जाणियें जो यह संसारके पारकों प्राप्त भया, अथवा होवैगा ॥ हे रामजी ! यह निश्चय करिके जाण जो जिसकों भोगकी वासना क्षीण होती है, तिसकों स्वभावरूपी सूर्य उदय होता है, अरु भोगकी तृष्णारूपी रात्रि नष्ट होती है, यद्यपि तिसविषे प्रत्यक्ष भोगकी तृष्णा दृष्ट आती है, तौ भी उसकी भास जाती रहती है, अरु ब्रह्मसत्ता भासती है, अरु संसारकी उरतें सुषुप्ति हो जाती है, मृतककी नांई होता है, अरु अपणे स्वरूपविषे सदा जाग्रत है, अपणे स्वभावरूपी अमृतविषे मग्न होता है ॥ ॥ इति श्रीयो० निर्वा० वसिष्ठगीतोपदेशो नाम शताधिकैकोनषष्टितमः सर्गः ॥ १५९ ॥

॥ वसिष्ठ उवाच ॥ हे रामजी ! रूप अवलोकन मनस्कार यह पर स्वभाव हैं, तिनकों ब्रह्मरूप जाण,

परस्वभाव क्या अरु ब्रह्मरूप क्या है॥ हे रामजी! तेरा स्वरूप शुद्ध आकाश है, तिसविषे जो रूप अवलोकन मनस्कार फुरै है, सो सो प्रकृतिकी मायाकरि फुरै है, सो माया स्वभाव करिके परस्वभाव है, परंतु अधिष्ठान इनका आत्मसत्ता है, तातें आत्मस्वरूप है, आत्माके जानणेतें इनका अभाव हो जाता है॥ हे रामजी! जब इसकों ज्ञान उपजता है, तब संसार स्वप्नवत् हो जाता है, संसारकी सत्ता कछु नहीं भासती, अरु जब दृढता हुई तब सुषुप्त हो जाता है, इनका भाव भी नहीं रहता, तुरीयाविषे स्थित होता है, अरु जब तुरीयातीत होता है, तब अभावका भी अभाव हो जाता है, परम कल्याणरूप सत्तासमान पदकों प्राप्त होता है, सो आदि अंततें रहित परमपद है, ऐसा ब्रह्मस्वरूप मैं हौं, अरु परम शांतरूप हौं, अरु निर्दोष हौं, अरु जगत भी सब ब्रह्मरूप है, हमकों सदा यही निश्चय रहता है, अरु ऐसा उत्थान नहीं होता, जो मैं वसिष्ठ हौं, सदा आत्मस्वरूपका निश्चय रहता है, परिच्छिन्न अहंकार हमारा नष्ट हो गया है, तातें निरहंकार पदविषे हम स्थित हैं, जब तूं ऐसे होकरि स्थित होवैगा, तब परम निर्मल स्वरूप हो जावैगा, जैसे शरत्कालका आकाश निर्मल शोभता है, तैसे तूं शोभैगा॥ हे रामजी! ऐसे पुरुषकों बंधन है सो श्रवण कर, जिस बंधनकरि आत्मपदकों नहीं प्राप्त होता, प्रथम धन मणिका बंधन है, भोगकी तृष्णा अरु बांधवका बंधन है जिसकों, इन तीनोकी वासना रहती है, तिसकों मेरी धिक्कार है, बडे अनर्थके देणेहारी यह वासना है, यह भोग हैं, सो महारोग है, अरु बांधव दृढ बंधनरूप हैं, अरु अर्थकी प्राप्ति अनर्थका कारण है, तातें इस वासनाकों त्यागिकरि आत्मपदविषे स्थित होहु, यह संसार भ्रममात्र है, इसकी वासना करणी व्यर्थ है, इसकों सत नहीं जानणा, अरु यह जो तुझकों संग मिलाप भासता है सो कैसा है, जैसे बैठे हुए स्मरण आवै, जो मैं अमके साथ मिल्या था, तब उह प्रतिभा प्रत्यक्ष हृदयविषे भासती है, अरु जैसे संकल्पकरि नगर रचि लिया तिसविषे मूर्त्त्यां मनुष्यादिक भासणे लगें, तैसे यह जगत भी जाण॥ हे रामजी! तूं मैं

अरु यह जगत भ्रममात्र संकल्प नगरके समान है, जैसे भविष्यत नगरकी रचना है; तैसे यह जगत है, अरु कर्त्ता क्रिया कर्म जो भासते हैं, सो भी भ्रममात्र हैं, केवल आत्मासत्ताही अपणे आपविषे स्थित है, आत्मरूपी आकाशविषे यह जगतरूपी पुतलियां हैं, अरु संकल्पमात्र प्रत्यक्ष हुआ है, वास्तवतें केवल शांतरूप आत्मतत्त्व है ॥ हे रामजी! जो पुरुष स्वभावनिष्ठ हैं, तिनकों आत्मतत्त्वही भासता है, अरु जिनकों आत्मतत्त्वका प्रमाद है, तिनकों नानाप्रकारका जगत भासता है, अरु आत्माविषे यह जगत कछु आरंभ परिणाम करिके बन्या नहीं, जैसे सूर्यकी किरणांविषे अज्ञान करिके जलाभास भासते हैं, तैसे आत्माविषे अज्ञान करिके जगतकी प्रतीति होती है, जब आत्माका सम्यक् ज्ञान होवै, तब जगतभ्रम निवृत्त हो जानता है,जेसे सूर्यकी किरणां जानणेतें जलभ्रम निवृत्त हो जाता है, अरु जैसे स्वप्नतें जागे हुए स्वप्नसृष्टि अपणा आपही भासती है, तैसे अविद्याके नाश हुए सब अपणा आपही भासता है ॥ ॥ इति श्रीयोगवासिष्ठे निर्वाणप्रकरणे वसिष्ठगीतासंसारोपदेशो नाम शताधिकषष्टितमः सर्गः ॥ १६० ॥ ॥ ॥

॥ वसिष्ठ उवाच ॥ हे रामजी! रूप अवलोकन मनस्कार सब ब्रह्मरूप है, जिसकों ज्ञान प्राप्त होता है, तिसकों सब ब्रह्मस्वरूप भासता है, यही ज्ञानका लक्षण है, अरु ज्यौं ज्यौं ज्ञानकला उदय होती है, त्यौं त्यौं भोगवासना क्षीण होती जाती है,जब पूर्ण बोधकी प्राप्ति होती है, तब इच्छा किसीकी नहीं रहती, जैसे ज्यौं ज्यौं सूर्य प्रकाशता है, त्यौं त्यौं अंधकार नष्ट होता जाता है, जब पूर्ण प्रकाश हुआ, तब रात्रिका अभाव हो जाता है, तैसे जिसकों ज्ञान उत्पन्न हुआ है, तिसकों भोगकी वासना नहीं रहती, अरु संसार तिसकों जले वस्त्रकी नांई भासता है, अरु अज्ञानीकों सत्य भासता है, जैसे स्वप्नविषे सुषुप्ति नहीं होती, अरु सुषुप्तिविषे स्वप्न नहीं होता, स्वप्नका पुरुष सुषुप्तिकों नहीं जानता, अरु सुषुप्तिवाला स्वप्नवालेकों नहीं जानता, तैसे जिनकों तुरीयापदकी प्राप्ति होती है, तिनकों संसारका अभाव हो जाता है, अरु अपणे स्वभाव

विषे स्थित होता है, अरु संसारकों सत जानते हैं, सो स्वप्ननगर हैं, सुषुप्तिकों नहीं जानते ॥ हे रामजी! तेरा स्वरूप जो तुरीयापद है, तिसकों अज्ञानी जाणी नहीं सकते, अरु जो जानै तौ परिच्छिन्न अहंकार तिसका नष्ट हो जावै, जब अहंकार नष्ट हुआ, तब सर्व आत्मा हुआ ॥ हे रामजी! इसकों अहंतानें तुच्छ किया है, तातें अहंतारूप दृश्यका तुम त्याग करहु, अरु अपणे स्वभावविषे स्थित होहु, अरु संसाररूपी एक पुतली है, सो भ्रमकरि उठी है, तिसका सीस ऊर्ध्व ब्रह्मलोक है, पाद अरु गिटे इसके पाताल लोक है, अरु दशों दिशा इसके वक्षस्थल हैं,अरु चंद्रमा सूर्य इसके नेत्र हैं,तारागण इसके रोम हैं, आकाश इसके वस्त्र हैं, अरु सुखदुःखरूपी स्वभाव है, अरु पवन इसका प्राणवायु है, बगीचे इसके भूषण हैं, द्वीप अरु समुद्र इसके कंकन हैं, लोकालोक पर्वत इसके मेखला हैं ॥ हे रामजी! ऐसी जो पुतली है, सो नृत्य करती है, सो क्या है, जैसे समुद्रविषे तरंग उपजते अरु नाश होते हैं, परंतु जलही है, तैसे जलकी नांई सर्व ब्रह्मरूप है, अरु भ्रम करिके विकार दृष्ट आते हैं ॥ हे रामजी! कर्त्ता क्रिया कर्म भी सब आत्मस्वरूप है, जब तूं आत्माकी भावना करैगा, तब तेरा हृदय आकाशवत् शून्य हो जावैगा, जैसे पत्थरकी शिला जड होती है, तैसे तेरा हृदय जगततें जड शून्य हो जावैगा ॥ हे रामजी! आत्मपद शांतरूप है, अरु आकाशवत् निर्मल है, जैसे आकाशविषे आकाश स्थित है, तैसे आत्माविषे जगत है, न उदय होता है, न अस्त होता है, केवल शांतरूप है, अरु उदय अस्त भी तब होती है, जब कछु दूसरी वस्तु होती है, सो जगत कछु भिन्न नहीं, आत्मस्वरूपही है, द्वैत अरु एक कल्पनातें रहित आत्मा अपणे आपविषे स्थित है ॥ इति श्रीयोगवासिष्ठे निर्वाणप्रकरणे जगदुपशमयोगोपदेशो नाम शताधिकैकषष्टितमः सर्गः ॥ १६१ ॥ ॥

॥ वसिष्ठ उवाच ॥ हे रामजी! यह विश्व आत्माका चमत्कार है, जैसे मृत्तिकाकी पूलती मृत्तिकारूप होती है, जैसे कागदकी पूतली कागदरूप होती है, तैसे विश्व आत्मरूप है, जैसे मृत्तिका दीपक देखणेमा

त्र होता है, प्रकाशका कार्य नहीं करता, तैसे यह जगत देखणेमात्र है, विचार कियेतें आत्माविना इतर सत्ता कछु नहीं, तातें जगतकी सत्यता आत्मातें भिन्न कछु नहीं, जगतकी आस्था आत्माके आश्रित होती है, जैसे जलविषे तरंग, अरु आकाशविषे शून्यता, अरु पवनविषे फुरना है, तैसे आत्माविषे जगत अभिन्नरूप है, जैसे वायु चलती है, तब भी पवन है, उसकों वायुका निश्चय है, तैसे चेतनविषे निश्चय है, जो जगत उही स्वरूप है, तातें चेतन है, ज्ञानवान सो जाणता है, जो जगत मेराही स्वरूप है ॥ हे रामजी! यह आश्चर्य देख, जो जगत कछु दूसरी वस्तु नहीं, अरु भ्रम करिके भिन्न भासता है, जैसे कथाविषे कथाके पुरुष विद्यमान भासते हैं, जो शुद्ध करते हैं, इत्यादिक अवर क्रिया करते हैं, तैसे यह जगत भी मनोमात्र जाण ॥ हे रामजी! जो विद्यमान है सो अविद्यमान हो जाता है, अरु जो अविद्यमान है, सो विद्यमान हो जाता है, जैसे स्वप्नविषे जगत अनुभवस्वरूप है, इतर कछु नहीं, तैसे जाग्रत जगत विचारकरि देखैगा, तब ब्रह्मस्वरूपही भासैगा, जैसे जो पुरुष सोया होता है, अरु स्वप्न जगत तिसही का रूप है, परंतु जबलग निद्रादोष है, तबलग भिन्न भासता है, अरु जब जाग्या, तब सब अपणा ही आप भासता है, तैसे जब यह पुरुष अपणे स्वरूपविषे स्थित होकरि देखता है, तब सब अपणा आपही भासता है ॥ हे रामजी! रूप अवलोकन मनस्कार भी ब्रह्मस्वरूप है, अरु आत्मा इंद्रियांका विषय नहीं, निराकार है, अरु मनके चिंतवणेतें रहित है, संकल्पकरि आपहीरूप अवलोकन मनस्कारकरि स्थित हुआ है, इतर नहीं, सर्व उही है, अरु तिसीकों केई शिव कहते हैं, केई ब्रह्म कहते हैं, केई आत्मा कहते हैं, केई शून्य कहते हैं, इत्यादिक नाम तिसीके शास्त्रकारनें कहे हैं, सो संकल्पविषे कहे हैं, अरु आत्मा केवल चिन्मात्र है, वाणीका विषय नहीं, शांतरूप है, अरु चैत्य जो है दृश्य तिसतें रहित है, सर्व शब्द अर्थका अधिष्ठान है, अरु जगत उसका चमत्कार है ॥ हे रामजी! आत्माविषे एक अरु द्वैतक

ल्पना कोउ नहीं, काहेतें जो आत्मत्वमात्र है, अरु जगत भी आत्मरूप है, जैसे आकाश अरु शून्यता विषे भेद कछु नहीं, तैसे आत्माविषे अरु जगतविषे भेद कछु नहीं ॥ हे रामजी! ऐसे भी किसी देश अथवा किसी कालविषे होवै, जो स्वर्ण अरु भूषणाविषे कछु भेद होवै, स्वर्ण भिन्न होवै, अरु भूषण भिन्न होवै, परंतु आत्मा अरु जगतविषे कछु भेद नहीं, ऐसेही आत्मा प्रकाशता है, अरु अपणे स्वभावविषे स्थित है, अवर दूसरी वस्तु कछु नहीं, जैसे मृत्तिकाकी सैना नानाप्रकारकी संज्ञाकों धारती है, परंतु मृत्तिकातें इतर कछु दूसरी वस्तु नहीं, तैसे फुरणे करिके नानाप्रकारकी संज्ञा दृष्ट भी आती हैं, परंतु आत्मातें भिन्न कछु नहीं, उही रूप है ॥ हे रामजी! जो पदार्थ भासते हैं, सो अनुभव करिके भासते हैं, पदार्थकी सत्ता अनुभवतें इतर कछु नहीं, जब तूं अनुभवविषे स्थित होकरि देखैगा, तब अनुभवरूप अपणा आपही भासैगा, अपणा स्वभाव ज्ञानमात्र है, तिसके जानणेका नाम ज्ञान है ॥ हे रामजी! ज्ञानविना जो तप यज्ञ दान आदिक क्रिया हैं सो सब व्यर्थ हैं, सब क्रियाकी सिद्धता ज्ञानकरि होती है, जैसे उलूककी क्रिया रात्रिविषे होती है, सो दिन हुएतें मिथ्या हो जाती है, तैसे तप दान आदिक क्रिया ज्ञानके उदयविना व्यर्थ होती है, हे रामजी! जो कछु क्रिया ज्ञानके निमित्त करियें सो पुरुषप्रयत्न श्रेष्ठ है, अरु इसतें अन्यथा है, सो व्यर्थ है, अरु धनके उपजावणेविषे भी अनर्थ होता है, अरु राखणेविषे भी नष्ट है, परंतु जो ज्ञानके साधननिमित्त इसकों राखियें अरु दीजियें, तब यह अमृत हो जाता है ॥ हे रामजी! यह जगत भ्रममात्र है, जैसे मलिन नेत्रवालेकों रूपविपर्यय भासता है, जैसे स्वप्नसृष्टि होती है, तिसविषे अज्ञ तज्ञ भी भासते हैं, परंतु असतरूप हैं, तैसे यह जगत जो विद्यमान भासता है, सो अविद्यमान है, अरु आत्मा सदा विद्यमान है ॥ हे रामजी! जो विद्यमान देव विष्णु है, तिसकों त्यागिकरि अवर देवका पूजन करते हैं, तिनकी पूजा सफल नहीं होती, अरु विष्णु तिसपर कोपायमान भी होता है, सो विष्णु देव विद्यमान

कैसे है, श्रवण कर ॥ हे रामजी! आत्मा अनुभवरूप सो विद्यमान देखे है, तिसकों त्यागिकरि जो अव
रका पूजन करते हैं, सो जन्ममरणके बंधनतें मुक्त नहीं होते, मूढताविषे रहते हैं, अरु आत्मदेवकी पूजा
श्रवण कर, जो कछु अनिच्छित आवै सो तिसकों अर्पण करियें, अरु ऐसी पूजाविषे भी स्थित नहीं हो
णा, जो इसके जानणेवाला है, तिसविषे अहंप्रत्यय करणी यह बडी पूजा है ॥ हे रामजी! इस आत्मदेव
तें इतर जो सूर्य चंद्रमा आदिक भेद पूजा है, सो तुच्छ है, जब तूं आत्मपूजाविषे स्थित होवै, तब अवर
पूजा तुझकों सूके तृणकी नांई भासैंगी, अरु दान भी आत्मदेवकों करणा है, सो किस करिके करणे योग्य
है, बोध करिके करणे योग्य है, अरु कैसे उत्पन्न होता है, प्रथम वैराग्य अरु धैर्य बोधका कारण है, अरु
संतोष होवै, यथालाभविषे संतुष्ट होणा अरु ब्रह्मविद्याका विचार करणा, अरु संतका संग करणा, इन सा
धनकरि जब बोधरूपी सूर्योदय होवैगा तब द्वैतरूपी अंधकार नष्ट हो जावैगा, ज्ञानरूपही भासैगा, बहुरि जो
ज्ञान उपजा है,सो भी शांत हो जावैगा, तातें उसी देवकी पूजा करु, जिस करिके आत्मपदकी प्राप्ति होवै, अरु
आत्मदेवकी पूजाके निमित्त फूल भी चाहियें, सो आत्मविचार करणा,अरु सम जो है, चित्तकी वृत्ति अंतर्मुख
करणी, अरु यथालाभविषे संतुष्ट रहणा, संतकी संगती करणी, इन फूल करिके नैवेदन करणा, यह पूजा भी
तब होती है, जब अंतःकरण शुद्ध होता है, अरु तिसकरि ज्ञान उत्पन्न होता है, जब ज्ञान उपज्या, तब आ
त्मदेवका साक्षात्कार होता है, सो ज्ञानका लक्षण श्रवण करु, गुरु अरु शास्त्रतें जो वस्तु सुणी है, तिसविषे
स्थिति होती है, अरु संसारकी वासना क्षीण हो जाती है, तब ज्ञानी कहाता है, जब इस ज्ञानकी पूर्णता
होती है, तब जगत उसकों ब्रह्मस्वरूपही भासता है, उसकों शस्त्र काटि नहीं सकते, अरु सिंह सर्पका भेद
नहीं होता, अग्नि अरु विषका भय भी नहीं होता ॥ हे रामजी! यह विश्व सब आत्मरूप है, जैसी भा
वना करीती है, तैसाही आगे हो भासता है, जब शस्त्रविषे शस्त्रके अर्थकी भावना होती है, तब शस्त्र हो

खेता है, अरु जो ज्ञानवान है तिसकों जगतभ्रमका अभाव है, अब ज्ञानी अरु अज्ञानी दोनोंका लक्षण श्रवण कर ॥ हे रामजी! जैसे किसी पुरुषकों ताप चढता है, तिसका हृदय जलता है, अरु तृषा बहुत होती है, अरु जिसका ताप नष्ट हो गया, तिसका हृदय शीतल होता है, अरु जलकी तृषा भी नहीं होती, तैसे जिस पुरुषकों अज्ञानरूपी ताप चढ्या हुआ है, तिसका हृदय जलता है, अरु भोगरूपी जलकी तृष्णा बहुत होती है, अरु जिसके हृदयतें अज्ञानरूपी ताप मिटि गया है, तिसका हृदय शीतल होता है, अरु भोगरूपी जलकी तृष्णा मिट जाती है, अब ताप निवृत्त करणेका उपाय श्रवण कर, शास्त्रके अर्थवादकरि बुद्धि विभ्रम हो जाती है, अरु मैं तुझकों सुगम उपाय कहता हौं, जो निरहंकार होणा, यही सुगम उपाय है, न मैं हौं, न यह जगत है, जब तूं ऐसे निश्चयकों धारैगा, तब सब जगत तुझकों ब्रह्मस्वरूप भासैगा, अरु किसी पदार्थकी वांछा न रहैगी, जब सब पदार्थकों मिथ्या जाणीकरि अपणा भी अभाव करैगा, तब पाछे प्रत्यक् चेतन परमानंदस्वरूप सबका अधिष्ठान शेष रहैगा ॥ हे रामजी! यह अहंतारूपी यक्ष जो उठ्या है सो मिथ्या है, अरु इस मिथ्या पुरुषनें नानाप्रकार जगत कल्प्या है सो अहंकार भी मिथ्या है, अरु जगत भी मिथ्या है, जब तूं अपणे स्वरूपविषे स्थित होवैगा, तब जगतभ्रम मिटि जावैगा, जैसे स्वप्नविषे जगत भासता है, अरु सुंदर पदार्थ भासते हैं, तिनकी इच्छा करता है, जबलग जाग्या नहीं तबलग जाणता है जो सदैव यह पदार्थ हैं, नाश कदाचित् नहीं होणा, अरु कहता है, जो अमका रूप देखियें, अमका भोजन करियें, इत्यादिक इच्छा करता है, जब जागी उठ्या तब जाणता हैजो मेराही संकल्प था, बहुरि उह पदार्थ, सुंदर स्मरण भी होते हैं, अथवा भासते हैं तो भी उनकों मिथ्या जाणता है, तैसे जब आत्मस्थितिविषे जागता है तब सर्व ब्रह्मही भासता है॥ हे रामजी! इस जगतका बीज अहंता है, जैसे दुःखका बीज पाप होता है, तैसे जगतका बीज अहंता है, तातें तुम निरहंकार पदविषे स्थित होहु, यह सब

भासते हैं, सर्प अग्निविषे सब अपणे अपणे अर्थाकार भासते हैं, अरु जो सर्व आत्मभावना करीती है, तब सर्व आत्माही भासता है, दूसरी वस्तु कछु बनी नहीं, तौ दिखाइ कैसे देवै अरु जो पुरुष कृतकृत्य नहीं भया, अरु आपकों कृतार्थ मानता है, अरु दुःखनिवृत्तिका उपाय नहीं करता, तौ दुःखके आयेतें दुःख ही देवैगा, अरु दुःख इसकों चलाये ले जावैगा, अरु सुख जब आवैगा तब सुख भी इसकों चलाये ले जावैगा ॥ हे रामजी! जो पुरुष सर्व ब्रह्म कहता है, वाणी करिके अरु निश्चयतें रहित है, अरु शास्त्र भी बहुत देखता है, तब उह महामूर्ख है, जैसे जन्मका अंध होता है, अरु सूर्यकों नहीं जानता है, तैसे उह आत्मअनुभवतें रहित है, जब आत्मपदका साक्षात्कार होवैगा, तब ऐसे आनंदकों प्राप्त होवैगा, जिसके पाएतें अवर पदार्थ रसतें रहित भासैंगे,ब्रह्मातें आदिक काष्ठपर्यंत सब पदार्थ विरस हो जावैंगे, तातें आत्मपरायण होहु; सदा आत्मपदकी भावना करहु ॥ हे रामजी! जैसी भावना होती है, तैसा जगत भासता है; जैसे शुद्ध मणिके निकट जैसी वस्तु राखियें तैसा प्रतिबिंब होता है, तैसेही जैसी भावना करता है, तैसा रूप जगत भासता है, तातें जगत ब्रह्मरूप जाण, अवर दूसरा भासै सो भ्रममात्र जाण, जैसे पत्थरकी शिला उपर पुतलियां लिखते हैं, सो शिलारूपही हैं, तैसे यह जगत सब आत्मस्वरूप है, जब आत्मपदकी तुझकों प्राप्ति होवैगी, तब सब पदार्थ विरस होवैंगे ॥ हे रामजी! यह जगत मिथ्या है, जो पुरुष इस जगतकों पदार्थ करि जाणता है, अरु कहता है, हम मुक्त होवैंगे, सो ऐसे है, जैसे अंधकूपविषे जन्मका अंध गिरै, अरु कहै, अंधकारकेसाथ मैं सचक्षु होउंगा सो मूर्ख है, तैसे आत्मज्ञानाविना मुक्त नहीं होता ॥ ॥ इति श्रीयोगवासिष्ठे निर्वाणप्रकरणे पुनर्निर्वाणोपदेशो नाम शताधिकद्विषष्टितमः सर्गः ॥ १६२ ॥ ॥ ॥ ॥

॥ वसिष्ठ उवाच ॥ हे रामजी! अहंतातें आदि लेकरि जो जगत भासता है सो मिथ्या भ्रम करिके उदय हुआ है, इसकों त्यागिकरि अपणे अनुभव स्वरूपविषे स्थित होहु, इस मिथ्या जगतविषे आस्था करणेकी मू

कैसे है, श्रवण कर ॥ हे रामजी! आत्मा अनुभवरूप सो विद्यमान देखे है, तिसकों त्यागिकरि जो अवरका पूजन करते हैं, सो जन्ममरणके बंधनतें मुक्त नहीं होते, मूढताविषे रहते हैं, अरु आत्मदेवकी पूजा श्रवण कर, जो कछु अनिच्छित आवै सो तिसकों अर्पण करियें, अरु ऐसी पूजाविषे भी स्थित नहीं होणा, जो इसके जानणेवाला है, तिसविषे अहंप्रत्यय करणी यह बडी पूजा है ॥ हे रामजी! इस आत्मदेवतें इतर जो सूर्य चंद्रमा आदिक भेद पूजा है, सो तुच्छ है, जब तूं आत्मपूजाविषे स्थित होवै, तब अवर पूजा तुझकों सूके तृणकी नांई भासैंगी, अरु दान भी आत्मदेवकों करणा है, सो किस करिके करणे योग्य है, बोध करिके करणे योग्य है, अरु कैसे उत्पन्न होता है, प्रथम वैराग्य अरु धैर्य बोधका कारण है, अरु संतोष होवै, यथालाभविषे संतुष्ट होणा अरु ब्रह्मविद्याका विचार करणा, अरु संतका संग करणा, इन साधनकरि जब बोधरूपी सूर्योदय होवैगा तब द्वैतरूपी अंधकार नष्ट हो जावैगा, ज्ञानरूपही भासैगा, बहुरि जो ज्ञान उपजा है,सो भी शांत हो जावैगा, तातें उसी देवकी पूजा करु, जिस करिके आत्मपदकी प्राप्ति होवै, अरु आत्मदेवकी पूजाके निमित्त फूल भी चाहियें, सो आत्मविचार करणा, अरु सम जो है, चित्तकी वृत्ति अंतर्मुख करणी, अरु यथालाभविषे संतुष्ट रहणा, संतकी संगती करणी, इन फूल करिके नैवेदन करणा, यह पूजा भी तब होती है, जब अंतःकरण शुद्ध होता है, अरु तिसकरि ज्ञान उत्पन्न होता है, जब ज्ञान उपज्या, तब आत्मदेवका साक्षात्कार होता है, सो ज्ञानका लक्षण श्रवण करु, गुरु अरु शास्त्रतें जो वस्तु सुणी है, तिसविषे स्थिति होती है, अरु संसारकी वासना क्षीण हो जाती है, तब ज्ञानी कहाता है, जब इस ज्ञानकी पूर्णता होती है, तब जगत उसकों ब्रह्मस्वरूपही भासता है, उसकों शस्त्र काटि नहीं सकते, अरु सिंह सर्पका भेद नहीं होता, अग्नि अरु विषका भय भी नहीं होता ॥ हे रामजी! यह विश्व सब आत्मरूप है, जैसी भावना करीती है, तैसाही आगे हो भासता है, जब शस्त्रविषे शस्त्रके अर्थकी भावना होती है, तब शस्त्र हो

वैगा, केवल परमार्थसत्ता भासैगी, इसीका नाम निर्वाण है, अरु यह चारों भूमिका शांतिके स्थान हैं, जैसे कोउ पैंढेंकरि तपता आवै, अरु तिसकों शीतल स्थान प्राप्त होवै तब शांतिकों पावता है, तैसे यह चारों शांतिके स्थान हैं, निर्वाणता, अरु निरहंकारता, अरु वासनाका त्याग, अरु परम उमशम इन करिके ज्ञेयविषे स्थित होणा यह शांतिका स्थान है, जब तूं स्थित होवैगा, तब द्रष्टा दर्शन दृश्य त्रिपुटीका अभाव हो जावैगा, केवल द्रष्टाही रहैगा ॥ हे रामजी! द्रष्टा भी उपदेश जतावणेकेनिमित्त कहा है, जब दृश्यका अभाव हुआ तब द्रष्टा किसका होवै, केवल अपणे आपविषे स्थित है, द्वैत जो है चैत्य, तिसतें रहित अद्वैत चेतन है, शुद्ध है, तिसविषे स्थित होकरि जगतका त्याग करु, यह जगतबुद्धि जन्मके देणेहारी है, जो जगतके पदार्थ सुखदायी भासते हैं, सो दुःखके देणेहारे हैं, इनका विष जाणिकरि त्याग कर, जैसे आकाशविषे तरवरे भासते हैं, तैसे यह जगत अणहोता भासता है, आत्माविषे दृश्य अवर कछु नहीं, एकही पदार्थविषे दो दृष्टि हैं, ज्ञानी उसकों आत्मा जाणते हैं, अरु अज्ञानी जगत जाणते हैं ॥ दोहा ॥ सब भूतन की रात्रि सो, संतनका दिन होय; जो लोकन दिन मानिया, संत रहै तब सोय ॥ १ ॥ ज्ञानी परमार्थ तत्त्वविषे जागे हैं, अरु संसारकी उरतें सोए रहे हैं, अरु अज्ञानी परमार्थतत्त्वतें सोए हुए हैं, अरु संसारकी उर सावधान हैं ॥ हे रामजी! यह जगत मनतें फुऱ्या है, अरु ज्ञानीका मन सतपदकों प्राप्त भया है, इस करिके जगतकी भावना नहीं फुरती, जैसे बालककों संसारके पदार्थका ज्ञान नहीं होता, तैसे ज्ञानीके निश्चयविषे जगत कछु वस्तु नहीं ॥ हे रामजी! जब ज्ञान उपजता है, तब जगत कछु भिन्न वस्तु नहीं भासता, जैसे जलकी बुंद जलविषे डारियें तो भिन्न नहीं भासती, तैसे ज्ञानीकों जगत भिन्न नहीं भासता, जैसे बीजविषे वृक्ष होता है, तैसे मनविषे जगत स्थित होता है, जैसे वृक्ष बीजरूप है, तैसे जगत मनरूप है, जब जगत नष्ट होवै, तब मन भी नष्ट हो जावैगा, अरु मन नष्ट होवै, तब दृश्य भी नष्ट होवैगी, एकके अभाव

हुए दोनोंका अभाव हो जाता है, अरु मन नष्ट होवै, तौ फुरना भी नष्ट होवै, अरु फुरना नष्ट होवै तौ मन भी नष्ट होता है॥ हे रामजी! यह जगतके अंतर बाहिर जो भासता है, सोइ मन है, तातें मनकों स्थिर करि देखैगा, तब जगतकी सतता नहीं भासैगी, अज्ञानीके हृदयविषे जगत दृढ स्थित है, तातें दुःख पावता है, जैसे बालककों अपणे परच्छायेविषे भूत भासता है, अरु दुःख पावता है, अरु अवर कोउ निकट खडा है, तिसकों नहीं भासता, उह दुःख नहीं पावता॥ हे रामजी! यह जगत कछु सत वस्तु होती तौ ज्ञानवानकों भी भासता, सो ज्ञानीकों नहीं भासता, तातें जगत कछु वस्तु नहीं, जैसे एकही स्थानविषे दो पुरुष बैठे हैं, अरु एककों निद्रा आई है, तिसकों स्वप्न जगत भासता है, अरु नानाप्रकारकी चेष्टा होती है, अरु दूसरा जो जागता बैठा है, तिसकों उसका जगत नहीं भासता, तैसे जो पुरुष परमार्थसत्ताविषे जागृत है, तिसकों जगत शून्य भासता है॥ हे रामजी! इह जगत मिथ्या है, तिसकी तृष्णा तूं काहेकों करता है, अपणे स्वभावविषे स्थित होहु, यह जगत परस्वभाव है, ऐसे जाणीकरि भावै जैसी चेष्टा करु, तुझकों बंधन न करैगी, अरु पूर्व पदकी प्राप्ति होवैगी, जैसे सूके तृण अग्निके जले हुएकों पवन उडाय ले जाता है, तब नहीं जाणीता, जो कहां गया, तैसे ज्ञानरूपी अग्निकरि जलाया, अरु निरहंकारतारूपी पवनकरि उडाया, संसाररूपी तृण न जानैगा, जो कहां गया, जैसे लाख योजनपर्यंत चल्या जावै तौ भी आकाशही दृष्ट आता है, सब सृष्टिकों धारि रहा है,तैसे सब दृश्यकों जगतकों आत्मा धारता है, संसारका शब्द अर्थ आत्माविषे कोउ नहीं, इसकों छोडीकरि देख जो सर्व शब्द अर्थका अधिष्ठान आत्माही है॥ हे रामजी! रूप अवलोकन मनस्कार मिथ्या उदय हुए हैं, तातें इनका त्याग करु, जैसे मरुस्थलविषे जलाभास मिथ्या है, तैसे आत्माविषे जगत मिथ्या भ्रममात्र है, इसके संबंध करिके दुःखी होता है, जैसे जेवरीविषे सर्प अरु सीपिविषे रूपा मिथ्या है, तैसे आत्माविषे जगत है, तूं आत्मा ब्रह्म है, अरु दुःखतें रहित है, अपणे स्वभावविषे स्थित होहु, अरु

आत्मदृष्टि करिके देख जो सर्व आत्मा है, अथवा जगतकों मिथ्या जाण तौ भी शेष आत्मपद रहैगा, जैसे जाग्रत स्वप्न षुसुप्तिके अभाव हुए शांतपद शेष रहता है, तैसे जगतके अभाव किएतें आत्मपद शेष भासैगा, यह जगत अत्यंत अभाव है, अरु जो दृष्टि आता है, सो भ्रममात्र है, एक कालविषे होता है, अरु दूसरे कालविषे नष्ट हो जाता है, स्वप्नविषे जाग्रतका अभाव हो जाता है, अरु जाग्रतविषे स्वप्नका अभाव हो जाता है, अरु सुषुप्तिविषे दोनोंका अभाव हो जाता है, तातें भ्रममात्र है, अरु विश्व आत्माका चमत्कार है, जैसे समुद्रविषे तरंग होते हैं, तैसे आत्माविषे जगत है, अहंता करिके उदय होता है, अहंताके अभावतें अभाव हो जाता है, जिनकों अहंताका अभाव हुआ है, उही संत हैं, अरु उत्तम पुरुष हैं, तिन महानुभाव पुरुषोंका अभिमान नष्ट हो गया है, अरु भोगकी आशा नष्ट हो जाती है, उह निर्भ्रांतिरूप नित्यही समाधिरूप होते हैं॥ ॥ इति श्रीयोगवासिष्ठे निर्वाणप्रकरणे ब्रह्मैकताप्रतिपादनं नाम शताधिकत्रिषष्टितमः सर्गः ॥ १६३ ॥ ॥ ॥ राम उवाच ॥ हे भगवन्! यह मनरूपी मृग भटकता है, अरु वनविषे जलता है, उह कवन वृक्ष है, समाधानरूप जिसके नीचे आया शांतपदकों प्राप्त होवै, उसके फूल फल लता कैसे होते हैं, अरु वृक्ष कहां होता है, सो कृपाकरि कहौ॥ ॥ वसिष्ठ उवाच ॥ हे रामजी! जिस प्रकार समाधानरूप वृक्ष उत्पन्न होता है, सो श्रवण कर, क्रमकरिके इसके पत्र पुष्प लतातें आदि सब समाधानरूप इस वृक्षका है ॥ हे रामजी! यह वृक्ष सब जीवकों साधणे योग्य है, कल्याणके निमित्त सो अब तूं इसका क्रम सुण, बल करिके उत्पन्न होता है, अरु संत जनोंके वनविषे यह ध्यानरूपी वृक्ष उपजता है, अरु चित्तरूपी पृथ्वीविषे लगता है, अरु वैराग्यरूपी इसका बीज है, सो वैराग्य दो प्रकार होता है, जो कोउ दुःख कष्ट प्राप्त होवै तिसकरि भी वैराग्य उपजि आता है, अथवा शुद्ध हृदय निष्काम होता है, तौ भी वैराग्य उपजता है, तिस वैराग्यरूपी बीजकों चित्तरूपी भूमिकाविषे पाइता है, अरु जब

वासनारूपी हल फेरता है, संतकी संगति अरु सच्छास्त्ररूपी जलकरि सिंचता है, मनरूपी क्यारीविषे सो जल निर्मल है; शीतल है, अरु हृदयगम्य है, तिस कोमलता अरु दयारूपी जलकरि बीजकों सिंचता है, तब बढणेकी आशा होती है, अरु सब क्रियारूपी जाड करिके अशुभरूपी कुंडेकों दूर करता है, अरु बहुत जलतें भी रक्षा करता है, सो आत्मविचाररूपी सूर्यकी किरणकरि सूकाता है, अरु तिसके चउफेर धैर्यरूपी वाडी करियें, अरु तप दान तीर्थ स्नानरूपी थडे ऊपर रख बैठणा, जो बीज जलि न जावै, अरु आशारूपी पक्षीतें रक्षा करणी, जो वैराग्यरूपी बीजकों काढि न ले जावै, अरु अभिलाषारूपी बुढे बैलतें रक्षा करणी जो क्षेत्रविषे प्रवेश करिके इसकों मर्दन न करै, तिसके निमित्त संतोष अरु संतोषकी स्त्री मुदिता दोनो बैठाय रखणे, अरु इस बीजका नाश करता जो मेघतें उपजता है गडा, तिसतें भी रक्षा करणी, सो गडा क्या है, संपदा धनकी प्राप्ति होणी, अरु सुंदर स्त्रियांकी प्राप्ति होणी, सो वैराग्यरूपी बीजका नाशकर्त्ता गडा है, एक इसकी रक्षाका सामान्य उपाय है, अरु एक विशेष उपाय है, जो तप करणा अरु इंद्रियांकों सुकुचावणा, अरु दुःखी पर दया करणी, अरु संतोषमात्र पाठ जाप करणा इत्यादिक शुभ क्रिया करणी, यह शुभ क्रियारूपी पुतली यंत्री इसके विद्यमान राखियें तौ दूर हो जाता है, अरु दूसरा परम उपाय यह है जो संतकी संगति करणी, अरु सच्छास्त्रका श्रवण करणा, अरु प्रणव जो ॐकार है, तिसका ध्यान जप करणा, अरु तिसके अर्थकों विचारणा, यही जो है त्रिशूलरूप तिसका त्रिशूल करणा, सो गडेके नाशका परम उपाय है, जब एते शत्रुतें रक्षा करै तब बीजकी उत्पत्ति होवै, तिसकों संतके संग अरु सच्छास्त्रके विचाररूपी वर्षाकालके जलकरि सिंचिये, तब अंकुर निकसती है, अरु बडा प्रकाश होता है, जैसे द्वितीयाका चंद्रमा होता है, अरु सब कोउ तिसकों प्रणाम करते हैं, तैसे संतोष दया अरु यशरूपी अंकुर निकसता है, तिसके दो पत्र निकसते हैं, एक वैराग्य, दूसरा विचार, सो दिन दिन प्रति बढता है, अरु

शास्त्रतें जो श्रवण किया है जो आत्मा सत्य है, अरु जगत मिथ्या है, तिसका वारंवार अभ्यास करणा, इस जलके सिंचणेकरि अंकुर दिन दिन प्रति बढता जावैगा, अरु तिसके स्तंभ बडे होवैंगे ॥ हे रामजी! जब टास बडे होते हैं, तब वानर उसपर चढीकरि तोडी डारते हैं, सो रागदोषरूपी वानर हैं, तातें इस वृक्षकों दृढ वैराग्य अरु संतोष अभ्यासरूपी रसकरि पुष्ट करणा, जैसे सुमेरु पर्वत होता है, तैसे संतोषकरि पुष्टि करणी, जब ऐसे हुआ तब सुंदर पत्र अरु टास लगैंगे, अरु फूल मंजरी इसके साथ लगैंगे, अरु बडे मार्गपर्यंत इसकी छाया होवैगी, शांति शीतलता शुद्धता अरु कोमलता दया यश कीर्त्ति इत्यादिक गुण आनि प्रगट होवैंगे, तिसके नीचे मनरूपी मृग विश्राम पावता है, अरु शीतल होता है, अध्यात्म अधिभूत अधिदैव ताप मिटि जाते हैं, अरु परम शांतिकों प्राप्त होता है ॥ हे रामजी! यह मैं तुझकों ध्यानरूपी वृक्ष कहा है, जहां यह वृक्ष उत्पन्न होता है, तिस स्थानकी शोभा कही नहीं जाती, जो इस वृक्षकी शरणकों प्राप्त होता है, तिसके ताप मिटि जाते हैं, अरु शांतिवान होता है, अरु यह वृक्ष जो बढता है, सो ब्रह्मरूपी आकाशके आश्रय बढता है, अरु इसविषे वैराग्यरूपी रस है, अरु संतोषरूपी इसकी छील हैं, तिसकरि पुष्ट होता है; जो पुरुष इसका आश्रय लेवैगा, सो शांतिकों प्राप्त होवैगा ॥ हे रामजी! जबलग गमनरूपी मृग इस ध्यानरूपी वृक्षका आश्रय नहीं लेता, तबलग भटकता फिरता है, अरु शांतिकों नहीं प्राप्त होता है, जैसे मृग वनविषे भटकता है, तैसे भटकता है, तिसकों द्वैत अज्ञान प्रमादरूपी वेधक मारणे लगता है, तिसकरि दुःख पावता है, तिसके भयकरि गांवके निकट आता है, तब उह आपोआप इसकों पकडीकरि खेद देते हैं, तिसकरि बडे कष्टकों पावता है, सो गांववासी इंद्रियां हैं, जब इनकी उर आता है, तव अपणे अपणे विषयकी उर बंधायमान करतियां हैं, इनके भयकरि बहुरि वनकों जाता है, तहां वनकी तप्तकरि दुःखी होता है, सो विषयकी अप्राप्तिरूपी तप्त है, तिसकों त्यागिकरि रसरूप स्थानकों दउडता है, शां

तिके निमित्त जब उहां जाता है, तब कामरूपी श्वान इसके मारनेकों दउडता है, तिसके भयकरि बहु रि वनकी उर धावता है, तब क्रोधरूपी अग्नि जलावती है, अरु वासनारूपी मच्छर दुःख देते हैं, अरु लोभ मोहरूपी अंधेरी चलती है, तिसकरि अंध हो जाता है, हरे हरे तृणकों देखीकरि ग्रहण करता है, तब टोयेविषे गिर पडता है, उह टोया तृणकरि आच्छाद्या है, सो तृण कवन हैं, पुत्र धन तिसकों सुंदर देखिकरि ग्रहण करती है, तब ममताविषे गिर पडता है, इस प्रकार दुःख पावता है ॥ हे रामजी ! जब यह मन झूठ बोलता है, तब मृत्तिकाविषे लोटता है, ऐसी चेष्टा करता है, अरु जब मनरूपी बघाड आता है, तब इसका भक्षण करि जाता है, जब ध्यानरूपी वृक्षतें विमुख होता है, तब एते कष्टकों पावता है, जब मनरूपी बिघाडतें छूटता है, तब आशारूपी जंजीरविषे बंधायमान होता है, जबलग इस वृक्षके निकट नहीं आता, तबलग बडे कष्ट स्थानोंकों जाता है, तमाल वृक्षादिकके तले भी जाता है, अरु कंटकके वृक्षों तले भी जाता है, परंतु शांतिवान किसी स्थानविषे नहीं होता, बडे कष्टकों पावता है ॥ ॥ इति श्रीयोगवासिष्ठे निर्वाणप्रकरणे हरिणोपाख्याने वृत्तांतयोगोपदेशो नाम शताधिकचतुःषष्टितमः सर्गः ॥ १६४ ॥ ॥ ॥

॥ वसिष्ठ उवाच ॥ हे रामजी ! इस प्रकार मूढबुद्धि मनरूपी हरिण भटकता है, तातें मेरा यही आशीर्वाद है जो तुमकों उस वृक्षका संग होवै, जब उस वृक्षके निकट आता है, तब शांति प्राप्त होती है, अरु जब इसके नीचे आय बैठता है, तब तीनों ताप अंतःकरणतें मिटि जाते हैं, अवर जेते कछु वृक्ष हैं तिनके निकट गया मनरूपी मृग शांतिकों नहीं पावता, सो अवर वृक्ष कवन हैं, विषयरूपी वृक्षके निकट गया शांतिवान नहीं होता, जब ध्यानरूपी वृक्षके निकट आता है, तब शांतिकों पाइता है, अरु बुद्धि प्रकाशि आती है, जैसे सूर्यमुखी कमल सूर्यकों देखीकरि खिली आता है, बहुरि उसके अनुभवरूपी फल हैं, अरु शास्त्रके विचाररूपी पत्र फूल हैं, तिनकों देखीकरि बडे आनंदकों प्राप्त होता है, अरु वृक्ष उपर चढी जाता है, चढीकरि ए

थ्वी भूमिका त्याग करता है, जैसे सर्प अपणी कंचुकीका त्याग करता है, अरु नूतन सुंदर शरीरकरि शोभता है, अरु जब उस वृक्षपर चढता है, तब गिरता नहीं, पत्र उसके बहुत बली हैं, तिनके आश्रय ठहरता है, सो कवन पत्र हैं, ध्यानरूपी वृक्षके सच्छास्त्ररूपी पत्र हैं, जब ध्यानरूपी वृक्षतें उतरता है, तब शास्त्रके अर्थविषे ठहरता है, अरु जेते विषय पदार्थ देखीते हैं, सो क्षारवत् दृष्ट आते हैं, अरु अपणी पिछली चेष्टाकों स्मरण करिके पछताता है, जैसे किसीनें मद्यपान किया होवै अरु तिसविषे नीच चेष्टा करै, जब मद उतरता है तब पसताया करता है, तैसे मनरूपी मृग अपणी पिछली चेष्टाकों धिक्कार करता है, अरु कहता है जो बडा आश्चर्य है, मैं एता काल इस वृक्षतें विमुख हुआ भटकता फिरता हौं, अब मुझकों शांति प्राप्त हुई है, जैसे दिनकी तप्त अभाव हुए चंद्रमुखी कमलिनीकों शांति प्राप्त होती है, तैसे मनरूपी मृगकों शांति प्राप्त होती है ॥ हे रामजी! पुत्र धन स्त्रियादिक जो दिखते हैं, तिनकों संकल्पपुरकी नांई अरु स्वप्नवत् देखता है, जैसे स्वप्नतें जागे हुए स्वप्नपुरकों स्मरण करता है, परंतु तिसविषे अभिमान नहीं होता, तैसे इनविषे भी अभिमान नहीं होता, जब अनुभवरूपी फलका भक्षण करता है, तब बडे आनंदकों पावता है, जिसविषे वाणी नहीं प्रवृत्ति शकती, परम शांत अरु निर्मल पदकों प्राप्त होता है, अरु निरतिशय पदकों प्राप्त होता है, जो मनका विषय होवै, सो सातिशय पद है, अरु जो मनका विषय नहीं सो निरतिशय पद है, अरु जो इंद्रियांका विषय है तिसका नाश भी होता है, अरु जो इंद्रियां अरु मनका विषय नहीं तिसका नाश नहीं होता, सो अविनाशी पदकों पावता है, अरु जैसे किसीकों बाण लागता है, अरु तिसकी विरोधी बूटी उसके सन्मुख राखियें तौ निकसी आता है, तैसे अनुभवरूपी बूटीके सन्मुख हुए मोहबंधनरूपी सर खुलि पडते हैं, अरु परम पदकों पावता है ॥ हे रामजी! ज्ञानवान जगततें मृतक हो जाता है, उसकों संसारका लेप कछु नहीं लगता, जैसे लकडीविना अग्नि शांत हो जाती है,

तैसे वासनातें रहित ज्ञानवानकी चेष्टा शांत हो जाती है, अर्थ यह जो संसारकी सत्यतातें रहित चेष्टा होती है, बहुरि संसाररूपी अग्नि उदय नहीं होती, अरु द्वैत एक कल्पना भी मिटि जाती है, अरु उन्मत्तकी नांई अपणे स्वरूपविषे घूर्म रहता है, जैसे मरुस्थलकी धूपकी इच्छा पैंडोइ नहीं करता तैसे ज्ञानी विषयकी तृष्णा नहीं करता, जिसनें आत्मअनुभवरूपी अमृतपान किया है, तिसकों विषरूपी कांजीकी इच्छा नहीं रहती, उह पुरुष सदा निर्वासी है, जब यह पुरुष निर्वासी होता है, तब चंचल जो मनकी वृत्ति है सो सब लीन हो जाती है, केवल आत्मत्वमात्र पद रहता है, अरु मैं मेरा यह भावना नष्ट हो जाती है, जबलग चित्तका संबंध होता है, तबलग मैं मेरा भासता है, जब चित्तका संबंध मिट्या तब एकाकार हो जाता है, जैसे एक सूका काष्ठ अरु एक गिल्ला काष्ठ होता है, सो सूका शुद्ध कहाता है, अरु गिल्ला उपाधिक कहाता है, जब जल सूकि गया, तब शुद्ध होता है, तैसे जब मनकी उपाधि नष्ट भई, तब शुद्ध आत्माही रहता है, अरु एकरस भासता है ॥ हे रामजी! संसार द्वितीय भ्रम करिके भासता है, जैसे पत्थरकी शिलाविषे पुतली अनउपजी भासती है, सो न सत है, न असत है, जब पत्थरतें भिन्न करि देखियें, तब सत नहीं, जो शिलाकरि देखियें तब उही रूप है, तैसे जगत आत्मातें भिन्न सत्य नहीं, आत्मसत्तातें आत्मरूप है, जैसे छोटे बालकके हृदयविषे जगतका शब्द अर्थ नहीं होता, तैसे ज्ञानीकी चेष्टा भी प्रारब्धवेग करिके होती है, परंतु उसके हृदयविषे जगतके शब्द अर्थका अभाव है ॥ हे रामजी ! जो कछु प्रारब्ध होती है, सो अवश्य उसकों भी आनि प्राप्त होती है, मिटती नहीं, शुभ अथवा अशुभ, जैसे मेघतें बुंदां गिरती हुई नष्ट नहीं होतियां, मेघ मंत्रशक्ति करिके नष्ट होता है, तैसे प्रारब्धकर्म नष्ट नहीं होता, अवर नष्ट होते हैं, परंतु उह तिनविषे बंधायमान नहीं होता, अज्ञानीके हृदयविषे संसार सत्य भासता है, अरु भिन्न भिन्न पदार्थ भासते हैं, पदार्थका ज्ञान है, अरु ज्ञानीके हृदयविषे आत्माका ज्ञान है, संसारकी सत्यता

तिसकों नहीं भासती ॥ हे रामजी ! यह जो समाधानरूपी वृक्ष मैं तुझकों कहा है, सो विधिसंयुक्त तिसकी सेवना करियें तौ अनुभवरूपी फल प्राप्त होता है, अरु बोधतें रहित होकरि करता है, तौ अनेक यत्नकरि भी फलकी प्राप्ति नहीं होती, काहेतें जो ऐसी भावना उसकों नहीं प्राप्त होती, जो आत्मशुद्ध है, अरु सत चिद् आनंद है, अरु जिनकों यह भावना प्राप्त होती है, तिनकों भोगकी इच्छा नहीं रहती, जैसे किसीनें अमृतपान किया होता है, तब अवर अमल अरु कटुक फलकी वांछा नहीं करता, तैसे ज्ञानी इच्छा नहीं करता, जैसे रुईके पोवेकों अग्नि लगी, अरु उपरतें तीक्ष्ण पवन चला तौ नहीं जाणता जो कहां जाय पडा, तैसे जगतरूपी रुईका पोवा ज्ञान अग्नीकरि दग्ध किया हुआ, अरु वैराग्यरूपी पवनकरि उडाया, नहीं जाणीता जो कहां जाय पडा, आकाशही आकाश भासता है, जगत सत नहीं भासता, तौ फिर तृष्णा किसकी करै, तृष्णातें रहित स्थित होता है ॥ हे रामजी ! दुःखका मूल तृष्णा है, तृष्णाकरि भटकता है, जैसे पर्वतके पक्ष थे, तबलग उडते थे, पक्षविना उडणेतें रहित भये, गंभीर स्थिर हो रहे, तैसे जब मनतें वासना नष्ट हुई, तब मन स्थिर हो जाता है ॥ हे रामजी ! पैंडोई वांछित देशकों तब जाय प्राप्त होता है, जब इतर देशका त्याग करता है, तैसे आत्मा शुद्ध स्वरूप परमानंद अपणा आप तब प्राप्त होता है, जब धन लोक पुत्र ईषणाका त्याग करै, जब आत्माकी प्राप्ति भई तब निर्विकल्प समाधिकरि निर्विकल्प चेतनका साक्षात्कार होता है, जब समाधिविषे साक्षात्कार हुआ, तब उत्थानकालविषे भी समाधिस्थित होता है, अरु परम निर्वाणपदकों प्राप्त होता है, अरु चित्तरूपी वल्ली दूर हो जाती है, जैसे रसडीकों वल होती है, तिसकों खैंचिकरि बहुरि छोडता है, तब उह सूधी हो जाती है, तैसे जिसकों समाधिविषे साक्षात्कार हुआ, तब उसकों उत्थानकालविषे भी उही भासता है, अरु जिसकों उसका प्रमाद है तिसकों जगत भासता है ॥ हे रामजी ! वस्तु एक है, परंतु तिसविषे दो दृष्टि हैं, जैसे जेवरी एक है, स

रि देवताके पूजननिमित्त फूल चुणे, अरु द्वितीय स्नान करिके प्रहर ऐसे व्यतीत करै, जब तीसरा प्रहर होवै, तब फलभोजन करै, चउथा प्रहर बहुरि संध्या जाप करै, इसी प्रकार दिन अरु रात्र व्यतीत करै, कछुक काल रात्रकों शयन करै, अवर जापविषे व्यतीत करै, इसी प्रकार कालकों व्यतीत करै ॥ हे रामजी! राजाकी तौ यह अवस्था भई, अब राणीकी अवस्था श्रवण करु, जब अर्ध रात्रतें पाछे राणी जागी, तब क्या देखै जो राजा इहां नहीं, वनकों गया है, अरु शय्या खाली पडी है, तब राणीनें सहेलीयांकों जगाई, अरु कहणे लगी बडा कष्ट है, राजा वनकों निकसी गया है, अरु बडे भयानक वनविषे जावैगा, ऐसे कहीकरि मनविषे विचार किया, जो राजाकों देखा चाहिये, तब योगविषे स्थित होकरि आकाशकों उडी, आकाशकी नांई देहकों अंतर्धान करिके जैसे योगेश्वरी भवानी उडती है; तैसे उडी, अरु आकाशविषे स्थित होकरि देखा जो राजा चला जाता है, तब राणीके मनविषे आया जो इसका मार्ग रोकौं, बहुरि एक क्षणमात्र स्थित होकरि भविष्यतकों विचारणे लगी, जो राजा अरु मेरा संयोग नीतिविषे कैसे रचा है, तब देखत भई जो राजा अरु मेरा मिलाप होणेविषे बहुत काल रहता है, अरु अवश्य मिलाप होणा है, मेरे उसकों उपदेशकरि जगावणा है, परंतु केतेक काल उपरांत अब इसीके कषाय परिपक्व नहीं, तातें अब राजाका मार्ग नहीं रोकणां, तब राणी बहुरि अपणे घर आई, अरु शय्यापर शयन किया, अरु बडी प्रसन्नताकों प्राप्त भई, जब रात्र व्यतीत भई, तब मंत्रीकों कहणे लगी जो राजा एक तीर्थ पर्सणे गया है, दर्शन करिके बहुरि आवैगा, ऐसे मंत्री अरु प्रजाकों कहा, बहुरि मंत्रीकों आज्ञा करी जो तुम अपणे कार्यविषे वर्तौ, तब मंत्री अपणी चेष्टाविषे वर्तणे लगे, इसी प्रकार राणीनें अष्ट वर्षपर्यंत राज्य किया, अरु प्रजाकों सुख दिया, जैसे बागवान कमलोंके क्यारेकों सुखी पालता है तैसे राणीनें प्रजाकों सुख दिया, अरु उहां राजाकों अष्ट वर्ष तप करते व्यतीत भये हैं, अरु राजाके अंग दुर्बल हो गये, अरु उहां राणीनें राज्य किया, जैसे

भंवरा अवर ठौर होवै, तैसे इनकों व्यतीत भया, और और ठौरविषे, तब राणीनें विचार किया, जो राजा अब मेरे वचनोंका अधिकारि भया है, अंतःकरण राजाका तप करिके शुद्ध हुआ है, अब राजाकों देखियें, तब राणी उडी आकाशकों गई, अरु नंदनवन इंद्रका है सो देख्या, उहांके जो दिव्य पवन हैं, तिनका स्पर्श हुआ, तब राणीके चित्तविषे आया, जो मेरे तांई भर्त्ता कब मिलैगा, बहुरि कहणे लगी जो बडा आश्चर्य है, मैं तौ सतपदकों प्राप्त भई थी, तौ भी मेरा मन चलायमान भया है, तातें इतर जीवकी क्या कहणी है, तब उहांतें चली, आगे कमल फूल देखे, देखिकरि कहणे लगी, जो मेरे तांई यह भर्त्ता कब मिलैगा, जिस करि भर्त्ताकों पाइता है, मैं कामातुर भई हौं, बहुरि मनकों कहणे लगी ॥ हे दुष्ट मन! तूं तौ सतपदकों प्राप्त भया था, तेरा भर्त्ता आत्मा है, अब तूं मिथ्या पदार्थोंकी अभिलाषा काहेकों करता है, बहुरि कहणे लगी, जबलग देह है, तबलग देहके स्वभाव भी साथ रहते हैं; जो मेरे तांई यह अवस्था प्राप्त भई है, तौ भी मन चलायमान होता है, तातें इतर जीवकी क्या वार्त्ता करणी है, तब राणी मेघके स्थानोंकों लंघी अरु महाबिजलीके स्थान लंघे, बडे पर्वत अरु नादियांकों लंघी, समुद्र भयानक स्थानोंकों लंघी, अरु मंदराचल पर्वतकेपास वनविषे आनि स्थित भई, अरु कहणे लगी, जो मेरा भर्त्ता कहां है, बहुरि समाधिविषे स्थित होकरि देखा जो अमके स्थानमें बैठा है, तप करिके अंग महादुर्बल हो गये हैं, अरु ऐसे स्थानविषे प्राप्त भया है, जहां अवर जीवकी गम नहीं, अरु महावैतालकी नांई रात्रिकों चला आया है, तातें अज्ञान महादुष्ट है, जो ऐसा राजा तपकों लगा है, स्वरूपके प्रमाद करिके जड है, अब ऐसे होवै, जो किसी प्रकार अपणे स्वरूपकों प्राप्त होवै, परंतु मेरे इस शरीर करिके ज्ञान इसकों न उपजैगा, काहेतें जो राजाकों प्रथम यह अभिमान होवैगा, जो मेरी स्त्री है, अरु बहुरि कहैगा, मैं इनहीके निमित्त राज्य छोडा है, बहुरि मेरे तांई दुःख देणेकों आई है, तातें अवर शरीर ब्रह्मचारिका धारौं, ऐसे विचार करिके शीघ्र

ही ब्रह्मचारिका शरीर धारत भई, जैसे जलका तरंग एक स्वरूपकों छोडता है, अरु अवर हो जाता है, तैसे महासुंदर शरीरकों धारिकरि एक ग्रिंठ पृथ्वीतें ऊपर चलणे लगी, अरु हाथविषे रुद्राक्षकी माला, अरु कमंडलुकों धारै, अरु मृग छालाकों धारै, अरु मस्तकपर विभूति लगाई, जैसे सदाशिवके मस्तकपर चंद्रमा विराजता है, तैसे सुंदर विभूतिकों लगाया, अरु श्वेतही यज्ञोपवीतकों पाया, ऐसा चिन्ह धारिकरि चली, तब राजा देखीकरि आगेतें उठि खडा हुआ, अरु नमस्कार किया, फूल चरणोंपर चडाये, अरु अपणे स्थानपर बैठाया, अरु कहणे लगा ॥ हे देवपुत्र ! आज मेरे बडे भाग्य हैं, जो तुमारा दर्शन भया ॥ हे देवपुत्र ! तुमारा आवणा कैसे हुआ ? ॥ ॥ देवपुत्र उवाच ॥ हे राजन् ! हम बडे बडे पर्वत देखते आये हैं, अरु तीर्थ करते आये हैं, परंतु जैसी भावना तेरेविषे देखी है, तैसी किसीविषे नहीं देखी ॥ हे राजन् ! तुझनें बडा तप किया है, अरु तूं इंद्रियजित दृष्टि आवता है, अरु मैं जानता हों जो तेरा तप खड्गकी धारा जैसा तीक्ष्ण है, तातें तूं धन्य है, तेरे तांई नमस्कार है ॥ परंतु हे राजन् ! आत्मयोगके निमित्त भी कछु तप किया है, अथवा नहीं किया, सो कहु ॥ तब राजानें जो फूलकी माला देवपूजनके निमित्त रखी थी सो देवपुत्रके गले पाई, अरु पूजाकरि बहुरि कहा ॥ हे देवपुत्र ! तुमसारखेका दर्शन दुर्लभ है, अरु अतिथिका पूजन देवतातें भी अधिक है ॥ हे देवपुत्र ! तेरे अंग बहुत सुंदर दृष्ट आवते हैं, ऐसेही मेरी स्त्रीके अंग थे, नखशिखपर्यंत तेरे उही अंग दृष्ट आते हैं, परंतु तूं तो तपसी है, तेरी मूर्ति शांतिके लिये हुई है, मैं कैसे कहों जो उही है ॥ तातें हे देवपुत्र ! कहूं जो तूं पुत्र किसका है, अरु इहां किसनिमित्त आया है, अरु आगे कहां जावैगा, यह संशय मेरा निवृत्त करो, तब देवपुत्रनें कहा ॥ हे राजन् ! एक समय नारद मुनि सुमेरु पर्वतकी कंदराविषे आया था, सो महासुंदर कंदरा है, जहां आश्चर्यके वृक्ष अरु मंजरियां फूलफलसाथ सब पूर्ण हैं, ब्राह्मणोंकी कुटी तहां बणी हुई हैं, तिस स्थानकों देखीकरि ब्रह्मवेत्ता नारद मुनि समाधि लगाय बै

ठा, अरु गंगाका प्रवाह चलता है, जहां सिद्धोंकी गम है, अवर जीवोंकी गम नहीं, तब केता काल समाधिविषे स्थित रहा, जब समाधितें उतऱ्या, तब भूषणका शब्द हुआ, तब नारदजीके मनविषे महाआश्चर्य हुआ, जो इहां तौ आवणेकी गम किसीकी नहीं, यह भूषणोंका शब्द कहांतें आया, तब उठीकरि देखणे लगा, जो गंगाका प्रवाह चला आवता है, तहां उर्वशी आदिक अप्सरा स्नान करतियां हैं, वस्त्रों कों उतारे हुए महासुंदर हैं, जब उनकों देख्या, तब नारदजीका विवेक आवरण भया, अरु वीर्य चल्या, तिसके पास सुंदर वल्ली थी, तिसके पत्रपर जाय स्थित भया, चंद्रमाकी नांई उज्वल इस प्रकार सुणीकरि शिखरध्वज कहत भया ॥ हे देवपुत्र ! ऐसा ब्रह्मवेत्ता नारद मुनि सर्वज्ञ अरु बडा मननशील तिसका वीर्य किसनिमित्त चल्या, तब देवपुत्रनें कहा ॥ हे राजन् ! जबलग शरीर है, तबलग अज्ञानीका अरु ज्ञानीका भी शरीरस्वभाव निवृत्त नहीं होता, परंतु एक भेद है, जब ज्ञानवानकों दुःख आय प्राप्त होता है, तब दुःख नहीं मानता, अरु जब सुख आय प्राप्त होता है, तब सुख नहीं मानता, हर्षवान नहीं होता, अरु जब अज्ञानीकों दुःखसुख आय प्राप्त होता है, तब हर्षशोक करता है, जैसे श्वेत वस्त्रपर केसरका रंग शीघ्रही चडि जाता है, तैसे अज्ञानीकों दुःखसुखका रंग शीघ्रही चडि जाता है, अरु जैसे सोमके वस्त्रकों जलका स्पर्श नहीं होता है, तैसेही ज्ञानवानकों दुःखसुखका स्पर्श नहीं होता, अरु जिसके अंतःकरणरूपी वस्त्रकों ज्ञानरूपी मोम नहीं चडी, तिसकों दुःखसुखरूपी जल स्पर्शकरि जाता है, अरु ज्ञानवान मेणवत है, उनके अंतःकरणकों दुःखसुख नहीं होता, अज्ञानीकों होता है, जो दुःखकी नाडी भिन्न है, अरु सुखकी नाडी भिन्न है, जब सुखकी नाडीविषे स्थित होता है, तब दुःख कोउ नहीं देखता, जब दुःखकी नाडीविषे स्थित होता है, तब सुख नहीं देखता, अज्ञानीकों कोउ दुःखका, कोउ सुखका स्थान है, अरु ज्ञानीकों एक आभासमात्र दिखाई देता है, बंधमान नहीं होता, जबलग इसकों ज्ञानका संबंध है, तबलग दुःख निवृत्त

नहीं होता, तब राजानें कहा, वीर्य जो गिरता है, सो वीर्य कैसे निवृत्त होता है, तब देवपुत्रनें कहा ॥ हे राजन् ! जब इसका चित्त वासना करिके क्षोभवान होता है,तब नाडी भी क्षोभ करतियां है, अरु अपणे स्थानोंकों त्यागणे लगतियां हैं, तब वीर्यवाली नाडीतें स्वाभाविकही वीर्य नीचेकों चला आवता है, बहुरि राजानें कहा ॥ हे देवपुत्र! स्वाभाविक क्या कहिये, देवपुत्रनें कहा॥ हे राजन्! आदि परमात्मशुद्ध चेतनविषे जो फुरणा हुआ है, तिस क्षणमात्र शक्तिके उत्थानकरि आगे प्रपंच बनि गया है,तिसविषे आदि नीति हुई है, जो यह घट है,यह पट है, यह अग्नि है, इसविषे उष्णता है, यह जल है,इसविषे शीतलता है,तैसेही नीति है, जो वीर्य उपरतें नीचेकों आवता है, जैसे पर्वततें पत्थर गिरता है,सो नीचेकों चला आता है, तैसे वीर्य भी नीचेकों आता है, तब राजानें प्रश्न किया ॥ हे देवपुत्र ! इसकों दुःख कैसे होता है अरु सुख कैसे होता है, अरु दुःखसुखका अभाव कैसे होता है, तब देवपुत्रनें कहा ॥ हे राजन् ! जब यह जीव कुंडलनी शक्तिविषे स्थित होता है, अरु दृश्य जो है, चार अंतःकरण, अरु इंद्रियां देह तिनविषे अभिमान करिके दुःखी सुखी होता है, इनके दुःखसाथ दुःखी होता है, अरु इनके सुखसाथ सुखी होता है, जैसा जैसा आगे प्रतिबिंब होता है, तैसा तैसा दुःखसुख भासता है, जैसे शुद्ध मणीविषे प्रतिबिंब पडता है, सो अज्ञान करिके भासता है, ज्ञान करिके इनका अभाव हो जाता है, अरु जब तिसकों ज्ञानरूपका आवरण करिके आगे पडल होत है, तब प्रतिबिंब नहीं पडता, ज्ञान कहियें जो देहादिकके अभिमानतें रहित होणां, जो न देहादिक हैं, अरु न मैं इनकरि कछु करता हौं, जब ऐसे निश्चय होवै, तब दुःखसुखका भान नहीं होता, काहेतें जो संसारका दुःखसुख इसकी भावनाविषे होता है, जब वासनातें रहित हुआ, तब दुःखसुख भी सब नष्ट हो जाते हैं, जैसे जब वृक्षही जलि जाता है, तब पत्र फूल फल कहा रहैं, तैसे अज्ञानरूप वासनाके दग्ध हुए, दुःखसुख कहां रहैं बहुरि राजानें कहा ॥ हे भगवन्! तुमारे वचन श्रवण करते हुए मैं तृप्त नहीं होता, जैसे मेघका शब्द सुणते मोर

तृप्त नहीं होता, तातें कहौ, जो तुमारी उत्पत्ति कैसे भई, तब देवपुत्रनें कहा ॥ हे राजन्! जो कोउ प्रश्न करता है, तब बडे तिसका निरादर नहीं करते, तातें तूं जो पूछता है, सो मैं कहता हौं ॥ हे राजर्षि! उह वीर्य था सो नारदमुनिनें एक मटकीविषे पाया, अरु उह कैसी मटकी थी स्वर्णवत जिसका उज्ज्वल चमत्कार, तिसविषे वीर्य पायकरि तिसके उपर दूध पाया, अरु उपर उसके दूध पाया, मटकीकों पूर्ण किया, अरु वीर्यकों एक कोणकी उर किया, बहुरि मंत्रोंका उच्चार किया, अरु आहुति किये, भली प्रकार पूजन किया, जब एक मास व्यतीत भया, तब मटकीतें बालक प्रगट हुआ, सो कैसा बालक, जैसा चंद्रमा क्षीर समुद्रतें निकसा है, तिस बालककों लेकरि नारद आकाशकों उडता भया, तब नारदका जो पिता है ब्रह्माजी, तिसके पास ले आया, अरु आयकरि नमस्कार किया, तब बालककों पितामहनें गोदविषे बैठाया, अरु आशीर्वाद किया, जो तूं सर्वज्ञ होवैगा, अरु शीघ्रही अपणे स्वरूपकों प्राप्त होवैगा, अरु कुंभतें जो उपजा बालक है, तिसका नाम भी कुंभ राखा, सो कुंभ सर्वज्ञ मैं हौं, नारदजीका पुत्र अरु ब्रह्माजीका पौत्रा हौं, सरस्वती मेरी माता है, गायत्री मेरी मासी है, मेरे तांई सर्व ज्ञान है, तब राजानें कहा, हे देवपुत्र! तुम सर्वज्ञ दृष्ट आते हौ, तुमारे वचनोंकरि मैं जानता हौं, तब देवपुत्रनें कहा ॥ हे राजन्! जो तुम पूछा सो मैं कहा, अब कहु जो तूं कवन है, अरु इहां कर्म क्या करता है, अरु इहां किसनिमित्त आया है, तब राजानें कहा ॥ हे देवपुत्र! आज मेरे बडे भाग्य उदय हुए हैं, जो तुमारा दर्शन भया है, तुमारा दर्शन बडे भाग्यसों प्राप्त होता है, यज्ञ अरु तपतें तुमारा दर्शन श्रेष्ठ है, तब देवपुत्रनें कहा ॥ हे राजन्! अपना वृत्तांत कहु, जो तूं कवन है, राजानें कहा, हे देवपुत्र! मैं राजा हौं, अरु शिखरध्वज मेरा नाम है, अरु राज्यका मैंनें त्याग किया है, जो मेरे तांई संसार दुःखदायक भास्या, तिसके भयकरि त्याग किया, वारंवार जन्म अरु मृत्यु संसारविषे दृष्ट आता है, तातें राज्यका त्यागकरि इहां तप करणे लगा हौं, तुम त्रिकालज्ञ हौ, अरु जान

ते हौ, तथापि तुमारे पूछणेकरि कछु कहा चहिये, मैं त्रिकाल संध्या करता हौं, अरु जाप करता हौं, तौ भी मेरे तांई शांति नहीं प्राप्त भई, तातें जिसकरि मेरे दुःख निवृत्त होवैं, सोइ उपाय कहौ ॥ हे देवपुत्र ! मैं तीर्थ बहुत फिर्या हौं, बहुत देश स्थान फिर्या हौं, अब इसी वनविषे आनि बैठा हौं तौ भी मेरे तांई शांति नहीं प्राप्त भई, तातें जिसकरि मेरे दुःख निवृत्त होवैं, अरु शांति प्राप्त होवै, सो कहौ, तब देवपुत्रनें कहा ॥ हे राजर्षि ! तैनें राज्यका त्याग किया, अरु बहुरि तपरूपी टोयेविषे आय पडा है, यह तैनें क्या किया है, जैसे पृथ्वीका क्रम बहुरि पृथ्वीविषे रहता है, तैसे तूं एक टोयेकों त्यागिकरि बहुरि दूसरे टोयेविषे आइ पडा है, अरु जिसनिमित्त राज्यत्याग किया, तिसकों न जानत भया, अरु इहां आयकरि एक लाठी अरु मृगछाला अरु फूल राखे, इनकरि तौ शांति नहीं प्राप्त होती, तातें अपने स्वरूपविषे जाग, जब स्वरूपविषे जागैगा, तब दुःख सब निवृत्त होवैंगे, इसी पर एक समय ब्रह्माजीसों मैंनें प्रश्न किया था, जो हे पितामहजी ! कर्म श्रेष्ठ है, अथवा ज्ञान श्रेष्ठ है, दोनोंविषे क्या श्रेष्ठ है, जो मुझकों कर्तव्य है, सो कहौ, तब पितामहनें कहा, ज्ञानके पायेतें दुःख कोउ नहीं रहता, सर्व आनंदका आनंद ज्ञान है, तिसतें आगे आनंद कोउ नहीं, अरु अज्ञानीकों कर्म श्रेष्ठ हैं, क्यौं जो पापकर्म करैंगे, तब नरककों प्राप्त होवैंगे, तातें तप दान करणेतें स्वरूपकी प्राप्ति नहीं होती, तौ भी अज्ञानीकों श्रेष्ठ है, जो नरक भोगणेतें स्वर्ग विशेष है, जैसे कंबलतें पटका वस्त्र श्रेष्ठ है, परंतु पटका न पाइयें तब कंबल भी भला है, तैसे ज्ञान पटकी नांई है, अरु तप कर्म कंबलकी नांई है, कर्मकरि शांति नहीं प्राप्त होती ॥ तातें हे राजन् ! तूं काहेकों इस टोयेविषे पडा है, आगे राज्यवासी था, अब वनवासी भया, तातें यह क्या किया है, जो अज्ञानविषे पडा रहा है, मूर्खताके वश पडा है, जबलग तेरे तांई क्रियाभान होता है, जो मैं यह करौं, तबलग प्रमाद है, इसकरि दुःख निवृत्त न होवैंगे, तातें निर्वासनिक होकरि अपणे स्वरूपविषे जाग, निर्वासनिक होणाही मुक्ति है, अरु वासना

सहितही बंधन है, पुरुषप्रयत्न यही है, जो निर्वासनिक होणां, जबलग वासनासहित है, तबलग अज्ञानी है, जब निर्वासनिक होवै, तब ज्ञेयरूप है, निर्वासनिक कहिये सदा ज्ञेयकी भावना करणी, अरु ज्ञेय कहिये आत्मस्वरूप तिसकों जाणीकरि बहुरि इच्छा कोउ न रहै, केवल चिन्मात्र पदविषे स्थित होणां, इसीका नाम ज्ञेय है, जो जाणने योग्य है, सो जाण्या, तब अवर वासना नहीं रहती, केवल स्वच्छ आपही होता है ॥ हे राजन्! तैनें अपणे स्वरूपकों जानणा था, तूं अवर जंजालविषे किसनिमित्त पडा है, आत्मज्ञान विना अवर अनेक यत्न करै, तौ भी शांति न प्राप्त होवैगी, जैसे पवनतें रहित वृक्ष शांतरूप होता है, जब पवन होता है, तब क्षोभकों प्राप्त होता है, तैसे जब वासना निवृत्त होवैगी, तब शांत पद प्राप्त होवैगा, अरु क्षोभ कोउ न रहैगा, जब ऐसे देवपुत्रनें कहा, तब राजा कहत भया ॥ हे भगवन्! तुम मेरे पिता हौ, अरु तुमही गुरु हौ, अरु, तुमही कृतार्थ करणेहारे हो, मैं वासना करिके बडा दुःख पाया है, जैसे किसी वृक्षके पत्र टास फूल फल सूकि जावै, अरु एकला ठूंठ रहि जावै, तैसे ज्ञानविना मैं भी ठूंठेसा हो रहा हौं, तातें कृपाकरि मेरे तांई शांतिकों प्राप्त करौं, तब देवपुत्रनें कहा ॥ हे राजन्! तैनें त्याग करिके संतका संग करणां था, अरु यह प्रश्न करणा था, जो हे भगवन्! बंध क्या है, अरु मोक्ष क्या है, अरु मैं क्या हौं, यह संसार क्या है, अरु संसारकी उत्पत्ति किसकरि होती है, अरु लीन कैसे होता है, तैनें यह क्या किया है, जो संतविना ठूंठ वनका आयकरि सेवन किया है, अब तूं संतजनकों प्राप्त होकरि निर्वासनिक होउ, ऐसे ब्रह्मादिकनें भी कहा है, जो जब निर्वासनिक होता है, तब सुखी होता है, बहुरि राजानें कहा ॥ हे भगवन्! तुमही संत हौ, अरु तुमही मेरे गुरु हौ, अरु तुमही मेरे पिता हौ, जिस प्रकार मेरे तांई शांति प्राप्त होवै, सो कहौ, तब कुंभनें कहा ॥ हे राजन्! मैं तेरे तांई उपदेश करता हौं, तूं हृदयविषे धारि लेहु, अरु जो तूं हृदयविषे धारै नहीं, तौ मेरे कहणेकरि क्या होता है, जैसे टासपर कउआ होवै, अरु शब्द भी श्रवण करै, तउ भी अपणे कउए स्व

भावकों नहीं छांडता, तैसे जो तूं भी कउएकी नांई होवै, तौ मेरे कहणेका क्या प्रयोजन है, अरु जैसे तोते पक्षीकों जो कहता है सो ग्रहण करता है, तातें तोते पक्षीकी नांई होउ, तब शिखरध्वजनें कहा ॥ हे भगवन्! जो तुम आज्ञा करोगे सो मैं करौंगा, जैसे शास्त्रवेदके कहे कर्म करता हौं, तैसेही तुमारा कहणा करौंगा, यह मेरा नियम है, जो तुम आज्ञा करौ सो मैं करौंगा, तब देवपुत्रनें कहा ॥ हे राजन्! प्रथम तौ तूं ऐसे निश्चय कर, जो मेरा कल्याण इन वचनोंसों होवैगा, अरु ऐसे जाण, जो पिता पुत्रकों कहता है सो शुभही कहता है, तैसे मैं जो तेरे तांई कहौंगा, सो शुभही कहौंगा, अरु तेरा कल्याण होवैगा, तातें निश्चय जाण, जो इन वचनोंकरि मेरा कल्याण होवैगा, तातें एक आख्यान आगे व्यतीत भया है सो श्रवण करु, एक पंडित था, सो धन अरु गुणकरि संपन्न था, अरु सर्वदा चिंतामणि पावणेकी इच्छा करता था, जैसे शास्त्रकरि उपाय कहे, तैसेही उपाय करता था, जब केताक काल व्यतीत भया, तब जैसे चंद्रमाका प्रकाश होता है, तैसे प्रकाशवान चिंतामणि आय प्राप्त भया, ऐसे निकट जाना, जो हाथकरि उठाई लीजे, जैसे उदयाचल पर्वतके निकट चंद्रमा उदय होता है, तैसे चिंतामणि निकट आय प्राप्त भया, तब पंडितके मनविषे विचार हुआ, जो यह चिंतामणि है, अथवा कछु और है, जो चिंतामणि होवै, तौ उठाइ लेहुं, जो चिंतामणि न होवै, तौ किसनिमित्त पकडौं, बहुरि कहे, पकडी लेता हौं, मणिही होवैगा, तब मणि न होवे क्या पकडौं, यह मणि नहीं, काहेतें जो मणि बडे यत्नकरि प्राप्त होता है, मेरे तांई सुखेन क्या प्राप्त होणा है, इसतें जाणीता है, जो चिंतामणि नहीं, जो सुखेन प्राप्त होता होवै, तौ सब लोक धनी हो जावै,परंतु सुखेन नहीं पाइता, तातें यह चिंतामणि नहीं; जब ऐसे संकल्पविकल्पकरि पंडित विचार करणे लगा, अरु इसीकरि तिसका चित्त आवरण भया, तब मणि छपन हो गया, काहेतें जो सिद्धि है, तिनका मान आदर न करियें तौ उलटा शाप देती है, जिस वस्तुका आवाहन करता है, तिसका पूजन न करियें तौ त्याग जाती है,

अरु शाप देती है, जब उह चिंतामणि अंतर्धान हो गई, तब उह बडे दुःखकों प्राप्त भया, जो चिंतामणि मेरे पासतें निवृत्त होगई, अरु बहुरि यत्न करने लगा, जब बहुरि उपाय किया, तब काचकी मणि किसी हांसीकरि तिसके आगे दोडि गई, सा तिसके पास आय पडी, उसकों देखत भया, देखीकरि कहणे लगा, जो इह चिंतामणि है, तब उसकों उठाय लीनी, लेकरि अपणे घर आया, अबोधके वशतें उसकों चिंतामणि जानत भया, जैसे मोहकरि असतकों सत् जानता है, अरु रज्जुकों सर्प जानता है, अरु जैसे दो चंद्रमा, अरु शत्रुकों मित्र अरु विषकों अमृतरूप जानता है, तैसे उह काचकों चिंतामणि जानत भया, अरु जेता कछु अपनां धन था, सो लुटाय दिया, अरु कुटुंबका त्याग किया, कहणे लगा, जो मेरे तांई चिंतामणि प्राप्त भई है, अब कुटुंबसाथ क्या प्रयोजन है, अरु घरतें निकसिकरि वनकों गया, वनविषे जाय बडे दुःखकों प्राप्त भया, जो काचकी मणिसाथ कछु प्रयोजन सिद्ध न हुआ, तैसे हे राजन्! जो विद्यमान वस्तु होवै, तिसकों मूर्ख त्यागते हैं, तिसका माहात्म्य नहीं जाणते, अरु नहीं पावते ॥ ॥ इति श्रीयोगवासिष्ठे निर्वाणप्रकरणे चिंतामणिवृत्तांतवर्णनं नाम नवषष्टितमः सर्गः ॥ ६९ ॥ ॥ ॥ ॥ देवपुत्र उवाच ॥ हे राजन्! इसी पर एक अवर आख्यान कहता हौं, सो श्रवण करु, मंदराचल पर्वतके वनविषे एक हस्ती रहता था, सो सर्व हस्तीका राजा था, कैसा था सो मानौं मंदराचल पर्वत है, जिसकों अगस्त मुनिनें रोक्या था! ऐसा जो मंदराचल पर्वत है, तिसविषे रहता था, अरु जिसके बडे दंत हैं, इंद्रके वज्रकी नांई तीक्ष्ण हैं, बडा बलवान अरु प्रकाशवान, जैसे प्रलयकालकी वडवाग्नि होती है, ऐसा प्रकाशवान अरु बलवान ऐसा जो सुमेरु पर्वतकों दंतसाथ उठावै, तिस हस्तीकों महावतनें बल छल करिके बांधा, जैसे बलि राजाकों विष्णु भगवाननें बांधा, तैसे लोहकी संकरसों हस्तिकों पाय, अरु आप महावत जो निकट वृक्ष था, तिसपर चढि बैठा, किसनिमित्त बैठा था, जो कुंदकरि हस्तीके ऊपर चढि बैठो, अरु हस्ती संकर

कार महाकष्टको प्राप्त भया, कैसे दुःखको प्राप्त भया, जो वाणीकरि कह्या नहीं जाता, जब ऐसा दुःख पा
या तब हस्तिके मनविषे विचार उपजा, जो अब मैं बलसाथ संकर न तोडौंगा, तौ कब छूटौंगा, तिन सं
करकों बल करिके तोडि दिया, अरु वृक्षपर जो महावत बैठा था, सो गिर्या, सो हस्तिके चरणों आगे आ
य पडा, अरु भयकों प्राप्त भया, जैसे फल पवनकरि गिरपडता है, तैसे महावत भयकरि गिरपडा, जब इ
स प्रकार महावत गिऱ्या, तब हस्तिनें विचार किया, जो यह मृतकसमान है, तातें मुएकों क्या मारणां है,
यद्यपि मेरा शत्रु है, तौ भी मैं नहीं मारता, इसके मारणेकरि मेरा क्या पुरुषार्थ सिद्ध होता है, तातें मैं नहीं
मारता ॥ हे राजन्! जब ऐसे दयाकरि हस्तिनें महावतकों न मारा, जो पशुयोनिविषे भी दया मुख्य है,
तब महावतकों छांडीकरि हस्ती वनविषे चला, जैसे बंधकों पाणी तोडीकरि वेगसाथ चलता है, तैसे संक
रकों तोडीकरि हस्ती वनकों गया, जैसे स्वर्गके द्वारे तोडीकरि दैत्य जाय प्रवेश करते हैं, तैसे संकरकों तो
डीकरि हस्ती वनविषे जाय प्रवेश किया, अरु हस्तिकों गया देखि महावत जो पडा था सो उठी बैठा, अ
रु अपणे स्वभावविषे स्थित भया, बहुरि हस्तिके पाछे चला, अरु हस्तिकों खोजि लिया, जैसे चंद्रमाकों
राहु खोजि लेता है, तैसे वनविषे हस्तिकों खोजि लिया, देखा जो वृक्षके तले सोया पडा है, जैसे संग्राम
कों सूरमा जीतिकरि निचिंत होता है, तैसे हस्तिकों निचिंत सोया पडा देखा, जो संकरकों तोडिकरि आ
य सोया है, तब महावतनें विचार किया जो इसकों वश करियें अरु यही उपाय करत भया, जो बेलेके च
उफेर खाइकरि, जैसे ब्रह्मानें विश्वकों उत्पन्न करिके पृथ्वीके चउफेर समुद्रचक्र किया है, तैसे बेलेके च
उफेर खाइका चक्रकरि लिया, अरु खाइके पर कछु तृण घास पाया, जैसे शरत्कालके आकाशविषे बदल
देखणे मात्र होता है, तैसे तृण घास खाइ ऊपर देखणे मात्र दृष्ट आवैं, अरु बीच खाईकरि, तब एक सम
य हस्ती उठीकरि चल्या, अरु खाइके बीच गिरपडा, जब गिरपडा तब महावत हस्तिके निकट आया, अरु

संकरोंसाथ बांधा, जैसे दैत्य छल करिके देवताकों वश करते हैं, जैसे अगस्त्यमुनिनें छल करिके मंदरा चलकों रोकि छोडा था, तैसे हस्तिकों महावतनें वश किया, अरु हस्ति गिरपडा, जैसे सूके समुद्रविषे पर्वत गिरपडता है, तैसे खाइविषे हस्ती गिरपडा, अरु बडे दुःखकों प्राप्त हुआ, जो अब तप वनविषे पडा दुःख पावता है, काहेतें जो भविष्यका विचार न किया, अज्ञानीकों भविष्यकता विचार नहीं, इसीतें दुःख पावता हैं, वर्तमानकालविषे विचार नहीं करता, जो आगे क्या होणां है, इसीतें अज्ञानी हस्ती दुःखकों प्राप्त भया ॥ हे राजन्! यह जो आख्यान तेरे तांई मैं श्रवण कराये हैं, एक मणिका, एक हस्तिका, तिनकों जब तूं समझैगा, तब आगे मैं, उपदेश करोंगा ॥ ॥ इति श्रीयोगवासिष्ठे निर्वाणप्रकरणे हस्त्याख्यानवर्णनं नाम सप्ततितमः सर्गः ॥ ७० ॥ ॥ ॥ वसिष्ठ उवाच ॥ हे रामजी! जब देवपुत्रनें ऐसे कहा तब राजा कहत भया ॥ हे देवपुत्र! यह दो आख्यान तुमनें कहे हैं सो तुम जानते हौ, मैं तौ कछु नहीं समझा, तातें खोलिकरि तुमही कहौ, तब देवपुत्रनें कहा ॥ हे राजन्! तूं शास्त्रके अर्थविषे तौ बहुत चतुर हैं, सब अर्थका ज्ञाता हैं, परंतु स्वरूपविषे तेरे तांई स्थिति नहीं, जैसे आकाशविषे पर्वत नहीं ठहरता, तातें जो वचन मैं कहता हौं, सो बुद्धिकरि ग्रहण करु, जो हस्ती क्या है, अरु चिंतामणि क्या है, प्रथम जो सर्व त्याग तैंनें किया था, सो चिंतामणि थी, तिसके निकट तूं प्राप्त होकरि सुखी भया, जब तिसकों तूं अपणे पास राखता, तब दुःख सब निवृत्त हो जाते, सो मणिकों तैंनें निरादर किया, जो तिसकों त्याग्या, अरु काचकी मणि तप क्रियाकों प्राप्त भया, सो दरिद्रीही रहा ॥ हे राजन्! सर्वत्यागरूपी चिंतामणि थी, अरु यह क्रियाका आरंभ काचकी मणि है, सो तैंनें ग्रहण करी, तिसतें दारिद्रकी निवृत्ति नहीं होती, दुःखीही रहता, त्यागरूपी चिंतामणिका आवाहन था, अरु क्रियारंभ तिसका अनादर है ॥ हे राजन्! सर्व त्याग तैंनें नहीं किया, किया भी था परंतु कछुक रहता था, तिसके रहणेतें वहुरि विस्तारकों प्राप्त

भया, जैसे बडा बदल वायुकरि क्षीण होता है, अरु सूक्ष्म रहि जाता है, अरु पवनके रहेतें बहुरि विस्तार कों पावता है, अरु सूर्यकों छिपाय लेता है, सो बदल क्या है, अरु सूर्य क्या है, अरु थोडा रहणा क्या है सो सुण, स्त्रियां अरु कुटुंबतें आदि त्याग किया, अरु अहंकार इनविषे करणां सो बडा बदल है, अरु वैराग्यरूपी पवनकरि राज्य अरु कुटुंबका अहंकाररूपी बडा बदल निवर्त हुआ अरु देहादिकविषे जो अहंकार रहा सो सूक्ष्म बदल रहा, सो बहुरि वृद्ध होगया, जो अनात्म अभिमान करिके क्रियाका आरंभ किया, इस करिके आत्मारूपी सूर्य जो अपणां आप है, सो अहंकाररूपी बदलकरि आच्छाद्या गया, ज्ञानरूपी चिंतामणि ज्ञानरूपी काचकी मणि करिके जैसे छपन भई, जब ज्ञान करिके आत्माकों जाणैगा, तब आत्मा प्रकाशैगा, अन्यथा न भासैगा, जैसे कोउ पुरुष घोडेपर चढिके दउडावता है, तिसकी वृत्ति घोडेविषे होती है, तैसे जिस पुरुषका आत्माविषे दृढ निश्चय होता है, तिसकों आत्मातें भिन्न कछु नहीं भासता है ॥ हे राजन्! आत्माका पावणां सुगम है, जो सुखेनहीं पाइता है, अरु बडे आनंदकी प्राप्ति होती है, अरु तपादिक क्रिया जो हैं, तिसकों कष्टकरि सिद्धि होता है, अरु स्वरूपसुखकी प्राप्ति नहीं होती ॥ हे राजन्! मैं जानता हौं, तूं मूर्ख नहीं, शास्त्रोंका ज्ञाता है, अरु बहुत चतुर है, तथापि तेरे तांई स्वरूपविषे स्थिति नहीं, जैसे आकाशविषे पत्थर नहीं ठहरता, तातें मैं उपदेश करता हौं, तिसकों ग्रहण करु, तेरे दुःख निवर्त हो जावैंगे, अरु पाछे जो राज्यका त्याग आया है, जैसे ब्रह्माकी रात्रविषे संसारका अभाव हो जाता है, तैसे त्याग किया था ॥ हे राजन्! यह सर्वतें श्रेष्ठ ज्ञान कहा है, अरु कहता हौं, तैंनें जो तपक्रियाका आरंभ किया है, अरु तिसका जो फल जाण्या है, तिस ज्ञानतें श्रेष्ठ ज्ञान कहा है, अरु कहता हौं, जो तेरा भ्रम निवृत्त हो जावैगा ॥ हे राजन्! चिंतामणिका तात्पर्य संपूर्ण तेरे तांई कहा, अब हस्तिका वृत्तांत जो आश्चर्यरूप है सो श्रवण करु, जिसके समुझणेकरि अज्ञान निवृत्त हो जावैगा, मंदराचलका हस्ती

सो तूं है, अरु महावत तेरे तांई अज्ञानता है, इस अज्ञानरूपी महावतनें तेरेकों बांधा है, अरु हस्ती जो सं
कलहुंसाथ बांधा था, सो आशारूपी संकलोंकरि बांधा था, अरु संकलतें भी तूं अधिक बांधा है, जो संक
ल तौ घसते भी हैं, अरु आशारूपी फांसी घटती नहीं, दिन दिन बढती जाती है॥ हे राजन्! आशारूपी फां
सी करिके तूं महादुःखी है, अरु जो हस्तीके बडे दंत थे, जिसकरि संकलोंकों तोडा था, सो तेरे दंत विवेक
अरु वैराग्य हैं, जो तैंनें विचार किया, मैं बल करिके छूटौं, अरु राज्य कुटुंब पृथ्वीका त्यागकरि आया, अरु फां
सीकों काट्या, तब आशारूपी रसे काटे, अज्ञानरूपी महावत भयकों प्राप्त भया, अरु तेरे चरणोंके तले आय प
डा, जैसे वृक्ष ऊपर वैताल रहता है, अरु कोउ वृक्षकों काटणे आवता है, तब वैताल भयकों प्राप्त होता है, तैसेही
तैंनें वैराग्य अरु विवेकरूपी दंतहूं करिके आशाके फांस काटे तब अज्ञानरूपी महावत गिर्या, अरु तैंनें एक
घाउ लगाया, परंतु मारि न डारा तब महावत तुझतें भागि गया, जैसे वृक्षपर वैताल रहता है, वृक्षकों कोऊ
काटणे लगता है, तब वैताल भागि जाता है॥ हे राजन्! तैसे वृक्षकों तैंनें काट्या, वैराग्यरूपी शस्त्र करिके
तब अज्ञानरूपी वैताल भागा, अरु मूर्खता करिके तिसकों तैंनें न मारा, तिसकों छांडीकरि तूं वनविषे
गया, जब तूं वनविषे आया, तब अज्ञानरूपी महावत तेरे पाछे चला आया, आएकरि तेरे चउफेर खाइ
करि जो तपादिक क्रियाका आरंभ किया, तिस खाइविषे तूं गिरपडा, अरु महादुःखकों तूं प्राप्त भया, तब
तेरेकों संकलहूंसाथ बहुरि बांधा, अरु देखणे लगा, जो अबतक दुःख पावता है अरु तूं कैसी खाइविषे गिर्या
है, जो अनात्माभिमान करिके इहां तपादिक क्रियाका आरंभ किया है, जो मैं कहाता हौं ऐसी खाइ
विषे तूं पडा है॥ हे राजन्! तूं जाणिकरि खाइविषे नहीं पडा, खाइके उपर घास तृण पडा था, छल करि
के तूं गिर पडा है, सो छल अरु तृण कवन है, तूं श्रवण करु, प्रथम जो अज्ञानरूपी शत्रुकों न मारा अरु
संकलोंके भय करिके तूं भागा, जो वन मेरा कल्याण करैगा, संत अरु शास्त्रके वचनोंकों न जान्या, जो ते

रे दुःखकों निवृत्त करही, अरु उन वचनरूपी खाइपर तृणादिक था, मूर्खता करिके तूं गिर्या, जैसे वलि राजा पातालविषे छल करिके बांधा हुआ है, तैसे भविष्यतका विचार किया नहीं, जो अज्ञानशत्रु रहा हुआ मेरा नाश करैगा, तिस विचार विना तूं वहुरि दुःखी हुआ, सर्व त्याग तौ किया परंतु ऐसे न जाना जो मैं अक्रिय हौं, इह क्रियाका आरंभ काहेकों करता हौं, इसीतें तूं वहुरि फांसीसाथ वांधा है ॥ हे राजन्! जो पुरुष इस फांसीतें मुक्त भया, सो मुक्त है, अरु जिसका चित्त अनात्म अभिमानकरि वांधा है, जो यह मेरेकों प्राप्त होवै, तिसकरि दुःखकों पावता है, जिस पुरुषनें वैराग्यविवेकरूपी दंतोंकरि आशारूपी जंजीर कों नहीं काटा, सो कदाचित् सुख नहीं पावता, विवेकतें वैराग्य उत्पन्न होता है, अरु वैराग्यतें विवेक होता है, विवेक कहिये सत्यकों जानणां, अरु असत देहादिककों असत्य जानणां, जव ऐसे जाण्या तव असत्की उर भावना नहीं जाती, सो वैराग्य हुआ, अरु वैराग्यतें विवेक उपजता है, विवेकतें वैराग्य उपजता है, इन विवेक अरु वैराग्यरूपी दंतकरि आशारूपी संकलकों तोड ॥ हे राजन्! यह हस्तीका वृत्तांत जो तुझकों कहा है, इसके विचार कियेतें मोह तेरा निवृत्त हो जावैगा ॥ हे राजन्! हस्ती वडा वली था, अरु महावत् छोटा वली था, तिस अज्ञानरूपी महावतकों मूर्खता करिके न मारा तिस करिके दुःख पावता है, तातें तूं वैराग्यविवेकरूपी दंतकरि आशारूपी फांसीकों तोड, तव दुःख सव मिटि जावैंगे ॥ ॥ इति श्रीयोगवासिष्ठे निर्वाणप्रकरणे हस्तिवृत्तांतवर्णनं नाम एकसप्ततितमः सर्गः ॥ ७१ ॥ ॥ ॥

॥ देवपुत्र उवाच ॥ ॥ हे राजन्! ऐसी जो तेरी स्त्री चूडाला ब्रह्मवेत्ता थी, अरु सर्वज्ञान श्रेष्ठ साक्षात ब्रह्मस्वरूप अरु सत्वादी, तिसनें तेरे तांई उपदेश किया; अरु तैंनें तिसके वचनोंका निरादर किसनिमित्त किया, मैं तौ सर्व जाणता हौं, जो त्रिकालज्ञ हौं, तौ भी तूं अपणे मुखतें कहु, जो तिसका उपदेश अंगीकार क्यौं न किया, एक तौ यह मूर्खता करी, जो उपदेश न अंगीकार किया, अरु दूसरी यह मूर्खता

है, जो सर्व त्याग न करिके बहुरि वन अंगीकार किया, जो सर्व त्याग करता तौ सर्व दुःख मिटि जाते, जब ऐसे देवपुत्रनें कहा, तब राजा कहत भया॥ हे देवपुत्र! मैं तौ सर्व त्याग किया है, स्त्री पृथ्वी मंदिर हस्ती इत्यादिक जो ऐश्वर्य अरु कुटुंब हैं, सो सर्व त्याग किया है, तुम कैसे कहते हो जो त्याग नहीं किया, तब देवपुत्रनें कहा॥ हे राजन्! तैंनें क्या त्यागा है, राज्यविषे तेरा क्या था, जैसे ऐश्वर्य आगे था, तैसे अब भी है, अरु स्त्रीयां भी जैसे अवर मनुष्य थे, तैसे स्त्रियां थी, तिनविषे तेरा क्या था, जो त्याग किया, पृथ्वी, मंदिर अरु हस्ती जैसे आगे थे, तैसे अब भी हैं, तिनविषे तेरा क्या था जो त्याग किया है॥ हे राजन्! सर्व त्याग तैंनें अब भी नहीं किया, जो तेरा होवै, तिसका तूं त्याग कर, जो निर्दुःख पदकों प्राप्त होवै॥ वसिष्ठ उवाच॥ ॥ हे रामजी! जब इस प्रकार देवपुत्रनें कहा, तब सूर वीर जो इंद्रजित राजा था, सो मनविषे विचारत भया, जो यह वन मेरा है, अरु वृक्ष फूल फल मेरे हैं, इनका त्याग करौं, अरु कहत भया॥ हे देवपुत्र! वन अरु वृक्ष फूल फल टास जो मेरे थे, तिनका मैं त्याग किया, अब तौ सर्व त्याग हुआ क्यौं, तब देवपुत्रनें कहा॥ हे राजन्! अब भी सर्व त्याग नहीं भया, जो वन अरु वृक्ष फूल फल तुझतें आगे भी थे, इनविषे तेरा क्या है, जो तेरा है, तिसकों त्याग, तब सुखी होवै॥ हे रामजी! जब इस प्रकार देवपुत्रनें कहा, तब राजा मनविषे विचारत भया जो मेरी जलपानकी वावली है, अरु मेरे वगीचे हैं, इनका त्याग करौं, जो सर्व त्याग सिद्ध होवै, अरु कहा॥ हे भगवन्! मेरी यह बावली अरु वगीचे हैं, तिनका त्याग किया, अब तौ मेरा सर्व त्याग सिद्ध हुआ क्यौं, तब देवपुत्रनें कहा॥ हे राजन्! सर्व त्याग अब भी नहीं भया, जो तेरा है, तिसकों त्यागैगा, तब शांत पदकों प्राप्त होवैगा॥ हे रामजी! जब इस प्रकार देवपुत्रनें कहा तब राजा विचारणे लगा, जो अब मेरी मृगछाला अरु कुटी है, तिसका त्याग करौं, अरु कहा॥ हे देवपुत्र! मेरे पास एक मृगछाला अरु एक कुटी है, तिसका त्याग किया, अब सर्व त्यागी भया

क्यौं? तब देवपुत्रनें कहा ॥ हे राजन्! मृगछालाविषे तेरा क्या है, यह तौ मृगकी त्वचा है, अरु कुटीविषे तेरा क्या है, कुटी तौ माटी अरु शिलाकी है, इसकरि तौ सर्व त्याग सिद्ध नहीं होता, जो कछु तेरा है, तिसकों त्यागै तब सर्व त्याग होवै, अरु तूं सर्व दुःखतें रहित होवै ॥ हे रामजी! जब ऐसे कुंभनें कहा तब राजानें मनविषे विचार किया, जो अब मेरा एक कमंडलु है, अरु एक माला है, एक लाठी है, इसका त्याग करौं, ऐसे विचारकरि राजा शांतिके लिये बोलत भया ॥ हे देवपुत्र! मेरी लाठी अरु कमंडलु अरु एक माला हैं, तिसका भी त्याग किया, अब मैं सर्वत्यागी भया क्यौं, तब देवपुत्रनें कहा ॥ हे राजन्! कमंडलुविषे तेरा क्या है, कमंडलु तौ वनका तुंबा है, तिसविषे तेरा कछु नहीं, अरु लाठी भी वनके वासकी है, अरु माला भी काष्ठकी है, तिनविषे तेरा क्या है, जो कछु तेरा है, तिसका त्याग कर, जब तिसका त्याग करैगा तब दुःखतें रहित होवैगा ॥ हे रामजी! जब इस प्रकार कुंभनें कहा, तब राजा शिखरध्वज मनविषे विचारत भया, जो अब मेरा क्या रहता है, तब देखा जो एक आसन रहता है, अरु वासन है, जिसविषे फूल फल राखते हैं, अब इनका त्याग करौं, तब राजानें कहा ॥ हे भगवन्! आसन अरु वासन यह मेरे पास रहते हैं, इनका भी त्याग किया, अब तौ सर्वत्यागी भया क्यौं, तब कुंभनें कहा ॥ हे राजन्! अब भी सर्व त्याग नहीं भया, आसन तौ भेडकी उनका है, अरु वासन मृत्तिकाके हैं, इनविषे तेरा कछु नहीं, जो कछु तेरा है, तिसका त्याग कर, जो सर्व त्याग होवै, अरु दुःख निवृत्त हो जावै ॥ हे रामजी! जब इस प्रकार कुंभनें कहा, तब राजा उठि खडा हुआ, अरु वनकी लकडी एकठीया करी, अरु अग्नि लगाई, जब बडी अग्नि लगी, तब लाठीकों हाथविषे लेकरि कहणे लगा ॥ हे लाठी! मैं तेरेसाथ बहुत देशोंका रटन किया है, परंतु मेरे साथ उपकार कछु न किया, अब मैं कुंभ मुनिका कृपातें तरौंगा, तेरे नमस्कार है, ऐसे कहिकरि लाठीकों अग्निविषे डारि दिया, बहुरि मृगछालाकों हाथविषे ले

करि कहा ॥ हे मृगकी त्वचा! बहुत कालमैं तेरे उपर आसन किया है, परंतु तुझनें उपकार कछु न किया, अब कुंभ मुनिकी कृपासों मैं तरौंगा, तेरे तांई नमस्कार हैं, ऐसे कहिकरि मृगछालाकों अग्निविषे डारि दीनी, बहुरि कमंडलुकों लेकरि कहणे लगा ॥ हे कमंडलु! धन्य है, मैं तेरे तांई धारा, अरु तुझनें मेरे जलकों धारा; तैंनें तुझसाथ, गुण गोप नहीं किया, तौ भी कमंडलुकी जैसे प्रवृत्ति त्यागणी है, तैसे निवृत्तिकी कल्पना भी त्यागणी है, तातें तेरेकों नमस्कार है, तुम जावहु, ऐसे कहीकरि कमंडलु भी अग्निविषे जलाय दिया, बहुरि मालाकों हाथविषे लेकरि कहणे लगा ॥ हे माला! तेरे मणके जो मैं फेरे हैं, सो मानों अपणे मैंनें जन्म गिने हैं, तेरे संबंधकरि जाप किया है, अरु दिशा विदिशा गया हौं, अब तेरेकों नमस्कार है, ऐसे कहीकरि मालाकों भी अग्निविषे डारि दीनी, इसी प्रकार फल फूल कुटी आसन सब जलाय दिये, बडी अग्नि जागी, अरु बडा प्रकाश भया, जैसे सुमेरु पर्वतकेपास सूर्य चढै, अरु मणिका भी चमत्कार होवै, तौ बडा प्रकाश होता है, तैसे बडी अग्नि लगी, अरु राजानें संपूर्ण सामग्रीका त्याग किया, जैसे पके फलकों वृक्ष त्यागता है, जैसे पवन चलणेतें ठेरता है, तब धूडतें रहित होता है, तैसे राजा सर्व सामग्रीकों त्यागी निर्विघ्न हुआ, अरु सर्व सामग्री अग्निविषे डारी, अरु अग्निरूप होत भई; जैसे नदियां समुद्रविषे जाय समुद्ररूप होतियां हैं, तैसे सब सामग्री अग्निरूप होत भई ॥ इति श्रीयोगवासिष्ठे निर्वाणप्रकरणे शिखरध्वजसर्वत्यागवर्णनं नाम द्विसप्ततितमः सर्गः ॥ ७२ ॥ ॥ ॥ वसिष्ठ उवाच ॥ हे रामजी! जब संपूर्ण सामग्री जलाई, अरु भस्म हो गई, जैसे सदाशिवके गणनें दक्षप्रजापतिके यज्ञकों स्वाहाकरि दिया था, तैसे जेती कछु सामग्री थी, सो सब स्वाहा हो गई अरु वन बडा प्रज्वलित भया, जेते कछु वृक्षके रहणेवाले पक्षि थे, सो भाजि गए, अरु मृग पशु केई आहार करते, केई जुगली करते थे, सब भाजि गये, जैसे पुरकों आग लगेतें पुरवासी भाजि जावैं, तैसे भाजि गये, तब राजा मनविषे विचारत भया, जो अब कुंभकी कृपातें मैं

बडे आनंदकों प्राप्त भया ॥ अब दुःख मेरे मिटि गये हैं, जेती कछु वस्तु मनके संकल्पकरि रची थी, जो मेरी है सो जलाय दीई, तिसका न मेरे तांई हर्ष है, न शोक है, जेते कछु दुःख होते हैं, सो ममत्वकरि होते हैं, सो मेरा ममत्व अब किसीसाथ नहीं रहता, तातें दुःख भी कोउ नहीं, अब मैं ज्ञानवान भया हौं, अब मेरी जय है, अब निर्मल भया हौं, अरु सर्व त्याग किया है, ऐसे विचार करिके राजा उठि खडा हुआ, हाथ जोडी कहत भया ॥ हे देवपुत्र! अब मैं सर्व त्याग किया है क्यौं, जो आकाशही मेरे वस्त्र हैं, अरु पृथ्वी मेरी शय्या है, जब राजानें ऐसे कहा, तब कुंभ मुनिनें कहा ॥ हे राजन्! अब भी सर्व त्याग नहीं किया, जो तेरा है, तिसका त्याग करु, तब दुःख तेरे निवृत्त हो जावही, बहुरि राजानें कहा ॥ हे भगवन्! अब तौ अवर मेरेपास कछु नहीं रहता, नागा होकरि तुमारे आगे खडा हौं, अब एक रक्त मांसका देह है इंद्रियाकों धारणहारा, जो कहौ; तौ इसका भी त्याग करौं, पर्वत उपर जायकरि डारी देऊं, ऐसे कहीकरि राजा पर्वतकों दोड्या, जो देहकों डारि देऊं, तब कुंभ मुनिनें कहा ॥ हे राजा! ऐसे पुण्य देहकों क्यौं त्यागता है, इसके त्यागेतें सर्व त्याग नहीं होता, जिसके त्यागणेतें सर्व त्याग होवै, इसका त्याग करु, इस देहविषे क्या दूषण है, जैसे वृक्षसाथ फूल फल होते हैं, जब वायु चलता है, तब फूल फल गिरते हैं, सो फूल फल गिरनेका कारण वायु है, वृक्षविषे दूषण कछु नहीं, तैसे देहविषे दूषण कछु नहीं, जो देहके पालणेहारा अभिमान है, त्याग तिसका करु, जो सर्व त्याग सिद्धि होवै, अरु देह तौ गुण है, जो कछु इसकों देता है, सोइ लेता है, आगेतें बोलता नहीं, जड है, इसके त्यागतें क्या सिद्धि होता है, जैसे पवनकरि वृक्ष हीलता है, अरु भूकंपकरि पर्वत कंपते हैं, तैसे देह आप कछु नहीं करता, अवरके प्रेरी चेष्टा करता है, जैसे पवनकरि समुद्रविषे तरंग होते हैं, अरु तृणकों जहां जल ले जाता है, तहां चले जाते हैं, तैसे देह आपतें कछु नहीं करता, इसका जो प्रेरनेवाला है, तिसकरि चेष्टा करता है, तातें देहके प्रे

रनेवालेका त्याग करु जो सुखी होवै ॥ हे राजा! जिसकरि सर्व है, अरु जिसविषे सर्व शब्द हैं, अरु जो सर्व उरतें त्यागणे योग्य है,तिसका त्याग कर,जो तेरे सर्व दुःख मिटि जावैं, तब राजानें कहा ॥ हे भगवन्! उह कवन है जो सर्व है,अरु जिसविषे सर्व शब्द हैं, अरु जो सर्व उरतें त्यागणे योग्य है ॥ हे तत्त्ववेत्ताविषे श्रेष्ठ! जिसके त्यागेतें जरा मृत्यु नष्ट हो जावै सो कहो,तब कुंभनें कहा,हे राजा! जिसका नाम चित्त है,अरु प्राण है, अरु देह है, ऐसा जो चित्त है, तिसका त्याग कर, अरु बाहर जो नानाप्रकारके आकार दृष्ट आते हैं,सो चित्तही करि दृष्ट आते हैं, तातें चित्तका त्याग करु॥ हे राजा! जैसे सर्प खुदविषे बैठा होवै तौ खुदका दूषण कछु नहीं, विष सर्प विषे है, जिसकरि डसता है, तिसके नाश करणेका उपाय करु, अरु सर्व शब्द भी इस चित्तविषे है, अरु आत्मा है,जो मात्रपद है,जिसविषे न एक कहणां है,न द्वैत कहणा है,अरु सर्व उरतें इसी चित्तका त्याग करणा योग्य है, जब इस चित्तका त्याग करैगा, तब त्यागरूपी अमृतकरि अमर हो जावैगा, अरु जरा मृततें रहित होवैगा, अरु जब चित्तका त्याग न करैगा, तौ बहुरि देहकों धारैगा, अरु दुःख भोगैगा, अरु जैसे एक क्षेत्रतें अनेक दाणे उत्पन्न होते हैं, अरु जब क्षेत्रही जालि जाता है, तब अन्न नहीं उपजता, तैसे यह जो देह है,अरु जरा मृत्यु दुःख संसार इनका बीज चित्त है, जैसे अनेकका कारण क्षेत्र है, तैसे दुःख संसारका कारण चित्त है, तातें हे राजा! चित्तका त्याग करु, जब इसका त्याग करैगा, तब सुखी होवैगा ॥ हे राजा! जिसनें सर्व त्याग किया है, सो सुखी हुआ है, जैसे आकाश सर्व पदार्थतें रहित है, किसीका स्पर्श नहीं करता, अरु सर्वतें बडा है, अरु सुखरूप है, अरु सर्व पदार्थ नष्ट हो जाते हैं, तौ भी ज्यौंका त्यौं रहता है, जो आकाश सर्व त्याग किया है,हे राजा! तूं भी सर्वत्यागी होउ, राज्य अरु देह अरु कुटुंब गृहस्थ आदिक जो आश्रम हैं, सो सर्व चित्तनें कल्पे हैं, अरु जो एकका त्याग नहीं होता, तौ कछु नहीं त्यागा, जब चित्तका त्याग करै, तब सर्व त्याग होवै ॥ हे राजा! यह धर्म अरु वैराग्य अरु ऐश्वर्य तीनों चित्तके कल्पे हुए हैं,

जव चित्त पुण्यक्रियासों लगता है, तब पुण्यही प्राप्त होता है, जब पापक्रियासों लगता है, तब पापही प्राप्त होता है, अधर्म अरु अवैराग्य अरु दारिद्र होता है, जब पुण्यका फल उदय होता है, तब सुख प्राप्त होता है, अरु जब पापका फल उदय होता है, तब दुःख प्राप्त होता है, तातें जन्ममृत्यु दुःख नहीं मिटते, जब चित्तका त्याग होता है, तब सर्व दुःख नष्ट हो जाते हैं॥ हे राजा! जो कोउ पुरुष किसी वस्तुकों नहीं चाहता, जो मैं नहीं लेता, तब तिसकी पूजा बहुत होती है, अरु कोउ कहता है, जो मैं इस वस्तुकों लेउं, मेरे कों यह देवै, तब उसकों देता कोऊ नहीं, तातें सर्व त्याग करु, जो सुखी होवै, अरु सर्व त्याग कियेतें सर्व तूंही होवैगा, सर्वात्मा होवैगा, अरु संपूर्ण ब्रह्मांड अपणेविषे देखैगा, जैसे मालाके मणकेविषे तागा होता है, अरु मणके भी सूत्रके आधार होते हैं, तिनाविषे अवर कछु नहीं होता, तैसे देखैगा, जो सर्व मैंही हौं, अरु एकरस हौं, मेरेहीविषे ब्रह्मांड स्थित है, अरु मैंही हौं, तुझतें इतर कछु नहीं॥ हे राजा! जिसनें सर्व त्याग किया है, सो सुखी हैं, अरु समुद्रकी नांई स्थित है, उसकों दुःख कोउ नहीं, तातें तूं चित्तका त्याग करु, जो राज्य दोष मिटि जावै, अरु इस चित्तके एते नाम हैं, चित्त मन अहंकार जीव अरु माया, यह सर्व चित्तहीके नाम हैं॥ हे राजन्! त्यागणे अरु अवरकी भिक्षा लेणेतें तौ चित्त वश नहीं होता, चित्त तबही वश होता है, जब पुरुष निर्वासनिक होता है, जबलग चित्त फुरता है, तबलग सर्व त्याग नहीं होता, जब यही फुरना निवृत्त होता है, तब चित्तका त्याग होता है, अरु चित्तकों त्यागिकरि भी त्यागके अभिमानतें रहित होणा, ऐसा शून्य पाछे जब तूं रहैगा, तब सर्वात्मा होवैगा, जब चित्तकों त्यागैगा, तब तिस पदकों प्राप्त होवैगा, जो जेते ऐश्वर्यसुख हैं, तिनका आश्रय है, अरु जेते दुःख हैं, तिनका नाश करणेहारा है, अरु जिसके जाणेतें किसी पदार्थकी इच्छा न रहैगी, काहेतें न रहैगी, जो सर्व आनंदके धारणेहारा तेरा स्वरूप है, वहुरि इच्छा किसकी रहै, जैसे आकाशके आश्रय देवलोकतें आदि सर्व विश्व रहता है, अरु आ

काशकों इच्छा कछु नहीं, जो इच्छा नहीं करता तौ भी सर्व आकाशहीविषे है, अरु सर्वका धारणेहारा है ॥ हे राजन्! जब तूं भी इच्छा किसकी न करैगा, तब निर्वासनिक होकरि अपणे स्वरूपविषे स्थित होवैगा, अरु जाणैगा जो सर्वका आत्मा मैंही हौं, सर्वकों धारी रहा हौं, अरु भूत भविष्य वर्तमान तीनों काल भी मेरे आश्रय हैं, जैसे समुद्रके आश्रय तरंग हैं, तैसे मेरे आश्रय काल है, अरु चित्तका संबंध तेरे तांई प्रमाद करिके है, अरु प्रमाद यही है, जो चिन्मात्र पदविषे चित्त होकरि फुरता है, अरु चित्त कैसा है, जो जड भी है, अरु चेतन भी है, इसीका नाम चिद्जड ग्रंथि है, जब इह ग्रंथि खुल जावैगी, तब अपणे आपकों वासुदेवरूप जाणैगा, जब निर्वासनिक होवैगा, तब संसाररूपी वृक्ष नष्ट हो जावैगा, जैसे बीजविषे वृक्ष होता है, तैसे चित्तविषे संसार है, जैसे बीजके जलणेतें वृक्ष भी जलि जाता है, तैसे वासनाके दग्ध हुएतें संसार भी दग्ध होता है ॥ हे राजा! जैसे एक डब्बेविषे रत्न होते हैं, तौ रत्नोंके नाश हुए डब्बा नाश नहीं होता, अरु डब्बेके नष्ट हुए रत्न नष्ट होते हैं, सो डब्बा क्या है, अरु रत्न क्या है; श्रवण करु, डब्बा चित्त है, अरु रत्न देह है, तातें चित्त नष्ट होणेका उपाय करहु, जब चित्त नष्ट होवैगा, तब देहतें रहित होवैगा, देहके नष्ट हुए चित्त नष्ट नहीं होता, अरु चित्तके नष्ट हुए देह नष्ट हो जाता है, जब चित्तरूपी धूडतें रहित होवैगा, तब केवल शुद्ध आकाश होवैगा ॥ ॥ इति श्रीयो० नि० चित्तत्यागवर्णनं नाम त्रिसप्ततितमः सर्गः ॥ ७३ ॥ ॥

॥ वसिष्ठ उवाच ॥ हे रामजी! जब इस प्रकार कुंभनें कहा, जो चित्तका त्यागणाही सर्व त्याग है, तब शिखरध्वजनें कहा, हे भगवन्! मैं चित्तकों स्थित कैसे करौं, संसाररूपी आकाशकी चित्तरूपी धूड है, अरु संसाररूपी वृक्षका चित्तरूपी वानर है, जो कबहुं, स्थित नहीं होता, तातें ऐसे चित्तकों मैं कैसे स्थित करौं, तब कुंभनें कहा, हे राजन्! चित्तका रोकणां तौ सुगम है, नेत्रोंके खोलणे अरु मुंदणेविषे भी कछु यत्न है; परंतु चित्तके रोकणेविषे कछु यत्न नहीं, परंतु सुगम किसकों है, जो दीर्घदर्शी है, अरु अज्ञानीकों चित्तका

रोकणां कठिण है, जैसे चंडालकों पृथ्वीका राजा होणां कठिण है, अरु जैसे तृणकों सुमेरु होणां कठिण है तैसे अज्ञानीकों चित्तका रोकणा कठिण है ॥ राजोवाच ॥ हे देवपुत्र! चित्तका तोडनां कठिण है, तौ भी टूटि जाता है, परंतु मनका रोकणां अति कठिण है, जैसे बडे मच्छकों बालक रोकी नहीं शकता, तैसे मैं चित्तकों रोकी नहीं शकता ॥ हे देवपुत्र! तुम कहते हौ, जो मनका रोकणां सुगम है, अरु मुझकों ऐसे कठिण भासता है; जैसे मूर्त्ति लिखी हुई अंध पुरुषकों नेत्रसों नहीं दृष्ट आवती, तौ वे हाथविषे कैसे लेवै, तैसे तिनकों वश करणां मेरे तांई कठिण भासता है, प्रथम चित्तका रूप मेरे तांई कहौ जो क्या है॥ ॥ कुंभ उवाच ॥ ॥ हे राजन्! इस चित्तका रूप वासना है, जब वासना नष्ट होवै, तब चित्त नष्ट हो जावै, तातें चित्तका बीज तूं नष्ट कर, तब चित्तरूपी वृक्ष भी नष्ट होवै, न कोउ टास रहै, न कोउ फूल फल रहै, अरु जब टासकों काटैगा, तब बहुरि होवैगा, टासके काटणेतें वृक्ष नष्ट नहीं होता, बहुरि केई टास होता है, जब बीजकों नष्ट करै, तब वृक्ष भी नष्ट हो जावै ॥ ॥ राजोवाच ॥ हे भगवन्! संसाररूपी सुगंधि है, तिसका चित्तरूपी फूल है, अरु संसाररूपी तंतु है, तिसका चित्तरूपी भीह है, अरु देहरूपी तृण है, तिसके उठावणे उडावणेवाला चित्तरूपी पवन है, अरु जरा मृत्यु अध्यात्मक अधिभूतक तेल हैं, तिनका यह तिल है, जिसतें तेल उपजता है, अरु संसाररूपी अंधेरी है, तिसका यह चित्तरूपी आकाश है, जो आकाशविषे केई अंधेरी होतियां हैं, अरु हृदयरूपी कमलका चित्तरूपी भंवरा है, तिस बीज भी कहौ, अरु टास भी कहौ, जो क्या है, अरु टासका काटणां क्या है, अरु वृक्ष क्या है, अरु फूल फल क्या हैं, सो कृपाकरि कहौ॥ ॥कुंभ उवाच॥ हे राजन्! चेतनरूपी क्षेत्र स्वच्छ निर्मल है, तिसविषे अहंभाव बीज है, इसीकों अहंकार कहते हैं, अरु इसीकों चित्त कहते हैं, इसीकों मन कहते हैं, अरु इसीकों जड कहते हैं, इसीकों मिथ्या कहते हैं, तिस अहंविषे जो संवेदन है, सोई देह इंद्रियां हो पसरी है, तिसविषे जो निश्चय है, सो बुद्धि है, तिस बुद्धिविषे जो निश्चय

है, यह मै हौं, यह संसार है, सोइ जीव अहंकार है, अहंकार इस वृक्षका बीज है, अरु वासना इस चित्तरूपी वृक्षके टास हैं, अरु सुखदुःख इस चित्तरूपी वृक्षके फल हैं ॥ हे राजन्! इसका जो काटणां है, सो सुण, एकांत बैठीकरि चिंतवनातें रहित होणां, एक आश्रयकों त्यागिकरि दूसरेका अंगीकार करणां, इस प्रकार स्थित होणां, जो मैं ऐसा त्यागी हौं, इसका चिंतवणा यही टासकों काटणा है ॥ हे राजन्! इस टासके काटेतें वृक्ष नष्ट नहीं होता, काहेतें जो ऐसा होकरि स्थित होणां, जो मैं हौं, अरु वासना त्याग करै, कछु फुरै नहीं, जब अहंरूपी बीज नष्ट हो जाता है, तब चित्तरूपी वृक्ष नष्ट हो जाता है, काहेतें जो इसका बीज अहं है, जब अहंभाव बीज नष्ट हुआ, तब वृक्ष भी नष्ट हो जाता है, तातें चित्तका बीज तूं नष्ट कर ॥ राजोवाच ॥ हे देवपुत्र! तुमारा निश्चय मैं इहां जाण्या है, जो चित्तके त्यागेतें चित्तका बीज नष्ट करणां श्रेष्ठ है ॥ हे भगवन्! एता काल मैं टास काटता रहा हौं, इसीतें दुःख मेरे नष्ट नहीं भये, अरु तुमनें कहा, जो अहंही दुःखदायी है, सो अहंका उत्पन्न होणां कैसे होता है? ॥ कुंभ उवाच ॥ हे राजन्! शुद्ध चेतनविषे जो चैत्योन्मुखत्व अहंका फुरणा हुआ जो मैं हौं, सो दृश्यरूप हुआ है, मिथ्या संवेदन करिके हुआ है, जैसे शांत समुद्रविषे पवन करिके लहरी तरंग होते हैं, तैसे शुद्ध आत्माविषे अहं फुर्णा है, तिस करिके संसार हुआ है, तातें अहंभावकों नष्ट करु, जो शांतपदविषे स्थित होवै, जो दुःखदायक वस्तु है, तिसकों नष्ट करै सो शांत होवै ॥ ॥ राजोवाच ॥ हे भगवन्! उह कवन वस्तु है, जो जलावणे योग्य है, अरु उह कवन अग्नि है, जिसविषे जलती है ॥ कुंभ उवाच ॥ हे त्यागवानविषे श्रेष्ठ राजा! तेरा जो अपणां स्वरूप है, तिसका विचार कर, जो मैं क्या हौं, यह संसार क्या है, इसका दृढ विचार करणां सोइ अग्नि है, अरु मिथ्या अनात्मा जो देह इंद्रियांदिकविषे अहंभाव है, तिसकों वास्तवरूप विचार अग्निकरि जलावहु, जब विचार अग्नि करिके अहंकार बीजकों जलावैगा, तब केवल चिन्मात्र होवैगा ॥ हे राजा! मेरे उपदेश करिके तूं आपकों क्या जा

नत भया है, सो मेरे तांई कहौ, तब राजानें कहा, मैं राजा भी नहीं, अरु पृथ्वी भी मैं नहीं, अरु पर्वत भी मैं नहीं अरु आकाश भी मैं नहीं, अरु दशों दिशा भी मैं नहीं, अरु मैं रुधिरमांसकी देह भी नहीं, अरु कर्म इंद्रियां, ज्ञान इंद्रियां भी नहीं, अरु मन बुद्धि भी मैं नहीं, अरु मैं अहंकार भी नहीं, इनतें रहित शुद्ध आत्मा हौं, परंतु हे भगवन्! अहंरूपी कलंकता मेरे तांई कहांतें लगी है, तिस कलंकके दूर करणेकों मैं समर्थ नहीं, तब कुंभनें कहा ॥ हे राजा! इसी अहंका त्याग करु, जो मैं त्याग किया है, यह फुरणां भी न फुरै, शून्य हो रहु, जब इसका त्याग करैगा तब चेतन आकाश होवैगा ॥ हे राजा! तूं अपणे स्वरूपविषे जाणिकरि देख, जो कवन है, तब राजानें कहा ॥ हे भगवन्! मैं यह जानता हौं, जो मेरा स्वरूप आत्मा है, सो सर्वका आत्मा है, अरु मैं आनंदरूप हौं, सर्व मेरा प्रकाश है, परंतु यह नहीं जानता जो अहंभावकलना कहांतें लगी है, इसके नाश करणेकों मैं समर्थ नहीं, अरु इह मैं जाण्या जो संसारका बीज चित्त है, अरु चित्तका बीज अहंकार है, तुमारी कृपातें मैं जाण्या है जो मेरा स्वरूप आत्मा है, अहं त्वं मेरेविषे कोउ नहीं, तुम भी इस अहंरूप कलंकताकों दूरकरि रहे हौ, मेरेतें दूर नहीं होता, बहुरि बहुरि आय फुरता है, जो मैं शिखरध्वज हौं, इस अहं करिके मैं संसारी हौं, इसके नाश करणेका उपाय तुम कहौ ॥ कुंभ उवाच ॥ हे राजा! कारणविना कार्य नहीं होता, अरु जो कारणविना कार्य भासै तो जाणियें जो भ्रममात्र है, अरु मिथ्या है, अरु जिसका कारण पाइये सो जाणिये जो सत्य है, तातें तूं कह, इस अहंकार कारण क्या है, तब मैं उत्तर कहौंगा ॥ राजोवाच ॥ हे भगवन्! अहंकारका कारण शुद्ध आत्मा है, शुद्ध आत्माविषे जो जानना हुआ है, जानणेमात्रविषे जानणेका उत्थान हुआ है, जो दृश्यकी उर लगा है, सो जानणा संवेदनही अहंका कारण है ॥ कुंभ उवाच ॥ हे राजा! इस जानणेका कारण क्या है, प्रथम तूं यह कहु, पाछे दूर करणेका उपाय मैं कहौंगा ॥ हे राजा! जिसका कारण सत् होता है, तौ कार्य भी सत् होता है; अरु जो कारण झूठ होता है, तौ

कार्य भी झूठ होता है, जैसे भ्रम दृष्टि करिके दूसरा चंद्रमा आकाशविषे देखता है, सो कारण तिसका भ्रम है, तातें इस जानणे संवेदनका कारण कहु जो क्या है, जो जानणां संवेदन दृष्ट अरु दृश्यरूप होकरि स्थित भई है, अरु दृश्यदृष्टरूप होकरि स्थित भई है ॥ राजोवाच ॥ हे देवपुत्र ! जानणेका कारण देहादिक दृश्य है, काहेतें जो जानणां तब होता है, जब जानणे योग्य वस्तु आगे होती है, जो आगे वस्तु नहीं होती है तौ तिसका जानणाभी नहीं होता, तातें जानणेका कारण देहादिक हुए ॥ ॥ कुंभ उवाच ॥ हे राजन्! यह देहादिक मिथ्या है, भ्रम करिके हुए हैं, इनका कारण तौ कोउ नहीं ॥ ॥ राजोवाच ॥ हे देवपुत्र! देहका कारण तौ प्रत्यक्ष है, खाता पिता है, अरु पितातें इसकी उत्पत्ति भई है, अरु प्रत्यक्ष कार्य करता दृष्ट आता है, तुम कैसे कहते हौ, जो कारणविना है, अरु मिथ्या है ॥ ॥ कुंभ उवाच ॥ हे राजा ! पिताका कारण कवन है, पिता भी मिथ्या है, जैसे स्वप्नविषे पिता अरु पुत्र देखिये सो दोनों मिथ्या हैं, तातें कहु पिताका कारण क्या है ॥ राजोवाच ॥ हे भगवन् ! पुत्रका कारण पिता, अरु पिताका कारण पितामह है, इसी प्रकार परंपरा करिके सर्वका कारण ब्रह्मा प्रत्यक्ष जानीता है, जो सर्वकी उत्पत्ति ब्रह्माजीतें भई है ॥ कुंभ उवाच ॥ हे राजन् ! ब्रह्मातें आदि काष्ठपर्यंत सर्व सृष्टि संकल्पकी रची है, अरु देह भी भ्रम करिके भासता है, जैसे मृगतृष्णाका जल भासता है, जैसे सीपीविषे रूपा भासता है, तैसे आत्माविषे देह भासता है, जैसे आकाशविषे दो चंद्रमा भ्रम करिके देखिते हैं, तैसे आत्माविषे यह संसार भ्रम करिके भासता है, अरु जो तूं कहै, क्रिया कैसे दृष्ट आते हैं तौ सुण, जैसे कोउ कहै, वंध्याके पुत्रकों भूषण पहराये हैं, जो वंध्याके पुत्रही नहीं तौ भूषण किसनें पहिरेसो भ्रम करिके भासता है, जैसे स्वप्नविषे सब क्रिया होती है सो भ्रममात्र है, तैसे यह संसार तेरे भ्रमविषे है, जब भ्रम निवृत्त होवैगा, तब केवल आत्माही भासैगा ॥ हे राजन् ! जैसे तूं आपणा देह जानता है, तैसे ब्रह्माका भी जाण, ब्रह्माका कारण कवन है, तातें इस भ्रमतें जाग, जो

तेरा भ्रम नष्ट हो जावै ॥ ॥ राजोवाच ॥ हे भगवन् ! मैं जाग्या हौं, अब मेरा भ्रम नष्ट भया है, अरु मैंनें यह संसार मिथ्या जाण्या है, जो केवल संकल्पमात्र है, जो कछु दृश्य है सो मिथ्या है, अरु एक आत्माही मेरे निश्चयविषे सत् भया है ॥ हे भगवन् ! ब्रह्माका कारण भी ब्रह्म है, अरु अद्वैत है, अविनाशी है, अरु सर्वात्मा है, ब्रह्मा कारण यह हुआ ॥ ॥ कुंभ उवाच ॥ हे राजन् ! कारण अरु कार्य द्वैतविषे होते हैं सो असत् है, जो तिस कारणका देशतें भी अंत होता है, वस्तुतें भी अरु कालतें भी अंत हो जाता है, अरु परिणामी होता है, जो वस्तु परिणामी होवै सो मिथ्या है ॥ हे राजा ! आत्मा अद्वैत है, जिसविषे न एक कहणां है, न द्वैत कहणां है, न भोगता है, न भोग है, न कर्म है, अद्वैत है, जो स्वरूपतें परिणामकों नहीं प्राप्त भया, अरु सर्वात्मा है, जो सर्वदेश है, अरु सर्वकाल भी है, जो सर्व वस्तुविषे पूर्ण है, अरु अद्वैत है, जो अद्वैत है, तौ कारण कार्य किसका होवै, कारणकार्यका संबंध द्वैतविषे होता है, अरु परिणामी होता है, अरु जिसविषे देशकालका अंत है सो आत्मा अद्वैत है, तिसविषे न कोउ देश है, न काल है, न कोउ वस्तु है, चिन्मात्रपद है ॥ हे राजा ! मैं जानता हौं, जो तूं जागृत होवैगा, भ्रम तेरा नष्ट हो जाता है, जैसे बरफकी पुतली सूर्यकी किर्णासों क्षीण हो जाती है, तैसे तेरा अज्ञान नष्ट हो जाता है, अज्ञानके नष्ट हुएतें तूं आत्माही होवैगा, तूं अपणे प्रत्यक् चेतनस्वरूपविषे स्थित होहु, अरु देख, जो ब्रह्मा आदिक सर्व परमात्माका किंचन है, परमात्माही ऐसे होकरि स्थित भया है, अरु जो दृष्टि पडता है, तिस सर्वका अपणां आप आत्मा है, जो जागै तौ जाणै, जागैबिना नहीं जाणता ॥ राजोवाच ॥ हे भगवन् ! तुमारी कृपातें मैं जाग्या हौं अरु जानता हौं, जो मेरा स्वरूप आत्मा है, अरु मैं निर्मल हौं, अब मेरा मुझकों नमस्कार है, एक मैंही हौं, मेरेतें इतर कछु नहीं, अरु मैं आपकों जान्या है ॥ ॥ इति श्रीयोगवासिष्ठे निर्वाणप्रकरणे राजविश्रांतिवर्णनं नाम चतुःसप्ततितमः सर्गः ॥ ७४ ॥ ॥ ॥ राजोवाच ॥ हे भग

वन्! तुम कैसे कहते हौ, जो ब्रह्माका कारण कोउ नहीं, आत्मा ऐसा ईश्वर है, जो अनंत हैं अरु अच्युत अव्यक्त अरु अद्वैत है, परमाणुका विषय नहीं, अरु परमब्रह्म है, सोइ ब्रह्माका कारण है ॥ ॥ कुंभ उवाच ॥ हे राजा! तूंही कहता है, जो आत्मा अनंत है, जो अनंत है, तिसकों देश काल वस्तुका परिच्छेद नहीं, सर्व देश सर्व काल सर्व वस्तु पूर्ण हैं, सो कारण कार्य तिसका होवै, कारण तब होवै जब प्रथम द्वैत होवै सो आत्मा अद्वैत है, अरु कारण तिसकों कहते हैं, जो कार्यतें पूर्व होवै, अरु पाछे भी उही होवै, जैसे घटके आदि मृत्तिका है, अंत भी मृत्तिका होती है, तिसकों कारण कहते हैं, सो आत्माविषे न आदि है, न अंत है, आत्मा अनंत है, अरु कारण तब होता है, जब परिणाम होता है सो आत्मा अच्युत है, अपणे स्वरूपतें कदाचित् नहीं गिर्या, अरु भोक्ता भी द्वैतविषे होता है, सो आत्मा अद्वैत है, भोग भोक्ता दोनों नहीं, अरु आत्माविषे कर्म भी नहीं, जो आत्मातें आदि कवन है, जिसकरि आत्मा सिद्ध होवै, अरु किसीका कार्य भी नहीं, काहेतें जो कार्य होता है सो इंद्रियांका विषय होता है, सो आत्मा अव्यक्त है, अरु जो कार्य होता है, तिसका कारण भी होता है, सो आत्मा सर्वकी आदि है, तिसका कारण कवन होवै जो सर्वात्मा है, अरु स्वच्छ है, आकाशवत निर्मल है, सो तेरा स्वरूप है ॥ ॥ राजोवाच ॥ हे भगवन्! बड़ा आश्चर्य है, मैं जाण्या है, जो आत्मा अद्वैत है, सो न किसीका कारण है, न कार्य है, अरु अनुभवरूप है सो मैं हौं, अरु निर्मल हौं, विद्या अविद्याके कार्यतें रहित हौं, अरु निर्वाण पद हौं, अरु निर्विकल्प हौं, मेरेविषे फुरणां कोउ नहीं, बहुरि कैसा हौं, जो मैं नहीं अरु मैंही हौं, ऐसा जो सर्वात्मा हौं, मेरा मुझ कों नमस्कार है ॥ ॥ इति श्रीयो० निर्वाणप्रकरणे शिखरध्वजविश्रांतिवर्णनं नाम पंचसप्ततितमः सर्गः ॥७५॥

॥ वसिष्ठ उवाच ॥ हे रामजी! राजा शिखरध्वज कुंभमुनिकों प्रबोध हुआ, ऐसे वचन कहीकरि केवल निर्वाणपदविषे स्थित भया, जब निर्विकल्प फुरणेतें रहित एक मुहूर्तपर्यंत स्थित रहा, जैसे दीपक वायु

तें रहित स्थित होता है, तब कुंभनें जगायकरि कहा ॥ हे राजन्! तेरा समाधिसाथ क्या है, अरु उत्थान क्या है, तूं तौ केवल आत्ममात्र है, अरु मैं जानता हौं, जो तूं परम ज्ञानकरि शोभत भया है, जैसे डब्बे विषे रत्न होता है, तिसका प्रकाश बाहिर दृष्ट नहीं आता, अरु जब डब्बेसों निकासीकरि देखिये, तब ब डा प्रकाश भासता है, तैसे अविद्यारूपी डब्बेसों तूं निकस्या है, अरु परमज्ञान करिके शोभत भया है॥ हे राजा! तेरेविषे न कोउ क्षोभ है, न कोउ उपाधि है, संसारके रागदोषतें तूं रहित भया है, शांतरूप जीव न्मुक्त होकरि विचरु, तेरे तांई उपाधि कोउ न लगैगी॥ ॥ वसिष्ठ उवाच ॥ हे रामजी! जब इस प्रकार कुंभमुनिनें कहा, तब राजा शांतरूप हो गया, अरु कहा ॥ हे भगवन्! जो कछु तुमनें आज्ञा करी सो स र्व भली प्रकार मैं जाण्या है, अब एक प्रश्न अवर है, तिसका उत्तर कृपाकरि कहौ, जो मैं दृढ स्थित होउं॥ हे भगवन्! आत्मा तौ एक है, अरु शुद्ध है, केवल आकाशरूप है, चेतनमात्र है, तिसविषे द्रष्टा दर्शन दृ श्य त्रिपुटी कहांतें उपजी है, सो कहौ ॥ ॥ कुंभ उवाच ॥ हे राजा! जो कछु स्थावर जंगम संसार है, सो महाप्रलयपर्यंत है, जब महाप्रलय होता है, तब केवल आत्माही शेष रहता है, अरु स्वच्छ निर्मल होता है, तहां न तेज होता है, न अंधकार होता है, केवल अपणे आप स्वभावविषे स्थित होता है, अरु जेता कछु आनंद है, तिसका अधिष्ठान आत्मा है, अरु सतअसततें रहित है, सत कहियें जिसकों बुद्धि इदंकरि कह ते हैं, अरु असत कहियें जिसकों नहीं कहते हैं, तिस सतअसततें रहित अरु सर्व लक्ष्मीकरि संयुक्त है, जो अपणां स्वभावमात्र है, जिसविषे उपाधि कोउ नहीं, अरु सर्वदा प्रकाशवान है, अरु सर्वदा उदयरूप है, तिस परमात्माका यह संसार चमत्कार है, जैसे रत्नका चमत्कार लाट होती है, तैसे ब्रह्मका चमत्कार यह सं सार है, तातें ब्रह्मरूप है, इतर कछु नहीं हुआ, केवल ब्रह्मरूप है, अरु ब्रह्मतें इतर करिके है, सो मिथ्याही भ्रम जाणनां. जो कछु आकार भासते है, सो असत हैं ॥ हे राजा! जो सब आकार मिथ्या हैं, तौ तेरी सं

वेदन भी मिथ्या है, आत्माविषे अहंत्वंका उत्थान कोउ नहीं, केवल ज्ञानमात्र है, अरु केवल सतरूप है, अरु आनंदरूप है, अरु अविद्या तमतें रहित प्रकाशरूप है, अरु प्राणोंकरि नहीं जाणीता, जो इंद्रियांका विषय नहीं, अरु मनकी चिंतवनातें रहित है, काहेतें जो सर्वका द्रष्टा है, अरु सर्वका अपणां आप अनुभवरूप है ॥ हे राजा ! तिसविषे स्थित होहु, बहुरि आत्मा कैसा है, जो बडेतें बडा है, अरु सूक्ष्मतें सूक्ष्म है, अरु स्थूलतें स्थूल है, जिसविषे आकाश भी किसी उर अणु जैसा पाइता है, अरु ब्रह्मांड भी तिसविषे तृणसमान पाइते हैं, अरु अपणे आपकरि पूर्ण है, अरु अपणे आपकरि घूर्म है, अरु किंचित भी तिसतें उत्पन्न नहीं भया, अरु नानाप्रकार करिके स्थित भया है, फुरणे करिके जगत भासता है, फुरणेके निवर्त हुए केवल शुद्ध आत्मा है ॥ ॥ राजोवाच ॥ हे भगवन् ! तुम कहते हौ, जो संसार फुरणेमात्र है, अरु आत्मा शुद्ध शांतिरूप है, अरु निर्विकल्प है, तौ तिसविषे संवेदन फुरणां कहांतें आया है ॥ ॥ कुंभ उवाच ॥ हे राजन् ! फुरणां भी आत्माका चमत्कार है, जैसे पवनविषे सस्पंद फुरणां शक्ति भी है, अरु निस्पंद ठहरणां शक्ति भी है, जब फुरता है, तब स्पर्श चलणां प्रगट होता है, जब ठहर जाता है, तब प्रगट नहीं होता, तैसे संवेदन जब फुरता है, तब नानाप्रकार होते हैं, अरु जगत भासता है, जब फुरणां मिट जाता है, तब केवल शुद्ध आत्मा भासता है ॥ हे राजन् ! आत्मसत्तामात्र है, अरु संसार भी सन्मात्र आत्माही है, जो सम्यक् दृष्टिकरि देखियें तौ आत्माही भासता है, अरु असम्यक् दृष्टिकरिके दुःखदायक जगत भासता है, जिसके मनविषे संसारभावना है, तिसकों दुःखदायक भासता है, अरु जिसके हृदयविषे आत्मभावना होती है, तिसकों आत्माही भासता है, अरु सुखरूप होता है, काहेतें जो आत्मा नाम अपणे आपका है, जिसनें जगत्कों अपणां आप जाण्या, तिसकों दुःख कहां होवै ॥ हे राजन् ! यह संसार भावनामात्र है, जैसी भावना होती है, तैसेही भासता है, जिसकी भावना विषविषे अमृतकी होती है, तौ विष भी अमृत हो जाता है, अरु जिसकी भावना अमृ

तविषे विषकी होती है, तब अमृत भी विष हो जाता है, काहेतें जो संसार भावनामात्र है, जैसी भावना दृढ करता है, यद्यपि आगे उह वस्तु न होवै तौ भी हो जाती है, तातें संसार भावनामात्र मिथ्या है, ज्ञानवानकों दुःख कदाचित् नहीं देता अरु अज्ञानीकों सुख कदाचित् नहीं देता ॥ हे राजन्! अहंता अरु संवेदन चित्त अरु चैत्य यह भी आत्माकी संज्ञा है, जैसे आकाश कहियें शून्य कहियें, नभ कहियें इह सर्व संज्ञा आकाशहीकी हैं, तैसे सर्व संज्ञा आत्माकी हैं, आत्मातें इतर कछु नहीं, अहं त्वं सर्व आत्माके आश्रय हैं, जैसे भूषण स्वर्णके आश्रय होते हैं, परंतु स्वर्ण परिणामकरि भूषण होता है, जो पूर्वरूपकों त्यागता है, आत्मा तैसे भी नहीं, केवल एकरस है, अरु अपणे आपविषे स्थित है, कदाचित् परिणामकों नहीं प्राप्त भया, यह संवेदन आत्माका चमत्कार है, अरु सत असततें आत्मा पर है, जेती कछु दृश्य है, सो आत्माविषे नहीं, चित्त करिके रची है, इसीतें पर है ॥ हे राजन्! सो कारण कार्य किसका होवै, कारण कार्य तब होता है, जब दृश्य होता है, सो आत्मा किसीका विषय नहीं, कारण कार्य किसीका होवै, अरु विश्वकी आदि भी आत्मा है, अंत भी आत्मा है, अरु मध्यविषे भी आत्माही है, जो कछु अवर भासता है, सो भ्रममात्र है, जैसे आकाशविषे घर मंडल पुर दृष्ट आते हैं, तिसकी आदि भी आकाश है, अंत भी आकाश है, अरु मध्य भी आकाश है, जो घर मंडल पुर भासते सो मिथ्या हैं, जैसे अग्नि नानाप्रकार दृष्ट आता है, सो मिथ्या आकार है, एक अग्निही है, तैसे सर्वकी आदि मध्य अंत एक आत्माही सार है ॥ हे राजन्! जैसे जलविषे भी देश काल होता है, काहेतें जो दृश्य है सो इंद्रियांका विषय है, यह तरंग अमके स्थानतें उठा है, अरु अमके स्थानविषे जाय लीन भया, तौ स्थान देश हुआ, अरु उपजीकरि एता काल रहा सो काल हुआ, अरु जिसकों इंद्रियविषयकरि न शकही, तिसविषे देश काल कैसे होवै ॥ ॥ राजोवाच ॥ हे भगवन्! मैं भली प्रकार जाण्या है, जो आत्मा चिन्मात्र है, ज्ञान इंद्रियां कर्मइंद्रियांतें पर है

अरु देश काल इंद्रियां मनकरि जाणता है,जो अमका देश है, अमका काल है,जहां इंद्रियां अरु मनही न होवै, तहां देश काल कहां है ॥ ॥ कुंभ उवाच ॥ हे राजन्! जो तैंनें ऐसे जाण्या तौ तूं जाग्या है, आत्माविषे देश काल कोउ नहीं, इह मन इंद्रियांकरि जाणीता है, जो यह देश है, अरु यह काल है, जो इनतें रहित होकरि देखै तौ आत्माही भासै, अरु जो इनसहित देखै तौ संसारही दृष्ट आवैगा ॥ हे राजन्! इनतें रहित होकरि देख, ज़ो संसार तेरेविषे कछु न रहै, जो अमका प्रश्न किया, अब अमका प्रश्न करौं, संसार तब लग होता है, जबलग इनका संयोग अपणेसाथ होता है ॥ हे राजन्! ब्रह्मकरि ब्रह्मकों देखै, अरु पूर्णकों देखै, जो तूं भी पूर्ण होवैही, जब पूर्ण होवैगा, तब सर्व उर आपकों जाणैगा, अरु सर्व संज्ञा तेरीही होवैगी, अरु निर्वाच पदकों प्राप्त होवैगा, जहां इंद्रियांकी गम नहीं, केवल आकाशरूप है, जैसे आकाश अपणी शून्यताकरि पूर्ण है, तैसे तूं अपणे चेतन स्वभावकरि आप पूर्ण होवैगा, जब मनसहित षट् इंद्रियांतें रहित होकरि देखैगा, अपणे आपकों बहुरि इनसहित देखैगा तौ भी तेरे तांई चेतन आत्माही भासैगा, संसारका शब्द अर्थ तेरे हृदयतें उठि जावैगा, शब्द यह जो संसार है, अरु तिसकों सत् जानणां यह अर्थ है, सो भावना निवृत्त हो जावैगी, केवल आकाशरूप आत्माही भासैगा, अरु संसार संवेदनमात्र है, संवेदन कहियें चित्तशक्तिका चमत्कार है, यही चित्तशक्ति ब्रह्मा होकरि स्थित भई है, अरु संसारकों देखणे लगी है, जब अंतर्मुख होती है, तब आत्माही दृष्ट आता है, आत्मा सदा एक रस है, जब बहिर्मुख होती है, तब संसार दृष्ट आता है,जैसी यह भावना करता है,तैसेही आगे दृष्ट आता है, जब संसारकी भावना होती है तब संसारही भासता है, जब आत्माकी भावना होती है, तब आत्माही भासता है, आत्मा सदा एकरस है, अरु असंसारी है, तातें हे राजन् ! तूं आत्माकी भावना करु, जो तेरे तांई आत्माही भासै ॥ ॥ इति श्रीयोगवासिष्ठे निर्वाणप्रकरणे शिखरध्वजबोधनं नाम षट्सप्ततितमः सर्गः ॥ ७६ ॥ ॥ ॥

॥ कुंभ उवाच ॥ हे राजन्! यह संसार जो तेरे तांई भासता है, सो आत्माविषे नहीं, केवल शुद्ध आत्माविषे जो अहं उत्थान है, सोइ संसार है, सो अहंका चमत्कार न सत है, न असत है, न अंतर न वाहिर है, न शून्य है, न अशून्य है, केवल अपणे आपविषे स्थित है, अरु संसारका प्रध्वंसाभाव भी नहीं, प्रध्वंसाभाव कहिये जो पहिले होवै, पाछे नाश हो जावै, सो संसारका उदय अरु अस्त होणां आत्माविषे नहीं, केवल अपणे आपविषे स्थित है, तिसतें इतर कछु नहीं, यह कहणां भी आत्माविषे नहीं, जो केवल अपणे आपविषे स्वाभाविक स्थित है, तिसविषे वाणीकी गम नहीं, वाणी तिसकों कहते हैं, जहां दूसरा होता है, जहां दूसरा न होवै तहां वाणी क्या कहै, यह कहणां भी तेरे उपदेशनिमित्त कहा है, आत्माविषे किसी शब्दकी प्रवृत्ति नहीं ॥ हे राजा ! ऐसा आत्माका कारण कार्य किसका होवै, आत्मा शुद्ध है, निर्विकार है, अरु प्रमाणोंतें रहित है, जो किसी लक्षणकरि प्रमाण किया नहीं जाता, सो आकार होकरि स्थित भया है अरु शांतरूप है ॥ हे राजा ! ऐसा आत्मा है, कारण कार्य किसका होवै, कारण कार्य तव होता है, जब प्रथम परिणामकों प्राप्त होता है, अरु क्षोभकों प्राप्त होता है, सो आत्मा शांतरूप है, अरु कारण तब होवै, जब क्रिया करिके कार्यकों उत्पन्न करै, सो आत्मा अक्रिय है, क्रियातें रहित है, अरु कारणकों कार्यतें जाणीता है, सो आत्मा चिन्हतें रहित है, अरु प्रमाणोंका विषय नहीं तातें कारण कार्य आत्मा किसीका नहीं, अरु आत्माकों कारण कार्य मानणा मेरे तांई आश्चर्य आता है ॥ हे राजन्! जो वस्तु उपजती है, सो नष्ट भी होती है, अरु जो नष्ट होती है सो उपजती भी है, सो आत्मा सर्वकी आदि है, अरु अजन्मा है, अरु निर्विकार है, तिसविषे स्थित होउ, जो तेरा संसार निवृत्त हो जावै, यह संसार अज्ञान करिके भासता है, जब तूं स्वरूपविषे स्थित होकरि देखैगा, तव संसार न भासैगा, अरु ऐसे भी न भासैगा, जो संसार आगे था, अब निवृत्त हुआ है, एकरस आत्माही भासैगा, केवल शून्य आकाश हो जा

वैगा, शून्य कहियें संसारतें रहित हो जावैगा, स्वरूप चेतन नाना करिके भी उही है, अरु एक भी उही है, शून्य है, अरु शून्यतें रहित है, द्वैतरूप भी उही है, अद्वैतरूप भी उही है, ऐसा भासैगा॥ ॥ इति श्रीयोगवासिष्ठे निर्वाणप्रकरणे शिखरध्वजप्रथमबोधो नाम सप्तसप्ततितमः सर्गः ॥ ७७ ॥ ॥

॥ कुंभ उवाच ॥ हे राजा! जो कछु देखता है, सो चेतन घन है, तिसविषे अहं त्वं शब्द कोउ नहीं, अरु अहं त्वं शब्द प्रमादकरि होते हैं, जब आत्माविषे स्थित होकरि देखैगा, तब आत्मातें इतर कछु न भासैगा, तौ अहं त्वं शब्द कहां भासै ॥ हे राजन्! यह नानाप्रकारकी संज्ञा चित्ततें कल्पी है, जब चित्ततें रहित होवैगा, तब नाना अरु एक संज्ञा कोउ न रहैगी ॥ हे राजन्! सर्व ब्रह्म है, यह वाक्य वेदका सार है, जब इस वाक्यविषे दृढ भावना बुद्धि होवैगी तब एकरस आत्मही दृष्ट आवैगा, अरु चित्त नष्ट हो जावैगा, जब चित्त नष्ट हुआ, तब केवल महाशुद्ध आकाशकी नांई स्थित होवैगा, निर्दुःख पदकों प्राप्त होवैगा, जो पद सर्वकी आदि है, अरु सर्वदा मुक्तरूप है ॥ ॥ राजोवाच ॥ हे भगवन्! तुम कहा जो चित्तके नष्ट हुएतें दुःख कोउ न रहैगा, सो चित्तनष्टका उपाय तुम कहा है, परंतु मैं दृढकरि नहीं समझा, तातें मेरे दृढ होणेके निमित्त कृपा करिके बहुरि कहौ, जो चित्त नष्ट कैसे होता है॥ कुंभ उवाच ॥ हे राजन! यह चित्त न किसी कालका है, अरु न किसीकों है, न यह देखता है, चित्त हैही नहीं, तौ मैं तेरे तांई क्या कहौं ॥ अरु जो चित्त तुझकों दृष्ट आता है तौ तूं आत्माही जाण, आत्मातें इतर वस्तु कछु नहीं॥ हे राजन्! महासर्गके आदि अरु अंत सृष्टि कोउ नहीं, केवल आत्मा है, अरु यह कहणां भी आत्माविषे नहीं, मैं तेरे जतावणेके निमित्त कही है, अरु मध्य जो कछु दृष्ट आता है, सो अज्ञानीकी दृष्टिविषे है, आत्माविषे सृष्टि कोउ नहीं, आत्मा किसीका उपादान कारण, अरु निमित्त कारण नहीं काहेतें जो अच्युत है, परिणामकों नहीं प्राप्त भया, अरु उपादान भी परिणामकरि होता है, आत्मा शुद्ध है, अरु निराकार है,

आकाशरूप है, सो कारण कार्य किसका होवै, अरु चित्त भी वासनारूप है, वासना तब होती है, जब वास होती है, वास कहियें वासना करणेयोग्य, जो आगे सृष्टि भी नहीं तौ वासना किसकी फुरे, अरु चित्त विषे संसारकी स्थिति कैसे होवै, तातें चित्त कछु नहीं, यह विश्व आत्माका चमत्कार है, अरु सृष्टि आत्माविषे कोउ नहीं, निरालंब केवल अपणे आपविषे स्थित है, हे राजन्! संसार भी नहीं भया, अरु चित्त भी नहीं भया, तौ अहं त्वं आदिक शब्द भी आत्माविषे कोउ नहीं, यह शब्द तब होते हैं, जब चित्त होता है, अरु चित्त तबलग है, जबलग वासना है, जब निर्वासनिक पदकों प्राप्त भया, तब कल्पना कोउ नहीं रहती ॥ हे राजन्! यह संसार महाप्रलयविषे नष्ट हो जावैगा, सत असत संसार कछु न रहैगा, एक आत्माही शेष रहैगा, जो निराकार अब शुद्ध है, जबलग महाप्रलय नहीं भया, तबलग संसार है, सो महाप्रलय क्या है, श्रवण करु, एक क्षण आत्माका साक्षात्कार होणां, तिसकरि सृष्टिका शेष भी न रहैगा, सो ज्ञानही महाप्रलय है, अरु अब जो दृष्टि आता है, सो मिथ्या है, यह क्रिया भी मिथ्या है, अरु इसका भान होणां भी मिथ्या है, जैसे स्वप्नकी क्रिया भी मिथ्या है, तिसका भान होणां भी मिथ्या है, तैसे जाग्रत संसार स्वप्नमात्र है, कारणविनाही भासता है, जो कारणविना है, सो मिथ्या है, इसका कारण अज्ञान ही है, जो अपणा न जानणां, जब आपकों जाण्या तब आपणां आपही भासैगा, जैसे स्वप्नविषे अपणे न जानणेकरि भिन्न आकार भासते हैं, जब जाग्या तब आपणा आपही जाणता है जो मैंही था ॥ हे राजन्! मेरे तांई तौ एक आत्माही दृष्ट आता है, आत्माही है, आत्मातें इतर संसार कोउ नहीं, अरु इस संसारकों स्थित मानणां मूर्खता है, सदा चलरूप है, वेद शास्त्र अरु लोक भी कहता है जो संसार मिथ्या है, अरु आप भी जाणता है जो नष्ट हो जाता है, दृष्टि आता है, तिसविषे आस्था करणी मूर्खता है, आत्माविषे संसार नाना अनाना कोउ नहीं, आत्मा सर्वदा अपणे आपविषे स्थित है, शुद्ध है, अरु अच्युत

ज्योंका त्यों है ॥ ॥ इतिश्रीयोगवासिष्ठे निर्वाणप्रकरणे शिखरध्वजबोधो नाम अष्टसप्ततिसमः सर्गः ॥७८॥

शिखरध्वज उवाच ॥ हे भगवन्! अब मेरा मोह नष्ट भया है, अरु अपणा आप मैंनें जाण्या है, तुमारी कृपातें मेरा संसार निवृत्त भया है, शोकसमुद्रकों अब तर्या हौं, अरु शांत पदकों प्राप्त भया हौं, अहं त्वं शब्द मेरेविषे कोउ नहीं निर्वाणपदकों प्राप्त भया हौं, अच्युत हौं, चिन्मात्र हौं, केवल हौं, अरु शून्य हौं ॥ कुंभ उवाच ॥ हे राजन्! आत्मा शुद्ध आकाशकी नांई निर्मल है, आकाशतें भी सो अति निर्मल है, तिसविषे अहं मल है, सो अहंमोहतें उपजी है, मोह कहियें अविचार, जब विचार होता है, तब अहंकों नहीं पाइता, यह विश्व संवेदनविषे है, संवेदन सर्वके आदि होकरि स्थित भई है, जब संवेदन अंतर्मुख होती है, तब सर्व विश्व लीन हो जाती है, संवेदनहीविषे बंध अरु मुक्ति है, जब बहिर्मुख होती है, तब बंध है, जब अंतर्मुख होती है, तब मोक्ष है, जिसनें मन अरु इंद्रियांतें रहित होकरि अपणा आप देख्या है, तिसकों ज्योंका त्यों दृष्ट आता है, अरु जो मोहसंयुक्त देखता है, तिसकों विपर्यय भासता है, जैसे सम्यक् दृष्टि करिके भूषणविषे स्वर्ण भासता है, जब भूषणके आकार जाते हैं, तब भी स्वर्णही है, अरु मूर्खकों सोनेविषे भूषण दृष्टि आते हैं, चिरकालके अध्यास करिके जो बुद्धि इनविषे फुरती है, तौ भी प्रारब्धके वेगपर्यंत चेष्टा होती है, तब चेष्टाविषे भी आत्माही दृष्टि आता है; तातें केवल आत्माहीका किंचन होता है, जैसे सोनेविषे भूषण अरु आकाशविषे नीलता अरु वायुविषे स्पंद है, तैसे आत्माविषे सृष्टि है, जैसे आकाशविषे नीलता देखणेमात्र है, वास्तव कछु नहीं, तैसे आत्माविषे सृष्टि वास्तव कछु नहीं, भ्रांतिमात्रही है, जब भ्रांति निवृत्त होवैगी, तब जगतका शब्द अर्थ सर्व उरतें शांत होवैगा, अरु शब्द अर्थकी भावनातें जो चेष्टा होती है, तिसतें जब अभिलाषा निवृत्त हो जाती है, तब दुःख कोउ नहीं होता, इसीकों मुनीश्वर निर्वाण कहते हैं, जब ऐसा निश्चय निर्वाण पदका हुआ, तब शांतरूप शून्य पदकों पायकरि स्थित हो

ता है ॥ हे राजन्! अहंका उत्थान होणां यही बंधन है, अरु अहंका निर्वाण होणां यही मुक्ति है, अरु अहंके होणेकरि संसार दुःख है, जबलग अहंका उत्थान है; तबलग संसार है, अरु जबलग संसार है, तबलग अहंका उत्थान है, जब संसारकी सत्ता जाती रहै तब अहं फुरणां भी नष्ट हो जावैगा, जब फुरणा नष्ट भया, तब अहं भी नष्ट हो जावैगा, जब अहं नष्ट भया, तब केवल शुद्ध आत्माही शेष रहैगा, अरु अनामय एकही एक निर्दुःखही भान होवैगा, अहं ब्रह्मका उत्थान भी शांत हो जावैगा, अरु चेतनमात्रही रहैगा ॥ हे राजन्! जिसकों सर्व ब्रह्मकी बुद्धि भई है, तिसकों संसारकी बुद्धि नहीं, अरु जिसकों संसार बुद्धि है, तिसकों ब्रह्मबुद्धि नहीं, जैसी जैसी भावना दृढ होती है, तैसाही आगे भासता है, जिसकों ब्रह्म भावना दृढ होती है, सो ब्रह्मरूप हो जाता है, अरु जिसकों जगतकी भावना दृढ होती है, तिसकों जगत भासता है ॥ हे राजन्! तूं अब जाग्या है, अरु ब्रह्मस्वरूप हुआ है, जो शुद्ध निर्मल है, अरु प्रत्यक् है, जो किसी शब्द अरु लक्षणका विषय नहीं, अरु इंद्रियांका विषय नहीं ॥ हे राजन्! ऐसा आत्मा कारण कार्य जिसका होवै, जो केवल अद्वैत है अरु विश्व आत्माका चमत्कार है, जैसे समुद्रविषे नानाप्रकारके तरंग पवनकरि उपजते हैं, तौ भी समुद्रतें इतर कछु नहीं, तैसे आत्माविषे नानाप्रकारकी विश्व संवेदन फुरणे करिके उपजती है तौ भी आत्मातें इतर कछु नहीं, फुरणेमात्र है, जैसे स्तंभेविषे मनोराज्यकरि कोउ पुरुष पूतलियां कल्पता है, अरु नानाप्रकारकी चेष्टा करता है, इनकी चेष्टा तबलग है, जबलग संकल्प है, जब संकल्प निवृत्त हुआ, तब शून्य स्तंभही रहता है, जैसा आगे भी शून्य था, अरु तिसकी संवेदनविषे सृष्टि थी, तैसे यह संसार संकल्पमात्र है, जब संकल्प अंतर्मुख भया, तब संसारकी सत्ता जाती रहती है ॥ हे राजन्! संसार सत्ता जाती तब है जो आगेही असत है, अरु जो वस्तु सत होती है, तिसका नाश कदाचित् नहीं होता, तातें केवल संवेदन कल्पी है, जैसे एक शिलाविषे पुरुष पूतलियां कल्पता है, तौ

शिलाविषे तौ पूतली कोउ नहीं, ज्यौंकी त्यौं शिलाही है, तैसे फुरणे करिके आकार दृष्ट आते हैं, जब चित्त फुरणेतें रहित होवैगा, तब आत्माकों अपणा आप जाणैगा, अरु अशब्द पदकों प्राप्त होवैगा, जो शांतिपद है, अरु शुद्ध आकाशरूप है ॥ हे राजन्! सर्व शब्द अरु सर्व अर्थकी अभावना यह ब्रह्म अर्थ है, जहां कोउ कल्पना नहीं, जब सम्यक् दृष्टि होती है, तब शेष आत्माही भासता है, अरु यह भावना भी उठ जाती है, जो यह संसार है, यह ब्रह्म है, केवल ज्ञेयमात्रही होय रहता है, कैसा ज्ञेयमात्र है, जो शिलाकी नांई ज्ञान है, ऐसा शेष रहता है॥ इति श्रीयो॰ नि॰ शिखरध्वजबोधवर्णनं नाम नवसप्ततितमः सर्गः॥७९॥

॥ राजोवाच ॥ हे भगवन्! जैसे तुम कहते हौ, सो सत्य है, अरु मैं ऐसे जाणता हौं जो संसार आत्माका कार्य है, अरु आत्मा कारण है, जो आत्माका कार्य हुआ तौ आत्मस्वरूप हुआ, आत्मातें इतर नहीं ॥ कुंभ उवाच ॥ हे राजन्! आत्मा चेतनमात्र है, कारण कार्य किसीका नहीं, जो आत्मा अप्रत्यक् है, अरु अक्रिय है, अच्युत है, निरस है, जो अशब्द पद है, सो कारण कार्य किसका होवै अरु कारणकों कार्यद्वारा जाणीता है अरु आत्मा किसी प्रमाणका विषय नहीं, जो अप्रत्यक् है, अरूप है, अरु कारण तब होता है, जो क्रिया होती है, न किसीका कारण कार्य है, न कर्म है, केवल ज्यौंका त्यौं अपणे आपविषे स्थित है, चेतनमात्र है, शिवरूप है, शुद्ध है, यह विश्व भी चेतनमात्र है, जैसे आकाशविषे आकाश स्थित है, तैसे आत्माविषे विश्व आत्मरूपकरि स्थित है, ऐसी विश्व चेतनमात्र है, तिसविषे असम्यक्दर्शी अज्ञानकरि नानाप्रकार कल्पता है, अज्ञान कहियें वस्तुका न जानणा, जो वस्तु परमात्मा है, तिसके प्रमाद करिके वासनारूप चित्तसों विश्वकों कल्पता है, सो विश्व शब्दमात्र है, अर्थ कछु नहीं, जैसे दूसरा चंद्रमा आकाशविषे, जैसे तरंग समुद्रविषे, जैसे जल मृगतृष्णाविषे, जैसे वैताल परछायेविषे तैसे असम्यक्दृष्टि आत्माविषे विश्व कल्पता है, अरु सम्यक्दर्शी ऐसे जाणता है जो आत्मा शुद्ध है, अजन्मा है, अविनाशी

है, परम निरंजन है ॥ हे राजन्! जब तूं सम्यक् दृष्टिकरि देखैगा तब संसारका प्रध्वंसाभाव भी न देखैगा, काहेतें जो चित्तका कल्प्या हुआ है, अरु चित्त अज्ञान करिके उपजा है, स्वरूपविषे न चित्त है, न अज्ञान है, न संसार है, केवल अद्वैत मात्र है, तहां एक कहां, अरु द्वैत कहां, केवल मात्र पद है, जब अज्ञान नष्ट हुआ, तब अहं त्वं चित्त फुरणां सब नष्ट हो जावैगा, बहुरि भ्रम दृष्ट न आवैगा ॥ हे राजन्! आत्मातें इतर जो कछु भासता है सो अज्ञान करिके है, विचार कियेतें नहीं रहता ॥ राजोवाच ॥ हे भगवन्! अज्ञान क्या है; अरु नाश कैसे होवै सो कहो ॥ ॥ कुंभ उवाच ॥ हे राजन्! एक ज्ञान है, अरु एक अज्ञान है, ज्ञान यह जो पदार्थकों प्रत्यक्ष जानणां, अरु अज्ञान यह जो पदार्थकों न जानणां, अरु एक ज्ञान भी अज्ञान है, सो श्रवण करु, मृगतृष्णाका जल देखीकरि आस्था करणी जो है, अरु जेवरीविषे सर्प, सीपीविषे रूपा देखणां, अरु तिसकों सत्य जानणां, यह ज्ञान भी अज्ञान है, काहेतें जो सम्यक्दर्शी होकरि नहीं देखता, यह दृष्टांत है, अरु दार्ष्टांत यह है, जो शुद्ध आत्मा निराकार अच्युत है, तिसविषे मैं हौं, अरु मेरा अमका वर्णाश्रम है, अरु नानाप्रकार विश्व जानणां, यह ज्ञान भी अज्ञान है, अरु मूर्खता है ॥ हे राजन्! न कोउ जन्मता है, न कोउ मृत होता है, ज्यौंका त्यौं आत्माही स्थित है, तिसविषे जन्म मरण आदिक विकार देखणां, ऐसा जो ज्ञान है सो अज्ञान है ॥ हे राजन्! जैसे कोउ ब्राह्मण होवै, अरु ऊंची बाहुकरि कहै, मैं शुद्र हौं, मेरे तांई वेदका अधिकार नहीं, अरु जैसे कोउ पुरुष कहै, मैं मुआ हौं, तिसकों मैं जाणता हौं, तैसे आपकों कछु वर्णाश्रमका अभिमान लेकरि कहणां सो मूर्खता है, काहेतें जो असम्यक् दर्शन है, जब ज्यौंका त्यौं जाणै, तब दुःखी न होवै ॥ हे राजन्! ऐसा ज्ञान जो सम्यक् दर्शनकरि नष्ट हो जावै सो अज्ञान है, जैसे सूर्यकी किरणांविषे जलबुद्धि होती है, किरणके ज्ञानतें जलका ज्ञान नष्ट हो जाता है, सो जलका जानणां अज्ञान था, जैसे जेवरीविषे सर्प जानणां, सो सर्पका ज्ञान जेवरीके ज्ञानतें नष्ट हो जा

ता है, यह अज्ञान है, सम्यक् दर्शन करिके नष्ट होता है, जब ऐसा सम्यक्दर्शी होवैगा, तब अध्यात्मक ताप निवृत्त हो जावैगा, अरु शुद्ध होवैगा, जो आत्मा है, अज है, अरु शांतरूप है, सत् असत् सर्व आत्मा है, तिसतें इतर कछु नहीं, अरु प्रकाशरूप है सो ऐसा तूं है ॥ हे राजन्! अज्ञान भी अवर कोउ नहीं, इस चित्तके उदय होणेका नाम अज्ञान् है, अज्ञानका कारण चित्त है, अरु जो पदार्थ चित्त करिके उदय हुआ है, सो नष्ट भी चित्त करिके होता है, तातें तूं चित्त करिके चित्तकों नाश कर, जैसे अग्नि पवन् करिके उपजता है, अरु पवनहीकरि शांत होता है, तैसे चित्तकरि चित्तकों नष्ट करु ॥ हे राजन्! न तूं है, न मैं हौं, न इंद्रिय है, न संसार है, न यह जगत है, केवल शुद्ध आत्मा है॥ हे राजन्! जो चित्तही नहीं, तौ चित्तका कार्य विश्व कहां होवै, यह अज्ञानीकों भासता है, जो चित्त है, अरु विश्व है, केवल अपणे आपविषे आत्मा स्थित है ॥ हे राजन्! चित्तका उदय होणा अज्ञानतें है, जब अज्ञान नष्ट हुआ, तब चित्त अरु अहं त्वं सर्व नष्ट हो जाते हैं ॥ हे राजन्! तूं शुद्ध आत्मा है, एक है, अरु प्रकाशरूप है, अच्युत है, अरु निरंतर है, अरु देह इंद्रियांदिकरूप होकरि भी तूंही स्थित भया है, इच्छा अनिच्छा भी तूंही है, जैसे चंद्रमाकी किरणां चंद्रमातें भिन्न नहीं, तैसे तूं है, अरु निर्विकल्प है, कछु फुरणां तेरेविषे नहीं, तूं केवल ज्योंका त्यौं स्थित है ॥ ॥ इति श्रीयोगवासिष्ठे निर्वाणप्रकरणे परमार्थोपदेशो नाम अशीतितमः सर्गः ॥ ८० ॥

॥ वसिष्ठ उवाच ॥ हे रामजी! जब ऐसे कुंभमुनिनें कहा, तब शिखरध्वज श्रवण करिके शांतिकों प्राप्त भया, नेत्र मुंदिके सब अंगकी चेष्टातें रहित हुआ, जैसे शिला उपर पुतली लिखी होवै, तैसे स्थित हुआ, एक मुहूर्तपर्यंत निर्विकल्प स्थित रहा, अरु बहुरि उठ्या, तब कुंभनें कहा ॥ हे राजन्! आत्मा जो निर्विकल्प है, तिस निर्विकल्प शिलाविषे तैंनें शयन किया, अरु ज्ञेय जो जानणेयोग्य है सो तैंनें जाण्या है क्यौं, अब अज्ञान तेरा नष्ट भया, अथवा नहीं भया, अरु शांतिकों प्राप्त भया अथवा नहीं भया सो कहु ॥ ॥ रा

जोवाच ॥ हे भगवन्! तुमारी कृपातें मैं उत्तम पदकों प्राप्त भया हौं ॥ हे भगवन्! तत्त्ववेत्ताके संगतें जो अमृत पावता है, सो क्षीरसमुद्रतें भी नहीं पाइता, अरु देवताविषे भी नहीं पावता, तुमारी कृपातें मैं ऐसे अमृतकों पाया है, जिसका आदि अंत कोउ नहीं, अनंत है, अरु अमृतसार है, अव मेरे दुःख सर्व नष्ट हो गये हैं, अब मैं जाग्या हौं, अरु अपणे आपकों जाण्या है, मैं आत्मा हौं, मेरेसाथ चित्त कोउ नहीं, मैं केवल अपणे आपविषे स्थित हौं, अव इच्छा मेरे तांई कोउ नहीं, अपणे स्वभावकों पाया है, अरु सर्वके आदिपदकों प्राप्त भया हौं, जिसविषे क्षोभ कोउ नहीं, ऐसे निर्विकल्प पदकों प्राप्त हुआ हौं ॥ हे भगवन्! ऐसा मेरा अपणा आप है, जिसकरि सर्व प्रकाशतें है, तिसके जाणेविना कोटि जन्म पाये थे, अव दुःख मेरे नाश भये हैं, तुमारी कृपातें एक क्षणविषे जाण्या है, आगे श्रवण भी करता, सो कारण कवन था, जो आगे न जाण्या, अरु अब जाण्या है ॥ कुंभ उवाच ॥ हे राजन्! तेरे कषाय अब परिपक्क हुए हैं, जैसे फल परिपक्क होता है, तब यत्नविना वृक्षतें गिर पडता है, तैसे तेरा अंतःकरण शुद्ध भया है, अब अज्ञान तेरा नष्ट हो गया है, जब अंतःकरण मलिन होता है, तब संतके वचन नहीं लगते, अरु जब अंतःकरण शुद्ध होता है, तब संतके वचन लगते हैं, जैसे कोमल भिहकों बाण लगै, तब शीघ्रही वेध्या जाता है, तैसे शुद्ध अंतःकरणविषे शीघ्रही उपदेश प्रवेश करता है ॥ हे राजन्! अब भोगकी तेरी वासना नष्ट भई है, अरु स्वरूप जाननेकी तेरी इच्छा भई है तातें तूं जाग्या ॥ हे राजन्! मैं उपदेश तब किया है, जो तेरा अंतःकरण शुद्ध भया है अरु प्रतिबिंब भी तहां पडता है, जहां निर्मल ठौर होता है, जैसे श्वेत वस्त्र ऊपर केसरका रंग शीघ्रही चढि जाता है, अरु रंग भी उज्ज्वल होता है, तैसे शुद्ध अंतःकरणविषे संतके वचन शीघ्रही प्रवेश करते हैं, अरु शोभा पावते हैं ॥ हे राजन्! जबलग अंतःकरण मलिन होता है, भावै जेता उपदेश करियें तोउ स्थित नहीं होता, जब भोगतें वैराग्य होता है तब वासना कोउ नहीं रहती, केवल आत्म

पदकी इच्छा होती है, तब स्वरूपका साक्षात्कार होता है ॥ हे राजन्! अब तेरा सर्व त्याग सिद्ध हुए हैं; अरु अज्ञान नष्ट भया है, जो अवर उपाधि कोउ नहीं, चित्तही बडी उपाधि है, जब चित्त नष्ट हुआ, तब दुःख कोउ नहीं रहता, अब तूं सुखेन विचरु, तुझकों दुःख कोउ नहीं, शोक अरु भय कोउ नहीं, तूं शांतिपदकों प्राप्त भया है ॥ राजोवाच ॥ हे भगवन्! अज्ञानीकों चित्तका संबंध है, अरु ज्ञानवानकों चित्तका संबंध नहीं होता, जो स्वरूपविषे स्थित है तौ चित्तविना जीवन्मुक्ति क्रियाविषे कैसे वर्त्तता है ॥ कुंभ उवाच ॥ हे राजन्! तूं सत् कहता है, जो ज्ञानीकों चित्तका संबंध नहीं, जैसे पत्थरकी शिलाविषे अंगुरी नहीं होती, तैसे ज्ञानीकों चित्तका संबंध नहीं होता ॥ हे राजन्! चित्त वासनारूप है, सो वासना जन्ममरणका कारण है, अरु जीवन्मुक्तकी वासना नहीं रहती, ज्ञानवानका चित्त सत्य पदकों प्राप्त है, अरु अज्ञानी चित्तविषे बंधमान है, तिस करिके जन्मता भी है, अरु मरता भी है, अरु जो ज्ञानीका चित्त शांतिविषे स्थित है, तिसकों न बंध है, न मोक्ष है, प्रारब्ध अनुसार भोग भोगता है, अरु सर्वात्माही देखता है, यद्यपि इंद्रियां करि चेष्टा भी करता है, तौ भी सर्व ब्रह्मही देखता है, अरु क्रिया करणेविषे अभिमानतें रहित होता है, जो मैं करता हौं, अरु भोगता हौं, अरु अज्ञानी आपकों करता मानता है, तिसकों संसार सत्य भासता है, सत्य जाणीकरि संकल्प विकल्प करता है, अरु ज्ञानवानकों संसारकी सत्यता नहीं भासती; आपकों अकर्ता अभोक्ता देखता है, अरु अभिलाषतें रहित चेष्टा करता है ॥ हे राजन्! संसारकों सत्य जानणा; अरु अपणेविषे क्रिया देखणी तबलग होती है जबलग चित्तका संबंध होता है जब चित्तही नष्ट हो गया, तब संसार अरु फुरणा कहां रहै ॥ हे राजन्! अब चित्तका तैंनें त्याग किया है, तातें सर्वत्यागी भया है, अरु आगे सर्व त्याग न था किया, जो अज्ञान नष्ट न था भया, अब अहंभाव तेरा दूर भया है, जो अज्ञानका कार्य था, जब अज्ञान नष्ट भया, तब अहंभाव न रहा, अहंके त्याग करणेतें सर्व त्याग सिद्ध

हुआ, अरु आगे तैंनें राज्यका त्याग किया था, सो राज्यविषे तेरा कछु न था, बहुरि तमका त्याग किया, बहुरि वनतें आदि सर्व सामग्रीका त्याग किया, अब तिसका त्याग किया जो त्यागणे योग्य अहंभाव है, तातें सर्व त्याग भया, अरु जो कछु जानणे योग्य है सो जाण्या है, अरु शांतपदकों प्राप्त भया है ॥ हे राजन्! तूं आत्मा है, सर्व दुःखतें रहित है, जैसे मंदराचल पर्वततें रहित क्षीरसमुद्र शांतपदकों प्राप्त भया है, तैसे तूं अज्ञानतें रहित शांतपदकों प्राप्त भया है, अब तूं जाग्या है, अरु चित्तका त्याग किया है, तातें सर्व आत्मा अद्वैत भया है ॥ हे राजन्! जब दो अक्षर होते हैं, तब तिनकी संज्ञा नानाप्रकार होती है, जो अमृत विष अरु सुखदुःख अरु धर्म अधर्म यह होते हैं, जब एकाएकी अक्षर होता है, तव सर्वका आत्मा है, तैसे दूसरा अज्ञान नष्ट भया है, अरु सत्यपदकों प्राप्त भया है, अरु शुद्ध निर्मल है ॥ हे राजन्! जो ज्ञानवान है, सम्यक् दृष्टि करिके तिस चित्तका त्याग किया है, बहुरि तिसकों दुःख कोउ नहीं होता, सो तूं तिस पदकों प्राप्त भया है, जिसविषे दुःख कोउ नहीं, अरु तिस पदकों प्राप्त भया है, जहां स्वर्गादिक सुख तुच्छ हैं; स्वर्गविषे भी क्षय अतिशय होता है, अतिशय कहियें जो बडे पुण्यवाला आपसों उंचा देखता है, तब चाहता है, जो मैं भी इसी जैसा होउं, अरु क्षय कहियें मत इन सुखसों गिरौं, दोनों प्रकार दुःख होता है, सो पुण्य पाप दोनोंका तैंने त्याग किया है, तातें तूं सर्वत्यागी है, अरु अज्ञानी जो पापी जीव हैं, तिनको स्वर्ग भी भला है, जैसे स्वर्णका पात्र न पाइयें तौ पीतलका भी भला है, तैसे स्वर्णका पात्र जो ज्ञान है, जबलग प्राप्त न होवै, तबलग पीतलका पात्र जो स्वर्गादिक हैं, सो नरकतें भला है, अरु तुम सारखेकों कछु नहीं, जो आत्माविषे सर्व पदार्थकी पूर्णता है, अरु सर्वकी उत्पत्ति आत्मातें है ॥ हे राजन्! वर्णाश्रमविषे क्या आस्था करणी है, जहांतें इनकी उत्पत्ति है, अरु जहां लीन होते हैं, अरु मध्यविषे जिसके अज्ञानतें दृष्ट आते हैं तिसविषे स्थित होइये, जिसके ज्ञानतें सर्व लीन हो जाते हैं ॥ हे राजन्! संकल्प विकल्प जो उठते हैं, तिनाविषे स्थित मत होहु;

जिसविषे उत्पन्न अरु लीन होते हैं, तिसविषे स्थित होहु, अरु तपादिक क्रियाकरि क्या सिद्ध होता है, जिसकरि तपादिक सिद्ध होते हैं, तिसविषे स्थित होहु; बुंदविषे क्या स्थित होणां है, जिस मेघतें बुंद उत्पन्न होती है, तिसविषे स्थित होइयें ॥ हे राजन्! जैसे स्त्री होवै, अरु भर्तातें कोउ पदार्थ चाहै, अरु आपन कहै, तैसे तपादिक क्रियाकरि क्या सिद्ध होता है, जो तिनकरि आत्मपदकी इच्छा करें, तौ इनकरि प्राप्त नहीं होता, अपणे आपकरि पावता है ॥ हे राजन्! आत्मा तेरा अपणा आप है, तिसकरि सर्व सिद्ध होता है, जो वस्तु पाछे त्याग करणी होवै, तिसकों ज्ञानवान प्रथमही अंगीकार नहीं करता; अरु जेता कछु तपादिक धंधा है, तिनकों चित्तकरि क्या रचता है, अपणे आपकों देख जो अनुभवरूप है; अरु सर्वदा निरंतर अपणे आपविषे स्थित है, जब तूं अपणे आपकरि आपकों देखैगा, तब तपादिक क्रियाकों दूर करिके शोभा पावैगा, जैसे बादलके दूर भये चंद्रमा प्रकाशवान शोभा पावता है, तैसे तूं भी भोगकी चपलताकों त्यागि करि शोभा पावैगा, जब इंद्रियांकों जीतैगा, अरु किसी पदार्थविषे आसक्त न होवैगा; अरु सर्व वासनाका त्याग करैगा, तब ज्ञानवान होवैगा, अरु जिसनें सर्व वासनाका त्याग किया है, तिसकों विष्णु जानणा, जो सर्व राज्यका स्वामी है, जिसनें मन जीत्या है, सो चेष्टाविषे भी ज्यौंका त्यौं रहता है; अरु समाधिविषे भी ज्यौंका त्यौं है; जैसे पवन चलणे अरु ठहरणेविषे तुल्य है, तैसे ज्ञानवानकों कहूं खेद नहीं होता ॥ राजोवाच ॥ हे सर्व संशयके छेदणेहारे! स्पंद अरु निस्पंदविषे ज्ञानी ज्यौंका त्यौं कैसे रहता है सो कृपाकरि कहौ ॥ ॥ कुंभ उवाच ॥ हे राजन्! चेतन आकाश है सो आकाशतें भी निर्मल है, जब तिसका साक्षात्कार हुआ, तब जहां देखैं तहां चेतनही भासता है, जैसे समुद्रके जाणेतें तरंग बुदबुदे सर्व जलही भासता है, तैसे चित्तविना आत्माके देखे हुए फुरणेविषे भी आत्माही दृष्टि आता है, अरु जिसनें आत्माकों नहीं जाण्या, तिसकों नानाप्रकारका जगतही भासता है, जैसे जलके जाणेविना तरंग बुदबुदे भिन्न भिन्न दृष्टि

आते हैं, अरु जलके जानवेतें तरंग भी जलमय भासते हैं ॥ हे राजन्! सम्यक्दर्शीकों जगत अत्मस्वरूप है, असम्यक्दर्शीकों जगत है, तातें तूं सम्यक्दर्शी होकरि देख जो जगत् भी आत्मरूप है अरु सम्यक्दर्शन जैसे प्राप्त होता है, सो श्रवण करु, संतका संग करणा अरु सतशास्त्रका विचार करणा जब दृढ भावना करियें तब केते कालतें स्वरूपका साक्षात्कार होता है, कालकी अपेक्षा दृढ विचारके निमित्त कही है, जब दृढ विचार होता है, तब साक्षात्कार होता है, जब स्वरूपका साक्षात्कार हुआ, तब स्पंद निस्पंदविषे एक समान होता है ॥ हे राजन्! जिसके समीप माखी होवे, सो माखीके निमित्त पर्वत क्यों खोजै अरु दउडै, तैसे तेरे घरविषे ब्रह्मवेत्ता चूडाला थी, तिसका त्यागकरि तैंनें वनविषे आय तपका आरंभ किया, तातें कष्ट वडा पाया, परंतु अब तूं जाग्या है, अरु दुःख तेरे नष्ट भये हैं, अब तूं शांति पदकों प्राप्त भया है, जैसे जेवरीके न जानणेकरि सर्प भासता है, अरु भली प्रकार जाणेतें जेवरीही भासती है, तैसे जिसनें भली प्रकार निस्पंद होकरि अपणा आप देख्या है, तिसकों फुरणेविषे भी आत्माही भासता है, जब मनकी चपलता मिटती है, तब तुरीयातीत पदकों प्राप्त होता है. जिस पदकों वाणी विषयकरि नहीं शकती ॥ हे राजा! तूं भी तिसी पदकों प्राप्त भया है, जो मन अरु वाणीतें रहित है, अरु तुरीयातीत पद है, जहां क्षोभ कोउ नहीं, शांति पद है ॥ इति श्रीयोगवासिष्ठे निर्वाणप्रकरणे शिखरध्वजबोधो नाम एकाशीतितमः सर्गः ॥ ८१ ॥ ॥ वसिष्ठ उवाच ॥ हे रामजी! जब राजाकों कुंभमुनिनें ऐसे उपदेश किया, तिसतें उपरांत कहा ॥ हे राजा! अब हम जाते हैं, स्वर्गकों ब्रह्माजीके पास जो नारदमुनि आया है, देवताकी सभाविषे जब मेरे तांई न देखैगा, तब क्रोध करैगा ॥ हे राजा! जो कल्याणकृत पुरुष है, सो वडोंकी प्रसन्नता लेते हैं, तातें मैं जाता हौं, अरु उपदेश जो तेरे तांई किया है, तिसकों भली प्रकार विचारणां, अरु सर्व शास्त्रोंका सार यही है, सो संपूर्ण वासनाका त्याग करणां, किसीविषे चित्तकों वंधमान न

हीं करणां, मेरे आवणेपर्यंत स्वरूपविषे स्थित रहणां, अवर किसी चेष्टाविषे नहीं लगणां, अरु स्वरूपकों भली प्रकार जाणिकरि भावै तैसे विचरहु, ऐसे कहीकरि कुंभमुनि उठी खडा हुआ, तब राजाने अर्घ्य अरु फूल चडावणेके निमित्त हाथविषे लिये, सो जल फूल हाथविषे रहे, जो कुंभमुनि अंतरधान हो गया, जब राजा कुंभमुनिकों अपणे आगे न देखत भया, तब विचार करणे लगा, देखौ ईश्वरकी नीति जाणी नहीं जाती, जो नारदमुनि कहां था, अरु तिसका पुत्र कुंभमुनि कहां, अरु मैं राजा शिखरध्वज कहां, नीतिहीनें कुंभमुनिका रूप धारीकरि मुझकों आय जगाया है, अरु कुंभ बडा मुनि दृष्ट आया, जिसनें मेरेतें उपदेशकरि जगाया है, अब मैं अज्ञानरूपी गरतसों निकस्या हौं, अरु स्वरूपकों प्राप्त भया हौं, संपूर्ण संशय मेरे नष्ट भये हैं, अरु निर्दुःख पदविषे स्थित भया हौं, अरु अज्ञान निद्रातें जाग्या हौं, बडा आश्चर्य है ॥ हे रामजी ! ऐसे कहीकरि राजा शिखरध्वजनें संपूर्ण इंद्रियां अरु प्राण मन स्थित किया, अरु चेष्टातें रहित भया, जैसे शिलाके उपर पुतली लिखी होते हैं, जैसे पर्वतका शिखर स्थित होता है, तैसे स्थित भया, अरु उहां चूडाला कुंभरूप शरीरका त्यागकरि अरु चूडालाका सुंदर रूप धारीकरि उडी आकाशकों लंघिकरि अपणे नगरविषे आवत भई, अरु अंतःपुर जहां स्त्री रहती थी, तहां प्रवेश किया, अरु मंत्रीकों आज्ञा करी जो तुम अपणे अपणे स्थानविषे स्थित होउ, अरु राणी राजाके स्थानविषे स्थित भई, भली प्रकार प्रजाकी खबर लीनी, तीन दिन रहीकरि बहुरि उडी, जहां राजा वनविषे था, तहां आय प्राप्त भई, अरु कुंभका रूप धारीकरि देखा जो राजा समाधिविषे स्थित है, देखीकरि बहुत प्रसन्न भई ॥ हे रामजी ! ऐसे प्रसन्न होकरि चूडाला विचारत भई, बडा सुख कार्य हुआ, जो राजानें स्वरूपविषे स्थिति पाई, अरु शांतिको प्राप्त भया, बहुरि विचार किया, जो इसकों जगावौं, तब सिंहकी नांई गर्जी अरु बडा शब्द किया, तिस शब्द करिके जेते वनके पशु पक्षी थे, सो सर्व भयकों प्राप्त भये, परंतु राजा न जाग्या, बहुरि हाथ करिके

हिलावती भई, तौ भी राजा न जाग्या, जैसे मेघके शब्दकरि पर्वतका शिखर चलायमान नहीं होता, तैसे राजा चलामायन न भया, काष्ठ अरु पाषाणकी नांई स्थित रहा, तब राणीनें विचार किया जो राजा शरीरकों त्यागि न देवै तौ भला, अरु जो राजानें शरीरका त्याग किया होवै, तौ मै भी त्यागौंगी ॥ हे रामजी! चूडालानें शरीर न त्यागा, परंतु आरंभ करणे लगी, जो राजा अरु मैं एकठा शरीर त्यागणां हैं, बहुरि विचार करणे लगी, जो इसकी भविष्यत क्या होणी है, तब राजाके नेत्र पर हाथ लगाया, अरु देहसाथ देहका स्पर्श किया, तब देखा जो प्राण राजाके शरीरविषे हैं, अरु भविष्यतका भी विचार किया, जो इसका सत्व शेष रहता है, जीवन्मुक्त होकरि राज्यमें विचरणां है ॥ ॥ राम उवाच ॥ हे भगवन्! तुमनें कहा जो राजा काष्ठ अरु पाषाणकी नांई स्थित भया, बहुरि कहा जो हाथ लगायकरि देख्या, जो इसविषे प्राण हैं, जीवता है, तौ कुंभनें क्यौंकरि जाण्या, यह मुझकों संशय है, सो दूर करो ॥

॥ वसिष्ठ उवाच ॥ हे रामजी! जिस शरीरविषे पुर्यष्टका होती है, तिसविषे हरियावलता होती है ॥ हे रामजी! अज्ञानीका चित्त रहता है, अरु ज्ञानीका सत्व रहता है, जो प्रारब्धवेग करिके फुरता है, अरु ब्रह्माकार वृत्ति होती है, अरु अज्ञानीका चित्त फुरणे करिके बहुरि शरीर पावता है, अरु ज्ञानी इष्ट अनिष्टविषे एक समान रहता है, अरु अज्ञानी एक समान नहीं रहता, इष्टविषे प्रसन्न अरु अनिष्टकी प्राप्तिविषे शोकवान होता है ॥ हे रामजी! ज्ञानी जब शरीरकों त्यागता है, तब ब्रह्मसमुद्रविषे स्थित होता है, अरु जबलग सत्व शेष है; तबलग फुरता है, अरु अज्ञानी शरीरकों त्यागता है, तब तिसविषे सूक्ष्म संसार होता है, जैसे बीजविषे वृक्ष फूल फल सूक्ष्मता करिके स्थित होते हैं, सो काल पायकरि बहुरि निकसता है, तिसी प्रकार राजाका सत्व शेष रहता था, तिस करिके बहुरि फुरैगा, तब कुंभरूप चूडालानें विचार किया जो इसके अंतर प्रवेश करिके जगावौं, जो मैं न जगावौंगी, तौ भी नीति करिके इसकों जानणां है,

तातें मैंही जगावौं, ऐसे विचार करिके अपणे शरीरका त्याग किया, चेतनताविषे स्थित होकरि अरु फुरणेकों लेकरि उसविषे जाय प्रवेश किया, प्रवेश करि उसकी जो चेतनता सत्व शेष था, उसकों फोडत भई, बडा क्षोभ किया, जब राजा उहांतें हिल्या, तब आप निकस आई, अरु अपणे शरीरविषे प्रवेश किया, जैसे पंखेरू आकाशविषे उडता है, बहुरि आलयविषे आय प्रवेश करता है, तैसे अपणे शरीरविषे आनि स्थित भई, अरु सामवेदका गायन करणे लगी, महासुंदर स्वरसाथ, तब राजाने श्रवण किया, अरु जाणत भया, जो कोउ सामवेद गावता है, ऐसे श्रवण करि जाग्या, अरु देखा जो कुंभमुनि बैठा है, देखी करि बहुत प्रसन्न भया, तब फूल जल चडाया, अरु कहा ॥ हे भगवान्! मेरे बडे भाग्य हैं, देखीकरि बहुत प्रसन्न भया, जो तुमारा दर्शन हुआ ॥ हे भगवन्! कूलरूपी जो कुलाचल पर्वत है, तिसविषे जो देहरूपी वृक्ष है, सो अब फूल्या है, तुमनें हमकों पावन किया है ॥ हे भगवन्! किसीकी समर्थता नहीं, जो तुम सारखेके चित्तविषे प्रवेश करै, जिसविषे सर्वदा आत्माका निवास है, तिस चित्तविषे मेरी स्मृति हुई है, जो दर्शन किया है, तातें मेरे बडे भाग्य हैं ॥ हे भगवन्! अमृतरूपी वचनोंकरि तुम प्रथम मेरे तांई पवित्र किया था, अरु अब जो चित्त किया है, सो मेरे तांई पावन किया है ॥ ॥ कुंभ उवाच ॥ हे राजन्! तेरा दर्शन करिके मैं भी बहुत प्रसन्न हुआ हौं, अरु तुम जैसी प्रीति मैं आगे किसीकी नहीं देखी ॥ हे राजन्! तेरे निमित्त मैं स्वर्गतें आया हौं, स्वर्गके सुख मेरे तांई भले न लगैं, अरु तूं मेरे तांई बहुत प्रीतम है, इसी निमित्त मैं आया हौं, अब स्वर्गविषे भी नहीं जाता, तेरेही पास रहौंगा ॥ ॥ राजोवाच ॥ हे भगवन्! जिस उपर तुम सारखेकी कृपा होती है, तिसकों स्वर्ग आदिक सुख भले नहीं लगते, तौ तुम सारखेकी बात क्या कहणी है, यह वन है, यह झुपडी है, इसविषे विश्राम करौ, मेरे बडे भाग्य हैं, जो तुमारा चित्त इहां रहणेकों भया है ॥ ॥ कुंभ उवाच ॥ हे राजन्! अब मेरे तांई शांति प्राप्त भई है, अरु संकल्पबीज नष्ट भया है, जैसे नदीके किनारेपर वली होती है, अरु

जलके प्रवाहकरि मूलसमेत गिरती है, तैसे तेरा संकल्पबीज नष्ट भया है, अब तूं यथाप्राप्तिविषे संतुष्ट हुआ है, कै नहीं हुआ, हेयोपादेयतें रहित हुआ है, कै नहीं हुआ, अरु जो पावणे योग्य पद है सो पाया है, कै नहीं पाया, अपणा अनुभव कहहु ॥ ॥ राजोवाच ॥ हे भगवन्! तुमारी कृपातें सर्वसों श्रेष्ठ पद मैं पाया हौं, जहां संसार सीमाका अंत है, अरु अब मेरे तांई उपदेशका अधिकार नहीं रहा, जो संपूर्ण संशय मेरे नष्ट भए हैं, हेयोपादेयतें रहित हौं, इसकरि सुखी विचरता हौं, अरु जो कछु जानणे योग्य था, सो मैं जाण्या है, अब दुःख मेरेविषे कोउ नहीं, सर्व ठौर मैं तृप्त हौं, अनीति प्राप्तरूप हौं, अरु आत्मा हौं, निर्मल हौं, अरु अपणे स्वभावविषे स्थित हौं, अरु सर्वात्मा हौं, निर्विकल्प हौं, मेरेविषे फुरणा कोउ नहीं, मैं शांतरूप हौं, अरु चिरपर्यंत सुखी हौं ॥ ॥ वसिष्ठ उवाच ॥ हे रामजी! इस प्रकार राजा अरु कुंभका तीन मुहूर्त संवाद हुआ, तिसतें उपरांत दोनों उठी खडे हुए, अरु चले, निकट एक तलाव था, जहां बहुत कमलिनी थी, तहां आएकरि दोनों स्नान करत भये, अरु गायत्री संध्या करी, पूजा करिके बहुरि उहांतें चले, वनकुंजोंविषे आये, तब कुंभनें कहा, चलियें, राजा कहा, भली बातां चलियें, तब चले, बहुत नगर देश ग्राम अरु तीर्थ देखे, अरु नानाप्रकारके वनविषे विचरे, जो फूल फल संयुक्त थे, तिनविषे विचरे अरु मरुस्थलविषे विचरे ॥ हे रामजी! ऐसे राजसी सात्विकी तामसी स्थानोंविषे विचरे, तीर्थादिक सात्विकी स्थान हैं अरु सुंदर वन आदिक राजसी स्थान हैं, अरु मरुस्थल आदिक तामसी स्थान हैं; तिनविषे विचरै, तौभी हर्षशोककों न प्राप्त भये, समताविषे रहे ॥ हे रामजी! कुंभका प्रयोजन फिरणेका भी यह था, जो राजा शुभ अशुभ स्थानोंकों देखिकरि हर्ष शोक करैगा, अथवा न करैगा, तौ भी राजा हर्षशोककों न प्राप्त भया, बहुरि बडे पर्वतकी कंदरा देखियां, अरु वन कुंज बडे कष्टके स्थान देखे, अरु एक वनविषे जाय स्थित भए, केते कालविषे राजा अरु कुंभ एक जैसे हो गए, एकठेहि स्नान करही, अरु एक जैसी मूर्त्यां, अरु एक जैसे जाप जपही, एक

जैसी पूजा करही,अरु एक जैसे दोनों सुहृद भए, जो उपकारकी अपेक्षाविना उपकारी भए, किसी ठौर माटी शरीरकों लगावैं, किसी ठौर चंदनका लेप करैं,किसी ठौर शरीरकों भस्म लगावैं;किसी ठौर दिव्य वस्त्र पहिरैं, किसी ठौर केले पत्र उपर सोवैं, किसी ठौर फूलकी शय्या होवैं, किसी ठौर क्रूर स्थानोंविषे शयन करैं ॥ हे रामजी ! ऐसे शुभ अशुभ ठौरविषे भी दोनों ज्योंके त्यों रहैं, जो हर्षशोककों न प्राप्त भए, केवल सत्त्व शुद्ध विषे स्थित रहैं, आत्माविना अवर कछु न फुर्या, एक वनविषे जाय स्थित भये, तब राणीके मनविषे विचार हुआ, जो यह मेरा भर्त्ता है, मैं इसकों भोगों, हमारी अवस्था है जो भले कुलकी स्त्री है सो भर्ताकों प्रसन्न रखती है, अरु राजाका शरीर भी देवता जैसा हुआ है, अरु स्थान भी शुभ है, जबलग शरीर है, तबलग शरीरके स्वभाव भी साथ हैं, अरु बहुरि विचार किया जो राजाकी परीक्षा भी करों, जो क्या कहैगा, तब कुंभनें कहा, हे राजन् ! अब हम स्वर्गकों जाते हैं, जो चैत्र शुद्ध एकमकों ब्रह्माजीनें सृष्टि उत्पन्न करी है, इसी दिन वर्षके वर्ष उत्सव होता है, अरु नारदमुनि भी आवैगा, तातें हम जाते हैं, अरु आजही फिरि आवैंगे, मेरे आवणेपर्यंत तुम ध्यानविषे रहणा, अरु ध्यानतें उतरौ तब फूलकों देखणा, ऐसे कहीकरि फूलोंकी मंजरी राजाकों दीनी, अरु राजानें भी कुंभकों फूलकी मंजरी दीनी, जैसे नंदनवनविषे स्त्री भर्ताके हाथ देवै, अरु भर्ता स्त्रीके हाथ देवै तैसे दोनों परस्पर देते भए, बहुरि कुंभ आकाशकों उड्या, अरु पाछे राजा देखता रहा, जैसे मेघकों मोर देखता है, तैसे राजा देखता रहा, जेतेपर्यंत राजाकी दृष्टि पडती थी, तबलग कुंभका शरीर रख्या, जब दृष्टिसों अगोचर भया, आकाशविषे, तब फूलकी माला जो गलेविषे थी, सो तोडिकरि राजाके उपर डारि दीनी, अरु चूडालाका शरीर धारि आकाशकों लंघिकरि अपणा अंतःपुर जो था स्त्रीका स्थान, तहां आय प्राप्त भई, अरु राजाके स्थानपर बैठीकरि मंत्रीकों बुलाया, अपणे अपणे स्थानोंविषे स्थित किये, अरु प्रजाकी खबर लीनी, बहुरि उडी, सूर्यके किरणोंके मार्ग मेघ मंडलकों लंघती आई, जहां रा

जाका स्थान था तहां आयकरि देखा, जो राजा बिछुरेकरि शोकवान है, अरु कुंभ भी दिलगीर जैसा राजाके आगे आय स्थित भया, तब राजानें कहा ॥ हे भगवन्! शोकतुमारे तांईं कैसे प्राप्त भया है, ऐसा कष्ट मार्गविषे तुमारे तांईं कवन हुआ है, अरु सर्व दुःखका नष्ट करणेहारा ज्ञान है, सो तुम सारखे ज्ञानवानकों शोक होवै तो अवरकी क्या बात कहणी है ॥ हे मुनि! तुमारे तांईं दुःखका कारण कोउ नहीं, तुम क्यों शोकवान होते हौ अरु तुमारे तांईं कवन अनिष्ट प्राप्त भया है, तब कुंभनें कहा ॥ हे राजन्! मेरे तांईं एक दुःख है, सो कहता हौं, जो मित्र पूछे तो सत कहा चाहियें, अरु दुःख भी नष्ट होता है, जैसे मेघ जड अरु श्याम भी होता है, अरु उसका सज्जन जो है, क्षेत्र अरु पृथ्वी, तिस ऊपर वर्षा करता है, तिसकी जडता अरु श्यामता नष्ट होती है, तातें मैं तेरे तांईं कहता हौं, हे राजन्! जब स्वर्गविषे सभा स्थित थी, तब मैं नारदके पास था, जब सभा उठी, तब नारदमुनि भी उठ्या, अरु मुझकों कहा, जहां तेरी इच्छा होवै तहां जाहु, अरु मैं भी जाता हौं, काहेतें जो नारद एकही ठौरविषे नहीं ठहरता; विश्वविषे सैल करता फिरता है, इसीतें मेरे तांईं कहा जो तूं भी जाहु, तब मैं आकाशतें चला, एक ठौर सूर्यसाथ मिलाप हुआ, बहुरि आगेकों चला, मेघके मार्ग तीक्ष्ण वेगकरि चला आया हौं, जैसे नदी पर्वततें तीक्ष्ण वेगकरि आती है, तैसे मैं तीक्ष्ण वेगकरि चला आता था, तब दुर्वासा ऋषीश्वर उडता आता है, महामेघकी नांईं श्याम वस्त्र पहिरे हुए, अरु भूषणसंयुक्त जैसे बीजलीका चमत्कार होता है, तैसे भूषणोंका चमत्कार देखिकरि मैं दंडवत करिके कहा ॥ हे मुनीश्वर! तुम क्या रूप धार्या है, जो स्त्रीकी नांईं भासता है, तब दुर्वासाने मेरे तांईं कहा ॥ हे ब्रह्माके पोत्रे! तूं कैसा वचन कहता है, ऐसा वचन मुनीश्वरप्रति कहणां उचित नहीं, हम क्षेत्र हैं, जैसा बीज क्षेत्रविषे बोइये तैसा उगता है, तातें मेरे तांईं स्त्री तैंनें कहा है, तूं भी स्त्री होवैगा, अरु रात्रिकों तेरे अंग सब स्त्रीके होवैंगे ॥ हे मुनीश्वर! जो कल्याणकृत ज्ञानवान पुरुष हैं, तिनकों नम्रता होती है, जैसे फलसंयुक्त वृक्ष

नम्र होता है, तैसे ज्ञानी भी नम्र होता है, ऐसा वचन तेरे तांईं कहणा न चाहियें ॥ हे राजा! ऐसे श्रवण करिके मैं तेरे पास चल्या आया हौं, अरु मेरे तांईं लज्जा आती है, जो स्त्रीका शरीर धारे देवताविषे कैसे विचरौंगा, यही मुझकों शोक है, तब राजानें कहा, क्या हुआ, जो दुर्वासनें कहा, अरु स्त्रीका शरीर भया, तुम तौ शरीर नहीं, आत्मा निर्लेप है, किसीसाथ लेप नहीं ॥ हे मुनीश्वर! तुम अपणी समताविषे स्थित रहते हौ, अरु ज्ञानवान पुरुषकों हेयोपादेय किसीका नहीं रहता, अपणी समताविषे स्थित रहता है, तब कुंभनें कहा ॥ हे राजन्! तूं सत्य कहता है, मेरे तांईं क्या दुःख है, जो शरीरका प्रारब्ध है, सो होता है, तिससाथ हमारा क्या प्रयोजन है, यह ईश्वरकी नीति है, जबलग शरीर होता है, तबलग शरीरके स्वभाव भी रहते हैं, अरु शरीरका स्वभाव त्याग करणा भी मूर्खता है, जिस स्थानविषे ज्ञानकी प्राप्ति होवै, तिसी चेष्टाविषे विचरिये, अरु यह भी मूर्खता है, जो इंद्रियांकों रोकणां, अरु मनकरि विषयकी चिंतना करणी, तातें इंद्रियां अरु देहकी चेष्टा ज्ञानवान भी करते हैं, परंतु तिसविषे बंधमान नहीं होते, इंद्रियां विषयविषे वर्ततियां हैं, आदि नीति ईश्वरकी इसी प्रकार है ॥ हे राजन्! नीतीका त्याग किसीतें किया नहीं जाता, तातें नीतीका त्याग क्यों करियें, यह नीति है, जो जबलग शरीर है, तबलग शरीरके स्वभाव भी होते हैं, जैसे जबलग तिल है, तबलग तेल भी होते हैं, तैसे जबलग शरीर है, तबलग शरीरके स्वभाव भी होते हैं, जो ज्ञानवान पुरुष है सो देह इंद्रियांकरि चेष्टा भी करते हैं, परंतु बंधायमान नहीं होते, अरु अज्ञानी बंधायमान होते हैं, अरु चेष्टा ज्ञानी करते हैं, अज्ञानी भी करते हैं, जैसे ब्रह्मा विष्णु रुद्रतें आदि लेकरि ज्ञानवान हैं, सर्व चेष्टा भी करते हैं, परंतु बंधायमान किसीकरि नहीं होते ॥ हे राजा! तैसे जो अनिच्छित आय प्राप्त होवै अरु जिसकों शास्त्र प्रमाण करैं, तिसके भोगणेविषे दूषण कछु नहीं ॥ ॥ राजोवाच ॥ हे भगवन्! ज्ञानवानकों दूषण कछु नहीं, जो सत्ता समानविषे स्थित है, तिस करिके दूषण कछु नहीं हो

ता, अरु अज्ञानी शरीरके दुःख अपणेविषे देखता है, तिसकरि दुःखी होता है, अरु ज्ञानवान शरीरके दुःख अपणेविषे नहीं देखता ॥ हे रामजी! ऐसे कहते सूर्य अस्त हुआ, तब राजा अरु कुंभ दोनों सायंकालविषे संध्या करी, अरु जाप किया, जब रात्र हुई तब तारागण निकसे, अरु सूर्यमुखी कमलोंके मुख मुंदे गए, तब कुंभनें कहा ॥ हे राजन्! देख, जो मेरे शिरके बाल वढते जाते हैं, अरु वस्त्र भी गिटेपर्यंत हो गये हैं, अरु स्तन भी स्त्रीकी नांई भए हैं, इत्यादिक वस्त्र भूषण जेती कछु चेष्टा है, सो स्त्रीकी हुई, तव राजाकों भी शोक प्राप्त भया, अरु महासुंदर स्त्री लक्ष्मीकी नांई चूडाला हो गई, तिसकों देखिकरि राजाकों एक मुहूर्त शोक रहा, तिसतें उपरांत सावधान हुआ, अरु कहत भया ॥ हे मुनि! क्या हुआ जो शरीर स्त्रीका हुआ, तुम तौ शरीर नहीं, तुम आत्मा हौ, तातें शोक क्यों करियें, तुम अपणी सत्ता समानविषे स्थित होहु, तब रात्र हुई अरु राणी महासुंदर रूप धारे, फूलोंकी शय्या बिछाई, तिसपर दोनों एकठे सोए, हे रामजी! ऐसे रात्रि व्यतीत भई, कोउ फुरणा न फुऱ्या, सत्ता समानविषे दोनों स्थित रहै, अरु मुखतें कछु न बोले, सोई गए, जब प्रातःकाल हुआ, तब वहुरि कुंभका शरीर धारा, स्नान किया, अरु गायत्रीतें आदि जो कर्म हैं, सो किये इसी प्रकार रात्रिकों स्त्री वणि जावैं, अरु दिनकों कुंभ पुरुषका शरीर धारैं, जब कछु काल ऐसे व्यतीत भया, तब उहांतें चलैं, अरु सुमेरु पर्वत उपर गए, मंदराचल अरु अस्ताचलतें आदि सर्व सुख स्थानोंकों देखते भये ॥ हे रामजी! एक दृष्टिकों लिये रहैं, न कोउ हर्षवान हुए, न शोकवान हुए, ज्योंका त्यों रहैं, जैसे पवनकरि सुमेरु पर्वत चलायमान नहीं होता, तैसेही शुभ अशुभ स्थानोंविषे समान रहैं ॥ ॥ इति श्रीयोगवासिष्ठे निर्वाणप्रकरणे शिखरध्वजस्त्रीप्राप्तिर्नाम द्व्यशीतितमः सर्गः ॥ ॥८२॥ ॥ ॥ ॥ ॥ वसिष्ठ उवाच ॥ ॥ हे रामजी! इस प्रकार विचरते विचरते मंदराचलकी कंदराविषे जाय स्थित भए, तब कुंभरूप चूडाला राजाकों परीक्षाके निमित्त कहत भई ॥ हे

से हुआ है, सो कहौ, तब इंद्रनें कहा ॥ हे राजन्! जैसे पक्षी होता है, अरु ऊर्ध्वकों उडता है, तिसकी पेटी तागा होता है, तिसकरि उडता हुआ भी नीचे आता है, तैसे हम ऊर्ध्वके वासी तेरा गुणरूपी जो तागा है, तप अरु शुभ लक्षण, तिसकों श्रवण करिके हम स्वर्गतें खैंचे चले आते हैं, इस वनविषे इस प्रकार हमारा आवणां हुआ है, तातें राजा, तूं स्वर्गकों चल, अरु स्वर्गविषे स्थित होकरि दिव्य भोगकों भोगहु, ऐरावत हस्ती है, तिसपर आरूढ होहु, अथवा यह उच्चैःश्रवा घोडा है, जो क्षीरसमुद्रके मथनतें निकसा है, इसपर आरूढ होकरि चल, अरु सिद्धि भी है, एक तौ यह सिद्धि है, जिसपर पाउं रखिये तौ जहां चाहिये तहां पहुचावै, अरु एक खड्ग सिद्धि है, खड्गकों हाथमें धारिकरि जहां इच्छा होए तहां चला जावै, एक गुटिका है, जो मुखमें राखिकरि जहां इच्छा होए तहां इच्छाचारी चला जाइये, इसतें लेकरि अष्टसिद्धि भी विद्यमान हैं, जो इच्छा होए सो लेहु, अरु स्वर्गविषे चलौ ॥ हे राजन्! तुम तत्त्ववेत्ता हौ, तुमकों ग्रहण त्याग करणां कछु नहीं रहा, परंतु जो अनिच्छित आनि प्राप्त होवै, तिसका त्याग करणां योग्य नहीं, तातें स्वर्गविषे चलो ॥ राजोवाच ॥ ॥ हे देवराज! जाणा तहां होता है, जहां आगे नहीं होता, अरु जहां आगे होइये तहां कैसे जाइये ॥ हे देवराज! हमकों सर्व स्वर्गही दृष्टि आता है, जो उहां स्वर्ग होवै, इहां न होवै तौ जाइए भी, परंतु जहां हम बैठे हैं, तहांही स्वर्ग भासता है, तातें हम कहां जावैं, हमकों तीनो लोक स्वर्ग दृष्ट आते हैं, अरु सदा स्वर्गरूप जो आत्मा है, हम तिसीविषे स्थित है, हमारे तांई सर्वथा स्वर्ग भासता है, हम सदा तृप्त आनंदरूप हैं, तातें हम कहां जावै ॥ इंद्र उवाच ॥ हे राजन्! जो विदितवेद पूर्ण बोध है, सो भी यथाप्राप्त भोगकों सेवते हैं, तुम क्यौं नहीं सेवते, ऐसे जब इंद्रनें कहा तब राजा त्यौंही कहीकरि चुपकरि गया ॥बहुरि इंद्रनें कहा, भला जो तुम नहीं आते तौ हम जाते हैं, तेरा अरु कुंभका कल्याण होवै ॥ हे रामजी! ऐसे कहिकरि इंद्र उठि खडा हुआ अरु चल्या, जबलग दृष्टि

आता था, तबलग देवता भी साथ दृष्टि आते हैं, बहुरि दृष्टि अगोचर भए, तब अंतर्धान हो गए, जैसे समुद्रतें तरंग उठिकरि बहुरि लीन हो जाता है, अरु नहीं जाणीता जो कहां गया, तैसे इंद्र अंतर्धान हो गया, सो इंद्र कुंभरूप चूडालाके संकल्पतें उठ्या था, जब संकल्प लीन भया तब अंतर्धान हो गया, तब चूडालानें देखा जो ऐसे ऐश्वर्य अरु सिद्धि अरु अप्सराके प्राप्त भए भी राजाका चित्त समताविषे रहा, अरु किसी पदार्थविषे बंधमान न हुआ ॥ इति श्रीयोगवासिष्ठे निर्वाणप्रकरणे मायाशक्रागमनवर्णनं नाम चतुरशीतितमः सर्गः ॥ ८४ ॥ ॥ वसिष्ठ उवाच ॥ हे रामजी! जब चूडाला इंद्रका छलकरि रही, तब विचार किया जो ऐसा चरित्र राजाके मोहणे निमित्त किया, तौ भी राजा किसीविषे बंधायमान न भया, ज्यौंका त्यौंही रहा, बडा कल्याण हुआ, जो राजा सत्ता सामान्यविषे स्थित रहा, तातें बडा आनंद हुआ, अब अवर चरित्र करियें, जो क्रोध होवै, जिसविषे बडा खेद होवै, ऐसे विचार करि चरित्र किया, राजाकी परीक्षाके निमित्त, जब सायंकालका समय हुआ, तब गंगाके किनारे राजा संध्या करणे लगा, अरु कुंभ वनविषे रहा, तब वनविषे संकल्पका मंदिर रचा, जैसे देवताकी रचना होती है, तैसे मंदिरकेपास फूलकी वाडी पाई, अरु कल्पवृक्षतें आदि नानाप्रकारके फूल फल संयुक्त वृक्ष रचे, ऐसे वनके स्थानविषे एक संकल्पकी शय्या रची, अरु एक संकल्पका महासुंदर पुरुष रचा, तिससाथ सोए रही, अंगसों अंग लगायकरि, अरु गलेविषे फूलोंकी माला डारी, अरु कामचेष्टा करणे लगी, तब राजा संध्याकरि उठ्या, अरु राणीकों देखणे लगा, दृष्ट न आई, ढूंढते ढूंढते तिस मंदिरके निकट आया, तब क्या देखे जो कामी पुरुषकेसाथ मदनिका सोइ हुई है, अरु कामचेष्टा करते हैं, तब राजानें कहा भले, आरामसाथ सोए पडे हैं, सोए रहे इनके आनंदविषे विघ्न क्यौं करियें ॥ हे रामजी! इस प्रकार राजानें अपणी स्त्रीकों देखी, तौ भी शोकमान न हुआ, अरु क्रोध भी न किया, ज्यौंका त्यौं शांतपदविषे स्थित रहा, क्षोभकों न प्राप्त भया, अरु मंदिरके बाहिर निकसे, तहां एक स्वर्णकी शिला पडी

राजन्! मैं रात्रिकों स्त्री होती हौं, तब मेरे तांई भर्ताके भोगणेकी इच्छा होती है, काहेतें जो ईश्वरकी नीति ऐसेही है, जो स्त्रीकों अवश्यमेव पुरुष चहिता है, अरु जो उत्तम कुलका पुरुष होता है, तिसकों कन्या विवाह करिके पिता देता है, अथवा जिसकों स्त्री चाहै तिसकों आप देखि लेवैं ॥ तातें हे राजन्! मेरे तांई तुझतें अधिक कोउ नहीं दृष्ट आता, तूंही मेरा भर्त्ता है, अरु मैं तेरी स्त्री हौं, तूं अपणी भार्या जाणीकरि जो कछु स्त्री पुरुष चेष्टा करते हैं, सो किया कर, मेरी अवस्था भी यौवन है, अरु तूं भी सुंदर है, ज्ञानवान अनिच्छित प्राप्त हुएका त्याग नहीं करते, यद्यपि तुझकों इच्छा न होवै, तौ भी ईश्वरकी नीति इसी प्रकार है, तिसकों उल्लंघणेकरि क्या सिद्ध होता है, जो अपणे स्वरूप सत्ताविषे स्थित है, तिसकों ग्रहण त्यागकी कछु इच्छा नहीं, परंतु जो नीति है, सो करी चाहियें ॥ ॥ राजोवाच ॥ हे साधो! जो तेरी इच्छा है, सो करियें, मुझकों तौ तीनों जगत आकाशरूप भासते हैं, प्राप्त होणेंकरि मेरे तांई सुख कछु नहीं, अप्राप्तिविषे दुःख नहीं, न कोउ मेरे हर्ष है, न शोक है, जो तेरी इच्छा होए सो करियें ॥ ॥ कुंभ उवाच ॥ हे राजन्! आजही पूर्णमासीका भला दिन है, अरु यह मैंनें आगे लग्न भी गिनि छोडा है, तातें मंदराचल पर्वतकी कंदराविषे बैठिकरि विवाह करियें, अब सामग्री एकठी करिये, तब राजा अरु कुंभ दोनों उठे, जो कछु सामग्री शास्त्रकी है, सो एकठी करी अरु दोनों गंगापर स्नान किया, अरु वेहली पूजन करि अरु वस्त्र फूल फलतें आदिलेकरि जो विवाहकी सामग्री है,सो कल्पवृक्षसों लीनी,बहुरि फलकों भोजन किया, तब सूर्य अस्त भया, दोनों संध्या उपासना करी, बहुरि राजाकों दिव्य वस्त्र भूषण पहिराए, अरु शिरपर मुकुट पहिराया, बहुरि कुंभका शरीर त्याग किया, अरु स्त्रीका शरीर होत भया, तब स्त्रीनें कहा ॥ हे राजन्! अब तूं मेरे तांई भूषण पहिराए, तब राजाने संपूर्ण भूषण फूल अरु वस्त्र पहिराए, अरु पार्वतीकी नांई सुंदर बणी, तब चूडालानें कहा ॥ हे राजा! मैं अब तेरी स्त्री हौं, अरु नाम मेरा मदनिका है, अरु तूं मेरा भर्त्ता है, कामदेवतें

भी तूं सुंदर भासता है ॥ ॥ वसिष्ठ उवाच ॥ हे रामजी! इसी प्रकार चूडालानें बहुत कछु कहा, तौ भी राजाका चित्त हर्षकों न प्राप्त भया, अरु वैराग्यकरि शोकवान भी न भया, ज्यौंका त्यौं रहा, तिसतें उपरांत विवाहका आरंभ किया, चंदोआ आदियां अरु वस्त्र कल्पवृक्षतें लिये, अरु पास स्वर्णके कलश राखे, देवताका पूजन किया, इत्यादिक जो शास्त्रकी विधि थी सो संपूर्ण करि, लावांलिया अरु मंगल किया, बहुरि संकल्प यह दिया जो संपूर्ण ज्ञाननिष्ठा तेरे तांई दीनी अरु राजा भी संकल्प किया, जो संपूर्ण ज्ञाननिष्ठा तेरे तांई दीनी, जब रात्र एक प्रहर रही तब राजा अरु राणी फूलोंकी शय्या बिछाई, शयन करिके आपसविषे चरचाही करते रहे, अरु मैथुन कछु न किया, जब प्रातःकाल हुआ, तब स्त्रीका शरीर त्यागिकरि कुंभका शरीर धारा, अरु स्नान किया, संध्यादिक कर्म किये ॥ हे रामजी! इसी प्रकार एक मासपर्यंत मंदराचलपर्वतविषे रहे, जो रात्रकों स्त्रीका शरीर अरु दिनकों कुंभका शरीर करैं, जब तीसरा दिन होवै, तब राजाकों शयन करायके राजकी शुद्ध आय लेवै, बहुरि राजाके पास जाय शयन करैं ॥

॥ इति श्रीयोगवासिष्ठे निर्वाणप्रकरणे विवाहलीलावर्णनं नाम त्र्यशीतितमः सर्गः ॥ ॥ ८३ ॥ ॥

॥ वसिष्ठ उवाच ॥ हे रामजी! जब उहांसों चले, अस्ताचल पर्वतविषे रहे, उदयाचल अरु सुमेरु कैलास पर्वत इत्यादिक जो पर्वत अरु कंदरा वनोंविषे रहे, कहूं एक मास, कहूं दश मास, कहूं पांच दिन, कहूं सप्त दिन रहे, जब एक वनविषे आये, तब राणीनें विचार किया, जो एते स्थान राजाकों दिखाये हैं, तौ भी इसका चित्त किसविषे बंधमान नहीं भया, तातें अब अवर परीक्षा लेउ ॥ ऐसे विचारकरि अपणी माया पसारी, तब इंद्र तेतीस कोटी देवतासंयुक्त किन्नर गंधर्व सिद्ध अरु अप्सरा आगे नृत्य करती आतीयां हैं ॥ अवर भी जो कछु इंद्रकी सामग्री है, तिस संयुक्त इंद्रकों देखीकरि राजा उठ्या, बहुत प्रीति संयुक्त इंद्रकी पूजा करी, अरु कहा, हे त्रैलोक्यके पति, तुमारा आवणां इस वनविषे कै

थी, तिस उपर बैठी रहा, अरु समाधिविषे स्थित भया, परंतु उन्मीलितलोचन तब दो घडी उपरांत मदनिका कामी पुरुषकों त्यागिकरि बाहिर आई, अरु राजाके निकट आएकरि अंगोंकों नम्र किया, बहुरि वस्त्रोंसाथ ढांपे, जैसे अवर स्त्रीयां कामकरि व्याकुल होतियां हैं, तैसे चूडालाकों देखिकरि राजानें कहा ॥ हे मदनिका, तूं ऐसे सुखकों त्यागिकरि क्यों आई है, तूं तौ बडे आनंदकरि मग्न थी, अब तहांही फिरि जाहु, मेरे तांई तौ हर्ष शोक कछु नहीं, मैं ज्यौंका त्यों हौं, परंतु तेरी अरु कामी पुरुषकी प्रीति परस्पर देखी है, परस्पर प्रीति जगतविषे नहीं होती, अरु तुमारी देखी है, तातें तूं उसकों सुख देहु, उह तेरे तांई सुख देवै, अब जाही, तब मदनिका लज्जासों शिरकों नीचे करिके बोली ॥ हे भगवन्! तुम क्षमा करौ, मेरे उपर क्रोध न करौ, मुझतें अवज्ञा बडी हुई है, परंतु मैं जाणी न करी, जैसे वृत्तांत है सो श्रवण करौ, जब तुम संध्या करणे लगे, तब मैं वनविषे आई थी, तहां एक कामी पुरुषका मिलाप भया, मैं निर्बल थी, उह बली था, तिसनें मेरेतें पकडि लीनी, अरु जो पतिव्रता स्त्रीकी मर्यादा है, सो भी मैं करी, जो उसपर क्रोध किया, अरु निरादर किया, अरु पुकार भी करी, यह तीनों पतिव्रताकी मर्यादा हैं, सो मैं करी, अरु तुम दूर थे, उह बली था, मेरे तांई पकडी लीनी, अरु गोदविषे बैठाई जो कछु उसकी भावना थी, सो करी, हे भगवन्! मुझविषे दूषण कछु नहीं, तातें तुम क्षमा करौ, क्रोध न करौ ॥ ॥ राजोवाच ॥ हे मदनिका! मेरे तांई क्रोध कदाचित् नहीं होता, आत्माही दृष्ट आता है, तौ क्रोध किसपर करौं, मेरे तांई न कछु ग्रहण है, न कछु त्याग करणां है, तथापि यह कर्म साधोंकरि निंदित है, तातें अब तेरा त्याग किया है, सुखे विचरौंगा, अरु जो हमारा गुरु कुंभ है सो हमारे पासही है, उह अरु हम सदा निरागरूप हैं, अरु तूं तौ दुर्वासाके श्रापतें उपजी है, तेरेसाथ हमारा क्या प्रयोजन है, तूं अब उसी पास जाहु ॥ ॥ इति श्रीयो० निर्वा० मायापिंजरवर्णनं नाम पंचाशीतितमः सर्गः ॥ ८५ ॥ ॥ वसिष्ठ उवाच ॥ हे रामजी! तब मदनिका नाम जो चूडा

ला है, तिसनैं विचार किया, बडा कार्य हुआ, जो राजा आत्मपदविषे प्राप्त भया, ऐसे सिद्धि अरु ऐश्वर्य देखे, अरु क्रूर स्थान भी दिखाए तौ भी राजा शुभ अशुभविषे ज्यौंका त्यौं रहा, तातें वडा कल्याण हुआ, जो राजाकों शांति प्राप्त भई, अरु रागदोषतें रहित भया, अब पूर्वला रूप चूडालाका है सो दिखावौं, अरु संपूर्ण वृत्तांत राजाकों बतावौं, ऐसे विचार करि मदनिका शरीरतें चूडालारूप होकरि प्रगट भई, भूषणों अरु वस्त्रोंकरि सहित, तब राजा देखीकरि महा आश्चर्यकों प्राप्त भया, अरु ध्यानविषे स्थित हुआ, अरु देखा जो यह चूडाला कहांतें आई है, बहुरि पूछा, हे देवि! तूं कहांतें आई है, तेरे तांई देखिकरि मैं आश्चर्यकों प्राप्त भया हौं, जो ऐसी मेरी स्त्री चूडाला थी, अरु तूं इहां किसनिमित्त आई है अरु कवकी आई है॥

॥ चूडालोवाच ॥ हे भगवन्! मैं तेरी स्त्री चूडाला हौं, अरु तूं मेरा स्वामी है॥ हे राजन्! कुंभतें आदि अरु यह चूडाला शरीरपर्यंत सर्व चरित्र तेरे जगावणेके निमित्त मैंही किये हैं, तूं ध्यानविषे स्थित होकरि देख, जो यह चरित्र किसनैं किये हैं, अरु मैं अब पूर्वका शरीर चूडालाका धारा हैं॥ हे रामजी! जब ऐसे चूडालानें कहा, तब राजा ध्यानविषे स्थित होकरि देखणे लगा, एक मुहूर्तपर्यंत वृत्तांत सब देखि लिया, तिसतें उपरांत राजा आश्चर्यकों प्राप्त होकरि नेत्र खोले, अरु राणीके गलेसाथ कंठ लगायकरि मिल्या, अरु दोनों हर्षकों प्राप्त भये, जो सहस्र वर्षपर्यंत शेष नाग उस सुखकों वर्णन करे तौ भी कही न सकैगा, ऐसे सत्ता समानविषे स्थित हुए, अरु शांतिकों प्राप्त भए, जिसविषे क्षोभ कदाचित् नहीं, राजा अरु राणी जुगल कंठ लगाए मिलेथे, तिसतें अंगोंविषे उष्णता उपजी, तब शनैः शनैः करि खोल्या, हर्षमान होकरि राजाके रोमावलि खडे हो आए, अरु नेत्रतें जल चलणे लगा, ऐसी अवस्थासाथ राजा बोल्या॥ हे देवि! मेरे उपर तैंनें वडा अनुग्रह किया है, तेरी स्तुति करणेकों मैं समर्थ नहीं, कैसे स्तुति करौं, जेते कछु संसारके पदार्थ हैं सो सब मायामय हैं, अरु मिथ्या हैं, अरु तैंनें मेरे तांई सतपदकों प्राप्त किया है, तातें मैं ते

री उपमा क्या करौं॥ हे देवि! मैंनें जाण्या है, जो जब मैं राज्यका त्याग किया है, अरु इस चूडालाके शरीर पर्यंत सब तेरे चरित्र हैं, अरु मेरे वास्ते बडे कष्ट तैंनें सहन किये हैं, अरु बडे यत्न किये हैं, आणां अरु जाणां, शरीरका स्वांग धारणां, अरु उडणां इत्यादिक बडा तैंनें कष्ट पाया है, अरु बडे यत्नकरि मेरे तांई संसारसमुद्रतें पार किया है, अरु बडा उपकार किया है, तूं धन्य है, अरु जेती कछु देवियां हैं, तिनसों तैंनें श्रेष्ठ कार्य किया है, तातें तूं सबतें अधिक है, सो कवन देवियां हैं, जिनतें तूं अधिक है, अरुंधती अरु ब्रह्माणी अरु इंद्राणी अरु पार्वती, सरस्वती, इत्यादिक देवियांकों तैंनें तिरस्कार किया है॥ हे देवि! जो श्रेष्ठ कुलकी कन्या है, अरु पतिव्रता है सो जिस पुरुषकों प्राप्त होती है, तिसका सर्व कार्य सिद्ध होता है, सो कवन कवन श्रेष्ठ स्त्रियां हैं, श्रवण कर, बुद्धि अरु शांति अरु दया अरु शक्ति अरु कोमलता, मैत्री इत्यादिक जो शुभ लक्षण हैं, सो पतिव्रता स्त्रीकरि प्राप्त होते हैं ॥ हे देवि! मैं तेरे प्रसादकरि शांतपदकों प्राप्त भया हौं, अब मेरे तांई क्षोभ कोउ नहीं, ऐसा पद शास्त्रोंकरि भी नहीं पाइता, अरु तपकरि नहीं पाइता, जो पतिव्रता स्त्रीकरि पाइता है॥ ॥ चूडालोवाच॥ हे राजन्! तूं काहेकों मेरी स्तुति करता है, मैं तौ आपणा कार्य किया है॥ हे राजा! जब तूं राज्यका त्याग करी वनविषे आया, तब तूं मोहकों साथही लिये आया, मोह कहिये अज्ञान, तिस अज्ञानकरि नीच स्थानविषे पडा, जैसे कोउ गंगाजलका त्यागकरि चीकडके जलका अंगिकार करै तैसे तैंनें आत्मज्ञान अक्रिय पदका त्यागकरी तपका अंगीकार किया॥ हे राजा! मैं देखा जो तूं चीकडविषे गिर्या है, तातें मैं तेरे निकासणे निमित्त एते यत्न किये हैं॥ हे राजा! मैं अपना कार्य किया है॥ ॥ राजोवाच॥ हे देवी! मेरा यही आशीर्वाद है, जो कोउ पतिव्रता स्त्री होवै, सो सब ऐसे कार्य करै, जैसे तुमनें किया है, जो पतिव्रता स्त्रीतें कार्य होता है, सो अवरतें नहीं होता॥ हे देवी! जेती अरुंधतीतें आदि पतिव्रता स्त्रीयां हैं, तिनतें तूं प्रथम गिनायगी, अरु मैं जानता हौं, ब्रह्माजीनें तेरे तांई क्रो

धकरि इसनिमित्त उपजाई है, जो अरुंधतीतें आदि देवियां हैं, तिनों आपसविषे गर्व किया होवैगा, तिस गर्वकों सुणीकरि तिनके गर्व निवारणेनिमित्त तुझकों अधिक उत्पन्न किया है, तातें हे देवी! तूं धन्य है, जो तैंनें मेरे ऊपर बडा उपकार किया है ॥ हे देवी! तूं वहुरि मेरे अंग लाग जो तैंनें बडा उपकार मेरेसाथ किया है, हे रामजी! ऐसे कहीकरि राजानें राणीकों वहुरि गले कंठ लगाई, जैसे नोल अरु नोली मिलैं, अरु मूर्त्तिकी नांई लिखी है, ऐसे भासै ॥ ॥ चूडालोवाच ॥ हे भगवन्! एक तौ मेरे तांई यह कहु, जो ज्ञानरूप आत्माके एक अंशविषे जगत लीन हो जाता है, ऐसा जो तूं है, सो आपकों अव क्या जानता है, अरु अव तूं कहा स्थित है, अरु राज्य तेरे तांई कछु दिखाई देताहै, अथवा नहीं देता, अव तेरे तांई इच्छा क्या है ॥ ॥ शिखरध्वज उवाच ॥ हे देवी! जो स्वरूप तैंनें ज्ञानकरिके निश्चय किया है, सोई मैं आपकों जानता हौं, अरु शांतरूप हौं, इच्छा अनिच्छा मेरे तांई कोउ नहीं रही; केवल शांतरूप हौं ॥ हे देवी! जिस पदकी अपेक्षा करिके ब्रह्मा विष्णु रुद्रकी मूर्त्यौं भी शोकसंयुक्त भासतियां हैं, तिस पदकों मैं प्राप्त भया हौं, जहां उत्थान कोउ नहीं, अरु निष्किंचित है, जिसविषे किंचित् मात्र भी जगत नहीं, अरु मैं जो था सोइ भया हौं, इसतें इतर क्या कहौं, हे देवी! तैंनें संसारसमुद्रतें मेरे तांई पार किया है, तातें तूं मेरा गुरु है, ऐसे कहिकरि चूडालाके चरणोंपर राजा गिर पडा, अरु कहा, अज्ञान मेरे तांई कदाचित स्पर्श न करैगा, जैसे तांवा पारसके संगकरि स्वर्ण हुआ, वहुरि तांवा नहीं होता, तैसे मैं मोहरूपी चीकडतें तेरे संग करि निकसा हौं, वहुरि कदाचित् न गिरौंगा, अरु अव इस जगतके सुखदुःखकरि न तुष्ट होता हौं, ज्यौंका त्यौं स्थित हौं, रागदोषके उठावणेवाला जो चित्त है, सो मेरा नष्ट हो गया है, अव मैं प्रकाशरूप अपणे आपविषे स्थित हौं, जैसे जलविषे सूर्यका प्रतिबिंब पडता है, अरु जलके नष्ट हुए प्रतिविंव भी सूर्यरूप होता है, तैसे मेरा चित्त भी आत्मरूप भया है, अव मैं निर्वाणपदकों प्राप्त भया हौं, अरु सर्वतें अ

तीत भया हौं, अरु सर्वविषे स्थित हौं, जैसे आकाश सर्व पदार्थविषे स्थित है, अरु सर्व पदार्थतें अतीत है, तैसे मैं भी हौं, अहं त्वं आदिक शब्द मेरे नष्ट भये हैं, अरु शांतिकों प्राप्त भया हौं, अब मेरेविषे ऐसा तैसा शब्द कोउ नहीं, मैं अद्वैत हौं, अरु चिन्मात्र हौं, न सूक्ष्म हौं, न स्थूल हौं ॥ ॥ चूडालोवाच ॥ हे राजन्! जो तूं ऐसे स्थित हुआ है, तौ तूं अब क्या करैगा, अब तेरे तांई क्या इच्छा है ॥ राजोवाच ॥ हे देवी! न मेरे कछु अंगीकार करणेकी इच्छा है, न त्याग करणेकी इच्छा है, जो कछु तूं कहैगी सो करौंगा, तेरे कहणेका अंगीकार करौंगा, जैसे मणि प्रतिबिंबकों ग्रहण करती है, तैसे मैं तेरे वचनकों ग्रहण करौंगा ॥ चूडालोवाच ॥ हे प्राणपति! हृदयके प्रीतम राजा, अब तूं विष्णु हुआ है, अरु भला कार्य हुआ जो तेरी इच्छा नष्ट भई है ॥ हे राजन्! अब तूं अरु मैं मोहतें रहित होकरि अपने प्रकृत आचारविषे विचरैं, अखेद जीवन्मुक्त हुए अपणे प्रकृत आचारकों हम क्यों त्यागें ॥ हे राजा! जो अपणे आचारकों त्यागेंगे तौ अवर किसीका ग्रहण करेंगे, तातें हम अपणेही आचारविषे विचरैं, अरु भोग मोक्ष दोनोंकों भोगे हैं ॥ हे रामजी! ऐसे परस्पर विचार करते दिन व्यतीत भया, अरु संध्याकालकी संध्या राजा करत भया, बहुरि शय्याका आरंभ किया, तिस उपर दोनों शयन करत भए, अरु रात्रिकों परस्पर चर्चाही करते रहे, एक क्षणकी नांई रात्रिकों व्यतीत करी ॥

॥ इति श्रीयोगवासिष्ठे निर्वाणप्रकरणे चूडालाप्राकट्यं नाम षडशीतितमः सर्गः ॥ ८६ ॥ ॥ ॥ वसिष्ठ उवाच ॥ हे रामजी! जब ऐसे रात्र वीती, अरु सूर्यकी किरणां पसरियां, अरु सूर्यमुखी कमल खिली आए, तब राजानें स्नानका आरंभ किया, चूडाला मनके संकल्प करिके रत्नोंकी मटकी रची, अरु हाथपर धारी, तिसविषे गंगा आदिक तीर्थोंका जल पाया, अरु राजाकों स्नान कराया, शुद्ध किया, अरु संध्यादिक सर्व कर्म किए, तब चूडालानें कहा ॥ हे राजन्! मोहकों नाश करिके सुखेनही अपणे राज्यकार्यकों करैं, अरु आनंदसाथ भोग भोगें ॥ ॥ राजोवाच ॥ हे देवि! जो सुख भोगणेकी तेरे तांई इच्छा है तौ स्वर्गविषे भी ह

मारा राज्य है, अरु सिद्धविषे भी हमारा है, तातें स्वर्गहीविषे विचरैं ॥ ॥ चूडालोवाच ॥ हे राजन्! हमकों न सुख भोगणेकी इच्छा है, न त्यागणेकी इच्छा है, हम ज्योंके त्यों हैं ॥ हे राजन्! इच्छा अनिच्छा तब होती है, जब आगे कछु पदार्थ भासता है, हमकों तौ केवल आकाश आत्मा दृष्ट आता है, स्वर्ग कहां अरु नरक कहां, हम सर्वदा एकरस स्थित हैं ॥ हे राजा! यद्यपि हमकों कछु नहीं, तौ भी जबलग शरीर का प्रारब्ध है, तबलग शरीर रहता है, तौ चेष्टा भी हुई चहिए, अवर चेष्टा करणेतें अपणे प्रकृत आचारकों क्यों न करियें, जो रागदोषतें रहित होकरि अपणे राज्यकों भोगैं, तातें अब ऊठ, अष्ट वसुके तेजकों धारिकरि राज्य करणेकों सावधान होहु ॥ हे रामजी! जब ऐसे चूडालानें कहा, तव राजा कहत भया, ऐसेही होवै, अरु अष्ट वसुके तेजसंयुक्त होत भया, जब ऐसा तेज राजाकों प्राप्त भया, तब कहा ॥ हे देवि! तूं मेरी पट्टराणी है, अरु मैं तेरा भर्त्ता हौं, तौ भी एक तूं है, एक मैं हौं, अवर कोउ नहीं, अरु राज्य तव होता है, जब सैना भी होवै, तातें तूं सैना रच,तब चूडाला संपूर्ण सैनाकों रचती भई, हस्ती, घोडे, रथ, नउबत, नगारे, निशान इत्यादिक जो राज्यकी सामग्री है सो रची है, अरु प्रत्यक्ष आगे आनि स्थित भई, नउबत, नगारे, तुरियां, सरनाई बाजणे लगे, जो कछु राज्यकी सामग्री है सो अपणे अपणे स्थानविषे स्थित भई, राजाकेशिरऊपर छत्र फिरणे लगा, अरु बेरक खडी हुई, तब राजा अरु राणी हस्तीपर आरूढ होकरि चले, मंदराचल पर्वतके उपर आगे पाछे सब सैना भई अरु राजा जिस जिस ठौर तप करत भया था, सो राणीकों दिखावता जावै, जो इस स्थानविषे मैं ऐता काल रहा हौं, इसविषे एता रहा हौं, जब राज्यका त्याग किया था, ऐसे दिखावता जावै अरु तीक्ष्ण वेगकरि चले, तब आगे जो मंत्री अरु पुरवासी अवर नगरवासी थे, सो राजाकों लेणे आये, अरु बडे आदरसंयुक्त पूजन किया, अरु अपणे मंदिरविषे आनि स्थित भए, अष्ट दिनपर्यंत राजाकों मिलणेनिमित्त लोकपाल मंडलेश्वर आते रहे, तिसतें उपरांत राजा सिंहासनपर आय बैठा, अरु राज्य करणे

लगा, एक समदृष्टिकों लिए दश सहस्र वर्षपर्यंत राज्य किया, चूडालासंयुक्त जीवन्मुक्त होकरि विचरत भए, बहुरि विदेहमुक्त भए ॥ हे रामजी! दश सहस्र वर्षपर्यंत राजा अरु चूडालाने राज्य किया, अरु सत्ता समानविषे स्थित रहे, किसी पदार्थविषे रागवान न भए, अरु दोष भी न किया, ज्यौंके त्यौं शांत पदविषे स्थित रहे, जेती कछु राज्यकी चेष्टा है, सो करते रहे, परंतु अंतःकरणकरि किसीविषे बंधमान न भए, केवल आत्मपदविषे अचल रहे, बहुरि राजा अरु चूडाला विदेहमुक्तिकों प्राप्त भए, जैसे आपकों जानते थे, तिसी केवल परमाकाश अक्षोभ पदविषे जाय स्थित भए, जैसे तेलविना दीपक निर्वाण होता है, तैसे प्रारब्धवेगके क्षय हुए निर्वाण पदविषे प्राप्त भये ॥ हे रामजी! जैसे शिखरध्वज अरु चूडाला जीवन्मुक्त होकरि भोगकों भोगते विचरे हैं, तैसे तुम भी रागदोषतें रहित होकरि विचरौ ॥ ॥ इति श्रीयो० नि० शिखरध्वजचूडालाख्यानसमाप्तिर्नाम सप्ताशीतितमः सर्गः ॥ ८७ ॥ ॥ ॥ वसिष्ठ उवाच ॥ हे रामजी! शिखरध्वजका वृत्तांत मैं संपूर्ण तुझकों कहा, ऐसी दृष्टिकों आश्रय करौ, कैसी दृष्टि है, जो पापका नाश करती है, तिस दृष्टिका आश्रय करि जिस मार्ग शिखरध्वज तत्पदकों प्राप्त भया है, अरु जीवन्मुक्त होकरि राज्यका व्यवहार किया है, तैसे तुम भी तत्पदका आश्रय करौ, अरु तिसी परायण होउ, आत्मपदकों पायकरि भोग मोक्ष दोनोंकों भोगौ, अरु तिसी प्रकार बृहस्पतिका पुत्र कच भी बोधवान हुआ है ॥ ॥ राम उवाच ॥ हे भगवन्! जिस प्रकार बृहस्पतिका पुत्र कच बोधवान हुआ है, सो प्रकार सबही संक्षेपतें मुख्यकरि मुझकों कहौ ॥ ॥ वसिष्ठ उवाच ॥ हे रामजी! ऐसा कच था, जो बालक अवस्था अज्ञात है, तिसकों त्यागिकरि पदपदार्थकों जानणे लगे, जब ऐसा हुआ तब पिता बृहस्पतिसों प्रश्न किया, जो हे पिता, इस संसारपिंजरतें मैं कैसे निकसौं, जेता संसार है, सो जीवितकरि बांधा हुआ है, जीवित कहिये अनात्म देहादिकोंविषे मिथ्या अभिमान करणां, इसीकरि बांधा हुआ है, जो अहं त्वं मान

ता है, तिस संसारतें मुक्त कैसे होउं ?॥ ॥ बृहस्पतिरुवाच ॥ हे तात! इस अनर्थरूप संसारतें तब मुक्त होता है, जब सर्व त्याग करता है, सर्व त्याग कियेविना मुक्ति नहीं होती, तातें तूं सर्व त्याग करु, जो मुक्ति होवै॥ ॥ वसिष्ठ उवाच ॥ हे रामजी! जब इस प्रकार बृहस्पतिनें कहा, तव कच ऐसे पावन वचनोंकों श्रवणकरि ऐश्वर्यका त्यागकरि वनकों गया, वनविषे जायकरि एक कंदरामें स्थित भया, तप करणे लगा॥ हे रामजी! बृहस्पतिका पुत्र कच तिसके जाणेकरि उसकों खेद कछु न भया, जो ज्ञानवान पुरुषकों संयोग वियोगविषे समभाव रहता है, हर्षशोककों कदाचित नहीं प्राप्त होता, ज्यौंका त्यौं रहता है, जब अष्ट वर्षपर्यंत तप किया, तब बृहस्पति आया, अरु देखा जो कच एक कंदराविषे बैठा है, तहां कचके पास आनि स्थित भया, अरु कचनें पिताका पूजन गुरौंकी नांई किया, अरु बृहस्पतिनें कचकों कंठ लगाया, तब दुःखकरि गदगद वाणीसहित कचने प्रश्न किया, हे पिता! अष्ट वर्ष वीते हैं, जो मैं सर्व त्याग किया है, तो भी शांतिकों नहीं प्राप्त भया, जिसकरि मेरे तांई शांति प्राप्त होवै, सो कहौ, तब बृहस्पतिनें कहा, हे तात! सर्व त्याग करु जो तेरे तांई शांति होवै, ऐसे कहीकरि बृहस्पति उठि खडा हुआ, अरु आकाशकों चलागया॥ हे रामजी! जब ऐसे बृहस्पति कहीकरि चलागया, तब कच आसन, अरु मृगछाला, अरु वनकों त्यागिकरि आगे वनकों चला, एक कंदराविषे जायकरि स्थित भया, तब तीन वर्ष उहां व्यतीत भए, बहुरि बृहस्पति आय प्राप्त भया, देखा, जो कच स्थित है, तब कचने भली प्रकार गुरौंकी नांई पूजन किया, अरु बृहस्पतिनें कचकों कंठ लगाया, तब कचनें कहा, हे पिता! अबलग मेरे तांई शांति नहीं प्राप्त भई, अरु मैं सर्व त्याग भी किया, जो अपणे पास कछु नहीं राख्या, तातें जिसकरि मेरा कल्याण होवै, सोई कहौ, तब बृहस्पतिनें कहा॥ हे तात! अब भी सर्व त्याग नहीं, तातें सर्व पद चित्तका नाम है, जब चित्तका त्याग करैगा, तब सर्व त्याग होवैगा, तातें चित्तका त्याग करु॥ ॥ वसिष्ठ उवाच ॥ हे रामजी! ऐसे

कहीकरि बृहस्पति आकाशकों चला गया, तब कच विचारणे लगा, जो पितानें सर्वपद चित्तकों कहा है, सो चित्त क्या है, प्रथम वनके पदार्थोंकों देखिकरि विचारत भया, जो यह चित्त है; तब देखा जो यह भिन्न भिन्न है, तातें यह चित्त नहीं, अरु नेत्र भी चित्त नहीं, जो नेत्र श्रवण नहीं, श्रवण नेत्रहुंतें भिन्न हैं, अरु श्रवण भी चित्त नहीं, इसी प्रकार सर्व इंद्रियां चित्त नहीं, जो एकविषे दूसरेका अभाव है, तातें चित्त क्या है, जिसकों जाणीकरि त्याग करौं, बहुरि विचार किया, जो पिताके पास स्वर्गविषे जाउ ॥ हे रामजी! ऐसे विचारकरि उठि खडा हुआ, दिगंबर आकार आकाशकों चला, जब पिताके पास जाय प्राप्त भया, तब पिताका पूजन किया, अरु कहा, हे तेतीस कोटि देवताके गुरु! चित्तका रूप क्या है, तिसका रूप कहौ, जो मैं तिसकों त्याग करौं॥ ॥ बृहस्पतिरुवाच ॥ हे पुत्र! चित्त अहंकारका नाम है, सो अज्ञानतें उपजा है, अरु आत्मज्ञान करिके इसका नाश होता है, जैसे रसडीके अज्ञानतें सर्प भासता है, अरु रसडीके जानणेतें सर्पभ्रम नष्ट हो जाता है, तातें अहंभावका त्याग कर, अरु स्वरूपविषे स्थित होहु ॥ ॥ कच उवाच ॥ हे पिता! अहंभावका त्याग कैसे करौं, अहं तौ मैं हौं ॥ बहुरि अपणा त्याग करिके स्थित कैसे होउ, इसका त्याग करणां महाकठिण है ॥ ॥ बृहस्पतिरुवाच ॥ हे तात! अहंकारका त्याग करणां तौ महासुगम है, फूलके मिलणेविषे भी कछु यत्न है, अरु नेत्रोंके खोलणे अरु मिटणेविषे भी कछु यत्न है, परंतु अहंकारके त्यागणेविषे यत्न कछु नहीं ॥ हे पुत्र! अहंकार वस्तु कछु नहीं, भ्रम करिके उठ्या है, जैसे मूर्ख बालक अपणे परछायेविषे वैताल कल्पता है, अरु जेवरीविषे सर्प भासता है, अरु मरुस्थलविषे जल कल्पता है, अरु आकाशविषे भ्रमकरि दो चंद्रमा भासते हैं, तैसे परिच्छिन्न अहंकार अपणे प्रमादकरि उपजा है, अरु आत्मा शुद्ध है, आकाशतें भी निर्मल है, अरु देश काल वस्तुके परिच्छेदतें रहित सत्ता समान चिन्मात्र है, तिसविषे स्थित होहु, जो तेरा स्वरूप है, अरु तूं आत्मा है, तेरे

विषे अहंकार कदाचित् नहीं, हे साधो! आत्मा सर्वदा सर्व प्रकार सर्वविषे स्थित है, तिसविषे अहंभाव ऐसे है, जैसे धूड समुद्रविषे कदाचित् नहीं, तैसे तिसविषे अहंकार कदाचित् नहीं, कैसा है आत्मा, जिसविषे न एक कहणां है, न दो कहणां है, केवल अपणे आपविषे स्थित है, अरु जो आकार दृष्ट आते हैं, सो चित्तके फुरणे करिके हैं, चित्तके नष्ट हुए आत्माही शेष रहता है, तातें अपणे स्वरूपविषे स्थित होहु, जो तेरा दुःख नष्ट हो जावै, अरु जो कछु यह दृष्ट आता है, तिसविषे भी आत्मा है, जैसे पत्र फूल फल सर्व बीजतें उत्पन्न होते हैं, तैसे सर्व आत्माका चमत्कार है॥ ॥ इति श्रीयोगवासिष्ठे निर्वाणप्रकरणे बृहस्पतिबोधनं नाम अष्टाशीतितमः सर्गः ॥ ८८ ॥ ॥ ॥ वसिष्ठ उवाच ॥ हे रामजी! जब इस प्रकार बृहस्पतिनें उत्तम उपदेश किया, तब कच श्रवण करिके स्वरूपविषे स्थित भया, योग जो है, आत्मा अरु परिच्छिन्न अहंकारकी एकता तिसकों प्राप्त भया, अरु आत्मस्वरूप हुआ, अरु जीवन्मुक्त होकरि विचरत भया ॥ हे रामजी! जैसे कच जीवन्मुक्त होकरि विचरा है, निरहंकार हुआ, तैसे तूं भी निराश होकरि विचरु, केवल अद्वैत पदकों प्राप्त होहु, जो निर्मल अरु शुद्ध है, जिसविषे एक अरु दो कहणां नहीं, तूं तिस पदविषे स्थित होहु, तेरेविषे दुःख कोउ नहीं, तूं आत्मा है, अरु तेरेविषे अहंकार नहीं, तूं ग्रहण त्याग किसका करै, जो पदार्थ होवै नहीं, तिसका ग्रहण त्याग क्या कहियें ॥ हे रामजी! जैसे आकाशके वनविषे फूल हैं नहीं, तिसका ग्रहण क्या अरु त्याग क्या, तैसे आत्माविषे अहंकार नहीं, जो ज्ञानवान पुरुष हैं, सो अहंकारका ग्रहण त्याग नहीं करते, अरु मूर्खकों एक आत्माविषे नाना आकार भासते हैं, किसीका शोक करणां, कहूं हर्ष करणां, अरु तूं कैसे दुःखका नाश चाहता है, दुःख तेरेविषे है नहीं, तूं कैसे नाश करणेकों समर्थ हुआ है, अरु जेते कछु आकार भासते हैं, सो मिथ्या हैं, तिनाविषे जो अधिष्ठान है, सो सत है, अरु मूर्ख मिथ्या करिके सतकी रक्षा करते हैं, जो मेरे दुःख नाश होवै ॥ ॥ राम उवाच ॥ हे भगवन्! तु

मारे प्रसाद करिके मैं तृप्त हुआ हौं, तुमारे वचनरूपी अमृतकरि अघाया हौं, जैसे पपैया एक बुंदकों चाहता है, अरु कृपा करिके मेघ तिसपर वर्षा करता है, अरु अघाय रहता है, तैसे मैं तुमारी शरणकों प्राप्त हुआ था, अरु तुमारे दर्शनकी इच्छा बूंदकी नांई करता था, अरु तुमनें कृपा करिके ज्ञानरूपी अमृतकी वर्षा करी, तिस वर्षा करिके मैं अघाया रहा हौं, अब मैं शांतपदकों प्राप्त हुआ हौं, तीनों ताप मेरे मिटि गये हैं, कोउ फुरणा मेरेविषे नहीं रहा, अरु तुमारे अमृत वचनोंकों श्रवण करता तृप्त नहीं होता, जैसे चकोर चंद्रमाकों देखिकरि किरणांतें तृप्त नहीं होता, तैसे तुमारे अमृतरूपी वचनोंकरि मैं तृप्त नहीं होता, तातें प्रश्न करता हौं, तिसका उत्तर कृपाकरि कहौ ॥ हे भगवन्! मिथ्या क्या है, अरु सत क्या है, जिसकी रक्षा करते हैं ॥ ॥ वसिष्ठ उवाच ॥ हे रामजी! इस उपर एक आख्यान है, सो कहता हौं, जिसके सुणेतें हासी आवै, एक आकाशविषे शून्य वन है, तिसविषे एक मूर्ख बालक है, जो आप मिथ्या है, अरु सत्यके राखणेकी इच्छा करता है, जो मैं इसकी रक्षा करौंगा, अधिष्ठान जो सत्य है, तिसकों नहीं जाणता, अरु मूर्खता करिके दुःख पावता है, क्या जाणता है, सो श्रवण करु, यह आकाश है, मैं भी आकाश हौं, मेरा आकाश है, मैं आकाशकी रक्षा करौंगा, ऐसे विचार करि एक गृह बनाया, गृहविषे जो आकाश है, तिसकी रक्षा करौंगा, जो इसका नाश न होवै, इसनिमित्त गृह बनाया ॥ हे रामजी! ऐसे विचार करिके गृहकी बनावट बहुत करी, जब किसी ठौरतें टूटै तब बहुरि बनाय लेवै, जब केता काल इस प्रकार व्यतीत भया तब कालकरि गृह गिर पडा, तब रुदन करणे लगा, हाय हाय, मेरा आकाश नष्ट हो गया, जैसे एक ऋतु व्यतीत होवै, अरु दूसरा आवै, तैसे कालकरि गृह गिरि गया, तिसतें उपरांत एक कुआ बनाया, अरु कहणे लगा, जो यह आकाश न जावैगा, जो इसकी भली प्रकार रक्षा करौंगा ॥ हे रामजी! इस प्रकार कुएकों बनायकरि सुख मान्या, जब केता काल बीत्या तब जैसे सूका पात वृक्षतें गिरता है, तैसे कुआ भी गिर प

डा, तब बडे शोककों प्राप्त भया, जो मेरा आकाश गिर पडा, नष्ट हो गया; मैं क्या करौंगा, ऐसे शोक संयुक्त केता काल वीत्या तब एक कुटी बनाई, जैसे अनाज राखणेके निमित्त बनाते हैं, तैसे बनायकरि कहणे लगा, जो अब मेरा आकाश कहां जावैगा, मैं अब इसकी भली प्रकार रक्षा करौंगा, ऐसी कुटी करिके बहुत सुख मान्या, जब केता काल व्यतीत भया, तब उह कुटी भी तूटि पडी, जो उपजी वस्तुका विनाश होणा अवश्य है, बहुरि रुदन करणे लगा, जो मेरा आकाश नष्ट हो गया, जब केता काल शोक संयुक्त वीत्या तब एक घट बनाया, अरु घटाकाशकी रक्षा करणे लगा, तब केते कालकरि घट भी नष्ट हो गया, बहुरि एक कुंड बनाया, अरु कुंडाकाशकी रक्षा करणे लगा, केता कालकरि कुंड भी नष्ट हो गया, तब शोकवान हुआ, बहुरि एक हवेली बनाई अरु कहणे लगा; अब मेरा आकाश कहां जावैगा, मैं इसकी भली प्रकार रक्षा करौंगा, अरु बडे हर्षकों प्राप्त हुआ, जब केता काल व्यतीत भया, तब उह हवेली भी गिर पडी, बहुरि दुःखकों प्राप्त भया, जो हाय हाय, मेरा आकाश नष्ट हो गया, मेरे तांई बडा कष्ट आनि प्राप्त भया है ॥ हे रामजी! इसी प्रकार आत्मज्ञानविना अरु आकाशके जानणेविना मूर्ख बालक दुःख पावता रहा, जो आपकों भी यथार्थ जाणता, अरु आकाशकों भी ज्यौंका त्यौं जाणता, तो यह कष्ट काहेकों पावता ॥ ॥ इति श्रीयोगवासिष्ठे निर्वाणप्रकरणे मिथ्यापुरुषाकाशरक्षाकरणं नाम एकोननवतितमः सर्गः ॥८९॥ ॥ ॥ ॥राम उवाच॥ हे भगवन्! मिथ्या पुरुष कवन था, अरु जिसकी रक्षा करता था, सो आकाश क्या था, अरु जो गृह कूप आदिक बणावता था, सो क्या था? यह प्रगटकरि कहौ॥ ॥वसिष्ठ उवाच॥ हे रामजी! मिथ्य पुरुषा जो संवेदन फुरणेतें उपजा अहंकार है, अरु आकाश चिदाकाश है, तिसतें उपजा बहुरि जाणता है, जो मैं आकाशकी रक्षा करौं, अरु आकाश गृहघटादिक जो कहा सो देह हैं, तिसविषे जो आत्मा अधिष्ठान है, तिस आत्माकी रक्षा करणेकी इच्छा मूर्ख

ता करिके करता है, आपकों नहीं जाणता, जो मेरा स्वरूप क्या है, तिस अपणे स्वरूपकों न जानणेकरि दुःख पावता है, आप है, मिथ्या अरु मिथ्या होकरि आगे आकाशकों कल्पिकरि राखणेकी इच्छा करता है, जो देह करिके देहीके राखणेकी इच्छा करता है, जो मैं जीता रहौं, अरु देह तौ कालकरि उपजा है, बहुरि देहके नष्ट होणेकरि शोकवान होता है, अरु अपणे वास्तव स्वरूप वस्तुकों नहीं जाणता, तिसका नाश कदाचित् नहीं होता, ऐसे विचारतें रहित क्लेश पावता है ॥ हे रामजी! जिसविषे भ्रम उपजता है, तिसका अधिष्ठान सत्ता नहीं होता, सर्वका अपणा आप आत्मा है, सो कदाचित् नाश नहीं होता, तिसविषे मूर्खता करिके अहंरूप संसारकों कल्पता है, अरु एते इसके नाम हैं, अहंकार, मन, जीव, बुद्धि, चित्त, माया, प्रकृति, दृश्य, यह सर्व इसके नाम हैं, सो मिथ्या हैं, अरु इसका अत्यंत अभाव है, अण होता उदय हुआ है, जो मैं हौं, क्षत्रिय ब्राह्मण वर्ण आश्रम अरु मनुष्य देवता दैत्य इत्यादिक कल्पना करता है ॥ हे रामजी! यह कदाचित् हुआ नहीं, अरु न होवैगा, न किसी काल न किसीकों है, अविचार सिद्ध है, विचार कियेतें कछु नहीं, जैसे जेवरीके अज्ञानतें सर्प कल्पीता है, अरु जानणेतें नष्ट हो जाता है, तैसे स्वरूपके प्रमादकरि अहंकार उदय हुआ है, सो तेरा स्वरूप कैसा है श्रवण करु, आत्मा है अरु प्रकाशरूप है, निर्मल है जो विद्याअविद्याके कार्यतें रहित चेतनमात्र है, अरु निर्विकल्प है, ज्योंका त्यौं स्थित है, अद्वैत है, अरु प्राणकों कदाचित् नहीं प्राप्त होता, आत्मत्वमात्र है, तिसविषे संसार कैसे होवै, अरु अहंकार कैसे होवै, सम्यक्दर्शीकों आत्मातें इतर नहीं भासता, अरु असम्यक्दर्शीकों संसार भासता है, पदार्थकों सत जाणता है, अरु संसारकों वास्तव जाणता है, जो अपणे वास्तव स्वरूपकों नहीं जाणता है, जो मैं कवन हौं, जानणेतें अहंकार नष्ट हो जाता है, अरु जेती कछु आपदा है, तिसकी खाण अहंकार है, सर्व ताप अहंकारतें उत्पन्न होते हैं, इसके नष्ट हुए अपणे स्वरूपविषे स्थित होता है; अरु विश्व भी आत्माका चमत्कार है, इतर नहीं, जैसे समुद्र

विषे पवनकरि नानाप्रकारके तरंग भासते हैं, अरु स्वर्णविषे नानाप्रकारके भूषण भासते हैं, सो उहीरूप हैं, भिन्न कछु नहीं, तैसे आत्मातें विश्व भिन्न कछु नहीं, अरु स्वर्ण भी परिणामकरि भूषण होता है, अरु समुद्र भी परिणामकरि तरंग होता है, अरु आत्मा अच्युत है, परिणामकों नहीं प्राप्त भया, तातें समुद्र अरु स्वर्णतें विलक्षण हैं, आत्माविषे संवेदनकरि चमत्कारमात्र विश्व है, सो आत्मामात्रस्वरूप है, सो न कदाचित् जन्म्या है, न मृत्युकों प्राप्त होता है, न किसी कालविषे न किसीसों मृतक है, ज्योंका त्यों आत्मा स्थित है, अरु जन्म मृत्यु तब होवै जब दूसरा होवै, आत्मा तौ अद्वैत है, जिसविषे एक कहणा भी नहीं, तौ दूसरा कहां होवै, तातें प्रत्यक् आत्मा अपणा अनुभवरूप है, तिसविषे स्थित होहु, तब दुःख ताप सब नष्ट हो जावैं, सो आत्मा शुद्ध है, अरु निराकार है, ॥ हे रामजी ! जो निराकार शुद्ध है, सो किसकरि ग्रहण करिये अरु रक्षा कैसे करिये, कवन समर्थ है, जो रक्षा करै, जैसे घटके नष्ट हुए घटाकाश नष्ट नहीं होता, तैसे देहके नष्ट हुए देही आत्माका नाश नहीं होता, आत्मसत्ता ज्योंकी त्यों हैं, अरु जन्ममरण पुर्यष्टका करिके भासते हैं, जब पुर्यष्टका देहतें निकसी जाती है, तब मृतक भासता है, जब पुर्यष्टका संयुक्त है, तब जीवत भासता है, अरु आत्मा सूक्ष्मतें सूक्ष्म है, अरु स्थूलतें स्थूल है, तिसका ग्रहण कैसे होवै, अरु रक्षा कैसे करियें, अरु स्थूल भी उपदेश जतावणेके निमित्त कहता है, आत्मा वाचातें अगोचर है, अरु भाव अभावरूप संसारतें रहित है, सर्वका अनुभवरूप है, तिसविषे स्थित होकरि अहंकारका त्याग कर, अपणे स्वरूप प्रत्यक् आत्माविषे स्थित होहु ॥ ॥ इति श्रीयोगवासिष्ठे निर्वाणप्रकरणे मिथ्यापुरुषोपाख्यानसमाप्तिर्नाम नवतितमः सर्ग ॥ ९० ॥ ॥ ॥ वसिष्ठ उवाच ॥ हे रामजी ! यह संसार आत्मरूप है, जैसे इनकी उत्पत्ति भई है, सो सुण, शुद्ध आत्मा निर्विकल्पविषे विवर्त्त चेतन लक्षण मनकरि स्थित भया है, अरु आगे तिसनें जगतकल्पना करी है, सो मन कैसा है, जैसे समुद्रविषे तरंग, अरु स्वर्णविषे भूषण,

जेवरीविषे सर्प, सूर्यकी किरणांविषे जलाभास, तैसे आत्माविषे विवर्त्त मन है, सो आत्मातें इतर कछु नहीं, जिसकों तरंगका ज्ञान है, तिसकों समुद्रबुद्धि नहीं होती, अरु तरंगकों अवर जाणता है, जिसकों भूषणका ज्ञान है, सो स्वर्णकों नहीं जाणता, अरु सर्पके ज्ञानकरि जेवरीकों नहीं जाणता, अरु जलके ज्ञानकरि किरणोंकों नहीं जाणता, तैसे नानाप्रकार विश्वके ज्ञानकरि परमात्माकों नहीं जाणता, जैसे जिस पुरुषनें समुद्रकों जाण्या है, जो जल है, तिसकों तरंग बुदबुदे भी जलही भासते हैं, भिन्न कछु नहीं भासता, सो पुरुष निर्विकल्प है, अरु जिसकों जेवरीका ज्ञान हुआ, तिसकों सर्पबुद्धि नहीं होती, सो पुरुष निर्विकल्प है, अरु जिसकों स्वर्णका ज्ञान हुआ है, तिसकों भूषणबुद्धि नहीं होती, ऐसा पुरुष है सो निर्विकल्प है, जिसकों किरणोंका ज्ञान हुआ है, तिसकों जलबुद्धि नहीं होती, तैसे जिस पुरुषकों निर्विकल्प आत्माका ज्ञान हुवा है, तिसकों संसारभावना नहीं होती, तिसकों ब्रह्मही भासता है, ऐसा जो मुनीश्वर है सो ज्ञानवान है ॥ हे रामजी! मन भी आत्मातें इतर कछु नहीं, आदि जो परमात्मातें मन होकरि फुर्या है, सो अहं त्वं आदिक होकरि फुर्या, मात्र पदविषे जो अहंभाव होणा सो उत्थान है, बहिर्मुख होणेकरि अपणे निर्विकल्प चिन्मात्र आत्मा स्वरूपका प्रमाद हुआ है, तिस प्रमाद होणेकरि आगे विश्व हुई है, अरु मन भी कैसा है, जो कदाचित् उदय नहीं भया, अरु आत्मास्वरूप है सो उदय हुएकी नांई भासता है, मन अरु संसार सत्य भी नहीं, असत्य भी नहीं, जो दूसरी वस्तु होवै तौ सत असत् कहियें, आत्मा अद्वैत ज्यौंका त्यौं स्थित है, तिसका विवर्त्त मन होकरि फुर्या है, सोइ मन कीट है, सोइ मन ब्रह्मा है, बहुरि ब्रह्मानें मनोराज्य करिके स्थावर जंगम सृष्टि कल्पी है, सो न सत्य है, न असत्य है ॥ हे रामजी! सर्व प्रपंच मननें कल्प्या है, तिसीनें नानाप्रकारके विचार रचे हैं, मन बुद्धि चित्त अहंकार जीव सर्व मनके नाम हैं, जब मन नष्ट हो जावै, तब न संसार है, न कोउ विकार है, अरु जबलग मन दृश्यसाथ मिलिकरि कहै, जो मैं संसारका अंत

लेउं तौ कदाचित् अंत न आवैगा, काहेतें जो संसरनाही संसार है, संसरणे संयुक्त संसारका अंत कहा आवै, अंत लेणेवारा बणीकरि आगे फुरीकरि देखता है तौ अंत कहांतें आवै, जैसे कोउ पुरुष दोडता जावै, अरु कहै, मैं अपणे परछायेका अंत लेउं जो कहांलग जाता है ॥ हे रामजी! जबलग पुरुष चला जावै, तबलग परछायेका अंत नहीं आता, अरु जब ठहरि जावै, तब परछायेका अंत हो जाता है, तैसे जबलग फुरणा है, तबलग संसार का अंत नहीं आता, जब फुरणा नष्ट हो जावै, तब संसारका भी अंत होवै, आत्माही दृष्ट आवै, अरु संसारका अत्यंत अभाव हो जावै, अरु जो फुरनेसंयुक्त देखैगा तो संसारही भासैगा ॥ हे रामजी! जिस पदार्थकों यह देखता है, सो पदार्थ पूर्व कोउ नहीं, चित्तके फुरणेकरि उदय होता है, जब चित्त फुर्या जो यह पदार्थ है, तब आगे पदार्थ हुआ, अरु फुरणेतें रहित होकरि देखें तौ पदार्थ कोउ नहीं भासता; केवल शांतपद है ॥ हे रामजी! यह जो नानाप्रकारकी कल्पना है, तिसतें रहित निर्विकल्प ब्रह्मपदविषे अहंकारका त्यागकरि स्थित होहु, अहंकार जो है, नामरूप देह वर्णाश्रमविषे मायाकरि कल्पित, जब तिसतें रहित होकरि देखैगा, तब केवल सतचिदानंद आत्मपद शेष रहैगा, जब तिस पदकों अपणा आप जाणैगा, तब तूंही सर्वात्मा होकरि विचरैगा, दुःख तेरे तांई कोउ न रहैगा ॥ हे रामजी! मनही संसार है, मनही ब्रह्मा है, अरु मनही कीटी है, मनही सुमेरु है, मनही तृण है, मनही सर्व विश्वरूप होकरि स्थित भया है, सो मन कैसा है, जो आत्मातें इतर कछु नहीं, जैसे फलहीविषे संपूर्ण वृक्ष है, तैसे मन आत्मास्वरूप है, आत्मातें इतर मन कछु वस्तु नहीं, ऐसे जाणीकरि आत्मस्वरूप होवैगा, यह जो संज्ञा है, बंध अरु मोक्ष, तिसका त्याग करु, न बंधकी वांछा करु, न मोक्षकी इच्छा करु, इस कल्पनातें रहित होहु, अरु ऐसे न होवै जो मुक्त हों, अरु यह अवर बंध हैं, केवल सत्तासमान आत्मपदविषे स्थित होहु, यही भावना कर, जो तेरे सर्व दुःख नष्ट हो जावैं, ऐसा जो पुरुष है तिसका चित्तभाव नहीं रहता, सर्व आत्मा तिसकों भासता

है, जैसे जिस पुरुषनें सूर्यकों जाण्या है, तिसकों किरणां भी सूर्यही दृष्ट आता है, तैसे जिसकों आत्माका साक्षात्कार हुआ है, तिसकों जगत भी आत्मस्वरूप भासता है ॥ ॥ इति श्रीयोगवासिष्ठे निर्वाणप्रकरणे परमार्थयोगोपदेशो नाम एकनवतितमः सर्गः ॥ ९१ ॥ ॥ ॥ वसिष्ठ उवाच ॥ हे रामजी ! महाकर्त्ता होहु; अरु महाभोक्ता अरु त्यागी होहु, सर्व शंकाकों त्यागिकरि निरंतर धैर्य धारीकरि स्थित होहु ॥

॥ राम उवाच ॥ हे भगवन् ! महाकर्त्ता क्या कहियें, महाभोक्ता अरु महात्यागी क्या कहियें, कृपा करिके कहो ॥ ॥ वसिष्ठ उवाच ॥ हे रामजी ! तेरे प्रश्न उपर एक आख्यान है सो श्रवण करु, एक समय सुमेरु पर्वतकी उत्तर दिशाके शिखरतें सदाशिवजी आय प्राप्त भया, सो कैसा है सदाशिव, चंद्रमाकों मस्तकविषे धर्या है, अरु गुणसंयुक्त अरु गौरी डावे अंगविषे धारे हैं, सुमेरु पर्वतके शिखरपर आनि स्थित भया, तब भृंगीगण जो है सदाशिवका, तिसनें हाथ जोडकरि प्रश्न किया, कैसा है भृंगीगण, महातेजवान अरु आत्मजिज्ञासा जिसकों उपजी है, तिसनें प्रश्न किया कै, हे भगवन् ! देवके देव, यह संसार मिथ्या भ्रम है, तिसविषे मैं सत्य पदार्थ कोउ नहीं देखता, सदा चलरूप भासता है, अरु जो सत्पदार्थ है, तिसकों मैं नहीं जाणता, मेरे ताप नष्ट नहीं भए, मैं शांतिकों नहीं प्राप्त भया, तातें आपकों दुःखी देखता हौं, जिसकरि शांति प्राप्त होवै सो कृपाकरि कहो, अरु खेदतें रहित होकरि चेष्टाविषे विचरौं, सो खेदतें रहित तब होता है, जब कोउ आसरा होता है, अरु जेता कछु संसार है सो मिथ्या है, मैं किसका आसरा करौं, तातें सोइ मेरे तांई कहो, जिसकों आश्रय किये, दुःख मेरे नष्ट होवै ॥ ईश्वर उवाच ॥ हे भृंगी ! तूं महाकर्त्ता होहु, अरु महाभोक्ता होहु, अरु महात्यागी होहु, सर्व शंकाकों त्यागिकरि निरंतर धैर्यकों आश्रय करिके तेरे दुःख नष्ट होवैंगे ॥ वसिष्ठ उवाच ॥ हे रामजी ! ऐसा जो है भृंगी गण ! जिसकों सदाशिवनें पुत्रकरि रखा है, तिसनें श्रवण करिके प्रश्न किया ॥ हे परमेश्वर ! महाकर्त्ता क्या कहियें, महा भोक्ता महात्यागी क्या

कहियें, सो कृपाकरि ज्यौंका त्यौं मेरे तांई कहौ ॥ ईश्वर उवाच ॥ हे पुत्र! सर्वात्मा जो अनुभवरूप है, तिसका आश्रय करिके विचरु, जो दुःखतें रहित होवै, अरु इन तीनों वृत्तिकरि दुःख तेरे नष्ट हो जावैंगे, जो कछु शुभक्रिया आय प्राप्त होवै, तिसकों शंका त्यागके करै, ऐसा पुरुष महाकर्त्ता है, धर्म अधर्मक्रिया अनिच्छित आनि प्राप्त होवै, तिसकों रागदोषतें रहित होकरि करै ऐसा पुरुष महाकर्त्ता है, जो पुरुष मौनी निरहंकार निर्मान है, मत्सरतें रहित होकरि ऐसा पुरुष महाकर्त्ता है, अनिच्छित प्राप्त हुएका त्याग न करै, अरु जो नहीं प्राप्त हुआ, तिसकी वांच्छा न करै, ऐसा पुरुष महाकर्त्ता है, अरु पुण्य पाप क्रिया जो अनिच्छित आय प्राप्त होवै, तिसकों अहंकारतें रहित होकरि करै, पुण्यक्रिया करणेतें आपकों पुण्यवान नहीं मानता, अरु पाप कियेतें पापी नहीं मानता, सदा आपकों अकर्त्ता जाणता है, ऐसा पुरुष महाकर्त्ता है, अरु जो सर्वविषे विगतस्नेह है, सत्यवत स्थित है, निरिच्छा वर्तता है, कार्यविषे सो महाकर्त्ता है, जो दुःखके प्राप्त हुए शोक नहीं करता, अरु सुखके प्राप्त हुएतें हर्षवान नहीं होता, स्वाभाविक चित्तसमताकों देखता है, कदाचित् विषमताकों प्राप्त नहीं होता, जो सुखकी भिन्न भिन्न विषमता है, तिसतें रहित है, सो पुरुष महाकर्त्ता है, अरु जिस पुरुषनें सुखदुःखका त्याग किया है, जो सुखदुःखकी भावना नहीं फुरती, यही त्याग है, जो अवर कछु नहीं फुरता है, ऐसा पुरुष महाकर्त्ता है ॥ हे भृंगी! जो पुरुष प्राप्त हुई वस्तुकों रागदोषतें रहित होकरि भोगता है, सो महाभोक्ता है, अरु जो बडा कष्ट आय प्राप्त होवै, तिसविषे दोष नहीं रहता, अरु बडे सुखकी प्राप्तिविषे हर्षवान नहीं होता, सो पुरुष महाभोक्ता है, अरु जो बडे राज्यके सुख भोगणेविषे आपकों सुखी नहीं मानता, राज्यके आभाव होणे अरु भिक्षा मागणेविषे आपकों दुःखी नहीं मानता, सदा स्वरूपविषे स्थित है, सो महाभोक्ता है, अरु जो मान अहंकार अरु चिंतनातें रहित है, केवल समताविषे स्थित है, सो महाभोक्ता है,अरु जो कोउ कछु देवै,तउ आपकों लेणेवाला नहीं मानता, अरु

शुभक्रियाविषे भोक्ता हुआ आपकों कर्तृत्व भोक्तृत्व नहीं मानता सो पुरुष महाभोक्ता है, अरु जो मीठा खाटा तीक्ष्ण सलोणा कटु यह रस प्राप्त होते हैं, तिनके भोगणेविषे समचित्त रहता है, अरु सम जाणता है, सो महाभोक्ता है, जो रसवान पदार्थ प्राप्त हुएतें हर्षवान नहीं होता, अरु विरसके प्राप्त हुएतें दोषवान नहीं होता, ज्यौंका त्यौं रहता है, जैसा आय प्राप्त होवै भला बुरा, तिसकों दुःखतें रहित होकरि भोगता है, ऐसा पुरुष है सो महाभोक्ता है, अरु जेती कछु क्रिया है, शुभ अशुभ भाव अभाव तिसके सुखदुःखतें चलायमान नहीं होता, सो पुरुष महाभोक्ता है, अरु जिसकों मृत्युका भय नहीं, अरु जिणेकी आस्था नहीं, उदय अस्तविषे समान है सो महाभोक्ता है, बडे सुखप्राप्तिविषे हर्षवान नहीं होता, अरु दुःखकी प्राप्तिविषे शोकवान नहीं होता, ज्यौंका त्यौं रहता है, सो महाभोक्ता है, जो कछु अनिच्छित आय प्राप्त होवै, तिसकों कर्त्ता हुआ अहंकारतें रहित है, सो पुरुष महाभोक्ता है, जो पुरुष शत्रु मित्र सुहृदविषे समबुद्धि रहता है, विषमताकों कदाचित् नहीं प्राप्त होता सो पुरुष महाभोक्ता है, जेता कछु शुभ अशुभ दुःख सुख आय प्राप्त होवैं, तिसकों धारि लेता है, कदाचित् विषमताकों नहीं प्राप्त होता, जैसे समुद्रविषे नदिया आय प्राप्त होतियां हैं, तिनकों धारिकरि सम रहता है, तैसे ज्ञानवान शुभअशुभकों धारिकरि सम रहता है, जो संसार अरु देह इंद्रियां अरु अहंकारकी सत्ताकों त्यागिकरि स्थित हुआ है अरु जानता है, न मैं देह हौं, न मेरा देह है, इनका साक्षी हौं, इस वृत्तिकों धारी रहै, सो महात्यागी है, अरुजो सर्व चेष्टा करता है, रागदोषतें रहित होकरि सो महात्यागी है, अरु शुभ अशुभ प्राप्त हुएकों अहंकारतें रहित होकरि करता है, सो महात्यागी है, अरु जो मन इंद्रियां देहकरि इच्छातें रहित हुआ सर्व चेष्टा भी करता है सो महात्यागी है, अरु जो पुरुष समचित्त इंद्रियजीत है, अरु क्षमावान है जो सो महात्यागी है ॥ हे रामजी! जिस पुरुषनें धर्मअधर्मकी देह संसारकी मद मान मननकी इत्यादिक कल्पनाका त्याग किया है, सो महात्यागी है ॥

हे रामजी! इस प्रकार भृंगी गणकों सदाशिवनें उपदेश किया, सो कैसा सदाशिव है, खपरकों हाथविषे धारे, अरु व्याघ्रांबरकों लिए हुए मस्तकविषे चंद्रमाकों धारे, तिसनें सुमेरुके शिखरपर उपदेश किया॥ हे रामजी! तूं भी इसी वृत्तिकों धारिकरि विचरु, तेरे सर्व दुःख नष्ट हो जावैंगे॥ इति श्रीयोगवासिष्ठे निर्वाण प्रकरणे महाकर्त्राद्युपदेशो नाम द्विनवतितमः सर्गः॥ ९२॥ ॥ ॥ ॥ राम उवाच ॥ हे मुनीश्वर! जो तुमने उपदेश किया सो मैं जान्या है अरु तुमनें आगे उपशम प्रकरणविषे उपदेश किया था, जो आत्मा अनंत है, अरु शुद्ध है, तब मैं प्रश्न किया था जो आत्मा अनंत है, अरु शुद्ध है, तौ यह कलना कैसे उपजी है, जैसे समुद्र निर्मल है, तिसविषे धूड कैसे होवै, बहुरि तुमने कहा, इस प्रश्नका उत्तर सिद्धांतकालविषे कहैंगे, सो मैं अब सिद्धांतका पात्र हौं, मेरे तांई कहौ, जैसे स्त्री भर्त्तासों प्रश्न करती है, अरु भर्त्ता कृपा करिके उपदेश करता है, तैसे मैं तुमारी शरण हौं, कृपा करिके मुझकों उत्तर कहौ, जो आशा अरु तृष्णाके फांस मेरे टूटे हैं, अरु आशारूपी जालतें निकसा हौं, अरु संशयरूपी धूड मेरे हृदयविषे उठी है, तिसकों वचनरूपी वर्षाकरि शांत करौं, अरु संशयरूपी मेरे हृदयविषे अंधकार है, वचनरूपी क्रीडाकरि तुम निवर्त करौ, तुमारे वचनरूपी अमृतकरि मैं तृप्त नहीं होता॥ हे भगवन्! अपणे विचार ज्ञानकरि यह गुरुके उपदेश कियेविना नहीं शोभता॥ ॥वसिष्ठ उवाच॥ हे रामजी! जो पुरुष शांतिवान् अरु क्षमावान है, अरु इंद्रियजित है, अरु मनकी क्रिया संकल्पविकल्पकों जीता है, सो सिद्धांतका पात्र है॥ हे रामजी! तूं अब सिद्धांतका पात्र है, तातें उपदेश करता हौं, अरु जो पुरुष रागदोषसहित क्रियाविषे स्थित है, अरु इंद्रियांके सुखकरि जिसकों आराम है, सो सिद्धांतके वाक्य अहं ब्रह्म अस्मि, सर्व ब्रह्म तिनकों श्रवणकरि भोगविषे स्थित होता है, अरु अधोगतिकों पावता है, काहेतें जो उसकों निश्चय नहीं होता, हृदय तिसका मलीन है, तातें इंद्रियांके सुखकरि आपकों सुखी मानता है, इसी नीच स्थानोंकों प्रा

प्त होता है, अरु जो पुरुष क्षमा आदिक साधनकरि पवित्र हुआ है, तिसकों अहं ब्रह्म अस्मि, सर्व ब्रह्मके श्रवणकरि शीघ्रही भावनातें आत्मपदकी प्राप्ति होती है, अरु तुम सारखे जो पुरुष हैं, क्षमा आदिक साधनकरि पवित्र हुए हैं, तिनकों स्वरूपकी प्राप्ति सुगम होती है, अरु जिनका अंतःकरण मलिन है, तिनकों प्राप्त होणा कठिण है, जैसे भूना बीज कलरकी पृथ्वीविषे बोइए, तब उसकी अंगुरी नहीं होती, तैसे इंद्रियारामी पुरुषकों आत्माकी प्राप्ति नहीं होती, अरु तुमसारखे जिनका हृदय शुद्ध है, तिनकों ज्ञानकी प्राप्ति होती है, अरु इन वचनोंकों पायकरि शोभते हैं, जैसे वर्षाकालविषे धान पृथ्वीमें शोभा पावते हैं, वर्षा करिके तैसे सिद्धांत वचनोंकों पायकरि ज्ञानरूपी दीपकसों प्रकाशते हैं, अरु जो ज्ञानवान पुरुष उंची बाहो करि कहते हैं, अरु सर्व शास्त्र भी कहते हैं, सो सर्व शास्त्रोंके सिद्धांतकों अरु तिनके दृष्टांतोंकों मैं जाणता हौं, तातें सर्व सिद्धांतोंका सार कहता हौं, तूं श्रवण करु, जो तेरा स्वरूप है, तिसकों जाणैगा ॥ हे रामजी! जिसकों अभ्यास करिके एक क्षण भी साक्षात्कार हुआ है, सो वहुरि गर्भविषे नहीं आता, अरु सत असतविषे भेद कछु नहीं, उसके संवेदनविषे भेद है, जैसे जाग्रतका सूर्य अरु स्वप्नका सूर्य प्रकाश दोनोंका समान है, जाग्रतविषे जाग्रत सूर्यका प्रकाश अर्थाकार होता है, अरु स्वप्नविषे स्वप्नका सूर्य अर्थाकार होता है, प्रकाश दोनोंका सम है, अरु संवित भिन्न है, स्वप्नकों मिथ्या जानता है, अरु जाग्रतकों सत्य जानता है, संवेदनतें भेद हुआ स्वरूपतें भेद कछु न हुआ, जैसे एक बडा पर्वत मन करिके रचियें तौ संकल्पकरि देखता है, अरु एक पर्वत बाहिर प्रत्यक्षकरि देखता है, तौ संवित करिके भेद हुआ, स्वरूप दोनोंका तुल्य है, जैसे समुद्रविषे तरंग हैं, स्वरूपविषे जलतरंगोंका भेद कछु नहीं, जिसकों जलका ज्ञान नहीं सो तरंगही जानता है, तातें संवितविषे भेद है, तैसे स्वरूपविषे सत असत तुल्य हैं, वास्तव कछु नहीं, केवल शांतरूप आत्मा है, अरु शब्द अर्थ संवेदनविषे है, शब्द कहियें नाम, अर्थ कहियें नामी

सो संवेदन फुरणे करिके है, जब फुरणा नष्ट हो जावै, तब सर्व अर्थ भी आत्मा है, ऐसे भासैगा, जगतकी सत्ता तबलग है, जबलग आत्माका प्रमाद है, अरु प्रमाद तबलग है, जबलग अहंभाव है, जब अहंभाव नष्ट हो जावै, तब केवल आत्मा शेष रहै, सो आत्मा शुद्ध है, विद्याअविद्याके कार्यतें रहित है, कदाचित् स्पर्श नहीं किया ॥ हे रामजी! अविद्याकी दो शक्ति हैं, एक आवरण, एक विक्षेप, आवरण कहियें आत्माका न जानणा, विक्षेप कहियें अवर कछु जानणा, सो आत्मा सदा ज्ञानरूप है, तिसकों आवरण कदाचित् नहीं, आत्मा अद्वैत है, तिसतें इतर कछु नहीं वण्या, इसीतें आत्मा शुद्ध है, केवल ज्ञानमात्र है ॥ हे रामजी! तिसविषे कलनारूपी धूड कहां होवै, जो आत्ममात्र है, चिन्मात्र जिसविषे अहंका उत्थान है नहीं, केवल निर्वाणपद है, जहां एक अरु द्वैत कहणा भी नहीं, केवल अपणे आपविषे स्थित है ॥ राम उवाच ॥ हे भगवन्! जो सर्व ब्रह्म है तौ मन बुद्धि आदिक यह कवन हैं, जिसकरि तुम इह शास्त्र उपदेश करते हौ ॥ ॥ वसिष्ठ उवाच ॥ हे रामजी! शास्त्रके व्यवहारके अर्थ शब्द यह हैं, परमार्थतें कल्पना है नहीं, यह मन बुद्धि आदिक कछु वस्तु नहीं, ब्रह्मसत्ताही अपणे आपविषे स्थित है, जैसे तरंग जलतें इतर कछु वस्तु नहीं, तैसे मनादिक हैं, आत्मा तत्त्व कैसा है, नित्य है, शुद्ध है, सन्मात्र है, नाहींकी नांई स्थित है ॥ हे रामजी! ऐसे आत्माविषे संसार अविद्याका नाम आदिक कैसे होवै, आत्मा ब्रह्म है, जिसतें इतर कछु नहीं, सर्व अधिष्ठान है, अरु अविनाशी है, देश काल वस्तुके परिच्छेदतें रहित है, इसीतें ब्रह्म है ॥ हे रामजी! ऐसा जो अपणा आप आत्मा है, तिसीविषे स्थित होहु, अरु यह जगत जो दृष्ट आता है, सो सर्व चिदाकाश है, इतर कछु नहीं, जैसे स्वप्नविषे विश्व देखीता है, सो अनुभवमात्र है, जैसे जाग्रत विश्व आत्मरूप है, ऐसा जो तेरा शुद्ध अरु नित्य उदित अविनाशी रूप है, तिसविषे जब स्थित होवैगा, तब कलना जो तेरे तांई भासती है, सो नष्ट हो जावैगी ॥ इति श्रीयोगवासिष्ठे निर्वाणप्रकरणे कलनानिषेधो नाम त्रिनवतितमः सर्गः ॥ ९३ ॥ ॥

॥ वसिष्ठ उवाच ॥ हे रामजी! संसारका बीज अहंकार है, जब अहंभाव होता है, तब संसार होता है, सो अहंकार कछु वस्तु नहीं, भ्रम करिके सिद्ध हुआ है, जैसे मूर्ख बालक परछायेविषे पिशाच कल्पता है, सो पिशाच कछु वस्तु नहीं, उसके भ्रमविषे होता है, तैसे अहंकार कछु वस्तु नहीं, स्वरूपके भ्रमविषे होता है ॥ हे रामजी! जो वास्तव कछु वस्तु न होवै, तिसके त्यागणेविषे यत्न कछु नहीं, तेरेविषे अहंकार वास्तव नहीं, तूं केवल शांतरूप चेतनमात्र है, तिसविषे अहंभाव होणां उपाधि है, तिसतें सुमेरु पर्वत आदिक जगत बनि जाता है, सो संवेदनरूप है, चित्तरूपी पुरुष चेतनके आश्रयतें फुरता है, अरु विश्व कल्पता है, जैसे जेवरीके आश्रयतें सर्प फुरता है, तैसे चेतनके आश्रय विश्व अरु चित्त फुरते हैं, सो आत्मातें इतर नहीं, अरु अहंकार हुएकी नांई हुआ है, जो मैं हौं ऐसा जो अहंभाव है, सो दुःखकी खाण है, सर्व आपदा अहंकारतें होती हैं, जब अहंकार नष्ट होवैगा, तब सर्व दुःख नष्ट होवैंगे ॥ हे रामजी! जैसे सूर्यके आगे बदल होते हैं, तौ प्रकाश नहीं होता, जब बदल दूर होते हैं; तब प्रकाशवान भासता है; अरु सूर्यके प्रकाशकरि कमल प्रफुल्लित होते हैं, तैसे आत्मारूपी सूर्यकों अहंकाररूपी बदलका आवरण हुआ, अहंकार कहियें किसी मायाके गुणसाथ मिलिकरि कछु आपकों मानणा,जब अहंकाररूपी बदल नष्ट होवैगा, तब आत्मरूपी सूर्यका प्रकाश होवैगा, अरु ज्ञानवानरूपी कमल तिस प्रकाशकों पायकरि बडे आनंदकों प्राप्त होते हैं ॥ हे रामजी! तातें अहंकारके नाशका उपाय करौ, जो तुमारे दुःख नष्ट हो जावैं, उह कवन पदार्थ है, जो उपाय किये सिद्ध नहीं होता, जो अहंकारके नाशका उपाय करिये तौ नष्ट हो जाता है, जिस प्रकार अहंकार नष्ट होवै सो श्रवण करु, सच्छास्त्र जो ब्रह्मविद्या है, तिसका वारंवार अभ्यास करि संतके संग जो कथा परस्पर चर्चा करणी, तिसकरि अहंकार नष्ट हो जाता है, जैसे पाणी भरणेकी जेवरीकरि पथ्थरकी शिलाकों घासि पडी जाती है, तैसे ब्रह्मविद्याका अभ्यासकरि अहंकार नष्ट होता है, अरु शि

लाके घसणेविषे कछु यत्न है, अहंकारके त्यागणेविषे यत्न कछु नहीं ॥ हे रामजी! सदा अनुभवरूप आत्मा है, तिसका विचार करौ जो मैं कवन हौं, अरु इंद्रियां क्या है, गुण क्या हैं, अरु संसार क्या है, जो ऐसे विचारकरि इनका साक्षीभूत होहु, जो मेरेविषे अहं त्वं कोउ नहीं, इसकरि अहंकारका नाश करौ, अरु तूं शुद्ध है, मेरा भी आशीर्वाद है, जो तूं सुखी होवै, जब अहंकार नष्ट होवैगा, तब कलना कोउ न फुरैगी, केवल सुषुप्तकी नांई स्थित होवैगा ॥ ॥ राम उवाच ॥ हे भगवन्! जो अहंकार तुमारा नष्ट हुआ है, तौ प्रत्यक्ष उपदेश करते कैसे देखते हैं, अरु जो अहंकार नहीं, तौ सर्व शास्त्र ब्रह्मविद्या कहांतें उपजे हैं, अरु उपदेश कैसे होता है, उपदेशाविषे चारौं सिद्ध होते हैं, अंतःकरण जो प्रथम उपदेश करणेकी इच्छा होती है, तब अहंकार सिद्ध होता है, अरु जब स्मरण होता है, जो उपदेश करौं, तब चित्त भी चैत्यकरि सिद्ध होता है, बहुरि यह उपदेश करिये, यह नहीं करिये, ऐसे संकल्प किये मनकी सिद्धता होती है, बहुरि निश्चय किया यह उपदेश करिये, तब बुद्धिकी सिद्धता होती है, तातें चारौं अंतःकरण सिद्ध होते हैं, तुम कैसे कहते हौ, जो अहंकार नष्ट हो जाता है, अरु सर्व चेष्टा होती है, ? ॥ ॥ वसिष्ठ उवाच ॥ हे रामजी! आत्मस्वरूपविषे अहंकार आदिक अंतःकरण अरु इंद्रियां कल्पित हैं, वास्तव कछु नहीं अरु शास्ता शास्त्र उपदेश भी कल्पना हैं, आत्मा केवल आत्मत्वमात्र है, तिसविषे संवेदन करिके अहंकारादिक दृश्य फुरे हैं, तिसके निवृत्त करणेकों प्रवर्तते हैं, जैसे जेवरीविषे सर्प भासता है, तब भयकरि दुःख पावता है, जब किसनें कहा जो यह जेवरी है, तूं भय मत करु, इसकों भली प्रकार देख, यह सर्प नहीं, तिसके उपदेश करि उह भली प्रकार देखता है, तब भय शोक तिसका निवृत्त हो जाता है, जो भ्रम करिके उसकों सर्पभान हुआ था, सो भी मिथ्या है, अरु उसकों उपदेश करणा जेवरीका सो भी मिथ्या है, काहेतें जो जेवरी तौ, आगे सिद्ध है, उपदेशकरि सिद्ध नहीं होती, तैसे जेवरीकी नांई आत्मा है,

तिसका निवृत्त जो चेतन लक्षण तिसकों अहंभाव है, तिस अहंकारके निवृत्त करणेकों शास्त्र हुए हैं, जो आत्मारूपी जेवरीके प्रमादकरि अहंकाररूपी सर्प फुर्या है, तिसके निवृत्त करणेकों शास्त्रके उपदेश हुए हैं, आत्माकों जताय देते हैं, जब भली प्रकार जेवरीकी नांई आत्माकों जाण्या, तब सर्पकी नांई जो परिच्छिन्न अहंकार है, सो नष्ट हो जाता है, जैसे नेत्रविषे मेल होता है, अरु अंजनके पावणेकरि नष्ट हो जाता है, तब ज्यौंका त्यौं निर्मल नेत्र होते हैं, तैसे अज्ञानरूपी जो मेल है, सो गुरुशास्त्रके उपदेशरूपी झूरमेकरि नष्ट हो जाती है, वास्तव न कोउ अहंकार है, न शास्त्र है, काहेतें जो आत्मा सर्वदाकाल उदयरूप है, परंतु तौ भी गुरुशास्त्रकरि जाणीता है ॥ हे रामजी! ज्ञानवानके साथ चारौं अंतःकरण अरु इंद्रियां भी दृष्ट आते हैं, सो तिनविषे सत्यता नहीं होती, जैसे भूना बीज दृष्ट आता है, परंतु ऊगणेकी सत्यता नहीं राखता, जैसे जल्या वस्त्र होता है, सो देखणेमात्र है, सत्यता उसविषे कछु नहीं, तैसे ज्ञानवानकों अभिलाषरूप अहंकार नहीं होता, तिसकरि कष्ट नहीं पावता, जैसे सूर्यकी किरणांकरि मरुस्थलविषे जलाभास होता है, तिसकों देखिकरि जलपान करणेनिमित्त मृग दौडता है, अरु दुःखी होता है, तैसे दृश्यरूपी मरुस्थलविषे पदार्थरूपी जलाभास है, तिसकों देखीकरि अज्ञानीरूपी मृग दोडते हैं, अरु दुःख पावते हैं, जब ज्ञानरूपी वर्षाकरि आत्मारूपी जल चडा, तब चित्तरूपी मृग कहां दोडै, जब ज्ञानरूपी वर्षा होती है, अरु अनुभवरूपी जल चडता है, तब चित्तरूपी मृग तिसविषे यत्नरूपी जो फुरणा था, सो नष्ट हो जाता है ॥ हे रामजी! अहंकार अविचारतें सिद्ध है, विचारतें क्षीण हो जाता है, जैसे बरफकी पुतली सूर्यकी किरणांकरि क्षीण होती है, जब अधिक तेज होता है, तब जलरूप हो जाता है, बरफकी संज्ञा नहीं रहती, तैसे अहंकाररूपी बरफ विचाररूपी किरणांकरि क्षीण हो जाता है, जब दृढ विचार होता है, तब अहंकारसंज्ञाही जाती है, केवल आत्मा हो रहता है ॥ ॥ राम उवाच ॥ हे सर्वतत्त्वज्ञ भगवन्! जिसका

अहंकार नष्ट हुआ है, तिसका लक्षण क्या है, सो कहो ॥ ॥ वसिष्ठ उवाच ॥ हे रामजी! अज्ञानरूपी टोया संसार है, तिसविषे पदार्थकी भावनाकरि नहीं गिरता. अरु क्षमा शांति आदिक शुभ गुण तिसकों स्वाभाविक आय प्राप्त होते हैं, जैसे समुद्रविषे नदियां स्वाभाविक आय प्राप्त होतीयां हैं, अरु क्रोध भी तिसका नष्ट हो जाता है, देखणेमात्र भासता है तो भी अर्थाकार नहीं होता, जो विषमता करिके भिन्न भावना अंतरतें नहीं फुरती केवल सत्तासमानविषे स्थित होता है, जैसे शरत्कालका मेघ गर्जता है, अरु वर्षातें रहित होता है, तैसे इंद्रियांकी चेष्टा अभिमानतें रहित होकरि करता है, जैसे वर्षा ऋतुके जाणेकरि कुहिड नहीं रहती, तैसे अभिमान चेष्टा तिसकी नष्ट हो जाती है, अरु लोभ भी तिसके मनतें जाता रहता है, जैसे वनकों अग्नि लगती है, अरु मृग पक्षी तिस वनकों त्याग जाते हैं, तैसे लोभरूपी मृग तिसकों त्याग जाते हैं, तिसके मनविषे कामना कोउ नहीं रहती, जैसे दिनविषे उलूक पिशाच नहीं विचरते. जहां ज्ञानरूपी सूर्य उदय होता है, तहां संपूर्ण कामनारूपी तम नष्ट हो जाता है. शांतरूप आत्माविषे स्थित रहता है, जैसे पंदोइ दो पोटकों ज्येष्ठ आषाढकी धूपविषे उठावता है, अरु गरमी होती है. थकता भी है, तिसकों डारीकरि वृक्षके नीचे सुखसों स्थित होता है, तैसे वासनारूपी पोट है, अज्ञानरूपी धूप है, तिसकरि दुःखी होता है, ज्ञानरूपी बलकरि वासनारूपी पोटकों डारिके सुखसों स्थित होता है ॥ हे रामजी! भोगभावना तिस पुरुषकी नष्ट हो जाती है, बहुरि दुःख नहीं देती, जैसे गरुडकों देखीकरि सर्प भागता है, बहुरि निकट नहीं आवता, तैसे ज्ञानरूपी गरुडकों देखिकरि भोगरूपी सर्प भागते हैं, बहुरि निकट नहीं आते, आत्मपदकों पायकरि शांतिरूपी दीपकवत् प्रकाशवान होता है, भाव अभाव पदार्थ तिसकों स्पर्श नहीं करते, संसारभ्रम निवृत्त हो जाता है, सो ज्ञान समुझणे मात्र है, कछु यत्न नहीं, संतपास जायकरि प्रश्न करणा, मैं कवन हों, जगत क्या है, परमात्मा क्या है, अरु भोग क्या हैं, इनकों तरिकरि

कैसे परमपदकों प्राप्त होवैं, बहुरि जो ज्ञानवान उपदेश करैं, तिसके अभ्यासकरि आत्मपदकों प्राप्त होवैगा, अन्यथा न होवै॥ ॥ इति श्रीयोगवासिष्ठे निर्वाणप्रकरणे संतलक्षणमाहात्म्यवर्णनं नाम चतुर्नवतितमः सर्गः ॥ ९४ ॥ ॥ ॥ वसिष्ठ उवाच ॥ हे रामजी! जिस प्रकार तुमारा बडा इक्ष्वाकु नामक राजा जीवन्मुक्त होकरि विचर्या है, तैसे तुम भी विचरौ, तुम भी तिस कुलतें उपजे हौ ॥ हे रामजी! इक्ष्वाकु राजा सूर्यवंशी होत भया है, सो मनुका पुत्र अरु सूर्यका पौत्र, सब राजातें श्रेष्ठ था, जैसे पितरोंका राजा धर्म है, अरु बर्फकी नांई तिसका शीतल स्वभाव था, जैसे सूर्यकों देखिकरि मणितें तेज प्रगट होता है, तैसे तिसकों देखिकरि शत्रु तपायमान होवै, ऐसा परंतप था,साधु अरु मित्र प्रजाकों रमणीय भासै, तिसकों देखिकरि सब शांतिवान होवैं, जैसे चंद्रमाकों देखिकरि चंद्रमुखी कमल प्रसन्न होते हैं तैसे उसकों देखिकरि प्रसन्न होवैं, अरु पापरूपी वृक्षोंके काटणेहारा कुहाडा अरु मित्रका सुखदायक जैसे मोरोंका मेघ सुखदायक है, अरु सुंदर ऐसा जिसकों देखिकरि लक्ष्मी स्थित हो रही है, दरिद्री कदाचित् न होवै, तिसके यशकरि संपूर्ण पृथ्वी पूरि रही थी, जैसे चंद्रमाकी चांदनीकरि रात्र पूर्ण होती है, ऐसा राजा भली प्रकार प्रजाकी पालना करत भया, एक काल तिसके मनविषे विचार उपजा, जो जरा मरण आदिक संसारविषे बडा क्षोभ है, इस संसारदुःखके तरणेका उपाय कवन है, ऐसे विचारता था जो एक समय शंभु मुनी ब्रह्मलोकतें आया, तिसका भली प्रकार पूजण किया, अरु कहत भया॥ इक्ष्वाकुरुवाच ॥ हे भगवन्! तुमारी कृपाका जो पराक्रम है, सो मेरे हृदयविषे बैठीकरि प्रश्न करणेकों प्रेरता है, तातें मैं प्रश्न करता हौं ॥ हे भगवन्! मेरे हृदयविषे संसार फुरता है, जैसे समुद्रकों वडवाग्नि जलावता है, तैसे मुझकों संसार जलावता है, तातें सोइ उपाय कहौ जिसकरि मुझकों शांति प्राप्त होवै॥ हे भगवन्! यह संसार कहांतें उपजा है, अरु दृश्यका स्वरूप क्या है, अरु कैसे निवृत्त होता है, जैसे जालसों पक्षी निकसि जाता है, तैसे जन्म

मरण संसार महाजाल है, तिसतें निकसणेका उपाय मुझकों कहौ, जैसे वरुण सब स्थान समुद्रके जानता है, तैसे तुम जगतके सब व्यवहारकों जानते हौ, अरु संशयरूपी वृक्षके काटणेहारे तुम कुहाडे हौ, अरु अज्ञानरूपी तमके नाशकर्त्ता तुम सूर्य हौ, तुमारे अमृतरूपी वचनोंकरि मैं शांतिकों प्राप्त होउंगा ॥ मुनिरुवाच ॥ हे साधो! मैं चिरकालपर्यंत जगतविषे विचरता रहता हौं, परंतु ऐसा प्रश्न किसीनें नहीं किया, तुझनें परमसार प्रश्न किया है, सर्व अनर्थके नाश करणेहारा प्रश्न है, तेरी बुद्धि विवेककरि विकासमान हुई दृष्ट आवती है ॥ हे राजन्! जो कछु जगत तुझकों भासता है सो सब असत है, जैसे जेवरीविषे सर्प, जैसे गंधर्वनगर, जैसे मरुस्थलविषे जल, जैसे सीपिविषे रूपा, जैसे आकाशविषे नीलता, दूसरा चंद्रमा भ्रमकरि भासता है, तैसे यह जगत असत्यरूप है, जैसे जलविषे चक्रतरंग असतरूप हैं, तैसे जगत असतरूप है, अरु जो मनसहित षट् इंद्रियांतें अतीत है, अरु शून्य भी नहीं, सो सत अविनाशी आत्मा कहाता है, सो निर्मल परम ब्रह्म सर्व उरतें पूर्ण अनंत है, तिसविषे जगत कल्पित है ॥ हे राजन्! जैसे सर्व वृक्षोंविषे एकही रस व्यापक है, तैसे सर्व पदार्थोंविषे एक चिन्मात्रसत्ता व्यापक है, जैसे समुद्र अचलविषे द्रवताकरिके तरंग फुरते हैं, तैसे परमात्माविषे जगत फुरते हैं, तिस महादर्पणविषे सर्व वस्तुजात प्रतिबिंब होते हैं, जैसे समुद्रविषे कोउ तरंगरूप, कोउ बुदबुदे चक्रादिक होते हैं, तैसे आत्माविषे जीवादिक आभास होते हैं, प्रथम फुरणरूप होते हैं,पाछे कारणकार्यरूप होते हैं, सो चित्तशक्ति अपणे संकल्पतें भूतादिक देह रचीकरि तिसविषे स्वरूपके प्रमादकरि आत्मअभिमान करता है, जैसे घुराणकों अपणी क्रिया अपणे बंधनके निमित्त होती है, तैसे इसकों अपणा संकल्प बंधनका कारण होता है ॥ हे राजन्! जीवकलाकों स्वरूपका अज्ञान हुआ है, सो जैसे बालककों अपणा परछाया यक्षरूप होकरि भय देता है, तैसे यह नानाप्रकारके आरंभकों प्राप्त हुआ है, अकारणही ब्रह्मशक्ति फुरणे करिके कारणभावकों प्राप्त हुआ है, तिसकरि बंध अरु मोक्ष भासते हैं, वास्तवतें न बंध है, न मो

क्ष है, निरामय ब्रह्मही अपणे आपविषे स्थित है, तिसविषे एक अरु अनेक कहणा कछु नहीं, तातें बंधमोक्षकी कल्पनाकों त्यागिकरि अपणे स्वभावविषे स्थित होहु ॥ ॥ इति श्रीयोगवासिष्ठे निर्वाणप्रकरणे इक्ष्वाकु प्रत्यक्षोपदेशो नाम पंचनवतितमः सर्गः ॥ ९५ ॥ ॥ ॥ ॥ मुनिरुवाच ॥ हे राजन्! जैसे द्रवता करिके जलही तरंगभावकों प्राप्त होता है, तैसे चिन्मात्रही संकल्पके फुरणेकरि जीव होता है, सो जीव संसारविषे कर्मोंके वशतें भ्रमता हुआ आपकों कर्त्ता देखता है, अरु सर्वात्मा परम ब्रह्म कर्त्ता हुआ भी कछु नहीं करता; जैसे सूर्यकरि सब चेष्टा होती है, अरु सूर्य अकर्त्ता है, तैसे आत्माकी शक्तिकरि जगत चेष्टा करता है, जैसे चुंबक पथ्थरके निकट लोहा चेष्टा करता है, तैसे आत्माकी चेतनताकरि सब देहादिक चेष्टा करता है, अरु आत्मा सदा अकर्ता है, जैसे जलविषे तरंग फुरते हैं, तैसे आत्माविषे देहादिक फुरते हैं, जैसे स्वर्णविषे भूषण कल्पना होती है, तैसे आत्माविषे मोहकरि दुःख सुख कल्पते हैं, आत्माविषे कल्पना कछु नहीं, शुद्ध आत्माविषे मूढनें सुखदुःखकी कल्पना करी है, अरु जो ज्ञानवान हैं, तिनकों मन चित्त सुख दुःख सब आकाशरूप हैं, उह देहतें रहित केवल चिदाकाशभावकों प्राप्त होते हैं, जरामरणकों नहीं प्राप्त होते, सब कार्यकों करते दृष्ट आते हैं, अरु अंतरतें सदा अकर्तारूप हैं, जैसे जल अरु दर्पणविषे पर्वतका प्रतिबिंब पडता है, परंतु स्पर्श नहीं करता, तैसे ज्ञानवानकों क्रिया स्पर्श नहीं करती, शरीरके व्यवहारविषे भी उह सदा निर्मलभाव है॥ हे राजन्! आत्मा सदा स्थितरूप है,परंतु भ्रम करिके चंचल भासता है, जैसे जलकी चंचलता करिके पर्वतका प्रतिबिंब भी चंचल होता है,तैसे देहादिककरि आत्मा चलता भासता है, सो आत्मा नित्य शुद्ध अपणे आपविषे स्थित है,जैसे घटके नाश सुए घटत्वनाश नहीं होता, तैसे देहके नाश हुए आत्माका नाश नहीं होता, जैसे शुद्ध मणिविषे नानाप्रकारके प्रतिबिंब होते हैं, तिनकरि रंजित नहीं होती, तैसे आत्माविषे मन इंद्रियां देह दृष्ट आवते हैं, सो स्पर्श नहीं करते, जैसे मिष्ट पदार्थविषे

मिठाई एकही व्यापी है, तैसे सब पदार्थविषे एक आत्मसत्ता व्यापी है ॥ हे राजन्! आत्मा सदा अचलरूप है, परंतु अज्ञान करिके चलरूप भासता है, जैसे बालक दौडतेकों सूर्य दौडता भासता है, तैसे आत्मा देहके संगतें अज्ञानकरि विकारवान भासता है, जैसे प्रतिबिंबका विकार आदर्शकों नहीं स्पर्श करता, तैसे देहका विकार आत्माकों स्पर्श नहीं करता, जैसे अग्निविषे स्वर्ण डारियें, तब मैल दग्ध हो जाता है, स्वर्णका नाश नहीं होता, तैसे देहके नाश हुए आत्माका नाश नहीं होता, सो आत्मा नित्य शुद्ध अवाक् अचिंत्यरूप है ॥ हे राजन्! चितवणेविषे नहीं आता, परंतु चेतनवृत्तिकरि देखिता है, जैसे राहु अदृष्ट है, परंतु चंद्रमाके संयोगकरि दृष्ट आता है, तैसे आत्मा अदृष्ट है, परंतु चेतनवृत्तिकरि जाणीता है, जैसे शुद्ध दर्पणविषे प्रतिबिंब होता है, तैसे बुद्धि निर्मलविषे आत्मा साक्षात् भासता है, सो संकल्पतें रहित अपणे आपविषे स्थित है, जब बुद्धि निर्मल होती है, तब अपणे आपविषे तिसकों पावती है ॥ हे राजन्! शास्त्रोंकरि परमेश्वर नहीं पाइता, अरु गुरुकरि भी नहीं पाइता, जबलग अपनी बुद्धि निर्मल न होवै, जब अपनी बुद्धि सतपदविषे निर्मल होवै, तब अपणे आपकरि देखता है, सो बुद्धि कैसे निर्मल होती है, जब संसारकी सत्यता हृदयतें दूर होवै, अरु आत्माका अभ्यास होवै, तब बुद्धि निर्मल होती है ॥ हे राजन्! सर्व भाव अभावरूप जो देहादिक पदार्थ हैं, सो असत हैं, केवल भ्रममात्र हैं, तिनकी आस्थाका त्याग करु, जैसे कोउ मार्गमें चलता है, अरु मार्गविषे अनेक मिलते हैं, परंतु तिनविषे रागदोष कछु नहीं होता, तैसे देहइंद्रियांसाथ स्नेहतें रहित आत्मतत्त्व सदा अपणे आपविषे स्थित है तिसविषे देहादिक इंद्रजालकी नांई मिथ्या हैं, तिनकी भावना दूरतें त्यागिकरि नित्य आत्मा शीतल चित्तविषे स्थित होहु ॥ हे राजन्! अपणा मित्र आपही है, अरु शत्रु भी अपणा आपही है, काहेतें जो आत्माविषे अवरकी ठौर नहीं,आत्माविषे आत्माका भाव है, अवर द्वैत कछु नहीं,इस कारणतें अपणा आपही शत्रु

है, आपही अपणा मित्र है, जो दृश्य पदार्थकी उरतें अनात्मधर्म विषयसों खैंचिकरि चित्तकों अपणे आप विषे स्थित करता है, सो अपणा आपही मित्र है, अरु जो अनात्म धर्मविषे पदार्थकी उर चित्तकों लगाता है, सो अपणा आपही शत्रु है, अरु वास्तवतें जेता कछु दृश्यजाल है सो भी आत्मारूप है, आत्मातें भिन्न कछु वस्तु नहीं, जैसे समुद्र जलतें इतर कछु वस्तु नहीं, जलही जल है, तैसे आत्मातें इतर जगत कछु वस्तु नहीं, सबविषे अनुस्यूत एक आत्मसत्ताही स्थित है, जैसे अनेक घटके जलविषे एकही सूर्यका प्रकाश प्रतिबिंब होता है, तैसे अनेक देहोंविषे एकही आत्मा व्यापी रहा है, सो न अस्त होता है, न उदय होता है, सदा एकरस अविनाशी पुरुष ज्योंका त्यों स्थित है, तिसविषे अहंभावना करिके संसार भासता है, जैसे सीपिविषे रूपेकी बुद्धि होती है, तैसे आत्माविषे अहंबुद्धि संसारका कारण है, इस बुद्धिकरि सर्व दुःखका भागी होता है, जैसे वर्षाकालकरि सब नदियां समुद्रविषे आय प्रवेश करतियां हैं, तैसे अनात्म अभिमान करिके सब आपदा आनि प्राप्त होती हैं, वास्तवतें चिन्मात्र अरु जीवविषे रंचक भी भेद नहीं, एकही रूप है, ऐसी जो बुद्धि है, सो बंधनतें मुक्तिका कारण हैं, आत्मा सर्वविषे अनुस्यूत व्याप्या है, जैसे सूर्यका प्रकाश सर्व ठौरविषे होता है, परंतु जहां शुद्ध जल है, तहां भासता है, तैसे आत्मा सब ठौर पूर्ण है, परंतु शुद्ध बुद्धिविषे भासता है, जैसे तरंग बुदबुदेविषे जलही व्यापी रहा है, तैसे आत्मा अविनाशी दृश्य कलनातें रहित सर्वत्र व्याप्या है, जैसे स्वर्णविषे भूषण नहीं, तैसे आत्माविषे जगतका अभाव है ॥ हे राजन् ! यह संसार आत्माविषे नहीं, केवल आत्माही है, जो एक वस्तु पात्रकी नांई होती है, तिसविषे दूसरी वस्तु होती है, आत्मा तौ अद्वैत है, दूसरी वस्तु संसार कहां होवै, अरु स्वर्णविषे भूषण जैसे चित्तकरि कल्पित हैं, वास्तव कछु नहीं, तैसे आत्माविषे संसार अज्ञानकरि कल्पित है, वास्तव कछु नहीं, केवल चिदाकाश है, जैसे नदियां अरु समुद्र नाममात्र हैं, सो जलही है, तैसे केवल चिदाकाशविषे विश्व नाममात्र है, अरु जेते आकार भासते हैं, ति

नका काल भक्षण करता है, जैसे नदियांकों समुद्र भक्षण करिके अघाता नहीं, तैसे पदार्थ समूहकों काल भक्षण करता अघाता नहीं ॥ हे राजन्! ऐसे पदार्थविषे अभिलाषा करणी क्या है, केई कोटि सृष्टि तपती होतियां हैं, तिनकों काल भक्षण अबलग करता है, कोउ पदार्थ कालतें मुक्त नहीं होता, जैसे समुद्रविषे तरंग बुदबुदे केई उपजते हैं, अरु नष्ट हो जाते हैं, तातें तूं कालतें अतीत पदकी भावना करु, जो कालकों भी भक्षण करे, कैसे भावना करियें, अरु कैसे भक्षण करियें, सो श्रवण करु, जैसे मंदराचलने अगस्त्य मुनिके आनेकी भावना करी है, तैसे तूं अपणे स्वरूपकी भावना करु, तब कालकों भक्षण करैगा, जैसे अगस्त्य मुनीने समुद्रका भक्षण किया था, तैसे आत्मारूपी अगस्त्य कालरूपी समुद्रकों भक्षण करैगा ॥ हे राजन्! जन्ममरणादिक जो विकार हैं, सो भ्रम करिके हैं, आत्माके प्रमादकरि भासते हैं, जब आत्माकों निश्चयकरि जाणैगा, तब विकार कोउ न भासैगा, काहेतें जो अज्ञानकरि रचे हैं, आकाशविषे कोउ नहीं, जैसे जेवरीविषे भ्रमसंयुक्त सर्प भासता है, सो तबलग है, जबलग जेवरीकों नहीं जाण्या, जब जेवरीकों जाणी तब सर्पभ्रम निवृत्त हो जाता है, तैसे जन्म मरण आदिक विकार आत्माविषे तबलग भासता है, जबलग आत्माकों नहीं जाण्या, जब आत्माकों जाणैगा, तब सर्व विकार नष्ट हो जावैंगे ॥ हे राजन्! ऐसा आत्मा विकारतें रहित तेरा स्वरूप है, तिसकी भावना करु, जो तेरे दुःख नष्ट हो जावैं, अरु आत्मपदकों कहूं खोजणे नहीं जाणा, अरु किसी वस्तुकों जायकरि ग्रहण नहीं करणा, जो यह आत्मा है, अरु किसी कालकी अपेक्षा भी नहीं, जो इस कालकरि पावैगा, आत्मा तेरा अपणा स्वरूप है, अरु सर्वदा अनुभवरूप है, तुझतें इतर कछु वस्तु नहीं, तूं आपकों ज्यौंका क्यौं जाण, आत्माके न जानणेकरि आपकों दुःखी जानता है, जो मैं मरौं, दरिद्री हौं, मैं दास हौं, इत्यादिक दुःख तबलग होते हैं, जबलग आत्माकों नहीं जाण्या, जब आत्माकों जाणैगा, तब आनंदरूप हो जावैगा, जैसे किसी स्त्रीके गोदविषे

पुत्र होवै, अरु स्वप्नविषे देखत भई जो बालक मेरे पास नहीं, तब बडे दुःखकों प्राप्त भई, अरु रुदन करणे लगी, जब स्वप्नतें जागै, तब देखा जो बालक मेरे गोदविषे है, अरु एता दुःख मैं भ्रम करिके पाया है, बडे आनंदकों प्राप्त भई, अरु दुःख शोक नष्ट होगए ॥ हे राजन्! तिसी प्रकार आत्मा तेरा अपणा आप है, अरु सदा अनुभवरूप है, तिसके प्रमादकरि तूं आपकों दुःखी जाणता है, जब अज्ञानरूपी निद्रातें तूं जागैगा, तब आपकों जाणैगा, अरु दुःख शोक तेरे नष्ट हो जावैंगे, सो अज्ञानरूपी निद्रा क्या है, श्रवण करु, देह इंद्रियादिक जो दृश्य हैं, तिनसाथ मिलिकरि आपकों जानणा जो मैं हौं, यह अज्ञान निद्रा है, इसतें रहित होकरि देख जो आनंदकों प्राप्त होवै, अरु जेते यह पदार्थ भासते हैं, सो मिथ्या हैं, जैसे बालक मृत्तिकाविषे राजा अरु सैना अरु हस्ती घोडा कल्पता है, सो न कोउ राजा है, न सैना है, न कोउ हस्ती घोडा है, एक मृत्तिकाही है, तैसे चित्तरूपी बालकनें आत्मरूपी मृत्तिकाविषे राजा अरु सैना आदिक संपूर्ण विश्व कल्पी है, सो मिथ्या है ॥ हे राजन्! एक उपाय तेरेकों कहता हौं सो करु, जो दुःख तेरे नष्ट हो जावैं, एक वस्तुका त्याग करु, सो कवन है, अहं अभिलाषसहित जो फुरना है, तिसका त्यागकरि जहां इच्छा है, तहां विचरु, तेरेकों दुःखका स्पर्श न होवैगा, संकल्पही उपाधि है, अवर उपाधि कोउ नहीं, जैसे मणि तृणकरि आच्छादी होती है, जब तृण दूर करियें, तब मणि प्रगट हो आती है, तैसे आत्मरूपी मणि वासनारूपी तृणकरि आच्छादी है, जब वासनारूपी तृण दूर करियें, तब आत्मरूपी मणि प्रगट हो आवै ॥ हे राजन्! जागृत स्वप्न सुषुप्तितें रहित जो आत्मपद है, जब तिसकों प्राप्त होवैगा, तब जाणैगा जो मैं मुक्त हौं, सो तेरा स्वरूप है, तिस पदविषे स्थित होहु, जो केवल आत्मरूप है, अरु अजन्मा है, नित्य है, अरु चेतनमात्र है, सर्वका अपणा आप है, तिसके प्रमादकरि दुःख होता है, जैसे बालक मृत्तिकाके खिलोने बनाते हैं, हस्ती घोडा नाम कल्पते हैं, अ

भिमान करते हैं,जो मेरे हैं, अरु तिनके नाश होणेकरि दुःखी होते हैं, तैसे अज्ञानी जो है, बालकरूप सो स्वरूप के प्रमादकरि अभिमान करता है,हय मेरे हैं,मैं इनका हौं,तिनके नाशहोणेकरि दुःखी होता है,ऐसे नहीं जाणता,जो सतका नाश नहीं होता,असतके नाश होणेकरि सतका नाश मानता है,जैसे घटके नाश होणेकरि घटाकाश नाश मानियें, तैसे मूर्खता करिके दुःख पावता है ॥ हे राजन्! तूं आपकों आत्मा जाण, अरु आत्मादिक संज्ञा भी शास्त्रोंने कल्पी हैं, जतावणेके निमित्त, नहीं तौ आत्मा निर्वाच्य पद है, जिसविषे वाणीकी गम नहीं,अरु इनहीकरि जाणता है,काहेतें जो मनवाणीविषे भी आत्मसत्ता है, तिसीकरि आत्मादिक संज्ञा सिद्ध होती हैं, जैसे जेते कछु स्वप्नके पदार्थ हैं, तिनविषे अनुभवसत्ता है, तिसीकरि पदार्थ सिद्ध होते हैं, तैसे जेति कछु अर्थसंज्ञा हैं, सो सब आत्माकरि सिद्ध होती है, ऐसा जो तेरा स्वरूप है, तिसविषे स्थित होहु, जो तेरे जरा मृतादिक दुःख नष्ट हो जावैं ॥ हे राजन्! जब निस्पंद होकरि देखैगा, तब स्पंदविषे भी उही भासैगा, स्पंद निस्पंद तुल्य होकरि भासैंगे, जो समाधिविषे होवैगा, अथवा ऐसेही चेष्टा करैगा, तौ भी तुल्य होवैगी, न समाधिविषे शांति भासैगी, न चेष्टाविषे दुःख भासैगा, दोनोंविषे एकरस रहैगा, विषमता कछु न भासैगी ॥ हे राजन्! जो कछु प्रकृत आचार आय प्राप्त होवे, देणां अथवा लेणां, यज्ञ दान आदिक क्रिया है, तिसकों मर्यादासहित अरु शास्त्रकी विधि संयुक्त करु, अरु निश्चय आत्मा स्वरूपविषे होवे, जैसे नट स्वांगकों धारि संपूर्ण चेष्टा करता है, अरु निश्चय तिसविषे नटत्वहीका राखता है, तैसे तुम सर्व चेष्टा करौ, तिसके अभिमान अरु संकल्पतें रहित होहु, ग्रहण अथवा त्याग जो कछु स्वाभाविक आए प्राप्त होवैं, तिसविषे ज्योंके त्यों रहौ, जब निर्विकल्प होकरि अपणे स्वरूपकों देखैगा, तब उत्थान कालविषे भी तेरे तांई आत्माही भासैगा, जैसे जलके जानणेतें तरंग फैन बुदबुदा सर्व जलही भासते हैं, तैसे जब तूं आत्माकों जाणैगा, तब तुझकों संसार भी आत्मरूप भासैगा, अरु जो आत्माकों नहीं जाणता

तिसकों जगतही दृष्ट आता है, तिसकरि दुःख पावता है, तातें तूं अंतर्मुख होहु, संकल्पकों त्यागिकरि परम निर्वाण अच्युत पदविषे स्थित होहु ॥ ॥ इति श्रीयोगवासिष्ठे निर्वाणप्रकरणे राजाइक्ष्वाकुप्रत्यक्षोपदेशो नाम षण्णवतितमः सर्गः॥९६॥ ॥ मनुरुवाच ॥ हे राजन्! यह जो संकल्प पुरुष है, सो संकल्प करिके आप बंधाता है, अरु आपहि मुक्त होता है, जब संकल्पकरि दृश्यकी भावना करता है, तब जन्ममृत्युकों पावता है, अरु दुःखी होता है, आपही संकल्प करता है, आपही बंधनकों प्राप्त होता है, जैसे घुराण कीट आपही गुंफा बनाती है, अरु आपही तिसकों मुंदीकरि फसती है, तैसे अपणे संकल्पकरि आपही दुःख पावता है, अरु जब संकल्पकों अंतर्मुख करता है, तब मुक्त होता है, अरु मुक्तिही मानता है, तातें हे राजन्! संकल्पकों त्यागिकरि आत्मा जो सर्वका अपणा आप है, तिसकी भावना करु, जो तूं सुखी होवे ॥ हे राजा! आत्माके प्रमादकरि देह आस्थाकी भावना हुई है, तिसकरि दुःख पावता है, तातें आत्मस्वरूपकी भावना करु, जो तूं आत्मा है, चिद्रूप है, महाआश्चर्यमाया है, जिसनें संसारकों मोही लिया है, आत्मा सर्वदा अनुभवरूप है, अरु अंग अंग व्यापी है, तिसकों नहीं जाणते यही आश्चर्य है ॥ हे राजन्! आत्मा सदा अनुभवरूप है, तिसविषे स्थित होहु, अरु संसार आत्माके प्रमादकरि फुरणेतें हुआ है, सो सत भी नहीं, अरु असत भी नहीं, जो आत्मातें भिन्न करि देखियें, तो मिथ्या है, तातें सत नहीं, अरु आत्माविना दूसरा है नहीं, सर्वात्मा है, तातें असत भी नहीं, तूं आत्माकी भावना करु, जो कछु पदार्थ भासते हैं, सो आत्मातें भिन्न न जाण, सर्वात्माही है, जो आत्माविना अवर भावना है, तिसका त्याग करु ॥ हे राजन्! जैसे जलविषे तरंग बुदबुदे होते हैं, सो जलतें इतर नहीं, जलही ऐसे भासता है, तैसे जगत जो दृष्ट आता है, सो आत्मा है, ऐसे भासता है, जैसे सूर्य अरु किरणांविषे भेद कछु नहीं, तैसे आत्मा अरु जगतविषे भेद नहीं, आत्माही जगतरूप है, अरु भिन्न भिन्न जो आकार भासतें हैं, सो चित्तशक्तिकरिके हैं, इतर नहीं,

आत्मसत्ता है, जैसे लोहा तप्त हुआ वस्त्रादिककों जलावता है, सो लोहेकी अपणी सत्ता नहीं, अग्निकी है, तैसे चेतनकी सत्ता जगतरूप होकरि स्थित भई है, अरु आत्मा सदा केवलरूप है, जिसविषे प्रकाश अरु तम दोनों नहीं, न सत है, न असत है, न कोउ देश है, न काल है, न कोउ पदार्थ है, केवल चेतन मात्र गुणातीत है, न कोउ गुण है, न माया है, केवल शांतरूप आत्मा है ॥ हे राजन्! न शास्त्रोंकरि पाइता, न गुरोंके वचनकरि पाइता है, न तपकरि पाइता है, केवल अपणे आपकरि जाण्या जाता है, शास्त्रादिक लखाय देते हैं, परंतु इदंकरि नहीं जणावते, जो द्रष्टा पुरुष अपणे आपकरि जाणीता है, जैसे सूर्यकी ज्योती नेत्रविषे है, सोई सूर्यकों देखती है, तैसे आत्माही आत्माकों देखता है, अंतर्मुख होकरि संकल्पतें रहित हुआ अपणे आपकों देखता है, जब संकल्प वहिर्मुख होता है, तब वही दृढ होकरि स्थित होता है, बहुरि तिसकी भावना होती है, जब संकल्परूप जगत दृढताकरि स्थित होता है, तब दुःखदायि होता है ॥ हे राजन्! अवर दुःखदायि तिसका कोउ नहीं, अपणेही संकल्पकरिके असम्यक्‌दर्शी दुःखी होता है, अरु सम्यक्‌दर्शीकों जगत दृष्ट भी आता है, तौभी दुःखदायि नहीं होता, जैसे जेवरीविषे सर्पकी भावना होती है, तब भयकों प्राप्त होता है, जब जेवरीके जानणेतें सर्पभावना दूर भई तब भय भी जाता रहता है, तैसे जिस पुरुषकों संसारकी भावना होती है, सो दुःखदायी है, तातें आत्माकी भावना करु जो तेरे सर्व दुःख नष्ट हो जावैं ॥ हे राजन्! तूं सर्वदा आनंदरूप है, अरु अद्वैत है, तेरेविषे कल्पना कोउ नहीं, तूं आत्मस्वरूप है, अरु आत्मा षट् विकारतें रहित है, विकार मिथ्या देहके हैं, आत्मा शुद्ध है, आत्माके प्रमादकरिके विकार भासते हैं, जब तूं आत्माकों जाणैगा, तब विकार कोउ न दृष्ट आवैगा, काहेतें जो आत्मा अद्वैत है ॥ ॥ राजोवाच ॥ हे भगवन्! तुम कहते हौ आत्मा अद्वैत है, जो इस प्रकार है तौ पर्वत आदिक विश्व कैसे भान होता है, पत्थररूप महाबडे आकार बनिके कहांतें उ

पजे हैं, इसका रूप क्या है, सो कृपा करिके कहौ ॥ मुनिरुवाच ॥ हे राजन्! आत्माविषे संसार कोउ नहीं, सदा शांतरूप है, अरु निराकार है, तिसविषे स्पंद निस्पंद दोनों शक्ति हैं, जब निस्पंदशक्ति होती है, तब केवल अद्वैत भासता है, जब स्पंदशक्ति फुरती है, तब जगतके नानाप्रकारके आकार भासते हैं, वास्तवतें आत्माही है, इतर कछु नहीं, जैसे समुद्रविषे तरंग कछु अवर नहीं, उहीरूप हैं, पवनके संयोगतें फुरते हैं, तौ भिन्न भिन्न दृष्ट आवते हैं, तैसे फुरणशक्तिकरि अहंकार भिन्न भिन्न भासते हैं, वास्तवतें आत्मस्वरूप है, इतर कछु नहीं, जैसे वटका बीज होता है, अरु तिसविषे पत्र टास फूल फल अनेक दृष्ट आते हैं, तैसे आत्मसत्ताके नानाप्रकारके आकार धारे यद्यपि दृष्ट आते हैं, तौ भी बन्या कछु नहीं, केवल आत्मा अद्वैत ज्यौंका त्यौं स्थित है, अरु सूक्ष्मतें भी अतिसूक्ष्म है, अरु पर्वत आदिक जो विश्व भासता है, सो आत्माका चमत्कार है, जैसे स्वप्नविषे पर्वत वृक्षादिक नानाप्रकारके आकार भान होते हैं, तौ भी अनुभवरूप हैं, तिसतें इतर कछु नहीं, तैसे जाग्रत विश्व भी आत्मा अनुभवरूप है, आत्मातें इतर कछु नहीं ॥ इक्ष्वाकुरुवाच ॥ हे भगवन्! जो आत्मा सूक्ष्म है, तौ पर्वतादिक स्थूल असतरूप सत होकरि कैसे भासता है, सो कृपा करिके कहौ ॥ ॥ मुनिरुवाच ॥ हे राजन्! आत्मा अनंतशक्ति है, सो शक्ति आत्मातें भिन्न नहीं, उहीरूप है, जैसे सूर्यकी किरणां सूर्यतें भिन्न नहीं, तैसे आत्माकी शक्ति आत्मातें भिन्न नहीं, जैसे पवनविषे दो शक्ति हैं, स्पंद अरु निस्पंद सो उहीरूप हैं, स्पंदशक्तिकरि प्रगट भासता है, अरु निस्पंदकरि प्रगट नहीं भासता, तैसे आत्माविषे स्पंद निस्पंद दो शक्ति हैं, जब स्पंदशक्ति फुरती है तब अहंभाव भगट होता है, जब अहंभाव हुआ, तब चित्त उदय होता है, अहंही चित्त है, जब चित्त हुआ, तब आकाशकी भावनातें आकाश बणी जाता है, जब स्पर्शकी भावना हुई, तब पवन उत्पन्न होता है, जब रूपकी भावना करी, तब अग्नि बणी गई, जब रसकी भावना हुई तब जल उत्पन्न हुआ, इसी प्रकार चि

त्तकी कल्पनाकरि तत्त्व उपजे हैं, जब चारौं तत्त्वका समष्टि भया, तब एक अंड हुआ, जब दृढ संकल्प किया, तब स्वायंभु मनु हुआ, जब अंड फुले तब तीन लोक हुए, स्वर्ग मध्य अरु पाताल, सो तीनों लोक तीनों गुण राजस सात्विक तामस हुए, बहुरि पर्वत आदिक दृश्य पदार्थ सर्व हुए ॥ हे राजन्! केवल संकल्प मात्रही सब हुए हैं, जब स्पंदशक्ति फुरती है, तब इस प्रकार आत्माविषे भासते हैं, परंतु बण्या कछु नहीं, जैसे समुद्रविषे फेन बुदबुदे फुरते हैं, सो जलरूप हैं, जलतें इतर कछु नहीं, तैसे आत्मातें इतर कछु वस्तु नहीं, अरु आदिमनु जो स्वयंभु है, तिस संकल्पकरि आगे मन कल्पे हैं, त्रिगुणमय सृष्टि इस प्रकार उत्पन्न होती है, सो केवल संकल्पमात्र है, जबलग चित्त है, तबलग विश्व है, जब चित्त फुरणेतें रहित हुआ, तब निस्पंदशक्ति होती है, जब निस्पंद हुई, तब बहुरि जगत नहीं देखाय देता ॥ हे राजन्! इह विश्व मनके फुरणे विषे है, अरु सत्यकी नांई स्थित हुई है, सो श्रवण करु, सत जो है, सर्व देश सर्व काल सर्व वस्तु पाइता है, सो नहीं भासता, अरु जो असत है, सो सत्यकी नांई भासता है, सत कैसे असतकी नांई हुआ है, अरु असत कैसे सतकी नांई हुआ है सो सुणु, सत जो है, सर्व देश, सर्व काल सर्व वस्तु पाइता है, सो नहीं भासता अरु असत जो है, परिच्छिन्नरूप देश काल वस्तु परिच्छेदसंयुक्त है, सो सतकी नांई हुआ है, जहां देखियें तहां दृश्यही गुणमय संसारभान होता है, महाआश्चर्यरूप माया है, जिसनें सत्यकों असत्यकी नांई किया है, अरु असतकों सतकी नांई स्थित किया है, सो चित्तके संबंधकरि संसार भासता है, आत्माविषे संसार कोउ नहीं, जब चित्तकों स्थित करि देखैगा, तब तेरे तांई संसार न भासैगा, जैसे गंभीर जल होता है, तौ चलता नहीं भासता जो कहां जाता है, तैसे गंभीर जो आत्मा है, तिसविषे संसार नहीं जाणता, जो कहां फुरता है, अरु संसार भी आत्मातें भिन्न कछु वस्तु नहीं, आत्मास्वरूपही है, जैसे अग्निके चिणगारे अग्नितें भिन्न नहीं, अरु जलके तरंग जलतें भिन्न नहीं, अरु मणिका प्रकाश मणितें भिन्न नहीं, तैसे आत्मातें संसार भिन्न नहीं,

केवल आत्मस्वरूप है, ऐसे आत्माकों जाणिकरि शांतिवान होहु जो तेरे दुःख नष्ट हो जावैं, केवल शांत पद आत्मा है, सो तेरा अपणा आप है, अपणे स्वरूपकों भूलिके दुःखी हुआ है, जब आत्माकों जाणैगा तब संसार भी आत्मस्वरूप भासैगा, काहेतें जो आत्मस्वरूप है,आत्मातें इतर वस्तु कछु नहीं, ऐसा आत्मा तेरा स्वरूप है, तिसविषे स्थित होहु ॥ हे राजन्! यह सर्व जगत चिदाकाशरूप है, यही भावना दृढ करु, ऐसी भावना जिसकी दृढ है, अरु सब इच्छा शांत हो गई हैं, तिस पुरुषकों दुःख कोउ नहीं लगता, उसने निरिच्छारूपी कवच पहिऱ्या है ॥ हे राजन्! अहं अर्थतें रहित जो पुरुष है, सर्व जिसकों शून्य हो गया है, निरालंबका आसरा किया है, सो पुरुष मुक्तिरूप है ॥ ॥ इति श्रीयोगवासिष्ठे निर्वाणप्रकरणे मनुइक्ष्वाकुआख्याने सर्वब्रह्मप्रतिपादनं नाम सप्तनवतितमः सर्गः ॥ ९७ ॥ ॥ ॥ मनुरुवाच ॥ हे राजा! यह संसार आत्मातें भिन्न कछु वस्तु नहीं, जैसे जल अरु तरंग भिन्न नहीं, जैसे सूर्य अरु किरण भिन्न नहीं, जैसे अग्नि अरु चिणगारे भिन्न नहीं, तैसे आत्मा अरु संसार भिन्न नहीं, आत्मस्वरूपही है, जैसे इंद्रियांके विषय इंद्रियांविषे रहते हैं, तैसे आत्माविषे संसार है, जैसे पवनविषे स्पंद निस्पंदशक्ति हैं, सो पवनतें भिन्न नहीं, तैसे आत्मातें भिन्न नहीं, आत्मस्वरूप है ॥ हे राजन्! विषयकी सत्यताकों त्यागिकरि केवल आत्माकी भावना करु, जो तेरे संशय मिटि जावैं, तूं आत्मस्वरूप है, अरु निर्गुण है, तुझकों गुणोंका स्पर्श नहीं होता, तूं सर्वतें पर है, जैसे आकाशविषे धूड अरु धुवा अरु मेघ बादल विकार भासते हैं, आकाशकों लेप कछु नहीं करते, केवल आकाश अद्वैतरूप है, तैसे ज्ञानवान पुरुष जिसकों आत्मज्ञान भया है, तिसकों सुख दुःख राजस तामस सात्त्विक गुण लेप नहीं करते, तिनविषे दृष्टि भी आते हैं, लोक दृश्य करि तौ भी अपणेविषे नहीं देखते, जैसे समुद्रविषे अनेक तरंग जलरूप होते हैं, जैसे शुद्ध मणिविषे नील पीत आदिक प्रतिबिंब पडते हैं, सो देखणेमात्र हैं, मणिकों स्पर्श नहीं करते, तैसे जिस पुरुषके हृदयतें

वासना मल दूर भई है, तिसके शरीरकों संबंधकरिके राजस सात्विक तामस गुणोंके कार्य सुख दुःख दे खणे मात्र होते हैं, परंतु स्पर्श नहीं करते, केवल सत्तासमान पदका निश्चय तिसविषे होता है, अवर रंग उसकों स्पर्श नहीं करता, जैसे आकाशकों धूडाका लेप नहीं होता, तैसे आत्माकों गुणोंका संबंध नहीं होता, जो पुरुष ऐसे जाणता है, तिसकों ज्ञानी कहते हैं, जब निस्पंद होता है, तब आत्मा होता है, जब स्पंद होता है, तब संसारी होता है, जब चित्त फुरता है तब अनेक सृष्टि भासतियां हैं, जब चित्त फुरनेतें रहित हुआ, तब संसारका अत्यंत अभाव होता है, प्रध्वंसाभाव भी नहीं भासता, जो पूर्व सृष्टि थी, अब लीन हो गई है, संसार भी केवल आत्मरूप हो जाता है, तातें हे राजा ! वासनाकों त्याग, चित्तकों स्थिर करु, यह वासनाही मल है, जब वासनाका त्याग हुआ, तब केवल आकाशकी नांई आपकों स्वच्छ जा णैगा, सो आत्मा वाणीका विषय नहीं, केवल आत्मत्वमात्र है, अरु अपणे आपविषे स्थित है, सर्वदा उ दयरूप है, अरु विश्व भी आत्माका चमत्कार है, भिन्न वस्तु कछु नहीं, जैसे जलतें तरंग भिन्न नहीं, तैसे आत्मातें विश्व भिन्न नहीं, आत्मरूप है, द्रष्टा दर्शन दृश्य जो त्रिपुटी है, सो अज्ञान करिके भासती है, आत्मा सर्वदा एकरूप है, अरु त्रिपुटीतें रहित है, फुरणे करिके आत्माही त्रिपुटीरूप होकरि स्थित हुआ है, जैसे स्वप्नविषे एक अनुभवरूप होता है, अरु चेतनता करिके काल विषमतारूप हो भासता है, सो दू सरी वस्तु कोउ नहीं, तैसे आत्माही त्रिपुटीरूप भासता है, तातें चित्तकों स्थिर करि देख, आत्मातें भिन्न कछु वस्तु नहीं, अरु फुरणेविषे संसार है, जब फुरणा मिटि गया, तब संसार भी मिटि जाता है, सो फुर णा कैसे मिटता है, अरु स्वरूपकी प्राप्ति कैसे होती है सो श्रवण करु, सप्त भूमिका कहता हौं, जब प्रथम जिज्ञासु होता है, तब चाहता है, जो संतजनका संग करणा, अरु ब्रह्मविद्या शास्त्रकों देखणा अरु श्रवण कर णा सो प्रथम भूमिका है, भूमिका कहिये चित्तके ठहरावणेकी ठौर, बहुरि जब संतोंके संग अरु शास्त्रोंक

रि बुद्धि बढी, तब संतों अरु शास्त्रोंके कहणेकों विचारत भया, जो मैं कवन हौं, अरु संसार क्या है, सो यह दूसरी भूमिका है; तिसके उपरांत विचाऱ्या जो मैं आत्मा हौं, अरु संसार मिथ्या है, मेरेविषे संसार कोउ नहीं, ऐसी भावना वारंवार करणी सो तीसरी भूमिका है; जब आत्मभावकी दृढतातें आत्माका साक्षात्कार हुआ, तब वासना संपूर्ण मिटि जाती है, जब स्वरूपतें उतरिकरि देखता है, तब संसार भासता है, परंतु स्वप्नकी नांई जाणता है, तातें वासना नहीं फुरती, ऐसे जो अवलोकन है, सो चतुर्थ भूमिका है; जब अवलोक हुआ, तब आनंद प्रगट होता है, ऐसे महाआनंदका प्रगट होणां सो पंचम भूमिका है; अरु जब आनंद प्रगट हुआ, अरु तिसविषे स्थित होणा, अपणे बलतें सुषुप्तवत् इसका नाम पंचम भूमिका है; अरु तुरीयापद छठी भूमिका है; चित्तके दृढताका नाम तुरीया है, जब तुरीयातीत पदकों प्राप्त होता है, तब परम निर्वाण होता है, तिसकों सप्तम भूमिका कहते हैं; तिस परम निर्वाण पदकी जीवन्मुक्तिकों गम नहीं, काहेतें जो तुरीयातीत पद है, तिसकों वाणीकरि कहि नहीं सकता, प्रथम तीन भूमिका जो कही हैं सो जाग्रत अवस्था है, तिसविषे श्रवण मनन निजध्यासन करता है, अरु संसारकी सत्ता भी दूर नहीं होती, इसीतें जाग्रत अवस्था कही है; अरु चतुर्थ भूमिका स्वप्नवत् है, संसारकी सत्ता नहीं होती, अरु पंचम भूमिका सुषुप्ति अवस्था है; काहेतें जो आनंदघनविषे स्थित होता है, अरु छठी भूमिका तुरीया पद है, जो जाग्रत स्वप्न सुषुप्ति तीनोंका साक्षी है, केवल ब्रह्मही प्रकाशता है, अरु निर्वाण पदविषे चित्तका लय होजाता है, सो तुरीया पदविषे जीवन्मुक्त विचरते हैं, अरु सप्तम भूमिका तुरीयातीत पद है, सो परमनिर्वाण पद है, तुरीयाविषे ब्रह्माकारवृत्ति रहती है, अरु ब्रह्माकारवृत्ति भी लीन हो जाती है, जहां वाणीकी गम नहीं, तहां चित्त नष्ट हो जाता है, केवल आत्मत्त्व मात्र है, चेतनका मात्र तहां अपणा अहंभाव होणा भी नहीं, शांत अरु परम निर्वाण ऐसा जो निर्वाण है,

सो तेरा स्वरूप है, सर्व विश्व उहीरूप है, इतर कछु नहीं, जैसे स्वर्णही भूषण है, अरु स्वर्णविषे भूषण कल्पता है, अरु भूषण भी परिणामकरि होता है, आत्मा सदा अच्युतरूप है, कदाचित् परिणामकों नहीं प्राप्त भया, केवल एकरस है, तिसविषे चित्त फुरणेतें विश्व कल्पी है, विकारसंयुक्त भासता है, तौ भी आत्मातें इतर कछु नहीं, केवल अपणे आपविषे स्थित है ॥ हे राजा! ऐसा आत्मा तेरा स्वरूप है, तिसविषे स्थित होकरि अपणे प्रकृत आचारविषे निरहंकार हुआ विचरु, अरु अहंकारके त्यागका अभिमान भी त्यागकरि केवल आत्मरूप हो रहु ॥ इति श्रीयोगवासिष्ठे निर्वाणप्रकरणे परमनिर्वाणवर्णनं नाम अष्टनवतितमः सर्गः ॥९८॥ ॥ ॥ मनुरुवाच ॥ हे राजन्! सर्व चिदाकाशसत्ता आदिमध्य अंततें रहित अनाभास ज्यौंका त्यौं स्थित है, अरु आगे भी उही स्थित रहैगा, तिसविषे न ऊर्ध्व है, न अध है, न तम है, न प्रकाश है, न तिसतें इतर है, सर्वकी सत्ता है, सो चिन्मात्र परम सार है, सो आपही संकल्पकरि चेतनता भया, तब जगत हुआ, अरु क्यौंकरि हुआ, क्या रूप है सो श्रवण कर ॥ हे राजन्! यह विश्व आत्मातें भिन्न कछु नहीं, आत्मस्वरूपही है, जैसे जलविषे तरंग है अरु मिरचविषे तीक्ष्णता है, खांडविषे मधुरता है, अग्निविषे उष्णता है, अरु बरफविषे शीतलता है, सूर्यविषेप्रकाश है, तैसे आत्माविषे विश्व है, सो आत्मस्वरूप है, जैसे आकाशविषे शून्यता है, जैसे वायुविषे स्पंद है, तैसे आत्माविषे विश्व है, सो आत्मस्वरूप है, इतर कछु नहीं ॥ हे राजन्! जो आत्मस्वरूप है तौ शोक अरु मोह किसका करता है, अभिमानतें रहित होकरि विचरु, जैसे नीतिका प्रवाह आनि प्राप्त होवै तिसविषे विचर, जैसे काष्ठकी पुतली यंत्रीके तागेकरि अनिच्छित चेष्टा करती है, तैसे नीतिरूपी तागेसों अभिमानतें रहित होकरि विचरु, जो न मैं कछु करता हौं, न करावता हौं, किसीविषे रागदोष न करणा, जैसे शिला ऊपरमूर्त्ति लिखी होती है, तिसीकों न किसका राग है, न दोष है, तैसे शिलाकी मूर्त्तिकी नांई विचरु, आत्मातेंइतर कछु फुरै नहीं, ऐसा निरहंकार हो

हु, भावै व्यवहारी गृहस्थ होहु, भावै संन्यासी होहु, भावै देहधारी, भावै देहत्यागी होहु, भावै विक्षेपी होहु, भावै ध्यानी होहु, तेरे ताईं दुःख कोउ न होवैगा; ज्यौंका त्यौंही रहैगा, फुरणाही संसार है, फुरणेतें रहित असंसार है, जब फुरता है, तब संसारी होता है, जब फुरणा मिटि जावै, तब केवल आकाशरूप भासता है ॥ हे राजन्! यह जगत सब आत्मरूप है, आत्माही अपणे आपविषे स्थित है, जो सर्वात्माही है तौ शोक अरु मोह किसका करिये ॥ हे राजन्! आत्मा सर्वदा एकरस है, अरु विश्व आत्माका चमत्कार है, अरु नाना विकार जन्ममरणतें आदि जो भासते हैं, सो आत्माके अज्ञान करिके भासते हैं, जब आत्माका ज्ञान हुआ, तब आत्मरूपही एकरस विषमता कछु न भासैगी, जैसे जलके न जानणेकरि तरंग बुदबुदेका ज्ञान होता है, जब जलकों जाण्या, तब तरंग बुदबुदेकी विषमता कछु नहीं, सर्व जलरूप है, तैसे आत्माके अज्ञानकरि विकार भासते हैं, जब आत्माका ज्ञान हुआ, तब एकरस सर्वात्माही भासता है, अरु संवेदन करिके आकार भासते हैं, संवेदन कहिये अहंकारवासनाका संबंध, अहंकार चित्त दोनो पर्याय हैं ॥ हे राजन्! अहंकारसाथ इसका होणा दुःखदायी है, केवल चिन्मात्रविषे अहंभाव मिथ्या है, जबलग संवेदन दृश्यकी उर फुरती है, तबलग दृश्यका अंत नहीं आता, अरु नानाप्रकारके विकार भासते हैं, जब संवेदन आत्मा अधिष्ठानकी उर आवती है, तब आत्मा शुद्ध अपणा आप होकरि भासता है, अरु संवेदन भी आत्माका आभास कल्पित है, आभासके आश्रय विश्व कल्पी है, अरु आत्मा ज्यौंका त्यौं है, फुरणेविषे भी अफुरणेविषे भी परंतु फुरणेविषे विषमता भासती है, अफुरणेविषे ज्यौंका त्यौं भासता है, जैसे जेवरीके अज्ञानकरि सर्प भासता है, जब जेवरीका ज्ञान भया, तब सर्पकी विषमता जाती रहती है, ज्यौंकी त्यौं जेवरी भासती है, सो सर्प भासणेकालविषे भी जेवरी ज्यौंकी त्यौं थी, जेवरीविषे कछु हुआ नहीं, जाणे न जानणेविषे एक समान है, तैसे आत्मा भी फुरणेकालविषे जगत भासता है, फुरणेके निवृत्त हुए

आत्माही भासता है, आत्मा दोनों कालविषे एक समान है, जैसे सूर्यकी किरणां सूर्यतें भिन्न नहीं; अरु अग्नितें उष्णता भिन्न नहीं, तैसे आत्मातें विश्व भिन्न नहीं, आत्माही स्वरूप है ॥ हे राजन्! अहंकारकों त्यागिकरि सत्ता समान अपणे स्वरूपविषे स्थित होहु, तब तेरे सर्व दुःख निवृत्त होजावैं, एक कवच तेरे तांई कहता हौं, तिसकों धारिकरि विचरु, यद्यपि अनेक शस्त्रोंकी वर्षा होवै, तौ भी छेदकों न प्राप्त होवै, सो श्रवण करु, जो कछु देखता सुणता है, सो सर्व ब्रह्म जाण, वारंवार यही भावना करु, जो ब्रह्मतें इतर कछु न भासै, जब ऐसी भावना दृढ करही, तब शस्त्र कोउ छेदी न शकैगा, इह ब्रह्मभावनाही कवच है, जब इसकों तूं धारैगा, तब सुखी होवैगा ॥ ॥ वाल्मीक उवाच ॥ इस प्रकार वसिष्ठजीनें रामजीकों मनु अरु इक्ष्वाकुका संवाद सुणाया, तब सायंकाल हुआ, सूर्य अस्त भया, अरु संपूर्ण सभा स्नानकों उठी, वसिष्ठजी भी उठे, बहुरि सूर्यकी किरणांसाथ आय प्राप्त भये ॥ ॥ इति श्रीयोगवासिष्ठे निर्वाणप्रकरणे मोक्षरूपवर्णनं नाम नवनवतितमः सर्गः ॥ ९९ ॥ ॥ ॥ ॥

॥ मनुरुवाच ॥ हे राजन्! जिसका कारणही मिथ्या है, तौ तिसका कार्य कैसे सत होवै, यह आभास जो संवेदन है सो विश्वका कारण है, जो आभास मिथ्या है, तौ विश्व कैसे सत्य होवै, जो विश्वही असत है, तौ भय किसका करता है, अरु शोक किसका करता है, हे राजन्! न कोउ जन्मता है, न कोउ मरता है, न सुख है, न दुःख है; ज्योंका त्यौं आत्मा स्थित है, तिसविषे संवेदन विश्व कल्पी है, तातें संवेदनका त्याग करु, जो न मैं हौं, न यह है, जब तेरे तांई ऐसा निश्चय दृढ होवैगा, तब पाछे आत्माही शेष रहैगा, अरु अहंकार निवृत्त हो जावैगा, काहेतें जो आत्माके अज्ञानतें हुआ है, आत्मज्ञानतें नष्ट हो जाता है ॥ हे राजन्! जो वस्तु भ्रम करिके सिद्ध होवै, अरु सत दृष्ट आवै, तिसकों विचारियें, जो विचार कियेतें रहै, तौ सत्य जाणियें, अरु आत्मा जाणियें; अरु जो विचार कियेतें नष्ट हो जावै, तिसकों मिथ्या जाणियें, जैसे हीरा भी श्वेत

है, अरु बरफका मणका भी श्वेत होता है, एक समान दोनों भासते हैं, तिनकी परीक्षाके किये सूर्यके सन्मुख दोंनो राखियें जो धूपकरि गलि जावै सो झूठा जाणियें, अरु ज्यौंका त्यौं रहै, तिसकों सत जाणियें, तैसे विचाररूपी सूर्यके सन्मुख करियें तौ अहंकार बरफकी नांई नष्ट हो जाता है, काहेतें जो अहंकार अनात्म अभिमानविषे होता है, सो तुच्छ है, सर्वव्यापी नहीं, अरु इंद्रियांकी क्रिया अपणेविषे मानता है, जो परधर्म अपणेविषे कल्पता है, सो तुच्छ है, अरु आपकों भिन्न जाणता है, आपतें अवर पदार्थ भिन्न जाणता है, तातें विचार कियेतें बरफके हीरेकी नांई मिथ्या होता है, अविचार सिद्ध है, जब विचार किया, तब नष्ट हो जाता है, अरु आत्मा सर्वका साक्षी ज्यौंका त्यौं रहता है, अहंकारका भी अरु इंद्रियांका भी साक्षी है, अरु सर्वव्यापी है ॥ हे राजा! जो सत वस्तु है, तिसकी भावना करु, अरु सम्यक्दर्शी होहु, सम्यक्दर्शीकों दुःख कोउ नहीं, जैसे जेवरी मार्गविषे पडी है, तिसकों जेवरी जाणियें तौ दुःख कोउ नहीं, अरु जो सर्प जाणियें तौ भयमान होता है, तातें सम्यक्दर्शी होहु, असम्यक्दर्शी मत होहु ॥ हे राजन्! जो कछु दृश्य पदार्थ हैं, सो सुखदायी नहीं, दुःखदायी हैं, जबलग इनका संयोग है, तबलग सुख भासता है, जब वियोग हुआ, तब दुःखकों प्राप्त करते हैं, तातें तूं उदासीन होहु, किन दृश्य पदार्थकों सुखदायी न जाण, अरु दुःखदायी भी न जाण, सुख अरु दुःख दोनों मिथ्या हैं, इनविषे आस्था मत करु, अहंकारतें रहित जो तेरा स्वरूप है, तिसविषे स्थित होहु, जब अहंकार नष्ट होवैगा, तब आपकों जन्म मरण विकारोंतें रहित आत्मा जाणैगा, जो मैं निरहंकार हौं, अरु ब्रह्म हौं, चिन्मात्र हौं, ऐसे अहंभावतें रहित होणा, अपणा होणा भी न रहैगा, केवल चिन्मात्र रहैगा, आनंदरूप होवैगा, अरु शांतरूप रागदोषके क्षोभतें रहित होवैगा, जब ऐसा आपकों जाण्या, तब शोक किसका करैगा ॥ हे राजा! इस दृश्यकों त्यागिकरि अपणे स्वरूपविषे स्थित होहु, अरु इस मेरे उपदेशकों विचार; जो मैं सत्य कहता हौं,

अथवा असत्य कहता हौं, अरु विचारेतें जो संसार सत्य होवै तौ संसारकी भावना करु, अरु जो आत्मा सत्य होवै, तौ आत्माकी भावना करु॥ हे राजन्! तूं सम्यक्दर्शी होहु, सतकों सत जाण, अरु असतकों असत जाण, अरु जो असम्यक्दर्शी है, सो सतकों असत्य मानता है, अरु असत्यकों सत्य मानता है, असत वस्तु तौ स्थिर नहीं रहती, ऐसे न जानणेकरि अज्ञानी दुःख पावता है, जैसे कोउ पुरुष कुटीकों रचीकरि चितवणे लगा, जो आकाशकी मैं रक्षा करी है, जब कुटी नष्ट भई तब शोक करता है, जो आकाश नष्ट हो गया, काहेतें जो आकाशकों कुटीके आश्रय जानता था, तैसे अज्ञानी पुरुष आत्माकों देहके आश्रय जाणीकरि देहके नष्ट हुए आत्माका नाश मानता है, अरु दुःखी होता है, जैसे स्वर्णविषे भूषण कल्पित हैं, सो भूषणोंके नष्ट हुए मूर्ख स्वर्णकों नष्ट मानता है, तैसे अज्ञानी देहके नष्ट हुए, आपकों नष्ट जानता है, अरु जिसकों स्वर्णका ज्ञान है, सो भूषणोंके नाशतें भी स्वर्णकों देखता है, अरु भूषणसंज्ञा कल्पित जानता है, तैसे जो ज्ञानवान है सो आत्माकों अविनाशी जानता है, अरु देह इंद्रियांकों असत जानता है॥ हे राजन्! तूं देह इंद्रियांके अभिमानतें रहित होहु, जब अभिमानतें रहित इंद्रियांकी चेष्टा करैगा, तब शुभ अशुभ क्रिया बांधि न सकैगी, अरु जो अभिमानसहित करैगा, तब शुभ अशुभ फलकों भोगैगा॥ हे राजन्! जो मूर्ख अज्ञानी है, सो ऐसी क्रियाका आरंभ करता है, जिसका कल्पपर्यंत नाश न होवै, अरु देह इंद्रियांके अभिमानका प्रतिबिंब आपविषे मानते हैं, मैं कर्त्ता हौं, मैं भोक्ता हौं, ऐसे माननेकरि अनेक जन्म पावते हैं, तिनके कर्मोंका नाश नहीं कब होता, अरु जो तत्त्ववेत्ता ज्ञानवान पुरुष है, सो आपकों देह इंद्रियां गुणतें रहित जानते हैं, तिनके कर्म संचित अरु क्रियमाण नष्ट हो जाते हैं, संचित कर्म वृक्षकी नांई हैं, अरु क्रियमाण फूलफलकी नांई हैं, जैसे रुईसों लपेटीकरि अग्निकों लगायेतें वृक्ष फूल फल सूके तृणवत् दग्ध होते हैं, तैसे ज्ञानरूपी अग्निकरि संचित अरु क्रियमाण

कर्म दग्ध हो जाते हैं, तातें हे राजा! जो कछु चेष्टा फुरणे वासनातें रहित होकरि करैगा, तिसविषे बंधन कोउ नहीं, जैसे बालकके अंग स्वाभाविक भली बुरी प्रकार हिलते हैं, परंतु उसके हृदयविषे अभिमान फुरता नहीं, तातें उसकों बंधन नहीं करता, तैसे तूं भी इच्छातें रहित होकरि चेष्टा करु; तब तेरे तांई बंधन कोउ न होवैगा, यद्यपि सब चेष्टा तेरेविषे भासैंगी तौ भी वासनातें रहित होवैगा, बहुरि अवर जन्म न पावैगा, जैसे भूना बीज देखणेमात्र होता है, अरु उगता नहीं, तैसे तेरेविषे सर्व क्रिया दृष्ट आवैंगी परंतु जन्मका कारण न होवैगा, पुण्य क्रियाका फल सुख न भोगैगा, अरु पाप क्रियाकरि दुःख न भोगैगा, तेरे तांई पापपुण्यका स्पर्श न होवैगा, जैसे जलविषे कमल स्थित होता है, अरु जल तिसकों स्पर्श नहीं करता, तैसे पापपुण्यका स्पर्श तेरे तांई न होवैगा तातें अभिलाषतें रहित होकरि जो कछु अपणा प्रकृत आचार है, सो करु ॥ हे राजा! जैसे आकाशविषे जलसाथ पूर्ण मेघ भासते हैं, परंतु आकाशकों लेप नहीं करते, तैसे तुझकों कोउ क्रिया बंधन न करैगी, जैसे जो विषके खाणेवाला है, तिसकों विष नहीं मारि सकता, तैसे ज्ञानीकों क्रिया नहीं बांधि सकती, ज्ञानवान क्रिया करणेविषे भी आपकों अकर्त्ता जानता है, अरु अज्ञानी न करणेविषे भी अभिमानकरि कर्त्ता होता है, जो देह इंद्रियांके न करते आपकों कर्त्ता मानता है, अरु जो देह इंद्रियांकरि करता है, तिसके अभिमानतें रहित है, सो करणेविषे भी अकर्त्ता है, अरु जो पुरुष कर्मतें इंद्रियांका संयम करि बैठता है, अरु मनविषे विषयके भोगकी तृष्णा राखता है, अंतःकरण जिसका रागदोषकरि मूढ है, बडी क्रियाकों उठावता है, अरु दुःखी होता है, सो मिथ्याचारी है, जो पुरुष मनकरि इंद्रियांके रागदोषतें रहित है, अरु कर्म इंद्रियांकरि चेष्टा करता है, सो विशेष है, अपणे जाणेविषे कछु नहीं करता, मोक्षकों पावता है ॥ हे राजा! अज्ञानरूप वासनातें रहित होकरि विचरु; ऐसे होकरि विचरैगा, तब आपकों ज्यौंका त्यौं आत्मा जाणैगा, अरु सदा उदयरूप सर्वका प्रकाशक

आपकों जाणैगा, जन्ममरण बंध मुक्त विकारतें रहित ज्यौंका त्यौं आत्मा भासैगा ॥ हे राजन्! तिस पदकों पायकरि शांतिवान होवैगा, अरु अवर सर्व कला अभ्यास विशेषविना नष्ट होती है, जैसे रसविना वृक्ष होता है, यद्यपि फेलाववाला होता है, तौ भी उगता नहीं, अरु ज्ञानकला अभ्यासविना नहीं उपजती है, उपजी हुई नाश नहीं होती, जैसे धान बोते हैं अरु दिन दिन प्रति बढणे लगते हैं, तैसे ज्ञानकला प्राप्त हुई दिन दिन प्रति बढती है ॥ हे राजन्! ज्ञान उपजे हुए ऐसे जाणता है, जो मैं न मरता हौं, न जन्मता हौं, निरहंकार निष्किंचनरूप हौं, सर्वका प्रकाशक हौं, अजर हौं, अमर हौं ॥ हे राजा! ऐसी ज्ञानकलाकों पायकरि मोहकों नहीं प्राप्त होता, जैसे दूधतें दही हुआ बहुरि दूध नहीं होता, तैसे ज्ञान प्राप्त हुए मोहकों नहीं प्राप्त होता, जैसे दूधकों मथीकरि घृत काढि लिया, बहुरि नहीं मिलता, तैसे जिसकों ज्ञानकला उदय हुए बहुरि मोहका स्पर्श नहीं होता ॥ हे राजन्! पुरुष प्रयत्न यही है, जो अपणे स्वरूपविषे स्थित होणा, अरु अवर उपायका त्याग करणा, जिस पुरुषकों आत्माकी भावना हुई है, सो संसारसमुद्रके पारकों प्राप्त भया है, अरु जिसकों संसारकी भावना है सो संसारी जरा मृत्यु दुःखकों प्राप्त होता है ॥ ॥ इति श्रीयोगवासिष्ठे निर्वा० परमार्थोपदेशो नाम शततमः सर्गः ॥ १०० ॥

॥ मनुरुवाच ॥ हे राजन्! बडा आश्चर्य है, जो शुद्ध आत्मा चिन्मात्रविषे माया करिके नानाप्रकारके देह इंद्रियां दृश्य भासी आई हैं ॥ हे राजा! दृश्यका कारण अज्ञान है, जिस आत्माके अज्ञानकरि दृश्य भासती है, तिसीके ज्ञानकरि लीन होजाता है, तातें इस संवेदनकों त्यागिकरि आत्माकी भावना करु, यह मैं हौं, यह मेरे हैं, सो मिथ्याही फुरते हैं ॥ हे राजन्! प्रथम जो कारणरूपतें एक जीव उपजा है, तिस आदि जीवतें अनेक जीवगण होत भये हैं, जैसे अग्निके चिणगारे निकसते हैं, तैसे तिस जीवनें आगे अनेकरूप धारे हैं, कोउ गंधर्व, कोउ विद्याधर, कोउ मनुष्य, कोउ राक्षस इत्यादिक बहुरि जैसे जैसे संकल्प होते गये हैं, तैसे रूप होते गये, वास्तवतें क्या है, जे

से जलविषे तरंग स्वरूपके प्रमादकरि अनेक भावकों प्राप्त होते हैं, अपणे संकल्प आपहीकों बंधनरूप होते गये हैं,तातें संकल्प नानात्व कलना मिथ्या है॥ हे राजन्! इस भावनाकों त्यागिकरि आत्मपदकी शरणकों प्राप्त होहु,जो आत्मा अनंत है,कोउ विश्व भान अवर प्रकारकी होती है,जैसे समुद्र सम है,तिसविषे कोउ आवर्त उठते हैं, कोउ बुदबुदे उठते हैं, सो जलतें भिन्न नहीं, तैसे आत्माविषे अनेक प्रकारकी विश्व फुरती है,सो आत्मातें भिन्न कछु नहीं,आत्मस्वरूपही है,तातें आत्माकी भावना करु, कहूं ब्रह्म सत संकल्प होकरि फुरता है,तहां जानता है,मैं ब्रह्म हौं,अरु शुद्ध रूप हौं,सदा मुक्तरूप हौं, मैं इस संसारसमुद्रके पारकों प्राप्त भया हौं,अरु जहां चेतनताशक्ति है, तहां आपकों जीवता मानता है, अरु दुःखी भी जानता है, सो जीवका लक्षण श्रवण करु, अंतःकरणसाथ मिलिकरि भोगकी वासना करणी, अरु सदा विषयकी तृष्णा करणी,सो जीवात्मा कहियें,अरु जहां वासना क्षय हुई है,अरु शुद्ध आत्माविषे आत्मप्रत्यय है, तहां जीवसंज्ञा नष्ट होजाती है,केवल शुद्ध आत्मा प्रकाशता है॥हे राजन्! जब चेतन अंतःकरणसाथ मिलिकरि बहिर्मुख फुरता है,तब संसारी हुआ जरा मरण करिके दुःखी होता है,जहां चेतनशक्ति अंतर्मुख होती है,तब जन्ममरणकी भावनाकों त्यागिकरि स्वरूपकी भावना करता है, सर्व दुःखकी निवृत्ति होती है, जब इसकी भावना स्वरूपकी उर लगती है, तब दुःख कोउ नहीं रहता, जब स्वरूपका प्रमाद भया, तब दुःख पावता है, जब स्वरूपका ज्ञान हुआ,तब आनंदरूप मुक्त होता है॥हे राजन्! संसाररूपी कूपकी टिंड नहीं होणा, जब टिंड रसीसाथ बांधिता है, कबहूं ऊर्ध्वकों जाता है,कबहूं अधकों जाता है,जब रसी टूटि पडती है,तब न उर्ध्वकों जाता है,न अधकों जाता है, दुःख पावता है,सो कूप क्या है,अरु अध क्या है,ऊर्ध्व क्या है,सो श्रवण करु॥ हे राजन्! संसाररूपी कूप है,स्वर्गलोक ऊर्ध्व अरु पाताल नरक अध है,पुण्यकर्मकरि स्वर्गकों जाता है,पापकर्मकरि नरककों जाता है,सो आशारूपी रसडीसाथ बांध्या हुआ जन्ममरणरूपी चक्रविषे फिरता है, स्वर्गनरकके फेरणेका कारण आशा है, जब

आशा निवृत्त होती है,तब न कोउ नरक है, न स्वर्ग है, जबलग देहविषे अभिमान है, तबलग नीचतें नीच गतिकों प्राप्त होता है, जैसे पत्थरकी शिला समुद्रविषे डारियें, तौ नीचेतें नीचे चली जाती है, तैसे नीच स्थानोंकों देखिकरि देह अभिमानी नीचेकों चला जाता है,अरु जब इंद्रियादिकका अभिमान त्याग किया,तब जैसे क्षीरसमुद्रतें निकसीकरि चंद्रमा ऊर्ध्वतें ऊर्ध्वकों चला जाता है, तैसे ऊर्ध्वकों जाता है ॥ हे राजा ! जब आत्माकी भावना करैगा, तब आत्माही होवैगा, तातें आशारूपी फासीकों तोडीकरि शांत पदकों प्राप्त होहु, आत्मा चिंतामणिकी नांई है, जैसी भावना करियें, तैसी सिद्धि होवे, जब तूं आत्मभावना करैगा, तब संपूर्ण विश्व अपणेविषे देखैगा, जैसे पर्वत शिला पत्थर सर्व अपणेविषे देखता है, तैसे तूं सर्व आत्माविषे जाणैगा ॥ हे राजा ! जेती कछु दृष्टि हैं, सो सर्व आत्माके आश्रय हैं, शास्त्र अरु शास्त्रदृष्टि सब आत्माके आश्रय हैं, राजा आत्माके आश्रय हैं, सो सर्व सत्य है, आत्मा चिंतामणि कल्पवृक्ष है, जैसी कोउ भावना करता है, तैसी सिद्धि होती है ॥ हे राजन् ! फुरणेविषे यह दृष्टि सर्व सत्य है, जब फुरणां नष्ट भया, तब न कोउ शास्त्र है, न कोउ दृष्टि है, केवल अद्वैत आत्मा है, तब निषेध किसका करियें, अरु अंगीकार किसका करियें, जो पुरुष अहंकारतें रहित हुआ है, सो सर्व शास्त्रदृष्टिऊपर विराजता है, सर्व आत्मा होता है, जैन उसीकों जिन कहते हैं, कालवाले उसीकों काल कहते हैं, सर्वका आश्रय आत्मा है, जो पुरुष देह अभिमानी है, सो मूर्ख है, स्वरूपके अज्ञानकरि अधऊर्ध्व लोककों गमन आगमन करता है, अरु पशु पक्षी स्थावर जंगम योनिकों पावता है, अरु आशारूपी फांसीसाथ बांध्या हुआ दुःखकों प्राप्त होता है, अरु जो पुरुष सम्यक्दर्शी है, शुद्ध चेष्टा जिसकी है, तिसकों विकार कोउ दृष्ट न आता है, आकाशकी नांई सदा निर्मल भासता है, अरु संपूर्ण विश्व तिसकों आत्मस्वरूप भासता है, अरु जेती कछु चेष्टा ब्रह्मा विष्णु इंद्रादिक करते हैं, तिसका कर्त्ता भी आपकों जानता है, तिसकों सर्व दुःखका अंत होता है, दुःखतें र

हित आत्मपदकों प्राप्त होता है, अरु सर्व सुखकी सीमा तिनकों प्राप्त होती है ॥ हे राजन्! जब ऐसे सुख कों तूं प्राप्त होवैगा, तब तृष्णा तेरे तांई कोउ न रहैगी, जैसे नदी तवलग चलती है, जबलग समुद्रकों नहीं प्राप्त भई, जब समुद्रकों प्राप्त भई, तब चलणेतें रहित होती है, तैसे जब तूं आत्मपदकों प्राप्त होवैगा, तब इच्छा तेरे तांई कोउ न रहैगी ॥ हे राजन्! तूं अहंकारका त्याग कर, अथवा ऐसे जाण जो सर्व मैंही हों, अरु जरा मरण आदिक दुःख तबलग हैं, जबलग आत्मबोध नहीं प्राप्त भया, जब आत्मबोध भया, तब दुःख कोउ नहीं रहता, अरु दोनोंही दुःख भारी हैं, जन्म अरु मृत्युसों मिटि जाते हैं ॥ इंद्रके वज्रसमान भी दुःख होवै, तौ भी ज्ञानवानकों स्पर्श नहीं करता ॥ हे राजन्! जैसे बूटा होता है, जब तिसकों फल पडता है, तब सूकीकरि गिरता है, तिसी प्रकार जब ज्ञानरूपी फल प्राप्त होता है, तब मन बुद्धि अहंकार बूटेकी नांई गिर पडते हैं, जबलग मनकी चपलता है, तबलग दुःख पावता है, जब मनकी चपलता निवृत्त भई तब क्षोभ कोउ नहीं रहता, शांतपदकों प्राप्त होता है, अरु शांति तब होती है, जब प्रकृतिका वियोग होता है, अरु प्रकृतिके संयोगतें संसारी होता है, अरु दुःख पावता है, तातें प्रकृति कहियें अहंकार तिसका त्याग करु, अहंकारतें रहित होकरि चेष्टा करु, जब तूं अहंकारतें रहित हुआ, तब तिस पदकों प्राप्त होवैगा, जो न जड है,न चेतन है, न शून्य है, न अशून्य है, न केवल है, न अकेवल है, न आत्मा कहिये, न अनात्मा कहिये,न एक कहिये,न दो कहिये,जेते कछु नाम हैं, सो प्रतियोगीसाथ मिले हुए हैं, प्रतियोगी हुआ सो द्वैत हुआ,अरु आत्मा अद्वैतमात्र है, जिसविषे वाणीकी गम नहीं,जो अवाच्य पद है, तिसकों कैसे कहियें,जेती कछु नाम संज्ञा हैं,सो उपदेशमात्र हैं,आत्मा अनिर्वाच्य पद है,तातें संकल्पका त्याग करु, अरु आत्माकी भावना करु, जब आत्मभावना करैगा, तब केवल आत्माही प्रकाशैगा, जैसे फूलका अंग सुगंधतें रहित कोउ नहीं, तैसे आत्मातें इतर कछु नहीं ॥ हे राजन्! जब अहंकारका त्याग करैगा, तब अपणे आपकरि शोभायमान हो

वैगा, आकाशकी नांई निर्मल आत्माविषे स्थित होवैगा, अहंकारकों त्यागिकरि तिस पदकों प्राप्त होवैगा, जहां शास्त्र अरु शास्त्रोंके अर्थ नहीं प्राप्त होते, अरु संपूर्ण इंद्रियांके रस तहां लीन हो जाते हैं, अरु सर्व दुःख तहां नष्ट हो जाते हैं, केवल मोक्षपदकों प्राप्त होवैगा ॥ हे राजा! मोक्ष किसी देशविषे नहीं, जो तहां जायकरि पावैगा; अरु मोक्ष किसी कालविषे नहीं, जो अमका काल आवैगा, तब मुक्त होवैगा, अरु मोक्ष कोउ पदार्थ नहीं, जो तिसकों ग्रहण करैगा, हे राजन्! प्रकृत जो है अहंकार तिसीतें मोक्ष होणा है, जब अहंकारका तूं त्याग करै तबही मोक्ष है, जब इस अनात्मअभिमानकों त्यागैगा, तब अपणे आपकरि शोभायमान होवैगा, जैसे धूम्रतें रहित अग्नि प्रकाशमान होती है, तैसे अहंकारतें रहित तूं प्रकाशैगा, जैसे बडे पर्वत उपर तलाव निर्मल अरु गंभीर शोभता है, तैसे तूं शोभैगा ॥ हे राजा! तूं अपणे स्वरूपविषे स्थित होहु ॥ इति श्रीयोगवासिष्ठे निर्वाणप्रकरणे समाधानवर्णनं नाम एकाधिकशततमः सर्गः ॥ १०१ ॥ ॥ ॥

॥ मनुरुवाच ॥ हे राजा! तूं आत्मारामी होहु, अरु शुद्ध होहु, रागदोषतें रहित नित्य अंतर्मुख होहु ॥ हे राजन्! जब तूं आत्मारामी हुआ तब तेरी व्याकुलता नष्ट हो जावैगी, अरु अंतर शीतल सोम चंद्रमा पूर्णवत् हो जावैगा, ऐसा होकरि अपणे प्रकृत आचारविषे विचरु अरु किसी फलकी वांछा न करु, जो पुरुष वांछातें रहित होकरि कर्म करता है, सो सदा अकर्त्ता है, अरु महाशोभा पावता है ॥ हे राजा! ऐसी अवस्थाविषे स्थित होकरि भोजन आवै, तिसका भक्षण करु, अरु जो अनिच्छित वस्त्र आवै तिसकों पहिरु, जहां निंद आवै तहां शयन करु, अरु रागदोषतें रहित होहु, जब तूं ऐसा होवैगा तब तूं शास्त्र अरु शास्त्रोंके अर्थतें उल्लंघित वरतैगा, जो ऐसा पुरुष है, सो परम रसकों पायकरि मतवाला होता है, तिसकों संसारकी इच्छा कछु नहीं रहती ॥ हे राजन्! ज्ञानवान काशीविषे देह त्यागै, अथवा चंडालके गृहविषे त्यागै, जहां तहां मुक्ति है, उह सदा आत्मस्वरूपविषे स्थित है, अरु वर्तमान कालविषे देहकों नहीं त्यागता, काहेतें

जो जिस कालविषे उसकों ज्ञान हुआ है, तिसी कालविषे देहका अभाव भया है, ज्ञानकरि देह दग्ध हो जाता है ॥ हे राजन्! ज्ञानवान सदा मुक्तरूप है, न किसीकी स्तुति करता है, न निंदा करता है, काहेतें जो चित्तकी कलना तिसकी मिटि गई है, यद्यपि रागदोष ज्ञानवानविषे दृष्ट भी आता है, अरु हसता रोता भी दृष्ट आता है, परंतु अंतःकरण अपणे जानणेकरि न राग है, न दोष है, न हसता है, न रोता है, ज्यौंका त्यौं है, जैसे आकाश शून्यरूप है, अरु मेघ बादल भी दृष्टि आते हैं, परंतु आकाशकों लेप नहीं करते, तैसे ज्ञानवानकों कोउ क्रिया बंधन नहीं करती, अज्ञानी जाणते हैं, जो ज्ञानवान क्रिया करता है ॥ हे राजन्! ज्ञानवान सर्वदा नमस्कार करणेकों योग्य है, अरु पूजणे योग्य है, जिस स्थान ज्ञानवान बैठता है, तिस स्थानकों भी नमस्कार है, जिससाथ बोलता है, तिसकों भी नमस्कार है, जिस ऊपर ज्ञानवान दृष्टि करता है, तिसकों भी नमस्कार है, सो सबका आश्रयभूत है ॥ हे राजन्! जैसा ज्ञानवानकी दृष्टितें आनंद पाइता है, सो तप करिके नहीं पाइता, दानकरि नहीं पाइता, अरु यज्ञ कर्मोंकरि भी नहीं पाइता, ऐसी दृष्टि किसीकरि नहीं पाइती, जैसी संतकी दृष्टि है, ऐसे आनंदकों पाइता है, जिस पदकों वाणीकी गम नहीं अरु जो पुरुष संतकी दृष्टिकों पायकरि कैसा होता है, जिसतें लोक दुःख नहीं पावते, अरु लोकतें उह दुःख नहीं पावता न किसीका भय करता है, न किसीका हर्ष करता है ॥ हे राजन्! सिद्धि पावणेका सुख अल्प है, क्या है, जो उडणेकी सिद्धि पाई, तौ पक्षी अनेक उडते फिरते हैं, इसीकरि आत्मज्ञान तौ नहीं पाइता, अरु आत्मज्ञानविना शांति नहीं होती, जब आत्मज्ञान प्राप्त हुआ, तब जरा मृत्यु आदिक दुःखतें मुक्त होता है, दुःख इसविषे कोउ नहीं रहता, जैसे सिंह पिंजरेतें छुटा बहुरि पिंजरेतें बंधनविषे नहीं पडता तैसे उह पुरुष अज्ञानरूपी पिंजरेविषे नहीं फसता ॥ हे राजन्! तातें तूं आत्माकी भावना करु, जो तेरे दुःख नष्ट हो जावें, अज्ञान करिके तेरे तांई दुःख भासते हैं, अज्ञानतें रहित तूं सदा आ

नंदरूप है, आत्मा अनुभवरूप है, तिस अनुभवरूप प्रत्यक् आत्माविषे स्थित होहु, जब तूं आत्माविषे स्थित होवैगा, तब चेष्टा तेरेविषे दृष्ट भी आवैगी, परंतु स्पर्श न करैगी, जैसे शुद्ध मणिके निकट जैसा रंग राखियें, श्वेत रक्त पीत श्याम तिसके प्रतिबिंबकों ग्रहण करती है, तौ भी रंग कोउ स्पर्श नहीं करता, उसविषे कल्पित जैसे भासते हैं, तैसे तूं प्रकृत आचारकों अंगीकार करता हुआ तेरे तांई पाप पुण्यका स्पर्श न होवैगा ॥ ॥ इति श्रीयोगवासिष्ठे निर्वाणप्रकरणे मनुइक्ष्वाकुसंवादसमाप्तिर्नाम द्व्यधिकशततमः सर्गः ॥ १०२ ॥ ॥ ॥ वसिष्ठ उवाच ॥ हे रामजी! इस प्रकार मनु उपदेश करिके तूष्णीं हो गया, तब राजानें भली प्रकार मनुका पूजन किया, बहुरि मनु भी आकाशकों उडी ब्रह्मलोकविषे जाय प्राप्त भया, अरु राजा इक्ष्वाकु राज्य करणे लगा ॥ हे रामजी! जैसे राजा इक्ष्वाकुनें जीवन्मुक्त होकरि राज्य किया है, तैसे तूं भी इस दृष्टिकों आश्रय करिके विचरु ॥ राम उवाच ॥ हे भगवन्! तुम कहा, जैसे राजा इक्ष्वाकु ज्ञानकों पायकरि राज्य चेष्टा करत भया है, तैसे तूं करु, तिसविषे मेरा प्रश्न है, जो अपूर्व अतिशय होवै तिसका पावणा विशेष है, अरु जो पूर्व केइनें पाया है, तिसका पावणां अपूर्व अतिशय नहीं, तातें मेरे तांई सो कहौ, जो अपूर्व अतिशय सर्वतें विशेष है ॥ ॥ वसिष्ठ उवाच ॥ हे रामजी! ज्ञानवान सदा शांतरूप है, अरु रागदोषतें रहित है, अरु अपूर्व अतिशयकों पावता है, जेती कछु अवर अतिशय है, सो पूर्व अतिशय है, अरु ज्ञानवान अपूर्व अतिशयकों पावता है, सो ज्ञानीतें अन्य कोउ नहीं पावता, आत्मज्ञानकों ज्ञानीही पावता है, सो ज्ञान एकही है ॥ हे रामजी! जो दूसरा नहीं पावता तौ अपूर्व अतिशय हुआ क्यौं ॥ हे रामजी! अपूर्व अतिशयकों पायकरि ज्ञानवान प्रकृत आचार सर्व चेष्टा भी करता है, तौ भी निश्चय सर्वदा आत्माविषे रखता है ॥ ॥ राम उवाच ॥ हे भगवन्! ज्ञानवान ऐसा जो सर्व चेष्टा करता है, अज्ञानीकी नांई तो उसकों क्या लक्षणोंकरि तत्त्ववेत्ता जाणिये ॥ ॥ वसिष्ठ उवाच ॥ हे रामजी! एक स्वसं

वेद लक्षण है, अरु एक परसंवेद लक्षण है, स्वसंवेद कहिए जो आपही आपकों जाणता, अवर नहीं जाणता अरु परसंवेद कहिए जिसकों अवर भी जाणते हैं ॥ हे रामजी ! परसंवेद लक्षण है सो मैं कहौं हौं, जो तप दान यज्ञ व्रत करणे सो परसंवेद है,अरु दुःखसुखकी प्राप्तिविषे धैर्यकरि रहणां सो समान साधुके लक्षण हैं, अरु महाकर्त्ता, महाभोक्ता, महात्यागी,क्षमा दया यह लक्षण साधुके हैं, ज्ञानवानके नहीं,अरु जेती कछु अणिमातें आदि सिद्धि हैं,उडणा,छुपि जावणा यह भी समान लक्षण हैं,परंतु यह स्वाभाविक तिसविषे आनि फुरते हैं, सो अवरकरि भी जाणे जाते हैं, अरु जो ज्ञानीके लक्षण हैं सो स्वसंवेद हैं, अवर कोउ इसतें इतर उसके शिर विषे सिंग नहीं जो तिसकरि जाणिये, जैसे अवर व्यवहार हैं, तैसे सिद्धि ज्ञानीकों समान है, यह भी ज्ञानवानका लक्षण नहीं, अरु पुण्यपापादिक क्रिया परसंवेद हैं, सो मायाके कल्पे हैं, ज्ञानीके नहीं, जेते कछु लक्षण देखणेविषे आवैंगे, सो मिथ्या हैं, मायाके कल्पे हैं, अरु स्वसंवेद हैं, ज्ञानीका लक्षण जो सर्वदा आत्माविषे स्थित है, अरु अपणे आपकरि संतुष्ट है, न किसीका हर्ष है, न शोक है, अरु देहके जीवित मृत्युविषे समान है, अरु काम क्रोध लोभ मोह सर्वकों जानता है, इसका लक्षण इंद्रियांका विषय नहीं, काहेतें जो निर्वाच्यपदकों प्राप्त भया है ॥ हे रामजी ! जिसकों ज्ञान प्राप्त हुआ है, तिसका चित्त स्वाभाविक विषयतें विरस होता है, अरु इंद्रियजित होता है, भोगकी इच्छा तिसकी निवृत्त हो जाती है, स्वाभाविकही तिसके विषय निवृत्त होते हैं ॥ ॥ इति श्रीयोगवासिष्ठे निर्वाणप्रकरणे ज्ञानीलक्षणविचारो नाम त्र्यधिकशततमः सर्गः ॥ १०३ ॥ ॥ ॥ ॥ वसिष्ठ उवाच ॥ हे रामजी ! मायाजालका काटणा महाकठिन है, यह आदिकलना जीवकों भई है, जो कोउ इसविषे सत्य बुद्धि करता है, सो पंखेरुकी नांई जालविषे फस्या हुआ निकसी नहीं सकता है,तैसे अनात्म अभिमानतें निकसी नहीं सकता ॥ हे रामजी ! बहुरि मेरे वचन सुण, जो मेरे वचन तुझकों प्रियतम लगते हैं, जैसे मेघका शब्द मोरकों प्रियतम लगता है, अरु मैं भी तेरे हि

तके निमित्त कहता हौं, उपदेश करता हौं,अरु ऐसा गुरु रघुकुलका कोउ नहीं हुआ,जो शिष्यका संशय निवृत्त करै ॥ हेरामजी ! मेरा शिष्य भी ऐसा कोउ नहीं हुआ, जो मेरे उपदेशकरि न जाग्या होवै, सब जागे हुए हैं, इसनिमित्त मैं तप ध्यान आदिककों भी त्यागिकरि तेरे तांई जगावौंगा, तातें मैं तुझकों उपदेश करता हौं, श्रवण करु ॥ हे रामजी ! शुद्ध आत्माविषे जो अहंभाव हुआ है, जो कछु अहंकारकरि भासता है, सो थिया है, इसविषे सत्य कछु नहीं, अरु जो इसका साक्षीभूत ज्ञानरूप है, सो सत्य है, तिसका नाश कदाचित् नहीं होता,अरु जो जो वस्तु फुरणेकरि उपजी है सो सर्व नाशवंत है,यह बात बालक भी जानते हैं, जो सत्य है सो असत्य नहीं होता, अरु जो वस्तु असत्य है सो सत्य नहीं होती, जैसे रेततें घृत निकसणां असत्य है, कदाचित् नहीं निकसता, जैसे दर्दुरकों नीकाचूर्ण भी करिये, एक दर्दुरके लाख कणका करियें, अथवा शिला ऊपर घसाइयें, जब तिस ऊपर वर्षा हुई, तब सर्व कणके दर्दुर हो जाते हैं ॥ हे रामजी ! सो दर्दुर तब ऊत्पन्न हुए, जब उनविषे सत्यता थी, तातें सत्यका नाश कदाचित् नहीं होता, अरु असत्यका सद्भाव कदाचित् नहीं होता ॥ हे रामजी ! सत्य जो है ब्रह्म, तिसकी भावना कर, जो ब्रह्मकी भावना करता है, सो ब्रह्मही होता है, जैसे घृतविषे घृत एक हो जाता है, अरु दूधविषे दूध मिलता, जलविषे जल मिलि जाता है, तैसे यह जीव भावना करिके चिद्घन ब्रह्मसाथ एक हो जाता है, जीवसंज्ञा इसकी निवृत्त हो जाती है, जैसे अमृतके पान कियेतें अमर होता है, तैसे ब्रह्मकी भावना करणेतें ब्रह्म होता है, अरु जो अनात्माकी भावना करता है तौ पराधीन होकरि दुःख पावता है, जैसे विषके पान कियेतें अवश्य मरता है, तैसे अनात्माकी भावनातें अवश्य दुःख पावता है, तिसका नाश होता है, तातें आत्मभाव करु ॥ हे रामजी ! जो वस्तु संकल्पकरि उदय होती है, तिसका रहणा भी थोडा काल होता है, जो चल वस्तु है सो अवश्य नाश होती है, यह दृश्य आत्माविषे भ्रम करिके सिद्ध है, जैसे मृगतृष्णाका जल अरु सीपी

विषे रूपा भ्रम करिके सिद्ध है, अरु आकाशविषे दूसरा चंद्रमा भ्रमकरि सिद्ध है, वास्तव नहीं तैसे अहंकार देह इंद्रियांकरि सुख भासता है,सो सब मिथ्या है, तातें दृश्यकी भावना त्यागिकरि अपणे अनुभव स्वरूपविषे स्थित होहु, जब आत्माविषे स्थित होवैगा, तब मोहकों प्राप्त न होवैगा, जैसे पारसके स्पर्शकरि तांबा स्वर्ण हुआ, बहुरि तांबा नहीं होता, तैसे तूं जब आत्मपदकों जाणैगा, तब बहुरि मोहकों प्राप्त न होवैगा, जो मैं हौं, यह मेरा है, अहं त्वं भाव तेरा निवृत्त हो जावैगा, यह भावना न रहैगी॥ ॥ राम उवाच॥ हे भगवन्! मच्छर अरु जुं आदिक जो प्रस्वेदतें उत्पन्न होते हैं, सो सब कर्म करिके उत्पन्न होते हैं, देवता मनुष्यादिक जो उत्पन्न होते हैं, सो कर्मोंकरि यह सब उत्पन्न होते हैं अथवा कर्मोंविना भी कछु होते हैं॥ ॥ वसिष्ठ उवाच ॥ हे रामजी! आदि परमात्मातें जब उत्पति भई है, सो चार प्रकारके जीव हैं, एक कर्मोंकरि उत्पन्न हुए हैं, एक कर्मोंविना हुए हैं, एक आगे होणे हैं, एक अब भी उत्पन्न होते हैं॥ ॥ राम उवाच॥ हे संशयरूपी हृदयके अंधकार निवृत्त करणेहारे सूर्य! अरु संशयरूपी बादलोंके निवृत्तिकों पवन! कृपाकरिके कहो, जो कर्मोंविना कैसे उत्पन्न होते हैं, अरु कर्मोंकरि कैसे उत्पन्न होते हैं, कैसे कैसे हुए हैं, कैसे होते हैं, अरु कैसे आगे होणें हैं सो कहो॥ ॥ वसिष्ठ उवाच॥ हे रामजी! आत्मा चिदाकाश है, अपणे आपविषे स्थित है, जैसे अग्नि अपणी उष्णताविषे स्थित है, तैसे आत्मा अपणे स्वभावविषे स्थित है, अनंत है, अरु अविनाशी है, तिसविषे फुरणाशक्ति स्वाभाविक स्थित है, जैसे पवनविषे स्पंदशक्ति स्वाभाविक है, जैसे फूलविषे सुगंध स्वाभाविक रहती है, तैसे आत्माविषे फुरणाशक्ति है॥ हे रामजी! फुरणाशक्ति जैसे आद्य फुरी है, तिस शब्दकी अपेक्षाकरि तब आकाश हुआ, जब स्पर्शकी अपेक्षाकरि, तब पवन प्रगट भया,इसी प्रकार पंचतन्मात्रा हो आई, सो शुद्ध संवितविषे जो आदि फुरणा हुआ, प्रथम अंतवाहक शरीर हुए, तिनका निश्चय आत्माविषे रहा जो हम आत्मा हैं, सं

पूर्ण विश्व हमारा संकल्प ह ॥ हे रामजी! केई इस प्रकार उत्पन्न होकरि अंतवाहकतें वहुरि विदेहमुक्तिकों प्राप्त भये, जैसे जलसों वरफ होकरि सूर्यके तेजतें शीघ्रही जल हो जाती है, तैसे शीघ्रही विदेहमुक्त हुए, अरु केई अंतवाहक शरीरविषे स्थित भये, उनका निश्चय आत्माविषे रहा, अरु केई अंतवाहकतें अधिभूतक हो गए, जवलग अंतवाहकविषे स्मरण रहा, तवलग अंतवाहक रहे, जव स्वरूपका प्रमाद भया, अरु संकल्पकरि जो भूत रचे थे, तिनविषे दृढ निश्चय भया, अरु जानत भए, इह हम हैं, तव अधिभूतक हो गए, जैसे ब्राह्मण शूद्रोंके कर्म करणे लगे, उसके निश्चयविषे हो जावैं, जो मेरा यही कर्म है, अरु जैसे शीत करिके जलतें वर्फ हो जाती है, तैसे संवितविषे दृढ संकल्प हुआ, तव आपकों अधिभूतक जानत भया ॥ हे रामजी! आदि परमात्मातें जो फुरे हैं, सो कर्मविना उत्पन्न हुए हैं, तिनका कर्म कोउ नहीं, जो अंतवाहकविषे रहे, तिनकी ईश्वरसंज्ञा भई, वहुरि उनके संकल्पकरि जीव उपजे, तिनका कारण ईश्वर हुआ, अरु आगे जीवकलनाकरि उनका फुरणा कर्म हुए, आगे जैसे कर्म करते हैं, संकल्पकरि तैसे शरीर धारते हैं ॥ हे रामजी! आत्मातें जो जीव उपजे हैं, सो आदि अकारण होते हैं, जो आज उपजे हैं, तौ भी, अरु चिरकाल उपजे हैं तौ भी, उह पाछे कारणभावकों प्राप्त हुए हैं, कर्मके वशतें ॥ हे रामजी! जो आदि फुरणा हुआ है, अरु स्वरूपविषे जिनका दृढ निश्चय रहा, तिनकी संज्ञा पुण्य है, अरु जो स्वरूपकों विस्मरणकरि अधिभूतकविषे निश्चय करत भये, तिनकी धन संज्ञा है ॥ हे रामजी! पुण्यतें धन होणा सुगम है, अरु धनतें पुण्य होणा कठिण है, कोउ भाग्यवान पुरुष होता है, जो यत्न करिके धनतें पुण्यवान होता है, जैसे पर्वततें पत्थर गिरना सुगम है, तैसे पुण्यतें धन होणा सुगम है, अरु जैसे पत्थरकों पर्वतपर चढावणा कठिण है, तैसे धनतें पुण्य होणा कठिण है, केई चिरकाल धनविषे वहते हैं, केई यत्नकरि शीघ्रही पुण्यवान होते हैं, हे रामजी! जो सदा अंतवाहक रहते हैं, तिनकी संज्ञा ईश्वर है, अरु अंतवाहककों त्यागिकरि अ

धिभूतक होते हैं, सो जीव कहाते हैं, अरु परतंत्र हैं, जैसे कर्म करते हैं, तैसे आगे शरीर धारते हैं, अरु जो धनतें पुण्य होते हैं, सो ज्ञानवान हैं, तिनकों बहुरि जन्म नहीं होता, अब भी जो उत्पन्न होते हैं, सो प्रथम कर्मविना होते हैं, जब अपणे स्वरूपतें गिरते हैं, तब जैसा संकल्प करते हैं, संकल्पही कर्म है, तैसे आगे शरीर धारते हैं ॥ हे रामजी! यह विश्व संकल्पमात्र है, तातें संकल्पका त्याग करौ, इस दृश्यकी आस्था न करु॥ हे रामजी! खाणा पीणा चेष्टा करौ, परंतु तिसविषे अहंभाव न होवै, अहंकार अज्ञानकरि सिद्ध हुआ है, सो दृश्य मिथ्या है, अहंभावके होणेकरि दुःखी होता है, तातें अहंकारतें रहित चेष्टा करौ ॥ हे रामजी! बंध अरु मोक्षका लक्षण श्रवण करु, ग्राह्य ग्राहक जो है, विषय अरु इंद्रियांका संयोग, तिनके इष्ट विषे राग करणा, अनिष्टविषे दोष करणा, यही बंधन है, जैसे जलविषे पक्षी बंधायमान होता है, अरु ग्राह्य ग्राहक इंद्रियां अरु विषयका संबंध तिनके इष्ट अनिष्ट होणा है, जिसविषे इंद्रियांका संयोग होता है, तिसविषे समबुद्धि रहै, इनके धर्म अपणेविषे न देखै, इनके जाणनेवाला जो अनुभवरूप आत्मा है, तिसीविषे साक्षीरूप होकरि स्थित रहै, इस प्रकार जो इनका ग्रहण करता है, सो सदा मुक्तरूप है, इसतें इतर हैं सो मूर्ख जीव बंध हैं, तुम इस ग्राह्य ग्राहक संबंधविषे सावधान रहौ, इनका संबंध धन है, इनतें रहित होणा मुक्त है, अरु राग दोष करणेवाला मन है, इस मनका त्याग करौ, मनही दुःखदायी है,जैसे कुंभारका चक्र फिरता है, तिसतें वासन उत्पन्न होते हैं, तैसे मनरूप चक्रतें पदार्थरूपी वासन उत्पन्न होते हैं, मनके फुरणेकरि संसार सत्य होता है, जब फुरणा निवृत्त हुआ, तब दुःख कोउ न रहैगा ॥ हे रामजी! फुरणे अफुरणेविषे समान होवैगा,तब रागदोषतें रहित होकरि विचरैगा, यह होवै, यह न होवै, इसतें रहित होकरि चेष्टा कर, अभिलाषपूर्वक संसारविषे न फुरै ॥ हे रामजी! पूर्व जो ज्ञानवान हुए हैं, तिसकों वीतीकी चिंतवना नहीं, अरु आगे होणेकी आशा नहीं, वर्तमानकालविषे शास्त्र अनुसार रागदोषतें रहित चेष्टा करणी, तातें तूं भी संकल्प

कों त्यागिकरि स्वरूपविषे स्थित होहु ॥ हे रामजी! ब्रह्मातें आदि तृणपर्यंत किसी पदार्थविषे राग हुआ, तौ वंधन है, अरु मेरा यही आशीर्वाद है, जो ब्रह्मातें आदि तृणपर्यंतकरि तेरी रुचि मत होवै, अपणे आपहीविषे रुचि होवै ॥ हे रामजी! यह संसार मिथ्या है, इसविषे पदार्थ कोउ सत नहीं, सर्व मनके रचे हुए हैं, तातें मनकों स्थित करौ, जैसे धोवी सावू मिलायके वस्त्रकी मैल दूर करता है, तैसे मनकरि मनकों स्थिर करौ, जव मनकों स्वरूपविषे स्थित करैगा, तव मन अपणे संकल्पकों आपही नाश करैगा, जैसे कोउ दुष्ट पुरुष धनकरि वृद्ध होता है, तव भाई आदिककों नाश करणेका उपाय करता है, तैसे मन जव आत्मपदविषे स्थित होता है, तव अपणे संकल्पकों नाश करता है, जव मन तेरा स्वरूपविषे स्थित हुआ, तव तूं अमन होवैगा, अरु दुःख तेरे सव नष्ट हो जावैंगे, अरु मनके नाशविना सुख कोउ नहीं ॥ हे रामजी! यह मन ऐसा दुष्ट है, जो जिसतें उपजता है, तिसीके नाशनिमित्त होता है, जैसे वांसतें अग्नि उपजता है, वहुरि तिसीकों जलावता है, तैसे आत्मातें उपजीकरि यह मन आत्माहीकों तुच्छ करता है, जैसे राजाका टहलुआ राजाकी सत्ता पायकरि राजाकों मारीकरि आप राजा होता है, तैसे मन आत्माकी सत्ता पायकरि तिसकों आच्छादी आपही कर्त्ता भोक्ता हो वैठा है, तातें मनकों मनहीकरि नाश कर, जैसे लोहा तपायकरि लोहेकों काटता है, तैसे मनसाथ मनहीकों शुद्ध करु ॥ हे रामजी! वृक्ष वल्ली फूल फल पशु पक्षी देवता यक्ष नाग जेते कछु स्थावर जंगम पदार्थ हैं, सो प्रथम कर्मोंविना उत्पन्न हुए हैं, अरु पाछे जव स्वरूपतें गिरे, अरु धनपदकों प्राप्त हुए, तव शरीर कर्मोंकरि होते हैं, अरु कर्मोंका वीज अहंकार है, अहंकारविषे शरीर है, जैसे वीजविषे वृक्ष होता है, समय पायकरि फूल फल प्रगट होते हैं, तैसे अहंकारतें शरीर प्रगट होते हैं, जव अहंकार नष्ट हुआ, तव शरीर कोउ नहीं, केवल आत्मपद है, अहंकार है नहीं, अरु प्रत्यक्ष देखाइ देता है, अरु आत्मा अच्युत है, गिरेकी नांई भासता है, निरालंव है, अरु आलंवकी

तातें तूं सत्पदविषे स्थित होकारि साक्षीरूप होरहु॥ ॥इति श्रीयो० नि० तुरीयापदविचारो नाम शताधिकपंचमः सर्गः॥ १०५॥ ॥वसिष्ठ उवाच॥ हे रामजी! कर्त्ता कारण कर्म यह तीनों पडे होवें, तूं इनका साक्षी होहु, इनका कर्तृत्व अभिमान तेरे तांई मत होवै, जो मैं यह कर्त्ता हौं, अथवा इसका मैं त्याग किया है, यह अभिमान भी नहीं करणा, तूं उदासीनकी नांई हो रहु अरुइसीपर एक आख्यान कहता हौं, सो श्रवण कर, तूं आगे भी प्रबुद्ध है, तौ भी दृढ बोधके निमित्त सुण, हे रामजी! एक वनविषे काष्ठमौनि था, अरु एक वेधक मृगकों बाण चलावते हुए मृगके पाछे दउडता जाता था, अरु आगे गये तौ मृग वेधककी दृष्टितें अगोचर हो गया, वेधकने देखा जो एक तपसी बैठा है, तिसीतें पूछत भया॥ हे मुनीश्वर! इहां एक मृग आया था सो किस उरकों गया, तुम देखा है तौ मेरे तांई कहौ॥ काष्ठमौनिरुवाच॥ हे वेधक! हमारे तांई सुधि कछु नहीं, काहेतें जो हम निरहंकार हैं, हमारेसाथ चित्त अहंकार दोनों नहीं, तातें निरहंकार हैं, अरु जो तूं कहे, इंद्रियांकी चेष्टा कैसे होती है तौ सुण, जैसे सूर्यके आश्रय लोककी चेष्टा होती है, अरु दीपक मणिके आश्रय चेष्टा होती है, अरु सूर्य दीपक मणि प्रकाशके साक्षीभूत हैं, तैसे हम इंद्रियांके साक्षीभूत इनकी चेष्टा स्वाभाविक होती है, हमारे तौ इनसाथ प्रयोजन कछु नहीं॥ हे वेधक! अहंभाव करणेवाला अहंकार होता है, जैसे तागेके आश्रय मणके पोते हैं, सो मणके भिन्न भिन्न होते हैं, अरु तागा सर्वविषे एक होता है, तब माला होती है, जब तागा टूटि पडै तब मणके भिन्न भिन्न हो जाते हैं, तैसे इंद्रियांरूपी मणके हैं, अरु अहंकाररूपी तागा है, तिस अहंकाररूपी तागेके टूटणेसों इंद्रियां भिन्न भिन्न हो गइयां हैं, जैसे राजाके नाश हुए सैना भिन्न भिन्न हो जाती है, जैसे गोपालके नष्ट हुए गौआं भिन्न भिन्न हो जातियां हैं, अरु जैसे पिताके नष्ट हुए बालक व्याकुल हो जाते हैं, तैसे अहंकारविना इंद्रियां व्याकुल हुइयां हैं, इनका अभिमान मेरे तांई कछु नहीं, इनका अभिमानी अहंकार था, सो मेरा नष्ट हो गया है, इंद्रियां अपणे अपणे विषयवि

षे विचरतियां हैं, मुझकों इनका न राग है, न दोष है ॥ हे साधो! मेरे तांई न जाग्रत भासता है, न स्वप्न, न सुषुप्ति, इन तीनोंतें रहित हम तुरीयापदविषे स्थित हैं, जिसविषे अहं त्वंका अभाव है, जो अहं त्वं हमारा मिटि गया तौ हम साख किसकी देवैं, जो मृग डाबे गया, कै दाहने गया, जो नेत्र इंद्रियां देखणेवाली हैं, तिसकों बोलणेकी शक्ति नहीं, यह अपणे अपणे विषयकों ग्रहण करतियां हैं, एक इंद्रियकों दूसरेकी शक्ति नहीं, बहुरि तेरे तांई कवण कहै, इन सबके धारणेवाला अहंकार था, जो सबकों अपणां आप जानता था, मैं देखता हौं, मैं बोलता हौं, सो अहंकार हमारा नष्ट हो गया है, जैसे शरत्कालविषे मेघ नष्ट होते हैं, तैसे अहंकारके नष्ट होणेकरि हम स्वच्छ निर्मल शांत तुरीयापदविषे स्थित हैं, अरु इंद्रियांका जीव अहंकार मृतक हो गया है, अरु इंद्रियां भी मृतक हो गइयां हैं, देखणेमात्र दृष्टि आतियां हैं, जैसे भीत ऊपर पुतलियां लिखियां होवैं अरु कार्य तिनके कछु न होवैं, तैसे हमारी इंद्रियांतें कार्य कछु नहीं होता, तौ तेरे तांई कवन कहै? ॥ वसिष्ठ उवाच ॥ हे रामचंद्र! जब इस प्रकार मुनीश्वरनें कहा, तब वेधक समुझी करि अपणी इच्छाचारी उठिगया ॥ हे रामजी! तुरीयापद शांतरूप है, जहां जाग्रत स्वप्न सुषुप्ति तीनोंका अभाव है, केवल अद्वैत पद है, यह जो संज्ञा है, ब्रह्म आत्मा चिदानंदतें आदि लेकरि सो तुरीया पदविषे है, अरु तुरीयातीत पदविषे शब्दकी गम नहीं, अशब्द पद है, विदेह मुक्त पुरुष तिसी पदकों प्राप्त होता है, अरु जीवन्मुक्त तुरीयापदकों साक्षात् करिके तुरीयावस्थाविषे विचरते हैं, जहां जाग्रत जो दीर्घ दुःख सुखका भान है सो नहीं, अरु स्वप्न जो रागदोषकों लिये अल्पकाल है, सो भी नहीं, अरु जडता तामस अवस्था भी नहीं, इन तीनोंतें रहित है, सो तुरीयापद है, अरु शांत जिसविषे क्षोभ कोउ नहीं, अरु यह जगत तिसका आभास है, जैसे समुद्रविषे तरंग वास्तव कछु नहीं, जलही है, तैसे केवल तुरीयास्वरूप सत्तासमान तेरा स्वरूप है, तिसविषे स्थित होहु, अरु तिसविषे जो स्थित हुए हैं, सो श्रवण करु, ब्र

नांई दृष्ट आता है, आत्मा निराकार है, अरु आकारसहित भासता है, निराभास है; अरु आभाससहित दिखाइ देता है, तातें केवल चिन्मात्र आत्माविषे स्थित होहु, यह सब चिन्मात्रहीरूप है॥ हे रामजी! जब ऐसी भावना होती है, तब चित्त अचित्त हो जाता है, जब चित्त अचित्त हुआ, तब जगतकलना मिटि जाती है, केवल आत्मतत्त्वही भासता है॥ ॥ इति श्रीयोगवासिष्ठे निर्वाणप्रकरणे कर्माकर्मविचारो नाम शताधिकचतुर्थः सर्गः॥ १०४॥ ॥ वसिष्ठ उवाच॥ हे रामजी! इस जीवके तीन स्वरूप हैं, एक स्वरूप शुद्धात्मा है, चिदानंद ब्रह्म, जिसकरि सर्व प्रकाशते हैं, अरु दूसरा अंतवाहक पुण्यनाम है, आत्माके प्रमाद करिके हुआ है, जो मात्रपदतें उत्थान हुआ है, तौ भी प्रमाद नहीं, जो आत्माका स्मरण रहा है, जब आत्माका स्मरण भूला, तब तीसरा अधिभूतक हुआ, पंच तत्त्वकों आपणा आप जाणने लगा है॥ हे रामजी! यह तीन स्वरूप जीवके हैं, आत्माके प्रमादकरि जीव संज्ञा पावता है, अरु दुःखी होता है, अरु परतंत्र हुआ है, तातें पंचभूतक अरु अंतवाहकको त्यागिकरि वास्तव स्वरूपविषे स्थित होहु॥ हे रामजी! यह जो दो शरीर हैं, स्थूल अरु सूक्ष्म विचारकरि नष्ट हो जाते हैं, अरु तीसरा जो स्वस्वरूप है, सो सत्य है, तूं तिसविषे स्थित होहु॥ राम उवाच॥ हे भगवन्! यह तीन रूप जो तुमनें जीवके कहे, तिनके मध्यविषे नाशरूप कवन है, अरु सतरूप कवन है॥ वसिष्ठ उवाच॥ हे रामजी! हाथ पावकरि जो देह संयुक्त है, भोगसाथ बलगत करी हुइ सो देह स्थूलरूप है, अरु जीव अपणेही संकल्प करिके सदा पसार रचता है, अवर चित्तरूपी देह इस फुरणेरूपसों अंतवाहक है, सो सदा प्राणवायुके रथ ऊपर स्थित रहता है, देह होवै, भावै, न होवै॥ हे रामजी! यह दोनों शरीर उपजते भी अरु नष्ट भी होते हैं, अरु आदिअंततें रहित चिन्मात्र निर्विकल्प हैं, सो जीवका परम रूप जाण, तुरीयापद है उसीतें जाग्रतादिक उपजते हैं, अरु लीन होते हैं॥ ॥ राम उवाच॥ हे भगवन्! मैं तीनकों जानता हौं, एक जाग्रत है

निद्रातें रहित, जिसविषे इंद्रियां अरु चार अंतःकरण अपणे अपणे विषयकों ग्रहण करते हैं, अरु दूसरा स्वप्न है, तहां भी विषयकों जाग्रतकी नांई संकल्प करी ग्रहण करते हैं, विषयविना, अरु तीसरा तहां इंद्रिय अपणे विषयतें रहित होतियां हैं, अरु जडता आती है, भासता कछु नहीं, शिलाकी नांई जडता तमोगुण आता है सो सुषुप्ति है, यह तीनोंकों मैं जानता हौं, तुरीया अरु तुरीयातीत सो कृपाकरि तुम कहौ, जो किसकों कहते हैं? ॥ ॥ वसिष्ठ उवाच ॥ हे रामजी! अपणा होणा अनहोणा दोनोंकों त्यागिकरि पाछे केवल तुरीयापद रहता है, सो शांतपद है, अरु निर्मल है ॥ हे रामजी! तुरीया जाग्रत नहीं, काहेतें जो जाग्रत संकल्प जाल है, इंद्रियां करिके रागदोष होता है, अरु तुरीया स्वप्न अवस्था भी नहीं, काहेतें जो स्वप्न भ्रमरूप होता है, जैसे जेवरीविषे सर्प भासता है सो अवरका अवर संकल्प होता है, अरु तुरीया सुषुप्ति भी नहीं, काहेतें जो अत्यंत जडता है, अरु तुरीया चेतनरूप है, उदासीन है अरु शुद्ध है, जाग्रत स्वप्न सुषुप्तितें रहित है, जीवन्मुक्त तुरीयापदविषे स्थित रहता है ॥ हे रामजी! जो तुरीयापदविषे स्थित है, तिसकों यह स्थित भी है, जगतसों भी शांतरूप हो जाता है, अरु अज्ञानीकों वज्रसारवत् दृढ है, अरु ज्ञानी सदा शांतरूप है, जो तीनों अवस्थाका साक्षी है, न उसके राग है, न दोष है, उदासीनकी नांई है, अरु तुरीयातीत पदकों वाणीकी गम नहीं, जीवन्मुक्त पुरुष जब विदेहमुक्त होता है, तब उसी पदकों प्राप्त होता है, जहां वाणीकी गम नहीं, जबलग जीवन्मुक्त है तबलग तुरीयापदविषे स्थित होता है, अरु रागदोषतें रहित होता है, इंद्रियां भी अपणे विषयविषे स्वाभाविक वर्ततियां हैं, परंतु रागदोषतें रहित होकरि अरु जिस पुरुषकों रागदोष उत्पन्न होते हैं, सो तुरीयापदकों नहीं प्राप्त भया, अरु चित्तसहित है, अरु जिस पुरुषकों रागदोष उत्पन्न नहीं होते, तिसका चित्त सत्पदकों प्राप्त भया है, जिसका चित्त सत्पदकों प्राप्त हुआ है, तिसकों संसारकी सत्यता नहीं भासती, स्वप्नवत् जगतकों देखता है,

ह्मा विष्णु रुद्र सिद्ध ज्ञानी इत्यादिक जो ज्ञानवान हैं, सो तिसी पदविषे स्थित हैं, अरु काष्ठमौनि वेधक कों उपदेश करणेवाला भी तुरीयापदविषे स्थित है, विशेष कलना तिसकी निवृत्त हुई थी, जो भिन्न भिन्न नामरूपकों देखणेवाली केवल सत्ता समानविषे स्थित था, तातें कलनाकों त्यागिकरि तुम भी तुरीयापदविषे स्थित होहु ॥ इति श्रीयोगवासिष्ठे निर्वाणप्रकरणे काष्ठमौनिवृत्तांतवर्णनं नाम शताधिकषष्ठः सर्गः १०६

॥ वसिष्ठ उवाच ॥ हे रामजी ! यह विश्व केवल आकाशरूप है, आत्मातें इतर कछु नहीं, आत्माका चमत्कार है, जैसे मेघविषे विजलीका चमत्कार होता है, तैसे यह वीश्वरूप चित्तकला आत्माका चमत्कार है ॥ हे रामजी ! वास्तव ब्रह्महही है, इतर कछु नहीं ॥ राम उवाच ॥ हे भगवन् ! यह विश्व जो तुम ब्रह्मरूप कही, मेघविषे विजलीकी नांई क्षणमें उपजती है, क्षणविषे लीन होती है, सो मेघविषे विजली दृष्ट आती है, जहां मेघ होता है, तहां विजली भी होती है, तातें मेघतें विजली उत्पन्न भई तिसका कारण मेघ है ॥ हे मुनीश्वर ! इस चित्त स्पंद कलाके कारणकी उत्पत्ति ब्रह्मतें कैसे हुई है, सो कृपा करिके मुझकों समुझाय कहो, ब्रह्महही इसका कारण हुआ ॥ ॥ वसिष्ठ उवाच ॥ हे रामजी ! यह जो वितंडक होकरि तर्क करता है सो कछु नहीं, इस नाशबुद्धिकों त्याग, यह तौ बालक भी जाणते हैं, जो विजली क्षणभंगुररूप है, सत्य कछु नहीं, अवर तेरा क्या प्रयोजन है सो कहु, यह तर्क कारणकार्यरूपका कैसा करता है ॥ ॥ राम उवाच ॥ हे भगवन् ! यह स्पंदकला सत्य है कै असत्य है, इसका कारण कवन है, जिसकरि यह फुरती है ॥ ॥ वसिष्ठ उवाच ॥ हे रामजी ! सर्व प्रकारकरि सर्वात्माही स्थित है, अवर चित्त अरु चित्तस्पंद इह भेदकल्पना वास्तव कछु नहीं, ब्रह्महही अपणे स्वरूपविषे आप स्थित है, अवर जो कछु उसतें इतर भासता है, सो भ्रमकरि भासता है, जैसे भ्रमदृष्टिकरि आकाशविषे मोती भासते हैं, जैसे नेत्र मुंदीकरि खोलते हैं तब तरवरे आकार भासते हैं, तैसे इह जगत भ्रम करिके भासता है ॥ हे रामजी ! हम इस संसारसमु

द्रके पारकों प्राप्त हुए हैं, हमतें आदि लेकरि जो ज्ञानवान हैं, सो तिनके यथार्थ वचन सुणीकरि हृदयवि षे धारैं तौ शीघ्रही आत्मपदकी प्राप्ति होवै, अरु जो मूर्खता करिके मेरे वचनोंकों न धारेगा, जो यह क्या कहते हैं, तब तेरा दुःख नष्ट न होवैगा, वृक्ष तृण वल्ली आदिक योनिकों पावैगा ॥ हे रामजी! आकाश अरु काल आदिक पदार्थ हैं, सो सब कलनाकरि सिद्ध हुए हैं, आत्माविषे कोउ नहीं ॥ हे रामजी! वायुतें रहित जो समुद्रका चमत्कार है, तिस चमत्कारका कारण कवन है, अरु दीपकका जो प्रकाश है, अरु अग्निविषे उष्णता है, तिस प्रकाश अरु उष्णताका कारण कवन है, अरु वायु जो निस्पंद है, जब उही स्पंद हुई, स्पंदका कारण कवन है, जैसे इनका कारण कोउ नहीं, जो वायुका रूप स्पंद निस्पंद है अरु अग्निका रूप उष्णता है, अरु दीपकका रूप प्रकाश है, तैसे कलना भी आत्मस्वरूप है, इतर कछु नहीं, हे रामजी! यह कलना जो तुझकों भासती है, तिसकों त्यागिकरि जब अपणे आपकों देखै, तब संशय सब मिटि जावै,जैसे प्रलयकालका जल चडता है,तब सर्व जलमय हो जाता है,इतर कछु नहीं होता, तैसे अपणे स्वरूपकों जब तूं देखैगा तब तेरे तांई सर्व आत्माही भासैगा, आत्मातें इतर कछु दृष्ट न आवैगा ॥ हे रामजी! आत्मा एकरस है, सम्यक्दर्शनकरि ज्यौंका त्यौं भासैगा, अरु असम्यक्दर्शनकरि अवरका अवर भासैगा, जैसे जेवरी एक होती है, तिसकों यथार्थ न देखियें तौ सर्पभ्रम होता है, अरु देखीकरि भयमान होता है, जब ज्यौंकी त्यौं जेवरी जानी तब सर्पभ्रम निवृत्त होता है, तैसे आत्माके न जानणेतें संसारी होता है, अरु भयमान होता है, आपकों जन्मता मरता मानता है, सर्व विकार देहके आत्माविषे जानता है, जब आत्माकों जानता है, तब सर्व भ्रम निवृत्त हो जाते हैं, जैसे नेत्रकरि तारे देखता है, जब नेत्र मुंदि लेवै, तौ भी उनका आकार अंतःकरणविषे भासता है, काहेतें जो तिनकी सत्यता हृदयविषे होती है, अरु जब हृदयतें सत्यता उनकी उठि जावै, तब बहुरि नहीं भासते,

तैसे संसार चित्तके भ्रमकरि हुआ है, इसकों मिथ्या जाण ॥ हे रामजी! फुरणेविषे जो दृढ भावना हुई है, सो सत्य होकरि संसार स्थित हुआ है, जब चित्तका त्याग करैगा, तब संसारकी सत्यता जाती रहैगी ॥

॥ राम उवाच ॥ हे भगवन्! तुम कहा जो यह विश्व कल्पनामात्र है, सो मैं जान्या इस प्रकार है, कछु सत्य नहीं, जैसे लवण राजा, अरु इंद्र ब्राह्मणके पुत्र, अरु शुक्र इनकी कलना फुरणेविषे दृढ भई, तब फुरणरूप विश्व सत्य होकरि स्थित भये, अरु भासणे लगे ॥ हे भगवन्! यह मैं जाणता हौं, जो विश्व फुरणेमात्र है, जब फुरणा मिटि जाता है, तिसके पाछे जो शांतिरूप शेष रहता है, सो कहो ॥ ॥ वसिष्ठ उवाच ॥ हे रामजी! अब तूं सम्यक् बोधवान हुआ है, जो जानणे योग्य है, सो तैंनें जाण्या है ॥ हे रामजी! यह अध्यात्म शास्त्रका सिद्धांत है, जो अवर सब दृश्यका असंभव है, एक चिद्घन ब्रह्म अपणे आपविषे स्थित है ॥ हे रामजी! आत्मा शुद्ध है, अरु निर्मल है, विद्या अविद्यातें रहित है, संसारका तिसविषे अत्यंत अभाव है, जेती कछु शुद्ध आदिक संज्ञा कहते हैं, सो भी फुरणेविषे है, आत्मा निर्वाच्य पद है, सो शेष रहता है, तिसरी संज्ञा शास्त्रकारोंनें कही है, सो श्रवण करु, एक शून्यवादी उसीकों शून्य कहते हैं, विज्ञानवादी विज्ञानरूप कहते हैं, केई उपासनावान उसीकों ईश्वर कहते हैं, केई कहते हैं आत्मा सर्वका कारण है, वही शेष रहता है, अरु एक आत्माकों सर्व शक्त कहते हैं, अरु एक कहते हैं आत्मा निःशक्त है, साक्षी आत्माकों अरु शक्तिकों भिन्न मानते हैं ॥ हे रामजी! जेते वाद हैं, सो सर्वही कलनाकरि हुए हैं, कलनाकों मानिकरि वाद उठावते हैं, वास्तव वाद कोउ नहीं, आत्मा निर्वाच्य पद है, अरु मेरा जो सिद्धांत है, सो भी श्रवण करु, जेती कछु कलना है, आत्मा तिसतें अतीत है, जैसे पवन स्पंदशक्तिकरि फुरता है, निस्पंदकरि ठहरि जाता है, जो स्पंद भी पवन है, निस्पंद भी पवन है, इतर कछु नहीं, तैसे आत्मा जो शुद्ध अद्वैतरूप है, अरु कलना भी आत्माके आश्रय फुरती है, आत्मातें इतर कछु नहीं; अरु जो इतर प्रतीत होती है,

तिसकों मिथ्या जाणी त्याग, अपणे निर्विकार स्वरूपविषे स्थित होहु, जब तूं आत्मस्वरूपविषे स्थित होवैगा, तब जेते कछु शास्त्रोंके भिन्न भिन्न मतवाद हैं, सो कोउ न रहैगा, केवल अपणा आप स्वच्छ आत्माही भासैगा ॥ हे रामजी ! तिस निर्विकल्प पदकों पायकरि शांतिवान हुए हैं, अरु असतकी नांई स्थित भए हैं,जो द्वैतकलना तिनकी कछु नहीं फुरती ॥ हे रामजी ! आत्मा ब्रह्म आदिक शब्द भी उपदेशनिमित्त कहे हैं, आत्मा शब्दतें अतीत है, अरु सर्व जगत भी आत्मस्वरूप है, अरु संसाररूप विकार आत्माविषे असम्यक्दर्शनकरि भासते हैं, जैसे शून्य आकाशविषे तरवरे मोतीवत भासते हैं, सो अविदित हैं, तैसे आत्माविषे जगत द्वैत अविदित भासता है, तातें जगत द्वैतकी भावना त्यागिकरि निर्विकल्प आत्मस्वरूपविषे स्थित होहु ॥ ॥ इति श्रीयोगवासिष्ठे निर्वाणप्रकरणे अविद्यानाशरूपवर्णनं नाम शताधिकसप्तमः सर्गः ॥ १०७ ॥ ॥ ॥ राम उवाच ॥ हे भगवन् ! देह इंद्रियां अरु कलनाविषे सार वस्तु क्या है सो कहौ ॥ ॥ वसिष्ठ उवाच ॥ हे रामजी ! जो कछु यह जगत दृश्य है, अहं त्वंतें लेकरि सो सब चिन्मात्र है, जैसे समुद्र जलही मात्र है, तैसे जगत है, अरु मनसहित षट् इंद्रियांकरि जो कछु दृश्य भासती है सो भ्रममात्र है ॥ हे रामजी ! देह इंद्रियां सब मिथ्या है, आत्माविषे कोउ नहीं, चित्तके कल्पे हुए हैं, अरु चित्तही इनकों देखता है, जैसे मरुस्थलविषे मृगकों जलबुद्धि होती है, देखिकरि जलके निमित्त दउडता है, अरु दुःख पावता है, तैसे चित्तरूपी मृग आत्मारूपी मरुस्थलविषे देह इंद्रियां विषयरूपी जल कल्पिकरि दउडता है, अरु दुःख पावता है, सो देह इंद्रियांविषे भ्रम करिके भासते हैं, जैसे मूर्ख बालक परछायेंविषे वैताल कल्पता है, तैसे मूर्ख चित्तनें देह इंद्रियांदिक कल्पना करी है ॥ हे रामजी ! आत्मा शुद्ध निर्विकार है, तिसविषे चित्तनें भ्रम करिके विकार आरोपण किये हैं, जैसे भ्रांतिदृष्टि करिके आकाशविषे दो चंद्रमा भासते हैं, तैसे चित्तनें देह इंद्रियां कल्पियां हैं, अरु चित्त भी आपतें कछु नहीं, आत्माकी

सत्ता लेकरि चेष्टा करता है, जैसे चुंबककी सत्ता लेकरि लोहा चेष्टा करता है, तैसे निर्विकार आत्माकी सत्ता लेकरि चित्त नानाप्रकारके विकार कल्पता है, तातें चित्तका त्याग कर, जो विकारजाल तेरा मिटि जावै ॥ हे रामजी! देह इंद्रियांविषे सार क्या है सो सुण, जेता कछु संसार है, तिसविषे सार देह है, जो सब देहके संबंधी हैं, जब देह मिटि जावै, तब संबंधी भी नहीं रहते, अरु देहविषे सार इंद्रियां हैं, अरु इंद्रियांविषे सार प्राण हैं, प्राणोंविषे सार मन है, अरु मनका सार बुद्धि है, बुद्धिका सार अहंकार है, अरु अहंकारका सार जीव है, जीवका सार चिदावली है, चिदावली कहिये, वासना संयुक्त चेतना जिसकरि इसका संबंध है, अरु चिदावलीका सार चित्ततें रहित शुद्ध चेतन है, जिसविषे सर्व विकल्पकी लय है, शुद्ध अरु निर्मल है, चिन्मात्र ब्रह्म आत्मा है, जिसविषे उत्थान कोउ नहीं ॥ हे रामजी! चिदावलीपर्यंत सर्वकों त्यागिकरि इनका जो सार चेतनमात्र आत्मा है, तिसविषे स्थित होहु, विश्वकलनामात्र है, आत्माविषे कछु नहीं, संकल्पकी दृढता करिके सतकी नांई भासती है, अरु आगे भी शुक्र, अरु लवणराजा, अरु इंद्रके पुत्रोंका वृत्तांत कहा है; जो संकल्पकी भावनातें दृढ होकरि भासि आया था, सो वास्तव कछु नहीं, तैसे यह विश्व भी चित्तके फुरणेविषे स्थित है, असम्यक दृष्टि करिके अद्वैत आत्माविषे दृश्य भासी है, जैसे सूर्यकी किरणाविषे जल भासता है, तैसे आत्माविषे अहंकार आदिक अज्ञानकरि दृश्य भासी है, तातें इनकों त्यागिकरि अपणे वास्तव स्वरूपविषे स्थित होहु ॥ हे रामजी! एक गड तेरे तांई कहता हौं, जिसविषे किसी शत्रुकी गम नहीं, तिसविषे स्थित होहु, हम भी तिसी गडविषे स्थित हैं, जेते ज्ञानवान हैं, सो भी तिसीविषे स्थित होते हैं ॥ हे रामजी! काम क्रोध लोभ अभिमानादिक विकार आत्माविषे नहीं पाइते, जैसे रात्रिविषे दिन नहीं पाइता, तैसे विकाररूपी दिन गडरूपी रात्रिविषे नहीं पाइता, तातें अचिंत्यरूप गड है, जहां फुरणा कोउ नहीं, केवल शांतरूप है, तिसविषे अहंभाव त्यागिकरि स्थित होवै, तब अहं त्वं भाव निवृत्त

हो जावै, जब स्वरूपका साक्षात्कार होता है, तब ज्ञानी फुरणे अफुरणेविषे स्वरूपकों तुल्य देखता है, संपूर्ण जगत तिसकों आत्मरूप भासता है, तातें चिदावलीतें आदि देहपर्यंत जो अनात्म है, तिसकों क्रम करिके त्याग, प्रथम देहकों त्याग, बहुरि इंद्रियांके अभिमानकों त्याग, इसी क्रमकरि सर्वकों त्यागिके अपणे वास्तव स्वरूपविषे स्थित होहु ॥ ॥ इति श्रीयोगवासिष्ठे निर्वाणप्रकरणे जीवत्वाभावप्रतिपादनं नाम शताधिकाष्टमः सर्गः ॥१०८॥ ॥ वसिष्ठ उवाच॥हे रामजी ! यह संसार चेतनमात्र है, आत्मातें इतर कछु नहीं, आत्माही विश्वरूप होकरि स्थित हुआ है, जैसे सूर्यकी किरणांही जलाभास होता है, तैसे आत्माका चमत्कार दृश्यरूप होकरि स्थित हुआ है,जैसे संकल्प अरु संकल्प कर्त्ता भिन्न नहीं, जैसे आकाशही मोतीकी माला होकरी भासता है,तैसे आत्माही दृश्यरूप होकरि भासता है,जैसे बीजही वृक्ष फूल फल होता है, तैसे आत्माही दृश्यरूप होकरि स्थित हुआ है, जैसे जलके तरंग जलही हैं, तैसे विश्व आत्माही है ॥ हे रामजी ! चिदावली भी आत्माही है,जीव भी आत्माही है; अहंकार बुद्धि प्राण इंद्रियां देह विश्व आकाश काल दिशा पदार्थ सर्व आत्माही हैं, आत्मातें इतर कछु नहीं, तातें विश्वकों अपणा स्वरूप जाण, जैसे सूर्यका प्रकाश सूर्यही है, तैसे तूं जाण, सर्व मैं हों, जो ऐसे न जाणी सकै तौ ऐसे जाण, जो देह भी जड है, इंद्रियांकरि पालित है सो मैं नहीं, अरु इंद्रियां भी मैं नहीं, जो प्राण इंद्रियांका सार है, जो प्राण न होवैं तौ इंद्रियां किसी कामकी नहीं, अरु प्राण भी मैं नहीं, प्राणका सार मन है, जो मन मूर्छा होता है, प्राण आते जाते भी हैं तौ भी किसी कामके नहीं, अरु मन भी मैं नहीं, जो मनके प्रेरणेवाली बुद्धि है, जो निश्चय बुद्धि करती है, मन भी तहां जाता है सो भी मैं नहीं, जो बुद्धिका प्रेरक अहंकार है,अहंकार भी मैं नहीं, अहंकारका सार जीव है,जीवविना अहंकार किसी कामका नहीं, अरु जीव भी मैं नहीं, जीवका सार चिदावली है, चिदावली कहिये शुद्ध चिद्विषे चैतन्योन्मुखत्व होणा, जीव संज्ञातें प्रथम ईश्वरभाव चिदावली भी मैं नहीं, जो चिदावलीका सार चिन्मात्र

है, सो अद्वितीय निर्विकल्प स्वरूप है, इह सर्व अनात्म भ्रमकरि सिद्ध हुए हैं, मैं केवल शांतरूप आत्मा हौं ॥ हे रामजी! तेरा वास्तव स्वरूप है, सोइ होहु, तिसतें इतर अनात्मविषे अहंप्रतीतिका त्याग कर, तूं देहतें रहित निर्विकार है, तेरेविषे जन्ममृतादि विकार कोउ नहीं, अरु शांतरूप ज्यौंका त्यौं स्थित है, तूं कदाचित् स्वरूपतें अवर नहीं हुआ, तिसी स्वरूपविषे स्थित होहु ॥ इति श्रीयोगवासिष्ठे निर्वाणप्रकरणे सारप्रबोधनं नाम शताधिकनवमः सर्गः ॥१०९॥ ॥ ॥ ॥ वसिष्ठ उवाच ॥ हे रामजी! आत्मा चिन्मात्रतें सार अवर कछु नहीं, तिसीविषे स्थित होहु, जो ताप मिटि जावै ॥ हे रामजी! सर्व आत्माही स्थित है, जैसे बीजही फल फूल होकरि स्थित होता है, तैसे सर्व आत्माही स्थित है, तौ निषेध अरु त्याग किसका करिये ॥ ॥ वाल्मीक उवाच ॥ हे शिष्य! ऐसे वसिष्ठजीके वचन श्रवण करिके रामजी प्रसन्न हुआ, जैसे कमल सूर्यकों देखिकरि खिलि आता है, तैसे रामजीकी बुद्धि वसिष्ठजीके वचनोंरूपी सूर्यकरि खिलि आई अरु बोलत भया ॥ ॥ राम उवाच ॥ हे भगवन्! सर्वधर्मज्ञ, तुमारी कृपातें अब मैं जाग्या हौं, अरु बडा आश्चर्य है, जो आत्मा सर्वदा अनुभवरूप है, अरु अपणा आप है, तिसके प्रमादकरि मैं एता काल दुःख पाया है, जो अहंताममतारूपी बडा बोझा शिर उपर था, तिसकरि मैं दुःखी था, जैसे किसीके शिर उपर पथ्थरकी शिला होवै, अरु ज्येष्ठआषाढका सूर्य तपै, अरु पैंदे चलैं, तब दुःख पावते हैं, अरु जो उसके शिरतें कोउ उतारी लेवै, बलसों छायाविषे बैठावै तौ बडे सुखकों प्राप्त होता है, तैसे अज्ञानरूपी पैंदे अरु धूप तिसविषे अहंताममतारूपी शिलाकरि दुःखी था, तुम वचनरूपी बलकरि उतारि लीनी है, अरु आत्मरूपी वृक्षकी छायाविषे विश्राम कराया है ॥ हे भगवन्! अब मेरे तांई शांत पद प्राप्त हुआ है, अरु तीनों ताप मिटि गए हैं, अब जो सुमेरु पर्वतका भार आनि प्राप्त होवै तौ भी मेरे तांई कष्ट कोउ नहीं, अब मेरे सर्व संशय निवर्त हुए हैं, जैसे शरत्कालका आकाश निर्मल स्वच्छरूप होता है, तैसे रागदोषरूपी द्वंद्व मेरा नष्ट भया

है, अब मैं अपणे स्वभावविषे स्थित हुआ हौं, परंतु एक प्रश्न है, उत्तर कृपाकरि कहौ, जो महापुरुष वारं वार प्रश्न करणेविषे खेद नहीं मानते ॥ हे भगवन्! तुम कहते हो सर्व ब्रह्मही है, तौ शास्त्रका विधि निषेध उपदेश किसकों है, जो यह कर्म कर्तव्य है, यह कर्म कर्तव्य नहीं, सो इह उपदेश किसकों है? ॥ ॥ वसिष्ठ उवाच ॥ हे रामजी! आत्मातें इतर कछु नहीं, विश्व भी तिसका चमत्कार है, जैसे समुद्रविषे पवन करिके नानाप्रकारके तरंग फुरते हैं, अरु जलतें इतर कछु नहीं, तैसे आत्मा चेतनमात्र है, तिसतें चैत्योन्मुखत्व अहंभावकों लेकरि फुऱ्या है, तिसकरि देशकाल वस्तु बनि गए हैं, अरु शास्त्र फुरे हैं, बहुरि फुरणेनें दो रूप धारे हैं, एक विद्या, एक अविद्या, तिसविषे जो विद्यारूप जीव हुए हैं, सो ईश्वर कहाते हैं, अरु अविद्यारूप हुए हैं, सो इतर जीव हैं, जिनकों अपणे स्वरूपविषे अहंप्रत्यय वास्तवकी रही है, सो ईश्वर है, अरु जिनकों स्वरूपका प्रमाद हुआ, अरु संकल्पविकल्पविषे वहते हैं, सो जीव दुःखी हैं, हे रामजी! एती संज्ञा फुरणेविषे हुई है, तौ भी आत्मातें इतर कछु नहीं, जैसे एकही रस फूल फल वृक्ष हुआ है, रसतें इतर कछु नहीं, अरु आत्मा रसकी नांई भी प्रमाणकों नहीं प्राप्त भया, फुरणेकरि ईश्वर जीव विद्या अविद्या हुई है, आत्माविषे कछु नहीं ॥ हे रामजी! जिसका संकल्प अधिभूतकविषे दृढ नहीं हुआ, सो जीव शीघ्रही आत्मपदकों प्राप्त होता है, तिसकों आत्माका साक्षात्कार शीघ्रही होता है, अरु जिनका संस्कार अधिभूतकविषे दृढ हुआ है, सो चिरकालकरि प्राप्त होते हैं, आत्मपदकी प्राप्तिविना दुःख पावते हैं, अरु जिनकों आत्मपदकी प्राप्ति होती है, सो सुखी होते हैं ॥ हे रामजी! ज्ञानी अरु अज्ञानीके स्वरूपविषे भेद कछु नहीं, सम्यक् अरु असम्यक् दर्शनका भेद है ॥ हे रामजी! विद्या भी दो प्रकारकी है, एक ईश्वरवाद, एक अनीश्वरवाद है, जो ईश्वरवादी हैं, सो तुरत पदकों प्राप्त होते हैं, जो अनीश्वरवादी हैं, तिनकों जब ईश्वरकी भावना होती है, तब शास्त्र गुरु करिके ईश्वरकी प्राप्ति होती है, अरु ईश्वरवाद भी

दो प्रकार है, एक यह है, जो अवर वासना त्यागिकरि ईश्वरपरायण होते हैं, तौ शीघ्रही ईश्वरकों प्राप्त होते हैं, सो आत्माही ईश्वर है, जो सर्वका अपणा आप है, अरु एक ईश्वरकों मानते हैं; वासना संसारकी उर होती है, तौ चिरकालकरि प्राप्त होते हैं, अरु अनीश्वरवादी भी दो प्रकारके हैं, एक कहते हैं, जो कछु होवैगा, तिनकों होते होतेकी भावनातें शास्त्र गुरुकरि आत्मपदकी प्राप्ति होवैगी, अरु एक कहते हैं, कछु नहीं, तिनकों चिरकालकरि जब आस्तिकभावना होवैगी, तब आत्मपदकों प्राप्त होवैंगे ॥ हे रामजी! तिनके निमित्त विधि अरु निषेध कही है, जो इस शुभ कर्मकों अंगीकार करौ, अरु अशुभ कर्म त्यागौ, तिसकरि जब अंतःकरण शुद्ध होवैगा, तब आत्मपदकी प्राप्ति होवैगी, इसनिमित्त विधिनिषेध कही है, जो विधिनिषेध शास्त्र न कहै तौ बडा छोटेकों भोजन करि लेवै, इसनिमित्त शास्त्रका दंड है ॥ हे रामजी! स्वरूपतें किसीकों उपदेश नहीं, भ्रमविषे उपदेश है, जिस पुरुषका भ्रम निवृत्त हुआ है, सो मोहविषे बहुरि नहीं डुबता, जैसे जलविषे तूंबा नहीं डुबता, तैसे ज्ञानवान संसार अज्ञानविषे नहीं डुबता, अरु जिसका चित्त वासनाकरि आवर्या हुआ संसरता है, तिसकों इस संसारतें निकसणा कठिन है, जैसे उजाडका कूआ होता है, तिसविषे कोउ गिरै, तौ निकसणा कठिण होता है, तैसे चित्तसाथ मिलीकरि संसारतें निकसणा कठिण होता है ॥ हे रामजी! इस चित्तकों स्थिर कर, जो दुःख तेरे मिटि जावैं, अरु सत्ता समान पदकों प्राप्त होवै ॥ हे रामजी! जिसकों आत्माका साक्षात्कार हुआ है, अरु अनात्मविषे अहंप्रत्यय निवृत्त भया है, सो पुरुष जो कछु करता है, तिसकरि बंधायमान नहीं होता, सदा अकर्ता आपकों देखता है, अरु जिसकी अहंप्रत्यय अनात्मविषे है, सो पुरुष करै तौ भी करता है, अरु जो न करै तौ भी करता है ॥ हे रामजी! जो ज्ञानी शुभ कर्म करता है, तौ शुभ कर्म करता हुआ स्वर्गकों प्राप्त होता है, अरु अशुभ कर्म करणेसों नरककों प्राप्त होता है, अरु जो शुभ कर्मकों त्यागता है, तौ भी

नरककों प्राप्त होता है, काहेतें जो अनात्मविषे आत्मअभिमान है, तातें बुद्धि इंद्रियांकों मनकरि निग्रह करु, अरु कर्म इंद्रियांकरि चेष्टा करु, देखणे सुनणे सुंघणेतें मैं तुझकों वर्जन नहीं करता, यही कहता हौं जो अनात्मविषे अभिमानकों त्याग, जब अनात्म अभिमानकों त्यागैगा, तब शांत पदकों प्राप्त होवैगा, जहां तेरा चित्त फुरैगा, तहां आत्माही भासैगा, आत्मातें इतर कछु न भासैगा, तातें चित्तकों त्याग, चित्त कहियें अहंभाव, अहंभावकों त्यागिकरि आत्मपदविषे स्थित होहु, अरु जैसे विश्वकी उत्पत्ति भई है, सो सुण, शुद्ध चेतनमात्र स्वरूपविषे चिदावलीरूप अहं तरंग फुर्या है, अरु तिस चिदावलीरूपी समुद्रविषे जीवरूपी तरंग उपजता है, अरु जीवरूपी समुद्रविषे अहंकाररूपी तरंग भास्या है, अरु अहंकाररूपी समुद्रविषे बुद्धिरूपी तरंग उपजा है, तिस बुद्धिरूपी समुद्रविषे चित्तरूपी तरंग भास्या, अरु चित्तरूपी समुद्रविषे संकल्परूपी तरंग उपजा है, तिस संकल्परूपी समुद्रविषे जगतरूपी तरंग उपजा है, अरु जगतरूपी समुद्रविषे देहरूपी तरंग भास्या है, तिसके संयोगतें दृश्यका ज्ञान हुआ है, जो यह पदार्थ है, यह नहीं, यह ऐसे है, तिसविषे देश काल दिशा सर्व हुए हैं ॥ हे रामजी ! संकल्पकरि हो गए हैं, सो आत्मातें इतर कछु नहीं, केवल शांतरूप एकरस आत्मा है, तिसविषे नानाप्रकारके आचार रचे हैं, आत्मातें इतर कछु नहीं, जैसे स्वप्नकी सृष्टि नानाप्रकार हो भासती है, सो अपणाही अनुभव होता है, तैसे यह जगत भी जाण, आत्मा सर्वदा एकरस अद्वैत है, शुद्ध है, परम निर्वाण है, सर्वदा अपणे आपविषे स्थित है, फुरणे करिके नानाप्रकारकी कलना उदय भई है ॥ हे रामजी ! शुद्ध आत्माविषे जो चिदेव हुई है, चिदेव पंचभूतानि, चिदेव भुवनत्रयं, सो चिदेव संज्ञा भी संकल्पविषे हुई है, आत्माविषे चिदेव संज्ञा भी नहीं, आत्मा निर्वाच्य पद है, तिसविषे वाणीकी गम नहीं, शुद्ध शांतरूप है, तिसविषे चिदेव जो फुरी है, तिस फुरणेविषे संसार हुएकी नांई स्थित है, जैसे एकही बीजनें वृक्ष फूल फल आदिक संज्ञा पाई है, सो

बीजतें इतर कछु नहीं, अरु आत्मा बीजकी नांई भी परिणम्या नहीं, संकल्पतेंही नाना संज्ञा कल्पी है, अरु जगत स्थित हुआ है, तौ भी आत्मातें इतर कछु नहीं, जैसे वायु चलता है, तौ भी वायु है, ठहरता है, तौ भी वायु है, तैसे आत्माविषे नानात्व कछु नहीं, केवल शुद्ध अद्वैत आत्मा है, आत्मारूपी समुद्र विषे नानाप्रकार विश्वरूपी तरंग स्थित हैं॥ हे रामजी! आकार भी आत्मातें इतर कछु नहीं, जो आत्मातें इतर भासै सो मिथ्या जाण, मृगतृष्णाके जलकी नांई जाणीकरि तिसकी भावना त्याग, अरु स्वरूपकी भावना करु॥ ॥ इति श्रीयोगवासिष्ठे निर्वाणप्रकरणे ब्रह्मैकत्वप्रतिपादनं नाम शताधिकदशमः सर्गः ॥११०॥ ॥ ॥ ॥ वसिष्ठ उवाच॥ हे रामजी! मेरे वचनोंकों धारि, अरु हृदयविषे आस्तिक भावना करु, जो यह सत्य कहते हैं, अरु सर्व त्याग करु, जब सर्व त्याग करैगा, तब चित्त क्षीण हो जावैगा, जब क्षीणचित्त हुआ, तब शांति होवैगी॥ हे रामजी! काष्ठ मौन होकरि अंतरतें सर्व त्याग करु, अरु बाह्य कर्मों कों करु, अभिमानतें रहित होकरि अंतर्मुखी होहु, अंतर्मुखी कहिये आत्माविषे स्थित होणा, जब आत्माविषे स्थित होवैगा, तब विद्यमान दृश्य भी तेरे तांई न भासैगा, काहेतें जो सर्व आत्माही भासैगा, अरु जो तेरे पास भेरीके शब्द होवैंगे तौ भी न भासैगा, अरु जो सुगंधि लेवैगा, तौ भी नहीं लीनी, जो कछु क्रिया करैगा, सो तेरे तांई स्पर्श न करैगी, आकाशकी नांई सर्वतें असंग रहैगा॥ हे रामजी! कछु देखै सो स्वरूपतें इतर न देखै, अरु जो बोलै सो भी आत्मातें इतर न फुरै, अंध अरु गुंगेकी नांई अरु पत्थरकी शिलावत् मौन हो रहु, संकल्पतें रहित अरु चेष्टा तेरी यंत्रकी पुतलीवत् खडी होवैगी, जैसे यंत्रकी पुतली तागेकी सत्ता करि चेष्टा करती है, तैसे नीति शक्तिकरि प्राणोंकी चेष्टा तेरी होवैगी, स्वाभाविक जो कछु किया है, सो अभिमानतें रहित होकरि स्थित होणा, अरु जो अभिमानसहित चेष्टा करता है, सो मूर्ख असम्यक्दर्शी है, अरु जो सम्यक्दर्शी है, तिसकों अनात्मविषे अभिमान नहीं होता॥ हे रामजी! जिसकों अनात्म अभिमान

नहीं अरु चित्त जिसका लेपायमान नहीं होता, सो सारी सृष्टिका संहार करै, अथवा उत्पत्ति करै, तौ उसकों बंधन कछु नहीं होता, जो सर्व कर्मअभिलाषतें रहित होकरि करता है॥ हे रामजी! समाधिविषे स्थित होहु, अरु जागृतकी नांई सब कर्म करु, तेरेविषे दृष्टि भी आवै तौ भी तिनतें सुषुप्तकी नांई फुरणा कोउ न फुरै, अपणे स्वरूपकी समाधि रहै, अरु समाधि भी तब कहिए जो कोउ दूसरा होवै, जो इसविषे स्थित होइयें इसका त्याग करियें ॥ हे रामजी! जहां एक शब्द अरु दो शब्द कहणा भी नहीं, अद्वितीयात्मा परमार्थसत्ता है, तिसविषे चित्तनें नानाप्रकारके विकार कल्पे हैं, ज्ञानीकों एकरस भासता है, अरु ज्ञानीकों ज्ञानी जानता है, जैसे सर्पके खोजकों सर्प जानता है, तैसे ज्ञानीकों एकरस आत्माही भासता है, सो ज्ञानीही जानता है, अरु मूर्खकों संकल्पकरि नानाप्रकार जगत भासता है, तातें संकल्पकों त्यागिकरि अपणे प्रकृत आचारविषे विचरु, जैसे उन्मत्तकी चेष्टा स्वाभाविक होती है, जैसे बालककी चेष्टा स्वाभाविक होती है, अंग हलते हैं, तैसे अभिमानतें रहित होकरि चेष्टा करु, जैसे पत्थरकी शिला जड होती है, तैसे दृश्यकी भावनातें रहित होहु, जो फुरै कछु नहीं, जडकी नांई जब ऐसा होवैगा, तब शांत पदकों प्राप्त होवैगा ॥ हे रामजी! चित्तके संबंध करि क्षोभ उत्पन्न होता है, जैसे वसंतऋतुविषे फूल उत्पन्न होते हैं, तैसे चित्तरूपी वसंतऋतुविषे दुःखरूपी फूल उत्पन्न होते हैं, जब तूं चित्तकों शांत करैगा, तब परमपदकों प्राप्त होवैगा, सो पद कैसा है, सूक्ष्मतें सूक्ष्म है, अरु स्थूलतें स्थूल है, तातें तूं असंग होहु, जब तूं स्थूलतें स्थूल होवैगा, तव भी असंग रहैगा, ऐसे पदकों पायकरि काष्ठपत्थरकी नांई मौन होहु ॥ हे रामजी! दृश्य पदार्थकों त्यागिकरि जो द्रष्टा है जानणेवाला, तिसविषे स्थित होहु ॥ हे रामजी! इंद्रियां अपणे अपणे विषयकों ग्रहण करतियां हैं, तिनकी उर तूं भावना मत करु, जो यह सुंदररूप है, इसकी प्राप्ति होवै, भलेविषे प्राप्त होणेकी भावना तूं मत करही, इनके जानणेवाला जो आत्मा है, तिसविषे स्थित होहु, जो पुरुष द्रष्टाविषे स्थित होता है, सो

गौपदकी नांई संसारसमुद्रकों लंघि जाता है ॥ हे रामजी ! जो पदार्थ दृष्ट आते हैं, तिनविषे अपणी अपणी सृष्टि है, कैसी सृष्टि है, जो संकल्पमात्रही है, अपणे अपणे संकल्पविषे स्थित है, अरु सर्व संकल्प आत्माके आश्रय हैं, जैसे सब पदार्थ आकाशविषे स्थित हैं, तैसे सर्व संकल्पकी सृष्टि आत्माके आश्रय है, अरु एकके संकल्पकों दूसरा नहीं जानता, सृष्टि अपणी अपणी है, जैसे समुद्रविषे जेते बुदबुदे हैं, तिनकों जलकरि एकता है, अरु आकारकरि एकता नहीं, तैसे स्वरूपकरि सबकी एकता है, अरु संकल्प सृष्टि अपणी अपणी है, अरु जो पुरुष ऐसे चिंतवता है, जो मैं उसकी सृष्टिकों जाणों तब जानता है ॥ हे रामजी ! आत्मा कल्पवृक्ष है, जैसी कोउ भावना करता है तैसी सिद्धि होती है, जब ऐसीही भावना करिके स्वरूपविषे जुडता है, जो सब सृष्टि मेरे तांई भासै तौ भावना करिके भासी आती है, अरु ज्ञानी ऐसी भावना नहीं करता, काहेतें जो आत्मातें इतर कोउ पदार्थ नहीं जानता, अरु जानता है, जो स्वरूपतें सबकी एकता है, अरु संकल्परूपकरि एकता नहीं होती, जैसे तरंगोंकी एकता नहीं, अरु जलकी एकता है, अरु जो एक तरंग दूसरेसाथ मिलि जाता है, तौ उससाथ एकता होती है, तैसे एकका संकल्प भावनाकरि दूसरेसाथ मिलता है, तातें ज्ञानी जानता है, संकल्परूप आकार नहीं मिलते, अरु स्वरूपकरि सबकी एकता है, अरु जिसकी भावना होती है, जो मैं इसकी सृष्टिकों देखौं, तब उसके संकल्पसाथ अपणा संकल्प मिलायकरि देखता है, तब उसकी सृष्टिकों जानता है, जैसे दो मणि होवैं, तिनका प्रकाश भिन्न भिन्न होता है, जब दोनों एकठी राखियें, एकही ठौरविषे, तब दोनोंका प्रकाश भी एकठा हो जाता है, तैसे संकल्पकी एकता भावनाकरि होती है, अरु ज्ञानीकों प्रथम संकल्प हुआ होवै, जो मैं उसकी सृष्टिकों देखौं तौ संकल्पकरि देखता है, अरु ज्ञानके उपजेतें वांछा नहीं रहती ॥ हे रामजी ! इच्छा चित्तका धर्म है, जब चित्तही नष्ट हो गया, तब इच्छा किसकी रहै, जब स्वरूपका प्रमाद होता है, तब चित्तरूपी दैत्य प्रसन्न होता

है, जो यह मेरा आहार हुआ, मैं इसका भोजन करौंगा ॥ हे रामजी! जो पुरुष चित्तकी उर हुआ अरु स्वरूपकी भावना न भई, तब चित्तरूपी दैत्य जन्मरूपी वनविषे लिये फिरता है, अरु तिसका भोजन करता रहता है, जो उसका पुरुषार्थ नाश करता है, अरु आत्मभावनावाली बुद्धि उत्पन्न होणे नहीं देता, जैसे वृक्षकों अग्नि लगै, तब बहुरि उसविषे फल नहीं पडते, तैसे पुरुषार्थरूपी वृक्षकों भोगरूपी अग्नि लगी, तब शुद्धबुद्धिरूपी फल उत्पन्न नहीं होता ॥ हे रामजी! चित्त आत्माविषे जोड, विषयकी उर जाणे न देवहु, यह चित्त दुष्ट है, जब इसकों स्थिर करौगे, तब परम अमृतकरि शोभायमान होहुगे, जैसे पूर्णमासीका चंद्रमा अमृतकरि शोभता है, तैसे ब्रह्म लक्ष्मीकरि शोभौगे, अरु परम निर्वाण पदकों प्राप्त होहुगे ॥ इति श्रीयोगवासिष्ठे निर्वाणप्रकरणे निर्वाणवर्णनं नाम शताधिकैकादशः सर्गः ॥ १११ ॥ ॥ ॥

॥ वसिष्ठ उवाच ॥ हे रामजी! सप्तभूमिका ज्ञानकी हैं, इनकरि ज्ञान उत्पन्न होता है ॥ ॥ राम उवाच ॥ हे भगवन्! जिस भूमिकाविषे जिज्ञासी प्राप्त होता है, तिसका लक्षण क्या है, यह सप्त भूमिका क्या हैं, अरु प्राप्त कैसे होतियां हैं सो कहौ ॥ ॥ वसिष्ठ उवाच ॥ हे रामजी! यह सप्त भूमिका तुझकों कहता हौं, जिस प्रकार प्राप्त होतियां हैं,अरु जिस प्रकार भूमिकातें ज्ञान प्राप्त होता है,सो श्रवण करु ॥ हे रामजी! जब बालक माताके गर्भविषे होता है, अरु बाह्य निकसता है, तब इसकों दृढ सुषुप्ति जड अवस्था होती है,जैसे ज्ञानीकी होती है, परंतु बालकविषे संस्कार रहता है, तिसकरि संस्कारकी सत्यता आगे होणी है, जैसे बीजविषे अंकुर होता है, तिसतें आगे वृक्ष होणा है, तैसे बालककी भावी होणी है, अरु ज्ञानीकी भावी नहीं होणी, जैसे दग्धबीजविषे अंकुर नहीं होता, तैसे ज्ञानीकी भावी नहीं होणी, संसारतें सुषुप्त है, अरु स्वरूपविषे नहीं, इसीतें भावी तिसविषे नहीं होणी, जब बालककों बाह्य निकसेतें कोउ काल व्यतीत होता है, तब दृढ जडता निवृत्त होती है, अरु सुषुप्ति रहती है, केते कालतें उपरांत सुषुप्ति भी लय

होती है, अरु चेतनता होती है, तब जानता है जो यह मैं हौं, यह मेरे पिता माता हैं, तब कुलवाले तिस कों सिखावते हैं जो यह मीठा है, यह कडवा है, यह तेरी माता है, यह पिता है, यह तेरा कुल है, इसकरि पाप होता है, इसकरि पुण्य होता है, इसकरि स्वर्ग पावता है, इसकरि नरक पावता है, इस प्रकार यज्ञ होता है, इस प्रकार तप होता है, इस प्रकार दान करता है ॥ हे रामजी! इस प्रकार कुलके उपदेशकरि अरु शास्त्रके भयकरि धर्मविषे विचरता है, अरु पापका त्याग करता है, ऐसा जो शास्त्र अनुसार विचरणेवाला पुरुष सो धर्मात्मा कहता है, सो धर्मात्मा पुरुष भी दो प्रकारके हैं, एक प्रवृत्तिकी उर हैं, एक निवृत्तिकी उर हैं, जो प्रवृत्तिकी उर हैं सो पुण्यकर्मोंकरि स्वर्ग फल भोगते हैं, उह मोक्षकों उत्तम नहीं जानते, इसतें संसारविषे भ्रमते हैं, जलके तृणवत्, कबि चिरकालतें इस क्रमविषे आयकरि मुक्त होते हैं, अरु जो निवृत्तिकी उर होता है, तिसकों विषयभोगतें वैराग्य उपजता है, अरु कहता है जो यह संसार मिथ्या है, मैं इसकों तरौं, अरु तिस पदकों प्राप्त होउं, जहां क्षय अरु अतिशय न होवै, यह संसार सर्वदा चलरूप है, अरु दुःखदाई है ॥ हे रामजी! तिस पुरुषकों इस क्रम करिके ज्ञानविज्ञान उत्पन्न होते हैं, अरु जो पशुधर्मा मनुष्य हैं, तिनकों ज्ञान प्राप्त होणा कठिन है, पशुधर्मा कहिये जो शास्त्रके अर्थकों नहीं जानते, जो शुभ क्या है, अरु अशुभ क्या है, अपणी इच्छाविषे वर्त्तणा, अनुभवकों ग्रहण करणा, विचारतें रहित होणा, अरु मनुष्य भी दो प्रकारके हैं, एक प्रवृत्तिका लक्षण, एक निवृत्तिका लक्षण है, प्रवृत्ति कहियें जिसकों शास्त्र शुभक हैं, तिसकों ग्रहण करणा, अशुभका त्याग करणा, कामना धारिके यज्ञादिक शुभ कर्म करणे फलके निमित्त, जो स्वर्गधनपुत्रादिक मेरे तांई प्राप्त होवेंगे, तिन प्रार्थना धारीकरि शुभ कर्म करणे, इस प्रकार संसारसमुद्रविषे वहते हैं, अरु चिरकालकरि निवृत्तिकी उर भी आते हैं, तब स्वरूपकों पावते हैं, सो निवृत्ति क्या है, जो निःकाम होकरि शुभ कर्म करणे; तिनकरि अंतःकरण शुद्ध होता है, तब तिस

कों वैराग्य उपजता है, अरु कहता है, मेरे तांई कर्मोंसाथ क्या है, अरु फलोंकरि क्या है, मैं किसी प्रकार आत्मपदकों प्राप्त होउं, अरु संसारतें कब मुक्त होउंगा, यह संसार मिथ्या है, अरु भोगकरि मेरे तांई क्या है, यह भोग सर्प हैं ॥ हे रामजी! इस प्रकार भोगकी निंदा करता है, अरु उपरत होता है, अरु शम दम आदिक जो ज्ञानके साधन हैं तिनविषे विचरता है, अरु देश काल पदार्थकों शुभ अशुभ विचारता है, अरु मर्यादासाथ बोलता है, अरु संतजनका संग करता है, सच्छास्त्र ब्रह्मविद्याकों वारंवार विचारता है, इस प्रकार उसकी बुद्धि बढती जाती है, अरु संतजनका संग करता है, जैसे शुक्लपक्षके चंद्रमाकी कला दिन दिनप्रति बढती है तैसे इसकी बुद्धि बढती है, अरु विषयतें उपरत होती है, तीर्थ ठाकुरद्वारे शुभ स्थान पूजता है, अरु देह इंद्रियांकरि संतकी टहल करता है, अरु सर्वसाथ मित्रभाव दया सत्य कोमलताकरि विचरता है, ऐसा वचन बोलता है, जिसकरि सब कोउ प्रसन्न होवैं, अरु यथाशास्त्र होवैं, अरु इतर किसीकों नहीं कहणा, अरु अज्ञानीका संग त्यागणा, अरु स्वर्ग आदिक सुखकी भावना न करणी, केवल आत्मपरायण होणा, संत अरु शास्त्रोंकी दृढ भावना करणी, तिनके अर्थोंविषे सुरती लगावणी अवर किसी उर चित्त न लगावणा, जैसे कदर्यदरिद्री सर्वदा धनकी चिंतवना करता है, तैसे उह सदा आत्माकी चिंतवना करता है, जो पुरुष एते गुण संयुक्त है, तिसकों प्रथम भूमिका प्राप्त भई है, अरु पापरूपी सर्पकों मोर समान सिरनी करिके नाश करता है, संतजन सच्छास्त्र अरु धर्मरूपी मेघकों गर्दन उंची करि देखता है, अरु प्रसन्न होता है, इसका नाम शुभेच्छा है, तिसकों बहुरि दूसरी भूमिका आय प्राप्त होती है, जैसे शुक्लपक्षके चंद्रमाकी कला बढती जाती है, तैसे उसकी बुद्धि बढती जाती है, तिसके यह लक्षण हैं, जो सच्छास्त्र ब्रह्मविद्याकों विचारणा, अरु दृढ भावना लगावणी, तिस विचारका कवच गलेविषे पावता है, तिसकरि शस्त्रोंका घाउ कोउ नहीं लगता, जो इंद्रियांरूपी चोर हैं, इच्छारूपी तिनके हाथविषे बरछी

है, सो विचाररूपी कवच पहिरणेवालेकों नहीं लगती ॥ हे रामजी ! इंद्रियांरूपी सर्प हैं, तृष्णा तिनविषे विष है, तिसकरि मूर्खकों मारतियां हैं, अरु विचारवान जो पुरुष है, सो इंद्रियांके विषयकों नाशकरि छोडता है, अरु सर्व उरतें उदासीन रहता है, दुर्जनकी संगतिका बल करिके त्याग करता है, जैसे गधा तृणकों त्यागता है, तैसे मूर्खकी संगति देहतें लेकरि त्यागता है, अरु सर्व इच्छाका त्याग किया है, परंतु एक इच्छा तिसविषे भी रहती है, सो दया सर्वपर करता है, अरु संतोषवान रहता है, अरु निषेध गुण स्वाभाविक जाते रहते हैं, दंभ गर्व मोह लोभ आदिक तिसके स्वाभाविक नष्ट हो जाते हैं, जैसे सर्प कंचुकीकों त्यागिकरि शोभायमान होता है, तैसे विचारवान बाह्य इंद्रियांकों त्यागि करिके शोभता है, अरु जो क्रोध भी तिसविषे दृष्ट आता है, तौ क्षणमात्र होता है, हृदयविषे स्थित नहीं हो शकता है, अरु खाणा पीणा लेणा देणा जो कछु क्रिया है, सो विचारपूर्वक करता है, अरु सर्वदा शुद्धमार्गविषे विचरता है, संतजनोंका संग करणा, अरु सच्छास्त्रोंके अर्थ विचारणे, बोधकों बढावणा, तप करणा, तीर्थोंका स्नान करणा इस प्रकार कालकों व्यतीत करता है ॥ हे रामजी ! यह दूसरी भूमिका है, जब तीसरी भूमिका आती है, तब श्रुति जो हैं वेद, अरु स्मृति जो हैं धर्मशास्त्र तिनके अर्थ हृदयविषे स्थित होते हैं, जैसे कमलपर भंवरा आनि स्थित होता है, तैसे तिस पुरुषके हृदयविषे शुभ गुण स्थित होते हैं, फूलोंकी शय्या भी सुखदाई नहीं भासती, वन अरु कंदरा सुखदायके भासते हैं, जो वैराग्य तिसका दिन दिन बढता जाता है, अरु तलाव बावलियां नदियांविषे स्नान करणा अरु शुभस्थानोंविषे रहणा, पत्थरकी शिलापर शयन करणा, अरु देहकों तपकरि क्षीण करणा, अरु धारणाकरि चित्तकों किसी ठौरविषे न लगावणा, अरु आत्मभावना ध्यान करणा, अरु भोगतें सर्वदा उपरांत होणा, भोगकों अंतवंत विचारणा, जो यह स्थिर नहीं रहते, अरु देहके अहंकारकों उपाधि जाणीकरि त्यागता है, रक्त मांस पुरीषादिकतें पूर्ण जाणीकरि इसविषे अहंकारकों त्यागता है, अरु

निंदा करता है, सूके तृणकी नाई तुच्छ जाणीकरि त्यागता है, जैसे तृण विष्ठाकरि संयुक्त होवै, अरु तिसकों त्यागता है, तैसे देहके अहंकारकों त्यागता है, अरु कंदराविषे विचरणा, फूलफलका आहार करणा, अरु संतजनोंकी टहल करणी, इस प्रकार आयुर्बलाकों वीतावता है, सदा असंग रहता है, यह तीसरी भूमिका है॥ ॥ इति श्रीयोगवासिष्ठे निर्वाणप्रकरणे प्रथमद्वितीयतृतीयभूमिकालक्षणविचारो नाम शताधिकद्वादशः सर्गः ॥ ११२॥ ॥ वसिष्ठ उवाच ॥ हे रामजी! यह ज्ञानका साधन है, ब्रह्मविद्याकों विचारणा, वारंवार उसके अर्थकी भावना करणी, अरु पुण्यक्रियाविषे विचरणा, इसतें इतर ज्ञानका साधन नहीं, इसकरि ज्ञानकी प्राप्ति होती है, जिस पुरुषकों ऐसी भावना हुई है, तिसकों नानाप्रकारकी सुंगधि अगर चंदन चो एतें आदि लेकरि अरु अप्सरा अनिच्छित आय प्राप्त होवै, तब तिनका निरादर करता है, अरु जो स्त्री कों देखता है, तौ भी माता समान जाणता है, अरु पराए धनकों पत्थरे वटे समान देखीकरि वांछा न करता है, अरु सर्व भूतकों देखीकरि दयाही कर्त्ता है, जैसे आपकों सुख करि प्रसन्न दुःखकरि अनिष्ट जानता है,तैसे उह अवरकों भी आप जाणीकरि सुख देता है,अरु दुःख किसीकों नहीं देता, इस प्रकार पुण्यक्रियाविषे विचरता है, अरु सच्छास्त्रके अर्थका अभ्यास करता है, सर्वदा असंग रहता है, अरु असंगता भी दो प्रकारकी है॥ ॥ राम उवाच ॥ हे भगवन्! असंग संगका लक्षण क्या है, तिनका भेद तौ तुमकों होवैगा॥ ॥ वसिष्ठ उवाच ॥ हे रामजी! असंग दो प्रकारका है, एक समान है, एक विशेष है, तिनका लक्षण श्रवण करु, प्रथम समान यह है, जो उह कहता है, मैं कछु नहीं करता, न मैं किसीकों देता हौं, न मेरे तांई कोउ देता है, सर्व ईश्वरकी आज्ञा वर्ती है, जिसकों धन देणेकी इच्छा होती है, तिसकों धन देता है, जिससों लेणा होता है, तिससों लेता है, इसके आधीन कछु नहीं, अरु जो कछु दान तप यज्ञादि करता है, सो ईश्वरार्पण करता है,अपणा अभिमान कछुनहीं करता,अरु कहता है,सब ईश्वरकी शक्तिकरि होता है,

इस प्रकार निरभिमान होकरि धर्मचेष्टाविषे स्वाभाविक विचरता है, अरु जो कछु इंद्रियांके भोगकी संपदा है, तिसकों आपदा जानता है, भोगकों महाआपदारूप मानता है, संपदा आपदारूप है, संयोग वियोगरूप है, जेते पदार्थ हैं, सो सब संनिपातरूप हैं, विचारकरि नष्ट हो जाते हैं, सबकों नाशरूप जानता है, संयोगवियोगविषे दुःखदाई है, परस्त्रीकों विषकी वल्ली समान रसतें रहित जानता है, अरु सर्व पदार्थोंकों परिणामी जाणीकरि इच्छा किसीकी नहीं करता है, अरु संपूर्ण विश्वका जो ईश्वर है, जिसकों सुख देणा है, तिसकों सुख देता है, जिसकों दुःख देणा है, तिसकों दुःख देता है, इसके हाथ कछु नहीं, करणे करावणेवाला ईश्वर है, न मैं कर्त्ता हों, न मैं भोक्ता हों, न मैं वक्ता हों, जो कछु होता है, सो सब ईश्वरकी सत्ता होकरि होता है, ऐसे निरभिमान होकरि पुण्यक्रियाकों करता है, सो समान असंग है, तिसके वचन सुनणेतें श्रवणकों अमृतकी प्राप्ति होती है, इस प्रकार संतके मिलणेकरि भूमिकातें जिसकी बुद्धि बढी है, अरु निरभिमान है, तिसके उपदेशविषे अनुभवकरि तबलग अभ्यास करै, जबलग हाथपर आंवलेकी नांई आत्माका अनुभव साक्षात्कार प्रत्यक्ष होवै, अरु यह जो कहा था ईश्वर सब कर्त्ता है, सो समान असंग है, अरु विशेष असंगवाला कहाता है, जो न मैं कछु करता हों, न करावता हों, केवल आकाशरूप आत्मा हों, न मेरेविषे करणा है, न करावणा है, न कोउ अवर है, न मेरा है, केवल आकाशरूप अद्वैत आत्मा हों ॥ हे रामजी ! उह पुरुष न अंतर न बाहिर देखता है, न पदार्थ न अपदार्थ, न जड, न चेतन, न आकाश, न पातालकों देखता है, न देशकों, न पृथ्वीकों, न मैं मेरेकों देखता है, निर्वास अज अविनाशी सर्व शब्द अर्थोंतें रहित केवल शून्य आकाशविषे स्थित है, चित्ततें रहित चेतनविषे जो प्रस्थित है, तिसकों असंग श्रेष्ठ कहिता है, बाह्य उसकी चेष्टा दृष्ट भी आती है, तौ भी अंतर पदार्थकी भावनाका अभाव है, जैसे जलविषे कमल दृष्ट भी आता है, परंतु उंचाही रहता है, तैसे क्रियाविषे विचरता दृष्ट भी आता है, परंतु असंग र

हता है, कामना उसकों कोउ नहीं रहती, जो यह होवै, अरु यह न होवै, काहेतें जो उसकों संसारका अभावनिश्चय भया है, सर्व कलनातें रहित है, आत्मातें इतर किसी पदार्थकी सत्ता नहीं फुरती, सो श्रेष्ठ असंग कहता है, अरु करणेकरि उसका अर्थ कछु सिद्ध नहीं होता, अकरणेविषे प्रत्यवाय नहीं होता, उह सर्वदा असंग है, संसारविषे डूबता कदाचित् नहीं, संसारसमुद्रके पारकों प्राप्त हुआ है, अरु अनात्मविषे आत्मभावना तिस पुरुषनें त्यागी है, अहंभावका त्याग किया है, जेते पदार्थ हैं, इष्टअनिष्टरूप, तिनके सुखदुःखकी वेदना नहीं फुरती, सदा मौनरूप है, ऐसा पतथर समान है, सो श्रेष्ठ असंग कहता है ॥ हे रामजी! एक कमल है, सो अज्ञानरूपी कीचसों निकसीकरि आत्मारूपी जलविषे विराजता है, संसारकी अभावना उसका बीज है, अरु तृष्णारूपी उस जलविषे मच्छियां हैं, कमलके चउफेर फिरतियां हैं, अरु कुकर्म दुःखरूपी तिससाथ कांटे हैं, अज्ञानरूपी रात्रिकरि मुख मूंदि रहता है, अरु विचाररूपी सूर्यके उदय हुएतें खिलता है, अरु शोभता है, सुगंधि तिसविषे संतोष है, सो हृदय बीच लगता है, फल तिसका असंग है, तीसरी भूमिकाविषे यह उगता है ॥ हे रामजी! संतकी संगति अरु सच्छास्त्रोंका विचरणा सारकों प्राप्त करता है, इन करिके अमृत मोक्षकों प्राप्त होता है, बडा कष्ट है, जो ऐसे स्वरूपकों विस्मरण करिके जीव दुःखी होते हैं, इसका स्वरूप दुःखोंका नाश करता है, जिसविषे दुःख कोउ नहीं, आनंदरूप है, इन भूमिकाद्वारा प्राप्त होता है, बहुरि बंधमान नहीं होता ॥ हे रामजी! यह तीसरी भूमिका ज्ञानके निकट वरती है, अरु विचारवान इन भूमिकाविषे स्थित होकरि बुद्धिकों बढावते हैं, जब इस प्रकार बोधकों बढावता है, अरु शास्त्र युक्तिसाथ रक्षा करता है, तब क्रम करिके यह तिसरी भूमिकाकों प्राप्त होता है, तहां इसकों असंगता प्राप्त होती है, जैसे किरसांणी खेतीकी रक्षा करता है, बढावता है, तैसे विचाररूपी जलकरि बुद्धिकों बढावता है, जब बुद्धिरूपी वल्ली बढती है, तब चतुर्थ भूमिका प्राप्त होती है,

अरु अहंकार मोहादिक शत्रुतें रक्षा करता है ॥ हे रामजी ! इस भूमिकाकों प्राप्त होकरि यह ज्ञानवान होता है, सो यह भूमिका क्रम करिके प्राप्त होती है, कै बडे पुण्य कर्म कियें होवैं, तिनकरि आनि फुरती है, अथवा अकस्मात् आनि फुरती है, जैसे नदीके तटपर कोउ आय बैठा होवै, अरु नदीके वेगकरि बीच जाय पडै, तैसै जब पहिली भूमिका प्राप्त होती है, तब फेरिबुद्धिकों बढावता है, जब बुद्धिरूपी वल्ली बढती है, तब ज्ञानरूपी फल लगता है, जब ज्ञान उपजा, तब प्रत्यक्ष क्रिया तिसविषे दृष्ट भी आवै, तौ भी इसका अभिमान नहीं रहता, जैसे शुद्ध मणि प्रतिबिंबकों ग्रहण भी करती है, परंतु रंग कोउ नहीं चढता ॥ ॥ इति श्रीयोगवासिष्ठे निर्वाणप्रकरणे तृतीयभूमिकाविचारो नाम शताधिकत्रयोदशः सर्गः ॥ ११३ ॥

॥ राम उवाच ॥ हे भगवन् ! तुमनें भूमिका वर्णन करि, तिसविषे मेरे तांई यह संशय है, जो भूमिकातें रहित हैं, अरु प्रकृतिके सन्मुख हैं, तिनकों भी कदाचित् ज्ञान उपजैगा, अथवा न उपजैगा, अरु जिसनें एक भूमिका पाई होवै, कै दो भूमिका पाई होवैं, अथवा तीसरी भूमिका पाई होवै, और शरीर तिसका छूटि गया, अरु आत्मापदका साक्षात्कार न भया, अरु स्वर्गादिककी उसकों कामना भी नहीं तब उह किस गतिकों प्राप्त होता है ॥ ॥ वसिष्ठ उवाच ॥ हे रामजी ! उह पुरुष जो विषयी हैं, तिनकों ज्ञान प्राप्त होणा कठिन है, उह वासना करिके घटीयंत्रकी नांई फिरते हैं, कबहू स्वर्ग, कबहू पाताल जाते हैं, अरु दुःख पावते हैं, कदाचित् अकस्मात काकतालीयन्यायकी नांई उसकों संतका संग, अरु सच्छास्त्रोंका श्रवण करणा यह वासना आय फुरती है, अरु जैसे मरुस्थलविषे वल्ली लगणी कठिन है, तैसे जिस पुरुषकों आत्माका प्रमाद है, अरु भोगकी भावना है, तिसकों ज्ञान प्राप्त होणा कठिन है, परंतु जब अकस्मात् संतके संगतें तिसकों वैराग्य उपजता है, अरु बुद्धि उसकी निवृत्तिकी उर आती है, तब भूमिका द्वारा ज्ञान तिसकों प्राप्त होता है, तब मुक्त होता है ॥ हे रामजी ! यह भावना अकस्मात् उपजेंविना यो

निविषे भ्रमता है, अरु जिसकों एक अथवा दो भूमिका प्राप्त भई हैं, अरु शरीर तिसका छूटि गया, तब अवर जन्म पायकरि ज्ञानकों प्राप्त होता है, पिछला संस्कार जागि आता है, अरु दिन दिन बढता जाता है, जैसे बीजतें वृक्षका अंकुर होता है, बहुरि टास फूल फलकरि बढता जाता है, तैसे उसकों अभ्यासका संस्कार बढता जाता है, अरु ज्ञान प्राप्त होता है, जैसे पहिलवान खेलता है, अरु रात्रिकों सोय जाता है, बहुरि दिन हुए ॥ उठता है, तब पहिलवानहिका अभ्यास आय फुरता है, जैसे कोउ मार्ग चलता चलता सोय जावै, अरु जागिकरि चलणे लगै, तैसे उह फेरि पूर्वके अभ्यासकों लगता है ॥ हे रामजी! जिसकों भावना होती है, जो मेरे तांई विशेषता प्राप्त होवै, तिसकरि जन्मकों पावता है, ब्रह्मा आदि चीटीपर्यंत जिसकों विशेष होणेकी कामना है, सो जन्म पावता है; अरु ज्ञानीकों भोगकी इच्छा, अरु विशेष प्राप्त होणेकी इच्छा नहीं होती, जिनकों भोगकी इच्छा होती है, सो भोगकरि आपकों विशेष जानता है, अरु अनिष्टके निवृत्तिकी इच्छा करते हैं, अरु ज्ञानीकों वासना कोउ नहीं होती, जो यह विशेषता मेरे तांई प्राप्त होवै, इसीतें बहुरि जन्म नहीं पावता, जैसे भूना बीज नहीं उगता, तैसे वासनातें रहित ज्ञानी जन्म नहीं पावता ॥ हे रामजी! जन्मका कारण वासना है, जैसी जैसी वासना होती है, तैसी अवस्थाकों प्राप्त होता है; सो नानाप्रकारकी वासना है, जब शरीर छूटणेका समय आवता है, तब जो वासना दृढ होती है, जिसका सर्वदा अभ्यास होता है, अंतकालविषे उह सर्व वासना दिखाइ देती है, पाठकी अरु तपकी कर्मकी देवताकी इत्यादिक वासना आगे आनि स्थित होती हैं, तिस समय सबकों मर्दन करिके उही भासती है ॥ हे रामजी! तिस समय अग्रगत पदार्थ होते हैं, सो भी नहीं भासते, पांचों इंद्रियके विषय विद्यमान होवैं तौ भी नहीं भासते, उही पदार्थ भासता है, जिसका दृढ अभ्यास किया होता है, वासना तौ अनेक होती हैं, परंतु जैसी वासना दृढ होती है, तिसीके अनुसार शरीर धारता है, जब देह छूटता है, तब मुहूर्त

पर्यंत जडता रहती है, सुषुप्तिकी नांई, तिसके उपरांत चेतनता होती है, तब वासनाके अनुसार शरीरकों दे खता है, अरु जानता है, यह मेरा शरीर है, मैं उत्पन्न हुआ हौं, एक इसी प्रकार होते हैं, अरु एक ऐसे हो ते हैं, जो तहां तिसी क्षणविषे युगका अनुभव करते हैं, बहुरि एक ऐसे होते हैं, जो चिरकालपर्यंत जड र हते हैं, चिरकालतें उनकों चेतनता फुरती है, तिसके अनुसार संसारभ्रमकों देखते हैं, अरु एक संस्कार वान होते हैं, तिनकों शीघ्रही एक क्षणतें चेतनता होती है, अरु जानता है, जो मैं उस ठौरतें मुआ हौं, अ रु इस ठौर आय जन्म्या हौं, यह मेरी माता है, यह मेरा पिता है, यह मेरा कुल है, इस प्रकार एक मुहूर्त विषे जागिकरि देखता है, अरु बडे कुलकों देखता है, इसी प्रकार परलोककों देखता है, अरु यमराजाके दूतकों देखता है, अरु जानता है, यह मेरे तांई लिये जाते हैं अरु देखता है जो मेरे पुत्रोंनें मेरे पिंड किये हैं, तिनकरि मेरा शरीर हुआ है, अरु मेरे तांई दूत ले चले हैं, तब आगे धर्मराजाकों देखता है, तिसके नि कट जाय खडा होता है, अरु पुण्य पाप दोनों मूर्त्यीं धारिकरि इसके आगे आनि स्थित होते हैं, तब धर्म राज अंतरजामीसों पूछता है; जो इसनें क्या कर्म किये हैं, जब पुण्यवान होता है, तब स्वर्गभोग भोगाय करि बहुरि योनिविषे डारी देते हैं, जो पापी होता है तौ नरकविषे डारि देते हैं, इस प्रकार जन्मकों धार ता है, सर्पकी योनिमें कहता है, मैं सर्प हौं, बलद वानर तीतर मच्छ बगला गर्दभ वल्ली वृक्ष इत्यादिक योनीकों पावता है, अरु जानता है, मैं यही हौं, अकस्मात् काकतालीय योगकी नांई कदाचित् म नुष्य शरीर पावता है, अरु माताके गर्भविषे जानता है, जो इहां मैं जन्म लिया है, यह मेरी माता है, मैं पितातें उत्पन्न भया हौं, यह मेरा कुल है, बहुरि बाहिर निकसता है, बालक होता है, अरु जानता है जो मैं बालक हौं, बहुरि यौवन अवस्था होती है, तब जानता है, मैं ज्वान हौं, बहुरि वृद्ध होता है, तब जान ता है, मैं वृद्ध हौं, इस प्रकार कालकों वीतावता है, बहुरि मृत्युकों पावता है, अरु सर्प तोता तीतर वानर

मच्छ कच्छ वृक्ष पशु पक्षी देवता इत्यादिक जन्म धारता है ॥ हे रामजी! संसारविषे घटीयंत्रकी नांई फिरता है, कबहू ऊर्ध्वकों, कबहू अधकों जाता है, स्वरूपके प्रमादकरि दुःख पावता है ॥ हे रामजी! एता विस्तार जो तुमकों कहा है, सो बन्या कछु नहीं, केवल अद्वैत आत्मा है, चित्तके संयोगकरि एते भ्रमकों देखता है, वासनाद्वारा विमानोंकों देखता है, तहां आकाशम जाता है, जैसे पवन गंधकों ले जाता है, तैसे पुर्यष्टकाकों ले जाता है, अरु शरीरकों देखता है ॥ हे रामजी! आत्मातें इतर कछु नहीं, परंतु चित्तके संयोगकरि एते भ्रमकों देखता है, तातें चित्तकों स्थित करौ, तब भ्रम मिटि जावैगा, अरु आत्मतत्त्वमात्रही शेष रहैगा, सो शुद्ध है, अरु आनंदरूप है, तिसविषे स्थित होहु ॥ ॥ इति श्रीयोगवासिष्ठे निर्वाणप्रकरणे विश्ववासनारूपवर्णनं नाम शताधिकचतुर्दशः सर्गः ॥ ११४ ॥ ॥ ॥

॥ वसिष्ठ उवाच ॥ हे रामजी! पूर्व तुझकों प्रवृत्तिवालेका क्रम कहा है, अब निवृत्तिका क्रम सुण, जिसकों भूमिका प्राप्त भई है, अरु आत्मपद नहीं प्राप्त भया, तिसके पाप तौ सर्व दग्ध हो जाते हैं, जब उसका शरीर छूटता है, तब वासनाके अनुसार शून्याकार हुआ, बहुरि अपणेसाथ शरीर देखता है, बहुरि बडेपर लोककों देखता है, तहां स्वर्गके सुख भोगता है, विमानपर चढता है, लोकपालके पुरोंविषे विचरता है, जहां मंद मंद पवन चलता है, सुंदर वृक्षोंकी सुगंधी है, पांचों इंद्रियांके रमणीय विषय हैं, तिन स्थानोंविषे विचरता है, देवताविषे क्रीडा करता है, भोगकों भोगीकरि संसारविषे उपजता है, बहुरि भूमिकाक्रमकों प्राप्त होता है, जैसे मार्ग चलता कोउ सोय जावै, जागिकरि बहुरि चलता है, तैसे शरीर पायकरि बहुरि भूमिकाके क्रमकों प्राप्त होता है, जैसी जैसी भावना दृढ होती है, तैसे हो भासता है, यह सब जगत संकल्पमात्र है, संकल्पके अनुसारही भासता है, वासनाके अनुसार परलोक भ्रम सुख दुःख देखता है, तहांतें भोगीकरि बहुरि संसारविषे आनि पडता है, इसी प्रकार संकल्पकरि भटकता है, जब आत्माकी उर आता है,

तब संसारभ्रम मिटि जाता है,जबलग आत्माकी उर नहीं आता, तबलग अपणे संकल्पकरि संसारकों देखता है, जीव जीव प्रति अपणी अपणी सृष्टि भासती है, देवता दैत्य भूमिलोक स्वर्ग सब संकल्पके रचे हुए हैं, जेता कछु संसार भासता है, ब्रह्मा विष्णु रुद्रतें आदि लेकरि सब जगत मनोमात्र है, मनके संकल्पतें उदय हुआ है, असतरूप है, जैसे मनोराज्य गंधर्व नगर स्वप्नसृष्टि भ्रमरूप है, तैसे यह जगत भ्रमरूप है, सब जीवकी अपणी अपणी सृष्टि है, परस्पर अदृष्ट है, उसकी सृष्टि उह नहीं जाणता, कहूं उदय होती भासती है, कहूं लय हो जाती है, जैसे मूर्ख अवर देशकों जाता है, तैसे देहकों त्यागिकरि परलोक जाता है, अरु स्वरूप विषे आणा जाणा अहं त्वं कल्पना कोउ नही, केवल सत्तामात्र अपणे आपविषे स्थित है, जगत भी उही है ॥ हे रामजी ! यह विश्व आत्मस्वरूप है, जैसे मणीका चमत्कार होता है, तैसे विश्व आत्माका चमत्कार है, अरु जो कछु तेरे तांई भासता है, सो आत्माही है, आत्माविना आभास नहीं होता, जैसे इक्षुविषे मधुरता होती है, अरु मिरचविषे तीक्ष्णता होती है, तैसे आत्माविषे विश्व है, जो कछु देखता है, श्रवण करता है, जो स्पर्श करै, सुगंध लेवै, सो सर्व आत्माही जाण, अथवा जो इनके जाणनेवाला है अनुभवरूप तिसविषे स्थित होहु, इंद्रियां अरु विषयकों त्यागिकरि अनुभवरूपविषे स्थित होहु ॥ हे रामजी ! यह विश्व संवितरूप है, अरु संवितही विश्वरूप है, जब संवित बहिर्मुख होकरि रस लेती है, तब जाग्रतकों देखती है, जब अंतर्मुख होकरि रस लेती है, तब स्वप्न होता है, जब शांत हो जाती है, तब सुषुप्ति होती है, संसारकों सत्य जाणीकरि जो रस लेती है, तब जाग्रत स्वप्न अरु सुषुप्ति अवस्था होती है, अरु जब संविततें रसकी सत्यता जाणी रहै, तब तुरीया पद होता है, जो इसकों जाणना फुरता है, यह पदार्थ है, यह नहीं; जब यह नष्ट होवै तब तुरीया पद है ॥ हे रामजी ! यह विश्व फुरणेमात्र है, जब फुरणां नष्ट होवै तब विश्व देखी नहीं जाती, जैसे स्वप्नके देश काल पदार्थ जागेतें मिथ्या होते हैं, तैसे यह ज

गत भी मिथ्या है, अरु जीव जीव प्रति जो अपणी अपणी सृष्टि होती है, तिसविषे आप भी कछु बनि पडता है, तातें दुःखी होता है, जब इस अहंकारकों त्यागिकरि अपणे स्वरूपविषे स्थित होवै, तब विश्व कहूं नहीं ॥ ॥ इति श्रीयोगवासिष्ठे निर्वाणप्रकरणे सृष्टिनिर्वाणैकताप्रतिपादनं नाम शताधिकपंचदशः सर्गः ॥११५॥ ॥ वसिष्ठ उवाच ॥ हे रामजी! यह सृष्टिका स्वरूप संकल्पमात्र है, अरु संकल्प भी आकाशरूप है, आकाश अरु स्वर्गविषे कछु भेद नहीं, जैसे पवन अरु स्पंदविषे भेद नहीं, कैसी सृष्टि है जो अनेक पदार्थ हैं, परंतु परस्पर रोकती नहीं, अरु वास्तवतें विश्व भी आत्माका चमत्कार है, अरु आत्मरूप है, जो आत्मरूप है, तौ राग किसविषे करियें, अरु दोष किसविषे करियें, चेतन धातुविषे कोटि ब्रह्मांड स्थित हैं, अरु यह आश्चर्य है, जो आत्मातें इतर हुआ कछु नहीं, अरु भिन्न भिन्न संवेदन दृष्ट आती है, अरु नाना प्रकारके पदार्थ भासते हैं ॥ हे रामजी! जीव जीव प्रति अपणी अपणी सृष्टि है, एक सृष्टि ऐसी है जो तिनका संकल्प एक दृष्ट आता है, परंतु सृष्टि अपणी अपणी है, अरु एक ऐसे है जो भिन्न भिन्न है, परंतु समानता करिके एकही दृष्ट आती है, जैसे जलकी बूंदां एकठी होतियां हैं, जैसे धूडके कणके भिन्न भिन्न होते हैं, परंतु एकही धूड भासती है, जैसे नदीविषे नदी पडती है, तौ एकही जल हो जाता है, तैसे समान अधिकरण करिके एकही भासते हैं, एक एककेसाथ मिलते हैं, अरु नहीं भी मिलते, जैसे क्षीरसमुद्रविषे घृत डारियें तौ नहीं मिलता, तैसे एक संकल्प ऐसे है, जो अवरसाथ नहीं मिलते, जैसे एक सूर्यका प्रकाश होवै, अरु एक दीपकका प्रकाश होवै, अरु एक मणीका प्रकाश होवै, तब उहां भिन्न भिन्न दृष्ट आते हैं, अरु एक जैसे होते है, तैसे केई सृष्टि एकही भासतियां हैं, अरु भिन्न भिन्न होतियां हैं, अरु केई एकठी होतियां हैं, अरु भिन्न भिन्न दृष्ट आतियां हैं ॥ हे रामजी! एती सृष्टि जो मैं तेरे तांई कही है, सो सब अधिष्ठानविषे फुरणे करिके केई कोटि उत्पन्न होती हैं, अरु केई कोटी लीन हो जातियां हैं, जैसे जलविषे तरंग बु

दबुदे उपजीकरि लीन हो जाते हैं, तैसे सृष्टि उत्पन्न अरु लीन होतियां हैं, अधिष्ठान ज्योंका त्यों है, काहेतें जो तिसतें इतर कछु नहीं, अरु ब्रह्म आत्मा आदिक जो सर्व है, सो भी फुरणेविषे हुए हैं, जबलग शब्द अर्थ की भावना है, तबलग भासते हैं, जब भावना निवृत्त हुई, तब शब्द अर्थ कोउ नहीं भासैगा, केवल शुद्ध चेतनमात्रही शेष रहैगा, बहुरि संसारका भाव किसी ठौर न होवैगा, जैसे पवन जबलग चलता है, तबलग जाणता है जो पवन है, अरु गंध भी पवन करिके जाणीती है, सुगंध आई अथवा दुर्गंध आई, अरु जब पवन चलणेतें रहित होता है, तब नहीं भासता, अरु गंध भी नहीं भासती, तैसे जब फुरणा निवृत्त हुआ, तब संसार अरु संसारका अर्थ दोनों नहीं भासते, अरु फुरणेविषे जीव जीव प्रति ज्यों ज्यों अपणी अपणी सृष्टि है, तिस सृष्टिविषे सत्ता समान ब्रह्म स्थित है, अरु सर्वका अपणा आप है, द्वैतभावकों कदाचित् नहीं प्राप्त भया॥ हे रामजी ! तातें ऐसे जाण जो आकाश भी आत्मा है, पृथ्वी भी आत्मा है, जल भी आत्मा है, अग्नि आदिक सर्व पदार्थ आत्माही है, अथवा ऐसे जाण जो सर्व मिथ्या है, इनका साक्षीभूत सत् ब्रह्मही अपणे आपविषे स्थित है, इतर कछु नहीं, उसी ब्रह्मविषे अंशतें अनेक सुमेरु अरु मंदराचल आदिक स्थित हैं, अरु अंशांशी भाव भी आत्माविषे स्थूलताके निमित्त कहे हैं, वास्तव नहीं, जतावणेनिमित्त कहे हैं, आत्मा एक रस है॥ हे रामजी ! ऐसा पदार्थ कोउ नहीं, जो आत्मसत्ताविना होवै, जिसकों सत्य जाणता है सो भी आत्मा है, अरु जिसकों असत्य जानता है, सो भी आत्मा है, आत्माविषे जैसे सत्यका फुरणा है, तैसे असत्यका फुरणा है, फुरणा दोनोंका तुल्य है, जैसे स्वप्नविषे एक सत्य जाणता है, एक असत्य जाणता है, तैसे जो इंद्रियांके विषय होते हैं, तिनकों सत जाणता है, अरु आकाशके फूल, ससेके सिंगकों असत् कहता है, सो सर्व अनुभवकरि फुरे हैं, तातें अनुभवरूप है, अरु ऐसा पदार्थ कोउ नहीं जो आत्माविषे असत् नहीं, जो कछु भासते है सो सर्व फुरणेविषे हुए हैं, सत्य क्या अरु असत्य क्या, सब मिथ्या है, स्वप्नके सत् अ

रु असत्की नांई है, जो अनुभव करिके सिद्ध है, सो सर्व सत्य है, अरु सत्य अनुभवतें इतर है, सो सब असत्य है ॥ हे रामजी! गुणातीत परमात्मस्वरूपविषे स्थित होहु ॥ हे रामजी! भूत भविष्य वर्तमान तीनों कालविषे ज्ञानवान् पुरुष सम है, अरु दशों दिशा आकाश जल अग्नि आदिक पदार्थ तिसकों सर्व आत्माही दृष्ट आता है, आत्मातें इतर कछु नहीं भासता, सूर्य चंद्रमा तारे सर्व आत्मा हैं, यह विश्व आकाशरूप है, अरु शुद्ध निर्मल है, आकाशविषे आकाश स्थित है, इतर कछु नहीं, अरु जो तेरे तांई इतर भासे, सो मिथ्या जाण, भ्रम करिके सिद्ध हुआ है, सत् कछु नहीं, अरु जो परमार्थकरि देखें तौ, सर्व आत्मा है ॥ इति श्रीयोगवासिष्ठे निर्वाणप्रकरणे विश्वाकाशैकताप्रतिपादनं नाम शताधिकषोडशः सर्गः ॥ ११६ ॥

॥ वसिष्ठ उवाच ॥ हे रामजी! यह विश्व स्वप्नसमान है, जैसे स्वप्नकी सैना नानाप्रकार दिखती है, शस्त्र चलते हैं, इत्यादिक भासते हैं, अरु आत्माविषे इनका रूप देखणा, अरु मानणा, शब्द अर्थ कोउ नहीं, जगततें रहित है, अरु जगतरूप भान होता है, अहं त्वं मेरा तेरा जेता कछु भासता है, सो सब स्वप्नवत् है, भ्रम करिके सिद्ध हुआ है, सर्वका अधिष्ठान है, सो सत्य है, सर्व तिसीविषे कल्पित् है, अरु जो अनुभवकरि देखियें तौ सर्व आत्मस्वरूप है, इतर देखियें तौ कछु नहीं, जैसे स्वप्नके देश काल पदार्थ सब अर्थाकार भी भासते तौ भी मिथ्या है, तैसे यह विश्व भ्रम करिके फुरती है, उनकी अपेक्षाकरि उह तूं है, उसकी अपेक्षाकरि उह अहं है, वास्तवतें दोनों नही, जो है सो आत्माही है ॥ राम उवाच ॥ हे भगवन्! तुम कहा जो त्वं आदिक अहंपर्यंत अरु अहं आदिक त्वं पर्यंत सर्व स्वप्नसैनाकी नांई मिथ्या है, अरु अनुभवकरि देखिये तौ आत्मस्वरूप है, हम स्वप्न सैनाविषे हैं, अथवा हमारा अहं आत्मा है सो कहौ ॥ ॥ वसिष्ठ उवाच ॥ ॥ हे रामजी! जो अनात्म देहादिकविषे अहंभावना करणी मैं हौं तौ स्वप्नसैनाके तुल्य हैं, अरु जो अधिष्ठान चिन्मात्रविषे दृश्यतें अरु अहंकारतें रहित अहंभावना करणी सो आत्मरूप है ॥ हे रामजी! तूं आत्मरूप है, अरु यह वि

श्व सत् भी नहीं, असत् भी नहीं, जो अधिष्ठानरूपकरि देखियें सो आत्मरूप है, अरु जो अधिष्ठानतें रहित देखियें तौ मिथ्या है, सो अधिष्ठान शुद्ध है, आनंदरूप है, चित्ततें रहित चिन्मात्र परम ब्रह्म है, तिसविषे अज्ञानकरि दृश्य दिखती है, जैसे असम्यक्‌दृष्टि करिके सीपिविषे रूपा भासता है, तैसे आत्माविषे अज्ञानी दृश्य कल्पते हैं ॥ हे रामजी! दृश्य अविचारतें सिद्ध है, विचार कियेतें कछु वस्तु नहीं होती, जिसके आश्रय कल्पित है सो अधिष्ठान सत्य है, जैसे सीपीके जाणेतें रूपेकी बुद्धि जाती रहती है, तैसे आत्मविचारतें विश्वबुद्धि जाती रहती है, जैसे समुद्रविषे पवनकरि चक्र तरंग फुरते हैं, अरु प्रत्यक्ष भासते हैं, विचार कियेतें चक्रविषे भी जलबुद्धि होती है, तैसे आत्मरूपी समुद्रविषे मनके फुरणेकरि विश्वरूपी चक्र उठते हैं, विचार कियेतें तुझकों मनके फुरणेविषे भी आत्मरूप भासैगा, विश्वरूपी चक्र न भासेंगे, भ्रम निवृत्त हो जावैगा, जो वस्तु फुरणेविषे उपजी है, सो अफुर करिके निवृत्त हो जाती है, यह विश्व अज्ञानकरि उपजी है, अरु ज्ञान करिके लीन हो जावैगी, तातें विश्व भ्रममात्र जाण ॥ ॥ रामउवाच ॥ हे भगवन्! तुम कहा जो ब्रह्मा रुद्र आदि अरु उत्पत्ति संहार करणेपर्यंत सब विश्व भ्रममात्र है, ऐसे जानणेकरि क्या सिद्ध होता है, यह तौ प्रत्यक्ष दुःखदायक भासती है यों दिखती है ॥ ॥ वसिष्ठ उवाच ॥ हे रामजी! जो कछु तूं देखता है, सो सर्व आत्मरूप है, इतर कछु नहीं, सम्यक्‌दृष्टि करिके, अरु असम्यक्‌दृष्टि करिके विश्व है, तौ दृष्टिका भेद है, सम्यक् असम्यक् देखणेका अधिष्ठान ज्यौंका त्यौं है, जैसे एक जेवरी पडी होवै, अंधकारकी उपाधिकरि सर्प हो भासै, अरु भयदायक होवै, जो प्रकाशकरि देखियें तौ जेवरीही भासती है, तैसे जिसतें आत्माकों जाण्या है, तिसकों दृश्य भी आत्मरूप है, अज्ञानीकों विश्व भासती है, अरु दुःख पावता है, जैसे मूर्ख बालक अपणे परछायेंविषे वैताल कल्पिकरि भयमान होता है, अपणे न जानणेकरि दुःख पावता है, जो जाणै तौ भय किस निमित्त पावै ॥ हे रामजी! अपणेही संकल्पकरि आप बंधायमान होता है, जैसे धुरा

ण कीट अपणे बैठणेका स्थान बनावती है, आपही फसी मरती है, तैसे अनात्मविषे अहंप्रतीति करिके आपही दुःख पावता है ॥ हे रामजी! आपही संसारी होता है, आपही ब्रह्म होता है, जब दृश्यकी उर फुरता है, तब संसारी होता है, जब स्वरूपकी उर आता है, तब ब्रह्म आत्मा होता है, तातें जो तेरी इच्छा होवै सो करु, जो संसारी होवणेकी इच्छा होवै तौ संसारी होउ, अरु जो ब्रह्म होणेकी इच्छा होवै तौ ब्रह्म होउ, अरु जो मेरेसों पूछै तौ दृश्य अहंकारकों त्यागिकरि आत्माविषे स्थित होउ, विश्व भ्रम मात्र है, वास्तव कछु नहीं, यही पुरुषार्थ है, जो संकल्पसाथ संकल्पकों काटहू, जब बाह्यतें अंतर्मुख हुआ; तब ब्रह्महही भासैगा, दृश्यकी कल्पना मिटिजावैगी, काहेतें, जो आगे भी नहीं ॥ हे रामजी! जो सत् वस्तु आत्मा है, अनेक यत्न करियें तौ नाश नहीं होता, अरु जो असत्य अनात्मा है, तिसके निमित्त यत्न करियें तौ सत नहीं होता, जो सत् वस्तु है, तिसका अभाव कदाचित् नहीं, अरु जो असत् है, तिसका भाव नहीं होता, असत् वस्तु तबलग भासती है, जबलग तिसकों भली प्रकार नहीं जाण्या, जब विचार करि देखियें तब नाश हो जाती है, अविद्यक पदार्थ विद्याकरि नष्ट हो जाता है, जैसे स्वप्नका सुमेरु पर्वत सत्य होवै तौ जाग्रतविषे भी भासै, तातें है नहीं, जो जाग्रततें नष्ट हो जाता है, तैसे यह संसार जो तुझकों भासता है, सो स्वरूपके ज्ञानतें नष्ट हो जावैगा, अरु जो हमतें पूछै तौ हमकों आत्मातें इतर कछु नहीं भासता, सर्व आत्माही है, यह भी नहीं, जो यह जीव अज्ञानी है, किसी प्रकार मोक्ष होवै, न हमारि ताईं ज्ञानसाथ प्रयोजन है, न मोक्षहोणेसाथ प्रयोजन है, काहेतें जो हमकों सर्व आत्माही भासता है ॥ हे रामजी! जबलग चेतन है तबलग मरता अरु जन्म भी पावता है, जब जड होता है, तब शांतिकों प्राप्त होता है, अरु मुक्त होता है, चेतन कहिये दृश्यकी उर फुरणा, इसीकरि जन्ममरणके बंधनमें आवता है, जब दृश्यके फुरणेतें जड हो जावै, तब मुक्त होवै, इसका होणाही दुःख है, न होणा मुक्ति है, अहंकारका होणा बंधन है,

अहंकारका न होणा मुक्ति है, तातें पुरुषप्रयत्न यही है, जो अहंकारका त्याग करणा, अरु चेतन ब्रह्म घन अपणे आपविषे स्थित होणा, जिसकों संसारकी सत् भावना है, तिसकों संसारही है, ब्रह्म नहीं, अरु जिसकों ब्रह्मभावना हुई है, तिसकों ब्रह्मही भासता है ॥ हे रामजी! जो पाताल जावैं, अथवा संपूर्ण पृथ्वी फिरैं, दशों दिशा फिरैं, आकाशविषे देवताके स्थान फिरैं, तोऊ सुखकों न पावैगा, अरु आत्माका दर्शन न होवैगा, काहेतें जो अनात्माविषे अहंकार कियेतें सुख नहीं, अरु जो आत्मदर्शी होकरि देखैं तो सर्व आत्माही भासैगा ॥ इति श्रीयोगवासिष्ठे निर्वाणप्रकरणे विश्वविलयो नाम शताधिकसप्तदशः सर्गः ॥११७

॥ वसिष्ठ उवाच ॥ हे रामजी! यह संसार संकल्पमात्र है, अरु तुच्छ है, पर्वत नदियां देश काल सर्व भ्रमकरि सिद्ध हैं, जैसे स्वप्नविषे पर्वत नदियां देश काल भासते हैं, निद्रा दोष करिके अरु हुआ कछु नहीं, तैसे अज्ञान निद्राकरि यह संसार भासता है ॥ हे रामजी! जागीकरि देखैं तौ संसार है नहीं, इसका तरणा महा सुगम है, अरु सुमेरु पर्वतादिक जो भासते हैं, सो कमलकी नांई कोमल हैं, जैसे कमलके मूंदणेविषे यत्न कछु नहीं, तैसे यह कोमल निवृत्त होते हैं, अरु आकार जो भासते हैं, भूत प्राणी, सो इनकी स्थूल दृष्टि है, आकारकों देखी रहे हैं, जैसे पवनका चलणा जाण्या जाता है, अरु जब जलणेतें रहित होता है, तब मूर्खकी गम नहीं, जो निराकारकों जाणै, तैसे भूत प्राणी आकारकों जानते हैं, इसविषे जो निराकार स्थित है, तिसकों नहीं जानते, जैसे पवन चलता है, तौ भी पवन है, जो ठहरता है, तो भी पवन है, तैसे विश्व फुरती है, सो भी आत्मा है, अफुरविषे भी उही है, तातें विश्व भी आत्मरूप है, इतर कछु नहीं, जो सम्यक् दर्शी है, तिसकों फुरणेअफुरणेविषे आत्माही भासता है, जैसे स्पंद निस्पंदरूप पवनही है, तैसे ज्ञानीकों सर्वदा एकरस है, अरु अज्ञानीकों द्वैत भासता है, जैसे वृक्षविषे पिशाचबुद्धि बालक करता है, तैसे आत्माविषे जगतबुद्धि अज्ञानी करता है, जैसे नेत्रदोषकरि आकाशविषे तरवरे भासते हैं, तैसे मनके फुरणेकरि

जगत भासता है ॥ हे रामजी ! जैसे वायुका रूप कदाचित् नहीं, तैसे जगतका रूप अत्यंत अभाव है, जैसे मरुस्थलविषे जलका अभाव है, तैसे आत्माविषे जगतका अभाव है ॥ हे रामजी ! सुमेरु पर्वत आकाश पाताल देवता यक्ष राक्षस इत्यादिक ऐसे अनेक ब्रह्मांड एकठेकरि विचाररूपी काटेविषे पाए, अरु पाछे अर्धरति पाई तौ भी पूरी नहीं होते, काहेतें जो है नहीं, अविचारसिद्ध है, स्वप्नके पर्वत जागे हुए चावल प्रमाण नहीं रहते, काहेतें, जो है नहीं, भ्रममात्र है ॥ हे रामजी ! इस संसारकी भावना मूर्ख करते हैं, ऐसे जो अनात्मदर्शी पुरुष है, तिनकों ऐसे जाण, जैसे लुहारकी खलोतें पवन निकसता है, तैसे तिन पुरुषके श्वास वृथा आते जाते हैं, जैसे आकाशविषे अंधेरी व्यर्थ उठती है, तैसे तिन पुरुषका जीवणां अरु चेष्टा सर्व व्यर्थ है, अरु यह आत्मघाती है, अपणा आप नाश करते हैं, उनकी चेष्टा दुःखके निमित्त है ॥ हे रामजी ! यह अपणे आधीन है, जो दृश्यकी उर होता है, तौ संसार होता है, अरु जो अंतर्मुख होता है, तौ सर्व आत्मा ही होता है, अरु यह संसार मिथ्या है, न सत् कहिये, न असत् कहिये, भ्रममात्रकरि हुआ है, पूर्व काल, भविष्यत् काल, वर्तमान कालविषे बंध होता है, अरु अग्नि शीतल होवै, अरु आकाश पातालविषे होवै, अरु पाताल आकाशविषे होता है, अरु तारे पृथ्वी उपर हैं, पृथ्वी आकाश उपर भी होती है, अरु बादर विना मेघ वर्षा करता है, ऐसे कौतुक मैं देखता हौं, आकाशविषे हल फिरते देखता हौं ॥ हे रामजी ! इसविषे आश्चर्य कछु नहीं, मन करिके सब कछु होता है, जैसा मनोराज्य किया तैसा आगे स्थित होता है, अरु सिद्धि होती है, पर्वत भिक्षा मागते फिरते हैं, पुरविषे भिक्षुककी नांई अरु ब्रह्मांड उडते फिरते हैं, वालुतें तेल निकसता है, अरु मृतक युद्ध करते हैं, मृग गाते हैं, अरु वन नृत्य करते हैं ॥ हे रामजी ! मनोराज्य करिके सब कछु बणता है, चंद्रमाकी किरणासाथ पर्वत भस्म होते भी मानते हैं, इसविषे क्या आश्चर्य है, तैसे यह संसार भी मनोराज्य है, अरु तीव्र संवेग है, तातें इसकों सत् मानता है, अरु आगे जो वालुतें ते

लादिक कहै, तिनकों सत् नहीं जानता, काहेतें जो उसविषे मृदु है, अरु हैं दोनों तुल्य ॥ हे रामजी! जि
नकों सत् अरु असत् कहते हैं, सो आत्माविषे दोनों नहीं, अरु यह जो तेरे तांई पदार्थ सत् भासते हैं, तौ
अग्नि आदिक शीतल भी सत्य हैं, अरु जो यह मिथ्या भासते हैं, तौ उह भी मिथ्या है, तीव्र अरु मृदु सं
वेगका भेद है, तीव्र संवेग जब दूर हुआ तब सब मिथ्या मानते हैं, जैसे स्वप्नतें जाग्या तब स्वप्नकों मि
थ्या कहता है, अरु जाग्रत्कों सत कहता है, दोनों मनोराज्य हैं ॥ हे रामजी! जेते कछु आकार दृष्ट आव
ते हैं,सो सब मिथ्या जाण, न तूं है, न मैं हौं,न यह जगत है,परमार्थसत्ता ज्यौंकी त्यौं है, तिसविषे अहंत्वंका उ
त्थान कोउ नहीं, केवल शांतरूप है, आकाशरूप अरु निराकाशरूप है, जिसविषे द्वैत कछु नहीं, केवल अ
पणे आपविषे स्थित है,जैसे बालक मृत्तिकाके हस्ती घोडे मनुष्य बनावता है,अरु नाम कल्पता है, यह राजा
है,यह हस्ती है, यह घोडा है, सो मृत्तिकातें इतर कछु नहीं, अरु बालकके मनविषे उनके नाम भिन्न भिन्न दृ
ढ होते हैं, तैसे मनरूपी बालक नानाप्रकारकी संज्ञा कल्पता है, अरु आत्मातें इतर कछु नहीं. तातें भय कि
सका करता है, तूं निर्भय होउ, तेरा स्वरूप शुद्ध है, अरु निर्भय है, अविद्याके कारणकार्यतें रहित है, तिसवि
षे स्थित होउ, यह संसार तेरे फुरणेविषे हुआ है, आत्मा न सत्य कहिये, न असत्य कहिये, न जड कहिये,
न चेतन कहिये, न प्रकाश है, न तम है, न शून्य है, न अशून्य है, अरु शास्त्रनें जो विभाग कहे हैं, यह ज
ड है, चेतन है, सो इस जीवके जगावणेनिमित्त कहे हैं, आत्माविषे वास्तव संज्ञा कोउ नहीं, केवल आत्म
त्वमात्र है, तातें दृश्यकी कलना त्यागिकरि आत्मविषे स्थित होउ, ब्रह्मातें आदि स्थावरपर्यंत सर्व कल
नामात्र है, इसविषे क्या आस्था करणी, संसारके भाव दोनों तुल्य हैं, फुरणा जैसा भावका है, तैसा अ
भावका है, स्वरूपविषे दोनोंकी तुल्यता है, अरु व्यवहार कालविषे जैसा है, तैसाही है ॥ ॥ इति श्रीयो
गवासिष्ठे निर्वाणप्रकरणे विश्वप्रणामवर्णनं नाम शताधिक अष्टादशः सर्गः ॥ ११८ ॥ ॥ ॥ राम

उवाच ॥ हे भगवन्! भूमिकाका प्रसंग इहा चल्या था, तिसविषे सार तुम कहा सो मैं जाण्या, अब भूमिकाका विस्तार कहौ, अरु योगीका शरीर जब छूटता है, अरु स्वर्गके भोगकों भोगीकरि गिरता है, तब फिरि उसकी क्या अवस्था होती है, सो कहौ ॥ ॥ वसिष्ठ उवाच ॥ हे रामजी! जिस योगीकों भोगकी वांच्छा होती है; तब स्वर्गकों प्राप्त होता है, अरु भोगकों भोगता है, जब उसकों अवर भी भोगणेकी इच्छा होती है, तब पवित्र स्थान अरु धनवानके गृहविषे आय जन्म लेता है, मध्य मंडल मनुष्य लोकविषे प्राप्त होता है, जो भोगकी वांच्छा तिनकों अवर नहीं होती, तौ ज्ञानवानके गृहविषे जन्म लेता है, केते काल उपरांत तिसकों पिछला संस्कार आय फुरता है, तिसका स्मरण करिके आत्माकी उर आगे होता जाता है, जैसे कोउ पुरुष लिखता हुआ सोय जाता है, जब जागता है, तब उस लिखेकों देखी करि बहुरि आगे लिखता है, तैसे उह योगी पूर्वके अभ्यासकों पायकरि दिन दिन बढावता जाता है, अरु अज्ञानका संग नहीं करता, जो भोगके सन्मुख है, अरु आत्ममार्गतें बहिर्मुख है, अरु जो चुगली करणेवाले तिनका संग नहीं करता, सर्व अवगुण तिसकों त्याग जाते हैं, दंभ गर्व अरु राग दोष भोगकी तृष्णा यह स्वाभाविक तिसके छूटि जाते हैं, अरु शांतिकों प्राप्त होता है, कोमलता दयातें आदि शुभ गुण तिसकों स्वाभाविक आय प्राप्त होते हैं ॥ हे रामजी! इस निश्चयकों पायकरि वर्ण आश्रमके धर्म यथाशास्त्र करता हुआ संसारसमुद्रके पारकों निकट जाय प्राप्त होता है, पार नहीं भया, यह भेद है सो तीसरी भूमिका है, बहुरि मोहकों नहीं प्राप्त होता, जैसे चंद्रमाकी किरणां कदाचित् तप्तकों नहीं प्राप्त होतियां तैसे तीसरी भूमिकावाला संसाररूपी गरतविषे नहीं गिरता ॥ हे रामजी! यह सप्त भूमिका ब्रह्मरूप हैं, एताही भेद है, जो तीन भूमिका जाग्रत अवस्था हैं, चतुर्थ स्वप्न अरु पंचम सुषुप्ति है, षष्ठ तुरीया, सप्तम तुरीयातीत है ॥ हे रामजी! प्रथम तीन भूमिकाविषे संसारकी सत्यता भासती है, तातें जाग्रत कही है, अरु अवर चारों

विषे संसारका अभाव है, तातें जाग्रततें विलक्षण है, जाग्रतविषे घट पट आदिक सत भासते हैं, घट घटही है, पट पटही है, अन्यथा नहीं, अपणा अपणा कार्य सिद्ध करते हैं, तातें अपणे कालविषे ज्यौंके त्यौं हैं, इसी प्रकार सर्व पदार्थ हैं, स्थावर जंगमकों जानता है, नामरूपकरि ग्रहण करता है, अरु हृदयविषे राग दोष नहीं धारता, जो विचार करिके तुच्छ जाणे है, सो संसारका अत्यंत अभाव नहीं जाण्या, अरु ब्रह्मस्वरूप भी नहीं जानता, काहेतें जो तिसकों स्वरूपका साक्षात्कार नहीं भया, जब स्वरूपकों जाणे तब संसारका अत्यंत अभाव हो जावै, इन तीनों भूमिकाकरि संसारकी तुच्छता होती है, नष्टता नहीं होती, इनकों पायकरि जब शरीर छूटता है, तब अवर जन्मविषे उसकों ज्ञान प्राप्त होता है, अरु दिन दिनविषे ज्ञानपरायण होता है, जब दृढबुद्धि हुई, तब ज्ञान उपजता है, जैसे बीजके प्रथम अंकुर होता है, बहुरि टास फूल फल निकसते हैं, तैसे प्रथम भूमिका ज्ञानका बीज है, दूसरी अंकुर है, तीसरी टास है, चतुर्थ ज्ञानकी प्राप्ति होती है, सो फल है, प्रथम तीन भूमिकावाला धर्मात्मा होता है, पुरुषोंविषे श्रेष्ठ है, तिसका लक्षण यह जो निरहंकार अरु असंगी धीर्य होता है, जिसकी बुद्धितें विषयकी तृष्णा निवर्त भई है, अरु आत्मपदकी इच्छा है, सो पुरुष श्रेष्ठ कहाता है, अरु प्रकृत आचारविषे यथाशास्त्र विचरता है, शास्त्र मार्गतें उल्लंघित कदाचित् नहीं वर्तता, शास्त्रमार्गकी मर्यादासाथ अपणे प्रकृत आचारविषे विचरता सो पुरुष श्रेष्ठ है ॥ राम उवाच ॥ हे भगवन्! पाछे तुमनें कहा जो जब उह पुरुष शरीर छोडता है, तब एक मुहूर्तविषे उसकों युग व्यतीत होता है, जन्मतें आदि मृत्युपर्यंत जैसी किसीकों भावना होती है, तैसा आगे भासता है, सो एक मुहूर्तविषे युग कैसे भासता है, यह कहौ ॥ वसिष्ठ उवाच ॥ हे रामजी! यह जगत जो तीनों काल भासता है, सो ब्रह्मस्वरूप है, इतर कछु नहीं भासता, समानही है; जैसे इक्षुविषे मधुरता है, तैसे ब्रह्मविषे जगत है, जैसे तिलोंविषे तेल है अरु मिरचविषे तीक्ष्णता है, तैसे आत्माविषे जगत है, जैसे तिलोंविषे तेल होता है,

तैसे ब्रह्मविषे जगत कहूं सत, कहूं असत, कहूं जड, कहूं चेतन, कहूं शुभ, कहूं अशुभ, कहूं नरक, कहूं मृतक, कहूं जीवित, ब्रह्मा आदि काष्ठपर्यंत भाव अभावरूप होता है, सो सत असततें विलक्षण है, आत्मसत्ता तें सर्व सत्य है; अरु भिन्नकरि देखियें तौ असत्य है ॥ हे रामजी! जिनकों सत्य असत्य जाणता है, जो पृथ्वी आदिक पदार्थ सत्य भासता है, अरु आकाशके फूलादिक असत्य भासते हैं, सो दोनों तुल्य हैं, जो विद्यमान पदार्थ सत्य मानियें तौ आकाशके फूल भी सत मानियें, जैसे स्वप्नविषे केई पदार्थ सत भासते हैं, केई असत भासते हैं, तैसे जाग्रतविषे भासते हैं, फुरणा दोनोंका समान है; जैसे सत्य पदार्थोंका फुरणा हुआ तैसा असतका फुरणा हुआ, फुरणेतें रहित सत असत दोनोंका अभाव हो जाता है, तातें यह विश्व भ्रम करिके सिद्ध हुई है, जैसे जलविषे पवन करिके चक्र आवर्त उठते हैं, तैसे आत्माविषे फुरणे करिके संसार भासता है, इसकी भावना त्यागिकरि स्वरूपविषे स्थित होहु, अरु पाछे तुझनें प्रश्न किया जो एक मुहूर्तविषे युग कैसे भासता है, तिसका उत्तर सुण, जैसे किसी पुरुषकों स्वप्न आता है, तौ एक क्षणविषे बडा काल वीत्या भासता है, अवरका अवर भासता है, आश्चर्य तौ कछु नहीं, मोहतें सब कछु उत्पन्न होता है, भ्रम करिके दृष्ट आता है ॥ हे रामजी! पुरुष सोया है तौ एक आपही होता है, तिसविषे नाना प्रकारका जगत भ्रम करिके भासता है, तैसे स्वरूपके प्रमादकरि केई भ्रम देखता हैं, स्वरूपके जानणेविना भ्रमका अंत नहीं होता, तातें तूं अवर प्रश्न किसनिमित्त करता है, एक चित्तकों स्थिर करि देख, न कोउ संसार भासैगा, न कोउ जन्म मृत्यु भासैगा, न कोउ बंध मोक्ष भासैगा, केवल आत्माही भासैगा, जब संकल्प फुरता है, तब आपकों बंध जानता है, संकल्पतें रहित मुक्त जानता है, सो अविद्याकरि बंध जानता है, विद्याकरि मुक्त जानता है, अरु आत्मस्वरूप ज्योंका त्यों है, न बंध है, न मुक्त है, न विद्या है, न अविद्या है, केवल शांतरूप है, तातें सर्वदा सर्व प्रकार सर्व उरतें ब्रह्महीं है, दूसरा कछु नहीं ॥ हे रामजी!

जब स्वरूपकी भावना हुई, तब संसारकी भावना जाती रहती है, यह सर्व शब्द कलनाविषे हैं, यह पदार्थ है, यह नहीं, आत्माविषे कोउ नहीं, जैसे पवन चलणे ठहरणेविषे एकही है, तैसे विश्व चित्तका चमत्कार है, ब्रह्मादि चीटिपर्यंत ब्रह्मसत्ताही अपणे आपविषे स्थित है, अरु आत्माहीके आश्रय सर्व शब्द फुरते हैं, आत्मा फुरणे अफुरणेविषे सम है, काहेतें जो दूसरा कोउ नहीं ॥ हे रामजी! जो ब्रह्मसत्ताही है यह पश्न क्या है, आकाश क्या है, पृथ्वी क्या है, मैं क्या हौं, यह जगत क्या है, यह प्रश्न बणतेही नहीं, एक मनकों स्थिरकरि देख, जो ब्रह्मा आदि चीटिपर्यंत कछु भी पदार्थ भासै तौ प्रश्न करियें, तातें यह पदार्थ भ्रम करिके भासते हैं, जैसे दूसरा चंद्रमा भासता है, तैसे भ्रम करिके भासता है, रूप अवलोक नमस्कार इनके शब्द कलनाविषे फुरे हैं, रूप कहिये दृश्य, अवलोक कहिये इंद्रियां, नमस्कार कहिये मनका फुरणा; सो सर्व मिथ्या हैं, आत्माविषे कोउ नहीं ॥ हे रामजी! आकाश आदिक जो पदार्थ हैं, सो भावनाविषे स्थित हुए हैं, जैसी भावना कराती है, तैसे पदार्थ सिद्ध होता है, अरु भासता है, जब संसारकी भावना उठि जावै, तब पदार्थ कोउ न भासै ॥ हे रामजी! सुषुप्तिविषे भी इसका अभाव हो जाता है तौ तुरीयाविषे कैसे भान होवै, जब स्वरूपतें गिरता है, तब इसकों संसार भासता है, अरु संसारविषे वासना करिके घटीयंत्रकी नांई फिरता है, प्रमाद करिके अबलग वहता जाता है, प्रमाद कहिये स्वरूपतें उतरीकरि अनात्मविषे अभिमान करणा, जो मैं हौं सो अज्ञान है, तिस करिके दुःख पावता है, जब अज्ञान नष्ट होवै, तब संसारके शब्द अर्थका अभाव हो जावै, अहंकारतें संसार होता है, संसारका बीज अहंकार है, अहंकार कहिये अनात्माविषे आत्मअभिमान करणा ॥ हे रामजी! आत्मा शुद्ध है, अहंके उत्थानतें रहित है, केवल शांतरूप है, अरु विश्व भी उहीरूप है, इसकी भावनाविषे दुःख है, यह संवितशक्ति आत्माके आश्रय फुरती है, जैसे तेलकी बुंद जलविषे डारियें तौ चक्रकी नांई फिरती है, तैसे संवेदन शक्ति

आत्माके आश्रित फुरती है, अरु ब्रह्म एक स्वरूप है. तिसका स्वभाव ऐसे है, जैसे मोरका अंडा अरु तिसका वीर्य एकरूप है, अपणे स्वभाव करिके वीर्यही नानाप्रकारके रंगकों धारता है, तौ भी मोरतें इतर कछु नहीं, तैसे आत्माके संवेदन स्वभाव करिके नानाप्रकारकी विश्व भासती है, परंतु आत्मातें इतर कछु नहीं, आत्मरूप है, सम्यक्दर्शीकों नानाप्रकारविषे एक आत्माही भासता है, अरु अज्ञानीकों नानाप्रकारका जगत भासता है ॥ हे रामजी! ब्रह्मरूपी एक शिला है, तिसविषे त्रिलोकीरूपी अनेक पुतलियां कल्पित हैं, जैसे एक शिलाविषे खुरपी पुतलियां कल्पता है, जो इसविषे एती पुतलियां हैं, सो उसके चित्तविषे हैं, जो शिलाविषे हुआ कछु नहीं, तैसे आत्मरूपी शिलाविषे चित्तरूपी खुरपी नानाप्रकारके पदार्थरूपी पुतलियां कल्पता है, सो सर्व आत्मरूप है, तातें पदार्थकी भावना त्यागिकरि आत्माविषे स्थित होहु, अरु यह संसार भी निर्वाच्य है, काहेतें जो ब्रह्मही है, ब्रह्मतें इतर कछु नहीं, न कोउ उपजता है, न कोउ विनसता है, कदाचित् भी ज्यौंका त्यौं आत्माही स्थित है ॥ ॥ इति श्रीयोगवासिष्ठे निर्वाणप्रकरणे जगत अभावप्रतिपादनं नाम शताधिकैकोनविंशतितमः सर्गः ॥ ११९ ॥ ॥ ॥ राम उवाच ॥ हे भगवन्! इस संसारका बीज अहंकार हुआ, इसका पिता अहंकार है, तौ मिथ्या संसार अविद्यमान जो विद्यमान भासता है, सो भ्रमरूप हुआ, जो भ्रमरूप है, तौ लोक शास्त्र श्रुति स्मृति कहते हैं, जो इसका शरीर पिंडकरिके होता है, जो पिंडकरि होता है, तौ तुम कैसे भ्रम कहते हौ, अरु जो ब्रह्म है, तौ लोक शास्त्र श्रुति स्मृति क्यौं पिंडकरि कहते हैं, इस मेरे संशयकों निवृत्त करौ ॥ ॥ वसिष्ठ उवाच ॥ हे रामजी! मेरा कहणा सत है, तैसेही है, अरु ब्रह्मविषे ब्रह्मतत्त्व स्वभाव है, अरु जगतविषे जगतका लक्षण भी उही है ॥ हे रामजी! आदि जो किंचन हुआ है, चित्त शक्ति फुरी है, सो ब्रह्मरूप हुआ है, तिसविषे पदार्थका मनोराज्य हुवा है, यह आकाश है, यह पवन आदी हैं, यह कर्तव्य है, यह अकर्तव्य है, यह सत्य है, यह झूट है, इत्यादिकरि जवलग

मनोराज्य है, तबलग सर्व मर्यादा ऐसेही है, बहुरि ब्रह्मविषे ऐसे हुआ जो जगतकी मर्यादाके निमित्त वेद कहता है, जो यह पदार्थ शुभ है, यह अशुभ है ॥ हे रामजी! आत्माविषे द्वैत कछु नहीं, मायारूप जगत विषे मर्यादा है, जो न होवै, तौ अध ऊर्ध्व नीच ऊंच कवन कहै, यह मर्यादा भी वेदविषे नेति निश्चय हुआ है, जो यह शुभ कर्म हैं, इनके कियेतें स्वर्गसुख भोगते हैं, अरु यह अशुभ कर्म हैं, इनके कियेतें नरकदुःख भोगते हैं ॥ ॥ हे रामजी! जैसे वेदविषे निश्चय किया है, तैसे यह पुरुष अपणी वासनाके अनुसार भोगता है ॥ ॥ हे रामजी! यह चित्तशक्ति नेति होकरि ब्रह्मादिकविषे फुरी है, परंतु उनकों सदा स्वरूपविषे निश्चय है, तातें उह बंधायमान नहीं होते, अरु ब्रह्मा विष्णु रुद्रने यह वेदमाला धारी है, जो जैसा कोउ कर्म करै, तैसा फल देते हैं, यह वेद सर्वकी नेति है ॥ ॥ हे रामजी! जिन पुरुषकों संसारकी सत्यता दृढ भई है, सो जैसा कर्म शुभ अथवा अशुभ करते हैं तैसे शरीरकों धारते हैं, इसविषे संशय नहीं, जो शास्त्रमर्यादातें उल्लंघित वरतते हैं, अपणी इच्छाकरि सो शरीर त्यागिकरि कोउ काल मूर्च्छित हो जाते हैं, मुहूर्तविषे जागिकरि बडे नरकोंकों चले जाते हैं, आत्मज्ञानविना अरु जिनकों शून्यभावना भई है, जो आगे नरक स्वर्ग कोउ नहीं, लोकपरलोकके भयकों त्यागिकरि शास्त्रबाह्य वरतते हैं, तौ मरीकरि पत्थर वृक्षादिक जड योनिकों पावते हैं, चिरकालतें उनकी वासना परिणमती है, फेरि दुःखभागी होते हैं,अरु जिनकों आत्मभावना हुई है, संसारकी भावना निवृत्त भई है तौ शास्त्रविहित करै, अथवा अविहित करै, तिनकों बंधन कोउ नहीं ॥ हे रामजी! चित्तरूपी भूमि है, इसविषे निश्चयरूपी जैसा बीज बोता है, तैसाही कालकरि उगवता है, यह निःसंशय है, तातें तुम आत्मभावनारूपी बीज बोहु,जो सर्व आत्मा है, ऐसी भावना करहु, तब सिद्धही आत्मा भासैगा, अरु जिनकों संसारका निश्चय हुआ है, तिनकों संसार है ॥ हे रामजी! जो पुरुष धर्मात्मा है, तिनकों उसी वासनाके अनुसार भासता

है, सो धर्मात्मा भी दो प्रकारके हैं, एक सकामी, एक निष्कामी, जो धर्म करते हैं, अरु पापरूपी कामनासहित हैं, तौ स्वर्गभोग भोगीकरि बहुरि गिरते हैं, अरु जो निष्काम हैं, ईश्वरार्पण कर्म करते हैं, तिनका अंतःकरण शुद्ध होता है, बहुरि ज्ञानकी प्राप्ति होती है, यह भी संसारविषे मर्यादा है, जैसा किसीकों निश्चय होता है, तैसाही संसारकों देखता है, पिंड करिके भी शरीर होता है, काहेतें जो यह भी आदि नेतिविषे निश्चय हुआ है, सो जैसे आदि नेतिविषे निश्चय हुआ है, तैसे होता है, जो पवन है, सो पवनही है, जो अग्नि है, सो अग्निही है, इसी प्रकार कल्पपर्यंत जैसे मनोराज्य हुआ है, तैसेही स्थित है, जैसे जल नीचेहीकों जाता है, ऊंचे नहीं जाता, तैसे जो आदि किंचनविषे निश्चय हुआ है, कल्पपर्यंत सोइ है ॥ हे रामजी! जगत व्यवहारविषे तौ ऐसे है, अरु परमार्थतें दूसरा कछु हुआ नहीं, इस जीवने आकाशविषे मिथ्या देह रची है, परमार्थतें केवल निराकार अद्वैत आत्मा है, शरीर इसकेसाथ है नहीं, तातें जगत कैसे होवे ॥ ॥ इति श्रीयोगवासिष्ठे निर्वाणप्रकरणे पिंडनिर्णयो नाम शताधिकविंशतितमः सर्गः ॥ ॥ १२० ॥ ॥ ॥ वसिष्ठ उवाच ॥ हे रामजी! तेरे प्रश्न उपर एक इतिहास है, बृहस्पति अरु बलराजाका सो श्रवण कर, जब छ कल्प व्यतीत हुए थे, दूसरे परार्धके तिस दिनके जुगविषे राजा बल होत भया, सो कैसा था, पराक्रमी मूर्त्ति था, तिस राजा बलनें संपूर्ण दैत्यों अरु राक्षसोंकों जीतिकरि अपणे वश किया, अपणी आज्ञा तिनपर चलाई, अरु राजा हुवा, अरु इंद्रकों भी जीतिकरि अपणे वश किया, पूर्ण ऐश्वर्य तिसका एक नगरकी नांई ले लिया था, देवता किंनरपर तिसकी आज्ञा चली, अरु भूलोक भी लिया, जब सबकों ले रहा, तब धर्म आचारकों ग्रहण किया, जैसे धर्मात्माका आचार है सो ग्रहण किया, एक समय सर्व सभा बैठी थी, अरु यह कथा चली, जो जन्म कैसे होता है, अरु मृत्यु कैसे होता है, तब राजा बली बृहस्पति देवगुरुसों प्रश्न करत भया ॥ हे ब्राह्मण! इह पुरुष जब मृतक होता है, तब शरीर तौ भस्म हो जाता है, बहुरि

कर्मोंके फल कैसे भोगता है, अरु शरीरविना आता जाता कैसे है, सो कहौ ॥ बृहस्पतिरुवाच ॥ हे राजन्! इस जीवकों देह है नहीं; जैसे मरुस्थलविषे जल भासता है, अरु है नहीं तैसे इससाथ शरीर भासता है, अरु है नहीं, यह जीव न जन्मता है, न मरता है, न भस्म होता है, न जलिके दुःखी होता है, तत्त्वतें तत्त्व यह सदा अच्युतरूप है, स्वरूपके प्रमादतें आपकों दुःखी जानता है, जो मैं इनकों भोगता हौं, अरु जन्म्या हौं, एता काल हुआ है, यह मेरी माता है, यह पिता है, मैं इनतें उपजा हौं, बहुरि आपकों मृतक हुआ जानता है ॥ हे राजन्! भ्रमकरि ऐसे देखता है, जैसे निद्रा भ्रमकरि स्वप्नविषे देखता है, तैसे अज्ञान करिके यह जीव आपकों मानता है, जब मृतक होता है, तब जानता है, जो मेरा शरीर पिंडकरि हुवा है, अब मैं दुःखसुखकों भोगौंगा, जैसे स्वप्नविषे आकाश होता है, तहां वासनाकरि अपणेसाथ शरीर देखता है, अरु सुखदुःखकों भोगता है, तैसे मरिकरि अपणेसाथ शरीर देखता है, अरु दुःखसुखका भागी होता है, अरु परमार्थतें इसकेसाथ शरीरही नहीं, तौ जन्म मृत्यु कैसे होवै, स्वरूपतें प्रमादकरि देहधारीकी नांई स्थित हुआ है, तिस देहसाथ मिलीकरि जैसी जैसी भावना करता है; तैसाही फल भोगता है, वासनाके अनुसार जैसी इसकों भावना होती है, तैसा आगे शरीर देखता है, अरु पंचभौतिक संसारकों देखता है, इस प्रकार भ्रमता है,अरु जन्मता मरता आपकों देखता है,जैसे समुद्रतें तरंग उठता है,अरु मिटि जाता है, तैसे शरीर उपजता अरु नष्ट होता है, शरीरके संबंधकरि उपजता अरु बिनसता भासता है, यह आश्चर्य है,जो आत्मा ज्योंका त्यों स्वभावकरि स्थित है, तिसविषे वासनाके अनुसार विश्वकों देखता है ॥ हे राजन्! विश्व इसके अंतर स्थित है, भावनाके अनुसार आगे देखता है, इस जीवविषे विश्व है, अरु विश्वविषे जीव नहीं, जैसे तिलविषे तेल है, अरु तेलविषे तिल नहीं, जैसे स्वर्णविषे भूषण कल्पित हैं, भूषणविषे स्वर्ण कल्पित नहीं, तैसे जीवविषे विश्व कल्पित है, इसके आश्रय फुरती है, सो विश्व सत भी नहीं,अरु असत भी नहीं, सत इस कारण नहीं; जो च

लरूप है स्थित नहीं,अरु असत इसतें नहीं,जो विद्यमान भासती है, तातें इसकी भावना त्याग, यह दृश्य मिथ्या है, इसका अनुभव मिथ्या है, अरु इसके जानणेवाला अहंकार जीव भी मिथ्या है, जैसे मरुस्थलविषे जल मिथ्या है,तैसे आत्माविषे अहंकार जीव मिथ्या है॥ हे रामजी! जबलग शास्त्रके अर्थविषे चपलता है,अरु स्थितितें रहित है,तबलग संसारकी निवृत्ति नहीं होती, जब दृश्यके फुरणे अरु अहंकारतें जड हो जावै, तब इसकों आत्मपदकी प्राप्ति होवै,जबलग दृश्यकी उर फुरता है,चेतन सावधान है, तबलग संसारविषे भ्रमता है ॥ हे राजन्! आत्मा न कहूं जाता है,न आता है, न जन्मता है, न मरता है, जब चैत्य अरु चित्तका संबंध मिटि जावै तब आनंदरूपही है, चैत्य कहियें दृश्य अरु चित्त कहियें अहंकार, संवित जब दोनोंका संबंध आपसमें मिटि जावैगा, तब शेष आत्माही रहैगा, सो ब्रह्म है, आत्मा है, अरु शिवपद है, जिसविषे वाणीकी गम नहीं, सोइ शेष रहैगा, सो अनुभव निर्वाच्य पद है, तिसविषे स्थित होहु ॥ हे रामजी! जिस युक्तिकरि इसकी इच्छा अनिच्छा निवृत्त होवै सो युक्ति श्रेष्ठ है, जबलग इसकों फुरणा उठता है, जो यह भाव है, यह अभाव है, तबलग इसकों जीव कहते हैं, जब भावअभावका फुरणा मिटि जावै, तब जीवसंज्ञा भी चलती रहै, तब शिवपद आत्माकों प्राप्त होवै, तहां वाणीकी गम नहीं ॥ ॥ इति श्रीयोगवासिष्ठे निर्वाणप्रकरणे बृहस्पतिबलसंवादवर्णनं नाम शताधिकैकविंशतितमः सर्गः ॥ १२१ ॥ ॥ ॥ वसिष्ठ उवाच ॥ हे रामजी ! इस प्रकार बृहस्पतिनें बल राजाकों कहा, सो तेरे प्रश्नके उत्तरनिमित्त मैं कहा है ॥ हे रामजी ! जबलग इसके हृदयविषे संसारकी सत्यता है, तबलग जैसे कर्म करैगा, तैसा शरीर धारैगा ॥ हे रामजी ! जिस वस्तुकों चित्त देखता है, तिसकी उर अवश्य जाता है, तिसके देखणेका संस्कार इसके अंतर होता है, जिस पदार्थकों इसनें सत जाण्या है, तिस पदार्थका संस्कार स्थित हो जाता है, अरु समय करि उह संस्कार प्रगट होता है, जैसे मोरके अंडविषे शक्ति होती है, जब समय आया, तब नानाप्रकारके

रंग तिसविषे प्रगट भासते हैं, तैसे चित्तका संस्कार भी समय पायकरि जागता है ॥ हे रामजी! सो चित्त अज्ञानतें उपजा है, बहुरि बृहस्पतिनें कहा ॥ हे राजन्! बीज पृथ्वीपर उगता है, आकाशविषे नहीं उगता, जैसा बीज पृथ्वीविषे बोता है, तैसाही फल होता है, सो इहां अहंरूप जो है, अपणा होणा सो पृथ्वी है, जैसी जैसी भावनाकरि कर्म करता है, तैसा तैसा चित्तरूपी पृथ्वीपर उत्पन्न होता है, बहुरि फल होता है, जो उन कर्मोंके अनुसार धारता है, अरु सुखदुःखकों भोगता है, अरु ज्ञानवान जो है, सो आकाशरूप है, सो आकाशविषे बीज कैसे उपजै, बीज भावनाकरि अज्ञानीरूपी पृथ्वीविषे उगता है ॥ बल उवाच ॥ ॥ हे देवगुरु! जीव जीवता होवै अथवा मृतक होवै, इसकों जो अनुभव होता है, सो अपणी भावनाहितें होता है, तातें जब यह मृतक हुआ, अरु इसकी पिंडादिकविषे भावना न हुई, तौ फेर इसका शरीर कैसे होता है, सुखदुःख भोगणेवाला जो हुआ तौ अकृत्रिम देह हुआ ॥ ॥ बृहस्पतिरुवाच ॥ हे राजन्! पिंडदान आदिक क्रिया न होवै, अरु इसके अंतर भावना है, अरु तिसी समय किसी न किया तौ भी उह जो अंतर भावना है, सोइ कर्मरूप है, उसीकरि भासि आता है, अरु जो उसके अंतर भावना नहीं, अरु किसी बांधवनें इसके निमित्त पिंडदान किया, तौ भी उसकों भासि आता है, काहेतें जो उह भी इसकी वासनाविषे स्पंद है ॥ हे राजन्! जो अज्ञानी जीव है, जिसकों अनात्मविषे आत्मबुद्धि है, तिनके कर्म कहां गये हैं, जो उह कर्म करते हैं सोइ उनके चित्तरूपी भूमिविषे पडे उगते हैं, उनके शरीरकी क्या संख्या है, अनेक वासनारूपी शरीर धारते हैं, ज्ञानविना स्वप्नवत् ॥ ॥ बल उवाच ॥ हे देवगुरु! यह निश्चयकरि मैं जान्या है, जो जिसकों निष्किंचनकी भावना होती है, सो निष्किंचन पदकों प्राप्त होता है, अरु संसारकी उरतें शिलाकी नांई हो जाता है, जैसी इसकी भावना होती है, तैसा स्वरूप हो जाता है, जब संसारतें पत्थरवत् होवै तब मुक्त होवै ॥ ॥ बृहस्पतिरुवाच ॥ हे राजन्! निष्किंचनकों जब जा

नता है, तब संसारकी उरतें जड होता है, राग दोष संसारका नहीं फुरता, इसीका नाम जड है, अरु केवल सार पदविषे स्थित होता है, जब गुण इसकों चलाय नहीं सकै, तब जाणियें, जो निष्किंचन पदकों प्राप्त हुआ है, सोई निःसंदेह मुक्ति है ॥ ॥ हे राजन्! जबलग संसारकी सत्यता चित्तविषे स्थित है तबलग इसकों वासना है, जबलग वासना है, तबलग संसार है, अरु संसारके अभावविना इसकों शांति नहीं प्राप्त होती, सो स्वरूपके प्रमादकरि चित्त हुआ है, चित्ततें वासना हुई है, अरु वासनातें संसार हुआ है, तातें इस वासनाकों त्यागिकरि कोउ फुरणा न फुरै, निष्किंचन भाव हो जावै, तब शांतभागी होवैं ॥ हे राजन्! जिस युक्तिसाथ, जिस क्रमसाथ यह निष्किंचनरूप होवै, सोइ करै ॥ ॥ वसिष्ठ उवाच ॥ हे रामजी! इस प्रकार सुरपुरविषे असुरनायककों सुरगुरुनें कहा था, सो मैं तेरे आगे पिंडदानादिकका क्रम कहा है ॥ ॥ इति श्रीयोगवासिष्ठे निर्वाणप्रकरणे बृहस्पतिवलसंवादो नाम शताधिकद्वाविंशतितमः सर्गः ॥ १२२ ॥ ॥ ॥ वसिष्ठ उवाच ॥ हे रामजी! भावै जीवता होवै, भावै मृतक होवै, जो कछु इसके चित्तसाथ स्पर्श हुआ होवैगा, तिसका अनुभव अवश्य करैगा, जैसे मोरके अंडेविषे रस होता है, उह समयकरि विस्तारकों पावता है, तैसे इसके अंतर जो वासनाका वीज है, जो उह प्रगट नहीं भासता, तौ भी समयकरि विस्तारवान होता है, जबलग चित्त है, तबलग संसार है, जब चित्त नष्ट होवैं, तब सब भ्रम मिटि जावै ॥ हे रामजी! सो चित्त भी असत है, तौ विश्व भी असत्य है, जैसे आकाशविषे नीलता भ्रमकरि भासती है, तैसे आत्माविषे विश्व भ्रम है ॥ हे रामजी! हमकों न चित्त भसता है, न विश्व भासता है, मैं भी आकाश हों, तूं भी आकाशरूप है, यह चित्त स्वरूपके प्रमाद करिके उपजता है, जैसे जहां काजल होता है, तहां श्यामता होती है, तैसे जहां चित्त होता है, तहां वासना होती है, जब ज्ञानरूपी अग्निकरि वासना दग्ध होवै, तब चित्त सतपदकों प्राप्त होता है, अरु जीवितसंज्ञा निवृत्त होती है ॥ हे रामजी! चित्तके उपशमका उ

पाय मुझतें श्रवण करु, तिसकरि चित्त निर्वाण हो जावैगा, जो सप्त भूमिका ज्ञानकी हैं, तिनकरि चित्त नष्ट हो जावैगा, तिनविषे तीन भूमिका तेरे तांई कही हैं,क्रम करिके, अरु चार कहणी रहती हैं ॥ हे रामजी! प्रथम तीन भूमिकाविषे जिसकों एक भी प्राप्त भई है, तिसकों महापुरुष जाण, सो संसारतें कैसा हो जाता है सो श्रवण करु, मान मोह तिसके निवृत्त हो जाते हैं, अरु संग दोष तिसकों नहीं लगता, अरु उसविषे विचार स्थित होता है, कामना सर्व नष्ट हो जाती है, अरु राग दोष तिसकों नहीं रहता, सुखदुःखविषे सम रहता है, ऐसा अमूढ पुरुष अव्यय पदकों प्राप्त होता है, जेते गुण तीसरी भूमिकाविषे प्राप्त हुए पाइते हैं, अरु चित्त नष्ट हो जाता है, तब संसारकों नहीं पाइता, जैसे दीपकसाथ देखियें तौ अंधकारकों नहीं पाइता ॥ इति श्रीयोगवासिष्ठे निर्वाणप्रकरणे चित्तभावप्रतिपादनं नाम शताधिकत्रयोविंशतितमः सर्गः ॥ १२३ ॥ ॥ ॥ वसिष्ठ उवाच ॥ हे रामजी! जब तीसरी भूमिका दृढ पूर्ण होती है, अरु दृढ अभ्यासकरि चउथी उदय होती है, तब अज्ञान नष्ट हो जाता है, अरु सम्यक् ज्ञान चित्तविषे उदय होता है, तव पूर्णमासीके चंद्रमावत् शोभा पावता है, अरु आदि अंततें रहित निर्विभाग चेतनतत्त्वविषे योगीका चित्त स्थित होता है, अरु सर्वकों सम देखता है, जिस योगीकों चतुर्थ भूमिका प्राप्त होती है, तिसके नानाप्रकार भेदभाव निवृत्त हो जाते हैं, अरु अभेद सर्व आत्मभाव उदय होता है, जगत् तिसकों स्वप्नकी नांई भासता है, अरु इंद्रियांका व्यवहार स्वप्नवत् हो जाता है, जैसे अर्ध सुषुप्ति जिसकों होती है, तिस कालविषे खाणा पिणा रसतें रहित हो जाता है,तैसे चतुर्थ भूमिकावालेका व्यवहार रसतें रहित होता है,जैसे सूर्य अपणे प्रकाशकरि प्रकाशता है, तैसे तिसकों आत्माका प्रकाश उदय होता है,अरु सर्व कल्पना तिसकी नाश हो जाती है, न किसी पदार्थविषे राग रहता है, न किसीविषे दोष रहता है, संसारसमुद्रविषे डूबावणेवाले राग अरु दोष हैं, इष्ट पदार्थविषे राग होता है, अनिष्टविषे दोष होता है, सो रागदोष दोनोंका तिसकों अभाव हो जाता है, तातें संसारसमुद्र

विषे गोते नहीं खाता, तिसके चित्तकों कोउ मोहित नहीं करि सकता ॥ हे रामजी! जबलग तृतीय भूमिका होती है, तबलग उसकों जाग्रत अवस्था होती है, जब चतुर्थ भूमिका प्राप्त भई, तब जगत स्वप्नवत् हो जाता है, सर्व जगतकों क्षणभंगुर नाशवंत देखता है, द्रष्टा दर्शन दृश्य भावनाका अभाव हो जाता है ॥

॥ राम उवाच ॥ हे भगवन्! जाग्रत स्वप्न सुषुप्तिका लक्षण मुझकों ज्यौंका त्यौं कहौ, तुरीया अरु तुरीयातीत भी कहौ, बडे जो हैं सो शिष्यकों कहते खेदवान नहीं होते ॥ ॥ वसिष्ठ उवाच ॥ हे रामजी! जो तत्त्वका विस्मरण है, अरु पदार्थकी भावना है, नाशवंत पदार्थकों सतकी नांई जाणना सो जाग्रत है, जो पदार्थविषे भावअभावकी सत्यता होती है, अरु जगतकों मिथ्या भावनामात्र जानणा सो स्वप्न कहते हैं, जाग्रत अरु स्वप्न जिसविषे लय हो जावैं सो सुषुप्ति है, जो ज्ञानभाव करिके भेदकी शांति हो जावै, जाग्रत स्वप्न सुषुप्ति तीनोंका अभाव होवै, ऐसी जो निर्मल स्थिति है सो तुरीया है ॥ हे रामजी! अज्ञानी जीव संसारकों वर्षाकालके मेघकी नांई देखते हैं, जो तिनकों दृढ होकरि भासता है, अरु जिसकों चतुर्थ भूमिका प्राप्त भई है, सो शरत्कालके मेघकी नांई संसारकों देखता है, अरु जिसकों पंचम भूमिका प्राप्त भई है, सो शरत्कालके मेघ नष्ट हुएकी नांई देखता है, जैसे निर्मल आकाश होता है, तैसे उसकों निर्मल भासता है, सो तीनोंका वृत्तांत सुण, अज्ञानी जगतकों जाग्रतकी नांई देखता है, अरु दृढसत्यता जगतकी तिसकों भासती है, तिसकरि रागदोष उपजता है,अरु चतुर्थ भूमिकावाला ऐसे देखता है, जैसे शरत्कालका मेघ वर्षातें रहित होता है, अरु जैसे स्वप्नकी सृष्टि होती है, तैसे तिसकों सत्यता जगतकी नहीं भासती, काहेतें जो स्मृति तिसकों स्वप्नकी होती है, स्वप्नवत् देखता है, तातें उसकों रागदोष नहीं उपजता है, अरु पंचम भूमिका प्राप्तिवाला जगतकों सुषुप्तिकी नांई देखता है, जैसे शरत्कालका मेघ नष्ट हुआ बहुरि नहीं दिखता, तैसे उसकों संसारका भान नहीं होता, अरु चेष्टा उसकी स्वाभाविक पडी होती है, जैसे क

मल स्वाभाविकही खुलता अरु मुंदि जाता है, तैसे तिसकों यत्न कछु नहीं, चेष्टाविषे जैसा प्रतियोगी तिसकों स्वाभाविक आय प्राप्त हुआ सो करता है,जैसे कमलके खुलणेका प्रतियोगी सूर्य हुआ तब खुलि गया, अब जब मुंदणेका प्रतियोगी रात्रि भई तब मुंदि जाता है, उसकों खेद कछु नहीं, तैसे तिस पुरुषकी अहंममतातें रहित स्वाभाविक चेष्टा होती है ॥ हे रामजी! अहंताममतारूपी जाग्रततें उह पुरुष सुषुप्त हो जाता है, अरु संपूर्ण भावरूप जो शब्द अरु अर्थ हैं, तिनका तिसकों अभाव हो जाता है, अशेष शेषका मनन नष्ट हो जाता, पशु पक्षी मनुष्य देवता भला बुरा इत्यादिक भिन्न भिन्न पदार्थकी भावना तिसकों नहीं रहती, द्वैतकलना नष्ट हो जाती है, एक ब्रह्मसत्ताही भासती है, तिसकों संसार नहीं भासता ॥ हे रामजी! अहंतारूपी तिलतें संसाररूपी तेल उपजता है, अरु अहंतारूपी फूलतें संसाररूपी गंध उपजती है, संसारका कारण अहंता है, सो अहंता जिस पुरुषकी नष्ट हो जाती है, उह पुरुष इंद्रियांके इष्टकों पायकरि हर्षवान नहीं होता, अरु अनिष्टके प्राप्त हुए दोष नहीं करता, ऐसे आपकों नहीं जानता, जो मैं खडा हौं, अरु इहां बैठा हौं, अरु चलता हौं,आपकों सर्वदा आकाशरूप जानता है, न अंतर देखता है न बाहिर देखता है, न आकाशकों देखता है, न पृथ्वीकों देखता है, सर्व ब्रह्मही देखता है, तिसकों इतर कछु नहीं भासता, अरु द्रष्टा दर्शन दृश्य तीनोंका साक्षी रहता है, अहंकारका भी साक्षी, इंद्रियांका भी साक्षी, अरु विश्वका भी है, इनके साथ, स्पर्श कदाचित् नहीं करता, जैसे ब्राह्मण चंडालसाथ स्पर्श नहीं करता, अरु जैसे बीजतें अंकुरी होती है बहुरि अंकुरीतें टास होते हैं, इस प्रकार पदार्थ परिणामी हैं, अरु आकाश तिनविषे ज्यौंका त्यौं रहता है, काहेतें जो उनके साथ स्पर्श नहीं करता तैसे उह पुरुष द्रष्टा दर्शन दृश्यतें अतीत रहता है, जैसे मरुस्थलविषे जल असत है, तैसे उस पुरुषकों त्रिपुटी असत्य है, त्रिपुटी अहंता तिस पुरुषकी नष्ट भई है, तातें भेदबुद्धि भी नहीं रहती, तिसीतें शांत है, अरु निर्मल है, संसारतें सुषुप्त है, अरु चेतन घनता करिके

पूर्ण है, सर्वदा शांतरूप है, जिन नेत्रकरि संसार जानता है, सो तिनतें अंध हुआ है, अर्थ यह जिस मन करि फुरणा होता है, तिस मनकों नाश किया है, अरु भय क्रोध अहंकार मोह तिस पुरुषविषे दिखते हैं, तौ भी उसके हृदयविषे कछु स्पर्श नहीं करते, जैसे पक्षी आकाशविषे आलणा भी करता है, परंतु आकाशकों स्पर्श नहींकरि सकता, तैसे उस पुरुषकों विकार कोउ स्पर्श नहीं करता ॥ हे रामजी! तिस पुरुषके संपूर्ण संशय नष्ट हो गये हैं, सर्वदा स्वरूपविषे स्थित है, अरु शांतरूप है, आत्मातें इतर किसी सुखकी वांछा नहीं करता, अरु सर्व संकल्प तिसके नष्ट हुए हैं, अरु आत्मातें इतर कछु नहीं भासता, जाग्रतकी नांई दृष्ट आता है, अरु सर्वदा जाग्रततें सुषुप्त है ॥ ॥ इति श्रीयोगवासिष्ठे निर्वाणप्रकरणे पंचमभूमिकावर्णनं नाम शताधिकचतुर्विंशतितमः सर्गः ॥ ॥ १२४ ॥ ॥ ॥ ॥

वसिष्ठ उवाच ॥ हे रामजी! तीसरी भूमिकापर्यंत जाग्रत है, अरु चतुर्थ भूमिकाविषे जाग्रत अवस्था स्वप्नवत् देखता है अरु पंचम भूमिकावाला संसारतें सुषुप्त होता है, अरु छठी भूमिकावाला तुरीयापदविषे स्थित होता है, अरु सर्वदा अक्रिय है, किसी क्रियाविषे बंधमान नहीं होता, सर्वकाल आनंदरूप है, अरु भिन्न होकरि आनंदकों भोगता नहीं, आपही आनंद है, केवल अपणे आप स्वतः स्थित है, अरु सर्वदा निर्वाण है ॥ हे रामजी! सर्व क्रियाविषे यथाशास्त्र विचरता दृष्ट आता है, परंतु अंतरतें शून्य है, उसकों किसी साथ स्पर्श नहीं, जैसे आकाशविषे सर्व पदार्थ भासते हैं, अरु आकाशका स्पर्श किसीसाथ नहीं, तैसेही सर्व क्रिया तिसविषे विद्यमान दृष्ट भी आती हैं, तौ भी अंतरतें किसीसाथ स्पर्श नहीं करता, काहेतें, जो क्रियाविषे बंधमान करणेहारा अहंकार था, सो तिसका नष्ट हो गया है, केवल शांतरूप है, अहंका फुरणा चिन्मात्रविषेतें निवर्त भया है, चिन्मात्रतें उत्थान अहंभावका, सोइ अज्ञान है, अरु दुःखदायी है, जब अहंभाव निवर्त भया, तब कोउ कर्म स्पर्श नहीं करता, यद्यपि विश्व तिसकों दृष्ट भी आता है, तौ भी वा

स्तवकरि नहीं देखता, तिसकों सर्व ब्रह्महीं भासता है, खाता है, अरु नहीं खाता है, देता भी है, अरु कदाचित् नहीं दिया, लेता है, तौ भी कदाचित् किसीतें कछु नहीं लिया है, चलता है, परंतु कदाचित् नहीं चल्या ॥ हे रामजी! जेते कछु देश काल वस्तु पदार्थ हैं, तिसकों सर्वविषे आत्मभाव होता है, यद्यपि प्रत्यक्ष चेष्टा उसविषे दिखती है, तौ भी तिसके हृदयविषे कछु नहीं, जैसे स्वप्नविषे खाता पीता लेता देता आपकों भासता है, अरु जागेतें सर्वका अभाव हो जाता है, तैसे जो पुरुष परमार्थ सत्ताविषे जाग्या है, तिसकों गुणकी क्रिया अपणेविषे कोउ नहीं भासती, अरु जो करता है, तिसविषे अभिलाष नहीं, तिसकी चेष्टा स्वाभाविक होती है, अपणेनिमित्त कर्तव्य कछु नहीं, ऐसे भगवाननें भी कहा है, अरु सर्व आत्माही देखता है, आकाश पृथ्वी सूर्य ब्राह्मण हस्ती श्वान चंडाल आदिक सर्वविषे आत्मभाव देखता है, अरु आकारकों मृगतृष्णाके जलवत् देखता है, जो अत्यंत अभाव है, अरु द्रष्टा दर्शन दृश्य भी उसकों आकाशवत् भासते हैं, अरु निर्मल आकाशवत् शांतरूप है, अहंभावतें रहित केवल चिन्मात्रविषे स्थित है, ग्रहण त्यागतें अतीत अरु सर्व कलनातें रहित निर्वाण पद है, केवल स्वच्छ निर्मल आकाशरूप स्थित है, अहं मम आदिक चिद्ग्रंथी तिसकी भेदी है, चिद् जड कहियें अनात्मविषे अहं अभिमान, सो तिसका नष्ट भया है, केवल शांतरूप हो रहता है, जैसे क्षीरसमुद्रतें मंदराचल पर्वत निकस्या, अरु शांतरूप हुआ, तैसे रागदोषरूपी क्षोभ करणेवाले इसके अंतःकरणरूपी पर्वत निकसी गया, तब शांतरूप अक्षोभ हुआ, परम शोभाकरि शोभता है, जैसे विश्वकर्मानें सूर्यका मंडल रचा है, अरु प्रकाश करिके शोभा पावता है, तैसे ज्ञानरूपी प्रकाशकरि प्रकाशता है, जैसे चक्री फिरता फिरता रहि जाता है, अरु शांतिकों प्राप्त होता है, तैसे अज्ञानकरि फिरता फिरता ठहर्या हुआ, तिसकरि सदा शांतिकों प्राप्त भया है, अरु अपणे आपकरि प्रकाशता है, जैसे पवनतें रहित दीपक प्रकाशता है, तैसे कलनारूपी पवनतें रहित पुरुष अपणे आपकरि प्रकाशता है, अरु सर्व

दा निर्मल है, एकरस है, जैसे घटके अंतर भी शून्य है, अरु बाहिर भी शून्य है, तैसे देहके अंतर बाहिर आत्मा है, जैसे जलविषे घट राखियें तिसके अंतर बाहिर जल होता है, तैसे उह पुरुष अपणे आपकरि अंतर बाहिर पूर्ण हो रहा है, अरु एकरस है, द्वैत कलनाकों नहीं प्राप्त होता; अरु तिस पदकों पायकरि आनंदमान है, जैसे कोउ मारणेके मिमित्त पकड्या हुआ तिसकी रक्षा होवै, तौ बडे आनंदकों प्राप्त होता है, तैसे उह पुरुष आनंदकों प्राप्त हुआ है, जैसे कोउ आधिव्याधितें छूटा आनंदकों प्राप्त होता है, तैसे उह ज्ञानवान आनंदकों प्राप्त हुआ है, जैसे कोउ पैंढेकरि थका हुआ शय्यापर आय विश्राम करे, अरु आनंदकों प्राप्त होता है, तैसे ज्ञानवानकों आनंद है, जैसे पूर्णमासीका चंद्रमा अमृतकरि आनंदवान होता है, तैसे उह पुरुष अपणे आनंदकरि घुरम है, जैसे काष्ठके जलेतें स्वच्छ अग्नि धुंएतें रहित प्रकाशती है, तैसे ज्ञानवान अज्ञानरूपी धुंएतें रहित शोभता है ॥ हे रामजी! जब संसारकी उर देखता है, तब अग्निकरि जलता हुआ आपतें जुदा देखता है, ज्ञानरूपी पर्वत ऊपर स्थित होकरि जलता देखता है ॥ हे रामजी! यह जो कहा है संसारकों जलता देखता है, सो ऐसे भी नहीं फुरता, जो मैं ज्ञानी हौं, यह संसार है, स्वरूपकी अपेक्षाकरि यह कहा है, जो संसार उसकों दुःखदायी भासता है, आनंदतें रहित उह परमानंदकों प्राप्त भया है; बहुरि कैसा है, जो सत असततें रहित आपणा आप है, तिसविषे स्थित है, जैसें पर्वत अंतर बाहिर अपणे आपविषे स्थित है, अरु एकरस है, तैसे उह पुरुष एकरस है, अरु संसारविषे जाग्रत होकरि चेष्टा करता है, अरु अंतर संसारकी भावनातें रहित है, अरु तिस पदकों वाणीकी गम नहीं, परंतु कछु कहता हौं, श्रवण कर, केई ब्रह्म कहते हैं, केई चेतन कहते हैं, आत्मा कहते हैं, साक्षी कहते हैं, अरु कालवाले उसीकों काल कहते हैं, ईश्वरवादी ईश्वर कहते हैं, सांख्यवाले प्रकृति कहते हैं, इत्यादिक जो संज्ञा है, सर्व उसीके नाम हैं, तिसतें इतर नहीं, तिस पदकों संत जन जाणते हैं ॥

हे रामजी! ऐसे पदकों पायके अपणे आपकरि शोभता है, जैसे मणिके अंतर बाहिर प्रकाश होता है, तैसे उह पुरुष अंतर बाहिर शोभता है, अपणे स्वरूपकरि सदा घुरम रहता है, जो पुरुष छट्ठी भूमिकाविषे स्थित है, तिसके यह लक्षण होते हैं, संसारतें सुषुप्त हो जाता है, अरु स्वरूपविषे चेतन होता है, जीवत्व भाव तिसका चलता रहता है; जीवत्व कहियें परिच्छिन्नता, जैसे घटकी उपाधिकरि घटाकाश परिच्छिन्न भासता है, जब घट भग्न हुआ, तब घटाकाश महाकाश एक हो जाता है, तैसे अहंकाररूपी घटके भग्न हुए आत्माही भासता है ॥ ॥इति श्रीयोगवासिष्ठे निर्वाणप्रकरणे षष्ठभूमिकोपदेशो नाम शताधिकपंचविंशतितमः सर्गः ॥ १२५ ॥ ॥ ॥वसिष्ठ उवाच॥ हे रामजी! इसतें अनंतर जब सप्तम भूमिका पुरुषकों प्राप्त होती है, तब आपकों आत्माही जानता है, अरु भूतका ज्ञान जाता रहता है, केवल आत्मत्वमात्र होता है, दृश्यका ज्ञान नहीं रहता, अरु यह भी ज्ञान नहीं रहता जो विश्व मेरे आश्रय फुरती है, देहसहित होवै अथवा विदेह होवै, उसकों आत्मातें उत्थान कदाचित् नहीं होता, जैसे आकाश अपणी शून्यताविषे स्थित है, तैसे आत्मस्वरूपविषे स्थित है, अरु चेष्टा भी स्वाभाविक होती है, जैसे बालक पींघूडेविषे होता है, तिसके अंग स्वाभाविक हलते हैं, तैसे उसकी चेष्टा खान पान आदिक स्वाभाविक होती है, जैसे काष्ठकी पुतली तागे करिके चेष्टा करती है, तैसे प्रारब्धवेगके तागेकरि उसकी चेष्टा पडी होती है, अपणी इच्छा उसकों कछु नहीं रहती ॥ हे रामजी! जैसी अवस्थाकों सप्तम भूमिकावाला प्राप्त हुआ है, सो आपही जानता है, इतर कोउ जाणी नहीं सकता, जिसका चित्त साथ है, अरु जिसका चित्त सत्पदकों प्राप्त हुआ है, सो भी नहीं जाणी सकता, जिसकों उह पद प्राप्त हुआ है सोइ जाणै ॥ हे रामजी! जीवन्मुक्तका चित्त सत्पदकों प्राप्त हुआ है, अरु तुरीयापदविषे स्थित है, इसका चित्त निर्वाण हो गया है, तुरीयातीत पदकों प्राप्त भया है, अरु विदेहमुक्त है, तिसकों अहंभावका उत्थान कदाचित्

नहीं होता, सतरूप है, अरु असतकी नांई स्थित है ॥ हे रामजी! उह पुरुष तिस पदकों प्राप्त हुआ है, जिसकों वाणीकी गम नहीं, परंतु कछु कहता हौं, सो पद शुद्ध है, अरु निर्मल है, अद्वैत है, अरु चेतन ब्रह्म है, कालका भी काल भक्षण करणेहारा केवल चिन्मात्र है, अरु ज्यौंका त्यौं अच्युत पद है, तिस पदकों पायकरि ऐसे होता है, जैसे वस्त्र ऊपर मूर्त्ति लिखी है, तैसे उत्थानतें रहित है, अहं ब्रह्माका उत्थान भी नहीं रहता ॥ ॥ इति श्रीयोगवासिष्ठे निर्वाणप्रकरणे सप्तमभूमिकालक्षणविचारो नाम शताधिकषड्विंशतितमः सर्गः ॥ १२६ ॥ ॥ ॥ वसिष्ठ उवाच ॥ हे रामजी! यह सप्त भूमिका तेर तांई कही है, जो ज्ञानकी प्राप्ति इनहीकरि होती है, अन्य साधनकरि ज्ञानकी प्राप्ति नहीं होती ॥ हे रामजी! पुरुष ज्ञानवान हुआ तब जाणिये, जब तिसकी वृत्ति प्रथम भूमिकाविषे स्थित हुई है, तातें तुम भूमिकाकी उर चित्तरूप चरण राखौ, तब तुमकों स्वरूपकी प्राप्ति होवै ॥ हे रामजी! तीसरी भूमिकापर्यंत सर्व कामना निवर्त होती है, एक आत्मपदकी कामना रहती है, जब तिस अवस्थाविषे शरीर छूटि जावै, तब अवर जन्म पायकरि ज्ञानकों प्राप्त होता है, अरु जब चतुर्थ भूमिकाविषे प्राप्त हुए शरीर छूटै, तब बहुरि जन्म नहीं पावता, काहेतें जो आत्मपदकी प्राप्ति हुई बहुरि कछु पावणेकी इच्छा नहीं रहती, जन्मका कारण इच्छा है,जब इच्छा कछु न रही, तव जन्म भी न रहा, जिसकों चतुर्थ भूमिका प्राप्त भई है, तिसकों स्वरूपकी प्राप्ति भई है, बहुरि इच्छा कैसे होवै, जैसे भूना बीज नहीं उगता, तैसे उसका चित्त ज्ञान अग्नि करिके दग्ध हुआ है, जो सत पदकों प्राप्त हुआ है, इसीतें जन्म नहीं लेता, अरु मरता भी नहीं, संसारकों स्वप्नवत् देखता है, अरु पंचम भूमिकावाला सुषुप्तकी नांई होता है, अरु छठी भूमिका साक्षीरूप तुरीया पद है,सप्तम तुरीयातीत निर्वाच्य पद है॥ हे रामजी! मेरे एते कहणेका प्रयोजन यही है, जो वासनाका त्याग करु, अरु अचित्त पदकों प्राप्त होहु, सो वासना क्या है, इसका अभिमान होणाही वासना है,

जब इसका अभिमान निवर्त भया, तबही शांति हुई, इस परिच्छिन्न अहंकार रहणा नहीं, आत्माके अ ज्ञानतें हुआ है, अरु आत्मज्ञानतें लीन हो जाता है॥ हे रामजी ! संसाररूपी एक नदी है, तिसविषे आधि व्याधि उपाधि रोग तरंग हैं, अरु रागदोषरूपी छोटे मत्स्य हैं, अरु तृष्णारूपी बडे मत्स्य हैं, तिसविषे तिसकरि जीव दुःख पावते हैं, जैसे जल नीचेकों चला जाता है, तैसे मृत्युके मुखमें संसार चला जाता है, अरु अज्ञानरूपी जल है॥ हे रामजी! तृष्णाकरि पुरुष बांधे हैं, तातें तुम तृष्णारूपी संगलकों काटौ, हस्तिकी नांई वैराग्य अभ्यासरूपी दंतकरि तृष्णारूपी जंजीर काटहू ॥ हे रामजी! यह तृष्णारूपी सर्पिणी है, विषयरूपी फुत्कारेकरि विचाररूपी वल्लीकों जलावती है, तिसकरि जीवरूपी कृषाण दुःख पावता है, तातें वैराग्यरूपी अग्निकरि सर्पिणीकों जलावहु ॥ हे रामजी! तृष्णा दुःखदायी है, जबलग तृष्णा है, तबलग संतके वचन इसके हृदयविषे स्थित नहीं होते, जैसे दर्पण उपर मोती नहीं ठहरता, तैसे तृष्णावानके हृदयविषे संतके वचन नहीं ठहरते, सो तृष्णाके एते नाम हैं, तृष्णा, अभिलाषा, इच्छा, फुरणा, संसरणा इत्यादिक सर्व इसीके नाम हैं, सो इच्छारूपी मेघ है, तिसनें ज्ञानरूपी सूर्य आच्छाद्या है, तिसकरि भासता नहीं, जब विचाररूपी पवन चलै, तब इच्छारूपी मेघ नष्ट हो जावै, अरु आत्मरूपी सूर्यका साक्षात्कार होवै ॥ हे रामजी! यह जीव आकाशका पक्षी है, तिसका कर्मविषे इच्छारूपी तागा है, तिसकरि उडि नहीं सकता, अरु परमात्मपदकों नहीं होता, अरु इच्छाहीकरि दीन है, जब इच्छा नष्ट होवै, तब आत्मस्वरूप है, तातें इच्छाका नाशकरि आत्मपरायण होहु, आत्मपरायण कहिये विषयसंसारतें वैराग्य अरु आत्म अभ्यास करौ ॥ हे रामजी! यह जो मैं तेरे तांई भूमिका क्रम कहा है, जब इसविषे आवै, तब ज्ञानकी प्राप्ति होवै, सो इनकों तब प्राप्त होता है, जो एक हस्तिणीकों जीतता है, एक वनविषे रहती है, दो उसके पुत्र महामत्तरूप हैं, उह अनेक जीवकों मारिकरि अनर्थकों प्राप्त करती है, तिसके जीते

तें सर्व जगत जीत्या जाता है ॥ राम उवाच ॥ हे भगवन्! ऐसी हस्तिनी मत्तरूप सो कवन है, अरु कहां रहती है, कवन उसके दंत अरु पुत्र हैं, कैसे उह मारती है, अरु कैसे उसकों रचा है, अरु कवन बन है, यह सब मुझकों कहौ ॥ ॥ वसिष्ठ उवाच ॥ हे रामजी! इच्छारूपी हस्तिनी है, शरीररूपी बन है, मनरूपी गुंफा विषे रहती है, इंद्रियांरूपी बालक है, संकल्पविकल्परूपी दंत हैं, तिनसाथ छेदती है ॥ हे रामजी! एक नदी है, तिसका प्रवाह सदा चला जाता है, तिसविषे दो मत्स्य रहते हैं, जो नाश नहीं होते, यह संसरणाही नदी है, अरु राग दोष तिसविषे मत्स्य रहते हैं, सो नाश नहीं होते ॥ हे रामजी! मत्स्य तब नाश होवैं, जब संसरणरूपी जल नष्ट होवै, तिसके सुकृतदुष्कृतरूपी किनारे हैं, चिंतारूपी ग्राह है, कर्मरूपी लहरी है, तिन विषे आया जीवरूपी तृण भटकता है, अरु तृष्णारूपी विषकी वल्लीकों नाश करौ ॥ हे रामजी! तृष्णारूपी अंकुरका बढावणा घटावणा अपणे आधीन है, जो अंकुरकों जल देइए तौ बढता जाता है, अरु जो न देइए तौ जलि जाता है, सो फुरणेरूपी जल देणेकरि तृष्णारूपी अंकुर बढता जाता है, अरु न देणेकरि जलि जाता है,स्वरूपके अभ्यासकरि ॥ हे रामजी! तृष्णारूपी बडा मत्स्य है, धैर्य आदिक मांसकों भक्षण करणेवाला है, तिसकों वैराग्यरूपी कुंडा अरु अभ्यासरूपी दंतीकरि नाश करौ ॥ हे रामजी! इच्छाका नाम बंधन है; निरिच्छाका नाम मुक्ति है ॥ हे रामजी! एक सुगम उपाय कहता हौं, जिसकरि तृष्णा नष्ट होजावै, सो निज अर्थकी भावना करु, जब निज अर्थकी भावना करी, तब शीघ्रही आत्मपदकी प्राप्ति होवैगी, अरु तेरी जय होवैगी, सर्वतें उत्तम पदकों प्राप्त होवैगा, अरु वासना तेरी कोउ न रहैगी, शरीरकी चेष्टा स्वाभाविक होवैगी, संकल्प सर्व नष्ट हो जावैंगे ॥ ॥ इति श्रीयोगवासिष्ठे निर्वाणप्रकरणे संसरणाभावप्रतिपादनं नाम शताधिकसप्तविंशतितमःसर्गः ॥ १२७॥ ॥ ॥ ॥ राम उवाच ॥ हे भगवन्! तुम कहते हौ निज अर्थ की भावना करु, वासना नष्ट हो जावैगी, अरु शीघ्रही आत्मपदकी प्राप्ति होवैगी सो वासना तौ चिरकाल

की चित्तविषे स्थित है, एकही वार कैसे नष्ट होवैगी? अरु तुम कहते हौ वासनाके नष्ट हुए जीवन्मुक्त होता है, जिसकी वासना नष्ट हुई तिसका शरीर कैसे रहैगा? अरु वासना बिन चेष्टा क्योंकरि होवैगी? तातें जीवन्मुक्त पद कैसे बणै॥ ॥ वसिष्ठ उवाच॥ हे रामजी! मेरे वचन प्रीतिसाथ सुण, कैसे वचन हैं, श्रवणोंके भूषण हैं, जिनके सुनणेतें दारिद्य न रहैगी, निज अर्थके धारणेतें संशय नष्ट हो जावैंगे, अरु आत्मपदकी प्राप्ति होवैगी, सो निज अक्षरके तीन अर्थ हैं, एक तौ अन्यके अर्थ हैं, जो पंचभौतिक शरीरतें तेरा स्वरूप अन्य विलक्षण है, अरु दूसरा अर्थ यह जो विरुद्ध है, शरीर जड है, तमरूप है, अरु तेरा स्वरूप आदित्यवर्ण है, तमतें परे है॥ हे रामजी! जब तैंनें ऐसे धारा जो मैं आत्मा हौं, अरु यह देहादिक अनात्मा है, तब देहसाथ मिलिकरि अभिलाषा कैसे रहैगी, अर्थ यह जो न करैगा, जबलग जाण्या नहीं, तबलग अभिलाषा है, अरु तीसरा अर्थ निजका यह जो अभाव है, जो न मैं हौं, न कोउ जगत है, ऐसे जाण्या तब इच्छा किसकी रहैगी, अर्थ यह जो न रहैगी, अथवा जो तूं आपकों आत्मा जाणैगा, देहतें विलक्षण तौ भी अविद्यक तमरूप शरीरकी अभिलाषा न रहैगी, देह तमरूप है, तूं आदित्यवर्ण है, आदित्यवर्ण कहिये जो तूं प्रकाशरूप है, तेरा अरु इसका संयोग कहां होवै, जैसे सूर्यके मंडलविषे रात्रि नहीं देखिती तैसे जब तूं आपकों प्रकाशरूप जाणैगा, तब तमरूप संसार न देखैगा, शरीरकी चेष्टा स्वाभाविक होवैगी, अरु तेरेविषे चेष्टा कछु न होवैगी, जैसे अर्ध निद्रावालेकी चेष्टा होती है, अरु जानिती भी नहीं, तैसे चेष्टा होवैगी, अरु बालककी नांई तुझकों अभिमान न होवैगा, जैसे बालककी उन्मत्त चेष्टा होती है, तैसे तेरी चेष्टा भी स्वाभाविक होवैगी॥ हे रामजी! जो तूं इच्छा करै, जो यह सुख होवै, अरु यह दुःख न होवै, तौ कदाचित् न होवैगा, जो कछु शरीरकी प्रारब्ध है सो अवश्य होती है, परंतु ज्ञानवानके हृदयतें संसारकी सत्यता जाती रहती है, अरु चेष्टा स्वाभाविक होती है, इच्छा नहीं रहती॥ हे रामजी! जैसे किसी पुरुषकों मंज

ल पेंडा करणा होता है, पेंडा बडा होवै, अरु पहुंचणेका समय थोडा होवै तौ उह पुरुष मार्गके स्थान देखता भी जाता है, परंतु बंधमान किसीविषे नहीं होता, तैसे चित्तकों आत्मपदविषे ल्यावहु, जो किसी प्रकार पहुंचणा है, ऐसा शरीर पायकरि आत्मपद न पाइए तौ कब पावणा है, जो आत्मपदतें विमुख है, सो वृक्षादिक जन्मोंकों पावैगा, तातें ॥ हे रामजी! चित्त आत्मपदविषे राख, अरु स्वाभाविक इच्छाविना चेष्टा होवै, इच्छाही दुःखदायक है, जब इच्छा नष्ट हुई, तब इसीकों ज्ञानवान तुरीया पद कहते हैं, जहां जाग्रत स्वप्न सुषुप्तिका अभाव होवै सो तुरीया पद है ॥ हे रामजी! यह जाग्रत स्वप्न सुषुप्ति अवस्था जहां न पाइयें सो तुरीयापद है, जब संवेदन फुरणा अहंकारका अभाव हो जावै, तब तुरीयापद प्राप्त होवै ॥ हे रामजी! अहंकारका होणा दुःखदायक है, जब इसका नाश हुआ तबही आनंद है, आत्मपदतें इतर जो मायाकी रचना है, तिससाथ मिलीकरि आपकों जानता है, मैं हौं, यही अनर्थ है, तातें अहंकारका त्याग करौ, जिसकों देखीकरि फुरता है, तिसकों निज अर्थकी भावनाकरि नाश करु, जो आत्मपदतें इतर भासता है, सो मिथ्या जाणौ, यही निज अक्षरका अर्थ है, जेता कछु संसार भासता है, तिसकों स्वप्नमात्र जाणौ, सत जाणीकरि इसविषे इच्छा करणी यही अनर्थ है, अरु मिथ्या जाणीकरि इच्छा न करणी यही कल्याण है ॥ हे रामजी! मैं उंची बाहूकरि पुकारता हौं, मेरे वचन सुणता कोउ नहीं, जो इच्छाही संसारका कारण है, अरु इच्छातें रहित होणा परम कल्याण है, जब इच्छातें रहित हुआ तब शांतपदकों प्राप्त होता है, निरिच्छित हुए आत्मा भासता है, जो आनंदरूप है, सम है, अद्वैत है, तिसविषे जगतका अभाव है ॥ हे रामजी! मोहका बडा माहात्म्य है, हृदयविषे जो आत्मरूपी चिंतामणि स्थित है, तिसका मूर्ख विस्मरण करिके अहंकाररूपी काचकों ग्रहण करते हैं ॥ हे रामजी! तुम निरभिमान होकरि चेष्टा करौ, जैसे यंत्रीकी पुतलीविषे अभिमान कछु नहीं, अरु चेष्टा तिसकी होती है; तैसे पारब्धवेगकरि तुमारी चे

ष्टा होवैगी, यह अभिमान तुम न करौ, जो ऐसे होवै, अरु ऐसे न होवै, जब ऐसा होवैगा, तब शांत पद कों प्राप्त होवैगा, जहां वाणीकी गम नहीं, ऐसे आनंदकों प्राप्त होवैगा, जबलग इंद्रियांके अर्थकी तृष्णा है, तबलग जन्ममृत्युकें बंधनमें है, तातें पुरुषप्रयत्न यही है, जो तृष्णाका नाश करौ, कर्मके फलकी तृष्णा तेरे तांई न होवै, अरु कर्मके करणेविषे भी तेरे तांई इच्छा न होवै, इन दोनोंकों त्यागिकरि स्वरूपविषे स्थित होहु, अरू ऐसा भी निश्चय न होवै, जो मैं त्याग किया है ॥ हे रामजी! जिस पुरुषनें कर्मका त्याग किया है, अरु अहंकारसाथ है, तौ पुण्य अरु पाप तिसनें सब कछु किया है, अरु जिसविषे अहंभाव नहीं, सो भावै तैसे कर्म करै, तौ भी कछु नहीं किया, सो बंधनकों नहीं प्राप्त होता, जो कर्मविषे आपकों अकर्त्ता जानता है, अरु अकरणेविषे अभिमानसहित है, तिसकों करता देखते हैं, सो बंधवान हैं ॥ हे रामजी! ऐसे आत्माकों जाणीकरि अहंममका त्याग करौ, ऐसे संवेदनके त्यागणेविषे यत्न कछु नहीं, स्मृति तिसकी होती है, जिसका अनुभव होता है, जिसका अनुभव न होवै, तिसका त्याग करणा सुगम है, अनुभव कहिए प्रत्यक्ष देखणा, विश्व तेरे स्वरूपविषे है नहीं, तौ अनुभव क्या होवै, यह पदार्थ जो तेरे तांई भासते हैं, तिनके कारणकों जाण, इनका कारण अनुभव है, जो अनुभवही इनका मिथ्या है, तौ स्मृति सत कैसे होवै? जेवरीविषे सर्पका अनुभव हुआ बहुरि स्मरण किया, जो उहां सर्प देखा था, जो सर्पका अनुभवही मिथ्या है, बहुरि उसका स्मरण सत कैसे होवै, तातें जो वस्तु मिथ्या है, तिसके त्यागणेविषे क्या यत्न है, जब प्रपंचकों मिथ्या जान्या तब तुमकों कोउ क्रिया बंधन न होवैगी, चेष्टा स्वाभाविक होवैगी, अरु रागदोष चलता रहैगा, जैसे शरत्कालकी बल्ली सूकी जाती है, अरु आकार उसका दृष्ट आता है; तैसे तुमारा चित्त देखणेमें आवैगा, अरु चित्तका धर्म जो राग दोष है, सो चलता रहैगा, उह चित्त सत पदकों प्राप्त होवैगा, जब सर्व विस्मरण होवैगा, तिसकों शिवपद कहते

हैं, सो परमपद है, अरु ब्रह्म है; शब्द अर्थतें रहित केवल चिन्मात्रअद्वैत पद है, अहंममका त्याग करिके तिसविषे स्थित होहु, अरु संसार इसीका नाम है, जो अहं हौं, अरु यह मेरा है, इसकों त्यागिकरि अपणे स्वरूपविषे स्थित होहु ॥ हे रामजी! जबलग अहं मम यह संवेदन है, तबलग दुःख नहीं मिटते, जब यह संवेदन मिटी, तब आनंद है, आगे जो इच्छा है, सो करौ ॥ ॥ इति श्रीयोगवासिष्ठे निर्वाणप्रकरणे इच्छाचिकित्सोपदेशो नाम शताधिकाष्टविंशतितमः सर्गः ॥ १२८ ॥ ॥ ॥ वसिष्ठ उवाच ॥ हे रामजी! आत्मा अद्वैत है, जिसविषे एक दो कहणा नहीं, अपणे आप स्वभावविषे स्थित है, अंतःकरण चतुष्टय अरु बाह्य पदार्थ सर्व चेतनमात्र हैं, इतर कछु नहीं, रूप इंद्रियां अरु मनका फुरणा, देश काल सर्व आत्मारूपही है, जैसे बालक माटीकी सैना बनाता है, अरु हस्ती घोडे राजा प्रजा नाम कल्पता है, सो सर्व माटीही है, इतर कछु नहीं, तैसे अहं मम आदिक भी सर्व आत्मरूप हैं, इतर कछु नहीं, जैसे माटीविषे हस्ती घोडा आदिक नाम कल्पता है, तैसे आत्माविषे जगत जीव कल्पता है, आत्मातें इतर कछु नहीं, इस अहंकारका त्याग करु, आत्मपदतें इतर कछु फुरै नहीं ॥ हे रामजी! रूप अवलोक नमस्कार यह सब शिवरूपी मृत्तिकाके नाम हैं, मान मेय प्रमाण आदिक यह सब उही रूप हुए तौ किसकरि किसकों संचित कहिये, यह अहं मम आदिक भी चिदाकाशतें इतर कछु वस्तु नहीं, इनकों ऐसे जाणिकरि अफुर शिलावत् निःसंग होय रहु ॥ ॥ राम उवाच ॥ हे भगवन्! तुमनें कहा जो अहं मम फुरणेका त्याग करु, यह मिथ्या है, अहं मम असत है, ज्ञानी ऐसी भावना करते हैं, इनकी सत्ता कछु नहीं, अरु असंग होहु, सो असंग निष्कर्मकरि होता है, अथवा सकर्मकरि होता है यह कहौ ॥ वसिष्ठ उवाच ॥ हे रामजी! यह तूंही कहु, जो कर्म क्या है, निष्कर्म क्या, अरु इनका कारण कवन है, अरु इनका नाश कैसे होवै, अरु नाश होणेकरि सिद्धि क्या होवैगी? जो तूं जानता है, तौ कहु ॥ ॥ राम उवाच ॥ हे भगवन्! जैसे तुमतें श्रवण किया

है, अरु समुझा है, सो मैं कहता हौं; जो वस्तु नाश करणी होवै, तिसकों निश्चयकरि मूलतें नाश करियें; त
बही तिसका नाश होता है, शाखा पत्र काटेतें उसका नाश नहीं होता, तातें इनका क्रम सुणौ, यह संसार
रूपी वनविषे देहरूपी वृक्ष है, तिसका बीज कर्म है, अरु पाणि पाद आदिक उसके पत्र हैं, अरु रुधिर श्वा
स वासना इसविषे रस हैं, अरु सुख दुःख इसके फूल हैं, अरु जाग्रत कर्म वासनारूपी वसंतऋतु है, तिस
करि प्रफुल्लित होते हैं, अरु सुषुप्ति पाप कर्मरूपी इसकों शरत्काल है, तिसकरि सूकि जाता है, ऐसा शरी
ररूपी वृक्ष है, बहुरि कैसा है, तरुणपवनरूपी कली है, क्षणका क्षण सुंदर है, जरारूपी फूल इसकों हसते हैं,
अरु रागदोषरूपी वानर क्षण क्षणविषे क्षोभते हैं, जाग्रतरूपी इसकों वसंतऋतु है, अरु सुषुप्तिरूपी हिम क
रती है, अरु वासनारूपी रसकरि बढता है, अरु पुत्र कलत्र आदिक यह तृण घास है; अरु इंद्रियाके गढरूपी
तिसका मुख है, इनकरि शरीरकी चेष्टा होती है, ज्ञान इंद्रिया इसके पंच स्तंभ हैं, इनकरि वृक्ष धारा है, अ
रु इच्छा इसविषे बेले हैं, जो अपणे अपणे विषयकों चाहती है, अरु बडा स्तंभ इसका मन है, जो सर्वकों
धारता है, अरु पंच प्राण इसके रस हैं, प्रत्यक्ष उन मांस शब्द इनकरि सर्वकों ग्रहण करता है, आगे इनका
बीज जीव है, जीव कहियें चैत्योन्मुखत्व चेतन,अरु जीवका बीज संवित् है, जो मात्रपदतें उत्थान हुआ
है, तिस संवितका बीज ब्रह्म है,तिसके बीज आगे कोउ नहीं ॥ हे भगवन्! सबका मूल संवितका फुरणा है,
जब इसका अभाव हुआ, तब शेष आत्माही रहा है ॥ हे भगवन्! यह तौ मैं जानता हौं, आगे कछु कृपा क
रि तुम कहौ ॥ हे भगवन्! जबलग चित्तसाथ संबंध है, तबलग संसारविषे जन्म मृत्यु पावता है, जब
चित्ततें रहित हुआ, तब परब्रह्म है, सो शिवपद है, अनिच्छित है, शांत है, अनंतरूप है, चिन्मात्रविषे
जो अहंका उत्थान है, सोइ कर्मरूपी वृक्षका कारण है, जबलग अनात्मासाथ मिलिकरि कहता है, मैं हौं ऐ
से जानता है, सो संसारका कारण है, यह तुमारे वचनकरि समुझा है, सो प्रार्थना करी है, आगे कछु कृपा

करि तुम कहौ ॥ ॥ वसिष्ठ उवाच ॥ हे रामजी! इसी प्रकार कर्मका बीज सूक्ष्म संवित् है, जबलग संवित् है, तबलग कर्मोंका बीज नाश नहीं होता, अरु यह सब संज्ञा इसकी हैं, कर्मोंका बीज कहियें, इच्छा कहियें, तृष्णा कहियें, अज्ञान कहियें, चित्त कहियें, इत्यादिक बहुत संज्ञा हैं, अवर क्या किसीविषे हेयोपादेय बुद्धि करैं ॥ हे रामजी! जबलग अज्ञान है, तबलग इच्छा नाश नहीं होती, अरु कर्म भी नाश नहीं होते, नाश दोनोंका भेद नहीं होता, परंतु भेद है, अज्ञानीकों भासता है, जो इच्छा है, यह कर्म है, अरु ज्ञानवानकों सर्व ब्रह्मही भासता है, तातें सुखी रहता है, अरु अज्ञानीकों कर्मविषे कर्म भासता है, तातें बंधमान होता है, अरु इसीका नाम त्याग है, जो कर्मतें कर्मबुद्धि जावै, अरु इसका नाम त्याग नहीं, जो क्रियाका त्याग करणा है ॥ हे रामजी! बडी उपाधि अहंकार है, जिसका अहंकार नष्ट हुआ है, उह पुरुष कर्म करता है, तौ भी उसनें कबहु कछु नहीं किया, अरु जो अहंकारसहित है, उह पुरुष जो तूर्ष्णीं हो बैठा है, तौ भी सब कर्म करता है, इस अहंके त्यागका नाम सर्व त्याग है, अवर क्रियाके त्यागका नाम सर्व त्याग नहीं, पुरुष प्रयत्न यही है, जो सर्व कर्मोंका बीज अहंकारका त्यागणा, अरु परम शांतिकों प्राप्त होणा ॥ ॥ इति श्रीयोगवासिष्ठे निर्वाणप्रकरणे कर्मबीजदाहोपदेशो नाम शताधिकनवविंशतितमः सर्गः ॥ १२९ ॥ ॥

॥ वसिष्ठ उवाच ॥ हे रामजी! इस संवेदनका होणाही अनर्थ है, जो आपकों कछु जानता है, जब इह निवृत्त होवै, तबही इसकों आनंद है ॥ हे रामजी! ज्ञानीकी चेष्टा अहंकारतें रहित स्वाभाविक होती है, जैसे अर्ध निद्रित पुरुष होता है, तैसे ज्ञानी अपणे स्वरूपविषे घूर्म है, जैसे हस्ती मदकरि उन्मत्त होता है, तैसे ज्ञानवान स्वयंब्रह्म लक्ष्मीकरि घूर्म है, अरु ज्ञान ऐसा व्यसन है, जैसा कामीकों काम व्यसन होता है, तैसे यह सुखरूपी स्त्रीकों पायकरि घूर्म रहता है, काहेतें जो निरहंकार है, सर्व दुःखका बीज अहंकार है, जब अहंकार नष्ट हुआ, तब आनंद भया ॥ हे रामजी! संसाररूपी विषकी वल्ली है, तिसका बीज अ

हंकार है, जब अहंकारका अभाव होवै, तब संसारका अभाव होता है ॥ हे रामजी! अहंकार दुःखका मूल है, इस संवेदनका विस्मरण करणा बडा कल्याण है, जो कछु अनात्मसाथ मिलिकरि आपकों मानणा यही अनर्थ है ॥ ॥ राम उवाच ॥ हे भगवन्! जो वस्तु असत्य है, तिसका होणा नहीं होता, अरु जो सत्य है, तिसका अभाव नहीं होता, तुम कैसे कहते हो, जो अहं संवेदनका नाश करो, ए तौ सत भासती है, संवेदन अवेदन कैसे होवै? ॥ ॥ वसिष्ठ उवाच ॥ हे रामजी! तूं सत्य कहता है, जो वस्तु असत्य है, तिसका होणा नहीं, अरु जो सत है, तिसका नाश नहीं होता है ॥ हे रामजी! यह जो अहंकार दृश्य तुझ कों भासता है, सो इसका होणा कदाचित् नहीं, मिथ्या कल्पित है, जैसे जेवरीविषे सर्प होता है, तैसे आत्माविषे अहंकार है, जैसे सूर्यकी किरणांविषे जलाभास होता है, तैसे आत्माविषे अहंकार शब्द अर्थ फुरता है, यह शब्द अरु अर्थ मिथ्या है, तिसका लक्षण यह जो मैं हौं सो कल्पित है, आत्मा केवल शुद्ध स्वरूप है, तिसविषे अहं त्वंका शब्द अर्थ कोउ नहीं, यह अबोधकरि भासते हैं, बोधकरि लीन हो जाते हैं, अरु वेदनाका जो बोध है, सो अनर्थका कारण है, अबोधतम है, जब यह निर्वाण होवै, तब कर्मका बीज मूलतें काट्या ॥ हे रामजी! जो कर्मोंकों त्यागिकरि एकांत जाय बैठता है, जो मैं कर्म नहीं करता हौं, ऐसे मानता है सो कहताही है, जो अहंकारसाथ है तौ फलकों भोगताही है, काहेतें जो अहंकारसहित मैं बहुरि करैगा, आत्मज्ञानविना अनात्मसाथ मिलीकरि आपकों मानता है, अरु जो पुरुष कर्म इंद्रियांसाथ चेष्टा करता है, अरु आत्माकों लेप नहीं जानता है सो अकर्त्ताही है, तिसकों करणेविषे कछु अर्थ सिद्ध नहीं होते, अकरणेकरि भी नहीं होता, ऐसा पुरुष परम निर्वाणपदकों प्राप्त होता है, जिसकों वाणीकी गम नहीं ॥ हे रामजी! उसविषे फुरणा कोउ नहीं, चमत्कार है, चमत्कार कहिए हुआ कछु नहीं अरु भासता है, जैसे बिल्लकी मज्जा होती है, उह बिल्लतें इतर कछु वस्तु नहीं, तैसे जगत है, जैसे सोनेतें भूषण

भिन्न नहीं, तैसे निजशब्दका अर्थ है, सो यह भिन्न भिन्न शब्द अर्थ तबलग भासता है, जबलग अहंवेदनाकार है ॥ हे रामजी! आत्मपद सदा अपणे आपविषे स्थित है, जैसे पत्थर अपणी जडताविषे स्थित है, तैसे आत्मा अपणी चेतनघनताविषे स्थित है, तिसकों मुनीश्वर चेतनसार कहते हैं, तिस अपणे स्वरूपके प्रमादकरि दुःख पावता है ॥ हे रामजी! जो पुरुष गृहविषे स्थित है, अरु अहंकारतें रहित है, तिसकों वनवासी जाण, सदा एकांत है, अरु जो वनवासी है, अरु अहंकारसहित है सो जनोंविषे स्थित है, प्रथम एक गरतविषे था, तिसकों त्यागिकरि दूसरी गरतमें पडा है, जो भेषधारी है, अरु वनवास लिया है, तिसकों ईश्वर चाहै तौ निकसै, नहीं तौ बडे कूपविषे पडा है ॥ हे रामजी! जो पुरुष अर्ध त्याग करता है, एक अंगका त्याग किया, अरु दूसरेका अंगीकार किया, ऐसा पुरुष आपकों निष्कामी मानता है, तिसकों उह त्यागरूपी पिशाचिनी भोगती है ॥ हे रामजी! निष्कर्म यह तबही होता है, जब इसकी अहंवेदना नष्ट होती है, अन्यथा नहीं होता, तातें कर्मकों मूलतें उखाडहु, जैसे शूरदंड बल बुंटेकों मूलतें काटता है, तैसे काटहु, अहं वेदनाही मूल है, तिसका मूल काटणा है ॥ हे रामजी! पुरुष प्रयत्न इसीका नाम है, जो अपणे आपका नाश करणा, अरु आपही रहणा, देहसाथ मिल्या हुआ आपकों जानता है, तिसका नाश करणा, अरु शिवपदकों प्राप्त होणा, जो सर्वदा सतस्वरूप है, अरु अद्वैत है, तिसविषे स्थित होहु, यह विश्व भी तिसका चमत्कार है, जैसे बिल्वविषे गरी होती है, तिसके बहुत नाम राखते हैं, सो बिल्वतें इतर कछु नहीं, तैसे संसार आत्मातें इतर कछु नहीं, जैसे स्तंभविषे काष्ठतें इतर कछु नहीं, तैसे यह संसार है, नानात्व जो भासता है, सो भी चेतनघन आत्माही है, अरु निज अक्षरका अर्थ जो तेरे तांई कहा है, सो भी उही है, विधिनिषेध किसका करियें, सर्व परमात्मा तत्त्व है, दूसरा किंचित मात्र भी नहीं ॥ हे रामजी! ऐसे आत्माकों जाणीकरि सुखेन विचरो, स्वाभाविक चेष्टा होवैगी, जैसे अर्ध नि

द्रितकी होती है, अरु जैसे बालक पिंघुडेविषे होता है, अंग उसके स्वाभाविक हलते हैं, तैसे तुमारी चेष्टा होवैगी, अपणा अभिमान तुम न करौ ॥ हे रामजी! जेते कछु भाव अभाव पदार्थ भिन्न भिन्न भासते हैं, सो आत्माके साक्षात्कार हुएतें परमात्मतत्त्वही भासैंगे, जब अहंकार उत्थान निवर्त होवैगा ॥ हे रामजी! एक अवर युक्ति सुण, जिसकरि आत्मज्ञान होवै, यह जो अहं अहं क्षणक्षणविषे फुरती है, सो जब फुरै तबही तिस क्षणविषे जाण, जो मैं नहीं, जब ऐसे दृढ हुआ, तब अहंकाररूपी पिशाच नाश हो जावैगा, अरु आत्मतत्त्वका साक्षात्कार होवैगा, जब अहंकार नाश होवै, तब आत्मा भासै, तातें अहंकारके नाशका यत्न करु, जो न मैं हौं, न जगत है ॥ हे रामजी! ज्ञान इसीका नाम है, जो अहं मम न रहै, तिसकों मुनीश्वर परम ब्रह्म कहते हैं, अरु सम्यक् पद कहते हैं, अरु जहां अहं मम है, तहां अविद्यारूपी तम खडा है ॥ हे रामजी! अज्ञानीके हृदयविषे सर्व पदार्थका भाव स्थित है, देश काल घर नगर मनुष्य पशु पक्षी आदिक त्रिगुण संसार तिसकों भासता है, जब इनका अभाव हो जावै, तब शांतपदकी प्राप्ति होवै ॥ इति श्रीयोगवासिष्ठे निर्वाणप्रकरणे अहंकारनाशविचारो नाम शताधिकत्रिंशतितमः सर्गः ॥ ॥ १३० ॥ ॥

॥ वसिष्ठ उवाच ॥ हे रामजी! जिसके मनतें मैं मेरेका अभिमान गया है, तिसकों शांति प्राप्त भई है, अरु जिसके हृदयविषे मैं देह मेरेसंबंधी गृह आदिक अभिमान है, तिसकों शांति कदाचित् नहीं, अरु शांतिविना सुख नहीं ॥ हे रामजी! प्रथम आप बनता है, तब जगत है, जो आप होता न बनै तौ जगत कहां होवै, इसका होणाही अनर्थका कारण है, जिस पुरुषनें अहंकारका त्याग किया है, सो सर्वत्यागी भया, अरु जिसनें अहंकारका त्याग नहीं किया, तिसनें कछु नहीं त्याग्या, अरु जिसनें क्रियाका त्याग किया है, अरु आपकों सर्वत्यागी मानता है, सो मिथ्या है, जैसे वृक्षके टास काटिए तौ फिरि उगता है, नाश नहीं होता, तैसे क्रियाके त्याग किये त्याग नहीं होता, त्यागणे योग्य अहंकार जो नष्ट नहीं होता,

तौ क्रिया बहुरि उपजती है, तातें अहंकारका त्याग करै, तब सर्वत्यागी होवै, इसका नाम महात्याग है, तिसकों स्वप्नविषे भी संसार न भासैगा; जागृतकी क्या कहणी है, तिसकों संसारका भान कदाचित् नहीं होता ॥ हे रामजी! संसारका बीज अहंभाव है, तिसकरि स्थावर जंगम जगत भासता है, जब इसका नाश हुआ, तब जगतभ्रम मिटि जाता है, तातें इसके अभावकी भावना करु, जब तेरे तांई अहंभाव फुरै, तब तूं जाण, जो मैं नहीं, जब इस प्रकार अहंका अभाव हुआ, तब पाछे जो शेष रहैगा, सो आत्मपद है ॥ हे रामजी! सब अनर्थका कारण अहंभाव है, तिसीका त्याग करु ॥ हे रामजी ! शस्त्रका प्रहार जीव सहि रहता है, अवर व्याधिरोगकों सही रहता है, इस अहंके त्यागणेविषे क्या कदर्थना है ॥ हे रामजी! संसारका बीज अहंका सद्भाव है, तिसका नाश करना संसारका मूलसंयुक्त नाश है, तातें तिसके नाशका उपाय करौ, जिसका अहंभाव नष्ट हुआ है, तिसकों सब ठौर आकाशरूप है, उसके हृदयविषे संसारकी सत्ता कछु नहीं फुरती, यद्यपि गृहस्थविषे होवै, तौ भी प्रपंच यह शून्य वनकी अटवी तिसकों भासती है, अरु जो अहंकारसहित है, वनविषे जाय बैठै, तौ भी जनके समूहविषे बैठा है, काहेतें जो तिसका अज्ञान नाश नहीं भया, अरु जिसनें मनसहित षट् इंद्रियांकों वश नहीं किया, तिसकों मेरी कथा श्रवणका अधिकार नहीं, उह पशु है, अरु जिस पुरुषनें मनकों जीत्या है, अथवा जीतणेकी इच्छा करता है, दिन दिन प्रति सो पुरुष है, अरु जो इंद्रियांकरि विश्रामी है, काम क्रोध लोभ मोहकरि संपन्न है, सो पशु है, महाअंधतमकों प्राप्त होता है ॥ हे रामजी! जो पुरुष ज्ञानवान है, अरु इच्छा कर्मकी तिसविषे दृष्टि आवती है, तौ भी इच्छा तिसकी अनिच्छाही है, अरु कर्म अकर्महो है, जैसे भून्या दाणा बहुरि नहीं उगता अरु आकार तिसका भासता है, तैसे ज्ञानवानकी चेष्टा दृष्ट आती है, सो देखणे मात्र है, उसके हृदयविषे कछु नहीं ॥ हे रामजी! पुरुष कर्मेंद्रियांसाथ चेष्टा करता है, अरु जगतकी सत्यता हृदयविषे नहीं, तब बंध

न कोउ नहीं होता, अरु जो जगतकों सत्य मानीकरि थोडा कर्म करता है, तौ भी पसरी जाता है, जैसे थोडा अग्नि जागीकरि बहुत हो जाता है, तैसे थोडा कर्म भी उसकों जन्ममरण दुःख देता है, अरु ज्ञानीकों नहीं होता, उसकी प्रारब्ध शेष है, सो भी हृदयविषे नहीं मानता, जानता है, जो शरीरकी है, आत्माकी नहीं, सो भी वेग उतरता जाता है, जैसे कुंभारका चक्र होता है, अरु चरण चलावणेतें रही जाता है, तौ शनैः शनैः वेग उतरता जाता है, तैसे प्रारब्धवेग उसका उतरता जाता है, बहुरि जन्म नहीं होता, काहेतें जो तिसकों अहंकाररूपी चरण नहीं लगता, तातें अहंकारका नाश करु, जब अहंकार नाश हुआ तब सर्वके आदि पदकों प्राप्त होवैगा, सो परम निर्वाणपद है, तिसविषे निर्वाण भी निर्वाण हो जाता है ॥ हे रामजी ! जब वर्षाकाल होता है, तब बदल होते हैं, जब शरत्काल आता है, तब बदल चलते रहते हैं ॥ हे रामजी ! जबलग अज्ञानरूपी वर्षाकाल है, तबलग अहंकाररूपी वर्षा है, जब विचाररूपी शरत्काल आवैगा, तब अहंकाररूपी मेघ चलते रहैंगे, अरु आत्मरूपी आकाश निर्मल भासैगा ॥ हे रामजी ! जैसे मलिन आदर्श होता है, तब मुखका प्रतिबिंब उज्वल नहीं भासता, जब मैल निवर्त होवै तब मुखका प्रतिबिंब प्रत्यक्ष भासै, तैसे अहंकाररूपी मैलकरि जीव आच्छाद्या है, तिसकरि आत्मा नहीं भासता, जब अहंकाररूपी मैल निवृत्त होवै, तब आत्मा ज्योंका त्यों भासै, जैसे समुद्रविषे नानाप्रकारके तरंग उठते हैं, अरु सम्यक्दर्शीकों सब जलमय दृष्टि आते हैं, अरु भूषणविषे स्वर्णही भासता है,तैसे नानाप्रकारके प्रपंच तिस समदर्शीकों चेतनघन आत्माही दृष्ट आता है,आत्मातें इतर कछु नहीं देखता,अवर उरतें पथ्थरकी शिलावत् हो जाता है,काहेतें जो अहंकार उसका नष्ट हो गया है,अरु जो अहंकार साथ है,क्रियाका त्याग करता है,अरु त्यागकरि आपकों सुखी मानता है, सो मूर्ख है, जैसे कोउ लकडी लेकरि आकाशकों नाश किया चाहै तौ नहीं होता, तैसे क्रियाके त्यागकरि दुःख नष्ट नहीं होता, जब संपूर्ण संसार क्रियाका बीज अहंकार नाश होवै, तब अक्रिय आत्मस्वरूपकों प्राप्त हो

ता है,जैसे तांबा अपणे तांबाभावकों त्यागता है, तब स्वर्ण होता है, तैसे जब जीव अपणा जीवत्वभाव त्यागै, तब आत्मा होता है, अरु जैसे तेलकी बुंद जलविषे पाइती है, अरु पसरी जाती है, नानाप्रकारके रंग जलविषे भासता है जैसे ब्रह्मरूपी जलविषे अहंतारूपी तेलकी बुंद नानाप्रकारकी कलना दिखाइ देती है, आत्मा ब्रह्म निराकार निरंजन इत्यादिक नाम भी अहंकार करिके शुद्धविषे कल्पे हैं, सो अफुर केवल सत्तामात्र है, सत अरु असतकी नांई स्थित हैं ॥ हे रामजी! संसाररूपी मिरचका बूटा है, अरु संसाररूपी फूल हैं, अहंतारूपी तिसविषे सुगंधि है ॥ हे रामजी! जब अहंता उदय हुई, तब संसार उदय होता है, अरु अहंताके नाश हुए संसारनाश हो जाता है, क्षणविषे उदय होता है, अरु क्षणविषे नाश होता है, सो अहंताका होणाही उदय होणेका क्षण है, अरु अहंताका लीन होणा सो नाशका क्षण है ॥ हे रामजी! जैसे मृत्तिकाकों जलका संयोग होता है, तिसकरि घट बणता है, तब मृत्तिका घट संज्ञाकों पावती है, तैसे पुरुषकों जब अहंकारका संग होता है, तब संसारी होता है, अरु जीवसंज्ञाकों पावता है, देश काल पृथ्वी पर्वत आदिक दृश्यकों प्रत्यक्ष देखता है, जब अहंता नाश होवै, तब सुखी होता है, जेता कछु नामरूप है, अरु तिसका अर्थ है, सो अहंताकरि भासता है, जब अहंताकों त्यागै, तब शांतरूप आत्माही शेष रहैगा, जैसे पवनतें रहित दीपक प्रकाशता है, तैसे अहंकाररूपी पवनतें रहित अपणे स्वभावविषे स्थित होता है, अरु आनंदपदकों प्राप्त होता है, अरु अनादि पद अपणेकों प्राप्त होता है, अरु सर्वका अपणा आप होता है, देश काल वस्तु अपणेविषे देखता है ॥ हे रामजी! जबलग अहंताका नाश नहीं होता, तबलग मेरे वचन हृदयविषे स्थित न होवैंगे ॥ हे रामजी! जिस पुरुषनें अपणा स्वभाव नहीं जान्या, तिसकों ब्रह्म पावणा कठिन है, जैसे रेतविषे तेल निकसणा कठिन है, तैसे उसकों ब्रह्मका पावणा कठिन है, अरु अपणा स्वभाव जानणा अति सुगम है, जब अहंताका त्याग करै जो न मैं हौं, न जग

त है, तब कल्याण हुआ, तब अहंताका नाश होता है, तब भ्रम कोउ नहीं रहता, जैसे जेवरीके जाणे सर्पभ्रम निवर्त हो जाता है, जबलग अहंता फुरती है, तबलग उपदेश इसकों नहीं लगता, जैसे आरसी उपर मोती नहीं ठहरता, तैसे उसके हृदयविषे मेरे वचन नहीं ठहरते, अरु जिसका हृदय शुद्ध है, तिसकों मेरे वचन लगते हैं, जैसे तेलकी बुंद जलविषे विस्तारकों पावती है; तैसे उसकों थोडा वचन भी बहुत हो लगता है॥ हे रामजी! इसीपर एक पुरातन इतिहास मुनीश्वर कहते हैं सो तूं श्रवण कर, मेरा अरु कागभुषंडका संवाद है, एक समय सुमेरु पर्वतके शिखरपर मैं गया था, तहां भुषंड बैठा था, तिससों मैं प्रश्न किया, जो हे अंग, ऐसा भी कोउ पुरुष है, जिसकी आयुर्बेला बडी होवै, अरु ज्ञानतें शून्य रहा है, जो उनकों देखा होवै तो कहु॥ ॥ भुषंड उवाच॥ हे भगवन्! एक विद्याधर देवता होत भया है, तिसकी बडी आयुर्बेला थी, अरु विद्या बहुत अध्ययन करी थी, सत्कर्मोंविषे विचरता था, अरु भोग भी तिसनें बडे भोगे थे, अरु सत्कर्मोंकों करै, परंतु केवल सकाम चतुर्युग पर्यंत सकाम कर्म करता रहा, जप तप नियम आदिक कर्म करत भया, जब चतुर्थ युगका अंत हुआ, तब उसकों विचार आनि उपजा, जेते भोग सुखरूप जाणीकरि भोगता था, तिन भोगतें उसकों वैराग्य उपजत भया, तब भोगकों त्यागिकरि लोकालोक पर्वतपर गया, तहां जायकरि विचारत भया, जो यह संसार असाररूप है, किसी प्रकार इसतें छूटौं, वारंवार जन्म है, वारंवार मृत्यु है; पदार्थ सत्य कोउ नहीं, किसका आश्रय करौं, ऐसे विचार करिके उह विकृत आत्मा पुरुष सुमेरु पर्वत ऊपर मेरेपास आय प्राप्त भया, अरु शिर नीचा करि मेरे तांई दंडवत करे, अरु मैं भी बहुत आदर किया, तब हाथ जोडिकरि तिसनें कहा॥ ॥ विद्याधर उवाच॥ हे भगवन्! एते कालपर्यंत विषयकों भोगता रहा हौं, परंतु शांति मेरे तांई प्राप्त नहीं भई, तिसतें मैं दुःखी रहा हौं, तुम कृपाकरि शांतिका उपाय कहौ॥ हे भगवन्! चित्ररथका जो बाग बना हुआ है, तिसविषे सदाशिवजी रहता है, अरु कल्पवृक्ष भी बहुत हैं; तिसविषे मैं चिरकाल रहा हौं, बहुरि विद्याध

रके स्वर्गविषे रहा हौं, अरु इंद्रके नंदनवनविषे रहा हौं, अरु स्वर्गकी कंदराविषे रहा हौं, अरु सुंदर अप्सरासाथ स्पर्श किया, अरु विमानपर आरूढ वहुत रहा हौं ॥ हे भगवन्! इत्यादिक वहुत स्थान मैं देखे हैं, अरु तप भी बहुत किया है, दान यज्ञ व्रत भी वहुत किया है, अरु सहस्र वर्ष सुंदररूप देखता रहा हौं, जिनकी सुंदरता कहणेविषे नहीं आती, तौ भी नेत्रकों तृप्ति नहीं भई, अरु बहुत सुगंधिकरि नासिकाकों तृप्ति न भई, अरु रसनाकरि भोजन बहुत प्रकारके खाए हैं, तौ भी शांति न भई, तृष्णा बढती गई, अरु श्रोत्रकरि शब्द राग बहुत प्रकार सुणे हैं, अरु त्वचाकरि स्पर्श वहुत किये हैं तौ भी शांति न प्राप्त भई ॥ हे भगवन्! मैं जिस उर सुख जाणीकरि प्रवेश करौं, तिसी उर दुःख प्राप्त होवै, जैसे मृग क्षुधा निवारणे अर्थ घास खाणे आता है, अरु राग सुणी मूर्च्छित हो जाता है, अरु वेधक उसकों पकडी लेता है, तब मृग दुःख पावता है, तैसे मैं सुख जाणीकरि विषयकों ग्रहण करता था, अरु बडे दुःखकों प्राप्त भया ॥ हे भगवन्! मैं चिरकालतक दिव्य भोग भोगे हैं, पांचों इंद्रिय छठे मनसहित कछु कहणेविषे नहीं आते, ऐसे शब्द स्पर्श रूप रस गंध भोगे, परंतु मेरे तांई शांति न प्राप्त भई, अरु न इंद्रिय तृप्त भई, जैसे घृतकरि अग्नि तृप्त नहीं होती, तैसे दिन दिन प्रति तृष्णा वृद्ध होती जाती है, अरु अंतर पडी जलाती है, जो पुरुष इन भोगके निमित्त यत्न करता है, जो मैं इनकरि सुखी होउंगा, सो मूर्ख है, तिसकों धिःकार है, उह समुद्रविषे तरंगका आश्रय करता है, अरु यह सुखरूप तबलग भासते हैं, जबलग इंद्रियां अरु विषयका संयोग है, जब इंद्रियांतें विषयका वियोग हुआ, तब महादुःखकों प्राप्त होता है, काहेतें जो तृष्णा अंतर रहती है, अरु भोग जाते रहते हैं, जो जो विषय भोगते हैं, सोइ दुःखदायक हो जाते हैं ॥ हे भगवन्! इसीकरि मैं बहुत दुःख पाया है, यद्यपि इंद्रियां कोमल हैं, तौ भी सुमेरकी नांई कठिण हैं, कोमल भासती हैं, परंतु ऐसे हैं, जैसे सर्पिणी कोमल होती है, खड्गकी धारा कोमल है, स्पर्श किया मर जाता है, बहुरि के

सी है, जैसे बेडी जलविषे पवनकरि भ्रमती है, तैसे अज्ञानरूपी नदीविषे पवनरूपी इंद्रियांनें मेरे तांई दुःख दिया है ॥ हे भगवन्! ऐसे भी मैं देखे हैं, जो सारा दिन मागते रहे हैं, अरु भोजन खाणेके निमित्त एकठा नहीं हुआ, अरु एक ऐसे देखे हैं, जो ब्रह्मातें आदि काष्ठपर्यंत सब भोगकों एक दिनविषे भोग्या है, जिसकों दिनविषे भोजनमात्र भी प्राप्त नहीं होता, जो सब विषय इंद्रियांके इष्टरूप भोगता है, तिन दोनोंकों भस्म होते देखी, भस्म दोनोंकी तुल्य हो जाती है, विशेषता कछु नहीं, इंद्रियांके बंधनविषे वारंवार जन्मते अरु मरते हैं, अज्ञानी शांतिकों कदाचित् नहीं प्राप्त होते, अरु जो तुम कहौ तूं तौ सुखी दृष्ट आता है, तेरे तांई क्या दुःख है, तौ हे भगवन्! इह दुःख देखणेमें नहीं आता, जैसे चक्रवर्ती राजा होवै, अरु शिरपर चंवर झुलता है, अरु अंतर अध्यात्मतापकरि तपता है, जो मनविषे ज्वलन है, तिसकरि जलता है, अरु बाहिरतें सुखी दृष्ट आता है, तैसे देखणेमात्र मैं सुखी दृष्ट आता हौं, अरु अंतर इंद्रियां मेरे तांई जलाती हैं ॥ ॥ हे भगवन्! ब्रह्माके लोकविषे मैं बडे सुखकों देखे हैं, परंतु तहां भी दुःखी रहा हौं, काहेतें जो क्षय अरु अतिशय तहां भी रहती है, जिसकरि उह भी जलते हैं, अरु इन इंद्रियांका शस्त्रतें भी कठिन घाव है, सो घाव क्या है, जो संसारकी विषमता नानाप्रकारकी दिखावतियां हैं, सर्वदा राग दोष इनविषे रहता है, तिसकरि मैं बहुत जलता रहा हौं, तातें सोइ उपाय मेरे तांई कहौ, जिसकरि मैं शांतिकों प्राप्त होउं, अरु उह कवन सुख है, जिसकरि बहुरि दुःखी न होवै, अरु जिसका नाश नहीं, आदि अंततें रहित है, सो कहौ, जो तिसके पावणेविषे कष्ट है, तौ भी मैं यत्न करता हौं, जो किसी प्रकार प्राप्त होवै ॥ हे मुनीश्वर! इंद्रियानें मेरे तांई बडा कष्ट दिया है, यह इंद्रियां कैसी हैं, जो गुणरूपी वृक्षकों अग्नि हैं, शुभ गुणोंकों जलावती हैं, विचार धैर्य संतोष अरु शांति आदिक गुणरूपी वृक्षके नाश करणेहारी हैं ॥ हे भगवन्! इननें मेरे तांई दुःख दिया है, जैसे मृगका बच्चा सिंहके वश

पडै, तिसकों मर्दन करता है, तैसे इंद्रियां मेरे तांई मर्दन किया है॥ हे भगवन्! जिस पुरुषनें इंद्रियांकों वश किया है, तिसका पूजन सर्व देवता करते हैं, अरु दर्शनकी इच्छा करते हैं, अरु जिसने मनकों वश नहीं किया, तिनकों दीनकरि जानते हैं,अरु जिस पुरुषनें इंद्रियांकों वश किया है, सो सुमेरु पर्वतकी नांई अपणी गंभीरताविषे स्थित हैं, अरु जिसनें इंद्रियां वश नहीं कियां, सो तृणकी नांई तुच्छ हैं, अरु जिसकों इंद्रियांके अर्थविषे सदा तृष्णा रहती है, सो पशु है, तिसकों मेरा धिःकार है॥ हे मुनीश्वर! जो वडा महंत भी है, अरु इंद्रिय उसके वश नहीं तौ उह महानीच है॥ हे मुनीश्वर! इंद्रियांनें मेरे तांई बडा दुःख दिया है, जैसे महाशून्य उजाडविषे पैंदोईकों तस्कर लूटि लेते हैं, तैसे इंद्रियांनें मेरे तांई लूटि लिया है, अरु इंद्रियांरूपी सर्पिणी है, अरु तृष्णारूपी विष है, तिसकरि इनविषे सारी विश्व मोहित दिखती है, कोउ विरला इनहुतें बचे होवेंगे, यह इंद्रियां दुष्ट हैं, अपणे अपणे विषयकों लेतियां हैं, अवरकों देती नहीं, तुच्छ अरु जड हैं, अनहोतियांनें दुःख दिया है, जैसे वीजलीका चमत्कार होता है, बहुरि छपन हो जाती है, तैसे इंद्रियांके सुख क्षणमात्र दिखाइ देते हैं, बहुरि छपन हो जाते हैं, जबलग इंद्रिय अरु विषयका संयोग है, तबलग सुख भासता है, जब इनका वियोग हुआ, तब दुःख उत्पन्न होता है, काहेतें जो तृष्णा रहती है, एक सैना है, तिसविषे इंद्रियांके भोग उन्मत्त हस्ती हैं, तिसविषे तृष्णारूपी जंजीर हैं, अरु इंद्रियांरूपी रथ हैं, अरु नानाप्रकारके विषय तिसमें घोडे हैं, अरु संकल्पविकल्परूपी खड्ग हैं, तिसके धारणेहारा अहंकार है, अरु यह जो क्रिया होती है, अहंकारसहित, सो शस्त्रोंके समूह हैं॥ हे मुनीश्वर! जिस पुरुषनें इस सैनाकों नहीं जीती, सो मोहरूपी अंधके कूपविषे गिर्या है, अरु कष्ट पावता है, अरु जिसनें जीती है, सो परम सुखकों प्राप्त होता है॥ हे मुनीश्वर! यह इंद्रियां कैसियां हैं, जो भोगकी इच्छारूपी खाईविषे अहंकाररूपी राजाकों डारि देतियां हैं, अरु निकसना कठिन हो पडता है, जिस पुरुषनें इनकों जीता है, ति

सकी त्रिलोकीविषे जय होती है, अरु जिसनें नहीं जीता, सो महा दीनताकों प्राप्त होता है, अरु जन्मजन्मांतरकों पावता है, इन इंद्रियांविषे रजोगुण अरु तमोगुण रहता है, तबलग दाहकों देतियां हैं, जबलग रज तम वृत्ति है, यह भी मनकी वृत्ति है, जब इनका अभाव होवै, तव शांति प्राप्त होवै, यह शोधि देखा है, जो इंद्रियां तपकरि भी वश नहीं होतियां हैं, न यज्ञकरि, न व्रतकरि, न तीर्थकरि वश होतियां हैं, न किसी औषधकरि, न किसी अवर उपाय करिके वश होतियां हैं, एक संतके संगकरि निरवासी होवै, तब वश होतियां हैं, तातें मैं तुमारी शरण हौं, मेरे तांई आपदाके समुद्रतें कृपा करिके निकासहू, जो मैं बूडता हौं, अरु यह संसारसमुद्रविषे दीन हौं, तातें तुमारी शरणकों प्राप्त भया हौं, तुम पार करौ, अरु तुमारी महिमा संतनें भी सुणी है, तुम कृपा करौ ॥ हे भगवन्! जो कोउ आयुबलपर्यंत विषयके दिव्य भोग भोगता रहै, अरु इनतें शांति चाहै तौ न प्राप्त होवैगी, बडे सुख सो दुःख समान हैं, अरु आकाशविषे उडणेवाले भी हैं, तौ भी इंद्रियांकों वश नहीं करि सकते, तातें दीन दुःखी रहते हैं, अरु ऐसा भी कोउ पुरुष होवै, जो फूलकी नांई महामत्त हस्तीके दंतकों चूर्ण करै, तौ भी मानीता है, परंतु इंद्रियांकों अंतर्मुख करणा महाकठिन है ॥ हे मुनीश्वर! एता काल मैं जलता रहा हौं, महा अध्यात्म तापविषे मैं दुःखी हौं, तुम कृपाकरि निकासहु, मैं तुमारी शरण हौं ॥ ॥ इति श्रीयोगवासिष्ठे निर्वाणप्रकरणे विद्याधरवैराग्यवर्णनं नाम शताधिकएकत्रिंशत्तमः सर्गः ॥ १३१ ॥ ॥ ॥

भुषंड उवाच ॥ हे वसिष्ठजी! जब इस प्रकार विद्याधरनें मेरे आगे प्रार्थना करी, तब मैं कहा ॥ हे अंग, तूं धन्य है, अब तूं जाग्या है, जैसे कोउ पुरुष अंधे कुएविषे पडा होवै, अरु तिसकी इच्छा हुई जो निकसौं तौ जाणिएं जो निकसैगा, तातें तूं धन्य है ॥ हे विद्याधर, मैं उपदेश करता हौं, सो तूं अंगीकार करियो, अरु सत जाण जो मेरे वचनोंविषे संशय नहीं करणा, जो यह उपदेश ऐसे क्यौं किया जो सबके

सार वचन हैं सो तेरे तांई कहता हौं, अरु मैं जानता हौं जो तूं शीघ्रही अंगीकार करैगा, जैसे उज्ज्वल आरसी प्रतिबिंबकों ग्रहण करती है, यत्नविना, तैसे मेरे वचन तेरे अंतर प्रवेश करैंगे, जिसका अंतःकरण शुद्ध होता है, तिसकों संत उपदेश करौ अथवा न करौ, उनकों सहज वचनही उपदेश हो लगते हैं, जैसे शुद्ध आदर्श प्रतिबिंबकों यत्नविना ग्रहण करता है, तैसे मेरे वचनोंकों तूं धारि लेवैगा, तब तेरे दुःख नाश हो जावैंगे, अरु परमानंदकों प्राप्त होवैगा, जो अविनाशी सुख है, अरु आदिअंततें रहित है, अरु इंद्रियांके सुख आगमापायी हैं, सो दुःखके तुल्य हैं, इनतें रहित परम सुख है ॥ हे विद्याधरविषे श्रेष्ठ! जो कछु तेरे तांई सुखरूप दृष्ट आवै, तिसका त्याग करु, तब परम सुख तेरेतांई प्राप्त होवैगा, अरु सर्व दुःखका मूल अहंभाव है, जब अहंकार नाश हुआ, तब शांति होवैगी, संसारका बीज अहंकार है, अरु संसार मृगतृष्णाके जलवत् है, अणहोता भासता है, तबलग संसार नष्ट नहीं होता, जबलग अहंतारूपी संसारका बीज है, जब अहंतारूपी बीज नष्ट होजावै, तब संसार भी निवृत्त हो जावै, अरु संसाररूपी वृक्ष है, सुमेरु आदिक पर्वत तिसके पत्र हैं, तारागण तिसके कली फूल हैं, अरु सप्त समुद्र तिसका रस है, अरु जन्ममरण तिससाथ वल्ली हैं, अरु सुखदुःख तिसके फल हैं, अरु आकाश दिशा पातालकों धारिके स्थित हुआ है, अरु अहंकाररूपी पृथ्वीपर उत्पन्न हुआ है, अहंकार तिसका बीज है, अरु मिथ्या भ्रममात्र उत्पन्न हुआ है, असत अरु सतकी नांई स्थित हुआ है, तातें अहंकार बीजका नाश करौ, निरहंकाररूपी अग्निकरि इसकों जलावहु, तब अत्यंत अभाव हो जावैगा, यह भ्रम करिके भयकों देता है, जैसे जेवरीविषे सर्पभ्रम भयकों देता है, तातें निरहंकाररूपी अग्निकरि इसका नाश करौ ॥ ॥ इति श्रीयोगवासिष्ठे निर्वाणप्रकरणे संसाररूपीवृक्षवर्णनं नाम शताधिकद्वात्रिंशत्तमः सर्गः ॥ १३२ ॥ ॥ ॥ भुशुंड उवाच ॥ हे विद्याधर! यह ज्ञान जैसे उत्पन्न होता है, सो श्रवण करु, ब्रह्मविद्या शास्त्र तिसकों श्रवण करणां, अरु आत्मविचार करणा, तिसकरि

ज्ञान उपजता है, तिस आत्मज्ञानरूपी अग्निकरि संसाररूपी वृक्षकों जलावहु, अरु आगे भी है नहीं अणहोता उदय हुआ है, मनके संकल्पकरि हुएकी नांई स्थित है, जैसे पत्थरविषे शिल्पी कल्पता है, जो एती पुतलीयां निकसैंगियां, सो हुइयां कछु नहीं, तैसे मनरूपी शिल्पी यह विश्वरूपी पुतलियां कल्पता है, जब मनका नाश करौगे, तब संसारभ्रम मिटि जावैगा. आत्मविचार करिके परमपदकों प्राप्त होहुगे, अपणा आप परमात्मरूप प्रत्यक्ष भासैगा, तातें अहंताकों त्यागिकरि अपणे स्वरूपविषे स्थित होहु ॥ हे विद्याधर! यह जो संसाररूपी वृक्ष है सो अहंतारूपी बीजतें उपजा है, तिसकों जब ज्ञानरूपी अग्निकरि जलाइएं, तब फिरि यह जगत नहीं उपजता, जब इसकों विचारकरि देखियें, तब अहंत्वंकों नहीं पाइता ॥ हे विद्याधर! यह अहं त्वं मिथ्या हैं, इनके अभावकी भावना करु, यही उत्तम ज्ञान है ॥ हे साधो! जब गुरुके वचन सुणिकरि तिनके अनुसार इसनें पुरुषार्थ किया, तब यह परम ऊंचे पदकों प्राप्त होता है, इसकी जय होती है ॥ हे विद्यारूपी कंदराके धारणेहारे पर्वत, अरु विद्यारूपी पृथ्वीके धारणेहारे, यह संसाररूपी एक आडंबर है, तिसके सुमेरु जैसे केई थंभे हैं, अरु रत्नोंकी पंक्तिसाथ जडे हुए हैं, अरु बन दिशा पहाड वृक्ष कंदरा वैताल देवता पाताल आकाश इत्यादिक जो ब्रह्मांड है, सो तिसके उपर स्थित है, अरु रात्रिदिन भूत प्राणी अरु इनके जो घर हैं सो चउपडके खाने हैं, कोउ जैसा कर्म करता है, तिसके अनुसार दुःख सुख भोगता है, सो खेलै है, ऐसेही संपूर्ण प्रपंच क्रियासंयुक्त दिखाइ देता है, सो भ्रमकरि सिद्ध है, तातें मिथ्या है, जैसे स्वप्नकी सृष्टि संकल्पकरि भासती है, तैसे यह सृष्टि भी भ्रमकरि भासती है, अज्ञानकरि रची हुई है, आत्माके अज्ञानकरि भासती है, सो आत्माके ज्ञानकरि लीन हो जाती है, तब भी परमात्म तत्त्वही है, अरु जब सृष्टि होवैगी, तब भी परमात्मतत्त्वही होवैगा, आगे भी उही था, अरु जो कछु प्रपंच तेरे तांई दृष्टि आता है सो शून्य आकाशही है, त्रिगुणमय प्रपंच गुणोंका रचा हुआ है, अपणे स्वरू

पके प्रमादकरि स्थित भया है, अरु आत्मज्ञानकरि शून्य हो जावैगा, जब प्रपंचही शून्य हुआ, तब आत्मा अरु अनात्माका कहणा भी न रहैगा, पाछे जो शेष रहैगा सो केवल शुद्ध परमतत्त्व है, सो तेरा अपणा आप है, तिसविषे स्थित होहु, अरु दृश्यका त्याग करु, जो है नहीं, न मैं हौं, न जगत् है, जब तूं ऐसा होवैगा, तब तेरी जय होवैगी, आत्मपद सबतें उत्तम है, जब तूं आत्मपदविषे स्थित हुआ, तब तूं सबतें उत्तम हुआ, अरु तेरी जय होवैगी, तातें आत्मपदविषे स्थित होहु ॥ इति श्रीयोग० नि० प्र० संसाराडंबर उ० शताधिकत्रयस्त्रिंशत्तमः सर्गः ॥१३३॥ ॥ भुशुंड उवाच॥ हे विद्याधर! यह प्रपंच भी आत्मका चमत्कार है, अरु आत्मा शुद्ध चेतन है, जिसविषे जड अरु चेतन स्थित हैं, अरु सबका अधिष्ठान है, सो सत्तामात्र तेरा अपणा आप है, अहं त्वं शब्द अर्थतें रहित है, अरु आत्मतत्वमात्र है, अरु सत्य स्वरूपकी असतकी नांई स्थित है ॥ हे विद्याधर! तूं इस जड अरु चेतनतें अबोधमान होहु, जब तूं अबोध हुआ तब तूं शांति चिद्घन होवैगा, अरु यह जो जड चेतन है, सो दोनों जड परमार्थ चेतन आगे इन दोनोंका अंतर रहता है, यद्यपि अदृश्य है तौ भी इनके अंतरही रहता है, जैसे समुद्रके अंतर वडवाग्नि रहती है, अरु इन जड चेतनका जो कारणरूप है सो उही है, उत्पत्ति भी उसीतें होती है, अरु नाश भी उही करता है, जैसे पवनकरि अग्नि उपजती है, अरु पवनहीकरि लीन होती है ॥ हे विद्याधर! जब ऐसे जाण्या जो मैं चेतनरूप भी नहीं अरु जड भी नहीं, जब ऐसी भावना हुई, तब पाछे जो रहैगा सो तेरा स्वरूप है, जब तेरे अंतर इन जड चेतन दोनोंका स्पर्श हुआ नहीं, तब सर्वके अंतर जो चेतन है उह ब्रह्म तेरे तांई भासैगा, अरु विश्व भी आत्माविषे कछु हुई नहीं, जैसे सूर्यकी किरणांका चमत्कार जलाभास होता है, तैसे शुद्ध चेतनका चमत्कार विश्वहो भासता है ॥ हे अंग! जैसे भीत उपर पूतलियां लिखी होतियां है, सो भीततें इतर कछु वस्तु नहीं, चितेरेनें पूतलियां लिखियां हैं, तैसे शून्य आकाशविषे चित्तरूपी चितेरेनें विश्वरूपी पूतलियां कल्पी हैं, सो आ

त्मरूपी भीततें इतर कछु नहीं, जैसे स्वर्णविषे भूषण कल्पित हैं, सो स्वर्णतें इतर कछु नहीं, तैसे आत्माविषे अज्ञानी विश्व देखते हैं, सो आत्मातें इतर कछु नहीं, सब आत्मस्वरूपकी संज्ञा है, जगतका ब्रह्म, आत्मा, आकाश, देश, काल, सब उसी तत्त्वकी संज्ञा है, उही शुद्ध चेतन आकाश है, जिसका चमत्कार ऐसे स्थित है, तिसी तत्त्वविषे स्थित होहु, यह जगत ऐसे है, जैसे दूर दृष्टिकरि आकाशविषे बदल हाथीकी सुंड भासते हैं, तैसे यह जगत है, यह जो अहं त्वंरूप जगत है सो अबोधकरिके भासता है, अरु बोधकरिके लीन हो जाता है, जैसे मरुस्थलविषे सूर्यकी किरणाकरि जल भासता है, जैसे गंधर्वनगर है, तैसे यह जगत है, तातें इसका त्याग करहु ॥ ॥ इति श्रीयोगवासिष्ठे निर्वाणप्रकरणे चित्तचमत्कारो नाम शताधिकचतुस्त्रिंशत्तमः सर्गः ॥ १३४ ॥ ॥ . ॥ भुशुंड उवाच ॥ हे विद्याधर! यह जगत स्थावर जंगम सब आत्मातें उत्पन्न हुआ है, आत्माहीविषे स्थित है, अरु आत्माही विश्वविषे स्थित है, जैसे स्वप्नकी विश्व स्वप्नवालेविषे स्थित है, इतर कछु नहीं, अरु आत्मा किसीका कारण नहीं, काहेतें जो अद्वैत है, जिसविषे दूसरा फुरणां नहीं ॥ हे अंग! जब तूं तिस पद पावणेकी इच्छा करता है, तब तूं ऐसे निश्चय करु जो न मैं हौं, न इह जगत है, जब तूं ऐसा हुआ तब आत्मपदकी प्राप्ति होवैगी; जो देश काल वस्तुके परिच्छेदतें रहित है, अरु सर्व उही परमात्मतत्त्व स्थित है, अरु जगतका कर्ता संकल्पही है, काहेतें जो संकल्पकरि उत्पन्न होता है, बहुरि संकल्पहीकरि नाश होता है, जैसे पवनकरि अग्नि उत्पन्न होती है, अरु पवनहीकरि दीपक निर्वाण होता है, तैसे जब संकल्प बहिर्मुख फुरता है, तब संसार उदय हो भासता है, जब संकल्प अंतर्मुख होता है, तब आत्मपद प्राप्त होता है, अरु प्रपंच लय हो जाता है, तातें संसारकी नानाप्रकार संज्ञा फुरणेकरि होती है, स्वरूपाविषे कछु नहीं, न सत्य है, न असत्य है, न स्वतः है, न अन्य है, यह सब कल्पनामात्र है, सत असत अरु स्वतः अन्यका अभाव हुआ तहां अहं त्वं कहां पाइयें, है नहीं,

सो भ्रममात्र है, बालकके यक्षवत ॥ हे साधो! जहां अहं त्वं नष्ट हो गए, तहां जो सत्ता है, सो परम पद है, अरु जहां जगत है तहां विचारकरि लीन हो जाता है, अरु वास्तव पूछै तौ ब्रह्म अरु जगतविषे भेद कछु नहीं, नाममात्र दो हैं, जैसे घट अरु कुंभ हैं, परंतु भ्रमकरि नानात्व भासता है, जैसे समुद्रविषे आवर्त तरंग उठते हैं, सो जलतें इतर कछु नहीं, अरु पवनके संयोगतें आकार भासते हैं, तैसे आत्माविषे जगत इतर कछु नहीं, परंतु संकल्पके फुरणेकरि नानाप्रकारका जगत भासता है ॥ हे अंग! यह संकल्पके साथ मिलिकरि चित्तशक्ति जैसी भावना करता है, तैसा रूप अपणा देखता है, स्वरूपतें इतर कछु नहीं, परंतु भावनाकरि अवरका अवर देखता है, जैसे शुद्ध मणिके निकट कोउ रंग राखिये तैसा रूप भासता है, अरु मणिविषे कछु रंग हुआ नहीं, तैसे चित्तशक्तिविषे कछु हुआ नहीं, अरु हुएकी नाई स्थित है, तातें अपणे स्वरूपकी भावना करु, अरु जड चेतनकों छांडीकरि शुद्ध चेतनविषे स्थित होहु; जब ऐसे जाणीकरि अपणे स्वरूपाविषे स्थित होवैगा; तब तेरे तांई उत्थानविषे भी विश्व अपणा स्वरूप भासैगा ॥ ॥ हे विद्याधर! यह जगत भी आत्मातें भासता है, जैसे स्थिर समुद्रविषे तरंग फुरते हैं, सो कारणरूप जलविना तौ नहीं, तैसे ब्रह्म कारणरूपविना जगत नहीं, परंतु कैसे है ब्रह्मसत्ता जो अकर्त्तारूप है, अद्वैत है, अच्युत है, इसीतें कहा है जो अकर्ता है, अरु जगत अकारणरूप है, जो जगत अकारणरूप है तौ न उपजता है, न नाश होता है, मरुस्थलके जलवत है, इसीतें कहा है जो जगत कछु वस्तु नहीं, केवल अज अच्युत शांतरूप आत्मतत्त्वही अखंडित स्थित है, शिलाकोशवत अचेत चिन्मात्र है, जिसकों चिन्मात्रकी अंतरभावना नहीं, तिस मूर्खसाथ हमारा क्या है ॥ हे साधो! परमार्थतें कछु बन्या नहीं, अरु जहां जहां यह मन है, तहां तहां अनेक जगत हैं, तृण सुमेरु आदिक जो है, तिन सर्वविषे जगत है, जो विचारकरि देखिये तौ उहीरूप है, अवर कछु नहीं, जैसे स्वर्णके जाणेतें भू

षण भी स्वर्ण भासते हैं, तैसे केवल सत्ता समानपद एक अद्वैत है, इतर कछु नहीं, भिन्न भिन्न संज्ञा भी उ
ही है ॥ ॥ इति श्रीयोगवासिष्ठे निर्वाणप्रकरणे सर्गोपसर्गोपदेशो नाम शताधिकपंचत्रिंशत्तमः
सर्गः ॥ १३५ ॥ ॥ ॥ भुशुंड उवाच ॥ हे विद्याधर ! जब यह आत्मपदकों प्राप्त होता है, तब इस
की अवस्था ऐसी होती है, जो नग्न शरीर होवै, अरु तिसपर बहुत शस्त्रोंकी वर्षा होवै, तिसकरि दुःखी न
हीं होता, अरु सुंदर अप्सरा कंठसाथ मिलैं तौ तिनकरि हर्षवान नहीं होता, दोनोंहीविषे तुल्य रहता है ॥
हे विद्याधर ! तबलग यह पुरुष आत्मपदका अभ्यास करै, जबलग संसारतें सुषुप्तिकी नांई नहीं होता, अ
भ्यासहीकरि आत्मपदकों प्राप्त होवैगा, जब आत्मपदकी प्राप्ति भई, तब पंचभौतिक शरीरके ज्वर स्प
र्श न करैंगे, यद्यपि शरीरविषे प्राप्ति भी होवै, तौ भी तिसके अंतर प्रवेश नहीं करते, केवल शांतपदविषे
स्थित रहता है, विद्यमान भी लगते हैं, तौ भी स्पर्श नहीं कर शकते, जैसे जलविषे कमलकों स्पर्श नहीं
होता ॥ हे देवपुत्र ! जबलग देहादिकविषे अध्यास है, तबलग इसकों सुख दुःख स्पर्श करते हैं, आत्माके
प्रमादकरि जब आत्माका साक्षात्कार हुआ, तब सर्व प्रपंच भी आत्मरूप भासैगा ॥ हे विद्याधर ! जैसे
कोउ पुरुष विषपान करता है, तब उसकों ज्वलनता अरु खांसी होती है, यह अवस्था विषकी है सो वि
षतें इतर कछु नहीं, परंतु नाम संज्ञा हुई है न विष जन्मती है, न मरती है, अरु, धूप खांसी उसविषे दृष्ट
आई है, तैसे आत्मा न जन्मता है, न मरता है, अरु गुणोंकेसाथ मिलिकरि अवस्थाकों प्राप्त हुआ दृष्ट
आता है, आत्मा जन्ममरणतें रहित है, अरु गुणों संकल्पसाथ मिलणेकरि जन्मता मरता भासता है, अं
तःकरण अरु देह इंद्रियादिक भिन्न भिन्न भासते हैं, ॥ हे साधो ! इह जगत भ्रमकरि भासता है, जो ज्ञान
वान् पुरुष है सो इस जगतकों गोपदकी नांई लंघि जाता है, अपणे पुरुषार्थकरि अरु जो अज्ञानी हैं, ति
नकों अल्प भी समुद्रसमान हो जाता है, तातें आत्मपद पावणेका यत्न करौ, जिसके जाणेतें संसारसमु

द्र तुच्छ हो जावै, सो आत्मतत्त्व कैसा है जो सर्वविषे अनुस्यूत व्याप्या है, अरु सर्वतें अतीत है, बहुरि कैसा है, जिसके जाणेतें अंतर शीतल हो जाता है, सब ताप नष्ट हो जाते हैं, ॥ हे साधो ! फिरि तिसका त्याग करणां अविद्या है, अरु बडी मूर्खता है ॥ हे साधो ! यह पदार्थजात सब ब्रह्मस्वरूपही है, जो ब्रह्म स्वरूप हुए तौ; मन अहंकार आदिक कलंक कैसा, सब उही है, किसीकरि किसीकों कछु दुःखसुख नहीं ॥ ॥ हे विद्याधर ! जब आत्मपदकों जाण्या, तब अंतःकरण भी ब्रह्मस्वरूप भासैंगे, जो संकल्पकरि भिन्न भिन्न जाणते हैं, सो संकल्पके होते भी ब्रह्मस्वरूप भासैंगे तातें निःसंकल्प होकरि स्थित होहु, जो न मैं हौं, न इह जगत है, न इदं है, इन शब्दों अरु अर्थोंतें रहित होकरि स्थित होहु, जो संशय सब मिटि जावै ॥ हे विद्याधर ! जब तूं ऐसे निरहंकार होवैगा, अरु निःसंकल्प होवैगा, तब उत्थान कालविषे भी सर्व आत्मा भासैगा, बुद्धि बोध लज्जा लक्ष्मी स्मृति यश कीर्ति इत्यादिक जो शुभ अशुभ अवस्था है, सो सर्व आत्मबुद्धि रहैगी, इनके प्राप्त हुए भी केवल परमार्थसत्तातें इतर न भासैगा, जैसे अंधकारविषे सर्पके पैरका खोज नहीं भासता, काहेतें जो है नहीं, तैसे तेरे तांई सर्व अवस्था न भासैगी, सर्व आत्माही भासैगा, जेते कछु भावरूप पदार्थ स्थित हैं, सो अभाव हो जावैंगे ॥ हे अंग ! जिस पुरुषनें विचारकरि आत्मपद पावणेका यत्न किया है, सो पावैगा, अरु जिसनें कहा जो मैं, मुक्त हो रहौंगा, मेरे तांई दया करैंगे, तिस पुरुषनें कदाचित नहीं मुक्त होणां, आत्मस्वरूपविषे स्थित होणेंकों पुरुषप्रयत्नविना कदाचित मुक्त न होवैगा, आत्मस्वरूपविषे न कोउ दुःख है, न किसी गुणसाथ मिल्या हुआ सुख है, केवल शांतरूप है, किसीकरि किसीकों कछु सुख दुःख नहीं, न सुख है, न दुःख है, न कोउ कर्ता है, न भोक्ता है, केवल ब्रह्मसत्ता अपणे आपविषे स्थित है ॥ इति श्रीयोग० निर्वाणप्रकरणे यथाभूतार्थभावरूपयोगोपदेशो नाम शताधिकषट्त्रिंशत्तमः सर्गः ॥ १३६ ॥ ॥

॥ भुषंड उवाच ॥ हे विद्याधर ! जैसे कोउ कलना करै, जो आकाशविषे अवर आकाश स्थित है, तौ

मिथ्या प्रतीति है, तैसे आत्माविषे जो अहंकार फुरणां है, सो मिथ्या है, जैसे आकाशविषे अवर आकाश कछु वस्तु नहीं, परमार्थ तत्त्व ऐसा सूक्ष्म है, जिसविषे आकाश भी स्थूल है, केवल आत्मत्वमात्र है, अरु स्थूल ऐसा है, जिसविषे सुमेरु आदिक भी सूक्ष्म अणुरूप हैं, द्वैततें रहित चेतन केवल शांतरूप है, गुण अरु तत्त्व क्षोभतें रहित है ॥ हे देवपुत्र! अपणां अनुभवरूप चंद्रमा है, अरु अमृतके स्रवणेहारा है ॥ हे अंग! जेते कछु दृश्य पदार्थ भासते हैं, सो हुए कछु नहीं हैं, अंग आत्मरूप अमृतकी भावना करु, जो तूं जन्ममृत्युके बंधनतें मुक्त होवै, जैसे आकाशविषे दूसरे आकाशकी कल्पना मिथ्या है, तैसे निराकार चिदात्माविषे अहं मिथ्या है, जैसे आकाश अपणे आपविषे स्थित है, तैसे आत्मसत्ता अपणे आपविषे स्थित है, अहं त्वं आदिकतें रहित है, जब अहंका उत्थान तिसविषे होता है, तब जगत विस्तार होता है, जैसे जलविषे द्रवताकरि तरंग पसरते हैं, तैसे अहंकरि जगत पसरता है, अरु जैसे वायु फुरणेतें रहित हुई आकाशरूप हो जाती है, तैसे संवित उत्थान अहंतें रहित हुई, तब आत्मरूप हो जाती है, जगतभ्रम मिटि जाता है, फुरणेकरि जगत फुरि आया है, वास्तव कछु नहीं, ज्ञानवानकों आत्माही भासता है, देश काल बुद्धि लज्जा लक्ष्मी स्मृति कीर्ति सब आकाशरूप हैं, ब्रह्मरूपी चंद्रमाके प्रकाशकरि प्रकाशते हैं, जैसे बदलोंके संयोगकरि आकाश धूम्रभावकों प्राप्त होता है, तैसे प्रमाद करिके संवित दृश्यभावकों प्राप्त होती है, परंतु अवर कछु नहीं होती, जैसे तरंग करिके जल अवर कछु नहीं होता, जैसे काष्ठ छेदेतें अवर कछु नहीं होता, तैसे द्रष्टातें दृश्य भिन्न नहीं होती, जैसे केलेके स्तंभविषे पत्रविना अवर कछु नहीं निकसता, पत्र शून्यरूप है, तैसे क्रूररूप जगत भासता है, परंतु आत्मातें भिन्न कछु नहीं, शून्यरूप है, सीस भुजा नेत्र चरण आदिक नानाप्रकार भिन्न भिन्न भासते हैं, परंतु सब शून्यरूप केलेके पत्रोंकी नांई भासते हैं, सब असाररूप हैं ॥ हे विद्याधर! चित्तविषे रागरूपी मलिनता है, जब वैराग्यरूपी झाडुकरि

झाडियें, तब इसका चित्त निर्मल होवै, जैसे कंध उपर चित्र लिखे होते हैं, तैसे आत्माविषे जगत भासता है, देवता मनुष्य नाग दैत्य आदिक सब जगत संकल्परूपी चितेरेनें मूर्त्यां लिखियां हैं, स्वरूपके विचारकरि निवर्त हो जातियां हैं, जब स्नेहरूप संकल्प फुरता है, तब भावअभावरूप जगत विस्तारकों पावता है, जैसे जलविषे तेलकी बुंद विस्तारकों पावती है, जैसे वांसतें अग्नि निकसीकरि वांसकों दग्ध करती है, तैसे स्नेह इसतें उपजीकरि इसीकों खाते हैं, आत्माविषे जो देश काल पदार्थ भासते हैं, यही अविद्या है ॥ पुरुषार्थकरि इसका अभाव करौ, दो भाग साधुसंग अरु कथाश्रवणविषे व्यतीत करौ, तृतीय भाग शास्त्रका विचार करौ, चतुर्थ भाग आत्मज्ञानका आपही अभ्यास करौ, इस उपायकरि अविद्या नष्ट हो जावैगी, अरु अशब्द अरूप पदकी प्राप्ति होवैगी ॥ विद्याधर उवाच ॥ ॥ हे मुनीश्वर ! चार भाग जो उपायकरि अशब्द पद प्राप्त होता है, सो सब काल क्या है, नाम अर्थके अभाव हुए शेष क्या रहता है? भुषंड उवाच ॥ हे विद्याधर ! संसारसमुद्रके तरणेकों ज्ञानवानका संग करणां, जो विकृत निर्वैर पुरुष है, तिनकी भली प्रकार टहल करणी, तिसकरि अर्धभाग अविद्याका नष्ट होवैगा, उनकी संगति करिके अरु तीसरा भाग मनन करिके चतुर्थ भाग अभ्यास करिके नष्ट होवैगा, अरु जो यह उपाय न करि सकै तौ यह युक्तिकर जिसविषे चित्त अभिलाष करिके आसक्त होवै, तिसीका त्याग करु, एक भाग अविद्या, इस प्रकार नष्ट होवैगी, तीन भाग शनैःशनैःकरि नष्ट होवैगी; साधुसंग अरु सच्छास्त्रविचार अरु अपणा यत्न होवै, तब एकही वार अविद्या नष्ट हो जावैगी, यह समकाल कहियें, अरु एक एकके सेवेतें एक एक भाग निवर्त होता है, पाछे जो शेष रहता है, तिसविषे नाम अर्थ सब असतरूप है, अजर अनंत एकरूप है, संकल्पके उपजेतें पदार्थ भासते हैं, संकल्पके लीन हुए लीन हो जाते हैं ॥ हे विद्याधर ! यह जगत संकल्पकरि रचा है, जैसे आकाशविषे सूर्य निराधार स्थित होता है, तैसे देशकालकी अपेक्षातें रहित यह मननमात्र स्थि

त है, तीनों जगत मनके फुरणे करिके फुरि आते हैं मनके लय हुए लय हो जाते हैं, जैसे स्वप्नके पदार्थ जागेतें अभाव हो जाते हैं ॥ हे विद्याधर ! ब्रह्मरूपी वनविषे एक कल्पवृक्ष है, तिसकी अनेक शाखा हैं, तिसकी एक शाखासाथ जगतरूपी पुरलका फल है, तिसविषे देवता दैत्य मनुष्य पशु आदिक मच्छर है, वासनारूपी रसकरि पूर्ण मज्जा पहाड है, पंचभूत मुखद्वारा तिसका खुला निकसनेका मार्ग है, इत्यादिक सुंदर रचना बणी है, तिसविषे त्रिलोकीका ईश्वर इंद्र एक होत भया, गुरुके उपदेशकरि तिसका आवरण नष्ट हो गया, बहुरि इंद्र अरु दैत्यका युद्ध होणे लगा, इंद्र अपणी सैनाकों ले चला, तब इंद्रकी हीणता भई, इंद्र भागा, दशों दिशाविषे भ्रमता रहा, जहां जावै तहां दैत्य चले आवैं, जैसे पापी परलोकविषे शोभा नहीं पावता, तैसे इंद्र शांतिकों न पाया, तब अंतवाहकरूप करिके सूर्यकी त्रसरेणुविषे प्रवेशकरि गया, जैसे कमलविषे भंवरा प्रवेश करै, तैसे प्रवेश किया, वहां युद्धका वृत्तांत इसकों विस्मरण हो गया, तब एक मंदिरविषे बैठा आपकों देखत भया, जैसे निद्राकरि स्वप्नसृष्टि भासी आवै, तहां रत्न मणीसाथ संविल नगर देखा तिसविषे प्रवेश करत भया, तहां पृथ्वी पहाड नदीयां चंद्र सूर्य त्रिलोकी इसकों भासणे लगी, तिस जगत्का इंद्र आपकों देखत भया, जो दिव्य भोग ऐश्वर्यकरि संपन्न मैं इंद्र स्थित हौं, सो इंद्र केतेक काल उपरांत शरीरकों त्यागिके निर्वाण हुआ, जैसे तेलतें रहित दीपक निर्वाण होता है, तब कुंदनाम पुत्र उसका इंद्र हुआ, राज्य करणे लगा, बहुरि तिसका एक पुत्र भया, तब कुंद इंद्र शरीरकों त्यागिकरि परमपदकों प्राप्त हुआ, तिसका पुत्र राज्य करणे लगा, बहुरि तिसका पुत्र हुआ इसी प्रकार सहस्रपुत्रही होकरि राज्य करते रहे, उनके कुलविषे यह हमारा इंद्र राज्य करता है, तातें यह जगत संकल्पमात्र है, तिस त्रसरेणुविषे यह सृष्टि है, तातें इस जगत्कों संकल्पमात्र जाणीकरि इसकी आस्था त्यागु ॥ ॥ इति श्रीयोगवासिष्ठे निर्वाणप्रकरणे इंद्रोपाख्याने त्रसरेणुजगतवर्णनं नाम शताधिकसप्तत्रिंशत्तमः सर्गः ॥ १३७ ॥ ॥

॥ भुशुंड उवाच ॥ हे विद्याधर ! बहुरि उनके कुलविषे एक इंद्र हुआ, बडा श्रीमान् त्रिलोकीका राज्य करत भया, बहुरि उह निर्वाण हुआ, तिसके पुत्र रहा तिसकों बृहस्पतिके वचनकरि ज्ञानरूप प्रतिमा उदय भई, तब यह विदितवेद होकरि स्थित भया, अरु यथाप्राप्तविषे इंद्र होकरि राज्य करै, दैत्योंकों जीतै, तब एक कालविषे किसी कार्यके निमित्त भिहकी तंतुविषे प्रवेश किया, तहां तिसकों नानाप्रकारका जगत् भासणे लगा, तहां इसकों अपणी इंद्रकी प्रतिमा भई, तब इच्छा उपजी जो मैं ब्रह्मतत्त्वकों प्राप्त होउं, दृश्य पदार्थकी नांई प्रत्यक्ष देखौं, एकांत बैठीकरि समाधिविषे स्थित हुआ, तिसकों अंतर बाहिर ब्रह्म साक्षात्कार हुआ, तिस प्रतिभाके उदय होणेकरि एक निश्चय भया, जो सर्व ब्रह्मही है, अरु सर्व उर पूजणे योग्य है, सर्व पूजते भी इसीकों हैं, अरु सर्व है, अरु सर्व शब्दतें रहित है, रूप अवलोकनतें रहित है, अरु मननतें भी रहित है, केवल शुद्ध आत्मपद है, अरु सर्व उरतें प्राणपद उसीके हैं, सर्व शीस अरु मुख उसीके हैं, अरु सर्व उरतें तिसीके श्रवण हैं, अरु सर्व उरतें तिसीके नेत्र हैं, अरु सर्वकों आत्मत्वकरिके स्थित हो रहा है, सर्व इंद्रियां अरु सर्व विषयकों प्रकाशता है, अरु सर्व इंद्रियांतें रहित है, अरु असक्त हुआ भी सर्वकों धारि रहा है, निर्गुण है, अरु इंद्रियांसाथ मिलिकरि गुणोंका भोक्ता है, अरु सर्व भूतके अंतर बाहिर व्यापी रहा है, अरु सूक्ष्म है, तातें दुर्विज्ञेय है, इंद्रियांका विषय नहीं अरु अज्ञानीकों ज्ञानकरिके दूर है, अरु ज्ञानीकों ज्ञानकरिके निकट है, आत्मत्वकरिके अरु अनंत है, सर्व व्यापी है, अरु केवल शांतरूप है, जिसविषे दूसरा कोउ नहीं,घट पट कंध गाए आवा बरा नरा सबविषे उही तत्त्व भासता है,पर्वत पृथ्वी चंद्र सूर्य देश काल वस्तु सर्व ब्रह्मही है, ब्रह्मतें इतर कछु नहीं ॥ हे विद्याधर ! इस प्रकार इंद्रकों ज्ञान हुआ, अरु जीवन्मुक्त भया, जो कछु चेष्टा होवै सो सब करै, परंतु अंतःकरणविषे बंधमान न होवै, जब केता काल बीत्या, तब इंद्र निर्वाणपदकों प्राप्त हुआ, आकाश भी जिसविषे स्थूल है, तिस पदकों प्राप्त भया, बहु

रि इंद्रका एक पुत्र सो बडा शूरवीर था, तिसनें सर्व दैत्योंकों जीत्या, बहुरि देवताका अरु त्रिलोकीका राज्य करणे लगा, तिसकों भी ज्ञान उत्पन्न भया, सत शास्त्र अरु गुरुके वचनकरि केता काल बीत्या, तब उह भी निर्वाण हुआ, उसका जो पुत्र रहा, उह राज्य करणे लगा इसी प्रकार केई इंद्र हुए अरु तिसविषे राज्य करत भये, अरु नानाप्रकारके व्यवहारकों देखते भये, तब तिसके कुलविषे इसका कोउ पुत्र था, तिसकों यह हमारी सृष्टि भासि आई, उह भी ब्रह्मध्यानी होत भया, तब उह आयकरि इस त्रिलोकीका राज्य करणे लगा, अबलग विश्वका इंद्र उही है ॥ हे विद्याधर! इस प्रकार विश्वकी उत्पत्ति है, सो संकल्पमात्र है, सब मैं तेरे तांई कही है, उसकों पहिले त्रसरेणुविषे सृष्टि भासी, बहुरि तिस सृष्टिके एक भिहकी तंतुविषे उसकों भासी, बहुरि तिसविषे केई वृत्तांत जो संकल्पमात्र थे, उनकों तुरत देखे, अणुविषे अनेक अवस्था देखियां ॥ हे विद्याधर! वास्तव कछु घुई नहीं, जैसे आकाशविषे नीलता भासती है, अरु है नहीं, तैसे यह विश्व है, आत्माविषे विश्वका अत्यंत अभाव है, यह विश्व अहंभावतें उपजा है, जब अहंभाव फुरता है, तब आगे सृष्टि बनती है, जब अहंका अभाव हुआ, तब विश्व कोउ नहीं, इस विश्वका बीज अहं है, तातें तूं ऐसी भावना करु जो न मैं हौं, न जगत है, जब ऐसी भावना करी, तब आत्माही शेष रहैगा, जो प्रत्यक्ष ज्ञानरूप अपणा आप है, ज्योंका त्यों भासैगा ॥ हे विद्याधर! इस मेरे उपदेशकों अंगीकार करु ॥ ॥ इति श्रीयोगवासिष्ठे निर्वाणप्रकरणे संकल्पासंकल्पैकताप्रतिपादनं नाम शताधिक अष्टत्रिंशत्तमः सर्गः ॥ १३८ ॥ ॥ ॥ भुशुंड उवाच ॥ हे विद्याधर! जब अहंका उत्थान होता है, तब आगे सृष्टि बनी भासती है, जब अहंका अभाव हुआ, तब विश्व कछु नहीं भासती, केवल शुद्ध आत्माही भासता है ॥ हे विद्याधर! इंद्रनें कहा जो मैं हौं, उसकों सूर्यकी किरणोंके अणुविषे ऐसे अहं हुआ तब उसविषे देखा अरु कष्ट पाया, जब उसकों अहं न होता, तब दुःखकों न पावता, दुःखरूपी वृक्षका अहंरूपी बीज है, अरु आत्मविचारतें अहंका नाश हो

ता है, जब अहंका नाश होता है तब आत्मपदका साक्षात्कार होता है, अरु आत्मपदके साक्षात्कार हुए परिच्छिन्न अहंका नाश होता है ॥ हे विद्याधर! आत्मरूपी एक पर्वत है, तिस ऊपर आकाशरूपी बन है, तिसविषे संसाररूपी वृक्ष लगे हैं, वासनारूपी तिनविषे रस हैं, अज्ञानरूपी भूमितें उत्पन्न हुआ है, अरु नदियां समुद्र इसकी नाडी हैं, अरु चंद्रमा तारे इसके फूल हैं, वासनारूपी जलसाथ बढता है, अरु अहंकाररूपी वृक्षका बीज, सुख दुःखरूपी इसके फल हैं, रसविषे अनात्मपद है, अरु टास इसके आकाश है, अरु जडां इसकी पाताल है, तुम इस वृक्षकों ज्ञानरूपी अग्निकरि जलावहु, अहंरूपी जो वृक्षका बीज है, तिसीका नाश करौ ॥ हे विद्याधर! एक खाई है, तिसके जन्ममरणरूपी दोनों किनारे हैं, अनात्मरूपी तिसविषे जल है, अरु वासनारूपी तिसविषे तरंग हैं, अरु विश्वरूपी तिसविषे बुदबुदे होते भी हैं, अरु मिटि भी जाते हैं, अरु शरीररूपी तिसविषे झग है, अहंकाररूपी वायु है, जब वायु हुई तब तरंग बुदबुदे सब होते हैं, जब वायु मिटि गई, तब केवल स्वच्छ निर्मलही भासता है ॥ हे विद्याधर! जो वायु हुई तौ जलतें इतर कछु न हुआ, अरु जो न हुई तौ भी जलतें इतर कछु नहीं, जलही है, तैसे अज्ञानके होते भी अरु निवर्त हुए भी आत्मपद ज्योंका त्यों है, परंतु सम्यक् दर्शन करिके आत्मपद भासता है, अरु अज्ञान करिके जगत भासता है, सो अहंका होणाही अज्ञान है, जब अहं हुआ तब मम भी होता है, सो अहं मम भी नाम संसारका है, जब अहं मम मिटि गया, तब जगत्का अभाव होता है, अहंके होते दृश्य भासती है, अरु दृश्यविषे अहं होती है, तातें संवेदनकों त्यागिकरि निर्वाणपदकों प्राप्त होहु ॥ भुशुंड उवाच ॥ हे वसिष्ठजी! इस प्रकार जब मैं विद्याधरकों उपदेश किया, तब समाधिविषे स्थित हुआ, अरु परम निर्वाणपदकों प्राप्त भया, जैसे दीपक निर्वाण हो जाता है, तैसे उसका चित्त क्षोभतें रहित शांतिकों प्राप्त भया ॥ हे ब्राह्मण! उसका हृदय शुद्ध था, मेरे वचनों शीघ्रही उसके हृदयविषे प्रवेश किया, ज

ब समाधि स्थित भया, तब मैं उसकों जगाय रहा वारंवार, परंतु न जाग्या, जैसे कोउ जलता जलता शीतल समुद्रविषे जाय बैठै, अरु उसकों कहिये तूं निकस तौ नहीं निकसता, तैसे संसारतापकरि जलता जो था, अरु आत्मसमुद्रकों उह प्राप्त हुआ, तब अज्ञानरूपी संसारके प्रवाहकों नहीं देखता ॥ हे वसिष्ठ जी! जिसका अंतःकरण शुद्ध होता है, तिसकों थोडे वचन भी बहुत हो लगते हैं, जैसे तेलकी एक बुंद जलविषे पाई बडे विस्तारकों पावती है, तैसे जिसका अंतःकरण शुद्ध होता है, तिसकों थोडा वचन भी बहुत होकरि लगता है, अरु जिसका अंतःकरण मलिन होता है, तिसकों वचन नहीं लगता, जैसे आरसी ऊपर मोती नहीं ठहरता, तैसे गुरु शास्त्रके वचन उसकों नहीं लगते, जब विषयतें वैराग्य उपजै, तब जाणियें जो हृदय शुद्ध हुआ है ॥ हे वसिष्ठजी! जब मैं विद्याधरकों उपदेश किया, तब उह शीघ्रही आत्मपदकों प्राप्त भया, काहेतें जो उसका चित्त निर्मल था ॥ हे मुनीश्वर! जो तुमनें मुझतें पूछा था, सो कहा, जो ज्ञानतें रहित चिरकाल जीता देखा ॥ ॥ वसिष्ठ उवाच ॥ हे रामजी! ऐसे मैं काक भुषंडकों पूछा था, सो मुझसों कहा, अरु कहीकरि तूष्णी हो गया, जैसे मेघ वर्षाकरि तूष्णी होवै, तैसे उह तूष्णी भया, अरु मैं नमस्कार करिके उठी आकाशमार्गतें अपणे घर आया ॥ हे रामजी! अब एकादश चउकडी युग बीते हैं, मेरे अरु काग भुषंडके संवादकों ॥ हे रामजी! कालका नियम नहीं, जो थोडे कालकरि ज्ञान उपजता है, अथवा बहुत कालकरि उपजता है, यह हृदय शुद्धकी बात है, जिसका हृदय शुद्ध होता है, तिसकों गुरु शास्त्रोंका वचन शीघ्रही लगता है, जैसे जल नीचेकों स्वाभाविक जाता है, तैसे शुद्ध हृदयविषे उपदेश शीघ्रही प्रवेश करता है ॥ हे रामजी! एता उपदेश क्रम करिके तुझकों किया है, तिसका तात्पर्य यह जो फुरणेका त्याग करु, जो न मैं हौं, न कोउ जगत है, तब पाछे निर्विकल्प केवल आत्मपद रहैगा, जो सर्वका अपणा आप है, तिसका साक्षात्कार तुझकों होवैगा, जैसे दर्पण मलिनविषे मुख नहीं

दिखता, तैसे आत्मरूपी दर्पण अहंरूपी मलकरि आच्छाद्या है, जब इसका त्याग करौ, तब आत्मपद की प्राप्ति होवैगी, अरु जगत भी अपणा आप भासैगा, जो आत्मातें इतर कछु नहीं, काहेतें जो इतर कछु नहीं, केवल आत्मत्वमात्र है, अरु अवर जो कछु भासता है, सो मृगतृष्णाके जलवत् जाण, अरु वंध्याके पुत्रवत् जाण, यह जगत आत्माके प्रमादकरि भासता है, जैसे आकाशमें नीलता भासती है, अरु है नहीं, तैसे जगत प्रत्यक्ष भासता है, अरु है नहीं, जैसे जेवरीविषे सर्प मिथ्या है, तैसे आत्माविषे जगत मिथ्या है, जब आत्माका ज्ञान हुआ, तब जगत्का अत्यंत अभाव होवैगा, केवल आत्मत्वमात्र अपणा आप भासैगा ॥ ॥ इति श्रीयोगवासिष्ठे निर्वाणप्रकरणे भुषंड विद्याधरोपाख्यानसमाप्तिर्नाम शताधिकनवत्रिंशत्तमः सर्गः ॥ १३९ ॥ ॥ ॥ ॥ ॥ वसिष्ठ उवाच ॥ हे रामजी! तूं अहं वेदनातें रहित होहु, संसाररूपी वृक्षका बीज अहंही है, वासना करिके शुभ अशुभरूप कर्मका सुख दुःख फल है, अरु वासनाहीकरी प्रफुल्लित होता है, तातें अहंभावकों निवृत्त करौ, जब अहं फुरता है, तब आगे जगत भासता है, जब अहंतातें रहित होवैगा तब जगतभ्रम मिटि जावैगा, सो अहंता आत्मबोधकरि नष्ट होती है, आत्मबोधरूपी खंभाणीकरि उडाया अहंतारूपी पाषाण जानियेगा नहीं जो कहां गया, अरु स्वर्ण पाषाण तुझकों तुल्य हो जावैगा, अरु शरीररूपी पत्र उपर अहंतारूपी अणु स्थित है, जब बोधरूपी वायु चलैगी, तब न जानियेगा जो कहां गया, अरु शरीररूपी पत्रउपर अहंतारूपी बरफका कणका स्थित है, बोधरूपी सूर्यके उदय हुए न जानियेगा जो कहां गया, बोध विना अहंता नष्ट नहीं होती, भावै चिकडविषे गमन होवै, भावै पहाडविषे जाय रहै, भावै घरहिविषे रहै, भावै आकाशविषे उडै, भावै जलविषे रहै, भावै स्थलविषे रहै, भावै स्थूल होवै, भावै सूक्ष्म होवै, भावै निराकार होवै, भावै रूपांतरकों प्राप्त होवै, भावै भस्म होवै, भावै मृतक हो जावै, भावै दूर होवै, अथवा

निकट होवै, जहां रहैगा, तहांही अहंता इसकेसाथ है ॥ हे रामजी! संसाररूपी वट है, तिसका बीज अ
हंता है, तिसतें सब शाखा पसरती हैं, सब अनर्थका कारण अहंता है, जबलग अहंता है, तबलग दुःख
नहीं मिटता, जब अहंभाव नष्ट होवै, तब परम सिद्धताकी प्राप्तिहोवैगी ॥ हे रामजी! जो कछु मैं उपदे
श किया है, तिसकों भली प्रकार विचारिकरि तिसका अभ्यास करु, तब संसाररूपी वृक्षका बीज जलि
जावैगा, अरु आत्मपदकी प्राप्ति होवैगी ॥ ॥ इति श्रीयोगवासिष्ठे निर्वाणप्रकरणे अहंकारासत्ययोगो
पदेशो नाम शताधिकचत्वारिंशत्तमः सर्गः ॥ १४० ॥ ॥ वसिष्ठ उवाच ॥ हे रामजी! संसार संकल्प
मात्र सिद्ध है, भ्रम करिके उदय हुआ है, आत्मस्वरूपविषे सृष्टि वस्तियां हैं, केई लीन होतियां हैं, केई उ
त्पन्न होतियां हैं, केई उडतियां हैं, कहूं एकठियां जाय होतियां हैं, कहूं भिन्न भिन्न उडतियां हैं, सो मुझ
कों प्रत्यक्ष भासतियां हैं, उह उडतियां जातियां हैं, तुम भी देखौ अरु आकाशरूप हैं, अरु आकाशही
सों मिलतियां हैं, जैसे केलेका वृक्ष देखणेमात्र सुंदर होता है, अरु तिसविषे सार कछु नहीं होता, तैसे वि
श्व देखणेमात्र सुंदर है, अरु आकाशरूप है, बहुरि कैसी हैं, जैसे जलविषे पहाडका प्रतिबिंब पडता है, अरु
हलता भासता है, तैसे यह जगत है ॥ ॥ राम उवाच ॥ हेभगवन्! तुम कहते हौ, प्रत्यक्ष सृष्टि उडति
यां मुझकों भासतियां हैं, तूं भी देख यह तौ, मैं कछु नहीं समुझा, क्या कहते हौ? ॥ वसिष्ठ उवाच ॥ हे रामजी!
अनेक सृष्टि उडतियां हैं, सो श्रवण करु, पंचभौतिक शरीरविषे प्राण स्थित है, अरु प्राणविषे चित्त स्थित
है, तिस चित्तविषे अपणी अपणी सृष्टि है, जब यह पुरुष शरीरका त्याग करता है, तब लिंगशरीर जो वास
ना अरु प्राणवायु है, सो उडते हैं, तिस लिंगशरीरविषे विश्व है, उह सूक्ष्म दृष्टिकरि मुझकों भासती है ॥ हे
रामजी! आकाशकी जो वायु है, जिसका रूप रंग कछु नहीं, उही वायु प्राणोंसाथ मिलि मेरे तांई प्रत्यक्ष
देखाइ देती है, इसीका नाम जीव है, स्वरूपतें न कोउ आया है; न जाता है; परंतु लिंगशरीरके संयोगकरि

आपकों आता जाता देखता है, अरु जन्मता मरता देखता है, अपणी वासनाके अनुसार आत्माविषे विश्व देखता है, अवर वन्या कछु नहीं, यह वासनामात्र सृष्टि है, जैसी वासना होती है, तैसी विश्व भासती है॥ हे रामजी! यह पुरुष आत्मस्वरूप है, परंतु लिंगशरीरके मिलणेकरि इसका नाम जीव हुआ है, अरु आपकों परिच्छिन्न जानता है, वास्तवतें ब्रह्मस्वरूप है, देश काल वस्तुके परिच्छेदतें रहित सो ब्रह्म है, तिसके प्रमादकरि आपकों कछु मानते हैं, इसीका नाम लिंगशरीर है,जैसे घटाकाश भी महाकाश है,परंतु घटके खपरकरि परिच्छिन्न हुआ है, तैसे यह पुरुष भी आत्मस्वरूप है,अहंकारके संयोगकरिके जीव परिच्छिन्न हुआ है, जैसे घटकों एक देशतें उठाए देशांतरविषे ले जाय रखा, तो क्या ले गया, आकाश तो न कहूं गया है, न आया है, खपरकरि आता जाता भासता है, तैसे आत्मा अखंडरूप है, परंतु प्राण चित्तकरि चलता भासता है, जब अहंकाररूप चित्त नष्ट होवै, तब अखंडरूप होवै, जबलग अहंकाररूपी खपर नहीं फूटता तबलग जगत भ्रम दिखता है, अरु वासना करिके भटकता फिरता है, वासनाकरि सृष्टि अपणे अपणे चित्तविषे स्थित है, जब शरीरका त्याग करता है, तब आकाशविषे उडता है, प्राणवायु उडीकरि जो आकाशविषे शून्यरूप वायु है, तिसविषे जाय मिलती है, तहां इसकों अपणी वासनाके अनुसार सृष्टि भासी आती है, अपणी सृष्टिकों लेकरि इस प्रकार उडते हैं, जैसे वायु गंधकों ले जाती है, तैसे यह वासनारूप सृष्टिकों ले जाते हैं, सो उडते मेरे तांई सूक्ष्म दृष्टि करिके भासते हैं॥ हे रामजी! स्थूल दृष्टि करिके लिंगशरीर नहीं भासता, सूक्ष्म दृष्टिकरि देखता है, जिस पुरुषकों सूक्ष्म दृष्टि लिंग शरीर देखणेकी है, अरु ज्ञानतें रहित है, सोउ मेरे मतविषे मूर्ख पशु है॥ हे रामजी! जब यह पुरुष वासनाका त्याग करता है, वासना कहिये अहंकार, जो मैं हों, इस होणेका त्याग करता है, तब आगे विश्व नहीं दिखाइ देती, केवल निर्विकल्प ब्रह्म भासता है, उसके प्राण नहीं उडते तहांही लीन हो जाते हैं, काहेतें जो उसका चित्त अचित्त हो जाता

है, इसकरि नहीं उडते, जबलग अहंकारका संयोग है, तबलग विश्व इसके चित्तविषे स्थित है, जैसे बीज विषे वृक्ष स्थित होता है, जैसे तिलोंविषे तेल स्थित होता है, तैसे इसके हृदयविषे विश्व स्थित है, जैसे मृत्तिकाविषे वासन बडे छोटे होवैं, जैसे लोहेविषे सुई खड्ग होवै, जैसे बीजविषे वृक्षभाव चेतन अथवा जड होवै ॥ हे रामजी ! तैसे यह संकल्पकलनाविषे भेद है, स्वरूपतें कछु नहीं, तैसे यह जगत है ॥ हे रामजी ! विश्व संकल्पमात्र है, काहेतें जो दूसरी अवस्थाविषे नाश हो जाती है, यह जाग्रत जो तुझकों भासती है, सब मिथ्या है, जब स्वप्न आया, तब जाग्रत नहीं रहती, अरु जाग्रत आई तब स्वप्न नाश हो जाता है, जब मृत्यु आती है, तब सृष्टिका अत्यंत अभाव हो जाता है, अरु देश काल पदार्थ सहित वासनाके अनुसार अवर सृष्टि भासती है ॥ हे रामजी ! यह विश्व कैसी है, जैसे स्वप्ननगर होवै तैसे है, जैसे संकल्पपुर होवै तैसे यह सब संकल्प उडते फिरते हैं, सृष्टिकेई परस्पर मिलतियां हैं, केई नहीं मिलतियां, परंतु सब संकल्परूप भ्रम करिके अवरका अवर भासता है, जैसे कोउ पुरुष बडा होता है, अरु छोटा भासता है, अरु छोटेकों बडा भासता है, जैसे हस्तीके निकट अवर पशु तुच्छ भासते हैं, अरु चीटीके निकट अवर बडे भासते हैं, तैसे जो ज्ञानवान् पुरुष है, तिसकों बडे पदार्थ देशकाल संयुक्त विश्व तुच्छ भासती है, असत् जानता है, अरु जो अज्ञानी है, तिनकों संकल्पसृष्टि बडी होकरि भासती है, जैसे पहाड बडा भी होता है, परंतु जिसकी दृष्टितें दूर है, तिसकों महालघु तुच्छ जैसा भासता है, अरु चीटीके निकट तुच्छ मृत्तिकाकी टेल राखी पहाडके समान है, तैसे ज्ञानीकी दृष्टीतें यह जगत रहित है, इसकरि बडा जगत भी उसकों तुच्छरूप भासता है, अरु अज्ञानीकों तुच्छरूप भी बडा भासता है ॥ हे रामजी ! यह विश्व भ्रम करिके सिद्ध हुई है, जैसे भ्रम करिके सीपीविषे रूपा भासता है, अरु जेवरीविषे सर्प भासता है, तैसे आत्माके प्रमादकरि विश्व भासती है, अरु आत्मातें भिन्न कछु नहीं, जैसे निद्रा दोष करिके पुरुष अपणे अं

ग भूलि जाते हैं, अरु जागे हुए सब अंग अपणे भासते हैं, तैसे अविद्यारूपी निद्रा करिके पुरुष सोया हुआ, जब जागता है, तब सब विश्व अपणा आप दिखाई देती है, जैसे स्वप्नतें जाग्या हुआ स्वप्नकी विश्व कों अपणा आपही देखता है, तैसे यह विश्व अपणा आपही भासैगा ॥ हे रामजी! जब यह पुरुष निद्रा में सोया होता है, तब शुभ अशुभ विश्वविषे रागदोष कछु नहीं होता, अरु जागता है, तब इष्टविषे राग होता है, अनिष्टविषे दोष होता है, सो जबलग इसकों विश्वविषे हेयोपादेय बुद्धि है, जो सर्वज्ञ है तो भी मूर्ख है ॥ हे रामजी! जब यह पुरुष जड हो जावै, तब कल्याण होवै सो जड होणा यही है, जो दृश्यतें रहित आत्माविषे स्थित होवै, सो आत्मा चिन्मात्र है, आत्मातें इतर जो कछु करता है, सत् अथवा असत् जानता है, तबलग स्वरूपकी प्राप्ति नहीं होती, जब संवित् फुरणेतें रहित होवै, तब स्वरूपका साक्षात्कार होवै, तातें फुरणेका त्याग करु, अरु यह स्थावर जंगम जगत जो तुझकों भासता है सो सर्व ब्रह्मस्वरूप है, जब तूं ऐसे निश्चय करैगा, तब सर्व विवर्त्तका अभाव हो जावैगा, आत्मपदही शेष रहैगा ॥ ॥ राम उवाच ॥ हे भगवन्! यह जीव जो तुम कहा सो जीवका स्वरूप क्या है, अरु जीव आकारकों ग्रहण कैसे करता है, अरु इसका अधिष्ठान परमात्मा कैसे है, अरु इसके रहणेका स्थान कवन है सो कहो ॥ ॥ वसिष्ठ उवाच ॥ हे रामजी! शुद्ध जो परमात्मतत्त्व निर्विकल्प चिन्मात्रपद है, तिसविषे चैत्योन्मुखत्व हुआ जो मैं हों, ऐसे जो चित्कला ज्ञानरूप फुरी, अरु तिसकों चित्तका संबंध हुआ, जो चित्तका संयोग भया, तिसका नाम जीव है, सो जीव न सूक्ष्म है, न स्थूल है, न शून्य है, न अशून्य है, न थोडा है, न बहुत है, केवल आत्मत्व मात्र है, अरु शुद्ध है, न अणुरूप है, न स्थूल है, अनंत चेतन आकाशरूप है, तिसकों जीवकरि कहते हैं, स्थूलका स्थूल उही है, सूक्ष्मका सूक्ष्म उही है, अनुभव चेतन सर्वगतरूप सो जीव है, तिसविषे वास्तव शब्द कोउ नहीं, जो कोउ शब्द है, सो प्रतियोगीसाथ मिलिकरि हुआ है, अरु जीव अद्वैत है, जो अद्वैत

है, तिसका प्रतियोगी कैसे होवै, यह जीवका स्वरूप है, चैत्यके संयोगकरि जीव हुआ है, अरु जीवका अधिष्ठान परमात्मतत्त्व है, चेतन आकाश है, निर्विकल्प है, चैत्यतें रहित शुद्ध चेतन है, तिसविषे जो संवित फुरी है, तिसका नाम जीव है, सो सूक्ष्मतें सूक्ष्म है, स्थूलतें स्थूल है, सर्वका बीज है, इसीका नाम वैराट कहते हैं, अरु शरीर तिसका मनोमय है, आदि जो परमात्मतत्त्वतें फुर्या है, अरु अवर अवस्थाकों नहीं प्राप्त भया, अवर अवस्था कहिये परिच्छिन्नताकों नहीं प्राप्त हुआ, आपकों सर्व आत्मा जानता है, इसका नाम विराट है, प्रथम शरीर उसका मनोमात्र अरु शुद्ध प्रकाशरूप है, रागदोषरूपी मलतें रहित है, अरु अनंत आत्मा है, सर्व मन अरु कर्मों अरु देहोंका बीज है, अरु सबविषे व्यापी रहा है, सब जीव का अधिष्ठाता है, तिसीके संकल्पकरि यह जीव रचे हैं, पंच ज्ञान इंद्रियां अरु अहंकार मन अरु संकल्प इन आठोंके आकार धारे हैं, अरु आपही ग्रहण किए हैं, परमार्थरूपकों त्यागि फुरणेतें जो आकार उत्पन्न हुए हैं, तिनकों ग्रहण किया इसका नाम पुर्यष्टका है, बहुरि इन इंद्रियांके छिद्र रचता भया, स्थूलरूप रचीकरि तिनविषे आत्मप्रतीति करत भया, जैसे पुरुष शयन करता है, अरु जाग्रत शरीरका त्यागकरि स्वप्नशरीरका अंगीकार करता है, तैसे शुद्ध चिन्मात्र निर्विकार अद्वैत स्वरूपकों त्यागिकरि वासनामय शरीरका अंगीकार किया है, अरु वास्तव स्वरूपका कछु त्याग नहीं किया, स्वरूपतें उह गिर्या नहीं, शुद्ध निर्विकल्प भावकों त्यागिकरि विराट भाव होत भया है,इसी प्रकार आगे तिस पुरुषनें चारौं वेदज्ञान करिके रचे, अरु नीतिकों निश्चय किया, नीति कहियें जो यह पदार्थ ऐसे होवै, अरु एताकाल रहै, यह रचना रची जो जो संकल्प करत भया, सो सो देशकाल पदार्थ दिशा ब्रह्मांड सब आगे होत भये, तिस पुरुषके एते नाम हैं, ईश्वर वैराट आत्मा परमेश्वर इत्यादिक जीवके नाम हैं, सो इस जीवका स्वरूप वासनारूप कछु झूट नहीं, वासनाके शरीर ग्रहण करणेकरि वासनारूप कहा है, अरु वास्तवरूप शुद्ध है, निर्विका

र अद्वैत है, कदाचित् स्वरूपतें अन्य अवस्थाकों नहीं प्राप्त भया, सदा ज्ञानरूप है, अद्वैत परम शुद्ध है, तिसकों अपणे चेतन स्वभावकरि चैत्यका संयोग हुआ है, तिसकरि कहा है; जो उसका वपु वासनारूप है, तिस आदि जीवतें ब्रह्मा विष्णु रुद्रतें आदि लेकरि देवता दैत्य आकाश मध्य पाताल त्रिलोकी उत्पन्न हुई है, जैसे दीपकतें दीपक होता है, अरु जलतें जल होता है, तैसे सव विराट स्वरूप है, सो विराट कैसा है, महाआकाश जिसका उदर है, अरु समुद्र तिसका रुधिर है,अरु नदियां जिसकी नाडी हैं, अरु दिशा जिसके वपु हैं, अरु जिसके उदरविषे केई ब्रह्मांड सुमेरु पर्वतसहित समाए रहते हैं, अरु पवन जिसके मुंड हैं, अरु उनचास पवन जिसके प्राणवायु हैं, मांस जिसका पृथ्वी है, हस्त जिसके सुमेरु आदिक पर्वत हैं, तारे जिसकी रोमावली हैं, ऐसा विराट है, सहस्र जिसके शीस हैं, अरु सहस्र मस्तक हैं, सहस्रही नेत्र हैं, अरु अनंत है, अनादि है, अरु चंद्रमा जिसकी कफ है, जिसतें अमृत स्रवता है, भूत उपजते हैं, अरु सूर्य पित्त है, अरु सर्वका उत्पन्न करता है, सर्व मन अरु सर्व कर्म अरु सर्व शरीरका बीज आदिविराट है ॥ हे रामजी ! इस चित्तके संवंध करिके तुच्छ हुआ है, वास्तवतें परमात्मस्वरूप है, जैसे महाकाश घटके संयोगकरि घटाकाश होता है, तैसे विराट जो परमात्मा है, तिसनें फुरणेकरि सृष्टि रची है, अरु तिसविषे अहं प्रत्यय करी है, इसतें तुच्छ हुआ है, सो इसकों मिथ्या भ्रम हुआ है, जैसे स्वप्नविषे अपना मरणा देखता है, तैसे आपकों दृश्य देखता है, सो लघुता भी इसकों आत्माकी अपेक्षा करिके है, दृश्यविषे विराट है, अरु आत्माविषे इसका अनुभव है ॥ हे रामजी ! इसी प्रकार इसनें उपजीकरि सृष्टि रची है, जैसे एक विराट पुरुषने आदि निश्चय किया है, तैसेही अवलग है, सो यह आपही उपजा है, अरु आपही लीन हो जाता है ॥ हे रामजी ! जिस प्रकार विराटकी आत्मातें उत्पत्ति हुई है, तैसेही सब जीवकी है, यह सब विराटरूप है, परंतु जो स्वरूपतें उपजीकरि दृश्यसाथ तद्रूप हुए, अरु वास्तव स्वरूप

जिनकों भूलि गया, सो जीव तुच्छरूप भये, अरु स्वरूपसों फुरिकरि स्वरूपतें न गिरै, अरु आगे अपणांही संकल्परूप विश्व देखी प्रमाद न हुआ, तिसका नाम विराट आत्मा है ॥ हे रामजी ! जीव चेतनरूप है, अरु निराकाररूप है, इसकों जो शरीरका संयोग हुआ है, सो कलनाकरि हुआ है, जब आपकों दृश्य संयुक्त देखता है, तब महाआपदाकों प्राप्त होता है, जब द्वैततें रहित निर्विकल्प होकरि देखै, तब शुद्ध चेतनघन आत्मपदकों प्राप्त होता है ॥ हे रामजी ! यह विराट कैसा है, सबका उत्पन्नकर्ता है, सो ऐसे केई विराट आत्मपदतें उदय हुए हैं, अरु केई मिटि गये हैं, अरु केई आने होवैंगे, जैसे समुद्रतें केई तरंग बुदबुदे उठते हैं, अरु लीन होते हैं, तैसे आत्मरूपी समुद्रतें केई उठते हैं, केई लीन होते हैं, केई उपजैंगे, ऐसा परमात्मा सबका अधिष्ठान है, सबके अंतर बाहिर पूर्ण ज्ञानस्वरूप है, ऐसा तेरा अपणा आप अनुभवरूप है ॥ हे रामजी ! इस संवेदनकों त्यागिकरि देख, उही परमात्मस्वरूप है, यह जो कछु तुझकों भासता है, तिसकों विचारिकरि त्याग, जब तूं इसका त्याग करैगा, तब चिन्मात्र जो परम शुद्ध तेरा स्वरूप है सो प्रकाश तुझकों भासैगा, तिसके आगे चेतनताही आवरणरूप है, जैसे सूर्यके आगे बदलोंका आवरण होता है, जबलग बदल होते हैं, तबलग सूर्यका प्रकाश ज्योंका त्यौं नहीं भासता, जब बदल दूर होवैं, तब प्रकाश स्वच्छ भासता है, तैसे जब फुरणां निवृत्त होवैगा, तब शुद्ध आत्माही प्रकाशैगा ॥ ॥ इति श्री योगवासिष्ठे निर्वाणप्रकरणे विराडात्मावर्णनं नाम शताधिकैकचत्वारिंशत्तमः सर्गः ॥ १४१ ॥ ॥ ॥

॥ वसिष्ठ उवाच ॥ हे रामजी ! यह परमात्मा पुरुष फुरणे करिके जीवसंज्ञाकों प्राप्त हुआ है, फुरणेविषे भी उही है, अरु अपणे स्वरूपकों नहीं जानता, इसीतें दुःख पावता है, जैसे पवन चलता है तौ भी उहीरूप है, जब ठहरता है, तौ भी उहीरूप है, दोनोंविषे तुल्य है, तैसे आत्मा सर्वदा एकरस है, कदाचित् परिणामकों नहीं प्राप्त भया, अरु यह जीव प्रमाद करिके दृश्यकों कल्पता है, दृश्यकों आप जानता है, इसीतें दुःख पा

वता है, अरु जो इसकों अपणा स्वरूप स्मरण रहै तौ दृश्यविषे भी अपणा रूप भासै, अरु जो निःसंकल्प होवै तौ भी विश्व अपणा रूप भासै, विश्व भी इसीका रूप है, परंतु अविचारतें भिन्न भिन्न भासती है, जैसे स्वप्नकी विश्व स्वप्नवालेका रूप है, परंतु निद्रादोषकरि नहीं जानिता, जब जागता है, तब जानता है, जो मैंही था, तैसे यह प्रपंच सब तेरा स्वरूप है, तूं अपणे स्वरूपविषे निरहंकार स्थित होकरि देख तौ बन्या कछु नहीं अरु जो आत्मातें इतर परिच्छिन्न कछु तूं बणैगा, तौ प्रपंच विश्व भासैगा, जो आत्मस्वरूपविषे स्थित होवै तौ अपणा आप भासैगा, प्रपंचका अभाव हो जावैगा ॥ हे रामजी! शून्याशून्य जड चेतन किंचन निष्किंचन सत् असत् सब आत्माही पूर्ण है, निषेध किसका करियें, सब उहीरूप है॥ हे रामजी! ऐसा अनुभवरूप है, जिसकरि सर्व पदार्थ सिद्ध होते हैं, अरु ऐसे आत्माकों मूर्ख नहीं जानते, जैसे जन्मका अंध मार्गकों नहीं जानता, तैसे अज्ञानी महाअंध जागती जोति आत्माकों नहीं जानते, जैसे उलूकादिक सूर्य उदय हुएकों नहीं जानते, तैसे वासनाकरि आवरे हुए आपकों जाणी नहीं सकते, जैसे जालविषे पक्षी आवर्या होता है, तैसे जीव आवरे हुए हैं, इसीका नाम बंधन है, जब वासनाका वियोग हुआ, तब इसीका नाम मुक्ति है ॥ हे रामजी! विषमता करिके इसकी जीवसंज्ञा हुई है, जब सम हुआ तब ब्रह्म है, सो ब्रह्म अहंकारकों त्यागिकरि होता है, जैसे खपरके संयोगकरि घटाकाश कहाता है, जब खपर टूटा तब महाकाश हो जाता है, तैसे जब अहंकार नष्ट हुआ, तब आत्मस्वरूप है॥ हे रामजी! अज्ञान करिके एक देशी जीव हुआ है, जब परिच्छिन्नताकों वियोग हुआ, तब आत्मस्वरूप है ॥ हे रामजी! अपणा वास्तव स्वरूप जो निर्गुण है, तिसविषे गुणका संयोग उपाधि करिके भासता है, सो अनर्थरूप है, जब निर्गुण अरु सगुणकी गांठ टूटी तब केवल अद्वैत तत्त्व अपणा आप भासैगा, सो कैसा स्वरूप है, जो अनामय है, दुःखतें रहित है, अरु सत् असत्तें पर है, ज्ञानरूप आदि अंततें रहित है, जिसके पायेतें बहुरि पावणा कछु नहीं र

हता, अरु जिसके जाणेतें अवर जानणा कछु नहीं रहता, ऐसा जो उत्तम पद है, तिसकों आत्मत्व करि के प्राप्त होवैगा॥ हे रामजी! यह जो ज्ञान तेरे तांई कहा है, तिसकों आश्रय करिके तुम ज्ञानवान् होणा, ज्ञानबंध नहीं होणा, ज्ञानबंधतें अज्ञानी भला है, काहेतें जो अज्ञानी भी साधुसंग अरु सच्छास्त्र श्रवणक रि ज्ञानवान् होता है, अरु ज्ञानबंध मुक्त नहीं होता, जैसे रोगी होवै, अरु कहै, मुझकों रोग कोउ नहीं, मैं अरोग हौं, तब वैद्यका औषध नहीं खाता, काहेतें जो आपकों अरोगी जानता है, तैसे जो ज्ञानबंध है, ति सतें संतका संग भी नहीं होता, अरु सच्छास्त्रोंका श्रवण भी नहीं होता, तातें अंधतमकों प्राप्त होता है॥ राम उवाच॥ हे भगवन्! ज्ञानका लक्षण क्या है, अरु ज्ञानबंधका लक्षण क्या है, अरु ज्ञानबंधका फल क्या है सो कहौ॥ ॥ वसिष्ठ उवाच॥ हे रामजी! तिस पुरुषनें आत्माके विशेषण शास्त्रोंतें श्रवण किये हैं, जो आत्मा नित्य है, शुद्ध है, अरु ज्ञानस्वरूप है, अरु तीनों शरीरतें भिन्न है, ऐसे सुणीकरि आपकों मा नता है, अरु विषय भोगणेकी सदा तृष्णा रहती है, जो किसी प्रकार इंद्रियांके विषय मेरे तांई प्राप्त हो वैं, ऐसा जो पुरुष है, सो ज्ञानबंध है, उह बोध शिल्पी है, बहुरि कैसा है, जो कर्म फलके विचारतें रहित है, भला बुरा विचारकरि नहीं करता, तिसविषे विचारता है, अरु मुखतें शुभ अशुभ निरूपण करता है, सो शास्त्र शिल्पी है, अरु फलके अर्थ कर्म करता है, एक एक ऐसे हैं जो शास्त्र उक्त आपकों उत्तमकरि मा नते हैं, अरु शास्त्रोंके अर्थ बहुत प्रकार भी कहते हैं, पढते भी हैं, पढावते भी हैं, अरु विषयसों बंधमान हैं, सदा विषयकी चिंतवना करते हैं, ऐसा पुरुष है सो ज्ञानबंध कहाता है, तिसनिमित्त अर्थ शिल्पी कहता है, चितेरा करणेकों समर्थ है, अरु धारणेकों समर्थ नहीं॥ ॥ हे रामजी! एक प्रवृत्ति मार्ग है, एक निवृत्ति मार्ग है, प्रवृत्ति संसार मार्ग है, निवृत्ति आत्मज्ञान मार्ग है, अरु जिस पुरुषनें निवृत्ति मार्ग धारा है, अरु प्रवृत्ति मार्गविषे वर्तता है, प्रवृत्ति कहिये जो बहिर्मुख विषयकी उर व

तेता है, अरु इंद्रियांके विषयकी वांछा करता है, विषयतें उपरांत नहीं होता, तिनकरि तुष्टमान होता है, अरु स्वरूपका अभ्यास नहीं करता ऐसा पुरुष ज्ञानबंध कहाता है ॥ हे रामजी! श्रुति उक्त शुभ कर्म करता है, हृदयविषे उनके फलकों धारिकरि उह पुरुष ज्ञानके निकट वर्ती है, तौ भी ज्ञानबंध है, अरु जिसकों आत्माविषे प्रीति भी है, विषयकों चिंतवता है, अरु आपकों उत्तम मानता है, सो ज्ञानबंध कहाता है, अरु जो आत्मतत्त्वका निरूपण यथार्थ करता है, अरु स्थिति नहीं, उह ज्ञान आभास है, ज्ञानका फल तिसकों प्रत्यक्ष साक्षात्कार नहीं, अरु जिस पुरुषनें सिद्धता पाई है, अरु ऐश्वर्य पाया है, तिसकरि आपकों बडा जानता है, अरु आत्मज्ञानतें रहित है, सो ज्ञानवंध कहता है ॥ हे रामजी! निदिध्यास करिके जो ज्ञानकी प्राप्ति होती है, तिसकरि शांतिका प्रकाश होता है, जबलग शांति नहीं प्राप्त होती, तवलग आपकों बडा न मानै ॥ हे रामजी! बडा जो होता है, सो ज्ञानकरि होता है, जबलग ज्ञान नहीं उपजा, तवलग आत्मा परायण होवै, अभ्यास यत्न करै, छांडि न देवैं, अरु चेष्टा भी शुभ करै, शुभ व्यवहारकरि उपजीविका उत्पन्न करणी, प्राणोंकी रक्षाके निमित्त, अरु प्राणोंकों ब्रह्मजिज्ञासाके अर्थ धारै, अरु ब्रह्म जिज्ञासा इसनिमित्त है, जो संसारसमुद्र दुःखरूपतें मुक्त होवै, वहुरि संसारी न होवै, यह इसी निमित्त आत्मपरायण होवै, जब आत्मपरायण होवैगा, तव दुःख सव मिटि जावैंगे, जैसे सूर्यके उदय हुए अंधकार नष्ट हो जाता है, तैसे आत्मपदकों प्राप्त हुए दुःख सव नष्ट हो जाता है, तिस पदकों प्राप्त होणेका उपाय इह है, जो सच्छास्त्रोंतें आत्माके विशेपण सुणे हैं, तिनकों समुझीकरि वारंवार अभ्यास करणा, अरु अनात्म दृश्यतें उपरात होणा, तिनकों मिथ्या जाणी वैराग्य करणा, इसकरि आत्मपदकी प्राप्ति होती है ॥ इति श्रीयोगवासिष्ठे निर्वाणप्रकरणे ज्ञानवंधयोगो नाम शताधिकद्विचत्वारिंशत्तमः सर्गः ॥ १४२ ॥ ॥ ॥ ॥ वसिष्ठ उवाच ॥ हे रामजी! जिज्ञासी होकरि ज्ञाननिष्ठ होणा जो कछु गुरुशास्त्रोंतें आत्मविशेषण श्रवण किये हैं, तिनविषे अहंप्रत्यय

करणीं, स्थित होणां इसीका नाम ज्ञाननिष्ठा है, तिस ज्ञाननिष्ठाकरि परम उच्च पदकों प्राप्त होता है, जो सबका अधिष्ठानपद है, तिस पदकों पावता है, जब तिस पदविषे स्थित हुआ, तब कर्मोंके फलका ज्ञान नहीं रहता, काहेतें जो शुभ कर्मोंविषे फलका राग नहीं रहता, अरु अशुभ कर्मोंके फलविषे दोष नहीं रहता, ऐसा जो पुरुष है, सो ज्ञानी कहाता है, शीतलचित्त रहता है, अकृत्रिमशांतिकों प्राप्त होता है, किसी विषयके संबंधकरिके नहीं फसता, अरु वासनाकी गांठ टूटि जाती है, ऐसा जो पुरुष है, तिसकों ज्ञानी कहते हैं॥ हे रामजी! बोध सोई है, जिसके पाएतें बहुरि जन्म न पावै, जन्ममरणतें रहित होवै, तिसकों ज्ञानी कहते हैं, जब संसारतें विमुख हुआ जो संसारकी सत्यता न भासै, तब जाणियें जो बहुरि जन्म न पावैगा, काहेतें जो संसारकी वासना नष्ट हो गई॥ हे रामजी! जिसकरि ज्ञानीकी वासना नष्ट होती है सो श्रवण कर, यह जो संसार है, तिसका कारण नहीं देखीता, जो पदार्थ कारणतें उत्पन्न नहीं भया, सो सत्य नहीं होता, तातें संसार मिथ्या है, जैसे जेवरीविषे सर्प भासता है, तिसका कारण कोउ नहीं, भ्रमकरि सिद्ध हुआ है, तैसे यह विश्व कारणविना दृष्ट आती है, तातें मिथ्या है, जो मिथ्या है, तौ इसकी वासना कैसे होवै॥ हे रामजी! जो प्रवाहपतित कार्य आनि प्राप्त होवै, तिसविषे ज्ञानी विचरता है, संकल्पतें रहित होकरि अपणां अभिमान कछु नहीं करता, जो इस प्रकार होवै, इस प्रकार न होवै, अरु हृदयकरि आकाशकी नांई संसारतें न्यारा रहता है, अरु फुरणेतें शून्य है, ऐसा जो पुरुष है, सो पंडित कहता है॥ हे रामजी! यह जीव परमात्मरूप है, जब अचेतन होवै, तब आत्मपदकों प्राप्त होवै, अचेतन कहिए संसारके फुरणेतें रहित होवै, जब जडहुआ तब आत्मा है, जैसे अंबका वृक्ष फलतें रहित है, तौ भी नाम तिसका अंब है, परंतु निष्फल है तैसे यह जीव आत्मस्वरूप है, परंतु चित्तके संबंधकरि इसका नाम जीव है, जब चित्तका त्याग करै तब आत्मा होवै, जैसे अंबकों फल लगा तब शोभता है, अरु सफल कहाता है, तैसे जब यह जीव आत्मपदकों प्राप्त होता है, तब महाशोभाकरि वि

राजता है ॥ हे रामजी ! ज्ञानवान् पुरुष कर्मके फलकी स्तुति नहीं करता, फल कहियें इंद्रियांके विषय इष्ट की वांछा नहीं करता, जैसे जिस पुरुषनें अमृतपान किया होवै, सो मद्यपान करणेकी इच्छा नहीं कर ता, तैसे जिसकों आत्मसुख प्राप्त भया है, सो विषयके सुखकी वांछा नहीं करता, अरु जो किसी पदा र्थकों पायकरि सुख मानते हैं, सो मूढ हैं, जैसे कोउ पुरुष कहै वंध्याके पुत्रके कांधेपर आरूढ होकरि न दीकों पार उतरता है, ऐसा पुरुष महामूढ है, काहेतें जो वंध्याका पुत्र है नहीं, तौ तिसके कांधेपर कैसे आ रूढ होवैगा, तैसे जो पुरुष कहै, संसारके किसी पदार्थकों लेकरि मुक्त होउंगा, सो महामूढ है ॥ हे रामजी ! ऐसा पुरुष ज्ञानतें शून्य है, तिसकी इंद्रिय स्थित नहीं होती, अरु जो शास्त्रोंके अर्थ प्रगट भी करता है, परमात्मज्ञानतें रहित है, तिसकों इंद्रियवलकरि गिराय देती हैं, विषयविषे जैसे इल्ह पक्षी आकाशविषे उ डता भी मांसकों देखीकरि पृथ्वी उपर गिर पडता है, तैसे अज्ञानी विषयकों देखीकरि उर्ध्वतें गिर पड ता है, तातें इन इंद्रियांकों मनसंयुक्त वश करौ, अरु युक्तिकरि तत्परायण होहु, अंतर्मुख होहु, यह जो संवेदन फुरती है, तिसका त्याग करौ, जब फुरणा निवृत्त हुआ, तब परमात्माका साक्षात्कार होवैगा, जब परमात्माका साक्षात्कार हुआ, तब रूप अवलोकन मनस्कार जो त्रिपुटी है, तिसके सब अर्थकी भावना जाती रहैगी, केव ल आत्मतत्त्वही प्रत्यक्ष भासैगा, अरु संसारका अत्यंत अभाव हो जावैगा ॥ हे रामजी ! संसारकी आद्य पर मात्मतत्त्व है, अरु अंत भी वही है, जैसे स्वर्ण गालीए तौ भी स्वर्ण है, जो न गालिए तौ भी स्वर्ण है, तैसे जब सृष्टिका अभाव होता है, तौ भी शेष आत्माही रहता है, अरु जब उपजी न थी, तब भी आत्माही था, अरु मध्य भी उही है, परंतु सम्यक्दर्शीकों भासता है, अरु असम्यक्दर्शीकों आत्मसत्ता नहीं भासती ॥ हे रा मजी ! विश्व आत्माका परिणाम नही, चमत्कार है, जैसे स्वर्ण लगता है, तब रेणी संज्ञा उसकी होती है, अथवा शलाका कहता है, यद्यपि भूषण तिसविषे हुए नहीं तौ भी चमत्कार उसका ऐसाही होता है, जो

भूषण उसतें उपजीकरि लय हो जाता है, तैसे विश्व आत्माका चमत्कार है, बन्या कछु नहीं; ज्यौंका त्यौं आत्मसत्ता है, तिसका चमत्कार विश्व होकरि स्थित हुआ है, जैसे सूर्यकी किरणा जलाभास हो भासती है ॥ हे रामजी! जब तुम ऐसे जाण्या जो केवल आत्मसत्ता है, तब वासना क्षय हो जावैगी, अरु चेष्टा स्वाभाविक होवैगी, जैसे वृक्षके पत्र हलते हैं पवन करिके, तैसे शरीरकी चेष्टा होवैगी, प्रारब्ध वेगकरिके ॥ हे रामजी! देखणे मात्र तुमारेविषे क्रिया होवैगी, अरु अंतरतें मनकरि शून्य भासैगी, जैसे यंत्रीकी पूतली संवेदन विना तागेकरि चेष्टा करती है, तैसे शरीरकी चेष्टा प्रारब्धकरि स्वाभाविक होवैगी, अरु तुझकों अभिमान न होवैगा, जैसे कोउ पुरुष दूधके निमित्त गुजर पास वासन ले गया, तिसकों दूध चोवणेविषे कछुक विलंब है, तब उसनें कहा जो वासन इहां रहै, जो मैं गृहतें कोउ कार्य शीघ्रहीकरि आऊं, जब वह गृहका कार्य करणे लगा, तब उसका मन दूधकी उर रहा, जो शीघ्रही जाउं, मत आगे चोवता होवै, गृहका कार्य किया, परंतु मन उसका दूधकी उर रहा, तैसे तुमारी क्रिया प्रारब्ध वेगकरि होवैगी, परंतु मन आत्मतत्त्वविषे रहैगा, जब अहंकारतें रहित होवैगा, जबलग अहंकार फुरता है, तबलग प्रसन्न जीव है, प्रसन्न कहीए तुच्छ है, तिसकों शरीरमात्रका ज्ञान होता है, अंतःकरणविषे जो प्रतिबिंब है, जीव तिसकों नख शिखपर्यंत शरीरका ज्ञान होता है, अरु इसीविषे आत्मअभिमान होता है, अवर ज्ञान नहीं होता, तातें जीव है, अरु विराट जो आगे तुझकों कहा है, सो ईश्वर है, सर्व शरीर अरु अंतःकरणका ज्ञाता है, अरु सर्व लिंगशरीरका अभिमानी है, सर्वकों अपणा आप जाणता है, तातें ईश्वर है ॥ हे रामजी! यद्यपि विश्वरूप है, तौ भी अहंकार करिके तुच्छसा भया है, जैसे मेघतें भिन्न हुआ एक बादर कहाता है, अरु घटकरि घटाकाश कहाता है, सो बादर भी मेघ है, अरु घटाकाश भी महाकाश है, तैसे अहं फुरणेकरि प्रसन्न हुआ है, सो फुरणा दृश्यविषे हुआ है, अरु दृश्य फुरणेविषे हुई है, जैसे फलविषे गंध है, अरु तिलोंवि

षे तेल है, तैसे फुरणेविषे दृश्य है ॥ हे रामजी ! आत्माविषे बुद्धि आदिक फुरणा है, जो मैं हौं, जब ऐसे फुरता है, तब आगे दृश्य होती है, जब अहंकार होता है, तब आगे देह इंद्रियांदिक विश्वकों रचता है, तातें फुरणेविषे दृश्य हुई, अरु फुरणा दृश्यविषे हुआ, जो देह इंद्रियां मन आदिक दृश्य हैं, तिनविषे अहं प्रत्यय करिके फुरणा हुआ, इसी कारणतें इसकी जीवसंज्ञा हुई है, जब फुरणा नष्ट हो जावै, तब आत्माका साक्षात्कार होवै, अरु यह जन्म मरण आणा जाणा आदिक विकारसंयुक्त प्रपंच भासता है, तौ भी मिथ्या है, काहेतें जो विचार कियेतें कछु नहीं रहता, जैसे केलेके स्तंभविषे सार कछु नहीं, तैसे विचार कियेतें प्रपंचकों नहीं पाइता, जैसे स्वप्नविषे जन्ममरण आणा जाणा देखीता है, परंतु मिथ्या है, तैसे जाग्रत क्रिया भी सर्व मिथ्या है ॥ हे रामजी ! जो परावरदर्शी है, सो एती अवस्थाविषे निर्विकल्प है, जन्मता भी है, परंतु नहीं जन्मता, सर्व क्रिया करता भी है, परंतु नहीं करता, स्वप्नवत् है, स्वरूपतें कदाचित् कछु नहीं हुआ ॥ हे रामजी ! ज्ञानी जाग्रतविषे भी ऐसेही देखता है, जब यह आत्मपदविषे जगता है, तब सर्व विकारका अभाव हो जाता है, कोउ विकार नहीं भासता ॥ हे रामजी ! जो पुरुष इंद्रियांके विषयकी चिंतवना करता रहता है, सो बंध है, काहेतें जो अभिलाषही दुःखदायक है, यद्यपि राजा है, अरु अंतर अभिलाष है तौ दरिद्री जाण, अरु जो पुरुष छाजन भोजन शयन कष्टसाथ देखता है, जो भोजन भिक्षाकरि होता है, अथवा किसी अवर यत्नकरि होता है, अरु छाजन भी निर्गुणसा पहिरता है, अरु शयन करणेकों स्थान भी जैसा कैसा होता है, अरु ज्ञानकरि संपन्न है, तौ उसकों चक्रवर्ती जाण ॥ दोहा ॥ सात गांठ गोपीनकी, साध न माने शंक; राम अमल माता फिरै, गिनै इंद्रकों रंक ॥ १ ॥ हे रामजी ! तिसकों चक्रवर्तीतें भी अधिक जाण, यद्यपि आरंभ क्रिया करता भी दृष्ट आता है, अरु संकल्पतें रहित है, तौ कछु करता नहीं, करणा अकरणा क्रियाका दोनों उसकों तुल्य है, काहेतें जो निरभिमान है, शुभ कर्म करणेतें स्वर्ग नहीं भो

गता, अशुभ कर्मकरि नरक नहीं भोगता, तिसकों दोनों एकसमान हैं ॥ हे रामजी! ज्ञानी अज्ञानीकी चेष्टा समान है, परंतु अज्ञानी अहंकारसहित करता है, इसकरि दुःख पावता है, तातें तुम अहंकारका त्याग करौ,अरु अपणा स्वरूप जो है, चैत्यतें रहित चेतन तिसविषे स्थित होहु, जो संशय सर्व मिटि जावें अरु जेते कछु जीव तुमकों भासते हैं, सो सर्व संवितरूप हैं,संवित कहियें ज्ञानरूप है, परंतु बहिर्मुख जो फुरते हैं, तिसकरि भ्रमकों प्राप्त हुए हैं, जब अंतर्मुख होवैं तब केवल शांतरूप हैं, जहां गुणों अरु तत्त्वोंका क्षोभ नहीं, तिसकों शांतपद कहते हैं ॥ हे रामजी ! जैसे विराटका मन चंद्रमा है, तैसे सर्व जीवका है, अर्थ यह जो सब विराटरूप है,परंतु प्रमादकरि वास्तव स्वरूप नहीं भासता ॥ हे रामजी ! यह जीव संपूर्ण देहविषे व्यापक है, अरु भासता हृदयकोशविषे है, जैसे गुलाबकी संपूर्ण बुटीविषे सुंगधि व्यापक है, परंतु भासती फूलहीविषे है, तैसे चेतनसत्ता सर्व शरीरविषे व्यापक है, परंतु भासती हृदयविषे है, जो त्रिकोण निर्मल चक्र है, तहांही अहंब्रह्मका उत्थान होता है, तहांतें वृत्ति पसरीकरि पंच इंद्रियांके छिद्रतें निकसीकरि विषयकों ग्रहण करती है, तिन इंद्रियांके इष्ट अनिष्ट प्राप्तिविषे राग दोष मानता है ॥ तातें हे रामजी ! एता कष्ट प्रमाद करिके है, जब बोध होवै तब संसारभ्रम मिटि जावै॥ हे रामजी ! वासनारूप जो संसार है, तिसका बीज अहंभाव है, प्रत्यक्ष संसारविषे फुरता है, जब इसकी अचिंतवना होवै, अरु स्वरूपविषे अहंप्रत्यय होवै, तब संसारभ्रम मिटि जावै, अरु अहंभावके शांत हुए ज्ञानवान् यंत्रीकी पुतलीवत् चेष्टा करता है ॥ हे रामजी ! जो पदार्थ सत् है, तिसका अभाव कदाचित् नहीं होता, अरु जो असत् है, सो सत् नहीं होता, यद्यपि होणेकी भावना करियें तौ भी उसका होणा नहीं, जैसे अग्निकों जाणिकरि स्पर्श करियें तौ भी जलावती है, अरु अजाणी स्पर्श करियें तौ भी जलाती है, काहेतें जो सत् है, अरु जैसे मृगजलकी भावनाकरि मरुस्थलविषे धावता है, परंतु जल नहीं पावता, काहेतें जो असत्य है, तैसे ॥ हे रामजी! अ

हंकार जो फुरता है, सो असत्य है, भ्रमकरि सिद्ध है, विचारकरि नष्ट हो जावैगा ॥ हे रामजी! यह अहं काररूपी कलंक उठा है, जब निरहंकार होकरि देखैं, तव मुक्तरूप है, अरु जव अहंकारसंयुक्त है, तव वंध है, तातें निरहंकार होकरि परम निर्वाणकों प्राप्त होहु, इह मेरा सिद्धांत है, परम भूमिका यही है, जैसे पूर्ण मासीका चंद्रमा शोभता है, तैसे तुम ब्राह्मी लक्ष्मीकरि सोभहुगे ॥ हे रामजी! ज्ञानवानका चित्त सत्पद कों प्राप्त होता है, तातें अहंकार नहीं रहता, तिसके चित्तकी चेष्टा फलदायक नहीं होती, जैसे भूना वीज नहीं उगता, तैसे उसकों जन्म फल नहीं होता अरु अज्ञानीका चित्त जन्ममरणका कारण होता है, जैसे कच्चा वीज उगता है, तैसे अज्ञानीकी चेष्टा जन्मफल देती है ॥ हे रामजी! जेते कछु पदार्थ हैं, तिन सवतें निरास हो रहु, जो हृदयविषे अभिलाषा किसकी न फुरै, अरु न किसीका सद्भाव फुरै, पाषाणकी नांई तुमारा हृदय होवै ॥ हे रामजी! जिसका हृदय कोमल है, स्नेहसंयुक्त सो अज्ञानी है, अरु जिसका हृदय पाषाण स मान है, स्नेहतें रहित, सो ज्ञानी है, तातें निर्मन निरहंकार होकरि स्थित होहु, इह भोग मिथ्या है, इनकी इच्छाविषे सुख नहीं ॥ हे रामजी! जव संसारतें उपरांत होवैगा, अरु अंतर्मुख आत्मपरायण होवैगा, तब अहंकार निवृत्त हो जावैगा, अरु आत्मा भासैगा, जैसे वसंतऋतु आती है, अरु वृक्ष प्रफुल्लित होते हैं, तब पुरातन पत्र त्यागि देते हैं, अरु नूतन हो आते हैं, तैसे जव तुम अंतर्मुख होहुगे, तव अहं कार निवृत्त हो जावैगा, अरु विभुताकों प्राप्त होहुगे, तुच्छ जो अहं प्रत्यय सो जाती रहैगी, परम निर्वा ण पद पावैगे, तातें एक अहंकार संवेदनका त्याग करौ, अवर यत्न कोउ न करौ, तुमकों यही हमारा उ पदेश है ॥ ॥ इति श्रीयोगवासिष्ठे निर्वाणप्रकरणे सुखेनयोगोपदेशो नाम शताधिकत्रिचत्वारिंशत्तमः सर्गः ॥ १४३ ॥ ॥ ॥ वसिष्ठ उवाच ॥ हे रामजी! यह जो वासनारूप संसार है, तिसकों तुम तरि जाहु, जैसे मंकीऋषि तऱ्या है ॥ राम उवाच ॥ हे भगवन्! मंकीऋषि किस प्रकार तऱ्या है, सो कृ

पाकरि कहौ ?॥वसिष्ठ उवाच ॥ हे रामजी ! मंकीऋषिका वृत्तांत श्रवण कर, तिसनें महातीक्ष्ण तप कियेथे, एक समय तुमारा जो पितामह है,राजा अज, तिसनें मेरा आवाहन किया, मैं अपणे गृहविषे था आकाशमें, तब मैं राजा अजके निमित्त आकाशतें उतऱ्या मार्गविषे एक अटवी देखी, तिसविषे मानौं एकांत अनेक बनके समूह हैं, सो महाभयानक मैं शून्य देखे, तहां न कोउ मनुष्य दृष्ट आवै,न कोउ पशु दृष्ट आवै, शून्य मानौं एकांत ब्रह्म स्थान है, केतेक योजनपर्यंत मरुस्थलही दृष्ट आवै, अरु मध्यान्हका समय था, अति तीक्ष्ण धूप पडै, रेत उरुपर्यंत तपी हुई तिसविषे मैं प्रवेश किया, केई वृक्ष तहां दग्ध हुए दृष्ट आये ॥ हे रामजी ! तिस शून्य स्थलविषे एक पैंडोइ अति दुःखित आता मुझकों दृष्ट आया तिसनें यह वाक्य मुखतें निकास्या, जो हाय हाय, महाकष्ट पाया है ! जैसे किसीकों दुष्ट जन दुःख देते हैं, अरु दया नहीं करते तैसे मुझकों धूप अरु पैंडेनें जलाया है, मैं अति दुःखकों प्राप्त भया हौं ॥ हे रामजी ! ऐसे वचन कहता हुआ मेरे पासतें चल्या जावै, केता मारग आगे गया तब एक धीवरका गांउ तिसकों दृष्ट पडा, तहां गृह पांच अथवा सात थे, तिसकों देखिकरि शीघ्र चला, जो इहां मुझकों शांति प्राप्त होवैगी, मैं जलपान करौं, अरु छाया तले बैठौंगा ॥ हे रामजी ! तिसकों देखिकरि मुझकों दया उपजी, तब मैं कहा जो है, मार्गके मीत, तूं कहां धावता है, जिनकों सुखदायी जाणिकरि तूं धावता है, सो तौ दुःखदायक हैं, जैसे मृग मरुस्थलकों नदी जाणीकरि जलपानके निमित्त धावता है, जो शांति पाउं सो अति दुःख पावता है, तैसे जिस स्थानकों तूं सुखरूप जानता है, सो दुःरूप है ॥ हे अंग ! यह जो इस गांवके वासी हैं, तिसका संग कदाचित् नहीं करणा, इनका संग दुःखरूप है, जो पुरुषविचारपूर्वक चेष्टा करता है, तिसकों दुःख नहीं होता अरु जो विचारविना चेष्टा करता है, सो दुःख पावता है, यह जो नगरवासी हैं, सो आप जलते हैं, तौ तुझकों सुख कैसे होवैंगे, जैसे कोउ पुरुष अग्निकुंडविषे जलता होवै, तिसकों कहियें, तूं मेरी तप्त शांत करु, तौ कहणेवाला

मूढ होता है, वह आप जलता है, अवरकी तप्त कैसे शांत करैगा, तैसे वह आप इंद्रियांके विषयकी तृष्णा रूपी अग्निविषे जलते हैं, सो तुझकों शांत कैसे करैंगे ? ॥ ॥ हे मार्गके मित्त! एते कष्ट होहि तौ अंगीकार करियें, परंतु अज्ञानीका संग न करियें, सो कवन दुःख होहि, जो पृथ्वीके छिद्रविषे सर्प हो रहना, अरु मरुस्थलका टुंटा मृग हो रहणा, अरु पाषाणकी शिलाविषे कीट हो रहणा, एते कष्ट अंगीकार करियें परंतु अज्ञानीका संग न करियें जिनकों इंद्रियांके सुखकी तृष्णा रहती है, सो इंद्रियांके सुख कैसे हैं, जो अपातरमणीय हैं, अर्थ यह जो जबलग इंद्रियांके विषयसाथ संयोग है, तबलग सुख है, जब वियोग हुआ, तब दुःख होता है, विषयी जनोंकी प्रीति भी विषवत् है, अरु विचारवंति बुद्धिरूपी कमलिनीके नाश करणेहारी बरफ हैं, बहुरि इनकी संगति कैसी है, जिनके वचनरूपी पवनकरि राख उडती पास बैठणेहारेकों भी अंधकरि डारती है, तातें इन गांउवासी अज्ञानीका संग नहीं करणा, बहुरि कैसे हैं, विचारवती बुद्धिरूपी सूर्यके आवरण करणेहारे बदल हैं. जैसे वल्ली उपर अग्नि डारियें तौ जलावती है, तैसे वैराग्यकों ग्रहण करणेहारी बुद्धि है, तिसके नाश करणेहारी इनकी संगति है, तातें इनका संग नहीं करणा ॥ हे साधो! तिसका संग कर, जिसके संगकरि तेरा ताप मिटै इनके संगकरि शांति न पावेगा ॥ हे रामजी! इस प्रकार जब मैं कहा तब वह मेरे निकट आएकरि बोलत भया ॥ ॥ मंकीऋषिरुवाच ॥ हे भगवन्! तुम कवन हौ, अरु तुमारा नाम क्या है, तुमारे वचन सुणिकरि मैं शांतिकों प्राप्त भया हौं, तुम शून्य जैसे दृष्ट आते हौ, अरु सर्व करिके पूर्ण हौ, अरु तुमारा दिव्य प्रकाश मुझकों भासता है, तुम आदि पुरुष विराट हौ, कै कवन हौ, तुम सुंदर दृष्ट आते हौ ॥ हे भगवन्! जो सुंदर होता है, तिसकों देखीकरि राग उपजता है, अरु चित्त क्षोभकों भी प्राप्त होता है,अरु तुम ऐसे सुंदर हौ, जो तुमारे दर्शनकरि मुझकों शांति आती जाती है, तुम दिव्य तेजकों धारे हुए दृष्ट आते हौ, जेते कछु तेजवान् हैं, देखणे नहीं देते, तिनकों तिरस्कार

करते हौं, अर्थ यह जो अवर सुंदरता तुमारे समान किसीकी नहीं, अरु तुमारा तेज हृदयकों शांति उपजाता है, शीतल प्रकाश है॥ हे भगवन्! तुम उन्मत्तवत् घूर्मसे दृष्ट आते हौ, सो कैसी शांतिकों लेकरि एकांतविषे स्थित हौ, अरु अपणे स्वरूप प्रकाशकी दया करते दृष्ट आते हौ, अरु पृथ्वीपर स्थित भी दृष्ट आते हौ, परंतु त्रिलोकीके उपर विराजमान भासते हौ, अरु एकाएकी दृष्टि आते हौ, परंतु सर्वात्मा हौ, अरु किंचित् अकिंचित् तुमही हौ, सर्व भाव पदार्थतें शून्य दृष्ट आते हौ, अरु सर्व पदार्थ तुमारी सत्ताकरि प्रकाशते हैं, सर्व पदार्थके अधिष्ठान हौ; तुमारे नेत्रोंके खोलणेकरि उत्पत्ति होती है, अरु मुंदणेकरि लय हो जाती है, तातें ईश्वर हौ, अरु सकलंक दृष्ट आते हौ, परंतु निष्कलंक हौ, अर्थ यह जो फुरणा तुमारेविषे दृष्ट आता है, परंतु अंतरतें शून्य हौ, अरु किसी अमृतकों पायकरि तुम आए हौ अरु बडे ऐश्वर्यकरि संपन्न दृष्ट आते हौ, तातें हे भगवन्! तुम कवन हौ, अरु जो मुझतें पूछौ तूं कवन है, तौ मैं मांडवऋषिके कुलविषे हौं, अरु मेरा नाम मंकी है, मैं ब्राह्मण हौं, तीर्थयात्राके निमित्त निकसा था, अरु सर्व दिशा भ्रम्या हौं, अतिभयानक स्थानोंविषे जो तीर्थ हैं, तहां भी गमन किया है, परंतु शांति मुझकों प्राप्त न भई, ऐसी शांति कहुं न पाई जो इंद्रियांकी जलनतें रहित होइए, अब मैं गृहकों चल्या हौं ॥ हे भगवन्! अब गृहतें भी चित्त विरक्त भया है, जो यह संसारही मिथ्या है, तौ गृह किसका है, संसारविषे सुख कहूं नहीं, अरु यह प्राण ऐसे हैं, जैसा दामिनीका चमत्कार होता है, तैसे यह संसार नष्ट होता दृष्ट आता है, शरीर उपजते भी हैं, अरु मिटि भी जाते हैं, दृष्टि मात्र हैं, जैसे रात्रि आती है, बहुरि नहीं जाणते जो कहां गई ॥ हे भगवन्! इस संसारकों असार जाणीकरि मैं उदासीन भया हौं, जो अनेक जन्म पाये हैं, सो नष्ट हो गये हैं, इसी प्रकार भ्रमता फिऱ्या हौं, अब तुमारी शरणागत हौं, अरु जानता हौं जो तुमसों मेरा कल्याण होवैगा, अरु तुम कल्याणरूप दृष्ट आते हौ, तातें कृपाकरि क

हौ जो कवन हौ ? ॥ ॥ वसिष्ठ उवाच ॥ हे मंकीऋषि ! मैं वसिष्ठ ब्राह्मण हौं, अरु मेरा गृह आकाशविषे है, मुझकों राजा अजनें स्मरण किया है, तिसनिमित्त मैं इस मार्ग गमन करता हौं, अब तुम संशय मत करौ, जो ज्ञानमार्गकों पाया है ॥ हे रामजी ! जब मैं ऐसे कहा, तब उह मेरे चरणोंपर गिरिपडा, अरु नेत्रोंतें जल चलणे लगा, जो महा आनंदकों प्राप्त भया, तब मैं कहा जो हे ऋषि ! तूं संशय मत करु, मैं तुझकों अकृत्रिम शांतिकों प्राप्त करिके गमन करौंगा, जो कछु पूछा चाहता है, सो पूछ, मैं तुझकों उपदेश करौं अरु मैं जानता हौं, तूं कल्याणकृत है, जो कछु मैं कहौंगा, सो तूं धारैगा, अब तूं कछु प्रश्न कर जो तेरे कषाय परिपक्व भये हैं, तूं मेरे वचनोंका अधिकारी है, तुझकों मैं उपदेश करौंगा, अब तूं संसारके तटकों आय प्राप्त भया है, अब तुझकों निकासणेका विलंब है, जो वैराग्यकरि पूर्ण है, सो संसारका तट वैराग्य है, तातें संशय मत करु ॥ ॥ इति श्रीयोगवासिष्ठे निर्वाणप्रकरणे मंकिऋषिपरमवैराग्यनिरूपणं नाम शताधिकचतुश्चत्वारिंशत्तमः सर्गः ॥ १४४ ॥ ॥ ॥ मंक्युवाच ॥ हे भगवन् ! अब मैं जानता हौं जो मेरा कार्य सिद्ध हुआ है, मुझकों अज्ञानकरि मोह था, तिसके नाश करणेकों तुम समर्थ दृष्ट आते हौ, मेरे हृदयका तम नाश करणेकों तुम सूर्य उदय भए हौ ॥ हे भगवन् ! यह संसार असार है, अरु लोककी बुद्धि विषयकी उरही धावती है, जहां दुःखही होता है, जैसे जल नीचे स्थानकों चला जाता है, तैसे हमारी बुद्धि नीच स्थानोंविषे धावती है, उहीं चाहती है ॥ हे भगवन् ! जेते कछु भोग हैं, तिनकों मैं भोग्या है, परंतु शांति न पाई, उलटी तृष्णा बढती गई, जैसे तृष्णा लगे अरु खारा जलपान करियें तौ तृष्णा नहीं मिटती, बढती जाती है, तैसे विषयके भोगणेकरि शांति नहीं प्राप्त होती, तृष्णा बढती जाती है ॥ हे मुनिराय ! देह जर्जरीभाव हो जाती है, अरु दंत गिरि पडते हैं, अति क्षोभ होता है, तौ भी तृष्णा नहीं मिटती, तातें अब मैं दुःखकों चाहता हौं, सुख कोउ नहीं चाहता, काहेतें जो संसारके जेते सुख हैं, तिनका परिणाम दुःख है, जो

प्रथम दुःख है, तिसका परिणाम सुख है, इसीतें दुःख चाहता हौं, संसारके सुख नहीं चाहता ॥ हे भगवन्! अपणी वासनाही दुःखदायक है, जैसे घुरायण गुफा बनायकरि तिसविषे आपही फसी मरती है, तैसे अपणी वासनाकरि आपही बंधमान होता है ॥ हे मुनी! उह काल कब हुआ है, जो अज्ञानरूपी हस्तिनें मुझकों वश किया है, अरु तिसका नाश करणेहारा ज्ञानरूपी सिद्ध कब प्रगट होवैगा, अरु कर्मरूपी तृणोंका नाशकर्ता विवेकरूपी वसंत कब प्रगटैगा, अरुवासनारूपी अंधेरी रात्रिका नाशकर्त्ता ज्ञानरूपी सूर्य कब उदय होवैगा ॥ हे भगवन्! वैताल तबलग भासता है, जबलग निशा है, जब सूर्य उदय होवैगा, तब निशा जाती रहैगी, बहुरि वैताल न भासैगा, सो अहंकाररूपी वैताल तबलग है, जबलग अज्ञानरूपी रात्रि दूर नहीं भई ॥ हे भगवन्! जब संत जनके उपदेशतें आत्मज्ञानरूपी सूर्य प्रगटै, तब अहंकाररूपी वैताल तहां नहीं विचरता, संतजनका संग अरु सच्छास्त्रोंका देखणा चांदनी रात्रिवत् है, तिनकरि जब स्वरूपका साक्षात्कार होवै, तब दिन हुआ, जबलग संतजनका संग अरु सच्छास्त्रोंका देखणा न होवै, तबलग अंधेरी रात्रि है ॥ हे भगवन्! जिसकों सच्छास्त्रका श्रवण भी होवै, बहुरि विषयकी उर भी गिरै, तौ बडा अभागी जाणिए सो मैं हौं, परंतु अब मैं तुमारी शरणकों प्राप्त भया हौं, मेरे हृदयरूपी आकाशविषे जो अज्ञानरूपी कुहिड है सो तुमारे वचनरूपी शरत्काल करिके नष्ट हो जावैगी, हृदयाकाश निर्मल होवैगा ॥ हे भगवन्! मैं त्रिदंड साधे हैं, मनकरि भी शरीरकरि भी वाणीकरि भी यह तीन तप किये हैं, दीर्घकालपर्यंत, परंतु आत्मप्रकाश नहीं हुआ, अब मैं तुमारी शरणागत हुआ तरौंगा, तातें कृपा करिके उपदेश करौ, जो मेरे हृदयका तम दूर होवै ॥

इति श्रीयोगवासिष्ठे नि० मंकीवैराग्ययोगो नाम शताधिकपंचचत्वारिंशत्तमः सर्गः ॥ १४५ ॥ ॥ ॥

॥ वसिष्ठ उवाच ॥ हे तात! संवेदन भावना वासना कलना यह चारौं, अनर्थके कारण हैं, जब इनका अभाव हो जावै, तब कल्याण होवै, शुद्ध चिन्मात्र पद प्रत्यक्ष चेतन अपणे आपविषे जो अहंकार उत्था

न है, सो संवेदन है, अरु भावना यह जो कछु बण्या बहुरि चेत्या अरु अपणा आप चित्त स्मरण भया, तव
भ्रम मिटी जाता है,अरु जो कछु बन्या है, तिसकी भावना हुई जो मैं यह हौं,तव भावनाकरि संसार दृढ हुआ,
बहुरि तैसेही वासना दृढ होती है, अपणे शरीरके अनुसार नानाप्रकारकी कलना होती है, बहुरि संसारके
संकल्पविकल्प उठते हैं॥ हे ब्राह्मण! यह चतुर अनर्थके कारण हैं, जब इनका अभाव हो जावै तव कल्या
ण होवै, अरु जेते कछु शब्द अर्थ हैं, तिनका अधिष्ठान प्रत्यक् चेतन है, सर्व शब्द उसीके आश्रित हैं, अरु
सर्व उही है, जब तूं ऐसे जाणैगा, तव वासना क्षय हो जावैगी, जब अहं संवेदन इसकों फुरती है, तव आगे सं
सार भासता है, जैसे वसंतऋतु आती है; तब वल्ली प्रफुल्लित होतियां हैं,तैसे जब संवेदन फुरती है, तव आगे सं
सार सिद्ध होता है, जब संसार हुआ तब नानाप्रकारकी वासना फुरती है, अरु संसार नहीं मिटता॥ हे अंग!
संसार इसका नाम है जो संसरता है, जब संसरना मिटि जावै, तब आत्मपदही शेष रहै, सो तेरा अपणा
आप है; तातें इस फुरणेकों त्यागिकरि अपणे आपविषे स्थित होहु, सर्व तेराही रूप है, जबलग वासना फुर
ती है, तबलग संसार दृढ हो जाता है, जैसे वृक्षकों जल दीजिये तव वढता जाता है, तैसे वासनारूपी जल दे
णेकरि संसाररूपी वृक्ष वृद्ध हो जाता है, तातें वासनाका नाश करो, करणा यह जो संवेदन न फुरै, जब वृक्ष
जलतें रहित भया, तब आपही जालि जाता है॥ हे पुत्र! आत्माविषे जगत कछु हुआ नहीं, केवल परमार्थस
त्ता है, जैसे जेवरीविषे सर्प कछु वस्तु नहीं, जेवरीके अज्ञानतें सर्प भासता हैं, तैसे आत्माके अज्ञानतें संसार
भासता है, जब तूं आत्मपदकों जाणैगा, तव परमार्थसत्ताही भासैगी, जैसे बालक अपणे परछायेविषे भूत
कल्पिकरि भय पावता है, जब विचारकरि देखा तब भूत कोउ नहीं, भय दूर हो जाता है, तैसे आत्माके अ
ज्ञानकरि संसारके राग दोष जलावते हैं, अरु ज्ञानवानकों वासनासंयुक्त संसारका अभाव हो जाता है, केव
ल अद्वैत आत्मसत्ताही भासती है, जैसे स्वप्नतें जाग्या स्वप्नका प्रपंच वासनासंयुक्त अभाव हो जाता है,

तैसे जब आत्माका साक्षात्कार हुआ, तब वासनासंयुक्त संसारका अभाव हो जाता है, काहेतें जो है नहीं, जैसे घटादिकविषे मृत्तिकातें इतर कछु नहीं, तैसे सर्व प्रपंच चिन्मात्र स्वरूप है, इतर कछु नहीं, जेते कछु शब्द अर्थ हैं, सर्व आत्माही है ॥ हे मित्र! जो कछु आत्मातें इतर भासता है, तिसकों भ्रममात्र जाण, जैसे आकाशविषे नीलता भासती है सो भ्रममात्र है, तैसे विश्व असम्यक्दृष्टि करिके भासती है, सम्यक् दृष्टि करिके सर्व प्रपंच आत्मस्वरूप है, अरु द्रष्टा दर्शन दृश्य जो त्रिपुटी भासती है, सो भी बोधस्वरूप है, बोधही त्रिपुटीरूप होकरि स्थित होता है, जैसे स्वप्नविषे एकही अनुभव त्रिपुटीरूप हो भासता है, तैसे यह जाग्रतकी त्रिपुटी भी आत्मस्वरूप है ॥ हे अंग! जेते कछु स्थावर जंगम पदार्थ हैं, सो सर्व आत्मस्वरूप है, जो परमात्मस्वरूप न होवै, तौ भासै नहीं, द्रष्टारूप जो अनुभव करता है सो एक अद्वैतरूप है, तिस स्वरूपके प्रमादकरि भिन्न भिन्न त्रिपुटी भासती है, तौ भी इतर कछु नहीं, जैसे स्वप्नविषे त्रिपुटी अपणे अनुभवकरि भासती है, जो अनुभव न होवै तौ काहेतें भासै, तैसे यह त्रिपुटी अनुभव आत्माकरि भासती है, तातें सर्व परमात्मस्वरूप है, भिन्न कछु नहीं, जो नहीं तौ है नहीं, काहेतें जो सर्वकी एकता परमार्थ स्वरूपविषे होती है ॥ हे ऋषीश्वर! सजातीय वस्तु मिलि जाती है, जैसे जलविषे जलकी बुंद डारिएं तौ मिलि जाती है, काहेतें जो एकरूप है, तैसे बोध करिके सर्व पदार्थकी एकता भासती है, काहेतें जो द्वैतसत्ता है नहीं, जैसे स्पंद निस्पंद दोनों पवनही है, जैसे जल अरु तरंग अभेदरूप हैं, तैसे विश्व परमार्थस्वरूप है, तातें ऐसे निश्चय करो जो सर्व ब्रह्मस्वरूप है, अथवा आपकों उठाय देवहु, जो मैं नहीं, जब तूंही न हुआ, तब विश्व कहांतें होवै ॥ हे मंकीऋषि! प्रथम जो अहं होता है तौ पाछे ममत्व होता है, जो अहंही न रहैगा तौ ममत्व कहां रहैगा, इस अहंका होणाही बंधन है, इसके अभावका नाम मुक्ति है ॥ हे मित्र! इस युक्तिविषे क्या यत्न है, यह तौ अपणे आधीन है जो मैं नहीं जब अहंकारकों निवृत्त किया,

तब शेष वही रहैगा, जो सर्वका परमार्थरूप है, तिसीकों ब्रह्म कहते हैं ॥ हे मुनीश्वर! जब अहंकार फुरता है, तब नानाप्रकारकी वासना होती है, तिस वासनाके अनुसार अनेक जन्मकों पावते हैं, जो वर्णन किये नहीं जाता है, जैसे पवनकरि तृण भटकते फिरते हैं, तैसे वासना करिके जीव भटकते फिरते हैं, जब पर्वततें कंकर गिरता है,तब चोटां खाता नीचेकों चला जाता है, तैसे स्वरूपके प्रमादकरि जन्मजन्मांतर पावते चले जाते हैं, घटीयंत्रकी नांई कवहु ऊर्ध्व, कबहु अधकों जाते हैं, अपणी वासनाके अनुसार, जैसे खेनु हाथकरि ताडन किया कबहु ऊर्ध्व, कबहु अधकों जाता है ॥ हे अंग! इस संसारका बीज वासना है, जब वासना निवृत्त होवै, तब सर्वकी एकता हो जाती है, जबलग संसारकी वासना दृढ है, तबलग एकता नहीं होती, जैसे दूध अरु जल मिलता है, उनका संयोग हो जाता है, तैसे भी आत्मा अरु विश्वका संयोग नहीं, आत्मा केवल अद्वैत है, अरु सर्वका अपणा आप है, जैसे मृत्तिकाही घटादिकरूप हो भासती है, तैसे आत्मसत्ताही जगतरूप हो भासती है, तातें आत्मातें इतर कछु वस्तु नहीं ॥ हे साधो! आत्मा अरु दृश्यका संयोग कछु नहीं,काष्ठ अरु लाखवत् अथवा घट अरु आकाशवत् संयोग कछु नहीं, काहेतें जो आत्मा अद्वैत है, सर्व दृश्य बोधमात्र है ॥ हे साधो! जो जड है सो चेतन नहीं होता, अरु चेतन जड नहीं होता, तातें न कोउ जड है, न चेतन है, चेतन आत्माही भावनाकरि जड दृश्य हो भासता है, तिसके बोधकरि एक अद्वैतरूप हो जाता है, तौ जाणीता है, जो सर्व वही है, इतर कछु नहीं है, मित्र अज्ञानकरि नानाप्रकारकी विश्व भासती है, जैसे मेघकी वर्षाकरि नानाप्रकारके बीज प्रफुल्लित हो आते हैं, तैसे अहंरूपी बीजतें संसाररूपी वृक्ष वासना मुखकरि प्रफुल्लित होता है, जब अहंकाररूपी बीज नष्ट हो जावै, तब संसाररूपी वृक्ष नष्ट हो जावैगा ॥ हे अंग! जैसे वानर चपलता करता है, तैसे आत्मतत्त्वतें विमुख अहंकाररूपी वानर वासनाकरि चपलता करता है, जैसे खेनु हस्तके प्रहारकरि अध ऊर्ध्वकों उछलता है, ते

से जीव वासनाके प्रहारकरि जन्मांतरविषे भटकता फिरता है, कबहु स्वर्ग, कबहु पाताल, कबहु भूलोक विषे आता है, स्थिर कदाचित् नहीं होता, तातें वासनाका त्याग करौ, अरु आत्मपदविषे स्थित होहु ॥ हे तात! इह संसार रात्रिका पैंडा है देखते नष्ट हो जाता है, इसकों देखी इसविषे प्रीति करणी अरु सत् जानणां यही अनर्थ है, तातें संसारकों त्यागिकरि आत्मपदविषे स्थित होहु, चित्तकी वृत्ति जो संसरती है, इसीका नाम संसार है॥ ॥ इति श्रीयोगवासिष्ठे निर्वाणप्रकरणे मंकीऋषिप्रबोधो नाम शताधिकषट्चत्वारिंशत्तमः सर्गः ॥ ॥ १४६ ॥ ॥ ॥ ॥ वसिष्ठ उवाच ॥ हे तात! यह संसारका मार्ग गहन है, इसविषे जीव भटकते हैं, यह चेतन वृत्ति जो संसरती है, यही संसार है, जब यह संसरना मिटै, तब स्वच्छ अपणा आपही स्वरूप भासै, चेतनावृत्ति जो बहिर्मुख फुरती है इसीका नाम बंधन है, अवर बंधन कोउ नहीं ॥ हे साधो! यह जगत वासनाकरि बांधा है, जैसे वसंतऋतुकरि रस पसरता है, तैसे वासनाकरि जगत पसरता है, बडा आश्चर्य है, जो मिथ्या वासनाकरि जीव भटकते फिरते हैं, दुःखकों भोगते हैं, अरु वारंवार जन्म मृत्यु पावता है, बडा आश्चर्य है, जो वासना विषमरूप है, इसतें जीव वश हुए अविद्यमान जगतकों भ्रमकरि सत् जानते हैं ॥ हे साधो! जो इस वासनारूप संसारकों तरी गए हैं, सो धन्य हैं, वह प्रत्यक्ष चंद्रमाकी नांई हैं, जैसे चंद्रमा अमृतरूप शीतल प्रकाशवान् प्रसन्न करता है, तैसे ज्ञानी पुरुष हैं, तातें तूं धन्य है, जिसकों आत्मपदकी इच्छा हुई है ॥ हे अंग! यह संसार तृष्णाकरि जलता है, जिनकी चेष्टा तृष्णासंयुक्त है, तिनकों तूं बिल्ला जाण, जैसे बिल्ला तृष्णाकरि चूहेकों ग्रहण करता है, तैसे यह जीव भी अपणी तृष्णासंयुक्त चेष्टा करते हैं, अरु इस मनुष्यशरीरविषे यही विशेषता है, जो किसी प्रकार आत्मपदकों प्राप्त होवै, अरु जो नरदेह पायकरि भी आत्मपद पावणेकी इच्छा न करै तौ पशुसमान है, जैसे पशु तैसे मनुष्य ॥ हे मित्र! मूढ जीव ऐसी चेष्टा करते हैं, जो प्राणोंके अंतपर्यंत

भी तृष्णा करते रहते हैं ॥ हे अंग! ब्रह्मलोकतें आदि काष्ठपर्यंत जेते कछु इंद्रियांके विषय हैं, तिनके भोगणे करि शांति नहीं प्राप्त होती, काहेतें जो आपातरमणीय हैं, इनविषे सुख कदाचित् नहीं, जो ज्ञानवान् पुरुष हैं, तिनकों शांति ऐसी है, जैसे चंद्रमाविषे हैं, अरु सूर्यकी नांई प्रकाशते हैं, अरु विषयकी तृष्णा कदाचित् नहीं करते, जैसे कोउ पुरुष अमृत पानकरि तृप्त हुआ होवै, तब वह खल खाणेकी इच्छा नहीं करता, तैसे जिस पुरुषकों आनंद प्राप्त हुआ है सो विषय भोगणेकी इच्छा नहीं करता, तातें इसी वासनाका त्याग करु, अरु वासनाका बीज अहंकार है, तिसकों निवृत्त करु, जो मैं नहीं, काहेतें जो तेरा होणाही अनर्थ है ॥ हे साधो! शुद्ध चिन्मात्र निरहंकार पदविषे जो कछु तूं आपकों प्रसन्न जाणता है, जो मैं ब्राह्मण हौं, अथवा किसी प्रकृतिसाथ मिलिकरि आपकों मानता है जो मैं यह हौं, यही अनर्थ है ॥ हे ऋषि! तेरे नेत्रोंके खोलणेकरि संसार उत्पन्न होता है, अरु नेत्रोंके मुंदणेकरि नष्ट हो जाता है, सो नेत्र क्या है, अहंकारका फुरणा इसीकरि आगे विश्व सिद्ध होती है, तातें तेरा होणाही अनर्थ है ॥ हे अंग! जैसे जेवरीविषे सर्प भ्रममात्र उदय होता है, तैसे आत्माविषे अहंकार उदय हुआ है, इसीके अभावतें भय शांत होती है, जब अहंकार हुआ, तब आगे स्त्री कुटुंब धन होते हैं, सो इसकों बंधन है, इनका चमत्कार ऐसे है, जैसे दामिनीका चमत्कार क्षणविषे उदय होकरि नष्ट हो जाता है, तातें इनविषे बंधमान नहीं होणा ॥ हे अंग! जब तूं कछु बन्या, तब सब आपदा तुझे आय प्राप्त होवैगी, अरु जब तूं अपणा अभाव जाणै, तब पाछे आत्मपदही शेष रहैगा, सो परम शांतरूप है, जिसकी अपेक्षाकरि चंद्रमा भी अग्निवत् जाणता है, सो परम शून्य है, अरु सर्व पदार्थोंकी सत्ता वही है सो आकाशरूप है ॥ हे मित्र! इन मेरे वचनोंकों धार, जो मोह तेरा नष्ट हो जावै, यह विश्व कछु हुई नहीं, जैसे आकाशविषे दूसरा चंद्रमा भासता है, सो है नहीं, तैसे विश्व नहीं, आत्माके प्रमादकरि भासती है ॥ हे ऋषि! तूं तिसीकों जाण,जिसके अज्ञानकरि विश्व भासती है, अरु

जिसके ज्ञानकरि लय हो जाती है ॥ हे मंकी ! शून्यमात्र जैसे आकाश है, स्पंदमात्र जैसे पवन है, जलमात्र जैसे तरंग है, तैसे संवितमात्र जगत है, तिस संवित आकाशतें जो इतर भासता है, सो भ्रममात्र जाण, जैसे असम्यक्दृष्टि करिके जल पहाडरूप भासै, तैसे असम्यक् दृष्टिकरि जगत भासता है, अरु सम्यक् अवलोकनकरि परमार्थसत्ताही भासती है, जिसके अज्ञानकरि जो विश्व भासती है, तिसकों भी ज्ञानवान् ब्रह्म शब्दकरि कहते हैं, तिस ब्रह्मपदका अहंकारही व्यवधान है, सो ज्ञानवान्का नष्ट भया है, तातें सर्वका अधिष्ठान वही परमार्थ स्वरूप एक देखते हैं, तिसीविषे तूं एकत्र होउ, जैसे आकाश अनेक घटके संयोगकरि भिन्न भिन्न भासता है, जो घटकों फोडियें तौ सर्व एकही हो जाता है, तैसे अहंकाररूपी घट फोडियें तौ सर्व पदार्थ एकत्र हो जाते हैं ॥ हे अंग ! सर्वकी परमार्थसत्ता एक ब्रह्मपद है, सो कैसा है, अजन्मा है, अच्युत है, आनंद है, शांतरूप है, निर्विकल्प अद्वैत है, सर्वका अधिष्ठान है, तिसीविषे स्थित होहु, जो शिलावत् आत्मसत्तातें इतर कछु न फुरै, तातें निर्बोधबोध हो जावहु ॥ हे मंकीऋषि ! यह जो पदार्थ भासते हैं, दुःखके देणेहारे, ऐसे जो शब्द अर्थ है, सो आकाश फूल है, तातें शोक मत करु, जो सर्व परमार्थसत्ताही है, जैसे पुरुष निराकार है, तिसकी भावनाकरि अंगका संयोग होता है, तैसे विश्व भी इसकी भावनाकरि होती है, जैसी जैसी संसारकी भावना दृढ होती है, तैसा रूप आगे दृष्ट आता है, जो विश्व उपादानकरि हुई नहीं, तौ आरंभ परिणामकरि बन्या कछु नहीं, जैसे यह विना उपादान है तैसे श्रवण कर ॥ हे मित्र ! शुद्ध परमात्माका जो पावणा है सो साधन है, अरु विश्व उपादान है सो शब्द है, अरु आत्मा अद्वैत है सो इनका हेतु है, अरु अचिंत्य है, इसीतें विश्व निरुपादान है, स्वप्नवत, जैसे स्वप्नसृष्टि निरुपादान होती है, तैसे जाग्रत सृष्टि भी है, अरु उपादानमृत्तिकाकरि जैसे घट कार्य बनता है, आत्मा विश्वका उपादान ऐसे भी नहीं, काहेतें जो मृत्तिका परिणामकरि घटाकार होती है, अरु आत्मा अच्युत है, जैसे भीतविना

चित्र होवै सो हैही नहीं, तातें यही विश्व आकाशविषे चित्र है, जैसे स्वप्नविषे नानाप्रकारकी विश्व आधार भीतविना चित्र होता है, तैसे यह विश्व भी आकाशविषे चित्र हुई है, इसीतें आत्मा अकर्त्ता है, अरु विश्व जो दृष्ट आती है सो निरुपादान है, तिसका शोक क्या करियें, अरु हर्ष क्या करियें यह प्रपंच सर्व आत्मरूप है, प्रमाद करिके नहीं जाणीता ॥ हे साधो! संवेदन करिके जो अहंकार फुरता है तब विश्व भासती है, जैसे स्वप्नविषे जो कछु बनता है सो अपणे स्वरूपतें भिन्न देखता है, अरु तिसविषे रागदोष भासते हैं, अरु जागे हुए अवर कछु नहीं, सब अपणाही अनुभव था, तैसे जब संवेदन उठ गई, तब सब विश्व अपणा आप हो जाती है, यह अहंकार होणाही विश्व है, जब अहंकार नाश होवै, तब सर्व शब्द अर्थ जो मैं दुःखी हौं, मैं सुखी हौं, यह नरक है, यह स्वर्ग है, इत्यादिक सब परमार्थसत्ताहीविषे फुरते हैं, सर्वका अधिष्ठान आत्मा है, तातें सर्व आत्मस्वरूप है, सो कैसा है, दृश्यतें रहित द्रष्टा है, ज्ञेयतें रहित ज्ञाता है, अरु निर्बोध बोध है, इच्छातें रहित इच्छा है, अद्वैत है, अरु नानात्व भी वही है, निराकार है, आकार भी वही है, अकिंचन है, किंचन भी वही है, अक्रिय है, अरु सर्व क्रिया वही करता है, ऐसे आत्मज्ञानकों पायकरि आत्मवेत्ता विचरते हैं, अरु जगत्का भान तिनकों किंचित् भी नहीं, जैसे स्वर्णके भूषण जलके तरंग होते हैं, तैसे सर्व विश्व तिसकों आत्मस्वरूप भासती है, ऐसे जाणीकरि सर्व चेष्टा करते हैं, जैसे यंत्रीकी पुतलीविषे संवेदन नहीं फुरती, तैसे उनकों जगत सत्यता नहीं फुरती, काहेतें जो निरहंकार भये हैं ॥ हे मंकीऋषि! जैसे स्वर्णविषे भूषण बनि आए हैं, तैसे आत्माविषे विश्व फुरि आई है, सो अहंकार फुऱ्या है, तातें इसके अभावकी भावना करु, निरहंकार होकरि चेष्टा करु, जैसे पिंघुडेविषे बालकके अंग स्वाभाविक हलते हैं, तैसे ज्ञानीकी निर्वेदन चेष्टा होती है ॥ हे ऋषी! जब तूं इस मेरे उपदेशकों धारैगा, तब सुखेनही आत्मपदकी प्राप्ति होवैगी, यह विश्व भी आत्मस्वरूपही भासैगी, जो कछु विश्व भासता है,

सो सब आत्मरूपही है ॥ हेरामजी! जब मैं इस प्रकार कहा, तब मंकीऋषि परम निर्वाणपदकों प्राप्त भया, पर
म समाधिविषे स्थित होगया, सौ वर्षपर्यंत समाधि स्थित रहा सो कैसी समाधि जो शिलावत् फुरै कछु नहीं ॥
हे रामजी! जैसे मंकीऋषि स्वरूपकों प्राप्त भया है, तैसे तुम भी स्थित होहु ॥ ॥ इति श्रीयोगवासिष्ठे
निर्वाणप्रकरणे मंकीऋषिनिर्वाणप्राप्तिर्नाम शताधिकसप्तचत्वारिंशत्तमः सर्गः ॥ १४७ ॥ ॥ ॥

॥ वसिष्ठ उवाच ॥ हे रामजी! यह विश्व आत्माका चमत्कार है, सर्व उही चिन्मात्र स्वरूप है ॥ हे रा
मजी! मेरा आशीर्वाद है, जो तुम चिन्मात्र स्वरूपकों प्राप्त होहु, जो तुमारा अपणा आप है, तिसकों
अपणा आप जाण, तुमारे दुःख नष्ट हो जावै ॥ हे रामजी! तुम निर्वाण शांत आत्मा होहु, अरु यथा
लाभविषे संतुष्ट रहौ, अरु सत् हुआ असत्की नांई स्थित होहु, रागदोषका रंग तुमकों स्पर्श न करै,
स्फटिक मणिकी नांई ॥ हे रामजी! यह सर्व जगत एकही स्थित है, अरु वास्तवतें एकविषे कछु स्थित नहीं,
आदि अंततें रहित एक चिदाकाश अपणे आपविषे स्थित है, सो शरीरादिकके नाशविषे भी अखंडरूप
है, तिसका यह जगत चमत्कार है, उपजी उपजीकरि लय हो जाता है, जलतरंगवत् ॥ हे रामजी!
ध्याता ध्यान ध्येय त्रिपुटी भ्रांतिमात्र सिद्ध हुई है, अरु वास्तवतें द्रष्टा दर्शन दृश्य सर्व उहीरूप है, तिस
तें इतर कछु नहीं, सब आत्मस्वरूप है, अरु सदा एकरस है, कदाचित् क्षोभकों नहीं प्राप्त होता, यद्यपि
यह दशा होवै जो आमावास्याका चंद्रमा दृष्ट आवै, अरु प्रलयकालबिना प्रलयकाल वायु चलै, तौ भी आ
त्माकों क्षोभ नहीं होता, आत्मपद सदा ज्यौंका त्यौं है ॥ हे रामजी! ऐसे आत्माके प्रमादकरि जीव दुः
ख पावते हैं, जब आत्माका प्रमाद होता है, तब इसकों प्रत्यक्ष देह इंद्रिय अपणेविषे भासती हैं, तौ भी
है नहीं, जैसे वालुसों तेल नहीं निकसता, अरु आकाशविषे वन नहीं होता, चंद्रमाके मंडलविषे तप्तता न
हीं होती, तैसे आत्माविषे देह इंद्रिय कदाचित् नहीं ॥ हे रामजी! यह जीव सर्व आत्मरूप हैं, तातें इन

कों देह इंद्रियांका संबंध कछु नहीं, परंतु इनकी क्रियाविषे जो अभिमान करता है, इसीतें वंधमान होता है ॥ हे रामजी! जैसे बेडीपर पुरुष बैठता है, तिसकों भ्रांतिकरि नदीतटके वृक्ष चलते भासते हैं, तैसे मनके भ्रमकरि आत्माविषे चित्त देह इंद्रियां भासते हैं, अरु वास्तवतें चित्त देह इंद्रियां कछु भिन्न वस्तु नहीं, यह भी आत्मस्वरूप है, तौ निषेध किसका करियें ॥ हे रामजी! यह मन इंद्रियादिककों अपणी सत्ता कछु नहीं, भ्रांति करिके भासती है, जैसे पर्वत ऊपर उज्ज्वल मेघ होता है, तिसविषे वस्त्रबुद्धि निष्फल होती है, तैसे देहादिकविषे अहंबुद्धि निष्फल है तातें ॥ हे रामजी! एक अखंड आत्मतत्त्व है, अवर द्वैत कछु नहीं, जब तैंनें ऐसे धारा, तव तूं निरंजन स्वरूप है ॥ हे रामजी! यह सर्व शरीर चित्तके फुरणेविषे स्थित है, जैसे चित्तके फुरणेविषे शरीर है, तैसे जीवविषे चित्त है, तैसे परमात्माविषे जीव है ॥ हे रामजी! इस प्रकार फुरणेमात्र दृश्य हुई तौ द्वैत तौ कछु न हुआ क्यों? इस प्रकार विचारपूर्वक दृश्य भ्रमकों त्यागिकरि स्वरूपविषे स्थित होहु ॥ हे रामजी! ऐसे धारीकरि सुखेन विचरहु, जो कछु चेष्टा नेतिकरि आय प्राप्त होवै तिसकों करौ, परंतु अपणा अभिमान न होवै, जब अपणा अहंभाव दूर भया, तव स्पंद होवै, अथवा निस्पंद होवै, समाधिस्थित होवै अथवा राज्य करै, स्थिति क्षोभ तुमकों दोनों तुल्य हो जावैंगे, जब अपणी अभिलाषा दूर भई तब जैसी चेष्टा आय प्राप्त होवै तैसीही होवै, उह फुरणा भी अफुर है, जैसे जलके ज्ञानतें तरंग बुदबुदे जलही भासता है, तैसे तुमकों स्पंद निस्पंद दोनों तुल्य होवैंगे, एक अद्वैत सत्ताही भान होवैगी, जैसे सम्यक्दर्शीकों तरंग अरु सोमजल एक भासता है, तैसे तुमकों भी एकही भासैगा, जीवन्मुक्त होहु, अथवा विदेहमुक्त होहु, समाधि होवै अथवा राज्य होवै, तुमकों दोनों तुल्य हैं ॥ हे रघुकुल आकाशके चंद्रमा रामजी! इसकों अपणी अभिलाषाही वंधन करती है, जब अभिलाषा मिटी, तब कर्म करौ अथवा न करौ, बंधन कछु नहीं, काहेतें जो करणेविषे भी आत्माकों अक्रिय देख

ता है, अरु अकरणेविषे भी तैसे देखता है, द्वैतभावना तिसकी निवर्त हो जाती है, तातें तिसकों चित्त देह इंद्रियादिक सर्व पदार्थ आत्मरूपही भासते हैं ॥ हे रामजी! मैं जानता हौं जो तुमारे हृदयका मोह निवृत्त भया है, अब तुम जागे हौ, अरु जो कछु तुमकों संशय रहा होवै तौ बहुरि प्रश्न करौ, जो मैं उत्तर देउं ॥ इति श्रीयो० निर्वा० सुखेनयोगोपदेशो नाम शताधिकाष्टचत्वारिंशत्तमः सर्गः ॥ १४८ ॥ ॥

॥ राम उवाच ॥ हे भगवन्! एक संशय मुझकों है, तिसकों तुम निवृत्त करौ, एक कहते हैं, जो बीजतें अंकुर होता है, अरु एक कहते हैं, अंकुरतें बीज होता है; अरु एक कहते हैं, जो कछु कर्ता है, सो दैवही करता है, अरु एक कहते हैं, कर्म करते हैं, तब जन्म पावते हैं, कर्महीकरि सब कछु होता है, अवर किसीके आधीन नहीं, अरु एक कहते हैं जब देह होती है, तब कर्म करते हैं, एक कहते हैं, कर्मोंतें देह होती है, एक कहते हैं, देहतें कर्म होते हैं, इह अर्थ है, एक पुरुषप्रयत्न मानते हैं, जो जैसे है, तैसे तुम कहौ ॥ ॥ वसिष्ठ उवाच ॥ हे रामजी! एक एक मैं तुझकों क्या कहौं, कर्मतें आदि दैवपर्यंत, अरु घटतें आदि आकाशपर्यंत जेती कछु क्रिया कर्म द्रव्य है, सो यह विकल्पजाल सब भ्रांतिमात्र है, केवल आत्मस्वरूप अपणे आपविषे स्थित है, द्वैत कछु हुआ नहीं ॥ हे रामजी! जब संवेदन फुरती है, तब सब कछु भासता है, अरु निःसंवेदन हुए कछु नहीं, कर्म पुरुषप्रयत्न सब दैवसमेत आत्माके पर्याय हैं, जैसे शीत श्वेत आदिक बरफके पर्याय हैं, तैसे यह सर्व आत्माके पर्याय हैं, दैव पुरुष है, अरु पुरुष दैव है, कर्म देह है, अरु देह कर्म है, बीज अंकुर है, अरु अंकुर बीज है, दैव कर्म है, अरु कर्म दैव है, सो पुरुषप्रयत्न है, जो इनविषे भेद मानते हैं, सो पंडितविषे पशु हैं, काहेतें जो इनका बीज अहंकार है, जब अहंकार हुआ तब सब कछु सिद्ध हुआ, जैसे बीजतें वृक्ष होता है, फूल फल टास सर्व बीजतें होते हैं, अरु जो बीजही न होवै, तौ वृक्ष कैसे उपजे ॥ हे रामजी! इनका बीज संवेदन है, अहंकार संकल्प संवेदन तीनों पर्याय हैं, जब फुरणा हुआ तब कर्म देह दैव सर्व सिद्ध होते हैं, जब फुरणा मिटि

गया तब कछु नहीं भासता,इसीकों ज्ञान अग्निकरि जलावहु, जो फूल फल टास जलि जावै; यह जो संवेदन फुरती है, जो मैं ही हौं, यही संसारका बीज है,ज्ञानरूपी अग्निकरि जलावहु, जब अहंकार नष्ट भया तब द्वैत कछु न भासैगा ॥ हे रामजी ! यह जो प्रपंच भासता है, तिनका बीज संवेदन है,अरु संवेदनका बीज शुद्ध संविततत्त्व है, तिसका बीज अवर कोउ नहीं, दैव कर्म पुरुषप्रयत्न क्या है, सो श्रवण करु, आदि जो स्पंद संवेदन फुरणा हुआ है,तिसका नाम दैव है,काहेतें जो कर्मतें आदिही फुरता है,बहुरि जो आगे क्रिया करती है, सो कर्म हैं, इसीका नाम पुरुषप्रयत्न है,अरु उह जो कर्मतें आदि दैवरूप फुर्या है,सो क्या रूप है, इसीका जो प्रकृति कर्म हुआ है, तिसीका नाम दैवकरि कहते हैं, इन सर्वका बीज संवेदन है ॥ हे रामजी ! जो स्वतः पुरुष चिन्मात्र पद एकही था, जब तिसतें विकारसंयुक्त उत्थान हुवा, तब आगे प्रपंच भासणे लगा, बहुरि जब उत्थानका अभाव होवै, तब प्रपंचका भी अभाव हो जावै॥हे रामजी ! जब यह कछु बणता है, तब सर्व आपदा इसकों प्राप्त होती है, जैसे सुइ वस्त्रविषे प्रवेश करती है, तिसके पाछे तागा भी चला जाता है, अरु जो सुइ प्रवेश न करै तौ तागा कहांतें जावै, तैसे जब अहंकार प्रवेश करता है, तब सब आपदा आती है, जब अहंकार निवृत्त भया, तब सब विश्व आनंदरूप अपणा आप भासती है, तातें अहंकारका अभाव करौ, काहेतें जो विश्व भ्रांति करि सिद्ध है, आगे कछु हुई नहीं सर्व आत्मस्वरूप है ॥ हे रामजी ! वासनामात्र विश्व है, जब वासना नष्ट होवै तब परम कल्याण है, जिस प्रकार इसकी वासना क्षय होवै सोइ युक्ति श्रेष्ठ है, जब युक्तिकरि वासना क्षय होवैगी, तब चेष्टा भी होवैगी, परंतु बहुरि जन्मकों न देवैगी ॥ हे रामजी ! ज्ञानी अज्ञानीकी चेष्टा तुल्य दृष्ट आती है, परंतु ज्ञानीका संकल्प दग्ध बीजवत् है, बहुरि जन्मकों नहीं देता, अरु अज्ञानीका संकल्प कच्चे बीजवत् है, बहुरि जन्म देता है, अरु वास्तव देखियें तौ न कोउ जन्मही पावता है, न कोउ मृत होता है, केवल अपणे आप भावविषे स्थित है, भ्रांति करिके भिन्न भिन्न भासते हैं, स्वरूपतें स

वे अपणाही आप है, द्वैत कछु हुआ नहीं, अरु जो भासता है, सो मिथ्या है, जैसे केलेके स्तंभविषे सार कछु नहीं होता, तैसे प्रपंच सर्व मिथ्या है, इसविषे सार कछु नहीं, तातें इसकी वासना त्यागिकरि अपणे आपविषे स्थित होहु ॥ हे रामजी ! जिस प्रकार तुमारी वासना निर्मूल होवै, सोइ यत्नकरि निर्मूल करौ, तब शेष परम शिवपदही रहैगा ॥ हे रामजी ! पुरुषप्रयत्नकरि जब निरहंकार होवहुगे, तब वासना आपही क्षय हो जावैगी, वासना क्षयका उपाय अपणे पुरुषप्रयत्नबिना कोउ नहीं, तातें हे रामजी ! पुरुषार्थ करिके इसी एक देवपरायण होहु, कर्म दैव आदिक वही पुरुष होकरि भासता है, अरु कछु हुआ नहीं, जैसे एकही पुरुष देवनका स्वांग धारे ॥ हे रामजी ! इस प्रकार विचारपूर्वक सब ईषणाकों त्यागिकरि स्वरूपविषे स्थित होहु ॥ ॥ इति श्रीयोगवासिष्ठे निर्वाणप्रकरणे निरासयोगोपदेशो नाम शताधिकनवचत्वारिंशत्तमः सर्गः ॥ १४९ ॥ ॥ ॥ वसिष्ठ उवाच ॥ हे रामजी ! ज्ञानवानकी बुद्धि निर्मल हो जाती है, हृदयविषे शीतलता होती है, चेतन रसकरि बुद्धि पूर्ण होती है, दूसरा भान उठि जाता है, तातें नित्य अंतर्मुखी होहु, अरु वीतराग निर्वासी होहु, चिन्मात्र निर्मल शांतरूप सर्व ब्रह्मकी भावना करु, ब्रह्मपदकों पायकरि नेतिके अनुसार चेष्टा कर, जो हर्षका स्थान होवै, तिसविषे हर्ष करु, जो शोकका स्थान होवै, तहां शोक करु, जैसे अज्ञानी करते हैं, तैसे कर, अरु हृदयविषे आकाशकी नांई रहु ॥ हे रामजी ! जब इष्टकी प्राप्ति होवै, तिससाथ स्पर्श करहु, परंतु हृदयविषे तृष्णा न होवै, जब युद्ध आए प्राप्त होवै तब शूरमा होकरि युद्ध करहु, अरु जहां दीन होवै तहां दया करहु, जो राज्य आय प्राप्त होवै तिसकों भोगहु, जो कोउ कष्ट आय प्राप्त होवै, तिसकों भी भोगहु ॥ हे रामजी ! सब चेष्टा अज्ञानीकी नांई करहु, अपणे हृदयकों कोउ जानी न सकै, अरु हृदयविषे,सदा समता रहै, इतर कछु फुरै नहीं, रागदोषतें रहित सदा निर्मल होहु, जब तूं ऐसे निश्चयकों धारैगा, तब तुझकों खेद कछु

न होवैगा, यद्यपि बडा दुःख इंद्रका वज्र पडै तौ भी तुझकों स्पर्श न करैगा ॥ ॥ हे रामजी! तेरा रूप कैसा है, जो शस्त्रकरि छेद्या नहीं जाता, अरु अग्निकरि जलता नहीं, जलकरि गलता नहीं, पवनकरि सूकता नहीं, केवल निराकार अजर अमर है, सर्वका अपणा आप है ॥ हे रामजी! कष्ट तव होता है, जव विलक्षण वस्तु होती है, अग्नि तव जलाती है, जव भिन्न काष्ठ आदिक वस्तु होती है, अग्निकों अग्नि तौ जलाती नहीं, जलकों जल तौ गालता नहीं, तातें तूं अपणे आपविषे स्थित होहु ॥ हे रामजी! संवितरूप आलयवत् स्थिर स्थान है, तिसविषे स्थित होहु, जैसे पक्षी सर्व उरतें संकल्पकों त्यागिकरि आलयविषे स्थित होता है, तव सुख पावता है, तैसे जव तूं सर्व कलनाकों त्यागिकरि अंतर्मुख संवितविषे स्थित होवैगा, तव रागदोषरूपी धुंध कोउ न रहैगा ॥ हे रामजी! संसाररूपी समुद्र वडा प्रवाह है, तिसतें निकसणा तव होवै, जव आश्रय होवै, सो आश्रय तुझकों कहता हौं, अनुभवरूप आत्माकों आश्रयकरि संसारसमुद्रके पारकों प्राप्त होहु, तातें विलंव न करहु, अपणे आपविषे स्थित होहु ॥ हे रामजी! संसाररूपी वृक्षका अंत लिया चाहै, तौ नहीं पाइता, अरु मैं तुझकों ऐसा उपाय कहता हौं, जो सर्वका अंत कहियें सुगंधिकों ग्रहण किये, संसाररूपी एक वृक्ष है, तिसविषे चेतनमात्र सुगंधिता है, सो तेरा अपणा आप है, तिसकों ग्रहण करु, जो सर्वका अधिष्ठान है, जव तिसकों ग्रहण किया, तव सर्वकों ग्रहण किया है ॥ हे रामजी! जेता कछु प्रपंच तुमकों भासता है, सो सव आत्मरूप है, तिसकी भावना करु, अरु जाग्रतविषे सुषुप्त होहु, सुषुप्तिविषे जाग्रत होहु, संसारकी सत्ता जो जाग्रत है, तिसकी उरतें सुषुप्त होहु, सुषुप्त कहियें फुरणेतें रहित होकरि तुरीया पदविषे स्थित होहु, जहां गुणका क्षोभ कोउ नहीं, अरु निर्मल शांतिरूप है, जहां एक अरु दोकी कलना कोउ नहीं, तिसविषे स्थित होहु ॥ ॥ राम उवाच ॥ हे भगवन्! ऐसे जो शांतरूप तुरीया पदविषे स्थित होणा तुमनें कहा, सो तुमारेविषे यह नहीं फुरता,

जो मैं वसिष्ठ हौं, तिसका रूप क्या है, जो अहं प्रतीति तुमकों न होती है ॥ ॥ वाल्मीक उवाच ॥ हे भारद्वाज! जब इस प्रकार रामजीनें प्रश्न किया, तब वसिष्ठजी तूष्णी हो गये, अरु सर्व सभा संशयके समुद्रविषे मग्न भई तब रामजी बोले ॥ हे भगवन्! तूष्णी होणा तुमारा अयोग्य है, तुम साक्षात् विश्वगुरु हौ, ब्रह्मवेत्ता हौ, ऐसी कवन बात है, जो तुमकों न आवै, अथवा मुझकों समर्थ नहीं देखते सो कहौ, जब ऐसे रामजीनें कहा, तब वसिष्ठजी एक घडी उपरांत बोले ॥ ॥ वसिष्ठ उवाच ॥ हे रामजी! असमर्थता करिके मैं तूष्णी नहीं भया परंतु जैसा तेरे प्रश्नका उत्तर है, सोई दिखाया, जो तेरे प्रश्नका तूष्णीही उत्तर है, जो प्रश्न करणेवाला अज्ञान होवै तौ उसकों अज्ञान लेकरि उत्तर कहियें, अरु जो तज्ज्ञ होवै, तिसकों ज्ञानकरि उत्तर दीजियें, आगे तूं अज्ञानी था तब सविकल्प उत्तर मैं देताथा अब तूं ज्ञानवान् है, तेरे प्रश्नका उत्तर तूष्णीही है ॥ हे रामजी! जो कछु कहणां है, सो प्रतियोगीसाथ मिल्या हुआ है, प्रतियोगी बिना शब्द मैं कैसे कहौं, आगे तूं सविकल्प शब्दका अधिकारी था, अरु अब तुझकों निर्विकल्पका उपदेश किया है ॥ हे रामजी! शब्द चार प्रकारके हैं, एक सूक्ष्म अर्थका, दूसरा परमार्थका; एक अल्प है, एक दीर्घ है, सो तीन कलंक इनविषे रहते हैं, एक संशय एक प्रतियोग, एक भेद, यह तीनों कलंक शब्दविषे रहते हैं, जैसे सूर्यकी किरणाविषे त्रसरेणु रहते हैं, तैसे शब्दविषे कलंक रहते हैं, अरु जो पद मन अरु वाणीतें अतीत है, तौ कलंकित शब्द कैसे तिसकों ग्रहण करै ॥ हे रामजी! काष्ठमौन तिसकों कहते हैं, जहां न इंद्रियां फुरही, न मन फुरै, कोउ फुरणा न फुरै, सो कहियें काष्ठमौन, ऐसे पदकों मैं वाणीकरि कैसे कहौं, जेता कछु बोलणा होता है, सो सविकल्प होता है, उस तेरे प्रश्नका उत्तर तूष्णी है ॥ राम उवाच ॥ हे भगवन्! तुम कहते हौ, बोलणा सविकल्प अरु प्रतियोगीसहित होता है, जो कछु ब्रह्मविषे दूषण है, तिसका निषेध करिके कहौ, मैं प्रतियोगीकों न विचारोंगा ॥ वसिष्ठ उवाच ॥ हे रामजी! मैं चिदाकाशस्वरूप

हौं, चैत्यतें रहित चिन्मात्र हौं, अरु शातरूप हौं, सम हौं, सर्व कलनातें रहित केवल आत्मत्वमात्र हौं, अरु तूं भी चिदाकाश है, सर्व जगत् भी चिदाकाश है, अरु अहं त्वं कोउ नहीं कहणा, काहेतें जो दूसरी सत्ता कोउ नहीं, सब चिदाकाश है, अहं संवेदनतें रहित शुद्ध है, जो सापेक्षिक अहं अहं फुरती है, अरु मोक्षकी भी इच्छा होवै तौ सिद्ध नहीं होती,काहेतें जो कछु आपकों मानीकरि फुरती है, तौ एक अहंकारके केई अहंकार हो जाते हैं, यह अहं इसके गलेमें फांसी पडती है, जब अहंतातें रहित होवै, तव आत्मपदकों प्राप्त होवै॥ हे रामजी! जब यह सबकी नाई हो जावै,कछु अपणी अहंता अभिमान न फुरै, तव संसारसमुद्रके पारकों प्राप्त होवै, अरु जब द्वैतसों मिल्या हुआ जीवता है, तबलग जन्ममरणके बंधनमें है, कदाचित् मुक्त नहीं होता, जैसे जन्मका अंध चित्रकी पुतलीकों देखि नहीं सकता, तैसे अहंतासंयुक्त मुक्तिकों नहीं प्राप्त होता; जब अहंताका अभाव होवै, तव कल्याण होवै, स्वरूपके आगे अहंताही आवरण है॥ हे रामजी! जब यह चेतन हुआ फुऱ्या तब इसकों बंधन पडा, अरु जब जड अफुर हो जावै तब कल्याण हुआ, जब चैतन्योन्मुखत्व होता है, तब इसका नाम पशु होता है, पशुका शरीर पाया, जब चैत्यतें रहित शुद्ध चेतन प्रत्यक आत्माविषे स्थित होता है, तब मनुष्य जन्म सफल होता है, यह मनुष्य जन्म पाय जो कछु पावणा था, सो पाया॥ हे रामजी! जब मनुष्य जन्मकों पायकरि न जाणैगा, तब अवर जन्मविषे जाणना कहां है, यह संसार चित्तके फुरणेकरि उत्पन्न हुआ है, जब चित्त संसरणेतें रहित होवै, तब केवल केवलीभाव स्वरूप भासै, ज्ञानवानकी दृष्टिविषे अब भी कछु नहीं हुआ, केवल आत्मस्वरूपही भासता है, फुरणा अफुरणा दोनों तिसकों तुल्य दिखाई देते हैं, अंतःकरणचतुष्टय आत्मस्वरूप है, अरु अज्ञानीकों भिन्न भिन्न भासते हैं, इसीतें चित्त आदिक जड हैं, अरु मिथ्या हैं, अरु आत्मस्वरूप करिके सब आत्मस्वरूप हैं, आत्मा देश काल वस्तुके परिच्छेदतें रहित है, ज्ञानीकों सर्व आत्माही भास

ता है, भावै कैसी चेष्टा करै, उह लोक धन पुत्र सर्व ईषणातें रहित है, न लोककी इच्छा करता है, जो लोक मुझकों कछु भला कहै, अरु न पुत्रधन पावणेकी इच्छा करता है, केवल आत्मअनुभवरूपविषे स्थित है, अरु सबकों अपणा आप जानता है ॥ हे रामजी! जिस पदकों उह प्राप्त होता है, तिस पदकों मेरी वाणी कही नहीं सकती, अनिर्वाच्य पद है, अरु जो पुरुष अहं ब्रह्म अस्मि कहता है, जो मैं ब्रह्म हौं, अरु यह जगत् है, तब जाणियें जो तिसकों ज्ञान नहीं उपजा, तिसकों शास्त्र श्रवणका अधिकार है, जैसे कोउ कहै, मेरे हाथविषे दीपक है, अरु अंधकार भी मुझकों दृष्ट आता है, तब जाणिये जो इसके हाथविषे दीपक नहीं, तैसे जबलग जगत् भासता है, तबलग ज्ञान उपजा नहीं, इस जीवनें निर्वाण हो जाणा है, जब प्रत्यक् चेतनविषे स्थित हुआ, तब जड हो जावैगा; संसारकी भास कछु न रहैगी; इसी भी दृष्ट न रहैगी, जो मैं सम्यक्दर्शी हौं, केवल निर्वाण हो जावैगा ॥ हे रामजी! अब भी निर्वाणपद है, इतर हुआ कछु नहीं, किस करिके किसकों कवन उपदेश करै, केवल एकरस शून्य है, शून्य अरु आत्माविषे भेद कछु नहीं, अरु जो कछु भेद है, तिसकों ज्ञानवान् जानते हैं, अरु वाणीकी गम नहीं, तिसविषे जोअनंत संवेदन फुरती है, तिसकरि संसार फुरता है, अरु संवेदनहीकरि लीन होता है, जैसे पवनकरि अग्नि प्रज्वलित होती है, अरु पवनहीकरि लीन होता है, तैसे संवेदन बहिर्मुख फुरती है, तब संसार भासता है, अरु जब अंतर्मुख होती है, तब जगत् लीन हो जाता है, तातें संसार फुरणे मात्र है, जैसे आकाशविषे नीलता भ्रमकरि भासती है, तैसे आत्माविषे जगत् प्रमाद करिके भासता है, जगत् कछु बन्या नहीं, केवल ब्रह्मसत्ता ज्योंकी त्यों है, तिसविषे स्थित होहु, जब स्थित होवैगा, तब अशेष विशेष भाव मिटि जावैगा ॥ हे रामजी! ग्राह्य अरु ग्राहक संबंध भी जाता रहैगा, केवल जो परमात्मतत्त्व शुद्ध है, अजर अमर है, खाते पीते चलते सोवते वृत्ति तहांही रखणी ॥ ॥ इति श्रीयोगवासिष्ठे निर्वाणप्रकरणे भावनाप्र

तिपादनोपदेशो नाम शताधिकपंचाशत्तमः सर्गः ॥ १५० ॥ ॥ ॥ वसिष्ठ उवाच ॥ हे रामजी ! जिस प्रकार आत्मपदकों प्राप्त होता है, सो सुण, जब निरहंकार होता है पुरुष, तब आत्मपदकों प्राप्त होता है, जो सर्वात्मा है, तिसकों आवरण करणेहारी अविद्या है, जैसे सूर्यमंडलके आगे बदल आय आच्छादि लेता है, तैसे अविद्या आत्माविषे आवरण करती है, तिस अविद्याकरि उन्मत्तकी नांई मूर्ख चेष्टा करते हैं, अरु जो अहंतातें रहित ज्ञानवान् पुरुष है, तिसकों दुःख कोउ नहीं स्पर्श कर्त्ता, संदेह भी निर्दुःख होता है, जैसे भींत उपर मूर्त्यां युद्धकी सैना लिखी होती है, सो देखणेमात्र शोभा दृष्ट आता है, परंतु उह शांतरूप हैं, तैसे ज्ञानवानकी चेष्टाविषे भी क्षोभ दृष्ट आता है, परंतु सदा अक्षोभ निर्वाणरूप है, वासनासहित दृष्ट आता है, अरु सदा निर्वासी है, जैसे जलविषे लहरीचक्र क्षोभ दृष्ट आता है, परंतु जलतें इतर कछु नहीं, तैसे ज्ञानवानकों ब्रह्मतें इतर कछु नहीं भासता, जिसके अंतरतें दृश्यभाव शांत हो गया है, बाहिर क्षोभवान् दृष्ट आता है, तौ भी मुक्तिरूप है, जैसे धुंएके बदल आकाशविषे हस्ती घोडा पहाडरूप दृष्ट आते हैं, परंतु है कछु नहीं, तैसे जगत दृष्ट आता है, परंतु है कछु नहीं, अहंकारकरि जगत् भासता है, अहंकारतें रहित निर्विकार शांतरूप होता जाता है, ऐसा जो निरहंकार आत्मपद है, तिसकों पायकरि ज्ञानवान् शोभता है, ऐसा शरत्कालका आकाश नहीं शोभता, अरु क्षीरसमुद्र भी ऐसा नहीं शोभता, अरु पूर्णमासीका चंद्रमा भी ऐसा नहीं शोभता ऐसा ज्ञानवान् पुरुष शोभता है ॥ हे रामजी ! अहंताही इस पुरुषकों मल है, जब अहंता नाश होवै, तब स्वरूपकी प्राप्ति होवै, अरु संसारके पदार्थकी जो भावना थी सो निवृत्त हो जाती है, काहेतें जो भ्रम करिके उपजी थी जो वस्तु भ्रम करिके उपजी होती है, सो भ्रमके अभाव हुए तिसका भी अभाव हो जाता है, जैसे आकाशविषे धुंएका बदल नानाप्रकारके आकार हो भासता है, अरु है नहीं, तैसे यह विश्व अन होती भासती है, विचार कियेतें रहती नहीं ॥

हे रामजी ! जबलग इसकों संसारकी वासना है, तबलग बंध है, जब वासना निवृत्त हो जावै, तब आत्म पदकी प्राप्ति होवै अरु संपूर्ण कलना मिटि जावै, इंद्रियांके इष्ट अनिष्टविषे तुल्य हो जावै, यद्यपि व्यवहार कर्ता है तौ भी शांतरूप है, जैसे शब्दकों रागदोष नहीं फुरता, तैसे ज्ञानी निर्वाणपदकों प्राप्त होता है, जिस निर्वाणविषे सत् असत् शब्द कोउ नहीं, केवल ब्रह्मस्वरूप है, ब्रह्म कहणां भी उहां नहीं रहता, केवल आत्मत्व मात्र है, अरु अद्वैत है ॥ हे रामजी ! विश्व भी उहीरूप है, चेतन आकाश है, जैसी जैसी भावना होती है, तैसा तैसा चेतन होकरि भासता है, जब जगतकी भावना होती है, तब नानाप्रकारके आकार दृष्ट आते हैं, अरु जब ब्रह्मकी भावना होती है, तब ब्रह्म भासता है, जैसे विषविषे अमृतकी भावना होती है, अरु विधिसंयुक्त खाते हैं, तब विष भी अमृत हो जाती है, अरु जो विधिविना खाइएं तौ मृतक होता है, तैसे जब इस संसारकों विधिसंयुक्त देखियें, अर्थ इह जो विचारकरि देखियें तौ ब्रह्मस्वरूप भासता है, अरु जो विचारविना देखिये तौ जगतरूप भासता है, सो विचार तब होता है, जब अहंकार निवर्त्त होता है, अरु अहंकार आकाशविषे उपजा है, अरु आकाश शून्यताविषे उपजा है, अरु शून्यता आत्माके प्रमादकरि उपजी है, बहुरि अहंकारतें जगत हुआ है, अरु अहंकार मिथ्या है ॥ हे रामजी ! शरीर आदिक चित्तपर्यंत विचारी देखियें तो दृष्ट कहूं नहीं आते, इनविषे जो अहंप्रत्यय है सो भ्रांतिमात्र है, जब तूं विचारि देखैगा, तब मरीचिकाके जलवत भासैगा ॥ हे रामजी ! इस प्रपंचके त्यागणेविषे यत्न कछु नहीं, जैसे स्वप्नके पर्वतका त्यागणा यत्न कछु नहीं, तैसे मिथ्या संसारके त्यागणेविषे यत्न कछु नहीं, बहुरि इसका निर्णय क्या करियें, जो हैही नहीं, जैसे वंध्याके पुत्रकी वाणी विचारियें जो सत्य कहता है, अथवा असत्य कहता है, सो मिथ्या कल्पना है, वंध्याका पुत्र है नहीं तौ तिसका विचार क्या करियें, तैसे प्रपंच है नहीं, इसका निर्णय क्या करियें, तातें तुम ऐसे करौ जैसे मैं कहता हौं, तब आत्मपदकी प्राप्ति होवै ॥ हे रा

मजी! ऐसी भावना करु जो न मैं हौं न जगत है, जब अहंकार न रहा तब कलना कहां होवै, इसका हो णाही अनर्थ है, जब ऐसे विचार उत्पन्न होता है, तब भोगकी वासना क्षय हो जाती है, अरु संतकी संगति होती है, अन्यथा भोगकी वासना नष्ट नहीं होती ॥ हे रामजी! जबलग इसकों अहंता उठती है, अर्थ यह जो दृश्य प्रकृतिसाथ मिलाप है, तबलग द्वैतभ्रम नहीं मिटता, जब अहंका उत्थान मिटि जावै, तब शुद्ध चिन्मात्र आत्मसत्ताही रहै ॥ इति श्रीयोगवासिष्ठे निर्वाणप्रकरणे हंससंन्यासयोगो नाम शताधिकएकपंचाशत्तमः सर्गः ॥ १५१ ॥ ॥ वसिष्ठ उवाच ॥ हे रामजी! जब अहंताका उत्थान होता है, तब स्वरूपका आवरण होता है, अरु जब अहंता मिटि जावै, तब स्वरूपकी प्राप्ति होती है, इस संसारका बीज अहंताही है सो अहंकारही मिथ्या है, तिसका कार्य सत्य कैसे होवै, जो प्रपंच मिथ्या हुआ, तौ पदार्थ कहांतें सत् होवै॥ हे रामजी! ऐसा जो ब्रह्म है, तिसकी युक्ति क्या है, जो संकल्पपुरुष भी असत्य है, अरु तिसका संशय भी मिथ्या है, अरु जिसप्रति प्रश्न करता है सो भी मिथ्या है, जैसे स्वप्नविषे द्वैतकलना होती है, सो असत् है, तैसे यह जगत द्वैत भी असत्य है ॥ हे रामजी! इह सब जगत इसके अंतर स्थित है, अरु प्रमादकरि बाहिर भासता है, इह अपनाही स्वप्न दृष्ट आता है, जो अंतरकी बाह्य सृष्टि भासती है, तातें इह जगत सब चिद्रूप है, इतर कछु नहीं, सो चेतनसत्ता आकाशतें भी अति सूक्ष्म है, अरु स्वच्छ है ॥ हे रामजी! इह जगत चित्त करि चेत्या है, तातें कहूं हुआ नहीं, न किसीका नाश होता है, न उत्पन्न होता है, न किसीका कहूं जन्म है, न मृत्यु है, सर्व ब्रह्मही है ॥ हे रामजी! जगतकेनाश हुए कछु नाश नहीं होता, काहेतें जो हुआ कछु नहीं, जैसे स्वप्नके पहाड नष्ट हुए, जैसे संकल्प पुर नष्ट हुए, क्या नष्ट हुआ जो कछु उपजे नहीं तौ, तैसे इह जगत है, कछु हुआ नहीं, इह विचारकरि देख्या है, जो वस्तु अविचारतें उपजी होवै सो विचारकरि कैसे रहै, जैसे जो पदार्थ तमतें उपजा होवै, सो प्रकाश हुए कैसे रहै, तैसे यह जगत है, अविचारकरि भासता है,

विचार करेतें नाश हो जाता है ॥ हे रामजी! यह जगत संकल्पहीमात्र है, जैसे संकल्प नगर होता है, तैसे यह संसार है, इसविषे कोउ पदार्थ सत्य नहीं, तातें रूप अरु इंद्रियां अरु मनके अभावकी चिंतवना करणी, इह संसार ऐसा है, जैसे समुद्रविषे चक्र है नहीं, जलही है, तिसविषे प्रीति भावना करणी अज्ञान है ॥ हे रामजी! एक ऐसे हैं, जो बाह्यतें शांतरूप दृष्ट आते हैं, अरु अंतर उनके क्षोभ होता है, अरु एक ऐसे हैं, जो अंतरतें शीतल है, बाह्य नानाप्रकारकी चेष्टा करते हैं, जिनके दोनों मिटि जाते हैं, सो मोक्षके भागी होते हैं, तिनके अंतर बाहिर एकता होती है, जैसे समुद्रविषे घट भरि राखियें, तिसके अंतर बाहिर जल होता है ॥ हे रामजी! जिस पुरुषनें ज्यौंका त्यौं जाण्या है, आत्माकौं तिसकौं न भय होता है, न शोक होता है, न मोह होता है, केवल स्वच्छरूप शांत आत्माविषे स्थित है, भय तब होता है, जब दूसरा भासता है, सो सर्व द्वैतका तिसके अभाव हो जाता है, अरु शांतरूप होता है ॥ हे रामजी! सम्यक्दर्शीकों जगत दुःख नहीं देता अरु असम्यक्दर्शीकों दुःख देता है, जैसे जेवरी होती है, जो जानता है, तिसको जेवरी भासती है, अरु जो नहीं जानता तिसकों सर्प भासता है, अरु भयकों प्राप्त होता है, तैसे जिसकों आत्माका साक्षात्कार है, तिसकों जगतकल्पना कोउ नहीं भासती, चिदानंद ब्रह्म अधिष्ठानरूप भासता है, अरु जिसकों अधिष्ठानका अज्ञान है, तिसकों जगत द्वैतरूप होकरि भासता है, अरु राग दोषविषे जलता है ॥ हे रामजी! अवर जगत कोउ नहीं, इसके अनुभवविषे जगत कल्पना होती है, अज्ञान करिके द्वैतरूप हो भासता है, जब अपणे स्वभावसत्ताविषे जागता है, तब सब अपणां आप भासता है, जैसे स्वप्नविषे अपणा आपही द्वैतरूप हो भासता है, अरु राग दोष उपजता है, जब जागता है, तब सब आत्मरूप हो भासता है, तैसे यह जगत है, न इस जगतका कोउ निमित्त कारण है, न कोउ उपादान कारण है, जो पदार्थ कारणविना भासै सो असत् जाणिएं, वास्तव उपज्या नहीं, भ्रमकरि सिद्ध

हुआ है, जैसे स्वप्नसृष्टि अकारण है, तैसे यह जगत अकारण है, भ्रम करिके भासता है, ॥ हे रामजी! शास्त्रकी युक्तिसाथ विचार करिके देख जो द्वैतभ्रम मिटि जावै, रंचकमात्र भी कछु बन्या नहीं, जैसे आकाशविषे नीलता कछु बनी नहीं, अरु मरुस्थलकी नदी भासती है तैसे यह जगत भी जाण, आत्मा शुद्ध है, अद्वैत है, तिसविषे अहंकृतका फुरणाही दुःख है, अरु दुःखका कारण है, अरु जो स्वरूपका प्रमाद न होवै तौ अहंकृत भी दुःखका कारण नहीं, अरु जो स्वरूप भूला है, तौ अहंकृतादिक दृश्य विषकी वल्ली बढती जाती है, अरु नानाप्रकारके आकारकों धारती है, अरु वासना दृढ होती है, जबलग वासना होती है, तबलग बंध है, जब वासना निवृत्त होवै, तबही कल्याण होता है ॥ हे रामजी! जिस दृश्यकी भावना करता है, सो दृश्य भी कछु भिन्न नहीं, जैसे समुद्रविषे तरंग चक्र होते हैं, सो इतर कछु नहीं, तैसे अहंकार आदिक जो दृश्य है सो है नहीं, जो है नहीं तिसकी इच्छा करणी यही मूर्खता है, अरु ज्ञानवानकी वासना क्षय हो जाती है, जैसे महा अणु होता है, तब आकाशकों ग्रहण करता है, जो आकाशवत् बहुत सूक्ष्म होता है, तैसे ज्ञानवानकी वासना सूक्ष्म होती है, उह वासना उसके बंधनका कारण नहीं होती, काहेतें जो संसारकी सत्यता हृदयविषे नहीं रहती, अरु सत्यता इसकरि नहीं रहती, जो आत्माका साक्षात्कार हुआ है, अरु जब आत्माका प्रमाद है, तब अहंता उदय होती है अरु दृश्य भासती है, जैसे नेत्रके खोलणेकरि दृश्यका ग्रहण करता है, जब नेत्र मुंदि लिये, तब दृश्यरूपका अभाव हो जाता है, तैसे जब अहंता उदय होती है, तब दृश्य भी होती है, जब अहंता नष्ट भई, तब संसारका अभाव हो जाता है ॥ हे रामजी! अज्ञान किसका नाम है, सो सुण, अहंताका उदय होणां, इसीका नाम अज्ञान है, अहंता करिके बंध है, अहंतातें रहित मोक्ष है, आगे जो इच्छा होवै सो करहु ॥ हे रामजी! देह इंद्रियादिक मृगतृष्णाके जलवत् हैं, इनविषे अहंता करणी मूर्खता है, अरु ज्ञानवान् अहंताकों त्यागिकरि आत्मपदविषे स्थित होता है,

संसारके इष्ट अनिष्टविषे हर्ष शोक नहीं करता, जैसे आकाशविषे बदल हुए तौ भी ज्यौंका त्यौं है, तैसे ज्ञानी ज्यौंका त्यौं है, इनविषे अहंकार नहीं, तातें सुखरूप है ॥ हे रामजी ! रूप दृश्य अरु इंद्रियां अरु मन उसके जाते रहते हैं, जैसे वंध्याके पुत्रकी नृत्य नहीं होती, तैसे ज्ञानीके रूप अवलोकन मनस्कार नष्ट हो गये हैं, काहेतें जो सर्व ब्रह्म तिसकों भासता है, द्वैत भावना नष्ट हो गई है, अरु संसारका बीज अहंता ज्ञानीविषे दृढ है ॥ हे रामजी! अहंता करिके इसकी बुद्धि बुरी हो गई है, अर्थ यह जो स्थूल हो गई है, तातें दुःख पावता है, इस दुःखके नाशका उपाय कहता हौं तूं सुण, जो संतजनके वचनोंविषे भावना करणी, अरु विचार करिके हृदयविषे धारणी, इसकरि अहंतारूपी दुःख नष्ट हो जाता है, अरु संतके वचनोंका निषेध करणा इसकों मुक्तिफलके नाश करणेहारा है, अरु अहंतारूपी वैतालके उपजावणे हारा है, तातें संतकी शरणकों प्राप्त होहु, अहंताकों दूर करहु, इसविषे खेद कछु नहीं, यह अपणे आधीन है, अपणा अभाव चिंतवना इसविषे क्या खेद है ॥ हे रामजी ! संतकी संगती द्वारा इसकों बहुत सुगम होता है, जो ज्ञानवान् होवै, इनकी पृथक् पृथक् सेवा करणी, अरु बुद्धिकों बढावणी, तिनके वाक्य श्रवण करिके वचनोंकों एकठा करणा, अरु विचार करिके बुद्धिकों तीक्ष्ण करणी, बुद्धि जब तीक्ष्ण होवैगी, तब अहंतारूपी विषकी वल्लीका नाश करैगी, यह विचार करियें जो मैं कवन हौं, यह जगत क्या है, जब ऐसा विचार करैगा, संत अरु शास्त्रोंके वचनोंकरि निर्णय कियेतें सत् है, सो सत् होता है, अरु असत् है, सो असत् हो जाता है, सत् जाणीकरि आत्माकी भावना करणी, अरु असत् जगत मृगतृष्णाके जलवत् जाणीकरि भावना त्यागणी, जिनकों सुख जाणीकरि भावना पावणेकी करता था, सो दुःखदाई भासते हैं, जैसे मरुस्थलविषे जाणीकरि मृग दौडता है, तौ दुःख पावता है, अधिष्ठानके अज्ञान करिके तैसे अधिष्ठान सबका आत्मतत्त्व है, सो शुद्धरूप परम शांत परमानंद स्वरूप है, जिसकों पायकरि बहुरि दुःखी न होवै ॥ हे रामजी! इसकों

बंधनका कारण भोगकी वासना है, सो भोगकरि शांति नहीं होती, जब संतकी संगती होती है, तब इस का कल्याण होता है, अनात्मविषे अहंभाव छूटि जाता है,अवर प्रकार शांति नहीं होती ॥ हे रामजी ! बालककी नांई हमारे वचन नहीं, हमारा कहणा यथार्थ है, काहेतें जो स्वरूपका भान हमकों स्पष्ट है, जब इसकी अहंता मिटि जावै, तब सुखी होवै, तातें अहंताका नाश करहु, अहंता नाश हुई तब जाणियें जो चैत्यकी भावना मिटि जाती है ॥ हे रामजी ! जब ज्ञानरूपी सूर्य उदय होता है, तब अहंतारूपी अंधकार नष्ट हो जाता है, अरु ज्ञान तब होता है, जब संतका विचार प्राप्त होवै, विषयतें वैराग्य होवै, अरु स्वरूपका अभ्यास करै, इसीकरि स्वरूपकी प्राप्ति होती है ॥ ॥ इति श्रीयोगवासिष्ठे निर्वाणप्रकरणे निर्वाणयुक्त्युपदेशो नाम शताधिकद्विपंचाशत्तमः सर्गः ॥ १५२ ॥ ॥ ॥ ॥ वसिष्ठ उवाच ॥ हे रामजी ! जिन पुरुषनें अपणां अज्ञान नाश नहीं किया, ज्ञानकरिके तिननें कछु करणे योग्य नहीं किया, अज्ञान करिके इसकों अहंभावना होती है, तब आगे जगत भासता है, अरु लोक परलोककी भावना करता है, इसी वासनाकरि जन्म मरणकों पावता है ॥ हे रामजी ! जबलग संसारका शब्द अर्थ इसके हृदयमें दृढ है, तबलग शब्द अर्थके अभावकी चिंतवना करै, जहां इसकों जगत भासता है, तहां ब्रह्मकी भावना करै, जब ब्रह्म भावना करैगा, तब संसारके शब्द अर्थतें रहित होवैगा, अरु आत्मपद भासैगा ॥ हे रामजी ! इस संसारविषे दो पदार्थ हैं, एक इह लोक, दूसरा परलोक, अज्ञानी इस लोकका उद्यम करते हैं, परलोकका नहीं करते, तातें दुःख पावते हैं, अरु तृष्णा मिटती नहीं, अरु जो विचारवान् पुरुष है, सो परलोकका उद्यम करते हैं, सो इहांही शोभा पावते हैं, अरु परलोकविषे भी सुख दुःख पावते हैं, अरु दोनों लोकके कष्ट तिनके मिटि जाते हैं, अरु जो इसी लोकका उद्यम करते हैं, तिनकों दोनोंही दुःखदायक होते हैं, इहां तृष्णा नहीं मिटती, अरु आगे जायकरि नरक भोगते हैं, अरु जिन पुरुषनें आत्म परलोकका

यत्न किया है, तिनकों उही सिद्ध होता है, अरु सुखी होते हैं, अरु जिनने नहीं, यत्न किया सो दुःखी होते हैं, तातें अहंकारसों रहित होणा यही आत्मपदकी प्राप्ति है, जबलग इसकों परिच्छिन्न अहंकार उपजता है, तबलग दुःखी होता है, अरु नाम इसका जीव है, जो कछु फुरता है, तिसकरि विश्वकी उत्पत्ति होती है, जैसे नेत्रके खोलणेकरि रूप भासता है, अरु नेत्रके मुंदणेकरि रूपका अभाव हो जाता है, तैसे जब अहंता फुरती है, तब दृश्य भासती है, अरु जब अहंताका अभाव होवै, तब दृश्यका अभाव हो जाता है, सो अहंता अज्ञानकरि सिद्ध होती है, ज्ञानके उपजेतें निवृत्त हो जाती है ॥ हे रामजी! जब यह पुरुष अपणा प्रयत्न करै, अरु साथही सत् संग करै, इसकरि संसारसमुद्र उतरी जावैगा, इतर नहीं तरता ॥ हे रामजी! युक्ति करिके जैसे विष भी अमृत हो जाती है, तैसे पुरुषार्थकरि सिद्धता प्राप्ति होती है ॥ हे रामजी! इस जीवकों दो व्याधि रोग हैं, इस लोकका, परलोकका, तिसकरि जीव दुःख पावते हैं, जिन पुरुषनें संतसाथ मिलापकरि इसका औषध किया है, सो मुक्तरूप है, अरु जिनने औषध नहीं किया, सो पुरुष पंडित है, तौ भी दुःख पावता है, सो औषध क्या है, शम दम करणा, अरु सतसंग करणा, इन साधनकरि यत्नकरि जिननें आत्मपद पाया है, सो कल्याण मूर्ति है ॥ हे रामजी! चिकित्साका औषध भी यही है, जिननें किया, तिनने किया अरु जिननें न किया, भोगविषे लंपट रहे, उह मूर्ख तहां पडैंगे, जहां फेर किसी औषधकों न पावैंगे, तातें ॥ हे रामजी! इन भोगका त्याग करहु, अरु आत्मविचारविषे सावधान होवहु, यही औषध है ॥ हे रामजी! जिस पुरुषनें मन नहीं जीत्या, सो मूढ है, भोगरूपी चीकडविषे मग्न है, उह आपदाका पात्र है, जैसे समुद्रविषे नदियां प्रवेश करतियां हैं, तैसे आपदा तिसकों प्राप्त होती है, अरु जिसकी तृष्णा भोगतें निवृत्त भई है, अरु वैराग्य उपजा है, सो मुक्ति योगकों प्राप्त होता है, जैसे जीणेकी आदि बालक अवस्था है, तैसे निर्वाण पदकी आदि वैराग्य है ॥ हे रामजी! यह संसार

मिथ्या है, भ्रमकरि भासता है, जैसे दूसरा चंद्रमा भ्रमकरि भासता है, अरु संकल्प नगर भ्रममात्र होता है, अरु मृगतृष्णाका जल भ्रमकरि भासता है, तैसे यह जगत भ्रमकरि भासता है, संसारका बीज अहंता है, जब अहंता उदय हुई तब रूप अवलोक भासते हैं, तातें यही चिंतवना कर जो मैं नहीं, जब येहि भावना करैगा, तब शेष जो रहैगा, सो तेरा शांतरूप है, जिसविषे आकाश भी शून्य है; केवल आत्मत्व मात्र है, अहंके उत्थानतें रहित है, अरु जड अजड है, अरु जडताका अभाव है, तातें अजड है, केवल ज्ञानमात्र है, अरु विश्व तिसविषे ऐसे है, जैसे जलविषे तरंग होते हैं, अरु जैसे पवनविषे स्पंद होता है, अरु आकाशविषे जैसे शून्यता है, तैसे आत्माविषे जगत है, सो आत्मातें इतर कछु नहीं, जो कछु आत्मातें इतर होता, तौ प्रलयविषे नाश हो जाता सो प्रलयकालविषे भी रहता है, जैसे सूर्यकी किरणविषे जलाभास सदा रहता है, तैसे आत्माविषे विश्वका चमत्कार रहता है, जैसे स्वप्न सृष्टि अनुभव होती है, तैसे यह जाग्रत सृष्टि भी अनुभवरूप है, सो आत्मा अंतर बाहिरतें रहित है, अरु शुद्ध है, अद्वैत है, अजर है, अमर है, चैत्यतें रहित चेतन है, अरु सर्व शब्द अर्थका अधिष्ठान उही है, फुरणे करिके दूसरा भासता है, अरु फुरणा अफुरणा उही है, जैसे चलणा ठहरणा दोनों पवनके रूप हैं, जब चलता है, तब भासता है, जब ठहरता है, तब नहीं भासता, तैसे जब चित्तशक्ति फुरती है, तब विश्वरूप होकरि भासती है, जब अफुर होती है, तब केवलमात्र पद रहता है, सो निराभास है, अविनाशी अरु निर्विकल्प है, अरु सबका अपणा आप है, अरु सत् असत् जड चेतन आदिक शब्द अर्थ सब उसी अधिष्ठान सत्ताविषे फुरते हैं, इतर कछु नहीं, तातें उसी अपणे स्वरूपविषे स्थित होहु, जो परमार्थ सत्ता आत्मतत्त्व अपणे स्वभावविषे स्थित है, अहं त्वंतें रहित केवल आकाशरूप सबका अधिष्ठान है, तिसीविषे स्थित होहु ॥ ॥ इति श्रीयोगवासिष्ठे निर्वाणप्रकरणे शांतिस्थितियोगोपदेशो नाम शताधिकत्रिपंचाशत्तमः सर्गः ॥ १५३ ॥ ॥ ॥ वसिष्ठ उवाच ॥

हे रामजी! जिनकों दुःख सुख चलावते हैं, इंद्रियके इष्टविषे सुखी होते हैं, अरु अनिष्टविषे दुःखी होते हैं, राग दोषके आधीन वर्त्तते हैं, तिनकों ऐसे जाण जो नष्ट हुए हैं, जिनका पुरुषप्रयत्न नष्ट हुआ है, सो वारंवार जन्मकों पावैंगे, अरु जिनकों सुख दुःख नहीं चलावते, तिनकों अविनाशी जाण, वह जन्ममरणके फांसेतें मुक्त हुए हैं, तिनकों शास्त्रका उपदेश नहीं है॥ हे रामजी! राग दोष तब फुरता है, जब मनविषे इच्छा होती है, अरु इच्छा तब होती है, जब संसारकी सत्यता दृढ होती है, जिसकों असत्य जाणता है तिसकों बुद्धि नहीं ग्रहण करती, अरु इच्छा भी नहीं होती, अरु जिसकों सत्य जाणता है, तिसविषे बुद्धि दौडती है॥ हे रामजी! अज्ञानीकों संसार सत्य भासता है, तिसकरि दुःख पावता है, जब शांतपदका यत्न करै, तब दुःखतें मुक्त होवै, शांतपद कैसा है, जिसविषे अहं त्वं अरु जगत ब्रह्म इह शब्द कोउ नहीं, केवल चिन्मात्र आकाशरूप है, तिसविषे अहं त्वं जगत ब्रह्म शब्द कैसे होवै, यह शब्द सब विचारके निमित्त कहे हैं, वास्तवतें शब्द कोउ नहीं, अद्वैत चैत्यतें रहित चिन्मात्र है, जब सर्व शब्दका बोध किया, तब शेष शांतपद रहता है, अभावतें नहीं, इसीतें आत्मत्वमात्र कहा है, अरु जगत फुरणेकरि उसीविषे भासता है, तिस जगतविषे जहां ज्ञप्ति जाती है, तिसका ज्ञान इसकों होता है॥ हे रामजी! एक अधिष्ठान ज्ञान है, अरु एक ज्ञप्तिज्ञान है, अधिष्ठानज्ञान सर्वज्ञ है, सो ईश्वरकों है, अरु ज्ञप्तिज्ञान जीवकों है, एक लिंगशरीरका जिसकों अभिमान है, सो जीव है, अरु सर्व लिंगशरीरका अभिमानी ईश्वर है, जहां इस जीवकी ज्ञप्ति पहुंचती है, तिसकों जानता है, जैसे एक शय्यापर दो पुरुष सोय होवैं, एककों स्वप्न आया तिसविषे मेघ गर्जते हैं, अरु दूसरा सोया है तिसकों मेघका शब्द सुणीता नहीं, काहेतें जो ज्ञप्ति उसकेविषे नहीं आई, परंतु मेघ तौ उसके स्वप्नमें है, जैसे सिद्ध विचरते हैं, अरु इसकों दृष्ट नहीं आते, काहेतें जो इसकी ज्ञप्ति नहीं जाती, अरु सब सृष्टि वसती है, तिसका ज्ञान ईश्वरकों है, सो सृष्टि भी संकल्पमात्र है,

कछु बनी नहीं, भ्रम करिके भासती है, जैसे बदलविषे हस्ति घोडा मनुष्य आदिक विकार भासते हैं, सो भ्रांति मात्र है, तैसे आत्माके अज्ञानकरि यह सृष्टि भासती है, नानाप्रकारकी ॥ हे रामजी ! यह आश्चर्य है, जो आत्माविषे अहंका उत्थान होता है, जो मैं हौं, ऐसे जानता है, अरु वर्णाश्रम अपणेकों मानता है, अरु विचारकरि देखियें तौ अहं कछु वस्तु नहीं सिद्ध होती, अरु अहं अहं फुरती है, यह आश्चर्य है, जो भूत कहांतें उठ्या है, शुद्ध आत्मब्रह्मविषे यह कैसे हुआ है, अनहोते अहंकारनें तुमकों मोहित किया है, इसके त्यागणेविषे तौ यत्न कछु नहीं, इसका त्याग करहु ॥ हे रामजी ! मिथ्या यह संकल्प उठा है, जब अहंकारका उत्थान होता है, तब जगत होता है, जब अहंता मिटि जावै, तब जगतका भी अभाव हो जाता है, काहेतें जो बन्या कछु नहीं भ्रममात्र है, जैसे संकल्प नगर भ्रममात्र है, अरु स्वप्नसृष्टि भ्रम मात्र है, तैसे यह विश्व भी भ्रममात्र है, कछु बनी नहीं, अरु आत्मस्वरूप है, इतर कछु नहीं, जैसे पवन के दो रूप हैं, चलता है, तौ भी पवन है, ठहरता है, तौ भी पवन है, तैसे विश्व भी आत्मस्वरूप है, जैसे पवन चलता है, तब भासता है, अरु ठहरि जाता है, तब नहीं भासता, तैसे चित्त चैत्यशक्तिका चमत्कार है, जब फुरता है, तब विश्व भासती है, तौ भी चिद्धन है, जब ठहरि जाता है, तब विश्व नहीं भासती, परंतु आत्मा सदा एकरस है, जैसे जलविषे तरंग होते हैं, जैसे सुवर्णविषे भूषण होते हैं, सो इतर कछु हुआ नहीं, तैसे आत्माविषे विश्व इतर कछु हुई नहीं, आत्मस्वरूप है, ज्ञप्ति भी ब्रह्म है, अरु ज्ञप्तिविषे फुरी विश्व भी ब्रह्म है, विधिनिषेध अरु हर्षशोक किसका करियें, सर्व उही है ॥ हे रामजी ! संकल्पकों स्थित करिके देख, जो सब तेराही स्वरूप है, जैसे पुरुष शयन करता है, उसकों स्वप्न सृष्टि भासती है, जब जागता है, तब देखता है, सब मेराही स्वरूप है, तैसे जाग्रत विश्व भी तेरा स्वरूप है, जैसे समुद्रविषे तरंग उठतें हैं, सो जलरूप हैं, तैसे विश्व आत्मस्वरूप है, जैसे चितेरा काष्ठविषे कल्पता है, जो एती पुतलियां नि

कसैगियां, अरु जैसे मृत्तिकाविषे कुंभार घटादिक कल्पता है, जो एते पात्र बनैंगे, काष्ठ मृत्तिकाविषे तौ कछु नहीं, ज्यौंका त्यौं काष्ठ है, अरु ज्यौंकी त्यौं मृत्तिका है, परंतु उनके मनविषे आकारकी कल्पना है, तैसे आत्माविषे संसाररूपी पुतलियां मन कल्पता है, जब मनका संकल्प निवृत्त हो जावै, तब ज्यौंका त्यौं आत्मपद भासै, जैसे तरंग जलरूप हैं, जिसकों जलका ज्ञान है, सो तरंग भी जलरूप जानता है, अरु जिसकों जलका ज्ञान नहीं, सो भिन्न भिन्न तरंगके आकार देखता है, तैसे जब निःसंकल्प होकरि स्वरूपकों देखै, तब फुरणेविषे भी आत्मसत्ता भासैगी, अहं त्वं आदिक सब जगत ब्रह्मस्वरूपही है, तौ भ्रम कैसे होवै, अरु किसकों होवै, सब विश्व आत्मस्वरूप है, सो आत्मा निरालंब है, आलंबरूप जो चैत्य है अहंकार, तिसतें रहित है, केवल आकाशरूप है, जब तूं तिसविषे स्थित होवैगा, तब नानाप्रकारकी भावना मिटि जावैगी, नानाप्रकारकी भावना जगतविषे फुरती है, अरु जगतका बीज अहंता है, जब अहंता नाश होवै, तब जगतका भी अभाव हो जावैगा ॥ हे रामजी ! अहंताका फुरणाही बंधन है, अरु निरहंकार होणा मोक्ष है, एक चित्तबोध है, अरु एक ब्रह्मबोध है, चित्तबोध जगत है, अरु ब्रह्मबोध मोक्ष है, चित्तबोध अहंताका नाम है, जबलग चित्तबोध फुरता है, तबलग संसार है, अरु जब चित्तका अभाव होवै तब मुक्त होवै, इस चित्तके अभावका नाम ब्रह्मबोध है ॥ हे रामजी ! जैसे पवन फुरता है, तैसे ब्रह्मविषे चित्तबोध है, अरु जैसे पवन ठहरि जाता है, तैसे चित्तका ठहरणा ब्रह्मबोध है, जैसे फुर अफुर दोनों पवनही है, तैसे चित्तबोध है, ब्रह्मबोध ब्रह्मही इतर कछु नहीं, हमकों तौ ब्रह्मही भासता है, चेतन मात्र शांतरूप है, अरु अपणे स्वभावविषे स्थित है, जिसकों अधिष्ठानका ज्ञान होता है, तिसकों निवृत्त भी उही रूप भासता है, अरु जिसकों अधिष्ठानका ज्ञान नहीं, तिसकों भिन्न भिन्न जगत भासता है, जैसे एक बीजविषे पत्र टास फूल फल भासते हैं, अरु जिसकों बीजका ज्ञान नहीं, तिसकों भिन्न भिन्न भासते हैं ॥ हे रामजी ! हमकों अधिष्ठान आत्मतत्त्वका ज्ञान है, ता

तें सब विश्व आत्मस्वरूप भासती है, अरु अज्ञानीकों नानाप्रकारकी विश्व भासती है, जन्म अरु मृत्यु भासते हैं ॥ हे रामजी ! सब शब्द आत्मतत्त्वविषे फुरते हैं,सर्वका अधिष्ठान आत्मा है, निराकार निर्विकार है, अरु शुद्ध है, सबका अपणा आप है, तातें सब विश्व आकाशरूप है, इतर कछु हुई नहीं, जैसे तरंग जलरूप हैं, तैसे विश्व आत्मस्वरूप है, अरु चित्त जो फुरता है, तिसके अनुभव करणेहारी चेतनसत्ता है, सो ब्रह्म है, अरु तेरा स्वरूप भी उही है, तातें अहं त्वं आदिक जगत सब ब्रह्मरूप है, संशयकों त्यागिकरि अपणे स्वरूपविषे स्थित होहु, अरु पाछे तुमकों कहा है, द्वैत अद्वैत सब उपदेशमात्र है, एक चित्तकी वृत्तिकों स्थित करिके देख, सब ब्रह्म है, इतर कछु नहीं, निषेध किसका करियें ॥ हे रामजी ! चित्तकी दो वृत्ति ज्ञानवान कहते हैं, एक मोक्षरूप है, एक बंधरूप है, जो वृत्ति स्वरूपकी उर फुरती है, सो मोक्षरूप है, जो दृश्यकी उर फुरती है, सो बंधरूप है, जो तुमकों शुद्ध भासती है, सोइ करहु, अरु जो द्रष्टा है, सो दृश्य नहीं होता, अरु जो दृश्य है, सो द्रष्टा नहीं होता,आत्मा तौ अद्वैत है, तातें द्रष्टाविषे दृश्य पदार्थ कोउ नहीं, तुम क्यों दृश्यकी उर फुरते हौ, अनहोती दृश्यकों ग्रहण क्यों करते हौ, अरु द्रष्टा भी तेरा नाम दृश्यकरि होता है, जब दृश्यका अभाव जाण्या, तब अवाच्य पद है, तिसकों वाणीकरि कछु कह्या नहीं जाता ॥ हे रामजी ! जैसे अंगी अरु अंगवालेविषे भेद कछु नहीं, जैसे आकाश अरु शून्यताविषे भेद कछु नहीं, जैसे जल अरु द्रवताविषे भेद कछु नहीं, बरफ अरु शीतलताविषे भेद कछु नहीं, तैसे ब्रह्म अरु जगतविषे भेद कछु नहीं, कोउ जगत कहै, अथवा ब्रह्म कहै, एकही पर्याय है, जगतही ब्रह्म है, ब्रह्मही जगत है, तातें आत्मपदविषे स्थित होहु, भ्रम करिके आपकों कछु अवर मानते हैं, तिसकों त्यागिकरि ब्रह्महीकी भावना करहु, अरु आपकों मनुष्य कदाचित् नहीं जानणा, जो आपकों मनुष्य जाणैगा तौ यह निश्चय अधोगतिकों प्राप्त करणेहारा है, तातें अधोगतिकों मत प्राप्त होहु, अपणे स्वरूपविषे स्थित होहु ॥ ॥ इति श्रीयोगवा

सिष्ठे निर्वाणप्रकरणे परमार्थयोगोपदेशोनाम शताधिकचतुःपंचाशत्तमः सर्गः ॥ १५४ ॥ ॥ ॥
वसिष्ठ उवाच ॥ हे रामजी ! देशतें देशांतरकों वृत्ति जब जाती है, तिसके मध्य जो संवितत्त्व है, तिसकों जो अनुभव करता है, सो तेरा स्वरूप है, तिसविषे स्थित होहु, अरु जैसी चेष्टा आवै तैसी करहु, देख, सुण, स्पर्श कर, गंध ले, बोल, चाल, हसहु, सब क्रिया करहु, परंतु इनके जानणेवाली जो अनुभवसत्ता है, तिसविषे स्थित होहु, यह जाग्रताविषे सुषुप्ति है, चेष्टा शुभ करहु, अरु अंतरतें पत्थरकी शिलावत् होहु, फुरणेतें रहित ॥ हे रामजी ! तेरा स्वरूप निराभास है, भास जो दृश्य है, तिसतें रहित है, अरु निर्मल शांतरूप है, तिसविषे स्थित होहु, जैसे सुमेरु पर्वत स्थित है, तैसे होहु, यह दृश्य अज्ञानकरिके भासती है, तमरूप है, अरु आत्मा सदा प्रकाशरूप है, तिस प्रकाशविषे अज्ञानीकों तम भासती है, जैसे सूर्य सदा प्रकाशरूप है, अरु उलूककों नहीं भासता है, अज्ञानकरिके तमही भासती है, तैसे अज्ञानीकों अविद्यारूप जगत भासता है, सो अविचारतें सिद्ध है, अविद्या करिके इसकी विपर्यय दृष्टि हुई है, इसका वास्तव स्वरूप निर्विकार है, जो जायते अस्ति वर्धते परिणमते विपक्षीयते नश्यते इन षट् विकारतें रहित है, तातें निर्विकार है, तिसकों विकारी जानता है, आत्मा निर्विकार निराकार है, तिसकों साकार जानता है, आत्मा आनंदरूप है, तिसकों दुःखी जानता है, आत्मा शांतरूप है, तिसकों अशांत जानता है, आत्मा महत् है, तिसकों लघु जानता है, आत्मा पुरातन है, तिसकों उपजा मानता है, आत्मा सर्वव्यापक है, तिसकों परिच्छिन्न मानता है, आत्मा नित्य है, तिसकों अनित्य देखता है, आत्मा चैत्यतें रहित शुद्ध चिन्मात्र है, यह चैत्य संयुक्त देखता है, आत्मा चेतन है, यह जड देखता है, आत्मा अहंतें रहित सदा अपणे स्वभावविषे स्थित है, यह अनात्म अहंकारविषे अहंप्रतीति करता है, आत्माविषे अनात्मभावना करता है, अरु अनात्मविषे आत्मभावना करता है, आत्मा निर

वयव है, तिसकों अवयवी देखता है, आत्मा अक्रिय है, तिसकों सक्रिय देखता है, आत्मा निरंश है, तिसकों अंशांशी भावकरि देखता है, आत्मा निरामय है, तिसकों रोगी देखता है, आत्मा निष्कलंक है, तिसकों कलंकसहित देखता है, आत्मा सदा प्रत्यक्ष है, तिसकों परोक्ष जानता है, अरु जो परोक्ष है, तिसकों प्रत्यक्ष जानता है ॥ हे रामजी ! इत्यादिक जो विकार हैं, सो आत्माविषे अज्ञानकरिके देखता है; आत्मा शुद्ध है, अरु सूक्ष्मतें सूक्ष्म है, अरु स्थूलतें स्थूल है, अरु वडेतें बडा है, लघुतें लघु भी है, सर्व शब्द अरु अर्थका अधिष्ठान है ॥ हे रामजी! ब्रह्मरूपी एक डब्बा है, तिसविषे जगतरूपी रत्न हैं, पर्वत अरु वनसहित भी जगत दृष्ट आता है, परंतु आत्माके निकट रुइके लोम जैसा लघु है, आत्मरूपी वन है, तिसविषे संसाररूपी मंजरी उपजी है, सो कैसी मंजरी है, पांचों तत्त्व पृथ्वी आप तेज वायु आकाश इसके पत्र हैं, तिनकरिके शोभती है, सो अहंताके उदय हुए उदय होती है, अरु अहंताके नाश हुए नाश होती है, अरु आत्मरूपी समुद्र है, तिसविषे जगतरूपी तरंग हैं, सो उठते भी हैं, अरु लीन भी हो जाते हैं, अरु आत्माकाशविषे संसार भ्रममात्र है, आकाश वृक्षकी नांई है, आत्माके प्रमादकरि भासता है ॥ हे रामजी ! मायारूपी चंद्रमा है, तिसकी किरणां जगत है, अरु नीति शक्ति नृत्य करणेहारी है, सो तीनों अविचारसिद्ध हैं, विचार कियेतें शांत हो जाते हैं, जैसे दीपक हाथविषे लेकरि अंधकार देखियें तौ दृष्ट नहीं आता, तैसे विचारकरि देखियें तौ जगतका अभाव हो जाता है, केवल शुद्ध आत्माही प्रत्यक्ष भासता है ॥ हे रामजी ! जगत कछु बन्या नहीं, जैसे किसीनें बरफ कही, किसीनें शीतलता कही, तिसविषे भेद नहीं, तैसे आत्मा अरु जगतविषे भेद कछु नहीं, अरु भेद जो भासता है, सो भ्रममात्र है, जैसे तंतु अरु पटविषे भेद कछु नहीं, तैसे आत्मा अरु जगत है ॥ हे रामजी ! आत्मरूपी रंगविषे जगतरूपी चित्र पुतलियां हैं अरु आत्मरूपी समुद्रविषे जगतरूपी तरंग हैं, सो जलरूप हैं, तैसे आत्मा अरु जगतविषे भेद कछु नहीं, आत्मरूप

ही है, आत्मातें इतर कछु बन्या नहीं, जिसकरि सर्व पदार्थ सिद्ध होते हैं, अरु जिसकरि सर्व क्रिया सिद्ध होती हैं, जो अनुभवरूप सदा अप्रौढ है, तिसकों प्रौढ जानणा यही मूर्खता है ॥ हे रामजी! यह विश्व तेरा ही स्वरूप है, तूं जागिकरि देख, तूंही खडा है, अरु स्वच्छ आकाश सूक्ष्म प्रत्यक् ज्योति अपणे आपविषे स्थित है ॥ इति श्रीयोगवासिष्ठे निर्वा० परमार्थयोगोपदेशो नाम शताधिकपंचपंचाशत्तमः सर्गः ॥ १५५ ॥

॥ वसिष्ठ उवाच ॥ हे रामजी! रूप अवलोकन मनस्कार यह तीनों संसार हैं, सो ज्ञानवानकों भ्रम मात्र भासते हैं, वास्तव कछु नहीं, मिथ्या है, जैसे जलविषे लहरी तरंग उठते हैं, सो जलरूप हैं, तैसे आत्माविषे रूप अवलोकन मनस्कार फुरते हैं, सो सब आत्मरूप हैं, इतर कछु नहीं ॥ हे रामजी! यह शुद्ध परमात्माका चमत्कार है, अरु आत्मा दृश्यतें रहित है, शुद्ध है, चिन्मात्र है, निर्मल है, अद्वैत है, तिसविषे जगत कछु बन्या नहीं, हमकों तौ सदा उही भासता है, जगत कछु नहीं भासता, जैसे कोउ आकाशविषे नगर कल्पता, अरु सब रचना तिसविषे देखता है सो उसके हृदयविषे दृढ हो जाती है, अरु जो संकल्पकी सृष्टिकों मिथ्या जानता है, तिसकों शून्याकाशही भासता है, तैसे यह विश्व मूर्खके हृदयविषे दृढ भई है, अरु ज्ञानवानकों आत्मस्वरूपही भासता है, जैसे माटीके खिलोनें सैना होती है, हस्ति घोडा आदिक दृष्ट आते हैं, तिसविषे उह राग दोष नहीं करता, जिसकों माटीका ज्ञान है, अरु बालक माटीके ज्ञानतें रहित है, तिसविषे रागदोष करते हैं, तैसे ज्ञानवान इस जगतविषे रागदोष नहीं करते, अरु अज्ञानी रागदोष करते हैं, जैसे खिलोनेंविषे सारभूत मृत्तिका होती है, तैसे इस जगतविषे सारभूत चेतन आत्मा है, जो कछु पदार्थ भासते हैं सो आत्माका निवृत्त है, मिथ्याही भ्रमकरि सिद्ध हुए हैं, जो वस्तु मिथ्या भ्रममात्र होवै, तिसविषे सुखके निमित्त इच्छा करणी यही मूर्खता है ॥ हे रामजी! हमकों तौ इच्छा कछु नहीं, काहेतें जो हमकों जगत मृगतृष्णाके जलवत् भासता है, तातें इच्छा किसकी करैं, जिसविषे सत्य प्रतीति होती है, तिसविषे

इच्छा भी होती है, जो सत्यही न भासै तौ इच्छा कैसे करि होवै ॥ हे रामजी ! इच्छाही वंधन है, अरु इच्छातें रहित होणा इसीका नाम मुक्ति है, तातें ज्ञानवानकों इच्छा कछु नहीं रहती, अनिच्छितही चेष्टा होती है, जैसे सूका बांस होता है, तिसके अंतर वाहिर शून्य होती है, संवेदन उसकों कछु नहीं फुरती, तैसे ज्ञानवानके अंतःकरणविषे अरु वाह्यकारणविषे भी शांति होती है, अंतःकरणविषे संकल्प कोउ नहीं उठता, अरु वाह्यविषे भी उपाधि कोउ नहीं, निःसंकल्प निरुपाधि चेष्टा उसकी होती है ॥ हे रामजी ! जिस पुरुषके अंतरतें संसारका रस सूकि गया है, सो संसारसमुद्रतें पार हुआ है, ऐसे जाण, अरु जिसका रस नहीं सूकि गया, तिसकों रागदोष फुरते हैं, इष्ट अनिष्टकरिके, तव संसार वंधनविषे जाण ॥ हे रामजी ! मैं तुझकों ऐसी समाधि कहता हौं जो सुखेनही प्राप्त होवै, अरु जिसकरि मुक्ति होवै सो श्रवण करु, सर्व इच्छातें रहित होणा यही परम समाधि है, जिस पुरुषकों इच्छा फुरती है, तिसकों उपदेश भी नहीं लगता, जैसे आरसी उपर मोती नहीं ठहरता, तैसे उसके हृदयपर उपदेश नहीं ठहरता, अरु इसकों इच्छाही दीन करती है, अरु इच्छातें रहित हुआ तव शांतरूप होता है, वहुरि इसकों शांतिके निमित्त कर्तव्य कछु नहीं रहता ॥ हे रामजी ! हम तौ निरिच्छित हैं, हमकों अंतर वाहिर शांति है, हमकों कर्तव्य करणे योग्य कछु नहीं, जो कछु प्रारब्ध तिसकरि चेष्टा होती है रागदोषतें रहित, वोलते हैं, परंतु बांसरीकी नांई जैसे बांसरी वोलती है, अहंकारतें रहित, तैसे ज्ञानवान अहंकारतें रहित है, अरु स्वादकों ग्रहण करते हैं, परंतु कडछीकी नांई; जैसे कडछीकों सर्व व्यंजनविषे पाइता है, अरु तिसीद्वारा सब निकास पाइते हैं, परंतु उसकों रागदोष कछु नहीं फुरता, जो यह होवै, यह न होवै, तैसे ज्ञानवान स्वादकों लेता है, अनिच्छितही, अरु गंध भी लेता है, पवनकी नांई, जैसे पवन भली बुरी गंधकों लेता है, परंतु रागदोषतें रहित है, तैसे ज्ञानवान रागदोषकी संवेदनतें रहित गंधकों लेता है, इसी प्रकार सर्व इंद्रियांकी चेष्टा करता है, परंतु

इच्छातें रहित होता है, इसीतें परम सुखरूप है, अरु जिसकी चेष्टा इच्छासहित है, सो परम दुःखी है ॥ हे रामजी! जिस पुरुषकों भोग रस नहीं देते सो सुखी है, अरु जिसकों रस देते हैं, रागकरि तृष्णा बढती जाती है, तिसकों ऐसे जाण जैसे किसीके मस्तक उपर अग्नि लगै, तिस उपर तृण डारे बुझावणे निमित्त, तब उह बूझती नहीं, बढती जाती है, तैसे विषयकी इच्छा भोगणेकरि तृप्त नहीं होणेकी, सो इच्छाही बंधन है, इच्छाके निवृत्तिका नाम मोक्ष है ॥ हे रामजी! संसाररूपी विषका वृक्ष है, तिसका बीज इच्छा है, जिसकी इच्छा बढती जाती है, तिसका संसार बढता जाता है, तिसकरि वारंवार जन्म अरु मृतक होता है ॥ हे रामजी! ऐसा सुख ब्रह्माके लोकविषे भी नहीं, जैसा सुख इच्छाकी निवृत्तिविषे है, अरु ऐसा दुःख नरकविषे भी नहीं, जैसा दुःख इच्छाके उपजावणेविषे है, इच्छाके नासका नाम मोक्ष है, अरु इच्छाके उपजणेका नाम बंधन है, जिस पुरुषकों इच्छा उत्पन्न होती है, सो दुःखकों पावता है, संसाररूपी गरत खातविषे पडता है, अरु इच्छारूपी विषकी वल्ली है, तिसकों समतारूपी अग्निकरि जलाहु; सम्यक् दर्शनकरि जलाए विना बडे दुःखकों प्राप्त करैगी, अरु बढि जावैगी ॥ हे रामजी! जिस पुरुषनें इच्छा दूर करणेका उपाय नहीं किया, तिसनें अंधे कूपविषे प्रवेश किया है, शास्त्रका श्रवण भी इसी निमित्त है, जो किसी प्रकार इच्छा निवृत्त होवै, अरु तपदान यज्ञ भीइसी निमित्त है, जो किसी प्रकार इच्छा निवृत्त होवै, जो एकही वार निवृत्त करि न सकियें, तौ क्षणे क्षणे निवृत्त करियें ॥ हे रामजी! यह विषकी वल्ली बढी हुई दुःख देती है, जो पुरुष शास्त्रोंकों पढता भी है, अरु इच्छाकों बढावता भी है, सो दीपक हाथ लेकरि कूपविषे गिरता है, अरु इच्छारूपी कंटीआरीका बुंटा है, जिसकों सर्वदा कंटक लगे रहते हैं, तिसविषे सुख कदाचित् नहीं, जो पुरुष कांटेकी शय्यापर शयन करै, अरु सुखी हुआ चाहै तौ नहीं होता, तैसे असारकरि कोउ सुख पाया चाहै तौ कदाचित् नहीं होवैगा, जिसकरि इच्छा निवृत्त होवै सोइ उपाय किया चाहिये, इच्छा

के निवृत्त होणेविषे सुख है, अरु इच्छाके उत्पन्न होणेविषे वडा दुःख है ॥ हे रामजी! जो अनिच्छित पदविषे स्थित हुआ है, तिसकों जब यह क्षण भी इच्छा उपजती है, तब रुदन करता है, जैसे चोरतें लुंटा रुदन करता है, तैसे उह रुदन अरु पश्चात्ताप करता है, अरु तिसके नाश करणेका उपाय करता है ॥ हे रामजी! इच्छारूपी क्षेत्र है, अरु राग दोषरूपी तिसविषे विपकी वल्ली हैं, जो पुरुष तिसके दूर करणेका उपाय न हीं करता, सो मनुष्यविषे पशु है, यह इच्छारूपी विपका वृक्ष बढ्या हुआ नाशका कारण है, तातें तुम इ सका नाश करहु ॥ ॥ इति श्रीयोगवासिष्ठे निर्वाणप्रकरणे इच्छानिषेधयोगोपदेशो नाम शताधिकपट्पं चाशत्तमः सर्गः ॥ १५६ ॥ ॥ वसिष्ठ उवाच ॥ हे रामजी! इच्छारूपी विपके नाश करणेका उपाय तुमकों आगे भी कहा है, अब बहुरि स्पष्टकरि कहता हौं, तूं श्रवण करु, इच्छाके त्याग करणे योग्य संसार है, सो मि थ्या है, आत्मसत्ता भिन्न करियें तौ मिथ्या है, जो मिथ्या हुआ तौ तिसविषे इच्छा करणी क्या है, अरु जो आत्माकी उर देखियें तौ सर्व आत्माही है, जब सर्व आत्माही हुआ तौ इच्छा करणी क्या है, इच्छा दूसरेविषे होती है, सो दूसरा कछु है नहीं, इच्छा किसकी करियें ॥ हे रामजी! द्रष्टा दृश्य भी मिथ्या है, दृष्टि कहियें इंद्रियां दृश्य कहियें विषय, सो ग्राहक इंद्रियां हैं, अरु ग्राह्य विषय हैं, अविचार सिद्ध हैं, भ्रम करिके भासते हैं, आत्मा विषे कोउ नहीं, जैसे स्वप्नविषे भ्रम करिके रूप भासते हैं, यह ग्राह्य ग्राहक भ्रम करिके भासते हैं, अरु सुख दुःख भी इनहीकरि होता है, आत्माविषे कोउ नहीं, भ्रमकरि भासता है ॥ हे रामजी! द्रष्टा दर्शन दृश्य तीनों ब्रह्मविषे कल्पित हैं, वास्तवतें ब्रह्मही है, चिरकाल हम खोजि रहे हैं, परंतु द्वैत हमकों कछु दृष्ट नहीं आता, एक ब्रह्मसत्ताही ज्योंकी त्यों भासती है, अरु निराभास है, फुरणेतें रहित ज्ञानरूप है, आकाशतें भी सूक्ष्म है, अरु सर्व जगत भी हुई है, सो मैं हों ॥ हे रामजी! जैसे जलविषे तरंग होता है, अरु आकाशविषे शून्य ता है, अरु जैसे पवनविषे चलना है, अग्निविषे उष्णता है, सो सबही अनन्य रूप है, तैसे आत्माविषे ज

गत अनन्यरूप है, आत्माही विश्व आकार होकरि भासता है, अवर कछु हुआ नहीं ॥ हे रामजी! जो हुई है, तौ इच्छा किसकी करता है, यह जो मैं तुझकों मोक्ष उपाय कहता हौं, तूं आपकों क्यौं बंधन करता है, बडा बंधन इच्छाही है, जिस पुरुषकों इच्छा बढती जाती है, सो जगतरूपी बनका मृग है, तिस मृग अरु पशुका संग कदाचित् नहीं करणा, मूर्खका संग बुद्धिकों विपर्यय करि डारता है, तातें विपर्यय बुद्धि कों त्यागिकरि आत्मपदविषे स्थित होहु, अरु विश्व भी सब तेरा अनुभवरूप है, अरु इसका सुख दुःख विद्यमान भी देखीता है, परंतु आत्माविषे भ्रममात्र भासता है, कछु है नहीं, विश्व भी आनंदरूप शिवही है, तूं विचारि देख; दूसरा तौ कछु है नहीं, जैसे मृत्तिकाविषे नानाप्रकारकी सैना हस्ति घोडा आदिक होती है, परंतु मृत्तिकातें इतर कछु नहीं, तैसे सब विश्व आत्मरूप है, इतर कछु नहीं, तिसविषे कारण कार्य भाव देखणा भी मूर्खता है, जो दूसरी वस्तुही नहीं तौ कारण कार्य किसका होवै, बहुरि इच्छा किसकी करता है, जिस संसारकी इच्छा करता है, सो है नहीं, जैसे सूर्यकी किरणांविषे जलाभास होता है, अरु सीपी विषे रूपा भासता है, सो दूसरी कछु वस्तु नहीं, अधिष्ठान किरणां अरु सीपि हैं, तैसे अधिष्ठानरूप परमार्थ सत्ताही है, न सुख है, न दुःख है, केवल यह जगत शिवरूप है, तिस शिव चिन्मात्रतें अन्य कछु नहीं, मृत्तिकाकी सैनावत, तौ इच्छा कैसे उदय होवै ॥ राम उवाच ॥ हे मुनीश्वर! जो सर्व ब्रह्महीहै, तौ इच्छा अनिच्छा भी भिन्न नहीं, इच्छा उदय होवै, भावै न होवै, बहुरि तुम कैसे कहते हौ जो इच्छाका त्याग करहु?॥ वसिष्ठ उवाच ॥ हे रामजी! जिस पुरुषकी ज्ञप्ति जागी है, अर्थ यह जो ज्ञानरूप आत्माविषे जाग्या है, तिसकों सर्व ब्रह्मही है, इच्छा अनिच्छा दोनों तुल्य हैं, इच्छा भी ब्रह्म है, अनिच्छा भी ब्रह्म है ॥ हे रामजी! ज्यौं ज्यौं ज्ञानसंवित् होती है, त्यौं त्यौं वासना क्षय होती है, जैसे सूर्यके उदय भए रात्रि नष्ट हो जाती है, तैसे ज्ञानके उपजेतें वासना नहीं रहती॥ हे रामजी! ज्ञानवानकों ग्रहण त्यागकी कर्तव्य नहीं, इच्छा अनिच्छा

तिसकों तुल्य हैं, यद्यपि ऐसेही है परंतु स्वाभाविकही वासना तिसकों नहीं रहती, जैसे सूर्यके उदय हुए अंधकार नहीं रहता, तैसे आत्माके साक्षात्कार हुए द्वैत वासना नहीं रहती, ज्यौं ज्यौं ज्ञानकला जागती है, त्यौं त्यौं द्वैत नाश हो जाता है, द्वैतके निवृत्त होणेकरि वासना भी निवृत्त हो जाती है ॥ हे रामजी! ज्यौं ज्यौं स्वरूपानंद इसकों प्राप्त होता है, त्यौं त्यौं संसार विरस होता जाता है, जब संसार विरस हो गया, तब वासना किसकी करै ॥ हे रामजी! अमृतविषे इसकों विषकी भावना भई थी, तब अमृत विष भासता था, जब विषकी भावनाका त्याग किया, तब अमृत तौ आगेही था, सोई हो जाता है, तैसे जो कछु तुझकों भासता है, सो सब ब्रह्मरूपी अमृतही है, जब तिस ब्रह्मरूपी अमृतविषे अज्ञान करिके जगतरूपी विषकी भावना हुई, तब दुःखकों पावता है, अरु जब संसारकी भावना त्यागी, तब आनंदरूपही है, तिसकों करणा अकरणा दोनों तुल्य हैं, यद्यपि ज्ञानवानविषे इच्छा दृष्ट आती है, तौ भी उसके निश्चयविषे नहीं, उसकी इच्छा भी अनिच्छा है; काहेतें जो संसारकी भावना उसके हृदयविषे नहीं, तौ इच्छा किसकी रहै, हे रामजी! यह संसार है नहीं, हमकों तौ आकाशरूप भासता है, जैसे अवरके मनोराज्यका संकल्प तिसविषे आणे जाणेका खेद कछु नहीं होता, तैसे यह जगत हमकों अवरकी चिंतवनावत् है, जैसे किसी पुरुषनें मनोराज्य करिके मार्गविषे कोउ स्थान रच्या होवै, अरु तिसविषे किंवाड लगाए होवैं, अरु नाना प्रकारका प्रपंच रच्या होवै, अरु जो कोउ अवर पुरुष आता है, तिसकों अटकावता कोउ नहीं, किंवाडविषे अरु न कोउ किंवाड है, न कोउ पदार्थ है, उसका शून्यमार्गका निश्चय होता है, तैसे हमकों सब प्रपंच शून्यही भासता है, अज्ञानीके हृदयविषे हमारी चेष्टा है, अरु हमकों ब्रह्मतें इतर कछु नहीं भासता ॥ हे रामजी! जिसकों जगतही न भासै, तिसकों इच्छा किसकी होवै, जिसके हृदयविषे संसारकी सत्यता है तिसकों इच्छा भी फुरती है, अरु राग दोष भी उठता है, जिसकों राग दोष उठता है, तब जाणियें जो

संसारसत्ता हृदयविषे स्थित है, अरु जिसकों नानापदार्थसहित संसार सत्य भासता है, सो मूर्ख है, अज्ञान निद्राविषे सोया हुआ है, जैसे निद्रादोष करिके स्वप्नविषे पुरुष अपणा मृत्यु देखता है, तैसे जिसकों यह जगत सत भासता है, सो निद्राविषे सोया है ॥ हे रामजी! बहुत प्रकारके स्थान मैं देखे हैं, तिनविषे रोग औषध भी नानाप्रकारके देखे हैं, परंतु इच्छारूपी छुरीके घावका औषध अवर नहीं दृष्ट आया, न जापकरि, न तपकरि, न पाठकरि, न यज्ञ दान तीर्थकरि निवृत्त होता है, जेते कछु संसारके पदार्थ हैं, तिन करिके इच्छारूपी रोग नाश नहीं होता, जब आत्मरूपी औषधकी उर आवै, तबही नाश होता है, अन्यथा किसी प्रकार यह रोग नहीं जाता ॥ हे रामजी! जिस पुरुषकों ज्ञान प्राप्त हुआ है, तिसकी इच्छा स्वाभाविकही निवृत्त हो जाती है, अरु आत्मज्ञानविना अनेक यत्नकरि न जावैगी, जैसे स्वप्नकी वासना जागेविना नहीं जाती, अवर अनेक उपाय करियें तौ भी दूर नहीं होती ॥ हे रामजी! ज्यौं ज्यौं वासना क्षीण होती है, त्यौं त्यौं सुखकी प्राप्ति होती है, अरु ज्यौं ज्यौं वासनाकी अधिकता है, त्यौं त्यौं दुःख अधिक है, अरु यह आश्चर्य है जो मिथ्या संसार सत्य हो भासता है, जैसे बालककों वृक्षविषे वैताल हो भासता है, तिसकरि भय पावता है, सो हैही नहीं, तैसे मूर्खता करिके आत्माविषे संसार कल्पता है, तिसकरि दुःखी होता है ॥ हे रामजी! स्थावर जंगम जेता कछु जगत भासता है, सो सब ब्रह्मरूप है, ब्रह्मतें इतर बन्या कछु नहीं, भ्रम करिके भिन्न भिन्न होय भासता है, जैसे आकाशविषे शून्यता है, जलविषे द्रवता है, सत्यताविषे सत्यताही है, तैसे आत्माविषे जगत है, सो न सत है, न असत है, अनिर्वाच्य है ॥ हे रामजी! दूसरा कछु बन्या नहीं तौ क्या कहियें, केवल ब्रह्मसत्ता अपणे आपविषे स्थित है, सो सर्वका अपणा आप वास्तवरूप है, जब तिसका साक्षात्कार होता है, तब अहंरूप भ्रम मिटि जाता है, जैसे सूर्यके उदय हुए अंधकारका अभाव हो जाता है, तैसे आत्माके साक्षात्कार हुए अनात्म अभिमानरूपी अंधकारका

अभाव हो जाता है, अरु परम निर्वाण भासता है, तिसविषे तहां न एक कहणा है, न दो कहणा है, केवल शांतरूप परम शिव है, जैसे आकाशविषे नीलता भासती है, तैसे आत्माविषे जगत भासता है ॥ हे राम जी! जिननें ऐसे निश्चय किया है, तिनकों इच्छा अनिच्छा दोनों तुल्य हैं, तौ भी मेरे निश्चयविषे यह है, जो इच्छाके त्यागविषे सुख है, जिसकी इच्छा दिन दिन घटती जावै, अरु आत्माकी उर आवै, तिसकों ज्ञानवान् मोक्षभागी कहते हैं, काहेतें जो संसारभ्रम करिके सिद्ध है, इसहीकी कल्पना जगतरूप होकरि भासती है, विचार कियेतें निकसता कछु नहीं, संसारके उदय होणेकरि आत्माकों कछु आनंद नहीं, अरु नाश होणेकरि कछु खेद नहीं होता, काहेतें जो भिन्न कछु नहीं, जैसे समुद्रविषे तरंग उपजते विनसते हैं, तौ जलकों हर्षशोक कछु नहीं होता, काहेतें जो जलतें इतर नहीं, तैसे संपूर्ण जगत ब्रह्मस्वरूप है तौ इच्छा क्या अरु अनिच्छा क्या ॥ हे रामजी! आदि जो परमात्मातें चित्तशक्ति फुरी है, तिसविषे जब अहं ऐसे हुआ, तब स्वरूपका प्रमाद हुआ, तब यह चित्तशक्ति मनरूप हुई, बहुरि आगे देह इंद्रियां हुई, अज्ञान करिके मिथ्या भ्रम उदय हुआ है, इसी प्रकार अपणे साथ मिथ्या शरीरकों देखता है, जैसे जल दृढ जडता करिके बरफरूप हो जाता है, तैसे चित्तसंवित् प्रमादकी दृढता करिके मन इंद्रियां देहरूप होती हैं, जैसे कोउ स्वप्नविषे अपणे मरणेकों देखता है, तैसे अपणेसाथ शरीरकों देखता है, जब चित्तशक्ति नष्ट होती है, तब शरीर कहां अरु मन कहां, यह कोउ नहीं भासता, जैसे स्वप्नविषे भ्रम करिके शरीरादिक भासते हैं, तैसे यह जाग्रत भी जाण, जो मिथ्या भ्रम करिके उदय हुए हैं, जब अपणे स्वरूपकी उर आवै, तब सबही भ्रम मिटि जावै ॥ हे रामजी! जैसे भ्रम करिके आकाशविषे नीलता भासती है, तैसे विश्व भी अनहोती भ्रमकरि भासती है, आत्माविषे कछु आरंभ परिणाम करिके नहीं बन्या, उही स्वरूप है, जैसे आकाश अरु शून्यताविषे भेद नहीं, जैसे पवन अरु स्पंदविषे भेद नहीं, तैसे आत्मा अरु जगतविषे भेद न

हीं, जैसे स्वप्नकी सृष्टि अनुभवरूप है, इतर कछु नहीं, तैसे जगत आत्मअनुभवतें इतर कछु नहीं ॥ हे रामजी! चेतन आकाश परम शांतरूप है, तिसविषे देह इंद्रियां भ्रमकरिके भासती हैं, अरु क्रिया काल पदार्थ सब भ्रममात्र हैं, जब आत्मस्वरूपविषे जागीकारि देखैगा, तब द्वैतभ्रम निवृत्त हो जावैगा, कैवल्य अद्वैत आत्माही भासैगा, दृश्यका अभाव हो जावैगा, यह पृथ्वी आदिक तत्त्व जो भासते हैं, सो अविद्यमान हैं, इनकी प्रतिमा मिथ्या उदय हुई है, जैसे स्वप्नविषे अनहोते पृथ्वी आदिक तत्त्व भासते हैं, परंतु हैं नहीं, तैसे आत्माविषे यह जगत भासता है ॥ हे रामजी ! पृथ्वी भी आकाशरूप है, अरु कंध कोट भी आकाशरूप हैं, अरु पर्वत भी आकाशरूप हैं, सब प्रपंच आकाशरूप है, जो सर्व आकाशरूप हैं, तौ ग्रहण त्याग किसका होवै, अरु आकाशरूप दिवारउपर संकल्पनें मूर्त्त्यां रचियां हैं, अरु रंग तहां आत्मचैतन्यता है, तातें विश्व संकल्पमात्र है, जैसा जैसा निश्चय होता है, तैसी तैसी सृष्टि भासती है, जो कछु बन्या होता है, तौ अवरका अवर भासता, तातें बन्या कछु नहीं, जैसा संकल्प होता है, तैसा आगे रूप हो भासता है ॥ हे रामजी! सिद्ध पास एक चूर्ण होता है, तिसकारि जो चाहते हैं, सो करते हैं, पर्वतकों आकाश करते हैं, अरु आकाशकों पर्वत करते हैं, तैसे मैं तुझकों चूर्ण कहता हौं, जब चित्तरूपी सिद्ध संकल्परूपी चूर्ण कारि फुरता है, तब आत्मरूपी आकाशविषे पर्वत हो भासते हैं, अरु जब चित्तरूपी सिद्धका संकल्प उलटता है, तब पर्वत भी आकाशरूप हो भासता है, जैसे स्वप्नविषे संकल्प फुरता है, तब अनुभवविषे पर्वत आदिक पदार्थ भासि आते हैं, अरु जब संकल्पतें जागता है, तब स्वप्नके पर्वत आकाशरूप हो जाते हैं, आकाशही पर्वतरूप हुआ, अरु पर्वत आकाशरूप होता है ॥ हे रामजी ! तैसे यह सृष्टि संकल्पमात्र है, कछु बन्या नहीं, जैसा संकल्प होता है, तैसा भासता है, अरु जब विश्वके अत्यंत अभावका संकल्प किया तब तैसेही भासता है, जैसे विश्वका अभ्यास किया है, अरु विश्व भासी है, तैसे आत्माका अभ्यास

करियें तौ क्यों न भासै, उह तौ अपणा आप है, जब आत्माका अभ्यास करियें तब आत्माही भासता है, विश्व
का अभाव हो जाता है, अनेक सृष्टि अपणे अपणे संकल्पकरि आकाशविषे भासतियां हैं, जैसा किसीका संक
ल्प होता है, तैसी सृष्टि उसकों भासती है, जैसे चिंतामणी अरु कल्पवृक्षविषे दृढ संकल्प करता है, तब यथा इ
च्छित पदार्थ निकसि आते हैं, सो कछु बने नहीं, अरु चिंतामणी भी परिणामकों प्राप्त भई, ज्यौंकी त्यौं पडी
है, संकल्पकी दृढताकरि भासि आते हैं, तैसे यह प्रपंच भी आकाशरूप है, जैसे आकाशविषे शून्यता
है, तैसे आत्माविषे जगत है ॥ हे रामजी ! सिद्धके जो वचन फुरते हैं, सोही संकल्पकी तीव्रता होती है,
जो चित्त शुद्ध होता है, तौ दूसरी सृष्टिकों भी जानता है, जो पुरुष वचन सिद्ध होणेके निमित्त वासना सूक्ष्म
करता है, अर्थ यह जो वासनाकों रोकता है, सो तिसकरि वचन सिद्धताकों पावता है, जैसा संकल्प करता है,
तैसा सिद्ध होता है ॥ हे रामजी ! जेता यह दृश्यकी उरतें उपरांत होकरि अंतर्मुख होता है, तेती वचन सिद्ध
ता होती जाती है, भावै वर देवै, भावै शाप देवै, उह सिद्ध होता है ॥ हे रामजी ! एक प्रमाणज्ञान है, जो
यह पदार्थ इस प्रकार है, तिसका जो नामरूप है, सो सब आकाशरूप भ्रममात्र है, आत्माविषे अवर क
छु नहीं, अरु आत्मरूपी समुद्रविषे जगतरूपी तरंग उठते हैं, सो आत्मरूपही हैं, जिनकों ऐसा ज्ञान हु
आ है, तिनकों इच्छा अरु अनिच्छाका ज्ञान नहीं रहता, तिनकों सब आकाशरूप भासता है ॥ हे राम
जी ! आत्मरूपी फूल है, तिसविषे जगतरूपी गंध है, जैसे पवन अरु स्पंदविषे भेद नहीं, तैसे आत्मा अरु
जगतविषे भेद नहीं, जैसे पत्थर उपर लकीर काढियें सो पत्थरतें भिन्न नहीं, तैसे ब्रह्मतें जगत भिन्न नहीं ॥
हे रामजी ! देश काल पृथ्वी आदिक तत्त्व, अरु मैं मेरा सब आत्मरूप है, अरु अविनाशी है, काहेतें जो
अजन्मा है, जिनकों ऐसे निश्चय हुआ तिनकों रागदोष नहीं रहता, सब आत्मरूपही भासता है ॥ इति
श्रीयोगवासिष्ठे निर्वाणप्रकरणे जगदुपदेशो नाम शताधिकसप्तपंचाशत्तमः सर्गः ॥ १५७ ॥ ॥ ॥

॥ वसिष्ठ उवाच ॥ हे रामजी ! शुद्ध आत्मतत्त्वविषे जो संवेदन फुरी है, तिस संवेदनकारि आगे जगत भास्या है, जैसे किसीके नेत्रविषे एक अंजन डारीकरि आकाशविषे पर्वत उडते दिखावते हैं, तैसे अन होता जगत फुरणेकरि भासता है ॥ हे रामजी ! ब्रह्म स्वर्गविषे अरु चित्त स्वर्गविषे भेद कछु नहीं, परमार्थतें एकही है, दृष्टि सृष्टि अरु वस्तु पर्याय हैं, अरु नानातत्त्व भी इसकी भावना करि भासते हैं, आत्माविषे दूसरा कछु नहीं बन्या, चित्त अरु चैत्य आत्मातें इतर नहीं, चित्तही चैत्य होकरि भासता है, ज्ञान करिके इनकी एकता होती है, इसीतें दृश्य भी द्रष्टारूप है, जैसे स्वप्नविषे शुद्ध संवितही दृश्यरूप होकरि स्थित होती है, अरु जागेतें एक हो जाती है, सो एकता भी तब होती है, जब उही रूप है, तातें तूं अब भी उही जाण, दृश्य दर्शन द्रष्टा त्रिपुटी सब उहीरूप है ॥ हे रामजी ! जो सजाति है, तिसकी एकता होती है, विजातीका एकता नहीं होती, जैसे जलविषे जलकी एकता होती है, तैसे बोधकरि सबकी एकता होती है, तातें दृश्य भी उहीरूप है, जो एकता हो जाती है, जो दृश्य कछु आत्मातें भिन्न होती तौ एकता न होती ॥ हे रामजी ! आकाश आदिक तत्त्व भी आत्मरूप हैं, जिसतें यह सर्व है, अरु जो उह सर्व है, तिस सर्वात्माकों नमस्कार है, बहुरि कैसा है आत्मा, सर्व व्यापी है, अरु सर्वगत है, सर्वकों धारी रहा है, अरु सर्व उही है, ऐसे सर्वात्माकों मेरा नमस्कार है, जो कछु भासता है, सर्व उही है, जैसे जलविषे गलावणेकी शक्ति है, अरु काष्ठविषे नहीं, तैसे ब्रह्मविषे भावना स्वभाव है, अवरविषे नहीं, जो ब्रह्मभावनातें सर्व ब्रह्मही भासता है ॥ हे रामजी ! जड पदार्थ जो भासते सो भी ब्रह्म हैं, काहेतें जो भासता है, सो ब्रह्मही है, जो जड होवै, तौ भासै नहीं, जड भी चेतनता शुद्ध संवितविषे है, उसविषे शब्द चेतन है, इतर कछु नहीं भासता है, जैसे शुद्ध संवितविषे स्वप्न फुरता है, तिसविषे जड भी अरु चेतन भी भासते हैं, परंतु जो जड भासते हैं, उस संवितविषे उह भी चेतन है, जब चेतन है, तब फुरते हैं, जिनकों शुद्ध

संवितविषे अहं प्रयत्न नहीं सो जाणी नहीं शकता, अज्ञानी है, परंतु सब ब्रह्म है, जैसे समुद्रविषे जल होता है, सो उंचे आवे, तौ भी जल है, अरु नीचेकों जावे, तौ भी जल है, जैसे जो कछु देखीता है, अरु भासता है, सो सब ब्रह्मरूप है, इतर कछु नहीं, अरु इंद्रियका ग्राम जो भासता है, सो भी आत्मा है, अरु पृथ्वी आदिक तत्त्व जो फुरे हैं, सो प्रथम आकाश फुऱ्या है, बहुरि वायु फुरी है, बहुरि अग्नि फुरी है, तिसतें अनंतर जल फुऱ्या है, बहुरि पृथ्वी फुरी है, सो अनिच्छित फुरे हैं, चमत्कारकी नांई, तातें सब आत्मरूप है, जैसे वटबीजविषे वृक्ष होता है, तैसे आत्मरूपी बीजविषे जगत होता है, अरु नानाप्रकार भासते हैं ॥ हे रामजी ! एक बीजही नानाप्रकारके रूप धारता है, परंतु बीजतें इतर कछु नहीं, तैसे आत्मसत्ता नानाप्रकार हो भासती है, परंतु बीजकी नांई भी आत्मा परिणम्या नहीं, विश्व आत्माका चमत्कार है, तातें उही रूप है, जैसे स्वर्णविषे अनेक भूषण होते हैं, स्वर्णतें इतर कछु नहीं, तैसे विश्व आत्मरूप है, द्वैत कछु नहीं, जो आत्मातें इतर होवे, तौ भासे नहीं, तातें भासति जो है, सो चेतनरूप है, इसतें दृश्य अरु द्रष्टातें एकही रूप है, द्रष्टा दृश्यकी नांई हो भासता है ॥ हे रामजी ! जैसे कोउ पुरुष तुमारे निकट सोया होवे, अरु उसकों स्वप्न आवे, तिसविषे मेघ गर्जते हैं, अरु नानाप्रकारकी चेष्टा होती है, सो उसकों भासती है, अरु तुमकों नहीं भासती, तैसे यह दृश्य तुमारी भावनाविषे स्थित है, अरु हमकों आकाशरूप है ॥ हे रामजी ! चेतन आकाश शांतरूप है, तिसविषे सृष्टि कछु बनी नहीं, जो कछु उपजा नहीं तौ नष्ट भी नहीं होता, केवल शांतरूप है, भ्रम करिके जगत भासता है, जैसे कोउ बालक मनोराज्य करिके आकाशविषे पुतलियां रचै सो आकाशविषे कछु बण्या नहीं परंतु उसके संकल्पविषे है, तैसे यह विश्व मनरूपी बालकने रची है, तिसकी रची हुईविषे भी ज्ञानवानकों शून्यता भासती है ॥ हे रामजी ! संकल्पमात्रही सृष्टि हुई क्यौं, जब इसका संकल्प नष्ट होता है, तब शांतपद शेष रहता है, सो कैसा पद है, निरहंकार सत्तामात्र पद है, अरु असतकी नांई स्थित है, बहुरि

तिस चिन्मात्र अद्वैतविषे अहंता करिके जगत भासि आता है, जब अहंता फुरती है, तब जगत भासता है, अरु जब स्वरूपका साक्षात्कार होता है, तब अहंतारूप भ्रम मिटि जाता है, जब अहंतारूप भ्रम मिट्या, तब जगतका भी अभाव होता है, अरु इच्छाका भी अभाव हो जाता है, तातें ज्ञानीकों इच्छा वासना कोउ नहीं रहती, जब प्रसन्नरूप अहंता नष्ट हुई, तब तिस पदकों प्राप्त होता है, जिस पदविषे अणिमा आदिक सिद्धि भी सूके तृणकी नांई भासतीयां हैं, ऐसा आनंदरूप है, जिसविषे ब्रह्मादिकका सुख भी तृणसमान भासता है ॥ हे रामजी ! जिसकों ऐसा ब्रह्मानंदपद प्राप्त हुआ है, तिसकों बहुरि इच्छा किसीकी नहीं रहती, अरु तिसकों मारणेहारे विषयादिक पदार्थ मृतक नहीं करते, अरु जीवावणेहारे पदार्थ अमृत आदिक जीवावते नहीं, केवल निर्वाण पदविषे तिसकी स्थिति है ॥ हे रामजी ! जिस पुरुषकों संपूर्ण संसारतें वैराग्य हुआ है, तिसकों संसारके पदार्थ सुखदायक नहीं भासते, मिथ्या भासते हैं, सो संसारसमुद्रके पारकों प्राप्त भया है, जिसकी संसारकी वासना अरु अहंता नष्ट भई है, तिसकी मूर्त्ति देखणेमात्र भासती है, सो निर्वासी ज्ञानवान शांतरूप है ॥ हे रामजी ! इच्छाही बंधन है, जब इच्छाका अभाव हुआ, तब आनंद हुआ, अरु इच्छा भी तब फुरती है, जब संसारकों सत्य जाणता है, अरु संसारकी सत्यता अहंताकरि भासती है, जब अहंतारूपी बीज नष्ट हो जावै, तब निर्वाणपदकी प्राप्ति होवै ॥ हे रामजी ! संसार कछु बन्या नहीं, भ्रमकरि सिद्ध हुआ है, सर्वही ब्रह्म है, तिस परमात्माविषे जो परिच्छिन्न अहंता फुरी, सोई उपाधि है ॥ हे रामजी ! बुद्धितें आदि लेकरि जेती यह दृश्य है, जिसकों अपणेविषे स्वाद नहीं देती, आकाशकी नांई रहता है, तिसकों संत मुक्तरूप कहते हैं ॥ हे रामजी ! इह अहं अविचारतें सत भासती है, विचार कियेतें असत्य हो जाती है, अनहोती अहंतानें दुःख दिया है, तातें तुम निरहंकार होकरि चेष्टा करहु, जैसे यंत्रीकी पुतली अभिमानतें रहित चेष्टा करती है, तैसे तुम निरहंकार होकरि चेष्टा करहु, अरु अपणे स्वरूपविषे स्थित होहु, त

बव्यवहार अरु अव्यवहार तुझकों तुल्य हो जावैगा, जैसे पवनकों स्पंद निस्पंद दोनों तुल्य होते हैं, तैसे तुम कों होजावैगा, अरु अहंकारतें रहित तेरी चेष्टा होवैगी, अहंताही दुःख है, जब अहंताका नाश हुआ, तब शांत पदकों प्राप्त होवैगा, अरु निर्मल अनामय पदकों प्राप्त होवैगा, जो सर्व पदार्थका अधिष्ठान है, अरु सब का अपणा आप है, तिसविषे न कोउ सुख है, न दुःख है, न कोउ इंद्रियांका विषय है, परम शांतरूप है ॥ इति श्रीयोगवासिष्ठे निर्वाणप्रकरणे परमनिर्वाणयोगोपदेशो नाम शताधिकाष्टपंचाशत्तमः सर्गः ॥ १५८ ॥

वसिष्ठ उवाच ॥ हे रामजी! जो ज्ञानवान पुरुष है सो निरावरण है, दोनों आवरणतें रहित है, एक असत्त्वापादक आवरण है, एक अभानापादक आवरण है, जो आत्मब्रह्मकी सत्यता हृदयविषे न भासे सो असत्त्वापादक है, तिसकों कहता है जो है नहीं, अरु जो सत्यता आत्माकी हृदयविषे भासै, परंतु दृढ प्रत्यक्ष न भासै, सो अभानापादक आवरण है, असत्त्वापादक आवरण अज्ञानीकों भासता है, अरु अभानापादक आवरण जिज्ञासीकों होता है, ज्ञानवानकों यह दोनों आवरण नहीं रहते, तातें उह निरावरण शांतरूप होता है, आकाशवत् निर्मल अरु निरालंब है, सो किसी गुणतत्त्वके आश्रय नहीं होता, अरु एक द्वैत भ्रम तिसका नष्ट हो जाता है, तिसनें आत्मरूपी तीर्थका स्नान किया है, सो आत्मरूपी तीर्थ कैसा है, जो अपवित्रकों भी पवित्र करता है, जिन पुरुषनें शरीरविषे आत्माका दर्शन किया है, तिनका शरीर भी पवित्र भया है, ऐसे पुरुषकों शरीरकी सत्यता नहीं रहती, अरु संसार भी नहीं रहता, आत्माके साक्षात्कार हुए सब इच्छा नष्ट हो जाती है, अरु सर्व ब्रह्मही तिसकों भासता है, द्वैत कछु नहीं भासता, सर्व आत्मस्वरूप है, तिसविषे संकल्पकरि नानाप्रकार सृष्टि भासती है ॥ हे रामजी! तुम संकल्पकी उर मत जावहु, काहेतें जो चित्तकी वृत्ति क्षणक्षणविषे परिणमती है, अनंत योजनपर्यंत चली जाती है, जो तिसके अनुभव करनेवाली सत्ता मध्यविषे है, जिसके आश्रय उह जाती है सो चिन्मात्र तेरा स्वरूप है, जब तिसविषे

स्थित होकरि देखैगा, तब फुरणेविषे भी ब्रह्मसत्ता भासैगी ॥ हे रामजी! यह संवित सदा प्रकाशरूप है, चित्तके क्षोभतें रहित है, द्वैतरूप विकारतें रहित शुद्ध है, अरु जेते कछु प्रकाश हैं, तिनके विरोधी भी हैं, दीपकका विरोधी पवन है, निर्वाणकरि लेता है, अरु सूर्यके विरोधी राहु केतु हैं, जो आच्छादि लेते हैं, अरु महाप्रलयविषे सर्व प्रकाश तमरूप हो जाता है, अरु आत्मप्रकाश तत्त्व सिद्ध है, तमकों भी प्रकाशता है, अरु सदा ज्ञानरूप एकरस है, तिसकों त्यागिकरि अवर कछु नहीं तुम लगणा ॥ हे रामजी! यह दृश्य सब मिथ्या है, जैसे जेवरीविषे सर्प अरु सीपीविषे रूपा कल्पित है, तैसे आत्माविषे विश्व कल्पित है, जब तूं जागिकरि देखैगा, तब सबका अभाव हो जावैगा, जैसे वंध्याके पुत्रके रूपका अभाव है, तैसे सब विश्व मिथ्या भासैगी, काहेतें जो है नहीं, भ्रममात्र स्वप्नकी नांई अविचारसिद्ध है, विचार कियेतें आत्मा ही है, इतर कछु नहीं, जैसे स्वप्नकी सृष्टि अनुभवतें इतर कछु नहीं, तैसे यह विश्व भी आत्मस्वरूप ज्ञानमात्र है, अहं मम देह इंद्रियादिक सब ज्ञानमात्र हैं, दृश्यही दूसरी कछु वस्तु नहीं, जब ऐसे निश्चयकों धारैगा, तब निःशोक होवैगा, अरु मोहतें भी रहित होवैगा, परमार्थसत्ता ज्योंकी त्यौं भासैगी, जैसे समुद्रविषे तरंग उठते हैं, तैसे आत्माविषे दृश्य उठती है, सो उहीरूप है, अरु जो इतर भासै सो मिथ्या है, अरु सब सृष्टि इसके अंतर स्थित है, अज्ञान करिके बाह्य भासती है, जैसे स्वप्नकी सृष्टि सब इसके अंतर होती है, अरु अपणा स्वरूप होता है, निद्रा दोष करिके बाह्य भासती है, जब जागता है, तब अपणाही स्वरूप भासता है, तैसे जाग्रत सृष्टि भी विचार कियेतें अपणे अनुभवविषे भासती है, तातें स्थित होकरि देख, जो सर्वदा जागती ज्योति है, तिसकों त्यागिकरि अवर यत्न करणा व्यर्थ है ॥ हे रामजी! अपणे अनुभवविषे स्थित होणा क्या कष्ट है, अरु जो कठिण जानते हैं, सो मूढ हैं, तिनकों मेरी धिक्कार है, काहेतें जो गउके पगकों समुद्रवत् जानते हैं, तिनोंतें अवर मूर्ख कवन है, अनुभवविषे स्थित होणा, गउपग

की नांईही तरणा सुगम है, अरु जो अवर पदार्थ हैं, जिनके पावणेकी इच्छा करैगा, तिनविषे व्यवधान है, अरु आत्माविषे व्यवधान कछु नहीं, काहेतें जो अपणा आप है ॥ हे रामजी! जिन पुरुषनें आत्माविषे स्थिति पाई है, तिनकों मोक्षकी इच्छा भी नहीं, तौ स्वर्गादिककी इच्छा कैसे होवै, मोक्ष अरु स्वर्ग आत्माविषे जेवरीके सर्पवत् मिथ्या भासते हैं, तिनकों केवल अद्वैत आत्मा निश्चय होता है ॥ हे रामजी! स्वप्नविषे सुषुप्ति नहीं, अरु सुषुप्तिविषे स्वप्न नहीं, इनके अनुभव करणेवाली शुद्ध सत्ता है, इह दोनों मिथ्या हैं, निर्वाण अरु जीणा तिनकों दोनों तुल्य हैं, ऐसे जाणीकरि इच्छा किसीकी नहीं करते, प्रपंच उनकों शशेके सिंग अरु वंध्याके पुत्रवत् भासते हैं ॥ हे रामजी! हमकों तौ सदा आकाशरूप भासता है, अरु जो तूं कहै, उपदेश क्यों करते हौ तो हमकों भास कछु नहीं, तेरी इच्छाही तुझकों वसिष्ठरूप होकरि उपदेश करती है, हमकों विश्व सदा शून्यरूप भासता है, अरु हमकों चेष्टा करता भी अज्ञानी जानते हैं, हमारे निश्चयविषे चेष्टा भी नहीं, अरु हमारी चेष्टा अर्थाकार भी कछु नहीं, अरु अज्ञानीकी चेष्टा अर्थाकार होती है, हमकों चेष्टा सत नहीं भासती, तातें अर्थाकार नहीं होती, जैसे ढोलका शब्द होता है, परंतु अर्थ उसका नहीं होता, जो क्या कहता है, अरु वाणीकरि शब्द बोलीता है, तिसका अर्थ होता है, तैसे हमारी चेष्टा अर्थाकार नहीं, अर्थ यह जो जन्मकों नहीं देती, अरु अज्ञानकी चेष्टा जन्मकों देती है, अरु हमकों संसार ऐसे भासता है, जैसे अवयवी सर्व अवयवकों अपणा स्वरूपही देखता है, हस्त पाद सीस आदिक सब अपणेही अंग देखता है, तैसे हमकों जगत अपणा स्वरूपही भासता है ॥ हे रामजी! जगतविषे एक ऐसे जीव दृष्ट आते हैं, जो तिनकों हम स्वप्नके जीव भासते हैं, अरु हमकों उह शून्य आकाशवत् दृष्ट आते हैं, अरु उनके हृदयविषे हम नानाप्रकारकी चेष्टा करते अवरकी नांई भासते हैं, अरु हमकों तौ जगत ऐसे भासता है, जैसे समुद्रविषे तरंग होते हैं, तैसे आत्माविषे जगत है, मैं भी ब्रह्म हौं,

तूं भी ब्रह्म है, जगत भी ब्रह्म है, रूप अवलोकन मनस्कार सब ब्रह्मरूप है, तातें तूं भी ब्रह्मकी भावना करु जो अपणे स्वभावविषे स्थित होणा परम कल्याण है, अरु पर स्वभावविषे स्थित होणा दुःख है ॥ हे राम जी ! अपणा स्वभाव साधणा इसीका नाम मोक्ष है, अरु न साधणा इसीका नाम बंधन है ॥ हे रामजी ! अवर पदार्थ इस ऊपर उपकार कोउ करी नहीं सकता, न धन, न कोउ मित्र, न कोउ क्रिया, एक अपणा पुरुषार्थ उपकार करता है, सो पुरुषार्थ यही है जो अपणा चेतन स्वभाव है, तिसीविषे स्थित होणा, परंतु स्वभावका त्याग करणा, अरु जब अपणे स्वभावविषे स्थित होवैगा, तब सब अपणा स्वरूपही भासैगा, अरु जो तूं स्वरूपतें इतर करि देखै तौ न मैं हौं, न तूं है, न जगत है, सब भ्रममात्र है, मृगतृष्णाके जलवत् भासता है, अथवा ऐसे जाण जो मैं भी ब्रह्म हौं, तूं भी ब्रह्म है, जगत भी ब्रह्म है, अथवा ऐसे जाण न तूं है, न मैं हौं, न जगत है, पाछे जो शेष रहैगा, सो तेरा स्वरूप है ॥ हे रामजी ! जिन पुरुषकों ऐसे निश्चय हुआ है, जो मैं तूं जगत सब ब्रह्म है, अथवा मैं तूं जगत सब मिथ्या है, तिनकों बहुरि इच्छा कोउ नहीं रहती, अरु जिनकों इच्छा उठती है तौ जाणियें जो ब्रह्म आत्माका साक्षात्कार नहीं भया, जब भोगकी वासना निवृत्त होवै, अरु संसार विरस हो जावै, तब जाणियें जो यह संसारके पारकों प्राप्त भया, अथवा होवैगा ॥ हे रामजी ! यह निश्चय करिके जाण जो जिसकों भोगकी वासना क्षीण होती है, तिसकों स्वभावरूपी सूर्य उदय होता है, अरु भोगकी तृष्णारूपी रात्रि नष्ट होती है, यद्यपि तिसविषे प्रत्यक्ष भोगकी तृष्णा दृष्ट आती है, तौ भी उसकी भास जाती रहती है, अरु ब्रह्मसत्ता भासती है, अरु संसारकी उरतें सुषुप्ति हो जाती है, मृतककी नांई होता है, अरु अपणे स्वरूपविषे सदा जागृत है, अपणे स्वभावरूपी अमृतविषे मग्न होता है ॥ ॥ इति श्रीयो० निर्वा० वसिष्ठगीतोपदेशो नाम शताधिकैकोनषष्टितमः सर्गः ॥ १५९ ॥

॥ वसिष्ठ उवाच ॥ हे रामजी ! रूप अवलोकन मनस्कार यह पर स्वभाव हैं, तिनकों ब्रह्मरूप जाण,

परस्वभाव क्या अरु ब्रह्मरूप क्या है॥ हे रामजी! तेरा स्वरूप शुद्ध आकाश है, तिसविषे जो रूप अवलोकन मनस्कार फुरै है, सो सो प्रकृतिकी मायाकरि फुरै है, सो माया स्वभाव करिके परस्वभाव है, परंतु अधिष्ठान इनका आत्मसत्ता है, तातें आत्मस्वरूप है, आत्माके जानणेतें इनका अभाव हो जाता है॥ हे रामजी! जब इसकों ज्ञान उपजता है, तब संसार स्वप्नवत् हो जाता है, संसारकी सत्ता कछु नहीं भासती, अरु जब दृढता हुई तब सुषुप्त हो जाता है, इनका भाव भी नहीं रहता, तुरीयाविषे स्थित होता है, अरु जब तुरीयातीत होता है, तब अभावका भी अभाव हो जाता है, परम कल्याणरूप सत्तासमान पदकों प्राप्त होता है, सो आदि अंततें रहित परमपद है, ऐसा ब्रह्मस्वरूप मैं हौं, अरु परम शांतरूप हौं, अरु निर्दोष हौं, अरु जगत भी सब ब्रह्मरूप है, हमकों सदा यही निश्चय रहता है, अरु ऐसा उत्थान नहीं होता, जो मैं वसिष्ठ हौं, सदा आत्मस्वरूपका निश्चय रहता है, परिच्छिन्न अहंकार हमारा नष्ट हो गया है, तातें निरहंकार पदविषे हम स्थित हैं, जब तूं ऐसे होकरि स्थित होवैगा, तब परम निर्मल स्वरूप हो जावैगा, जैसे शरत्कालका आकाश निर्मल शोभता है, तैसे तूं शोभैगा॥ हे रामजी! ऐसे पुरुषकों बंधन है सो श्रवण कर, जिस बंधनकरि आत्मपदकों नहीं प्राप्त होता, प्रथम धन मणिका बंधन है, भोगकी तृष्णा अरु बांधवका बंधन है जिसकों, इन तीनोकी वासना रहती है, तिसकों मेरी धिक्कार है, बडे अनर्थके देणेहारी यह वासना है, यह भोग है, सो महारोग है, अरु बांधव दृढ बंधनरूप हैं, अरु अर्थकी प्राप्ति अनर्थका कारण है, तातें इस वासनाकों त्यागिकरि आत्मपदविषे स्थित होहु, यह संसार भ्रममात्र है, इसकी वासना करणी व्यर्थ है, इसकों सत नहीं जानणा, अरु यह जो तुझकों संग मिलाप भासता है सो कैसा है, जैसे बैठे हुए स्मरण आवै, जो मैं अमके साथ मिल्या था, तब उह प्रतिभा प्रत्यक्ष हृदयविषे भासती है, अरु जैसे संकल्पकरि नगर रचि लिया तिसविषे मूर्त्यां मनुष्यादिक भासणे लगें, तैसे यह जगत भी जाण॥ हे रामजी! तूं मैं

अरु यह जगत भ्रममात्र संकल्प नगरके समान है, जैसे भविष्यत नगरकी रचना है; तैसे यह जगत है, अरु कर्त्ता क्रिया कर्म जो भासते हैं, सो भी भ्रममात्र हैं, केवल आत्मासत्ताही अपणे आपविषे स्थित है, आत्मरूपी आकाशविषे यह जगतरूपी पुतलियां हैं, अरु संकल्पमात्र प्रत्यक्ष हुआ है, वास्तवतें केवल शांतरूप आत्मतत्त्व है ॥ हे रामजी! जो पुरुष स्वभावनिष्ठ हैं, तिनकों आत्मतत्त्वही भासता है, अरु जिनकों आत्मतत्त्वका प्रमाद है, तिनकों नानाप्रकारका जगत भासता है, अरु आत्माविषे यह जगत कछु आरंभ परिणाम करिके बन्या नहीं, जैसे सूर्यकी किरणांविषे अज्ञान करिके जलाभास भासते हैं, तैसे आत्माविषे अज्ञान करिके जगतकी प्रतीति होती है, जब आत्माका सम्यक् ज्ञान होवै, तब जगतभ्रम निवृत्त हो जानता है, जैसे सूर्यकी किरणां जानणेतें जलभ्रम निवृत्त हो जाता है, अरु जैसे स्वप्नतें जागे हुए स्वप्नसृष्टि अपणा आपही भासती है, तैसे अविद्याके नाश हुए सब अपणा आपही भासता है ॥ ॥ इति श्रीयोगवासिष्ठे निर्वाणप्रकरणे वसिष्ठगीतासंसारोपदेशो नाम शताधिकषष्टितमः सर्गः ॥ १६० ॥ ॥ ॥

॥ वसिष्ठ उवाच ॥ हे रामजी! रूप अवलोकन मनस्कार सब ब्रह्मरूप है, जिसकों ज्ञान प्राप्त होता है, तिसकों सब ब्रह्मस्वरूप भासता है, यही ज्ञानका लक्षण है, अरु ज्यौं ज्यौं ज्ञानकला उदय होती है, त्यौं त्यौं भोगवासना क्षीण होती जाती है, जब पूर्ण बोधकी प्राप्ति होती है, तब इच्छा किसीकी नहीं रहती, जैसे ज्यौं ज्यौं सूर्य प्रकाशता है, त्यौं त्यौं अंधकार नष्ट होता जाता है, जब पूर्ण प्रकाश हुआ, तब रात्रिका अभाव हो जाता है, तैसे जिसकों ज्ञान उत्पन्न हुआ है, तिसकों भोगकी वासना नहीं रहती, अरु संसार तिसकों जले वस्त्रकी नांई भासता है, अरु अज्ञानीकों सत्य भासता है, जैसे स्वप्नविषे सुषुप्ति नहीं होती, अरु सुषुप्तिविषे स्वप्न नहीं होता, स्वप्नका पुरुष सुषुप्तिकों नहीं जानता, अरु सुषुप्तिवाला स्वप्नवालेकों नहीं जानता, तैसे जिनकों तुरीयापदकी प्राप्ति होती है, तिनकों संसारका अभाव हो जाता है, अरु अपणे स्वभाव

विषे स्थित होता है, अरु संसारकों सत जानते हैं, सो स्वप्ननगर हैं, सुषुप्तिकों नहीं जानते ॥ हे रामजी! तेरा स्वरूप जो तुरीयापद है, तिसकों अज्ञानी जाणी नहीं सकते, अरु जो जानै तौ परिच्छिन्न अहंकार तिसका नष्ट हो जावै, जब अहंकार नष्ट हुआ, तब सर्व आत्मा हुआ ॥ हे रामजी! इसकों अहंतानें तुच्छ किया है, तातें अहंतारूप दृश्यका तुम त्याग करहु, अरु अपणे स्वभावविषे स्थित होहु, अरु संसाररूपी एक पुतली है, सो भ्रमकरि उठी है, तिसका सीस ऊर्ध्व ब्रह्मलोक है, पाद अरु गिटे इसके पाताल लोक है, अरु दशों दिशा इसके वक्षस्थल हैं, अरु चंद्रमा सूर्य इसके नेत्र हैं, तारागण इसके रोम हैं, आकाश इसके वस्त्र हैं, अरु सुखदुःखरूपी स्वभाव है, अरु पवन इसका प्राणवायु है, बगीचे इसके भूषण हैं, द्वीप अरु समुद्र इसके कंकन हैं, लोकालोक पर्वत इसके मेखला हैं ॥ हे रामजी! ऐसी जो पुतली है, सो नृत्य करती है, सो क्या है, जैसे समुद्रविषे तरंग उपजते अरु नाश होते हैं, परंतु जलही है, तैसे जलकी नांई सर्व ब्रह्मरूप है, अरु भ्रम करिके विकार दृष्ट आते हैं ॥ हे रामजी! कर्त्ता क्रिया कर्म भी सब आत्मस्वरूप है, जब तूं आत्माकी भावना करैगा, तब तेरा हृदय आकाशवत् शून्य हो जावैगा, जैसे पत्थरकी शिला जड होती है, तैसे तेरा हृदय जगततें जड शून्य हो जावैगा ॥ हे रामजी! आत्मपद शांतरूप है, अरु आकाशवत् निर्मल है, जैसे आकाशविषे आकाश स्थित है, तैसे आत्माविषे जगत है, न उदय होता है, न अस्त होता है, केवल शांतरूप है, अरु उदय अस्त भी तब होती है, जब कछु दूसरी वस्तु होती है, सो जगत कछु भिन्न नहीं, आत्मस्वरूपही है, द्वैत अरु एक कल्पनातें रहित आत्मा अपणे आपविषे स्थित है ॥ इति श्रीयोगवासिष्ठे निर्वाणप्रकरणे जगदुपशमयोगोपदेशो नाम शताधिकैकषष्टितमः सर्गः ॥ १६१ ॥ ॥

॥ वसिष्ठ उवाच ॥ हे रामजी! यह विश्व आत्माका चमत्कार है, जैसे मृत्तिकाकी पूलती मृत्तिकारूप होती है, जैसे कागदकी पूतली कागदरूप होती है, तैसे विश्व आत्मरूप है, जैसे मृत्तिका दीपक देखणेमा

त्र होता है, प्रकाशका कार्य नहीं करता, तैसे यह जगत देखणेमात्र है, विचार कियेतें आत्माविना इतर सत्ता कछु नहीं, तातें जगतकी सत्यता आत्मातें भिन्न कछु नहीं, जगतकी आस्था आत्माके आश्रित होती है, जैसे जलविषे तरंग, अरु आकाशविषे शून्यता, अरु पवनविषे फुरना है, तैसे आत्माविषे जगत अभिन्नरूप है, जैसे वायु चलती है, तब भी पवन है, उसकों वायुका निश्चय है, तैसे चेतनविषे निश्चय है, जो जगत उही स्वरूप है, तातें चेतन है, ज्ञानवान सो जाणता है, जो जगत मेराही स्वरूप है ॥ हे रामजी! यह आश्चर्य देख, जो जगत कछु दूसरी वस्तु नहीं, अरु भ्रम करिके भिन्न भासता है, जैसे कथाविषे कथाके पुरुष विद्यमान भासते हैं, जो शुद्ध करते हैं, इत्यादिक अवर क्रिया करते हैं, तैसे यह जगत भी मनोमात्र जाण ॥ हे रामजी! जो विद्यमान है सो अविद्यमान हो जाता है, अरु जो अविद्यमान है, सो विद्यमान हो जाता है, जैसे स्वप्नविषे जगत अनुभवस्वरूप है, इतर कछु नहीं, तैसे जाग्रत जगत विचारकरि देखैगा, तब ब्रह्मस्वरूपही भासैगा, जैसे जो पुरुष सोया होता है, अरु स्वप्न जगत तिसही का रूप है, परंतु जबलग निद्रादोष है, तबलग भिन्न भासता है, अरु जब जाग्या, तब सब अपणा ही आप भासता है, तैसे जब यह पुरुष अपणे स्वरूपाविषे स्थित होकरि देखता है, तब सब अपणा आपही भासता है ॥ हे रामजी! रूप अवलोकन मनस्कार भी ब्रह्मस्वरूप है, अरु आत्मा इंद्रियांका विषय नहीं, निराकार है, अरु मनके चिंतवणेतें रहित है, संकल्पकरि आपहीरूप अवलोकन मनस्कारकरि स्थित हुआ है, इतर नहीं, सर्व उही है, अरु तिसीकों केई शिव कहते हैं, केई ब्रह्म कहते हैं, केई आत्मा कहते हैं, केई शून्य कहते हैं, इत्यादिक नाम तिसीके शास्त्रकारनें कहे हैं, सो संकल्पविषे कहे हैं, अरु आत्मा केवल चिन्मात्र है, वाणीका विषय नहीं, शांतरूप है, अरु चैत्य जो है दृश्य तिसतें रहित है, सर्व शब्द अर्थका अधिष्ठान है, अरु जगत उसका चमत्कार है ॥ हे रामजी! आत्माविषे एक अरु द्वैतक

ल्पना कोउ नहीं, काहेतें जो आत्मत्वमात्र है, अरु जगत भी आत्मरूप है, जैसे आकाश अरु शून्यता विषे भेद कछु नहीं, तैसे आत्माविषे अरु जगतविषे भेद कछु नहीं ॥ हे रामजी! ऐसे भी किसी देश अथवा किसी कालविषे होवै, जो स्वर्ण अरु भूषणाविषे कछु भेद होवै, स्वर्ण भिन्न होवै, अरु भूषण भिन्न होवै, परंतु आत्मा अरु जगतविषे कछु भेद नहीं, ऐसेही आत्मा प्रकाशता है, अरु अपणे स्वभावविषे स्थित है, अवर दूसरी वस्तु कछु नहीं, जैसे मृत्तिकाकी सैना नानाप्रकारकी संज्ञाकों धारती है, परंतु मृत्तिकातें इतर कछु दूसरी वस्तु नहीं, तैसे फुरणे करिके नानाप्रकारकी संज्ञा दृष्ट भी आती हैं, परंतु आत्मातें भिन्न कछु नहीं, उही रूप है ॥ हे रामजी! जो पदार्थ भासते हैं, सो अनुभव करिके भासते हैं, पदार्थकी सत्ता अनुभवतें इतर कछु नहीं, जब तूं अनुभवविषे स्थित होकरि देखैगा, तब अनुभवरूप अपणा आपही भासैगा, अपणा स्वभाव ज्ञानमात्र है, तिसके जानणेका नाम ज्ञान है ॥ हे रामजी! ज्ञानविना जो तप यज्ञ दान आदिक क्रिया हैं सो सब व्यर्थ हैं, सब क्रियाकी सिद्धता ज्ञानकरि होती है, जैसे उलूककी क्रिया रात्रिविषे होती है, सो दिन हुएतें मिथ्या हो जाती है, तैसे तप दान आदिक क्रिया ज्ञानके उदयविना व्यर्थ होती है, हे रामजी! जो कछु क्रिया ज्ञानके निमित्त करियें सो पुरुषप्रयत्न श्रेष्ठ है, अरु इसतें अन्यथा है, सो व्यर्थ है, अरु धनके उपजावणेविषे भी अनर्थ होता है, अरु राखणेविषे भी नष्ट है, परंतु जो ज्ञानके साधननिमित्त इसकों राखियें अरु दीजियें, तब यह अमृत हो जाता है ॥ हे रामजी! यह जगत भ्रममात्र है, जैसे मलिन नेत्रवालेकों रूपविपर्यय भासता है, जैसे स्वप्नसृष्टि होती है, तिसविषे अज्ञ तज्ञ भी भासते हैं, परंतु असतरूप हैं, तैसे यह जगत जो विद्यमान भासता है, सो अविद्यमान है, अरु आत्मा सदा विद्यमान है ॥ हे रामजी! जो विद्यमान देव विष्णु है, तिसकों त्यागिकरि अवर देवका पूजन करते हैं, तिनकी पूजा सफल नहीं होती, अरु विष्णु तिसपर कोपायमान भी होता है, सो विष्णु देव विद्यमान

कैसे है, श्रवण कर ॥ हे रामजी! आत्मा अनुभवरूप सो विद्यमान देखे है, तिसकों त्यागिकरि जो अवरका पूजन करते हैं, सो जन्ममरणके बंधनतें मुक्त नहीं होते, मूढताविषे रहते हैं, अरु आत्मदेवकी पूजा श्रवण कर, जो कछु अनिच्छित आवै सो तिसकों अर्पण करियें, अरु ऐसी पूजाविषे भी स्थित नहीं होणा, जो इसके जानणेवाला है, तिसविषे अहंप्रत्यय करणी यह बडी पूजा है ॥ हे रामजी! इस आत्मदेवतें इतर जो सूर्य चंद्रमा आदिक भेद पूजा है, सो तुच्छ है, जब तूं आत्मपूजाविषे स्थित होवै, तब अवर पूजा तुझकों सूके तृणकी नांई भासैंगी, अरु दान भी आत्मदेवकों करणा है, सो किस करिके करणे योग्य है, बोध करिके करणे योग्य है, अरु कैसे उत्पन्न होता है, प्रथम वैराग्य अरु धैर्य बोधका कारण है, अरु संतोष होवै, यथालाभविषे संतुष्ट होणा अरु ब्रह्मविद्याका विचार करणा, अरु संतका संग करणा, इन साधनकरि जब बोधरूपी सूर्योदय होवैगा तब द्वैतरूपी अंधकार नष्ट हो जावैगा, ज्ञानरूपही भासैगा, बहुरि जो ज्ञान उपजा है,सो भी शांत हो जावैगा, तातें उसी देवकी पूजा करु, जिस करिके आत्मपदकी प्राप्ति होवै, अरु आत्मदेवकी पूजाके निमित्त फूल भी चाहियें, सो आत्मविचार करणा, अरु सम जो है, चित्तकी वृत्ति अंतर्मुख करणी, अरु यथालाभविषे संतुष्ट रहणा, संतकी संगती करणी, इन फूल करिके नैवेदन करणा, यह पूजा भी तब होती है, जब अंतःकरण शुद्ध होता है, अरु तिसकरि ज्ञान उत्पन्न होता है, जब ज्ञान उपज्या, तब आत्मदेवका साक्षात्कार होता है, सो ज्ञानका लक्षण श्रवण करु, गुरु अरु शास्त्रतें जो वस्तु सुणी है, तिसविषे स्थिति होती है, अरु संसारकी वासना क्षीण हो जाती है, तब ज्ञानी कहाता है, जब इस ज्ञानकी पूर्णता होती है, तब जगत उसकों ब्रह्मस्वरूपही भासता है, उसकों शस्त्र काटि नहीं सकते, अरु सिंह सर्पका भेद नहीं होता, अग्नि अरु विषका भय भी नहीं होता ॥ हे रामजी! यह विश्व सब आत्मरूप है, जैसी भावना करीती है, तैसाही आगे हो भासता है, जब शस्त्रविषे शस्त्रके अर्थकी भावना होती है, तब शस्त्र हो

खेता है, अरु जो ज्ञानवान है तिसकों जगतभ्रमका अभाव है, अब ज्ञानी अरु अज्ञानी दोनोंका लक्षण श्रवण कर ॥ हे रामजी! जैसे किसी पुरुषकों ताप चढता है, तिसका हृदय जलता है, अरु तृषा बहुत होती है, अरु जिसका ताप नष्ट हो गया, तिसका हृदय शीतल होता है, अरु जलकी तृषा भी नहीं होती, तैसे जिस पुरुषकों अज्ञानरूपी ताप चढ्या हुआ है, तिसका हृदय जलता है, अरु भोगरूपी जलकी तृष्णा बहुत होती है, अरु जिसके हृदयतें अज्ञानरूपी ताप मिटि गया है, तिसका हृदय शीतल होता है, अरु भोगरूपी जलकी तृष्णा मिट जाती है, अब ताप निवृत्त करणेका उपाय श्रवण कर, शास्त्रके अर्थवादकरि बुद्धि विभ्रम हो जाती है, अरु मैं तुझकों सुगम उपाय कहता हौं, जो निरहंकार होणा, यही सुगम उपाय है, न मैं हौं, न यह जगत है, जब तूं ऐसे निश्चयकों धारैगा, तब सब जगत तुझकों ब्रह्मस्वरूप भासैगा, अरु किसी पदार्थकी वांछा न रहैगी, जब सब पदार्थकों मिथ्या जाणीकरि अपणा भी अभाव करैगा, तब पाछे प्रत्यक् चेतन परमानंदस्वरूप सबका अधिष्ठान शेष रहैगा ॥ हे रामजी! यह अहंतारूपी यक्ष जो उठ्या है सो मिथ्या है, अरु इस मिथ्या पुरुषनें नानाप्रकार जगत कल्प्या है सो अहंकार भी मिथ्या है, अरु जगत भी मिथ्या है, जब तूं अपणे स्वरूपविषे स्थित होवैगा, तब जगतभ्रम मिटि जावैगा, जैसे स्वप्नविषे जगत भासता है, अरु सुंदर पदार्थ भासते हैं, तिनकी इच्छा करता है, जबलग जाग्या नहीं तबलग जाणता है जो सदैव यह पदार्थ हैं, नाश कदाचित् नहीं होणा, अरु कहता है, जो अमका रूप देखियें, अमका भोजन करियें, इत्यादिक इच्छा करता है, जब जागी उठ्या तब जाणता हैजो मेराही संकल्प था, बहुरि उह पदार्थ, सुंदर स्मरण भी होते हैं, अथवा भासते हैं तौ भी उनकों मिथ्या जाणता है, तैसे जब आत्मस्थितिविषे जागता है तब सर्व ब्रह्मही भासता है ॥ हे रामजी! इस जगतका बीज अहंता है, जैसे दुःखका बीज पाप होता है, तैसे जगतका बीज अहंता है, तातें तुम निरहंकार पदविषे स्थित होहु, यह सब

भासते हैं, सर्प अग्निविषे सब अपणे अपणे अर्थाकार भासते हैं, अरु जो सर्व आत्मभावना करीती है, त
ब सर्व आत्माही भासता है, दूसरी वस्तु कछु बनी नहीं, तौ दिखाइ कैसे देवै अरु जो पुरुष कृतकृत्य
नहीं भया, अरु आपकों कृतार्थ मानता है, अरु दुःखनिवृत्तिका उपाय नहीं करता, तौ दुःखके आयेतें दुःख
ही देवैगा, अरु दुःख इसकों चलाये ले जावैगा, अरु सुख जब आवैगा तब सुख भी इसकों चलाये ले जा
वैगा ॥ हे रामजी ! जो पुरुष सर्व ब्रह्म कहता है, वाणी करिके अरु निश्चयतें रहित है, अरु शास्त्र भी बहुत दे
खता है, तब उह महामूर्ख है, जैसे जन्मका अंध होता है, अरु सूर्यकों नहीं जानता है, तैसे उह आत्मअ
नुभवतें रहित है, जब आत्मपदका साक्षात्कार होवैगा, तब ऐसे आनंदकों प्राप्त होवैगा, जिसके पाएतें अ
वर पदार्थ रसतें रहित भासैंगे, ब्रह्मातें आदिक काष्ठपर्यंत सब पदार्थ विरस हो जावैंगे, तातें आत्मपरायण
होहु, सदा आत्मपदकी भावना करहु ॥ हे रामजी ! जैसी भावना होती है, तैसा जगत भासता है; जैसे शु
द्ध मणिके निकट जैसी वस्तु राखियें तैसा प्रतिबिंब होता है, तैसेही जैसी भावना करता है, तैसा रूप जग
त भासता है, तातें जगत ब्रह्मरूप जाण, अवर दूसरा भासै सो भ्रममात्र जाण, जैसे पत्थरकी शिला उपर
पुतलियां लिखते हैं, सो शिलारूपही हैं, तैसे यह जगत सब आत्मस्वरूप है, जब आत्मपदकी तुझकों प्रा
प्ति होवैगी, तब सब पदार्थ विरस होवैंगे ॥ हे रामजी ! यह जगत मिथ्या है, जो पुरुष इस जगतकों पदार्थ
करि जाणता है, अरु कहता है, हम मुक्त होवैंगे, सो ऐसे है, जैसे अंधकूपविषे जन्मका अंध गिरै, अरु कहै,
अंधकारकेसाथ मैं सचक्षु होउंगा सो मूर्ख है, तैसे आत्मज्ञानाविना मुक्त नहीं होता ॥ ॥ इति श्रीयोगवा
सिष्ठे निर्वाणप्रकरणे पुनर्निर्वाणोपदेशो नाम शताधिकद्विषष्टितमः सर्गः ॥ १६२ ॥ ॥ ॥ ॥

॥ वसिष्ठ उवाच ॥ हे रामजी ! अहंतातें आदि लेकरि जो जगत भासता है सो मिथ्या भ्रम करिके उदय हु
आ है, इसकों त्यागिकरि अपणे अनुभव स्वरूपविषे स्थित होहु, इस मिथ्या जगतविषे आस्था करणेकी मू

कैसे है, श्रवण कर ॥ हे रामजी! आत्मा अनुभवरूप सो विद्यमान देखे है, तिसकों त्यागिकरि जो अवरका पूजन करते हैं, सो जन्ममरणके बंधनतें मुक्त नहीं होते, मूढताविषे रहते हैं, अरु आत्मदेवकी पूजा श्रवण कर, जो कछु अनिच्छित आवै सो तिसकों अर्पण करियें, अरु ऐसी पूजाविषे भी स्थित नहीं होणा, जो इसके जानणेवाला है, तिसविषे अहंप्रत्यय करणी यह बडी पूजा है ॥ हे रामजी! इस आत्मदेवतें इतर जो सूर्य चंद्रमा आदिक भेद पूजा है, सो तुच्छ है, जब तूं आत्मपूजाविषे स्थित होवै, तब अवर पूजा तुझकों सूके तृणकी नांई भासैंगी, अरु दान भी आत्मदेवकों करणा है, सो किस करिके करणे योग्य है, बोध करिके करणे योग्य है, अरु कैसे उत्पन्न होता है, प्रथम वैराग्य अरु धैर्य बोधका कारण है, अरु संतोष होवै, यथालाभविषे संतुष्ट होणा अरु ब्रह्मविद्याका विचार करणा, अरु संतका संग करणा, इन साधनकरि जब बोधरूपी सूर्योदय होवैगा तब द्वैतरूपी अंधकार नष्ट हो जावैगा, ज्ञानरूपही भासैगा, बहुरि जो ज्ञान उपजा है,सो भी शांत हो जावैगा, तातें उसी देवकी पूजा करु, जिस करिके आत्मपदकी प्राप्ति होवै, अरु आत्मदेवकी पूजाके निमित्त फूल भी चाहियें, सो आत्मविचार करणा, अरु सम जो है, चित्तकी वृत्ति अंतर्मुख करणी, अरु यथालाभविषे संतुष्ट रहणा, संतकी संगती करणी, इन फूल करिके नैवेदन करणा, यह पूजा भी तब होती है, जब अंतःकरण शुद्ध होता है, अरु तिसकरि ज्ञान उत्पन्न होता है, जब ज्ञान उपज्या, तब आत्मदेवका साक्षात्कार होता है, सो ज्ञानका लक्षण श्रवण करु, गुरु अरु शास्त्रतें जो वस्तु सुणी है, तिसविषे स्थिति होती है, अरु संसारकी वासना क्षीण हो जाती है, तब ज्ञानी कहाता है, जब इस ज्ञानकी पूर्णता होती है, तब जगत उसकों ब्रह्मस्वरूपही भासता है, उसकों शस्त्र काटि नहीं सकते, अरु सिंह सर्पका भेद नहीं होता, अग्नि अरु विषका भय भी नहीं होता ॥ हे रामजी! यह विश्व सब आत्मरूप है, जैसी भावना करीती है, तैसाही आगे हो भासता है, जब शस्त्रविषे शस्त्रके अर्थकी भावना होती है, तब शस्त्र हो

वैगा, केवल परमार्थसत्ता भासैगी, इसीका नाम निर्वाण है, अरु यह चारों भूमिका शांतिके स्थान हैं, जैसे कोउ पैढेंकरि तपता आवै, अरु तिसकों शीतल स्थान प्राप्त होवै तव शांतिकों पावता है, तैसे यह चारों शांतिके स्थान हैं, निर्वाणता, अरु निरहंकारता, अरु वासनाका त्याग, अरु परम उमशम इन करिके ज्ञेयविषे स्थित होणा यह शांतिका स्थान है, जब तूं स्थित होवैगा, तब द्रष्टा दर्शन दृश्य त्रिपुटीका अभाव हो जावैगा, केवल द्रष्टाही रहैगा ॥ हे रामजी ! द्रष्टा भी उपदेश जतावणेकेनिमित्त कहा है, जब दृश्यका अभाव हुआ तब द्रष्टा किसका होवै, केवल अपणे आपविषे स्थित है, द्वैत जो है चैत्य, तिसतें रहित अद्वैत चेतन है, शुद्ध है, तिसविषे स्थित होकरि जगतका त्याग करु, यह जगतबुद्धि जन्मके देणेहारी है, जो जगतके पदार्थ सुखदायी भासते हैं, सो दुःखके देणेहारे हैं, इनका विष जाणीकरि त्याग कर, जैसे आकाशविषे तरवरे भासते हैं, तैसे यह जगत अणहोता भासता है, आत्माविषे दृश्य अवर कछु नहीं, एकही पदार्थविषे दो दृष्टि हैं, ज्ञानी उसकों आत्मा जाणते हैं, अरु अज्ञानी जगत जाणते हैं ॥ दोहा ॥ सब भूतन की रात्रि सो, संतनका दिन होय; जो लोकन दिन मानिया, संत रहै तब सोय ॥ १ ॥ ज्ञानी परमार्थ तत्त्वविषे जागे हैं, अरु संसारकी उरतें सोए रहै हैं, अरु अज्ञानी परमार्थतत्त्वतें सोए हुए हैं, अरु संसारकी उर सावधान हैं ॥ हे रामजी ! यह जगत मनतें फुऱ्या है, अरु ज्ञानीका मन सतपदकों प्राप्त भया है, इस करिके जगतकी भावना नहीं फुरती, जैसे बालककों संसारके पदार्थका ज्ञान नहीं होता, तैसे ज्ञानीके निश्चयविषे जगत कछु वस्तु नहीं ॥ हे रामजी ! जब ज्ञान उपजता है, तब जगत कछु भिन्न वस्तु नहीं भासता, जैसे जलकी बुंद जलविषे डारियें तौ भिन्न नहीं भासती, तैसे ज्ञानीकों जगत भिन्न नहीं भासता, जैसे बीजविषे वृक्ष होता है, तैसे मनविषे जगत स्थित होता है, जैसे वृक्ष बीजरूप है, तैसे जगत मनरूप है, जब जगत नष्ट होवै, तब मन भी नष्ट हो जावैगा, अरु मन नष्ट होवै, तब दृश्य भी नष्ट होवैगी, एकके अभाव

हुए दोनोंका अभाव हो जाता है, अरु मन नष्ट होवै, तौ फुरना भी नष्ट होवै, अरु फुरना नष्ट होवै तौ मन भी नष्ट होता है ॥ हे रामजी ! यह जगतके अंतर बाहिर जो भासता है, सोइ मन है, तातें मनकों स्थिर करि देखैगा, तब जगतकी सतता नहीं भासैगी, अज्ञानीके हृदयविषे जगत दृढ स्थित है, तातें दुःख पावता है, जैसे बालककों अपणे परच्छायेविषे भूत भासता है, अरु दुःख पावता है, अरु अवर कोउ निकट खडा है, तिसकों नहीं भासता, उह दुःख नहीं पावता ॥ हे रामजी ! यह जगत कछु सत वस्तु होती तौ ज्ञानवानकों भी भासता, सो ज्ञानीकों नहीं भासता, तातें जगत कछु वस्तु नहीं, जैसे एकही स्थानविषे दो पुरुष बैठे हैं, अरु एककों निद्रा आई है, तिसकों स्वप्न जगत भासता है, अरु नानाप्रकारकी चेष्टा होती है, अरु दूसरा जो जागता बैठा है, तिसकों उसका जगत नहीं भासता, तैसे जो पुरुष परमार्थसत्ताविषे जागृत है, तिसकों जगत शून्य भासता है ॥ हे रामजी ! इह जगत मिथ्या है, तिसकी तृष्णा तूं काहेकों करता है, अपणे स्वभावविषे स्थित होहु, यह जगत परस्वभाव है, ऐसे जाणीकरि भावे जैसी चेष्टा करु, तुझकों बंधन न करैगी, अरु पूर्व पदकी प्राप्ति होवैगी, जैसे सूके तृण अग्निके जले हुएकों पवन उडाय ले जाता है, तब नहीं जाणीता, जो कहां गया, तैसे ज्ञानरूपी अग्निकरि जलाया, अरु निरहंकारतारूपी पवनकरि उडाया, संसाररूपी तृण न जानैगा, जो कहां गया, जैसे लाख योजनपर्यंत चल्या जावै तौ भी आकाशही दृष्ट आता है, सब सृष्टिकों धारि रहा है, तैसे सब दृश्यकों जगतकों आत्मा धारता है, संसारका शब्द अर्थ आत्माविषे कोउ नहीं, इसकों छोडीकरि देख जो सर्व शब्द अर्थका अधिष्ठान आत्माही है ॥ हे रामजी ! रूप अवलोकन मनस्कार मिथ्या उदय हुए हैं, तातें इनका त्याग करु, जैसे मरुस्थलविषे जलाभास मिथ्या है, तैसे आत्माविषे जगत मिथ्या भ्रममात्र है, इसके संबंध करिके दुःखी होता है, जैसे जेवरीविषे सर्प अरु सीपिविषे रूपा मिथ्या है, तैसे आत्माविषे जगत है, तूं आत्मा ब्रह्म है, अरु दुःखतें रहित है, अपणे स्वभावविषे स्थित होहु, अरु

आत्मदृष्टि करिके देख जो सर्व आत्मा है, अथवा जगतकों मिथ्या जाण तौ भी शेष आत्मपद रहैगा, जैसे जाग्रत स्वप्न षुसुप्तिके अभाव हुए शांतपद शेष रहता है, तैसे जगतके अभाव किएतें आत्मपद शेष भासैगा, यह जगत अत्यंत अभाव है, अरु जो दृष्टि आता है, सो भ्रममात्र है, एक कालविषे होता है, अरु दूसरे कालविषे नष्ट हो जाता है, स्वप्नविषे जाग्रतका अभाव हो जाता है, अरु जाग्रतविषे स्वप्नका अभाव हो जाता है, अरु सुषुप्तिविषे दोनोंका अभाव हो जाता है, तातें भ्रममात्र है, अरु विश्व आत्माका चमत्कार है, जैसे समुद्रविषे तरंग होते हैं, तैसे आत्माविषे जगत है, अहंता करिके उदय होता है, अहंताके अभावतें अभाव हो जाता है, जिनकों अहंताका अभाव हुआ है, उही संत हैं, अरु उत्तम पुरुष हैं, तिन महानुभाव पुरुषोंका अभिमान नष्ट हो गया है, अरु भोगकी आशा नष्ट हो जाती है, उह निर्भ्रांतिरूप नित्यही समाधिरूप होते हैं॥ ॥ इति श्रीयोगवासिष्ठे निर्वाणप्रकरणे ब्रह्मैकताप्रतिपादनं नाम शताधिकत्रिषष्टितमः सर्गः ॥ १६३ ॥ ॥ ॥ राम उवाच ॥ हे भगवन्! यह मनरूपी मृग भटकता है, अरु वनविषे जलता है, उह कवन वृक्ष है, समाधानरूप जिसके नीचे आया शांतपदकों प्राप्त होवे, उसके फूल फल लता कैसे होते हैं, अरु वृक्ष कहां होता है, सो कृपाकरि कहौ॥ ॥ वसिष्ठ उवाच॥ हे रामजी! जिस प्रकार समाधानरूप वृक्ष उत्पन्न होता है, सो श्रवण कर, क्रमकरिके इसके पत्र पुष्प लतातें आदि सब समाधानरूप इस वृक्षका है॥ हे रामजी! यह वृक्ष सब जीवकों साधणे योग्य है, कल्याणके निमित्त सो अब तूं इसका क्रम सुण, बल करिके उत्पन्न होता है, अरु संत जनोंके वनविषे यह ध्यानरूपी वृक्ष उपजता है, अरु चित्तरूपी पृथ्वीविषे लगता है, अरु वैराग्यरूपी इसका बीज है, सो वैराग्य दो प्रकार होता है, जो कोउ दुःख कष्ट प्राप्त होवै तिसकरि भी वैराग्य उपजि आता है, अथवा शुद्ध हृदय निष्काम होता है, तौ भी वैराग्य उपजता है, तिस वैराग्यरूपी बीजकों चित्तरूपी भूमिकाविषे पाइता है, अरु जब

वासनारूपी हल फेरता है, संतकी संगति अरु सच्छास्त्ररूपी जलकरि सिंचता है, मनरूपी क्यारीविषे सो जल निर्मल है; शीतल है, अरु हृदयगम्य है, तिस कोमलता अरु दयारूपी जलकरि बीजकों सिंचता है, तब बढणेकी आशा होती है, अरु सब क्रियारूपी जाड करिके अशुभरूपी कुंडेकों दूर करता है, अरु बहुत जलतें भी रक्षा करता है, सो आत्मविचाररूपी सूर्यकी किरणकरि सूकाता है, अरु तिसके चउफेर धैर्यरूपी वाडी करियें, अरु तप दान तीर्थ स्नानरूपी थडे ऊपर रख बैठणा, जो बीज जलि न जावै, अरु आशारूपी पक्षीतें रक्षा करणी, जो वैराग्यरूपी बीजकों काढि न ले जावै, अरु अभिलाषारूपी बुढे बैलतें रक्षा करणी जो क्षेत्रविषे प्रवेश करिके इसकों मर्दन न करै, तिसके निमित्त संतोष अरु संतोषकी स्त्री मुदिता दोनो बैठाय रखणे, अरु इस बीजका नाश करता जो मेघतें उपजता है गडा, तिसतें भी रक्षा करणी, सो गडा क्या है, संपदा धनकी प्राप्ति होणी, अरु सुंदर स्त्रियांकी प्राप्ति होणी, सो वैराग्यरूपी बीजका नाशकर्त्ता गडा है, एक इसकी रक्षाका सामान्य उपाय है, अरु एक विशेष उपाय है, जो तप करणा अरु इंद्रियांकों सुकुचावणा, अरु दुःखी पर दया करणी, अरु संतोषमात्र पाठ जाप करणा इत्यादिक शुभ क्रिया करणी, यह शुभ क्रियारूपी पुतली यंत्री इसके विद्यमान राखियें तौ दूर हो जाता है, अरु दूसरा परम उपाय यह है जो संतकी संगति करणी, अरु सच्छास्त्रका श्रवण करणा, अरु प्रणव जो ॐकार है, तिसका ध्यान जप करणा, अरु तिसके अर्थकों विचारणा, यही जो है त्रिशूलरूप तिसका त्रिशूल करणा, सो गडेके नाशका परम उपाय है, जब एते शत्रुतें रक्षा करै तब बीजकी उत्पत्ति होवै, तिसकों संतके संग अरु सच्छास्त्रके विचाररूपी वर्षाकालके जलकरि सिंचिये, तब अंकुर निकसती है, अरु बडा प्रकाश होता है, जैसे द्वितीयाका चंद्रमा होता है, अरु सब कोउ तिसकों प्रणाम करते हैं, तैसे संतोष दया अरु यशरूपी अंकुर निकसता है, तिसके दो पत्र निकसते हैं, एक वैराग्य, दूसरा विचार, सो दिन दिन प्रति बढता है, अरु

शास्त्रतें जो श्रवण किया है जो आत्मा सत्य है, अरु जगत मिथ्या है, तिसका वारंवार अभ्यास करणा, इस जलके सिंचणेकरि अंकुर दिन दिन प्रति बढता जावैगा, अरु तिसके स्तंभ बडे होवैंगे ॥ हे रामजी! जब टास बडे होते हैं, तब वानर उसपर चढीकरि तोडी डारते हैं, सो रागदोषरूपी वानर हैं, तातें इस वृक्षकों दृढ वैराग्य अरु संतोष अभ्यासरूपी रसकरि पुष्ट करणा, जैसे सुमेरु पर्वत होता है, तैसे संतोषकरि पुष्टि करणी, जब ऐसे हुआ तब सुंदर पत्र अरु टास लगैंगे, अरु फूल मंजरी इसके साथ लगैंगे, अरु बडे मार्गपर्यंत इसकी छाया होवैगी, शांति शीतलता शुद्धता अरु कोमलता दया यश कीर्त्ति इत्यादिक गुण आनि प्रगट होवैंगे, तिसके नीचे मनरूपी मृग विश्राम पावता है, अरु शीतल होता है, अध्यात्म अधिभूत अधिदैव ताप मिटि जाते हैं, अरु परम शांतिकों प्राप्त होता है ॥ हे रामजी! यह मैं तुझकों ध्यानरूपी वृक्ष कहा है, जहां यह वृक्ष उत्पन्न होता है, तिस स्थानकी शोभा कही नहीं जाती, जो इस वृक्षकी शरणकों प्राप्त होता है, तिसके ताप मिटि जाते हैं, अरु शांतिवान होता है, अरु यह वृक्ष जो बढता है, सो ब्रह्मरूपी आकाशके आश्रय बढता है, अरु इसविषे वैराग्यरूपी रस है, अरु संतोषरूपी इसकी छील हैं, तिसकरि पुष्ट होता है; जो पुरुष इसका आश्रय लेवैगा, सो शांतिकों प्राप्त होवैगा ॥ हे रामजी! जबलग गमनरूपी मृग इस ध्यानरूपी वृक्षका आश्रय नहीं लेता, तबलग भटकता फिरता है, अरु शांतिकों नहीं प्राप्त होता है, जैसे मृग वनविषे भटकता है, तैसे भटकता है, तिसकों द्वैत अज्ञान प्रमादरूपी वेधक मारणे लगता है, तिसकरि दुःख पावता है, तिसके भयकरि गांवके निकट आता है, तब उह आपोआप इसकों पकडीकरि खेद देते हैं, तिसकरि बडे कष्टकों पावता है, सो गांववासी इंद्रियां हैं, जब इनकी उर आता है, तव अपणे अपणे विषयकी उर बंधायमान करतियां हैं, इनके भयकरि बहुरि वनकों जाता है, तहां वनकी तप्तकरि दुःखी होता है, सो विषयकी अप्राप्तिरूपी तप्त है, तिसकों त्यागिकरि रसरूप स्थानकों दउडता है, शां

तिके निमित्त जब उहां जाता है, तब कामरूपी श्वान इसके मारनेकों दउडता है, तिसके भयकरि बहु
रि वनकी उर धावता है, तब क्रोधरूपी अग्नि जलावती है, अरु वासनारूपी मच्छर दुःख देते हैं, अरु
लोभ मोहरूपी अंधेरी चलती है, तिसकरि अंध हो जाता है, हरे हरे तृणकों देखीकरि ग्रहण करता है,
तब टोयेविषे गिर पडता है, उह टोया तृणकरि आच्छाद्या है, सो तृण कवन हैं, पुत्र धन तिसकों सुंदर
देखिकरि ग्रहण करती है, तब ममताविषे गिर पडता है, इस प्रकार दुःख पावता है ॥ हे रामजी ! ज
ब यह मन झूठ बोलता है, तब मृत्तिकाविषे लोटता है, ऐसी चेष्टा करता है, अरु जब मनरूपी बघाड आता
है, तब इसका भक्षण करि जाता है, जब ध्यानरूपी वृक्षतें विमुख होता है, तब एते कष्टकों पावता है, जब मन
रूपी बिघाडतें छूटता है, तब आशारूपी जंजीरविषे बंधायमान होता है, जबलग इस वृक्षके निकट नहीं आ
ता, तबलग बडे कष्ट स्थानोंकों जाता है, तमाल वृक्षादिकके तले भी जाता है, अरु कंटकके वृक्षों तले भी जा
ता है, परंतु शांतिवान किसी स्थानविषे नहीं होता, बडे कष्टकों पावता है ॥ ॥ इति श्रीयोगवासिष्ठे निर्वा
णप्रकरणे हरिणोपाख्याने वृत्तांतयोगोपदेशो नाम शताधिकचतुःषष्टितमः सर्गः ॥ १६४ ॥ ॥ ॥

॥ वसिष्ठ उवाच ॥ हे रामजी ! इस प्रकार मूढबुद्धि मनरूपी हरिण भटकता है, तातें मेरा यही आशीर्वा
द है जो तुमकों उस वृक्षका संग होवै, जब उस वृक्षके निकट आता है, तब शांति प्राप्त होती है, अरु जब इसके
नीचे आय बैठता है, तब तीनों ताप अंतःकरणतें मिटि जाते हैं, अवर जेते कछु वृक्ष हैं तिनके निकट गया म
नरूपी मृग शांतिकों नहीं पावता, सो अवर वृक्ष कवन हैं, विषयरूपी वृक्षके निकट गया शांतिवान नहीं
होता, जब ध्यानरूपी वृक्षके निकट आता है, तब शांतिकों पाइता है, अरु बुद्धि प्रकाशि आती है, जैसे सू
र्यमुखी कमल सूर्यकों देखीकरि खिली आता है, बहुरि उसके अनुभवरूपी फल हैं, अरु शास्त्रके विचाररू
पी पत्र फूल हैं, तिनकों देखीकरि बडे आनंदकों प्राप्त होता है, अरु वृक्ष उपर चढी जाता है, चढीकरि ए

थ्वी भूमिका त्याग करता है, जैसे सर्प अपणी कंचुकीका त्याग करता है, अरु नूतन सुंदर शरीरकरि शो
भता है, अरु जब उस वृक्षपर चढता है, तब गिरता नहीं, पत्र उसके बहुत बली हैं, तिनके आश्रय ठहरता
है, सो कवन पत्र हैं, ध्यानरूपी वृक्षके सच्छास्त्ररूपी पत्र हैं, जब ध्यानरूपी वृक्षतें उतरता है, तब शास्त्रके
अर्थविषे ठहरता है, अरु जेते विषय पदार्थ देखीते हैं, सो क्षारवत् दृष्ट आते हैं, अरु अपणी पिछली चेष्टा
कों स्मरण करिके पछताता है, जैसे किसीनें मद्यपान किया होवै अरु तिसविषे नीच चेष्टा करै, जब मद उ
तरता है तब पसताया करता है, तैसे मनरूपी मृग अपणी पिछली चेष्टाकों धिक्कार करता है, अरु कहता है
जो बडा आश्चर्य है, मैं एता काल इस वृक्षतें विमुख हुआ भटकता फिरता हों, अब मुझकों शांति प्राप्त हु
ई है, जैसे दिनकी तप्त अभाव हुए चंद्रमुखी कमलिनीकों शांति प्राप्त होती है, तैसे मनरूपी मृगकों शां
ति प्राप्त होती है ॥ हे रामजी! पुत्र धन स्त्रियादिक जो दिखते हैं, तिनकों संकल्पपुरकी नांई अरु स्वप्नव
त् देखता है, जैसे स्वप्नतें जागे हुए स्वप्नपुरकों स्मरण करता है, परंतु तिसविषे अभिमान नहीं होता,
तैसे इनविषे भी अभिमान नहीं होता, जब अनुभवरूपी फलका भक्षण करता है, तब बडे आनंद
कों पावता है, जिसविषे वाणी नहीं प्रवृत्ति शकती, परम शांत अरु निर्मल पदकों प्राप्त होता है, अरु
निरतिशय पदकों प्राप्त होता है, जो मनका विषय होवै, सो सातिशय पद है, अरु जो मनका विषय न
हीं सो निरतिशय पद है, अरु जो इंद्रियांका विषय है तिसका नाश भी होता है, अरु जो इंद्रियां अरु म
नका विषय नहीं तिसका नाश नहीं होता, सो अविनाशी पदकों पावता है, अरु जैसे किसीकों बाण लाग
ता है, अरु तिसकी विरोधी बूटी उसके सन्मुख राखियें तौ निकसी आता है, तैसे अनुभवरूपी बूटीके
सन्मुख हुए मोहबंधनरूपी सर खुलि पडते हैं, अरु परम पदकों पावता है ॥ हे रामजी! ज्ञानवान जगततें
मृतक हो जाता है, उसकों संसारका लेप कछु नहीं लगता, जैसे लकडीविना अग्नि शांत हो जाती है,

तैसे वासनातें रहित ज्ञानवानकी चेष्टा शांत हो जाती है, अर्थ यह जो संसारकी सत्यतातें रहित चेष्टा होती है, बहुरि संसाररूपी अग्नि उदय नहीं होती, अरु द्वैत एक कल्पना भी मिटि जाती है, अरु उन्मत्तकी नांई अपणे स्वरूपविषे घूर्म रहता है, जैसे मरुस्थलकी धूपकी इच्छा पैंडोइ नहीं करता तैसे ज्ञानी विषयकी तृष्णा नहीं करता, जिसनें आत्मअनुभवरूपी अमृतपान किया है, तिसकों विषरूपी कांजीकी इच्छा नहीं रहती, उह पुरुष सदा निर्वासी है, जब यह पुरुष निर्वासी होता है, तब चंचल जो मनकी वृत्ति है सो सब लीन हो जाती है, केवल आत्मत्वमात्र पद रहता है, अरु मैं मेरा यह भावना नष्ट हो जाती है, जबलग चित्तका संबंध होता है, तबलग मैं मेरा भासता है, जब चित्तका संबंध मिट्या तब एकाकार हो जाता है, जैसे एक सूका काष्ठ अरु एक गिल्ला काष्ठ होता है, सो सूका शुद्ध कहाता है, अरु गिल्ला उपाधिक कहाता है, जब जल सूकि गया, तब शुद्ध होंता है, तैसे जब मनकी उपाधि नष्ट भई, तब शुद्ध आत्माही रहता है, अरु एकरस भासता है ॥ हे रामजी! संसार द्वितीय भ्रम करिके भासता है, जैसे पत्थरकी शिलाविषे पुतली अनउपजी भासती है, सो न सत है, न असत है, जब पत्थरतें भिन्न करि देखियें, तब सत नहीं, जो शिलाकरि देखियें तब उही रूप है, तैसे जगत आत्मातें भिन्न सत्य नहीं, आत्मसत्तातें आत्मरूप है, जैसे छोटे बालकके हृदयविषे जगतका शब्द अर्थ नहीं होता, तैसे ज्ञानीकी चेष्टा भी प्रारब्धवेग करिके होती है, परंतु उसके हृदयविषे जगतके शब्द अर्थका अभाव है ॥ हे रामजी! जो कछु प्रारब्ध होती है, सो अवश्य उसकों भी आनि प्राप्त होती है, मिटती नहीं, शुभ अथवा अशुभ, जैसे मेघतें बुंदां गिरती हुई नष्ट नहीं होतियां, मेघ मंत्रशक्ति करिके नष्ट होता है, तैसे प्रारब्धकर्म नष्ट नहीं होता, अवर नष्ट होते हैं, परंतु उह तिनविषे बंधायमान नहीं होता, अज्ञानीके हृदयविषे संसार सत्य भासता है, अरु भिन्न भिन्न पदार्थ भासते हैं, पदार्थका ज्ञान है, अरु ज्ञानीके हृदयविषे आत्माका ज्ञान है, संसारकी सत्यता

तिसकों नहीं भासती ॥ हे रामजी ! यह जो समाधानरूपी वृक्ष मैं तुझकों कहा है, सो विधिसंयुक्त तिसकी सेवना करियें तौ अनुभवरूपी फल प्राप्त होता है, अरु बोधतें रहित होकरि करता है, तौ अनेक यत्नकरि भी फलकी प्राप्ति नहीं होती, काहेतें जो ऐसी भावना उसकों नहीं प्राप्त होती, जो आत्मशुद्ध है, अरु सत चिद् आनंद है, अरु जिनकों यह भावना प्राप्त होती है, तिनकों भोगकी इच्छा नहीं रहती, जैसे किसीनें अमृतपान किया होता है, तब अवर अमल अरु कटुक फलकी वांछा नहीं करता, तैसे ज्ञानी इच्छा नहीं करता, जैसे रुईके पोवेकों अग्नि लगी, अरु उपरतें तीक्ष्ण पवन चला तौ नहीं जाणता जो कहां जाय पडा, तैसे जगतरूपी रुईका पोवा ज्ञान अग्नीकरि दग्ध किया हुआ, अरु वैराग्यरूपी पवनकरि उडाया, नहीं जाणीता जो कहां जाय पडा, आकाशही आकाश भासता है, जगत सत नहीं भासता, तौ फिर तृष्णा किसकी करै, तृष्णातें रहित स्थित होता है ॥ हे रामजी ! दुःखका मूल तृष्णा है, तृष्णाकरि भटकता है, जैसे पर्वतके पक्ष थे, तबलग उडते थे, पक्षविना उडणेतें रहित भये, गंभीर स्थिर हो रहे, तैसे जब मनतें वासना नष्ट हुई, तब मन स्थिर हो जाता है ॥ हे रामजी ! पैंडोई वांछित देशकों तब जाय प्राप्त होता है, जब इतर देशका त्याग करता है, तैसे आत्मा शुद्ध स्वरूप परमानंद अपणा आप तब प्राप्त होता है, जब धन लोक पुत्र ईषणाका त्याग करै, जब आत्माकी प्राप्ति भई तब निर्विकल्प समाधिकरि निर्विकल्प चेतनका साक्षात्कार होता है, जब समाधिविषे साक्षात्कार हुआ, तब उत्थानकालविषे भी समाधिस्थित होता है, अरु परम निर्वाणपदकों प्राप्त होता है, अरु चित्तरूपी वल्ली दूर हो जाती है, जैसे रसडीकों वल होती है, तिसकों खैंचिकरि बहुरि छोडता है, तब उह सूधी हो जाती है, तैसे जिसकों समाधिविषे साक्षात्कार हुआ, तब उसकों उत्थानकालविषे भी उही भासता है, अरु जिसकों उसका प्रमाद है तिसकों जगत भासता है ॥ हे रामजी ! वस्तु एक है, परंतु तिसविषे दो दृष्टि हैं, जैसे जेवरी एक है, स

म्यक्दर्शीकों जेवरी भासती है, अरु असम्यक्दर्शीकों सर्प हो भासता है, तैसे ज्ञानवानकों आत्मा भासता है, अरु अज्ञानीकों जगत भासता है, जिस पुरुषनें ज्ञानकरि जगतकों असत नहीं जाण्या तिसकों ऐसे जाण जो चित्रकी अग्नि है, तिस करिके कोउ कार्य सिद्ध नहीं होता, न शीतही दूर होती है, अरु जिसकों स्वरूपकी इच्छा है, अरु तृष्णाके नाश करणेका प्रयत्न करता है, अरु जगतकों मिथ्या विचारता है, सो विचार कियेतें आत्मपदकों प्राप्त होवैगा, अरु तृष्णा भी तिसकी निवृत्त हो जावैगी ॥ हे रामजी! ज्ञानवानकी तृष्णा स्वाभाविक मिट जाती है, जैसे सूर्यके उदय भये अंधकार मिटि जाता है, तैसे वस्तुकी सत्ताकरि तिसकी तृष्णा नष्ट हो जाती है, अरु परमपदविषे स्थित होता है ॥ हे रामजी! जिकसों दृश्यविषे निरसता है, सो उत्तम पुरुष है, सो मनुष्यशरीरकों पायकरि ब्रह्म होता है, तिसकों मेरा नमस्कार है, उह मेरा गुरु है ॥ हे रामजी! जब इसकी बुद्धि विषयतें विरस हुई, तब कल्याण हुआ, वैराग्य करिके बोध होता है, अरु बोध करिके वैराग्य होता है, परस्पर दोनों संबंधी हैं, जब एक आता है, तब दूसरा भी आता है, जब यह आते हैं, तब तीनों ईषणा निवृत्त हो जातियां हैं, जब तीनों ईषणा गई तब अमृतकी प्राप्ति होती है, सो कैसे प्राप्ति होती है, श्रवण कर, संतका संग करणा, अरु सच्छास्त्रका श्रवण करणा, तिसकरि अपणे स्वरूपका अभ्यास करणा, इसकरि आत्मपदकी प्राप्ति होती है, यह तीनों श्रेष्ठ परस्परही एक हैं, जैसे अष्ट चरणवाला कीट होता है, जो प्रथम चरणकों राखिकरि अवर चरणकों राखता है, तब सुखेन चल्या जाता है, तैसे संतके संग अरु सच्छास्त्रके श्रवणकरि आत्मपदका अभ्यास करता है, तब शीघ्रही आत्मपदकों प्राप्त होता है, अरु जगतका अभाव हो जाता है ॥ हे रामजी! जगतके भाव अरु अभावकों ज्ञानी जाणता है, जैसे जाग्रत स्वप्न सुषुप्तिकों तुरीयावाला जाणता है, तैसे जगतके भावअभावकों ज्ञानी जाणता है, जैसे अग्निविषे सूका तृण डार्या दृष्ट नहीं आता, तैसे ज्ञानवानकों जगत दृष्ट नहीं

आता ॥ हे रामजी! ज्ञानवानकों सर्वदा समाधि है, उत्थान कदाचित् नहीं होता, जबलग उस पदकों प्राप्त नहीं भया, तबलग साधनाविषे जुडता रहै, जब उस पदकों प्राप्त भया, तब फिरि यत्न कोउ नहीं रहता ॥ हे रामजी! इस चित्तके दो प्रवाह हैं, एक जगतकी उर जाता है, अरु एक स्वरूपकी उर जाता है, जो जगतकी उर जाता है सो उपाधिक है, अरु जो स्वरूपकी उर जाता है सो उपाधिकों दूर करणेहारा है, जैसे एक लकडी गिली होती है, अरु एक सूकी होती है, जो गिली है तिसविषे उपाधि जल है, तिस करि विस्तारकों पावती है, जब जल नष्ट हो जाता है, तब शुद्ध होती है, बहुरि प्रफुल्लित नहीं होती, तैसे संसारकी सत्यताकरि चित्त वृद्ध होता है, जब संसारकी वासना नष्ट होती है, तब शुद्ध पदकों पावता है ॥ हे रामजी! वाद जो करते हैं सो दो प्रकारके हैं, जो एक वाद किसीकों दुःख देवै सो मूर्ख करते हैं, अरु जो परस्पर निरूपणतत्त्वका मित्रभाव करिके करणा सो ज्ञानवान करते हैं, जैसा वाद करता है तिसका दृढ अभ्यास करता है, तैसाही रूप हो जाता है, जो कष्ट झगडा करता है तिसका उहीरूप हो जाता है, अरु जब स्वरूपका वाद मित्रता करिके करता है तब उहीरूप होता है, उस पदकों पायकरि परम शांतिकों प्राप्त होता है ॥ ॥इति श्रीयोगवासिष्ठे निर्वाणप्रकरणे मनमृगोपाख्यानयोगोपदेशो नाम शताधिकपंचषष्टित्तमः सर्गः ॥ १६५ ॥

॥ समाप्तमिदं श्रीयोगवासिष्ठे निर्वाणप्रकरणे पूर्वार्धम् ॥